ੴ

श्री वाहेगुरु जी की फतह ॥

श्री गुरु कलीधर चमत्कार

(चतुर्थ भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

अनुवादिका

डॉ० तेजिन्दर पाल कौर



भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कल्ग़ीधर चमत्कार

(चतुर्थ भाग)

श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार

(चतुर्थ भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डॉ॰ वीर सिंह

अनुवादिका

डॉ॰ तेजिन्दर पाल कौर

२००२

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कल्ग़ीधर चमत्कार (चतुर्थ भाग)
भाई साहिब भाई वीर सिंह

अनुवादिका
डॉ॰ तेजिन्दर पाल कौर

हिन्दी में प्रथम संस्करण : २००२

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : २८०/-

प्रकाशकीय

(चतुर्थ भाग)

संत कवि भाई साहिब डाः वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' के हिन्दी रूपान्तर का यह चतुर्थ भाग है। पहले दो भाग १६७० में, तृतीय भाग का १६८८ में प्रथम प्रकाशन हुआ था। इस चतुर्थ भाग का यह प्रथम प्रकाशन है। मूल रूप में 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डाः वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मुर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' भाई साहिब जी की एतिहासक गद्द-रचना है। इसमें श्री गुरू गोबिंद सिंह जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू गोबिंद सिंह जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई हैं, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सके। अधिकतर मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फ़ारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरुवाणी की प्रमाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरुमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली

डाः जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

६५ मीर शिकार*

स्थान- बिलासपुर का वन

आये- राजा, वज़ीर, सेनापति
दीवान, मुसाहिब (पार्षद), सिपाही
और सवार

राजा बिलासपुरी:-

अज्ज स्वाद नहीं कुछ आया,
खेड शिकार गवाया।
मिरग न कोई निशाने बैठा
सूर (सूअर) न नज़रीं आया।
ना लद्‌धा (लब्ध) सुरखाब,
नदी ते ना मुरगायी (जल का पंछी) आई।
दौड़ धूप ते हा हा हू हू
ऐवें पाय गवायी।

वज़ीर- मीर शिकार बिना, सरकार!
नहीं है स्वाद कदी बी (कभी भी) आया।
मीर शिकार बड़ा उस्ताद
मनो (मानो) है ओस (उसने) शिकार रिझाया।
मौत सु वस्स करी मिरगां दी
आवे भज्ज जु ओस बुलाया।
है अफसोस बड़ा पर स्वामी!
रोग बड़े उस घेर बिठाया।

राजा- हैं हैं रोग! की है रोग
जिस ने कीता मीर सरोग?

वज़ीर- मीर रोग है 'मीर शिकार' लग्गा
जिस दा कुज्झ उपाय न लज्झदा है।
वांग वबा (महामारी) दे रोग ए फैल रहिआ,

---

* यह प्रसंग खालसा समाचार में ५ पौष सं० गु० ना० सा० ४३८ (१९०६ ई०) दिसम्बर १९ के गुरुपर्व सप्तमी पर प्रकाशित किया था।

आवे* अग्ग के वांग ए दज्झदा है।
जिहड़ा फसे ओह निकल ना सक्कदा है,
कढ्ढे कोई तां आप ओ बज्झदा है।
संजम करे ना, करे कुपथ्य भारे,
दारू दिओ तां टप्प के (कूदकर) भज्जदा है।

राजा– साफ मन्त्री! कहो, की (क्या) रोग आया?
मीर घेरिया, देश नूँ वखत पाया+?

वज़ीर– है सेनापति दा बड़ा यार प्यारा,
है दिल भेद मालूम इस जोग सारा।

राजा– कहो सेन सूरे! मरम दी कहानी।
ओ औहर (बीमारी) कहो मीर विच जो पछानी।

सेनापति– हो इक़बाल भारा सदा राज राव।
मैं दस्सांग (बताऊँगा) सभ, जान बख्शी कराओ।

राजा– डरो ना, डरो ना, मैं जां बख्श कीती।
कहो हाल सारा, जो सिर ओस बीती।

सेनापति– है रोग लग्गा प्रेम वाला
मीर रोगी हो गया।
मैं कई दारू कर रिहा
कोई ना कारी (उपचार) है पिआ।
है गुरू कलग़ी वालड़ा
विच दूण साडी आ रिहा।
ओह तीर मारे शबद दे,
चक्खे ते बचणा फिर किहा (कैसा)?
ओ मीर मार शिकार सी
सु शिकार आपहि हो गया।
नित तड़फदा है विलकदा (व्याकुल होना, रोना),
खिन (क्षण में) हस्सदा खिन रो पिआ।

राजा– सदा दे@ दुक्ख हुण सांनूँ,
दए है कलग़ियाँ वाला।
सदा खेडे शिकार ए
है अपुट्ठी (उलटी) खेड दे झाला।
उपराले (यत्न) कर थके, हारे,

---

* ईंट पकाने का भट्ठा।

\+ मुसीबत खड़ी करना।

@ हमेशा के

नहीं कुझ पेश है जांदी,
करां हुण ज़ोर मैं भारा,
चलावां वेद दा चाला।
बुलावां बीर सभ भाई,
जुड़ावां धार मैं बाई,
कटक आसी मुगल शाह दा,
मचेगा अत्त दा घाला।
मिटे एह नित्त दा झगड़ा,
ए वक्खी सूल बाहर हो*,
पवे तद ठंढ मैं सीने,
सवां सुख नींद, लहि पाला।
उधर जाओ हुणे कोई,
पकड़ बन्ह (बाँधकर) मीर लै आवो,
सुआरां भुगत मैं उसदी,
भरे फिर प्रेम दा हाला।

दीवान– बख्शो जान, जि राय सुजान।
करां बिनय इक जोग ध्यान।

राजा– कहो छेती जा खट्टा है+।
मिटे किवें ए रट्टा है।

दीवान– आपणी (अपनी) सेना राय जी!
कट्ठी (इकट्ठी) करके आप,
जे लड़ीए ते मारीए,
पत@ सिउं मिटदा ताप।
जे राजे सभ नाल दे सूरे बाई धार,
कुम्मक# लैके जूझीए पत दा नहीं विगाड़।
पर जो लैणी तुरक दी कुम्मक है,
हे राव! पत अपणी है खोवणी,
स्वै घातक है दाव।
कलग़ीधर नहीं ओपरा$ तुरक आपणा नाहि,
अपणे झगड़े आप ही लईए आप निबाहि।

---

* काँटे की तरह चुभने वाला, रास्ते का रोड़ा।
+ किसी काम से मन का उकता जाना, नफ़रत होना।
@ इज़्ज़त, प्रतिष्ठा।
सहायता।
$ अपरिचित, बेगाना

जे जित्ते तां असीं हां,
जे हारे ना होर,
पर कुम्मक जो तुरक दी,
सिल्लेगी ज्यों चोर।
जो जित्ते तां असां ते, भारु पैसी ओह,
कर अहसानं अमेणवें सदा रखसी कोह।
जे हारे तां खायेगा, साडे उत्ते रोह,
तापदिक्क* ज्यों लग्ग रिहा फिर हैज़े दी खोह।
ओपरा कदी न सद्दीए, आपणी उस दे हत्थ,
पत्त न कदी फड़ाईए, ऐ नीति दी मत्त।

राजा– हे चुप, छांण मंतक+ न, बूड्ढे दीवान।
तूँ सत्तर बहत्तर@ गया हैं नादान!
चलो ओ प्यादे! करो तुरत छूट।
सकतू लिआवो, न आवे, दे कूट!

प्यादा– सत्त बचन श्री हजूर! जैतसिरी अरी चूर!

(प्यादे मीर शिकार के घर गये और पकड़कर ले आये)

राजा (क्रोध में)– विसाह घातीआ शकतूआ राजद्रोही!
हरामी निमक, पाजीआ स्वामी द्रोही!
करें प्यार तूं शत्रुआं नाल साडे।
आडे हैं दिन आ गए दुष्ट डाढे।

मीर शिकार– न मैं राजद्रोही, न हाँ स्वामी ध्रोही!
गुनहगार नाहीं, बुराई न छोही।
जे कीता है कुझ, दंड देवो, हे राणा!
जु कीता सु भरना, है भरना कमाणा।

वज़ीर– कर समझ सकतू बोल नाहीं,
कहे स्वामी सो करो।
न बोल बोलो उच्चड़े,
पै शरन, अपदा नूँ हरो।

सेनापति– हो गया है राय नूँ,
किस्सा मुहब्बत दा प्रकाश।
मीर जी! हुण लुक नहीं,
है शरण अन्दर बख्श आस।

---

* तपेदिक।
+ तर्क द्वारा सिद्ध करने का भाव।
@ बुढ़ापे के कारण बुद्धि ठिकाने पर न रहना।

मीर शिकार– हे राय जी! ए दोष है,
या दोष कोई होर है?
जे दास नूँ ए पता होवे,
दए किस्सा फोर है।

राजा– चलो कपट वाले न चालां दिखाओ।
की ए दोष थोड़ा है, दुश्मन रिझाओ?
नहीं होर कोई तां की ए नहीं है?
जे ए है तां फिर होर बाकी रही है?

मीर शिकार– *है वैरी उह नहीं राजा!
जो 'कलगी-सीस-धारी' है,
उह प्रीतम है सरिशटी (सृष्टि) दा,
सृष्टि ओस प्यारी है।
है सीना, साफ दिल निर्मल,
बिराजे है प्रभू ओथे,
ना भै कीना वसे ओथे,
मुहब्बत दी क्यारी है।
जगत तारन जगत आया,
प्रजा दुख दूर करने नूँ,
है जोड़न सृष्टि संग सृष्टे,
सदा उपकार जारी है।
न लड़दा ओह किसे संग है,
बचावे दर्दमंदां नूँ,
करे रखिआ दुखी लोकां दी,
खड़ग इस जोग धारी है।
न भुक्खा राज दा है ओ,
न रक्खे लोड़ देशां दी,
चहे करना 'सुतंतर' (स्वतन्त्र) ए,
जु भारत अज्ज अरि है।
सदी सत तों गयी 'देवी
सुतंतरता दी' छड सानूँ,
तदों तो 'दास' 'दुखीए' हां
अकल जुल्मां ने मारी है।

---

* भैरवी।

लुप्त होई 'सुतंतरता दी
देवी' ओस सतिगुर ने
करी परगट है फिर एथे,
खिड़ायी 'खुल्ह' वाड़ी है।
ओ देवी आखदी हैवे:
"मैं परगट सी नहीं होणा,
"इन्हां लोकां तों अक थक के
हो मारी सी उडारी मैं।
"तिरी ख़ातिर हे स्वामी मैं,
जु दासी हां हुकम बद्धी,
"आई फिर देश दे उत्ते,
दिआंगी खुल्ह खिलारी मैं"।
गुरू उपकार कीता है,
जो सदियाँ सत्त दे अन्दर-
किसे पासों न होइआ है,
करन दी नां ही यारी है।
गुरू सद्दे है भारत नूँ,
ओ सद्के राव रंका नूँ,
कहे "देवां सुतंतरता,
लओ, परजा (प्रजा) प्यारी है"!
चलो राजा! भवन परसो,
चलो हे सब्भ उमरावो!
चलो पूजो, सुतंतरता दी
देवी, गुर खल्हारी है।
दुखायी बहुत सी उह तां
असां अपराध कर कर के
करो छेती न गुस्से हो
किते मारे उडारी है।
गुरू प्यारा, गुरू है प्यार,
ऊ है अवतार प्रीती दा,
तजो दिल वैर जे राजा,
लगे सूरत प्यारी है।

गुरू झंडे दे हेठां सभ,
    चलो कट्ठे हो राजा जी!
करो भारत नूँ 'स्वतंत्र',
    न बाज़ी जाये हारी है।

राजा– ओ गुस्ताख मरदूद टप्पे जुड़ावें,
बनौतां* बनावें ते मैनूँ सुनावें।
लै सुण सोच, कर होश, वेला अजे है,
गुरू दी प्रीती जे हुण वी तजे हैं,
मैं बख्शां, दिआं बख्श अपराध तेरा,
तूँ प्यारा बहुत मीर शकतू हैं मेरा
जि ना प्रीत त्यागें तां जाह कै़द अंदर,
लुटो मौज खुल्हां दी बंदी दे मंदर।

मीर– हो गया, राजा जी! मैनूँ
    प्रेम गुरू दा हो गया,
हां, प्रेम मैं हां हो गया,
    ते फरक सारा खो गया।
जे वस मेरे होवंदा
    मैं पेम बाहर मारदा।
मैं देखदा जे दूसरा,
    ना सीस राजा हारदा।
मैं इस लई ना प्रेम करदा,
    खुशी हुंदी कीतिआं।
पर इस लई कि रहि न सकदा,
    नाम बिन-गुर लीतिआं,
मैं इस लई ना प्रेम करदा,
    गुरू सुन्दर अत्त है।
पर गुरू 'मैनूँ' 'मैं' तों मेरी
    निकट वरती (वर्ती) सत्त है।
हां, मैं कदी हो ओपरा सकदा
    हां अपणे आप नूँ;
पर गुरू मैनूँ आपणा है,
    हरफ है ज्यों छाप नूँ।

* बनाई हुई बात।

मैं जि आपा आप तों
बाहर निकालण जाणदा।
गुरु तांई फेर बी बाहर
निकाल न जाणदा।

राजा– हे नादान सकतु, तुमने अपनी मृत्यु स्वयं बुलायी है, ले जाओ कारागृह। क्यों वज़ीर! सेनापति! कुछ एतराज है?

वज़ीर– नहीं सरकार।

सेनापति– जो हुक्म सरकार! (सकतू की ओर देखकर) सकतू। होश कर?

मीर शिकार– **मैनूँ आखो ओ बात**
आखी जु सी इक्क ने किसे नूँ।
चानण काली हु रात–
आखे (कहे) मेरे लग्गियो जे कदी–
बाहर अपणे निकाल–
हत्थीं फड़ो नैण दो सोहिणे,
देखो हो हो निहाल–
नैणां इन्हां सुहणिआं प्यारिआं।
जिकुर संभव ए बात
उक्कर प्यारे दा है कढ्ढना।
जिकुर पा के है ज्ञात–
नैणां उन्हां कढ्ढिआं देखणा

राजा– **सुदायी है, कज़ायी है,**
मौत सिरे ते आयी है,
इक्को कैद दुआयी है,
हुकम असाडे पायी है।

(बाँधकर ले गए)

सूचना:– अब जब सतगुरू जी कुरुक्षेत्र से आनन्दपुर पहुँचे तो सकतू की क़ैद की ख़बर सुनी। उसकी मुक्ति के प्रबन्ध के विषय में विचार कर ही रहे थे कि ख़बर आयी कि वह सिक्खी विश्वास में परलोक जा बसा है।

एक दिन एक ब्रह्मण ने प्रार्थना की कि बस्सी के ज़ाबर खाँ पठान ने मेरा डोला* छीन लिया है। किस प्रकार इसकी सहायता हुई आगामी प्रसंग से पता चलता है:-

---

* पत्नी, डोली में सवार होने वाली बहू।

६६ गयी बहोड़*

(द्विजनारी छुड़वायी)

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी एक दिन सभा में बैठे थे कि दूर से कोई दुख की मद्धम आवाज़ आई। कानों में दुख की ख़बर पड़ते ही दुख सुनने वाले कान उधर लग गये। आवाज़ दूर की थी, चोबदार को बुलाया गया और आदेश हुआ, 'पता लगाओ कौन है?' उसने आकर नम्रनिवेदन किया, पातशाह! एक दुखी ब्राह्मण है और दुख से विलाप कर रहा है। आदेश हुआ 'यहाँ हमारे पास ले आओ।' ब्राह्मण उपस्थित किया गया। दाता जी के रसभरे नेत्रों ने कृपादृष्टि डाली और पूछा– 'हे दुखी द्विज! क्या पीड़ा है?'

ब्राह्मण– हे प्रभु हिन्दू धर्म की ध्वजा! दीनदयालु दीर्घ बलभुजा! सम थल ते मैं होय निरासी। फिर आयो रावर+ के पासी। अति अनिआय (अन्याय) मोहि संग कीना। दुष्ट पठान गर्ब दुख दीना। पुरि हुशियार निकट इक बसी@। बसै पठान तहां मतिनसी#।

मैं मुकलाय बधू को डोरा।$
गमनत जात अपन घर ओरा।
करी बिलोकन तिन मम दारा (पत्नी)।
छीन बरयो लै सदन मझारा।
मैं बड ऊचे कीन पुकारा।
नर ते गहिवायो बहु मारा।
तिस हित मैं बहुतन ढिग गयो।
तुर्क जहां कहिं धन तिन दयो।
नहीं फिराद लगन कित दीन।
ज्यों त्यों जतन (यत्न) अनिक मैं कीन।

---

* १. यह लेख खालसा समाचार का शीर्ष लेख होकर और वैसे भी गुटके की सूरत में कई हज़ार संगत (भक्तजनों) में प्रचारित किया गया था। पौष की ९ सं॰ गु॰ सा॰ ४६५ और वि॰ १९९० अनुसार २३ दिसम्बर १९३२ शनिवार गुरुपर्व सप्तमी थी।

२. आत्मिक जीवन की खोयी हुई पूँजी को वापिस दिलवाने वाला।

\+ आपके।

@ एक बस्ती है इसका नाम पठानों की बसी था, ज़िला हुशियारपुर का था।

\# बुद्धि जिसका साथ छोड़ गयी हो।

$ मुकलावा-छोटी आयु में विवाह करने वाले, कन्या को ससुराल भेजना अयोग्य मानते हैं, जब कन्या होश संभालती है तब एक रस्म की जाती है, जिसके द्वारा ससुराल में जाने की छूट दी जाती है। ब्राह्मण यही रस्म अदा करवाकर अपनी पत्नी को उसके मायके से अपने घर ला रहा था।

काज़ी कोतवार ढिग फिरिओ।
किनहूँ न्याऊं (न्याय) न मेरो करियो*।
लखि के गुर हिन्दुन सिरमौर।
परम दुखी आयो इस ठौर। (सूरज प्रताप)

सतगुरू दर्द की व्यथा सुनकर किसी सोच विचार में थे, माथे पर त्योरियाँ आईं, ओठों को दाँतों ने काटा। नेत्र अरुणिम हो गए, कि फिर मस्तिष्क साफ हो गया, नूरानी चेहरा नूरी दमक में और दमक उठा। इतनी देर में दुखी ब्राह्मण ने समझा कि इस दरवाज़े से भी इनकार होने वाली है। तब और ऊँची आवाज़ में पुकार उठा–

श्री प्रभु! कै अबि त्रिय को पाऊँ।
नतु मैं दुआर (द्वार) अग्र जल जाऊँ।
जीवन धरम नहीं अबि मेरा।
तुम बिन जतन नहीं को हेरा। (गु॰ प्र॰ सू॰)

यह सुनकर अपना आप न्योछावर कर देने के स्वभाव वाले गुरू जी मुसकराए और कहने लगे–ब्राह्मण तुम्हारा क्या नाम है? ब्राह्मण ने कहा–मेरा नाम देवदास है, मैं सारस्वत ब्राह्मण हूँ। गुरू जी बोले– 'हे देवदास! जलकर मत मरो और न ही चिन्ता की आग में मन को जलाओ। हौंसला करो, गुरू नानक भली करेंगे।' ब्राह्मण ने सुख की लम्बी साँस ली, बहते नेत्र पोंछकर और धरती पर सिर रखकर कहा 'हे बंदी छोड़+, तू धन्य है, गरीब निवाज तू धन्य है।'

उधर आदेश हुआ है कि 'अजीत सिंह जी को बुलाओ।' कौन है अजीत सिंह, कोई जमादार, सूबेदार, फौज का सेनापति? नहीं, कोई नौकर चाकर ग़ैर सूरमा (शूरवीर), नहीं, अपने दिल का टुकड़ा अपना बड़ा पुत्र है। आयु कितनी है? अभी बीस बरस का नहीं साहिब अजीत सिंह जी उपस्थित होते हैं, शस्त्र सजे हैं, सुन्दरता और तेज की साक्षात मूर्ति हैं। वास्तविक सन्यासी पिता के रसीले नेत्र पुत्र पर पड़ते हैं आज्ञा होती है "बेटा! अकाल पुरुष का हुक्म है 'जाहि तहां ते धरम चलाय। कुबुद्ध करन ते लोक हटाए।' इस ब्राह्मण की स्त्री बसी के जाबर खाँ@ पठान ने छीन ली है, उससे छीनकर इसकी स्त्री वापिस इसको दिलवानी है, कुबुद्धि करने से व्यावहारिक तौर पर हटाने का यह समय है। साथ में सिंह ले जाओ, बसी पहुँचो, पठान और स्त्री पकड़कर ले आओ। बिजली की तीव्रता से जा पड़ो, आते जाते पता न चले, बस काम करना है और फुर्ती का काम है।"

पिता गुरू का बताया कठिन काम सुनकर साहिब अजीत सिंह के माथे पर चिन्ता और उदासी की छाया नहीं छायी। माथा वीररस पूर्ण उत्साह के साथ चमका, खड़ग की

* यह दुखी ब्राह्मण, तवारीख खालसा में लिखा है कि काज़ी आदि के अतिरिक्त पहाड़ी राजाओं के पास भी गया था, परन्तु किसी ने भी उसकी सहायता नहीं की थी।

\+ क़ैद से छुड़ाने वाला।

@ तवारीख़ खालसा ने नाम दिया है, सरदास जाबर खाँ पठान का और ब्राह्मण का नाम देवदास।

टेक लेकर उठे, पिताजी के चरणों पर माथा टेका। हाँ परम सन्यासी, परमत्यागी पिता ने जिसने परहित के लिए पुत्र प्रेम भी न्योछावर कर रखा है, सीने से सिर लगाया, प्यार दिया और कहा "श्री असिध्वज की रक्षा, तेरे अंग संग हो। जाओ बेटा।"

इस प्रकार आशीर्वाद लेकर नौनिहाल लाल जी बाहर आये, सौ सवार साथ में चलने के लिए तैयार किये* दुखी ब्राह्मण को एक घोड़े पर बैठाकर साथ में लिया, जो रास्ता, घर और उस पठान की पहचान करवाये। यह काम करके प्रस्थान कर दिया। दो घड़ी+ दिन बाकी था जब शूरवीर अजीत सिंह जी फौज की टुकड़ी साथ लेकर चले हुए सतलुज नदी से पार हुए। बंदूके कसी हुई तैयार हैं। एक शलक@ के लिए गोलियाँ भरी हुई हैं। चलते जा रहे हैं, रात के अँधेरे में प्रकाश देने वाले गुरू के सुपुत्र, जहाँ कहीं रास्ते का शक हो (ठीक न होने का) और ब्राह्मण भी बता न पाये तो किसी समझदारी के साथ पता करते हैं और चलते जाते हैं। दिन अभी चढ़ा नहीं था कि बस्सी पठानों की पर आप जा पहुँचे। लाल जी अक्षर-अक्षर पिताजी के आदेश को पूरा करना चाहते थे। आपका आशय यह था कि इतना अचानक जाकर पड़ूँ कि युद्ध का कम से कम समय बनें। ऐसा ही हुआ क्योंकि आप लोगों के सोये-सोये ही पहुँच गए। तब ही पता लगा जब पठान की हवेली के दरवाजे टूट गए और बस्सी में भारी शोर शराबा सुनकर पठान जागे। इतनी देर में 'आ पड़े, आ पड़े, सिख#, आ पड़े' की आवाज़ गूँजी। सिख दरवाजे तोड़कर हवेली के अन्दर जा चुके थे। आवाज़ सुनी तो कुछ पठान तो घरों के अन्दर ही दुबक गए कि बाहर कौन निकले। कोई तो बाहर निकले, सशस्त्र सेना देखकर खिसक गए। किसी को मुकाबला करने का हौंसला न हुआ। अगर किसी ने सामना किया भी तो मुँह की खायी। सिंहों ने हवेली तोड़ने से पहले पहरे के आदमियों की मुश्कें$ बाँध ली थीं। अब सिक्ख सीधे खाँ साहिब के शयन कक्ष में जा घुसे और उसे पलंग से घबरा कर उठे और इधर-उधर भागते हुए को धर दबोचा। ब्राह्मण ने पहचान की कि यही है दोषी और उसने भी माना कि मेरा नाम ही जाबर खाँ है। फिर स्त्री पहचानी, और उसकी पत्नियों से पूछताछ की, तसल्ली कर ली तब ब्राह्मणी को भी साथ ही पकड़ लिया। बाकी घर की किसी औरत को कुछ न कहा, न ही किसी पदार्थ को हाथ लगाया और दोनों को लेकर बाहर आकर, अपने फौजी दस्ते का बोरिया बिस्तर बाँध लिया। दोनों को दस्ते के बीच में रखकर घोड़ों पर बिठाकर प्रस्थान किया। जहाँ तक वश चला लड़ाई नहीं की। इस तरह लगभग साफ ही निकल आये और आनन्दपुर आ पहुँचे। जब सतगुरू जी की सभा में आये तो होनहार नौनिहाल ने दोनों, पठान ओर ब्राह्मणी सभा में पेश किये।

---

* तवारीख़ खालसा में दो सौ सवार लिखा है।

+ घड़ी २४ मिनट का समय।

@ बहुत बंदूकों को एक बार ही चलाने की क्रिया।

सिख=सिक्ख=गुरू नानक का चलाया हुआ एक संप्रदाय, इस सम्प्रदाय का अनुयायी, शिष्य।

$ पीठ के पीछे हाथ जकड़ने की क्रिया।

न्यायशील दाता जी ने जाबर ख़ाँ को उसकी इस और आगे पीछे की ऐसी गलतियों और खून खराबों के बदले दंड दिया। जाबर ख़ाँ तीर के घाट उतारा गया और ब्राह्मणी ब्राह्मण को दी गयी। तवारीख खालसा में लिखा है कि ब्राह्मणी को उसके भाईचारे में भी सम्मिलित किया गया। प्रतीत होता है कि ब्राह्मण को जब स्त्री मिल गयी, तब उसकी दूसरी कठिनाई यह थी कि वह जो तुर्क के घर रह आयी है, चाहे वह जबर्दस्ती ही ले जायी गयी निर्दोष थी, पर वह अब फिर से हिन्दू नहीं हो सकती। इस विपदा को दूर करने के लिए आनन्दपुर में ही वह शुद्ध की गयी और आनन्दपुर में बसते ब्राह्मण भाई-चारे में भी अभेद की गयी, ताकि जब ब्राह्मण अपने घर पहुँचे तब उसका परिवार कुनबा उस पर रोक न लगा दे और वह और अधिक कष्ट में न पड़े। सतगुरू जी की इस कार्यवाही पर घर-घर कीर्ति फैली और ब्राह्मण ने सतगुरू को दुष्टदमन अवतार कह-कहकर कीर्ति की।

वास्तव में आजकल उन हालातों को जल्दी से समझ पाना कठिन है। सदियों से अत्याचार की तलवार द्वारा मरती-मरती हिन्दू जाति अत्यधिक दुखी और कमजोर हो रही थी। यह किस में ख्याल करने का हौंसला था या किसी को आशा हो सकती थी कि कोई ग़ैर मुस्लिम किसी तुर्क पठान से भी ताकतवर और हौंसले वाला हो सकता है और यह कोई ख्याल भी नहीं कर सकता था कि कोई इनको दंड दे सकता है। मुर्दा होश को जीवित कर देना, देश की विदा हुई बुद्धि को फिर वापिस ला देना, कायर प्रजा में बल भर देना और हौंसला बढ़ा देना यह था असंभव जो गुरू जी ने संभव कर दिखाया। इसलिए इस घटना पर कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं:-

इस चरित्र को सुनि जग सारा।
श्री सतिगुर जस महिद* उचारा।
जथा चाँदनी निरमल होति।
तिम घर-घर महिं सुजस उदोत+।
मनहुं मालती फूलत झूली@।
रायबेल कै सुन्दर फूली।
जहिं जहिं कीरत वरनन करते।
धंन धंन प्रभु धंन उचरिते।

---

* बहुत।

\+ सुन्दर यश प्रकाशित हुआ।

@ फूलों से लदी मालती की बेल झूल रही है।

६७ सिर सद्दक*

एक बार बहुत तेज और बली घोड़े पर चढ़ते ही घोड़ा तेज होकर सीख पा+ हो गया। मुँह उठाकर इतना ज़ोर लगाया कि कोई आशा नहीं थी कि श्री कल्ग़ीधर गिर नहीं पड़ेंगे। परन्तु उस तन मन से बलवान गुरू ने घोड़ा नियन्त्रण में कर लिया और अपने अधीन करके साफ चला ही लिया। परन्तु इस सारे यत्न में कंधा खिच गया और पट्टी बाँधी गयी। माता गुजरी जी को जब ख़बर हुई तब उन्होंने वाहिगुरू का शुक्र किया और कई दान किये। यह गीत उनके आगे प्रार्थना है कि 'भवजल पार उतारना' का दान आज अपने लाडले पुत्र का सिरवारना@ करके इस मंगते को भी दे दें दान में, हे तारनहार की अम्मी!

टेक– **अरी माता गुजरी!**

कर सुत दा सिरवारना।

घोड़ा अज्ज सीख पा होया

कीतो सु हुझका मारना,

गिरया न तेरा बीर बांकरा (वीर बांकुरा)

नीले दा असवारना,

कलगी सोहे सीस ते जिसदे

नैणं नूर खिलारना

टिकिया रिहा शोख दे उते

तेरा लाल दुलारना,

मुँह ताणे नूँ ताण लिओ सू

कदे न जिसने हारना।

ऐपर खिच खा गया कंधा,

पट्टी बन दुखारना।

साईं रख ने रक्ख लिया ए,

साईं पैज सुवारना।

---

* १. यह गीत सं० गु० ना० सा० ४७१ (१९३९) के गुरुपर्व सप्तमी पर खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

२. सिर वारना करना।

\+ घोड़े का अपनी आगे की दोनों टाँगों को उठाकर, पिछली टाँगों पर एकदम सीधा खड़ा हो जाना।

@ बलाएँ लेना, बलिहार जाना।

ऐस खुशी विच माता गुजरी!
कर सुत दा सिरवारना,
झोली खोल्ह खला है मंगत
नाल पया पुकारनाः-
'देह सुत दा सिरवारना अम्मिए'
'भवजल पार उतारना'
कर सुत दा सिरवारना अम्मिए!
दिह सुत दा सिरवारना।
'भवजल पार उतारना' अम्मिए!
'भवजल पार उतारना।'

---

६८ नीला और गुरू की आन*

: १ :

गुरू जी को अलफ खाँ और सैदा बेग द्वारा सहज स्वभाव रास्ते से आते हुए धोखे के साथ पकड़वा अथवा शहीद करवा देने का द्रोह जो राजाओं ने किया था, उससे सिखों में बहुत नाराज़गी और दुख था। ऊपरी तौर पर राजा लोग उस समय मेल (मित्रता) में थे परन्तु बीच में से यह चाल चली थी। यह नाराज़गी भी खालसा में जोश को बढ़ा रही थी और वे दूर-दूर तक शिकार पर गये हुए अपने तेज के करतब करते थे। राजा लोग अपनी जगह शर्मिन्दा थे। सैदा बेग गुरू का प्रशंसक हो गया था। उसने राजाओं की साज़िश का सारा हाल बता दिया था, जिस कारण पर्दा नहीं रहा था छिपी हुई चाल का। अब राजा प्रत्यक्ष मित्रता भी नहीं निभा सकते थे और खालसा के बढ़ रहे तेज से दुखी भी होते थे। इसलिए कहलूर के राजा अजमेर चंद ने एक बार फिर राजाओं को इकट्ठा करके उनको समझाया कि गुरू का खालसा जिसको हमने समझा था कि जल तरंग की तरह नष्ट हो जायेगा, और ख्याल था कि कहाँ जट्टों (जाटों) खत्रियों, बनियों, कलालों आदि ने वीर रसपूर्ण काम कर पाना है, वह खालसा अब भयानक मूर्ति और सबल व्यक्ति बन कर खड़ा है, उसका तेज बढ़ रहा है और मुझे अपने राज्य का ख़तरा है। मैं मारा गया तो फिर एक-एक करके आप सब की भी सुख नहीं, बारी-बारी सभी मारे जाओगे।

गुरू का बल इतना बढ़ गया है कि किसी एक राजा द्वारा लड़कर जीतने की आशा करना भूल है। युद्ध करके देख चुका हूँ, सुलह द्वारा भी छल-बल करके देख चुका हूँ, शाही मदद भी उसको पराजित नहीं कर सकी। अगर एक युद्ध में दो चार सौ सिंह मारा जाता है तो कुछ देर में ही और हज़ारों अमृत छककर सिंह बन जाते हैं और अनेक उनके पास सैनिक बनकर टिक जाते हैं, इस प्रकार खालसा दल न खत्म होने वाला बनता चला जाता है। मेरी समझ में अभी कुछ समय है कि सभी मिलकर एक सामूहिक वार करें और झटपट आनन्दपुर पर जा चढ़ाई करें तो फ़तह हो जाये। नाहण के राजा ने कहा कि गुरू की इच्छा हमारे राज्य छीनने की नहीं, ऐसा करना होता तो वह बहुत पहले ही कर लेते। वो हमें इन पराये बाहर से आकर हमारे सिरों पर बड़े बन गए तुर्कों की गुलामी से छुड़ाना चाहते हैं। मेरा अनुमान और विचार जो उनके मेरे राज्य में रहने के समय बना था यही है। हमें किसी विचार के साथ चलना ठीक है, परन्तु इस बात पर ग़ौर कम हुआ है और अपने राज्यों के बचाव की ओर ध्यान विशेष रहा है।

---

* यह प्रसंग गुरुपर्व पौष शुदी सप्तमी (१६ जनवनरी १९४० ई०) माघ की ३ सं० गु० ना० सा० ४७१ और वि० १९९६ मंगलवार कों 'सैदाबेग शरणागत' नामक ट्रैक्ट के अंत में प्रकाशित हुआ था।

राजा द्वारा ऐसा कहने पर एक बात पर निर्णय हुआ कि पहले उनको लिखा जाये कि हे गुरू जी। अगर आप अपने आनंदपुर के कस्बे में टिके रहे तो टिके रहें, हम आपको दुखी नहीं करेंगे, परन्तु अगर बाहर खुले आम शिकार कर फौजें घुमाओगे, घास-दाने लोगे तब हम आप के साथ युद्ध करेंगे। हमने बहुत धैर्य किया है परन्तु आपके आदमी टलते नहीं। अब हम आपको लिख रहे हैं कि इनको सँभाल लीजिए, नहीं तो युद्ध मजबूरी है।

सतगुरू के दरबार में पत्र पहुँचा, पढ़ा गया, इस पर सतगुरू जी ने सभी बुद्धिमानों की विचार चर्चा करवायी। फिर जो सर्वसम्मति से राय बनी जवाब लिखवाकर भेज दिया कि भाई राजाओ! हमारा आपके साथ कोई द्वेष नहीं, न हमने किसी राजा का राज्य छीना है, और न ही हमने किसी पर कभी हमला किया है। हम अपने ठिकाने पर टिके हुए हैं, अपना काम, जो हम समझते हैं कि ईश्वर के घर से ही हमारे सिर सौंपा गया है, करते हैं, वह काम आपके भले का है, आपके सभी भाइयों की भलाई का है। हमें अपने लिए किसी राज्य समाज की इच्छा नहीं। आपको दुख होना उचित नहीं। जब कभी शिकार पर जाते हैं तो किसी को हम नहीं दुखी करते, अगर कोई सिंहों के साथ अड़ जाता है तो सिंह हैं सिंह, दबते नहीं, वह आपको भी पता है कि सिंह का काम हारना नहीं है। अपनी प्रजा को संभालो। व्यर्थ में युद्ध न रचाओ। हमने आपके साथ युद्ध नहीं छेड़ना और न कभी छेड़ा है, न हम आपके शत्रु हैं, परन्तु अगर आपने आक्रमण किया, युद्ध किया तो खालसा आगे से काँच की चूड़ियाँ पहनकर नहीं बैठा हुआ, युद्ध होने पर युद्ध होगा। खालसा का आदर्श जगत में शांति, सुख फैलाना है, परन्तु जो ताकतें अत्याचार कर रही हैं, अगर वे अत्याचार करने से न हटें तो खालसा उनको अत्याचार करने से बलपूर्वक रोकेगा। इसलिए आप खालसे का साथ दो जिससे शांति, सुलह और स्वतंत्रता का समय आये। इस अपने परम मित्र के साथ न लड़ो, परन्तु अगर लड़ो तो चढ़कर आओ तो पहल आपकी तरफ से हो जायेगी, हम आगे से वार को रोकेंगे। फिर जो असिध्वज चाहेगा होगा। गले आ पड़े युद्ध के लिए हम तैयार बर तैयार हैं, परन्तु यह युद्ध और इसके परिणाम सभी आपके ज़िम्मे होंगे।

जब यह पत्र पहुँचा तब तक वहाँ तैयारी हो चुकी थी। इस पत्र के आशय ने उनके आशय को न बदला, उनकी इस समझ को कोई समझ न दे सका कि गुरू जी का आशय तुम्हारे छोटे-छोटे राज्य लेने का नहीं, वे तो सारी प्रजा को स्वाभिमान, स्वरक्षा का तरीका सिखा रहे हैं। वे प्रजा के कष्ट से-जो गुलामी में पड़ने पर भोगने पड़ते हैं-पीड़ित हो रहे हैं और ऊपर वाले विचारों को कार्यान्वित करने की कोशिश कर रहे हैं। एक 'दुख' जीव को अपने किये कर्मों के भोगने पड़ते हैं, जैसे अगर किसी ने चोरी की तो बदनाम हुआ। एक 'दुख' ऐसे होते हैं जो 'समूह' की गलती के जीव-जीव को भोगने पड़ते हैं, जैसे एक कौम वीर रसपूर्ण जीवन का त्याग कर किसी जाबर कौम की गुलाम हो गयी। अब उस कौम के एक आदमी को अपने घोड़े पर सवारी करने के कारण क़ैद कर दिया जाता है। उसने कोई दोष नहीं किया था, परन्तु राज्य कर रही क़ौम ने कानून बना दिया है कि कोई आदमी, जो सरकारी फौज में नहीं, घोड़े पर न सवार हो। इस प्रकार यह घोड़े का सवार

अपनी कौम के हार जाने के अपराध के कारण दुखी किया जा रहा है, न कि किसी अपने गुनाह के कारण। देश में जो इस तरह की पीड़ाएँ प्रवृत थीं और प्रजा दुखी थी, यहाँ तक कि धर्म की स्वतन्त्रता भी नहीं रही थी, गुरू जी तो उसका इलाज कर रहे थे। शेर तो तेंदुओं के प्रबन्ध कर रहा था कि प्रजा को उनसे बचाये और फिक्र हो रहा था बिल्लियों को कि कहीं हमारे चूहे न छीन ले, ऐसे ही राजाओं में हुई। अजमेर चंद के उपदेश अधीन यह विचार बना कि एक बार मरने मारने का हौंसला कर लिया जाये। भीमचंद अपने समय का भारी तीरन्दाज़ और योद्धा हुआ है, परन्तु अजमेर चंद वैसा नहीं था, उसको इस बात का गर्व था कि वह नीतिवेता है और अपने अनुमान में वह समझदारी भी कर रहा था कि उसके पास सभी राजाओं की सेना और छेड़ (आदेश देकर गाँवों से बुलाये गए पुरुषों के गिरोह) इकट्ठी कर-करा कर कई हज़ार की भीड़-भाड़ हो जायेगी और गुरू जी के पास उसको पता था कि सारी फौज इस समय हज़ार से नीचे नीचे थी*। इसलिए इस समय को गनीमत जानकर सारे राजाओं ने आक्रमण की जल्दी की और बिलासपुर से प्रस्थान कर दिया।

इधर आनन्दपुर में भी खबरें पहुँच गयी थीं कि राजाओं ने चढ़ाई कर दी है, इसलिए पहली सलाह यह बनी कि लड़ाई का मैदान आनन्दपुर के घेरे में (चारों ओर) न हो। खालसा दल आगे बढ़कर राजाओं को आगे से होकर मिले ताकि आनन्दपुर की शहरी आबादी को परेशानी न हो। यह सलाह दृढ़ करते हुए खालसा फौज आगे बढ़ी और आबादी से दूर जाकर मोर्चे लगा लिये। युद्ध के दाँव पेंच और लड़ने की योजना सारी तय कर ली गयी। आप साहिब एक ऊँचे ठिकाने पर जाकर सज गये, जहाँ से दोनों ओर का व्यवहार दाँव-पेंच और बढ़ने-हटने के नज़ारे साफ दिखाई देते रहें। राजाओं ने जो बढ़ते आ रहे थे और इस ख्याल में थे कि अचानक आक्रमण कर आनन्दपुर को हफड़ा तफड़ी में डाल देंगे, अब देखा कि वह बात तो परवान नहीं चढ़ी और अपने डेरे-अड्डे लगाये बिना ही तैयार-बर-तैयार शत्रु दल से मुकाबला करना पड़ गया है, जो केवल आगे ही नहीं बढ़े बल्कि अपनी मोर्चाबंदी भी कर चुके हैं। परन्तु सेना अत्यधिक होने के कारण और पुराने योद्धे होने की वजह से सभी राजा डट गए और लड़ने की योजना में लग गये। एक हिस्सा तो आगे बढ़कर डट गया कि अगर हल्ला आये तो रोके और पिछला दस्ता दूर रहकर युद्ध का काम बाँटने में लग गया।

सिंहों का पहला दाँव यह था कि उन्होंने बढ़कर आक्रमण नहीं किया, अपने मोर्चों में से निशाने बाँधकर बंदूकों की शलक छोड़ी (बहुत बंदूके एक साथ दागीं) कि जैसे बिजली कड़क उठी हो और इस फुर्ती के साथ चलाते हैं कि साँस नहीं लेते। उस समय की बंदूकें जल्दी नहीं चलती थीं, परन्तु इधर एक-एक योद्धा, बीच में से एक-एक योद्धा छोड़कर, बाढ़ (गोलियों की बौछार) छोड़ता था, इतने में दूसरा दूसरा योद्धा बंदूक तैयार कर लेता था, फिर वे शलक छोड़ते के, इतने में पहला पहला योद्धा बंदूक तैयार कर लेता

* सूरज प्रताप और सौ साखी में इस समय गुरू की सेना ८०० और राजाओं की दस हज़ार बतायी है।

था, इसलिए ऐसा लगता था कि मानो लगातार गोली आ रही है। अगर कोई दस्ता पहाड़ियों का आगे बढ़ता तो सिंह बंदूकों से मुँह तोड़ देते। अत्यधिक आवश्यकता पर कुछ आगे बढ़कर बंदूकों की शलक छोड़ते और फिर अजीब कौशल से घोड़े को घुमाकर अपनी पंक्ति में अपने-अपने स्थान पर जा खड़े होते। दुश्मन की आ रही गोलियों के आगे निशानों से बचकर घोड़े को एक घुमावदार दाँव देकर फिर सँभलकर खड़े हो जाते और गोलियों की बौछार शुरू कर देते। इस कारीगरी को देखकर पहाड़ी जो पुराने बहादुर थे, वाह-वाह कर उठे। खालसा जी को आदेश था कि अपने मोर्चे नहीं छोड़ने हाँ आगे बढ़ना पड़े तो थोड़ा बढ़कर मार कर मोर्चों में आ टिको। इस तरह का युद्ध बचाव वाला हो रहा था और इसमें पहाड़ियों का बहुत नुकसान हो रहा था। सिंहों की गोली ठीक निशाने पर बैठती थी और सिंह आप दाँव बहुत कम खा रहे थे। राजाओं को दिखाई दे रहा था कि हमारी विजय तो है अगर हम उमड़कर आक्रमण करें और हाथों हाथ जा मोर्चे छीनें, परन्तु अजमेर चंद इस खेल में हार जीत दोनों पक्ष देख रहा था क्योंकि सिंहों का मोर्चों से ज़रूरत के समय निकलकर बढ़ते पहाड़ी हमले को पछाड़ना और फिर घोड़े घुमाकर पंक्तिबद्ध हो जाना और गोली चलाते हुए मोर्चों में जा ठहरना वह जानता था। इस समय राजा भूपचंद, देवशरण, वज़ीर सिंह ने अपने दल आगे बढ़ाये और आप शूरवीरता के चाव में लड़ने के लिए दल की अगुवाई में चले। अजमेर चंद रण की सारी देखभाल और प्रबन्ध के बहाने पीछे ही रहा। यह हल्ला राजाओं ने बहुत उमड़ कर किया। गोलियों और तीरों की वह बारिश की कि मानों सच में बारिश आ गई हो। अनेक सिंह घायल हो-होकर गिरे और परलोक गमन कर गये। धरती लाल हो गयी और आह-कराह का शब्द गूँज उठा। उधर युद्ध के नगाड़े बज रहे थे,. इधर राजसी हल्ला ज़ोराज़ोरी का आ रहा था। इनका कदम बढ़ता देखकर चंबेल, कुंर्ल्लू, कैथल और जसवारी के राजा आगे बढ़े। इधर उदय सिंह और आलम सिंह ने अपने पैर जमाये हुए थे और उनकी बंदूकी बाढ़ों की फुर्ती बहुत असर कर रही थी। बढ़े आ रहे सैनिकों में से सैकड़ों गिर रहे थे, घोड़े ज़ख्मी होकर सवारों सहित गिर रहे थे। आखिर जब इन शूरवीरों ने देखा कि अब शत्रु मोर्चों के बहुत करीब आ रहा है, चाहे अनगिनत निशाने का शिकार बनकर गिर रहे और नुकसान हो रहा है, परन्तु फ़िर भी दल बढ़ता ही आ रहा है, तो मोर्चों से निकलकर हाथों हाथ लड़ाई करते हुए उनका मुँह मोड़ने की ठान ली और आगे बढ़ने लगे थे कि साहिब का आदेश आया कि:-

'वधहु न आगे थिर हुए लरो।
ज्वालाबमणी* छोरन करो। (सूरज प्रताप)

यह आदेश सुनकर सिंह टिक गये और जैसे जमे हुए खड़े थे वैसे ही खड़े रहकर लड़ते रहे। तीरों और गोलियों की निश्चित चाल द्वारा चलाने में इनकी फुर्ती काम कर रही थी। साहिब का आदेश था कि पैर इस तरह जमाकर टिके रहो और इस तेज़ी के साथ बाढ़ छोड़ते रहो कि शत्रु का हल्ला तुम्हें न तोड़ सके, न हिला सके। इसलिए सिंह भी इसी तरह पहाड़ की तरह दृढ़ होकर डटे रहे और दुश्मन की चुनौतियों पर भी अपनी पंक्तियाँ और घेरेबन्दी को तोड़कर आगे न बढ़े। पहाड़ियों+ ने जब देखा कि ये अपनी बंदूक और

* बंदूक।

\+ पहाड़ में रहने वाले।

तीर को छोड़कर तलवार की हाथापायी पर नहीं उतर रहे तो फुर्ती करके और बढ़े और तलवारें, भाले आदि खींचकर टूट पड़े। सिंहों ने भी आगे से तलवारें सँभालीं और ढालों पर वार झेल-झेलकर मुँह तोड़ जवाब दिये, परन्तु अपने स्थान पर डटे रहे। उधर सतगुरू जी की कोई योजना थी कि एक ओर के दूर के मोर्चे से गोली तीर इनके आगे बढे पहाड़ियों के पीछे इनकी आ रही सहायता में जाकर पड़ती थी जिससे वे अपने आगे बढ़े दल के साथ उचित सामंजस्य न कायम रख सके। जिन सिंहों ने अब कृपाणों (तलवारों) के हाथोंहाथ युद्ध का मुकाबला शस्त्रों के साथ मजबूर होकर तय कर लिया था, उनका क्रोध पागल होकर चढ़ा और यह तलवारों का युद्ध भी पहाड़ियों को दंग कर गया। बहुत मारकाट होकर इनके पैर पीछे पड़ने लगे तो क्या देखते हैं कि हमारे पीछे कोई नहीं, स्थान खाली है। वास्तव में इनके पीछे इनमें और इनकी सेना में दूरी पड़ गयी थी, यह देखकर उनके दिल धक्का खा गये। यह समझकर कि पीछे आने वाले भाग गए हैं, अब ये घबराकर पीछे हटने ही लगे थे कि खालसा एक धावा कर उनपर टूट पड़ा और खूब खंडा खड़काया। अब पहाड़ी भागे जा रहे हैं और सिंह उनके पीछे जा रहे हैं। आगे वालों की भगदड़ ने पीछे वालों को भगाया। शत्रु दल में शोर पड़ गया, पैर उखड़ गये, दो चार सेना के मुखिया मारे गये, जिनकी मौत ने और बुरा प्रभाव छोड़ा। खालसा अब विजय के घमण्ड में आगे बढ़ा जा रहा है। गुरू आज्ञा थी कि मोर्चों से बहुत आगे नहीं बढ़ना, जमकर लड़ना है और वार लौटाने हैं और हमारी आज्ञा पहुँचे बिना आप वार नहीं करना, परन्तु यहाँ सिंहों ने समझा कि हमने मैदान फ़तह कर लिया है, अब शत्रु को घर में घुसाकर मुड़ना ही ठीक है। गुरू जी के आदेश आने पर भी जब सिंह न मुड़े तो गुरू साहिब ने विचार किया कि सेना के अगुआ की आज्ञा भंग करने की आदत अगर आज सिंहों को पड़ गयी तो यह आदत हमेशा के लिए बन जायेगी और इनके सारे भविष्य को खराब करेगी, इसलिए आज इनको शिक्षा देनी चाहिये कि सेनापति-जत्थेदार-की आज्ञा ही विजय का मूल होती है। चाहे आप जानते थे कि इनको इस समय दंड देने से हार होगी और हमें आनन्दपुर की रक्षा का दुष्कर काम अभी ही आ जायेगा, परन्तु गुरू ने सिक्खों को वह शिक्षा देनी, जो सदा के लिए उनको सुखदायी हो, ज़रूरी समझी और आप ऊँचा ठिकाना छोड़कर आनन्दपुर की ओर चल पड़े और शनैः शनैः चलते गये। इधर सिंह जब बहुत आगे बढ़ गए तो पहाड़ियों की एक भीड़ जो तीन हज़ार बताई जाती थी, एक ओर से अचानक निकल आई। इस दल को देखकर बढ़े दिल वाले खालसा, जिन्होंने अपने आपको गुरू से अधिक समझदार समझ लिया था और गुरू के दिए सम्मान को अपनी बुद्धि और बाहुबल की विशेषता के अर्थों में समझने लग पड़े थे, घबरा गये। पहाड़ियों का यह अचानक का धावा बहुत ज़ोर का था। अब सोचने लगे कि क्या करें। गुरू का हुक्म सोचा कि आता होगा, परन्तु ख़बर आई कि तुम्हारी अवज्ञा के कारण गुरू जी तुम्हारी अगुआई छोड़कर चले गये हैं। तब और घबराये। चतुर योद्धे पैर संभालते थे, चुनौती देते थे, डटते और डटाते थे, परन्तु हर क्षण पैर पीछे पड़ रहा था। इस तरह सिंहों की पराजय होती देखकर कुछ सिंह जल्दी से आपस में राय करके सतगुरू जी के पीछे सरपट घोड़े दौड़ाकर जा पहुँचे और दूर से ही लगे आवाज़ें देने-सच्चे पातशाह! ठहर जाओ, दासों की विनती

सुन लो, मेहर करो। परन्तु शिक्षादाता, सच्चे रहबर, नाक की सीध, उचित रास्ते पर चलाने के जिम्मेदार अपने रास्ते चलते गये। तब नौरंग सिंह नाम के एक शूरवीर ने घोड़ा सरपट दौड़ा गुरू जी से आगे बढ़कर फिर फुर्ती के साथ घोड़ा रोककर नीचे उतरकर लकीर खींच दी और हाथ जोड़कर कहा 'हे दल विदार नीले! तुझे गुरू की आन है, अब और कदम आगे की ओर न उठाना।' गुरू जी के नीचे नीले रंग का घोड़ा था, जिसका नाम साहिब गुरू महाराज ने दलविदार रखा हुआ था। सिंह इसको नीला कहा करते थे। यह घोड़ा बहुत तेज, अच्छे डील-डौल वाला और अत्यन्त फुर्तीला था। सिंह की आन डालने पर घोड़ा अटक गया। लिखा है कि गुरू जी बहुत एडियाँ और कमचियाँ मारते रहे, परन्तु 'आगे लकीर करी थी सो न लंघता हुआ*। तब गुरू जी घोड़े से उतर पड़े और हँसकर घोड़े की तरफ देखा और मज़ाक से बोले 'दल विदार! तू तो कोई मसंद है जो पूजा देने वालों का लिहाज करता है।' सिंहों ने आगे होकर सारे दल की ओर से क्षमा माँगी और अपनी गलती स्वीकार की। साहिब लौट पड़े। सिंहों को कहा, 'जाओ, अब हुक्म है कि जहाँ जहाँ हो खड़े होकर डट जाओ। एक, या दो या दस खूब डटकर लड़ो। कट जाओ, पुर्ज़े पुर्ज़े हो जाओ, परन्तु धरती में गाड़े स्तम्भ की तरह स्थिर हो जाओ, इधर से देखो हम क्या करते हैं।' यह हुक्म पहुँचते ही खालसा जी फिर से जहाँ जहाँ थे डट गये। उधर सतगुरू ने अपने ठिकाने पहुँचकर सात तीर चलाये। एक-एक तीर बढ़े हुए शत्रुदल के जत्थेदारों को लगा। जब जत्थेदार के बाद जत्थेदार गिरा तो शुत्र दल बेदिल हो गया। खालसा जो भागा जा रहा था अब डट गया था, ऐसा डट गया कि मानो शत्रु किसी चट्टानी टीलों के साथ युद्ध कर रहा है। खालसे का डट जाना और उमग-उमग कर पड़ना इतने बल सहित था कि प्राण बचाकर लड़ने वाले नौकर सिपाही घबरा गये। तीरों की आवाज़ से, गोलियों की तड़ातड़ से, तलवार की चमक से कोलाहल मच गया। आखिर पहाड़ियों ने मात खायी और मैदान छोड़कर भाग चले। थोड़ी देर में मैदान खाली हो गया। पराजित सारे राजा दूर पीछे को निकल गये। जब भेदियों ने आकर ख़बर दी कि सभी राजा युद्ध का हौंसला छोड़कर घरों को वापिस जा रहे है और अपनी पराजय पर सिर धुनते जा रहे हैं, तब खालसा जी विजय का डंका बजाते हुए आनन्दपुर को वापिस आये।

सतगुरू ने आज जो शिक्षा–युद्ध विद्या की शिक्षा–खालसे को सिखायी, वह खालसे में इनके दो कौमी गुण बना गयी: एक तो इनमें जत्थेदार की आज्ञा मानने का गुण डाल गयी। साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के परलोक गयन के बाद खालसा ने गुरू तो श्री गुरू ग्रंथ साहिब और पंथ को माना है परन्तु जत्थेदार की आज्ञा को सदा शिरोमणि माना है। जत्थेदार स्थापित करना खालसा का काम रहा है, जत्थेदार खालसा की राय को सम्मानित करता रहा है, परन्तु खालसा जत्थेदार की आज्ञा को सदा मानता रहा है और यही भेदों में से एक बड़ा भेद था, जो इनको खूनी, कत्लेआमों और घल्लूघारों (भंयकर युद्धों) में से बचाकर कामयाबी के शिखर पर ले गया था। जो लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते

---

* सौ साखी

और समझते नहीं हैं, वही पंथ के संगठन को तोड़ने के अपराधी बनते हैं। दूसरा ढंग जो खालसा ने इस युद्ध में सीखा वह भी इनका एक कौमी गुण बन गया। मैदाने जंग में युद्ध करते ये किसी अपने अंदाज और ढंग तरीके द्वारा किसी समय भी मैदान छोड़ कर चल पड़ते हैं। जब दुश्मन दल समझता है कि ये हारकर भाग गये हैं तब वह टूटकर आ पड़ता है। आगे से ये किसी ठिकाने फिर डटकर खड़े हो जाते है और पंक्तियाँ तोड़कर बढ़े आ रहे शत्रु दल को फिर जीत लेते हैं। अहमद शाह अब्दाली इनके इस गुण (खूबी) को समझता था, इसलिए वह अपने जत्थेदारों को कहा करता था, देखना अपनी पंक्तियाँ मत तोड़ना, अगर सिक्ख हारकर भाग जायें तो हारे समझकर पीछे मत जाना, नहीं तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

यह बात सबसे पहले बलियाचंद के युद्ध* में अचानक फँस जाने के समय सिक्खों ने सीखी थी। आज सचमुच पराजय का सामना करने के बाद जो खालसा हुक्म अधीन वापिस डट गया, उसने यह कौमी आचरण बना लिया कि हार खाकर भी दिल नहीं छोड़ना, फिर डट जाना है और ऐसा डटना है कि छिनी वस्तु वापिस लौटा लेनी है और फिर से फ़तह प्राप्त कर लेनी है। चमकौर में चालीस मुक्तों के साथ बेहिसाब फौज़ों के घेरे में सारा दिन लड़कर गुरू जी ने मायूसी नहीं घिरने दी, न हार मानी, न शरण ली, आखिर तक युद्ध मचायी गये और अंतिम आदमी (जो आपके जाने के बाद रह गये थे) के जीवित रहने तक युद्ध जारी रहा था। यह आप की करनी क़ौम में एक गुण भर गयी कि मुसीबत आ पड़ने पर खालसा दल अंत तक डटा रहता है और अपनी इस अनूठी ताकत द्वारा जीत प्राप्त करता है। इसके नमूने साहिब श्री गुरू जी महाराज के समय मुक्तसर, आगे दो घल्लूघारे (भंयकर युद्ध), नौशहरे का युद्ध और इस समय सारा छोटा क़िला और रास्ते आदि के दुर्ग अब तक बता रहे हैं कि सिंहों का यह एक अजीब दृढ़ आचरण है जो शत्रु दल की बहुतायत और प्रगल्भता के सामने भी निडर दिलेर और तना रहता है। इसी तरह आज के युद्ध ने हार खाकर फिर डट जाना और जीत प्राप्त करनी तथा जत्थेदार का कहा कभी न मोड़ना और सुशिक्षा के नियम को नहीं तोड़ना ये दो गुण (आज के सतगुरू के व्यवहार ने) खालसा का कौमी आचरण बना दिये थे। इन सभी नियमों का प्रतिपालन जो दाता ने सिखाये, कौम की विजय में सहायक रहता है, इनकी उपेक्षा हार का समय लाती है। सुशिक्षित होकर शिक्षा अनुसार चलना जत्थेबंदी का अंग है। युद्ध विद्या की यह सुशिक्षा है कि जत्थेदार के हुक्म अनुसार चलना है। इस सुशिक्षा को विद्वान लोग अनुशासन भी कहते हैं और पश्चिमी लोग डिस्पिलन भी कहते हैं। इस नियम का प्रतिपालन केवल युद्ध विद्या में ही नहीं, बल्कि जत्थेबंदी के हर तरह के प्रबन्धों में ज़रूरी होता है। यह बात खालसा जी को सतगुरू जी ने आज इसके न प्रयोग करने का कड़वा फल उनके अनुभव में लाकर सिखा दी।

---

* देखें इसी पुस्तक का पूर्वार्द्ध प्रसंग ४३।

: २ :

हार खाकर पहाड़ी दल अपनी राजधानी को वापिस लौट गया। गुरू का दल यह जीत पाकर आनन्दपुर आ गया। सबसे पहले घायलों की खोज हुई, जिनको आनन्दपुर पहुँचाकर वैद्यों के हवाले किया गया। जिन्होंने शालपत्र आदि दवाइयों के साथ ज़ख्म बाँधे और हर तरह की दवा-दारू की। कुछ सिंह पीछे छोड़े गये जो मर चुके शहीदों की लाशों की चिताएँ जलाकर सम्मान के साथ संस्कार कर दें। आनन्दपुर में आकर बाकी स्वस्थ आई सेना ने अपने-अपने ठिकाने जा डेरे किये। गुरुद्वारे और घर-घर कोलाहल हुआ। कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं-

करयो कराह बहु वजी वधाई।
आये जीत शत्रु समुदायी।
दान ब्रिन्द रंकन को दीनो।
सुजस प्रचारन जहिं कहिं कीनो।
मंगल करे अनेक प्रकारा।
मंगल मूल गुरू दातारा।
बजहिं मृदंग रबाब घनेरे।
गावैं शबद सुखद गुर केरे। (सूरज प्रताप)

इस तरह आनंद मंगलाचार होकर रोज दीवान* सजते थे और संगत में नाम दान बँटता था। एक दिन दीवान सज रहा था, अपने और पराये अनेक बैठे थे कि बीर सिंह जसपाली, मदन सिंह रजपूत और श्याम सिंह आदि भी निकट आ बैठे, तब प्रश्न हुआ कि खालसा जो आपने बनाया है इसका भावार्थ क्या है? तब श्री सतगुरू जी बोले:- जो एक अकाल पुरुष का आश्रय ले ले तथा और सब कुछ छोड़ दे वही खालसा है।

श्याम सिंह– पातशाह! एक के आश्रय के साथ और अनेक कर्म जो शुभ हैं वो करने हैं खालसे ने कि नहीं, जैसे कि तीर्थों के स्नान, वहाँ जाकर दया, धर्म के काम करने, लोगों को दान देने। फिर कई लोग वहाँ जाकर तप करते हैं, कई योग मतानुसार धारणा, ध्यान, समाधियाँ साधना और कई हठ का संयम करते हैं, कई लोग जैनियों की तरह अनेक तरह के अपने ऊपर रोक लगाने वाले संयमों की साधना करते हैं। ऐसे-ऐसे कर्म खालसा ने नहीं करने अथवा करने हैं?

साहिब गुरू जी ने मुसकराकर कहा–शुभ कार्यों के लिए तो खालसा बनाया गया है, पुण्य कर्म करने, आचरण ऊँचा पवित्र रखना खालसा का पहला नियम है। फिर खालसा का विश्वास साँई, एक ईश्वर दातार पर लगवा दिया है, शुभ कर्म करो, साँई के प्यार में रहो, नाम हृदय में बसाओ। केवल अहम् से किये तीर्थों के स्नान मात्र द्वारा कल्याण की

---

* सभा।

आस लगाना आदि सारे कर्मों को फोकट जानो*।

मदन सिंह– जीव को दुख सुख आवश्यकताएँ पड़ती रहती हैं, क्लेश कष्ट आते हैं, घबरा कर पीरों, फकीरों, यंत्र मंत्र वालों, दर्शनों-मरे फकीरों की कब्रों–तथा योगियों सन्यासियों की समाधियों और मठों पर मनौतियाँ माँगने और पूर्ण होने पर शरीणियाँ+ बाँटने का वचन देते, मनोकामनाएँ पूर्ण होती है, आपके सिक्ख भी कभी कहीं इन बातों में चोरी छिपे जा लगते हों तो पता नहीं। भला अगर कुछ हो चाहे न, परन्तु आवश्यकताएँ पूरी हो जायें तो ऐसा करने का कोई डर तो नहीं, फिर खालसा को कैसी आज्ञा है?

सतगुरू सुनकर खूब हँसे और कहने लगे: भाई! हाथी के पैर में सारे पैर आ जाते हैं और खालसा के लिए हमने सारे गहने तोड़कर एक हँसुली बनवाकर इनके गले में डाल दी है। उस एक अकाल पुरुष का निशान देकर उस पर पूर्ण भरोसे और उसके साथ पूर्ण प्रेम की युक्ति-नाम-इनको सिखा दी है। खालसा इस विश्वास को धारण कर के न कब्रों, न समाधियों, न मठों को आशा पूरित करने वाला समझकर उनकी कमी (न्यूनता) निकालेगा, न रोज़े और व्रत आदि कठिन साध्य कर्मों में फँसेगा। इसका व्रत एक अकाल पुरुष पर भरोसा, इसकी अरदास, सुखों और इच्छापूर्ति की माँग सब वाहिगुरू से होगी। इसका तीर्थ@ वाहिगुरू जी का नाम होगा। इसका संयम आचरण की शुद्धता होगा, इसका तप कीर्तन होगा। इसकी दया जीव दया होगी।

बीर सिंह–यह निर्गुण परमात्मा से नेहु, प्यार, प्रेम, टेक, आसरा बहुत कठिन साध्य बात है, हम ज़रूरतमंद जीवों को कैसे प्राप्त होगी? उन कर्मों से यह खेल कठिन प्रतीत होती है।

श्री गुरू जी (सुन्दर सा सुगन्धित श्वास लेकर)–भाई इसका तरीका हमने सिखा दिया है, गुरू बाबा श्री गुरू नानक देव जी से पंथ का मूल यही चला आ रहा है–जप! खालसा वाहिगुरू को जागृत ज्योति समझेगा, उसको निशिवासर (रातदिन) जपेगा, ऐसा करने से खालसा के हृदय में उस जागृत ज्योति की 'है' का भाव बस जायेगा, खालसे का मन इस लगातारी 'है' के भाव में स्थित अपने मन में उस जागृत ज्योति के अतिरिक्त और कुछ नहीं लायेगा (यह परमेश्वर का जप सिमरन बन जायेगा और 'है' का लगातारी भाव होकर खालसा के विश्वास, भरोसे, प्रतीति को 'वाहिगुरू प्रेम' बना देगा। यह प्रेम के साथ निरन्तर मिलाप वाहिगुरू जी के साथ बन जायेगा। इस प्रकार इसके हृदय में पूर्ण पुरुष की पूर्ण ज्योति प्रकाशित हो जायेगी। ऐसे पुरुष को हमने खालसा कहा है। इस कसौटी पर लाकर आप परख लेना तब आपको पता लग जायेगा कि शुद्ध और खालिस खालसा यह

---

* सभ करम फोकट जान।। सभ धरम निहफल मान।।
बिन एक नाम अधार।। सभ करम भरम बिचार।। (अकाल उसतति)

\+ वह मिठाई जो मलौती के रूप में बाँटी जाये।

@ तीरथ नावण जाऊ तीरथु नामु है।। (धनासरी म॰ १)

है। जब इस एक टेक (आश्रय), एक आधार पर खालसा का मन टिक जायेगा तब फिर जो कुछ खालसा करेगा वो शुभ और सुखदायी होगा।

यह सतगुरू जी का निश्चित आदर्श सतगुरू जी ने हम तक पहुँचाने के लिए आप ऐसे वाणी के रूप में लिख दिया है–

जागत जोत जपै निस बासुर
एक बिना मन नैक न आनै॥
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत
गौर मड़ी मट भूल न मानै॥
तीरथ दान दया तप संजम
एक बिना नहि एक पछानै॥
पूरन जोत जगे घट मै
तब खालसा ताहि नखालस जानै॥४॥

फिर एक सिक्ख ने हाथ बाँधकर विनय की: पातशाह, जिसको आपने जागृत ज्योति कहा है, वह कौन है? क्योंकि कई मूर्तिपूजक अपनी मूर्ति को जागृत ज्योति और ज्योति वाली कह देते हैं। यह सुनकर श्री गुरू जी के नेत्र एक आश्चर्यमयी रंग से भर गए, ऊपर की ओर उठे, चारों ओर घूमे और फिर टिक गए और सुन्दर गले से आवाज़ आई-

सति सदैव सरूप सतिब्रत
आदि अनादि अगाधि अजैहै॥
दान दया दम संजम नेम
जतब्रत सील सु ब्रत अबै है॥
आदि अनील अनादि अनाहद
आपि अद्वैख अभेख अभै है॥
रूप अरूप अरेख जरारदन
दीन दयाल कृपाल भये है॥२॥

एक सिक्ख ने विनय की–दाता जी! ऐसा अरूप अरेख परमात्मा जीव के विचार ध्यान से परे है, वह अगम्य है, पहुँच से परे है, इसलिए परे परे का क्या सहारा? गुरू जी ने फ़रमाया 'वह अरूप और अरेख तुम्हारे हृदय में बैठा है, सभी में परिपूर्ण है।' यह कहकर आपके नेत्र सुन्दर सुन्दर स्थिर नेत्र मुंद गये, हाथ जुड़ गये और यह मीठी-मीठी ध्वनि हुई:–

आदि अद्वैख अभेख महां प्रभु
सत्त सरूप सो जोत प्रकासी॥
पूर रहियो सभ ही घट के पट
तत्त समाधि सुभाव प्रणासी॥
आदि जुगादि जुगादि तुही प्रभु
फैल रहियो सभ अंतर बासी॥

दीन दयाल कृपाल कृपा
कर आदि अजोनि अजै अबिनासी॥३॥

सारी संगत पर एकाग्रता और टिकाव का प्रभाव छा गया। कितनी देर आप चुप रहे फिर नेत्र–ईश्वरीय ज्ञान के ख़जाने नेत्र-पुस्तक की तरह खुल गये, जिनमें से तूँही, तूँही की लिखाई मानों बाहर को उमड़ रही थी। संगत (लोगों की सभा) पर 'ईश्वर है' की रंगत छा रही थी और टिकाव (स्थिरता) और चुप छा रही थी। कुछ देर बाद एक सिक्ख ने अरदास की–पातशाह आपके दर्शन, आप की समीपता में साँईं अरूप अरेख का अस्तित्व दिलों पर नक्श हो जाता है, यह हमेशा के लिए कैसे हो जाये। श्री गुरू जी कोमल ध्वनि में बोले: भाई साँईं है, दाता है, ईश्वर है, वाहिगुरू है, उसका यह 'है' स्वरूप घट-घट में है, परन्तु प्रत्येक घट इस बात को भूल रहा है। भूलना छोड़, भूलना छोड़, भूलना छोड़। याद में आ, सिमरन में आ, तुम्हारा वास हजूरी वास हो जायेगा, अगर अंत लेना है, थाह लेनी है, भेद निकालना है तो केवल चक्कर ही पल्ले पड़ेगा, आगे किसी ने अंत पाया नहीं, तुझे मिलेगा नहीं, परन्तु अगर उसके सिमरन में आ जाये, जब भूले, तब ही मन को सम्बोधित करे कि हे मूर्ख मन, क्यों जागृत ज्योति को भूल रहा है तब तू उसके अस्तित्व का साक्षी हो जाये। हाँ फिर तुझे अंतर्गत पहचान उस अनील अच्युत वाहिगुरू की पहचान हो जायेगी। ऐसा कहकर आप फिर गरजकर बोले:–

आदि अभेख अछेद सदा प्रभ बेद कतेबन भेद न पायो॥
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि सति सदैव सभै घटि छायो॥
सेस सुरेस गणेस महेसुर गाहि फिरै सति श्रुति न आयो॥
रे मन मूड अगूड़ इसो प्रभु तै किह काज कहो बिसरायो॥४॥
अचुत आदि अनील अनाहद सत्त सरूप सदैव बखाने।
आदि अजोनि अजाय जरा बिन परम पुनीत परंपर माने॥
सिंध सुंयभु प्रसिद्ध सभै जग एक ही ठौर अनेक बखाने॥
रे मन रंक कलंक बिना हरि तै किह कारन ते न पछाने॥५॥

यह उच्चारण करते हुए आपके नेत्र फिर अरदास में जुड़ गये और जो कुछ सन्मुख स्तुति का उच्चारण हुआ आप द्वारा रचित इस सवैये में है:–

अछर आदि अनील अनाहदि सत्ति सदैव तुही करतारा॥
जीव जिते जल मै थल मै सबक सद पेट को पोखणहारा॥
बेद पुरान कुरान दुहूँ मिल भांति अनेक बिचार बिचारा॥
और जहान निदान कछु नहि ए सुबहान तुही सिरदारा॥६॥

यह सन्मुख स्तुति उच्चारण करते हुए, नेत्र रस में मग्न, माथे पर ज्योति प्रकाशित रंग छाया हुआ, शरीर से आनंदमय अस्तिव का प्रभाव फव्वारे की तरह बरस रहा दिव्य मूर्ति साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी रूपवान बैठे अरूप को दिखा रहे थे, संगत दर्शन में मग्न रस प्राप्त कर रही थी। यह रसमयता छा जाये आज।

कलगियाँ वाले की साँईं रँग में रत निगाहें
पाँवटा साहिब बह रही यमुना के पानी पर।
नूरी नैनां तों तिलकीयाँ* नज़र किरनां, छालां मारके जमना ते आण पईआँ।
बूंद बूंद ने लिश्क थर्राट खाधी, लहिरां चमकीयां चुप्प हो कंब गयीआँ।
चकाचूँध होईआँ पाणी+ भरन आईआँ, हत्थों गागरां तिलक के हेठ ढईआं@।
पाणी पींवदे मिरग बझक्क# रह गये, अक्खाँ जोगियाँ ने झट खोल्ह लईआं।

सूचना:- बिलासपुरी राजा के ढंग कभी जंग कभी सुलह के उसकी आकांक्षा को सफलता नहीं दिला पाये, बहाने बनाकर फिर एक जंग पहाड़ियों ने और किया, हार खायी जो पीछे बता आये हैं, और फिर सबने औरंगज़ेब को लिख दिया कि आपकी अपनी फौज के बिना यहाँ कोई पेश नहीं जाती। सरहिन्द की फौज, दिल्ली से आई फौज, लाहौर की फौज, फौजदारों सहित राजाओं की फौज, और लोगों के समूह आनन्दपुर पर चढ़ आये। उधर गुरू जी को भी ख़बर पहुँची, सारे देश में से सिक्ख शूरवीर आने लगे, बड़े-बड़े सिक्ख चौधरियों ने सवार और सामान भेजे। पटियाला के बुज़ुर्गों को 'मेरा घर तेरा घर' का वर इन्हीं दिनों में गुरू की ओर से मिला था, जिन्होंने अपने बंदूकची तथा और सामान भेजे थे। दस बारह हज़ार या अधिक सेना आनन्दपुर इकट्ठी हो गयी। मोर्चे कायम करके सिक्ख बढ़े, जंग छिड़ा, बहुत बहादुरी करके सैदबेग ने राजा हरी चंद को मार दिया, परन्तु दूसरे दिन अमीर खाँ को ज़ख्मी करके सैदबेग खाँ आप भी शहीद हो गया। इसी तरह काफी समय तक युद्ध मचा रहा और सिक्खों का पलड़ा ऊपर की ओर रहता रहा और तुर्क दलों का भारी नुकसान होता रहा। तुर्क सेना में एक और शिरोमणि जत्थेदार सैद खाँ नाम का था$ जो पीर बुद्ध शाह की पत्नी का भाई था। इसको गुरू जी पर आश्चर्य हो रहा था कि साहिब कशफ होकर क्यों लड़ रहे हैं, दर्शन की लालसा रखता था, इसलिए छिड़े युद्ध में गुरू जी घोड़े को एड़ी लगा उसके पास जा खड़े हुए, वह घोड़े से उतरकर चरणों पर आ पड़ा। सतगुरू जी ने ऩाम दान, नाम रस बख़्श कर निहाल किया और वह वहीं से मैदान छोड़कर बंदगी करने के लिए पहाड़ों पर चला गया। जब सैद खाँ चला गया तो मुसलमान दाँत पीसकर गुरू जी पर जा पड़े, परन्तु वे वीरों के वीर दुश्मनों में से निहत्थे निकल गये और अपने दलों से जा मिले। इतने घोर संग्राम में सिक्खों की आत्म ज़िन्दगी के नमूने के लिए यह आगे वाला छोटा सा प्रसंग कुछ रोशनी डालता है:-

---

* फिसली।

\+ पानी।

@ गिरी।

\# भौंचक।

$ सैद खाँ के और हाल देखने के लिए देखें प्रसंग 'नसीरां' जो इसी पुस्तक में आगे आयेगा।

६९ भाई कन्हैया*

कलग़ीधर दे पास कोई आ
        पया शिकैत (शिकायत) लगावेः-
"मार मार के सिक्ख तुरक नूँ
        कारी फट जद लावे,
"भाई कन्हैया तदों तुरक नूँ
        पाणी आण पिलावे।
"अपणा हो के भाई कन्हैया
        देखो कहर कमावे।
"उस दा कम्म आपणे लश्कर
        सिक्खाँ नीर पिलाणा,
"नां के वैरी नूँ रण तत्ते,
        पुत्तां वांग खिडाणा?
"रण तत्ते दी नीति–'मारन'
        ज्यों क्यों दुश्मन कोहिये।
जो वैरी नूँ प्यार करावे,
        उस नूँ दुश्मन कहिये।"
सद्द कन्हैये गुरां पुच्छिया
        सारी गल्ल (बात) सुनायी।
सीस निवाया रंगरतड़े ने
        बिनती मुखों अलायी
"तैनूँ पया पिलावां पाणी
        सिर मेरे दे साँईं।
"तुरक अतुरक न दिसदा मैनूँ
        तूँ सारे दिस आईं।
"प्यारे दे इक प्यार पुरोता
        उस दी सेव करावां

---

* यह छोटी सी कविता 'तैनूं पया पिलावां पानी' के शीर्षक अधीन २२ पौष सं० गु० ना० सा० ४५३ (५ जनवरी १९२२) के गुरुपर्व के खालसा समाचार में प्रकाशित हुई थी।

"उस नूँ देखां, उस नूँ सेवां,
पाणी उसनूँ पिलावां।"
हस्से ते गल लाया प्यारा
डब्बी हत्थ फड़ाई:-
"पाणी नाल मलहम बी रक्खीं
लोड़ पई ते लाईं।"

सूचना:- यह युद्ध बहुत लम्बा और भयानक था। महीनों तक चलता रहा। इस युद्ध में बाईधार राजाओं की सेना, सरहिंद के सूबे की सेना नवाब सहित, आनन्दपुर पर टूट पड़ी। लाहौर का फौज़दार भी साथ आ मिला था और दिल्ली से भी सहायता आ गई थी। इतने भारी घमासान के मुकाबले पर आप स्थिर रहकर जुटे रहे। चार पाँच क़िले सतगुरू ने बनाये हुए थे, तोपें भी ढालीं थी तथा और सामान भी तैयार किया हुआ था, फौज भी दस बारह हज़ार के करीब तैयार थी। घोर संग्राम होते रहे, परन्तु तुर्क कामयाब नहीं हुए। आखिर में उन्होंने यह विचार किया कि हमारे धावा करने पर सिंहों के मुकाबले हमारा बहुत नुकसान हो रहा है, इनके साथ युद्ध करने की योजना को बदलो और घेरा डालकर दूर-दूर डेरे डाल लो: आ पड़ें तो लड़ो, नहीं तो समय निकलने दो, जब रसद-पानी ख़त्म होगा तो अपने आप हार मानेंगे। इस तरह शुरू जंग से लेकर सात आठ महीने निकल गये, अंदर घास, चारा, रसद आदि समाप्त हो गये। फिर भी सिंहों के दस्ते अचानक किसी ओर से धावा बोलते और रसद ले जाते। परन्तु आख़िर कब तक? भूख ओर फाकों (आहार बिना रहना) के दिन आ गये, फिर भी सिंह हारे नहीं और न ही अधीनता स्वीकार की। लड़ाकू भुजंगी* तो दुख झेल रहे थे, परन्तु शहरवासी भूख के दुख आगे हार रहे थे, बाहर सूबों और राजाओं का भी बुरा हाल था। इतने लश्कर को लेकर बैठे रहना लाखों का ख़र्चा माँगता है। फिर शर्म कि इतने बड़े-बड़े सूबे और फौजदार इकट्ठे हो रहे हें और कई राजा ज़ोर लगा रहे हैं, एक फ़कीर पर फ़तह पाने में कामयाब नहीं हो रहे, फिर इतनी फौज जहाँ घेरा डालकर बैठ जाये और अरोग्यता के नियमों का पूरा पता न हो वहाँ बीमारियों का फूट पड़ना मामूली बात है। सबसे बड़ी बात फौजी सिपाहियों में बेदिली होती है, जो बरसात, बीमारी और नाकामयाबी के कारण दिन-ब-दिन बढ़ रही थी। इन तथा अन्य कई कारणों के कारण घेरा डालने वाले भी युद्ध की समाप्ति चाहते थे। राजा लोग सबसे अधिक तंग थे, उनका देश होने के कारण सरहिन्द, लाहौर और दिल्ली से सेनापति घास-चारा, दाने, रसदें, दूध, घी, प्रत्येक वस्तु के लिए ज़ोर डालते, प्रजा से कभी मूल्य देकर और कभी जबर्दस्ती छीन लेते थे। दूर-दूर तक देश वीरान हो रहा था और वीरानी बढ़ती जा रही थी, खज़ाने खाली हो रहे थे और आगे से कर वसूलने के स्थान पर खर्चे अधिक हो

---

* यह शब्द सबसे पहले साहिबज़ादों के लिए प्रयोग में लाया गया, बाद में सिंहों के पुत्रों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। खंडा अमृतधारी सिंह का बेटा।

रहे थे। बिलासपुर का राजा ज़ख्मी हो गया था और एक दो अन्य राजा भी इसी हाल में थे, शाही सेना के भी कई सरदार ज़ख्मी हो चुके और मरे थे, औरंगज़ेब दक्षिण में चौबीस पच्चीस वर्षों से लड़ता हुआ अब टूट रहा था, फौजें थक टूट चुकी थी और ख़ज़ाने उस लम्बे युद्ध के खाली हो चुके थे। यह भी चाहता था कि यह उत्तरी हिन्द का युद्ध भी किसी तरह खत्म हो जाये। इसी समय के लगभग मराठों से उकताये और थके औरंगज़ेब ने सतारा से अहमद नगर की ओर लगाम घुमा ली। सुलह के लिए बाहर वाले बहुत उतावले थे, उनकी ओर से ही बातचीत चली और केवल यह शर्त माँगी गई कि आप अगर आनन्दपुर छोड़कर आप ही किसी और इलाके में चले जाओ तो हम घेरा उठा लेंगे और आपको कुछ नहीं कहेंगे, जहाँ आपका मन करे वहीं टिक जाना।

राजे नवाब और फौजदार सोचते थे कि अगर ये आनन्दपुर से जाना मान लें तो युद्ध खत्म हो। और बाहर कहने लायक हो जायेंगे कि हमने आनन्दपुर खाली करवा लिया है, जीत हमारी हुई है। दूसरे उनकी नीति किन्हीं पक्के चारित्रिक नियमों से बंधी हुई नही थी। जब क़िले से बाहर निकले तब अगर टिड्डी दल सेना उस थोड़ी सेना को घेर ले, जो जी के साथ थी, तो वे समाप्ति ही कर सकते थे। गुरू जी इन चालों को समझते थे, वे इसलिए भूख के दुख झेलकर भी इस यत्न में थे कि इनकी पापनीति के शिकार नहीं बनना, परन्तु शहरवासी सुलह के लिए तंग कर रहे थे। उधर अपने लश्कर में भी सुलह के लिए ज़ोर पड़ने लग गया था। आख़िर गुरू जी ने एक दिन अपने जवानों और शहरवासियों को नमूना दिखाने के लिए तुर्कों को यह कहा कि पहले हमारे सामान को निकल जाने दो, सुलह की बातचीत पक्की करने पर विचार करेंगे, परन्तु जब एक रात खच्चरों और गधों पर कुछ लाद कर भेजा तो थोड़ी दूर निकल जाने पर ही सारे वचन-वायदे तोड़कर तुर्क आ पड़े और सब कुछ लूट लिया। दिन चढ़ने पर लगे राजाओं और जिम्मेदारों के आदमी स्पष्टीकरण देने कि सिपाहियों से गलती हो गयी, अब ऐसा नहीं होगा, परन्तु गुरू जी ने विश्वास नहीं किया। बाहर वालों ने अब यह सोचा कि अगर बादशाह की ओर से फ़रमान शाही इस वचन-इकरार का आ जाये तो गुरू जी शायद विश्वास कर लेंगे, आख़िर वह भी मँगवाया गया। गुरू जी अभी भी विश्वास नहीं कर रहे थे और अपने साथियों को कहते थे कि थोड़े दिन और धीरज रखो, परन्तु अब धीरज हो नहीं सकता था। एक हिस्सा सेना का तो अन्त तक गुरू जी के साथ निभने को वचनबद्ध था, परन्तु एक हिस्सा सेना का भी सुलह पर ज़ोर दे रहा था। शाही फ़रमान बहुत तसल्ली वाला था, इसलिए सुलह के इच्छुक खालसा, माता जी तथा औरों ने बहुत ज़ोर डाला। दक्षिण से जो काज़ी बादशाही फ़रमान लेकर आया, वह आप गुरू जी को मिला और उसने आप भी कसमें खाकर, कुरान की ज़ामिन देकर तसल्ली करवाने का यत्न किया कि आप जिधर जी चाहे सुख के साथ चले जाओ, आपको कोई नहीं छेड़ेगा, और जहाँ जी चाहे रहो कोई सूबा और सिपाही आपकी हवा की ओर नही देखेगा। उधर राजाओं के दूत ने आटे की गाय बनाकर वहाँ ला रखी और बहुत सौगन्धें खाईं। इस तरह के पूरी तरह के और पक्की तरह के इकरारों के

बाद सुलहनामा लिखा गया और बादशाही सौगन्धों वाला यह वादा-पत्र गुरू जी ने सँभाल लिया।*

अब ऋतु अत्यधिक सर्दी की थी, पौष का पहला सप्ताह बीत चुका था। पाला इस इलाके में ज़ोरों पर था कि एक रात गुरू जी सेना सहित क़िले से निकल चले। आप कुछ दूर निकल गये थे कि उतावली बादशाही सेना ने आनन्दपुर पर कब्ज़ा करने के लिए जा गर्जना-तर्जना की। इसी हंगामें में कुछ सेना गुरू जी के पीछे भी भेजी गयी, जिसने जा धावा किया। सरसा नदी चढ़ रही थी, गुरू साहिब तो निकल गये थे, परन्तु गमन कर रहे अन्य लोग अभी रुके हुए थे। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी वहीर+ के पीछे सेना लेकर आ रहे थे। अब वहीर में हफड़ा-दफड़ी पड़ गयी। कई सिंह तो सरसा नदी पार करने की उतावली और जल्दी में नदी, जो चढ़ रही थी, की भेंट हुए, कुछ पार हो गये, कुछ और तरफ निकल गये। छोटे साहिबज़ादे और माता जी कठिनाई से पार हुए। गुरू साहिब को पता लगा तो आपने उदय सिंह राठ को भेजा जिसने वापिस आकर अजीत सिंह आदि को गुरू साहिब की ओर भेजा और आप वादा तोड़ने वाले तुर्कों के साथ टक्कर ले ली और वहीं वादाखिलाफी करने वालों को रोकता हुआ साथियों सहित शहीद हो गया। गुरू साहिब और बड़े साहिबज़ादे कुछ सिंहों सहित रोपड़ के समीप जा पहुँचे। यहाँ से रोपड़ के पठानों ने आ हमला किया। जिससे लड़ते मरते-मारते हफड़ा-दफड़ी बढ़ गयी। यहाँ से बड़े माता जी और छोटे साहिबज़ादे एक घर के नौकर गंगू के साथ किसी और तरफ निकल गये और माता सुन्दरी जी रोपड़ एक सिंह के घर छिपे और बाद में दिल्ली पहुँचे@।

गुरू जी इन सारे कष्टों में से गुज़रते हुए, लगभग चालीस सिंहों सहित बहुत कठिनाई के साथ चमकौर पहुँचे। यहाँ एक छोटी सी गढी (छोटा क़िला) में जा डेरा लगाया और आ रही बादशाही सेना के साथ मुकाबले का प्रबन्ध किया:-

---

* ज़फरनामे में ज़िक्र आयेगा कि बादशाही इकरारनामा गुरू जी के पास 'मालवा' में भी था।

\+ १. गमन करता हुआ जन समुदाय।

२. विचरने वाली टोली जो एक स्थान पर न बसे।

@ तवारीख़ खालसा

७० चमकौर युद्ध*

१. तैयारी

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी घोड़े पर सवार होकर जा रहे थे, आगे से एक आदमी मिला जिसने सिर झुकाकर खड़े होने का इशारा किया, साहिब जी खड़े हो गये, आगे होकर उसने फिर सिर झुकाया। हाथ जोड़कर प्रार्थना की, आप दीन-दुनिया के मालिक हो, मैं नौकर सरकारी संदेश लेकर जा रहा हूँ, जो संदेशा मैंने तुर्क दल को जाकर देना है वह यह है कि ख्वाजा मरदूद ने जो दिल्ली से और मदद माँग भेजी थी, वह फौज अब आ रही है। आपकी सेवा में विनती है कि वह दल इस दल के साथ आ मिलेगा। उसके पास बेहिसाब सामान हैं, आप अपना प्रबन्ध जल्दी कर लीजिए, यह कहकर और सिर झुकाकर वह विदा हुआ। गुरू जी ने सोचा कि पीछे तो बेहद सेना तुर्कों और पहाड़ियों की छेड़खानी करते हुए हमारा पीछा करती आ रही है और इधर आगे से और टिड्डी दल फौजों और गमन करते जन समुदाय का आ रहा है। इतनी दो तरफ से आई सेना के हाथों कट मरना भी शुभ नहीं, न ही युद्ध के दाँव-पेंच के अनुकूल है कि खाली मैदान में चालीस आदमियों के साथ लाखों के घेरे में आ जायें। इसलिए आप ने अपना विचार बनाया और लगाम दूसरी ओर मोड़ ली। चलते-चलते चमकौर नाम के गाँव के पास आये। यहाँ ऊँचा स्थान था और एक कच्चा छोटा सा क़िला (गढ़ी) भी था जो अब हवेली की शक्ल में था। इसके दो भाई मालिक थे– एक जबर्दस्त था और एक कमज़ोर जिसको शक्तिशाली भाई तंग किया करता था। गाँव के समीप पहुँचकर आपने एक बाग़ में डेरा डाला। दो सिंह गढ़ी के मालिकों को बुलाने गये और इधर पीछे पाँच सिंह रोपड़ से घोड़े सरपट दौड़ाते हुए आ पहुँचे। इन सिंहों ने आकर बताया कि पातशाह! आपजी को पता ही है गुरू मारे सरसे नाले ने श्री जी के दरिया पार होने को कितना रोका था? वहाँ से साहिब अजीत सिंह किस तरह तुर्कों से लड़ते भिड़ते रोकते हुए आपके पास तक पहुँचे थे। बाद में जितने सिंह आपसे जिद्द करके आज्ञा लेकर साहिबज़ादे की सहायता करने के लिए वहाँ रुके थे वे सभी तुर्कों के साथ अनेक दाँव पेचों और शूरवीरता के साथ लड़ते रहे और बहुत देर तक तुर्क दल को व्यस्त रखा, अन्त में सभी शहीद हो गए, साहिबज़ादे को वे आपकी ओर भेज ही चुके थे। हमें भी ज़ख्म लगे हैं परन्तु हमें जत्थेदार ने कुछ पहले आपकी ओर दौड़ा दिया था कि सारा हाल आप तक पहुँच जाये कि अब पीछे शत्रु के दल आगे रुकावट कोई नहीं है और वह बहुत स्वतन्त्रता के साथ मनमानी करते हुए आ रहा है आप अब इसके अनुसार अपना अगला मन्तव्य निश्चित कर लो। माता जी अभी रोपड़ उस सिक्ख के घर छिप रहे हैं जिस दिल्ली के सिक्ख को आपने आज्ञा की थी कि रोपड़ अपने सम्बन्धियों के घर जा छुपाये। और उनके सही-सलामत दिल्ली पहुँचने का प्रबन्ध

* यह प्रसंग १८ पौष सं० गु० ना० ४५६ सं० १९८१ वि० (१ जनवरी १९२५ ई०) के गुरुपर्व सप्तमी पर ट्रैक्ट की शक्ल में प्रकाशित हुआ था।

हो गया है। बड़े माता जी और छोटे साहिबज़ादे सुना है गंगू अपने साथ ले गया है। हमें एक दर्दमंद जाता हुआ मिला है, जिसने बताया है कि बादशाही सहायता की टिड्डी दल सेना आगे से और आ रही है, इसलिए पातशाह! सच्चे पातशाह! जिस प्रकार श्री जी की मर्जी हो। तुर्कों और पहाड़ियों ने झूठी सौगन्धें खाईं और अब सौगन्धें तोड़कर दग़ा करते हुए हानि करने आ रहे हैं। पापियों को पाप नाश करेगा, परन्तु इस अँधेरी के आगे कुछ कर लें, समय कम है।

श्री गुरू जी–आठ दिन और–आठ दिन–कहा था–कष्ट झेलें, आठ दिन की योजना थी, जिसने किसी नतीज़े पर पहुँचना था, परन्तु सिक्खों और सेना ने ना मानी। कहा था: 'कसमों पर विश्वास न करो' परन्तु नहीं मानी किसी ने। भला, जो बीत गयी सो बीत गयी। अब बस यहाँ ही मैदान श्रृंगार देना है, यही एक रस्ता है।

इतने में गाँव गये सिक्ख आ गये, गढ़ी के दोनों मालिकों को साथ ले आये। जबर्दस्त ने कहा–"मैंने नहीं बीच में प्रविष्ट होने देना।" कमज़ोर ने कहा– "मेरी ओर से पूरी छूट है, रुपये की आवश्यकता है, दो और संभाल लो।" बात क्या इस मालिक ने गढ़ी के दरवाजे खोल दिए, माया (दौलत) दी गई। जब गुरू जी सिखों सहित अन्दर प्रविष्ट हुये तो दूसरा मालिक ख़ुद ही गढ़ी खाली करके छोड़कर चला गया। सिक्खों ने अब यहाँ मोर्चाबंदी कर ली। आठ-आठ सिक्ख एक-एक परकोटे पर नियुक्त किये गये, जो शत्रु को तीरों गोलियों की बौछार द्वारा नज़दीक न आने दें। भाई दया सिंह, भाई संत सिंह, साहिबज़ादे और आप ऊपर वाली अटारी में गये, कोठा सिंह और मदन सिंह दरवाजे की रक्षा के लिए तुफंग आदि देकर स्थापित किये गये, इस प्रकार चालीस सिंह जो गढ़ी में आये थे, अपनी-अपनी जगह लग गये। जितना दारू सिक्का, तीर तुफंग और शस्त्र थे वे भी बाँटे गये। इस समय भी उस चढ़ती कला वाले पातशाह की सुरति डगमगायी नहीं, उस रंग में शेरदिल थे। प्यारों को कहने लगे: 'देखो। अगर सिक्ख आनन्दपुर हुक्म मानते तो यह समय न आता, यही कारण है कि जल्दबाज़ लोग अधिक मारे गये, किसी को बचाव का रास्ता भी नहीं मिला। कुछ निकले होंगे। तुर्क और हिन्दू कसमें हार गये। मेरा पंथ कभी धर्महीनों की सौगन्धों पर न पसीजे। हिन्दू निराश्रय हो चुके हैं, गुलामी में सदियाँ बिता चुके हैं, तुर्क राजमद में आकर अपना आप भूल गये हैं, ज़ुल्म करते और धन से मौजें मनाते हैं और सदाचार से गिर रहे हैं। पातशाह ने कत्ल, तअस्सुब और ज़ुल्म से प्यार डाला हुआ है, इनका धर्म गिर चुका है, ये सब अब तबाह हो जायेंगे, थोड़े समय की बात है।

हाँ, आप अब एक मुट्ठी भर रह गये हो, कोई रास्ता फ़तह का या शत्रु से मार न खाने का प्रत्यक्ष है नहीं, कोई रास्ता निकल जाने का नहीं। परन्तु आप जीवित व्यक्ति हो, वीरों की तरह लड़ना है, टिड्डी दल सेना जो दो दिशाओं से आ रही है, उसको आज लोहा करके बताना है। आज बताना है कि धर्म के साथ जी उठे व्यक्ति क्या होते हैं? हाँ जीवित व्यक्ति ईश्वर को याद करते हैं, सत्य पर शहीद होते हैं, जान पर हँस-हँस कर खेलते हैं, मरते हैं, परन्तु मर कर जीते हैं। यह दिखाई दे रहा है कि हम मौत के मुँह में हैं, परन्तु हमने आज मौत के दाँत तोड़कर दिखाने हैं। हमने मरना नहीं, हमने जीना है। हम चाहे सभी कट मर जायें, परन्तु हम जियेंगे। हमें चाहे मूर्ख कहेंगे कि तुर्कों ने मार लिया, परन्तु हम

हारे हुए नहीं होंगे। जो हमारी प्रत्यक्ष हार दिखाई देगी, यह हमारी जीत होगी, फ़तह होगी। हमने हार नहीं माननी, मिन्नत नहीं करनी, शरण नहीं पड़ना। हम सच्चे हैं, सत्य पर खड़े हैं, हम स्वतंत्रता के पक्ष में हैं हमने अंत तक अपने सत्य पर लड़ना है। धर्म को, सत्य को, वास्तव को नियम को हमने नहीं छोड़ना। हमने सत्य और शहादत की कीर्ति संसार में छोड़नी है। हम खालसा हैं, हमने खालसा रहना है, मौत खालसा को नहीं मार सकती। अंदेशा न करो कि हमारे आज मरने से खालसा कट मरेगा। खालसा अमर है, यह आदर्श जियेगा। इसलिए आज कायरों को, मूर्खों को, दानियों को, सज्जनों को, शत्रुओं को बता दो कि खालसा क्या होता है? आप सब सिक्ख हो, आप सब पुत्र हो, आप सब खालसा हो, आज आपने खालसा को रक्त सींचकर बचा जाना है। अगर आप बच निकले तो राज्य आपका है, अगर शहीद हो गये तो आगे ईश्वरीय राज्य आपका है।

इस तरह तैयारी करते-करते रात आ गयी, कुछ सिंह बारी-बारी से पहरा देते रहे और गुरू जी और साहिबज़ादे और बारी दे चुके सिंह बारी-बारी से कुछ थोड़ा-थोड़ा सोते रहे, अमृत समय (प्रातःकाल) आसा की वार का पाठ हो गया।

जो सहायता वाली सेना दिल्ली से आ रही थी उनको पता लग चुका था कि गुरू जी चमकौर में हैं। उनके साथ मिल गये गुर्जर और रंघड़ और ऊपर से आ मिली वह सेना जो आनन्दपुर से गुरू जी की ढूँढ करती आ रही थी। इस प्रकार इस मिश्रित घमासान ने अब चमकौर आ डेरे डाले और घेरा करने तथा धावा बोलकर गढ़ी को ले लेने के मनसूबे सोचने लगे।

२. (प्यारे न्योछावर)

दिन चढ़ने पर जब गढ़ी चमकौर के चारों ओर धर्म नियम, सौगन्धें धर्म की और कसमें कुरान की हारकर टिड्डी दल सेना, पहाड़ियों, लाहौर के फौज़दार और सरहिन्द के सूबे और बेहिसाब पठान और तुर्क सरदार मलेरकोटलियों जैसे धावा बोलने की तैयारियाँ कर रहे थे, उस समय गढ़ी के अन्दर कल की योजना मुताबिक ख़बरदारी हो रही थी। मान सिंह और आलम सिंह गढ़ी में घूमने तो लगे हुऐ थे। ऊपर अटारी और नीचे दरवाज़े पर, परकोटों पर जहाँ-जहाँ सिंह थे ये बारी-बारी से पहुँचते और हाल-चाल देखते, जो आवश्यकता होती पहुँचाते थे। तुर्क सेना को गाँवों के लोग मिल-मिलकर उत्साह और पते देते। मूर्ख नहीं समझते थे कि ऐसा करने में वे अपनी गुलामी की ज़ंजीर कस रहे थे। अब तुर्क, एक दस्ता धावे के लिए बनाकर गढ़ी छीन लेने के लिए आये, परन्तु आगे से गोलियों द्वारा ऐसा स्वागत हो कि दड़ दड़ करते गिर पड़े। इस तरह जितनी बार जो दस्ते दरवाज़े की ओर आये, तीरों और बारूद की आग और गोलियों का शिकार हुए। कुछ मरे, कुछ ज़ख्मी हुए और कुछ घबराकर भाग चले। फिर दुश्मन दल की ओर से चारों ओर से घरों की ओट से आकर गढ़ी पर चढ़ने का यत्न हुआ। इस समय ऊपर से चारों परकोटों से सिंहों ने तीरों के साथ सबको बींध दिया। इस तरह जब घोर मार-काट होकर नुकसान हुआ तो बिलासपुरी तथा और राजा, सेनापति ख्वाजा मरदूद और सूबे सलाहें करने लगे। पहले तो उनका ख्याल था कि गढ़ी के अन्दर कोई दस-बीस योद्धे हैं, परन्तु अब लोगों से फिर पूछताछ हुई तो किसी ने बताया कि पचास-साठ, ज्यादा से ज्यादा सत्तर सिंह होंगे, परन्तु

कई लोगों ने यह बताया कि रात को और नई सेना आई है जो आधी रात के बाद शबद गाती क़िले में गयी है, वह ढ़ेर थी, पता नहीं कितनी थी।* खिज़रखाँ ने कहा! भई सरदारो यह जो हमारा नुकसान हो रहा है और गुरू हमारे हाथ बेल को लगे फल की तरह आसानी से नहीं आ रहा, यह आश्चर्य की बात नहीं, वह योद्धा है और साहिबे-कमाल कहा जाता है। आनन्दपुर में सात-आठ महीने हमारा घेरा रहा है, उसकी आन-बान कम नहीं हुई, उसने मात कभी नहीं खाई, हार नहीं मानी, अधीनता नहीं स्वीकार की, फिर निकला है तो हमारी कसमों और सौगन्धों पर भरोसा करके। हमने इस नीति के आधार पर कि शत्रु को धोखे द्वारा भी मार लेना चाहिए, अपना वचन तोड़ा है। यहाँ भी हमने ही आकर धावा बोला है, परन्तु वह देखो भयभीत नहीं हो रहा, ऊपर अटारी से देख रहा होगा कि टिड्डी दल सेना घेरा डालकर खड़ी है, कोसों तक घेरा पड़ा हुआ है, परन्तु देखो मर्दों का मर्द है, हार नहीं मानता, उसी तरह डटा खड़ा है। फिर उसकी धार्मिक आन, उसकी वीरता वाली लड़ाई, शूरवीरता का नियम देखो, कोई बात दाँव फरेब की नहीं करता। इस समय अगर अटारी से तीर मारे तो दूर-दूर तक हमको बींध दे परन्तु वह देखो उसी दस्ते पर अटारी से तीर आता है, जिस दस्ते की ओर से गढ़ी पर हल्ला होता है, यह वास्तविक वीरता का युद्ध है। यह है शौर्य। बाकी रही हार कि जीत, जीत हमारी है, हम बेहिसाब हैं, वे कम हैं, गढ़ी छोटी है, कितने दिन निकालेगा? रसद अंदर कम है, युद्ध का सामान भी थोड़ा है, बहुत हुआ तो चार दिन, इसलिए उद्विग्न न हो, कसम तो हारी है, परन्तु युद्ध तो करो, हाँ करो परन्तु किसी ढंग से। ज़रा गुरू को भी अब खेल खेल लेने दो। ज़िन्दगी के दिन ख़त्म हो चुके हैं, एक या दो, उसकी मर्दानगी के अखाड़े में बहादुर सिद्ध हो। आख़िर जिनको इस समय निश्चित मौत सामने दिखाई दे रही है, वे तुम्हारा लिहाज़ करके कैसे लड़ेंगे? परन्तु फिर शाबाश है उस आन के कि आक्रमण करने वाले दस्ते के अलावा किसी की ओर उनका तीर, गोली बारूद का धमाका नहीं पड़ता, आप भी कुछ करके दिखाओ, आख़िरकार शूरवीर हो।

इस प्रकार के विचारोपरान्त एक भारी दस्ता आगे हुआ। इस समय गुरू जी अटारी की खिड़की के पीछे बैठे थे, खिड़की में से उनके सिर पर सुशोभित आभूषण कलग़ी की झलक किसी-किसी समय बाहर झलकती थी, वहाँ से ताक-ताक कर मारे तीर शत्रुओं के सीनों को बींध रहे थे। तीर इस शक्ति से जाते थे कि एक-एक कई-कई का शरीर बींध जाता। हा हू का शोर! हमलों पर हमले के घमासान, ढोल-ढमाके, युद्ध के बाजे, एक अनर्थ मच गया:-

हला हली भटजुट्टे, भड़थू (कोलाहल) मच्चिआ।
चढ़े कंध पुर सुट्टे, मुंडीआ हेठवे।
केतिक पच पच हुट्ट घायल गिर परे,
मरिगे प्राण निखुट्टे टट्टरि फुट्टके॥२८॥
नेजे बंबलिआले तुट्टन तोड़ते।

---

* यह उन्होंने पाठ और कीर्तन से अनुमान लगाया था।

रुंड मुंड बड ढाले लोथैं (लाशें) गुत्थीआं।
पहुँचे बीर मुछाले नंगे खड़ग लै।
गहिके हत्थीं ढाले सनमुख आंवदे॥२९॥
भिड़े भेड़ भट (योद्धा) भारे भभकैं भीखणा।
भक भक घाव भकारे श्रोणत* निकसके।
रहिगे नैन उघारे मानो देखदे।
लोहू बहे पनारे, छित+ रंगीन करि॥३०॥
सिर तलवाये डिग्गे ज़िऊं नटबाजियाँ।
बसतर लोहू भिगे खेलत फाग जिऊं।
धाय कंध सो लग्गे घावन ते डरे।
कितिक मार पिखि भग्ग भीरू भै करे॥३१॥

(गु० प्र० सूरज रुत ६-३६)

इस प्रकार जब जब हल्ला करने आये तभी सिंहों की ओर से बारूद के चलाये पलीते@ द्वारा, बीच-बीच में चलाई गोली से, लगातार बरसते तीरों से, ऊपर से गुरू जी के चलाये तीखे तीरों से, जितनी बार शत्रु के हल्ले हुए-भारी नुकसान के साथ पीछे हटे। दरवाजे की ओर आये तो मार खाकर पीछे हटे, अंगर परकोटों की तरफ से आये तो तीरों का निशाना बनकर गिरे, अगर किसी और स्थान से बरसते तीरों में सीढ़ी लगाकर चढ़े तो भालों, खांडों और तलवारों आदि से घायल होकर नीचे गिरे और गिरते ही सिर फटकर मर गये।

अब शुत्र दल के चुनींदा शूरवीरों ने देखा कि दिन ढल गया है और नुकसान भारी हो गया है और अपनी सेना में बेदिली फैलने लगी है कि बड़े शूरवीर, सिपाहियों और छोटे नायकरों को भेज-भेजकर तमाशा देख रहे हैं। कुछ शर्म खाकर और कुछ नीति विचार कर अब ख्वाजा खिज़्रखां आया, गुलशेर खाँ, नाहर खाँ आदि बड़े-बड़े बहादुर सरदार सेना ले हल्ला करने के लिए आगे बढ़े, यह हल्ला बहुत जबर्दस्त था। श्री गुरू जी ने आप इसका थोड़ा-सा वर्णन फारसी में किया है, जिसका रूपान्तरण इस प्रकार है:-

बहुत शोर मचाते नीले वस्त्रों वाले शत्रु हमला करते हुए आये। शत्रु का प्रत्येक सिपाही जो अपने मोर्चों में से निकलकर हमारे ऊपर हमला करने आया वह रक्त में सनकर नीचे गिरा। तेरी (हे औरंगज़ेब) सेना में से जो आदमी अपने ठिकाने से उठकर हम पर हमलावर नहीं हुआ उसको हमने तीर नहीं मारा और बेइज्ज़ती नहीं की (भाव यह कि केवल हमला करने वाले दस्तों पर ही गुरू जी की ओर से तीर चला, यह महान वीरता की आन है)। जब नाहर खाँ युद्ध करने आया तो उसको हमने अपने तीर का स्वाद चखा

* रक्त।
+ धरती।
@ तोप और बंदूक को आग देने की डोरी।

दिया, बड़े खाँ जो उसके साथ बहुत कूदकर आये थे कि यह करेंगे वह करेंगे, मैदान छोड़कर कायर बन भाग गये। फिर एक और पठान तीर और गोलियाँ बरसाता तूफान की तरह चढ़ आया। उसने बहुत धावे किये, बहुत घाव खाये। जब वह मेरे दो सिक्खों को मारने लगा था, एकदम उसी समय स्वयं मारा गया (या दो पठान सरदार मारे गये)। फिर ख्वाजा मरदूद आया, परन्तु वह दीवार की ओट में छिप गया। अफसोस! अगर कभी सामने आ जाता तो लाचार एक तीर मैं उसको भी बख्श देता। बहुत युद्ध हुआ दोनों ओर बहुत मरे, मैदान लाल हो गया रक्त से। बहुत मर्दानगी दिखायी। चाहे कितनी बहादुरी दिखायी परन्तु चालीस भूखों की भारी बहादुरी क्या करे? जब उनपर दस लाख* आ पड़ें। फिर भी जब दिन का दीपक छिप गया और रात की रानी (चाँदनी) निकली, तब मेरे करतार ने मुझे रास्ता दे दिया और मैं सही सलामत निकल गया, मेरा बाल भी बाँका नहीं हुआ। (जफ़रनामा)

वास्तव में युद्ध का रूप अब ऊपर बतायी दशा के समय यह हो गया था कि अंदर तीर, बंदूक, गोली, सिक्का कम हो रहा था। दुश्मन भी सब ओर से आक्रमण करके प्रत्येक आक्रमण पर पराजय और कत्ल झेल चुका था, इसलिए एक बार में दरवाजा तोड़कर अन्दर घुसने का निश्चय करके नाहर खाँ, ख्वाजा खिज़्रखां और गैरत खाँ आदि शूरवीर हल्ला करके आये थे, जिनके धावे को गुरू जी ने तूफान का आगमन बताया है। इन्होंने गोलियों और तीरों की गढ़ी पर बारिश बरसायी, परन्तु ऊपर वह प्रभाव नहीं करते थे, क्योंकि सिंह गढ़ी पर बने मोर्चों में लड़ते और ओट में से निशाने लक्ष्य पर छोड़ते थे। गढ़ी बहुत ऊँचे ठिकाने पर बनी हुई थी। गुरू जी पर अटारी में निशाना नहीं लग पा रहा था और वे स्वयं तो शूरवीर शत्रु का निशाना बनने से चूक जायें और अपनी खिड़की में से अपना तीर चला देने में कभी नहीं चूकते थे। जब नाहर खाँ आगे बढ़ा तो आप के निशाना लगाकर छोड़े तीर ने उसको बींधकर पीछे फेंक दिया (यानि मार दिया)। इस समय कुछ सिंह दरवाज़े

---

* 'दहलक' से भाव बेशुमार है। इसी जफ़रनामे में दूसरे स्थान पर बेशुमार प्रयोग में लाया गया है– 'कि बर चिहल तन आयदश बेशुमार।' (अंक ४१)। परन्तु बेशुमारी का अंदाज़ा इससे कम नहीं रहता जब ख्याल करो कि आनन्दपुर को घेरा डालने वाली सरहिन्द और लाहौर के सूबों की फौज है। बाईधार राजाओं की फौज भी शमिल है। इनके अतिरिक्त राजाओं की ऐसी फौजें भी हैं जिनको छेड़ां (टोली) और वहीर (इकट्ठे होकर चलने वाले लोग, भीड़) कहते हैं। अब नीचे दिल्ली की ओर से और आई है जो इनके साथ यहाँ आकर मिल गयी है। सरकारी इलाके की टोलियाँ भी हैं और आम प्रजा उठ खड़ी हुई है कि गुरू के धन की लूट में हिस्सा लेंगे। आनन्दपुर सूना हो जाने के कारण भी लूट का निशाना लोगों को स्थान-स्थान से प्रेरित करके ला रहा था। प्रसिद्ध भाई हीरा सिंह जी रागी अपनी व्याख्या में बताया करते थे कि एक मुसलमान था जो चमकौर के युद्ध के लोगों में था, यह बताया करता था कि मैं प्रजा में शमिल था, परन्तु चमकौर से बारह-पंद्रह कोस की दूरी पर ही रहा। इतनी फौज और वहीरें थीं कि मुझ तक फैल रही थी और मैं इससे आगे नहीं बढ़ सका था। इस प्रकार इस तरह के ब्यौरों और विचार से 'दहलक' की समझ साफ आ सकती है।

के बाहर आकर लड़ रहे थे, कुछ ऊपर से तीर बरसा रहे थे और सबसे ऊपर से गुरू साहिब जी मार कर रहे थे। नाहर खाँ के मरने पर ग़ैरत खाँ आगे बढ़ा, बहुत हिम्मत और बहादुरी के साथ लड़ा, परन्तु अंत में मारा गया। ख्वाजा मरद्द इस समय एक घर की दीवार की ओट में होकर जान बचा गया, बाकी की आक्रमणकारी सेना सारी भाग गई, अब किसी बड़े सरदार को आगे बढ़ने का हौंसला न हो:-

केतिक सिंह लरे मर बाहर जाहिर जंग दिखाय उदारे।
केतिक अंतर बीर निरंतर जूझत हैं सर ब्रिंदन मारे।
छोरत गोरी लगै रिपु ओरी सरीरन फोर ज़िमी प़र डारे।
हेल को पावत आवत धावत प्राण गवावत पुंज जुझारे॥२१॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ रुत ६-३८)

इस तरह घोर संग्राम हो रहा था। इस समय तक आधे सिंह गुरू के शहीद हो चुके थे, आधे अंदर से युद्ध कर रहे थे। तुर्क सेना की ओर से चुप शांति नहीं हो रही थी, धावे पर धावा होता था परन्तु अंदर से जो बारिश होती थी वह भी भारी गिनती में सैनिकों को मौत के घाट उतार रही थी। गुरू के प्यारे महान योद्धे और राठ सिंह, जो इस समय तक घोर युद्ध करके शहीद हो चुके थे, आगे बतायी तरकीब (उपाय) में शहीद हुए थे–ये वे सिंह थे जो दरवाज़ा खोल बाहर हो, कमानें खींच, कृपाणें निकाल, भाले उठा हाथों हाथ शत्रुओं के साथ लड़ते, दरवाज़े तक पहुँचने से उनको रोकते शहीद हो जाते रहे। ऊपर से सतगुरू अपने प्यारे खालसा हो रहे खालसों की सत्य की यज्ञवेदी पर परिश्रम और अपना आप न्योछावर करना देख-देखकर आशीर्वाद देते और अपने तीरों की भरमार से शत्रुओं को उन तक पहुँचने से बींध-बींध गिरा-गिराकर रोकते। खज़ान सिंह, दान सिंह, ध्यान सिंह ये तीन बहादुर सबसे पहले बाहर निकलकर लड़े। इनके हाथों में भाले थे, इन्होंने हाथों-हाथ के युद्ध में वह वीरता दिखाई कि तुर्क दंग रह गये, कितनी देर लड़ते, अनेक वीरों को मारते तीनों शहीद हो गये। अब मुहकम सिंह अकेला मैदान में जा उतरा, चुनौती दी कि आओ अगर बहादुरी है तो एक-एक आओ, हाथ दिखाओ, हाथ देखो। चुनौती सुनकर एक मुग़ल आगे हुआ। कितनी देर की पटेबाज़ी (गतका फेरना) के बाद मुहकम सिंह की कृपाण (तलवार) ने उसको मार गिराया, फिर जो-जो वीर युद्ध करने के लिए आगे आया मुहकम सिंह ने युद्ध करके आख़िर दो टुकड़े करके परे फेंका। उसकी पटेबाज़ी की शत्रुओं ने भी प्रशंसा की। परन्तु फिर शत्रु गुस्सा खाकर कई इकट्ठे होकर आ चढ़े। मुहकम सिंह ने अब बरछी सँभाली, इस तरह रण में अकेला खड़ा होकर पिरो पिरोकर शत्रुओं को फेंकता जाये, जैसे भाले की बाज़ी खेली जाती है। बिजली की तरह दौड़-दौड़ और कूद-कूद कर पड़े। इतने आदमी उसने मार दिये कि 'सवा लाख संग एक लड़ाऊँ' वाला वाक्य पूर्ण करके दिखा दिया। जब उसकी यह बहादुरी और राठपन (राठ सिंहों की बहादुरी का भाव) मार काट करता गया तब ख्वाजा मरदूद को गुस्सा आया तब उसने कोई हुक्म दिया, एक निहत्थे लड़ते हुए पर गोलियों की बौछार हो गयी, छलनी होकर शूरवीर

गिरा और जन्म सफल कर गया। मुहकम सिंह को सामने गिरा देखकर तुर्क दरवाज़े की ओर बढ़े, परन्तु ऊपर से तीरों की एक बौछार बारिश जैसे पड़ी, इधर से दरवाज़ा फिर खुला, साहिब सिंह और हिम्मत सिंह बाज़ों की तरह झपटकर पड़े और बढ़ते हुए दस्ते में घुस गये। इस फुर्ती और तेज़ी के साथ तलवार चलायी कि दस्ते का दस्ता ही कोई ज़ख्मी और कोई मारकर पछाड़ दिया, कुछ पीछे हट गये। एक बार दरवाज़े के आगे का मैदान इन्होंने साफ कर दिया। तुर्क सेना टिड्डी दल की तरह अनगिनत थी। और धावा हुआ। तीर, गोली, बंदूक बरसाता हुआ यह आक्रमण हुआ। दोनों वीर ज़ख्मी हो गये, परन्तु किसी ऐसे क्रोध और बल में हैं कि डरते हटते मुड़ते नहीं, आगे ही आगे मारते, काटते, टुकड़े करते शहीद हो गये। अटारी में बैठकर देखते हुए, अपने मुक्तिदाता से आशीर्वाद और धन्य! धन्य! की आशीष लेते परलोक सिधार गये। अब पाँच मुक्ते भाई ईशर सिंह और देवा सिंह आदि बाहर आ निकले, इन्होंने भी वह मैदान सँभाला कि हैरान कर दिया, परन्तु वश क्या चले? लड़ें, मरें, मारें (खत्म करें), परन्तु ख़त्म कहाँ हो अगर अनगिनत हों? आख़िर ये अनगिनतों को मारते सेना को दरवाज़े से दूर-दूर रखते, धकेलते, आगे बढ़ते, लड़ते टुकड़ा-टुकड़ा कट-कट कर शहीद हो गये। अब दया सिंह आदि प्यारे सिक्खों ने विनय की कि पातशाह! अब युद्ध बस करो और आप कहीं निकल चलो, आप सलामत हैं तो सब कुछ है, परन्तु यह विनय सुनकर आप मुसकराये और बोले: 'दया सिंह जी! देखो मैदान में कितने पक्षी माँस खाने आ गये हैं।' यह हौंसला देखकर सिंह दंग रह गये। फिर आप बोले: 'देखो! आपके पल्ले सत्य है, सत्य पर खड़े (टिके) रहो। मेरे सिक्ख झूठ से काम न लें, यह सामने टिड्डी दल तुर्क और पहाड़िये शर्महीन, धर्महीन हैं। इनका कभी विश्वास न करो, मेरा पंथ हमेशा वाहिगुरू की ओट पर रहे और अपनी बुनियाद पर टिका रहे। मेरा खालसा सदा 'सत्य' पर टिके, कभी झूठ और छल में न पड़े, कभी इन सौगन्ध तोड़ने वाले हिन्दू राजाओं और तुर्कों की ओट न दिखाये। खालसे में तब सदा तेज बढ़ेगा, जब इन गिरे हुए लोगों का विश्वास नहीं करेगा। जब इनकी ओट लेगा तभी चोट खायेगा। अकाल की ओट, गुरू की ओट, सत्य की ओट, अपनी ओट, चार ओटें खालसे की हैं।

इस समय मेहर सिंह, कीरत सिंह, अनन्द सिंह, लाल सिंह, केसरा सिंह, अमोलक सिंह दरवाज़ा खोलकर बाहर जा खड़े हुए। यह वह समय था जब नाहर खाँ, ग़ैरत खाँ, गुलशेर खाँ और ख्वाजा मरदूद आप बढ़े आ रहे थे। जिसका उल्लेख ऊपर कर आये हैं। इनका युद्ध इस उमड़ते दल के साथ हुआ। ऊपर से इस समय सारे सिंह एक खास योजना बनाकर तीरों की बारिश कर रहे थे और गोले भी बीच-बीच में ठाह-ठाह कर रहे थे और खिड़की में से गुरू साहिब आप तथा अटारी की दरारों में से साहिबज़ादे तीरों की वर्षा कर रहे थे। यह भारी घमासान था, जिसमें नाहर खाँ, ग़ैरत खाँ तथा और एक दो सरदार मरे और ख्वाजा दीवार की ओट में होकर, जान बचाकर, ढेर सिपाही मरवा और ज़ख्मी करवाकर पीछे हटा। यह हाल हम पीछे लिख आये हैं।

श्री गुर गोबिन्द सिंह बिलोकत रोकत शोक दे शत्रुन को।

बान समूह प्रहारत हैं वध आगै जु आवत दैं हन को।
लोथन पोथन ढेर गये लग ऊपर नीचे परे तन को।
जिऊं गिर शृंग श्रवैंजल को तिम श्रोण चलयो शव ढेरनि को।

(गु० प्र० सूरज रुत ६-३८)

इस प्रकार अब तक आधे सिंह इस महा भयानक, महा कठिन युद्ध में जगत के इतिहास में अद्वितीय वीरता दिखाकर शहीद हो चुके थे।

३. (पुत्र न्योछावर)

उधर तुर्क सेना इस बार तो मात खाकर और चोटी के यूथप* मरवाकर दरवाज़े से पीछे हटी ओर दलों में वापिस लौटी तब आपस में दूसरे धावे की तैयारी पर विचार होने लगी। यह समय कुछ साँस लेने का मानो आ गया परन्तु जिन्होंने संग्राम मचाया और मरण निश्चित किया है, जिन्होंने अपने आप को जागृत रखा और मरे जीवित करने के पहलू पर लगाया है, उनके लिए आराम कहाँ और साँस लेना कहाँ? गढ़ी चमकौर में बाकी बचे सिंहों ने एक सम्मति (राय) बनानी शुरू की कि सभी लोग मिलकर सतगुरू जी को विनय करें कि हम बाकी के सभी मारे जायें तो कोई डर नहीं है, परन्तु आप ज़रूर इस संग्राम में से सही सलामत निकल जाओ। सतगुरू जी ने यह बात माननी नहीं, उन्होंने हमारे साथ अंत तक रहना और शहीदी से दूर नहीं होना, परन्तु हमारा धर्म है कि उनको बचायें। वे अगर निकल जायें तो पंथ सलामत है, वे हमारे जैसे अनगिनत सिक्ख पैदा कर सकते हैं। यह बात सोचकर जब सतगुरू जी के पास गये तो क्या देखते हैं कि आगे साहिब अजीत सिंह ज़ी हाथ जोड़कर खड़े है और पिता गुरू जी से आज्ञा माँग रहे हैं कि हुक्म हो तो दास भी बाहर जाकर भाइयों जैसे लड़े और सत्य पर न्योछावर हो जाये। सच्चे पातशाह हँसकर कह रहे हैं: "जाओ शूरवीर, शूरवीरों के शूरवीर, रण में जाओ और लोहा करो, निःशंक लोहा करो।" यह विनती और आज्ञा सुनकर वीर सिंह जो अनिद्रा, भूख और लगातार युद्ध होने से कमज़ोर नहीं हुए थे, नेत्र भर लिये और हाथ जोड़कर बोले: "सच्चे पातशाह! आप और साहिबज़ादे जैसे भी हो सके यहाँ से सही सलामत निकल जाओ और हमें लड़ने, मरने और शहीद होने दो। आप और साहिबज़ादे सलामत हो तो सब कुछ है, हमारे जैसे तो हज़ारों और अनगिनत आप बना लोगे, परन्तु हम आपके बिना कुछ भी नहीं, इसलिए विनती मान जाओ और साहिबज़ादे जी को मत भेजो और अपने निकलने का उपाय करो।" परन्तु गुरू जी उसी बुलन्द हौंसले के साथ बोले: "कि आप सभी मेरे पुत्र हो। मेरी चिन्ता न करो, मेरी चिन्ता अकाल पुरुष को है। अब समय सोचने का नहीं है, वह देखो तुर्क दल में फिर से धावे की तैयारी है, यह धावा लौटाना है और समय हाथ से नहीं गँवाना।" बस! यह सुनते ही उठती जवानी का शूरवीर साहिब अजीत सिंह आगे बढ़ा। पिता गुरू जी की परिक्रमा की, माथा टेका, और थपकी लेकर चल पड़ा। गुरू जी की करनी पर न्योछावर

---

* जत्थेदार।

हुए हुए गुरू ज्योति के परवाने अन्य लगभग पांच सिंहों के साथ जाने की आज्ञा माँगी। आलम सिंह जो विशेष साथी था, जवाहर सिंह महायोद्धा, ध्यान सिंह योगीराज, सुखा सिंह बंदूक चलाने का खास उस्ताद था, वीर सिंह तलवारिया, ये पाँच सिंह, चोटी के शूरवीर और रण विद्या के उस्ताद, आज्ञा लेकर शहज़ादे के साथ चले। बाहर से आ रहे हल्ले को रोकने के लिए दरवाज़ा खोल बाहर निकलकर आ खड़े हुए, जो युद्ध उस समय इन वीरों ने किया, भाई संतोख सिंह जी ने ऐसे बताया है:

गुर सुत उर महिं कुपत कुपत बहु हनि करि डोर।
ऐंचित निठुर कमान मान खाननि निखारे।
गिरते वीर तुंरग रंग श्रोणत जिन केरा।
तीछन बान प्रहारि हार दे त्रास बढेरा॥ (गु॰ प्र॰ सू॰ रुत ६-३९)

इस प्रकार गुरू पुत्र साहिब अजीत सिंह और पाँचों वीर घोर युद्ध मचा रहे थे, इनके निशाने ऐसे बैठते थे कि खाली कोई नहीं जाता था। उधर से जो तीर, गोली आये वह निशाने पर नहीं बैठता था। फुर्ती इतनी थी कि इनके वार शत्रु को दम नहीं लेने दे रहे थे।

करहि शीघ्रता अधिक गुरू सुत सर बरखावै।
बेधति दुश्मन देह गिरे धर पर तरफावैं।
तक तक गुलकां हतहिं नहीं को लागन पावै।
करहि चलाकी चरन चहूँ दिश चितव चलावै।
रण खेत बिखै इत उत फिरत फांदत दौरत शत्रु हति।
सभ करति विलोकन जंग को होति अचंभै महित चित। (रुत ६-३९)

अब दुश्मन जो अनगिनत थे, बहुत नज़दीक आ गये। अपने आदमी मरते गिरते से बेपरवाह होते बढ़ते आये। इधर साहिबज़ादे के तरकश में से तीर ख़त्म हो गये, परन्तु एक क्षण में आपने सांग (बरछी) खींच ली और नज़दीक आ गये शत्रुओं में से पिरो-पिरोकर फेंकने लग पड़े। एक स्थान पर आप घिर चले थे कि पाँचों साथी सिक्ख बरछियाँ खींचकर आ गये और साहिबज़ादे और पाँचों सिंह कई शत्रुओं को पिरोकर निकल गये और खुले स्थान पर जा खड़े हुए और उछल-उछल कर दौड़-दौड़कर वार करते निकलते, बढ़ते, हटते, दाँव बचाते, दाँव लगाते लड़ते रहे। इस समय तक ये छः शूरवीर ज़ख्मी हो चुके थे, कई घाव लगे थे, रक्त भी बह रहा था, परन्तु अपनी आत्मा के जोश में, अपने वीररस के उत्साह में, अपने में भरे संचारी क्रोध में लड़ रहे थे कि अजीत सिंह ने बरछी एक कवचधारी पठान के घुसेड़ दी, घुस तो गयी, दुश्मन गिर भी पड़ा, परन्तु बरछी खींचने पर भी बाहर न आये, बहुत ज़ोर से खींची तो बीच में से टूट गयी। अब आपने अपनी म्यान से तलवार खींच कर निकाल ली और तलवार के दाँव-पेंच शुरू हो गये। कुछ देर की इस लड़ाई को देखकर दोनों ओर से वाह-वाह होने लगी। पिता गुरू और सेनापति गुरू ने शाबाश शाबाश की ललकार दी। अब पाँचों साथी ज़ख्मों से छलनी हुए अपनी अपनी जगह शहीद हो गये, साहिबज़ादे अकेले ही जूझ रहे थे, अपना अकेलापन देखकर भी उदास या

कमज़ोर नहीं हुए, बल्कि क्रोधित होकर और ज़ोर से लड़े–

जिस दिश परि हैं धाय, अरैं नहिं भाजत हैं अरि।
जतन करहिं समुदाय, हतहि किम फिरति शीघ्र कर।
गुलका लगे न कोय, खड़ग लौ पहुँच न देतं।
मार मार कर बीर करयो संघर बहु खेतं।
कर कराचोल जबि टुट गयो जमधर लई निकास कर।
इक हुतो पालकी के बिखै दूरहि देखत दृष्टि धरि॥३॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ रुत ६-३९)

एक सरदार अनवर खाँ को पालकी में देखकर अजीत सिंह जी ज़ोर से उसपर जा पड़े। यह एक बचाव वाली जगह रुककर युद्ध देख रहा था और सेना को हुक्म दे रहा था कि साहिबज़ादे ने जा कटार उसके घुसा दी, कटार खींचकर पीछे फुर्ती के साथ मुड़ने ही लगे थे कि शत्रुओं के एक दस्ते ने घेर लिये।

इम कीन जुध, गन शत्रु हति, लोय भये तत्काल रन।
सभ दिखतों अरंभै हुई रहे, कहां गयो कित छपयो हनि॥३४॥
इस विधि गुर नंदन लरयो जिह अजीत सिंह नाम।
सुजस जगत महिं प्रगट भा पुन पहुँचे गुर धाम॥३५॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ रुत ६-३९)

सतगुरू जी अटारी में बैठे अपने दुलारे के कारनामों को देख-देखकर उसकी शूरवीरता पर प्रसन्न हो रहे थे। अपनी आँखों के सामने अपने दुलारे और प्यारे के नवयौवन से प्रफुल्लित शरीर को घायल होता देख, अंत तक सन्मुख जूझते और अपना आप न्योछावर करते हुए को देखकर नाथ जी थोड़ा सा भी नहीं डगमगाये। बुलन्द हौंसला, बुलन्द ही रहा और अंतड़ियों ने, मोह ने, प्यार ने घबराहट पैदा नहीं की। वह जो खालसा प्रकट किया था, हाँ, अपने पुत्र में खालसा आदर्श को खालसा होकर निभाता देख-देखकर आप खुश हुए। पुत्र सिपाही योद्धा, खालसा अजीत सिंह धर्म युद्ध में शहीद हो गया, हाँ उस युद्ध में जिस का आधार न लालच, न शत्रुता थी जो शुद्ध धर्म युद्ध था और सत्य पर अपना आप न्योछावर करना था, साहिबज़ादा शहीदी प्राप्त कर गया। यह रंग देखकर छोटे बेटे साहिब जुझार सिंह जी* ने पिता जी से रण में जाने की और बड़े भाई की तरह युद्ध करने की आज्ञा माँगी। आपकी आयु इस समय लगभग पंद्रह बरस की थी, परन्तु बचपन से ही तीरन्दाज़ी और पटेबाज़ी (गतका चलाना) का ढंग सिखाया गया था। अमृतपान किया हुआ था और नस-नस में खालसा आदर्श प्रवेश कर रहा था। परमात्मा की दरगाह से ऊँचे

* भाई संतोख सिंह जी ने नाम जोरावर सिंह लिखा है। परंतु अन्य लेखकों से आपका नाम जुझार सिंह और सरहिन्द में शहीद हुए तीसरे साहिबज़ादे का नाम ज़ोरावर सिंह सही होता है (यहाँ कवि संतोख सिंह जी ने भी दो बार जुझार पद प्रयुक्त किया है देखो छंद २ और ५) मलतब जुझार सिंह का ही है, वैसे अर्थ जुझार लड़ाई भी लग सकता है।

दर्जे पर आये थे, आत्मा बहुत ऊँची, पवित्र और बलवान थी, इसलिए रण के लिए उतर पड़े। और पाँच सिंह भी आपके साथ तैयार हुए। पिता गुरू जी की प्रदक्षिणा कर, थपकी लेकर आप चल पड़े। ये छः योद्धा गढ़ी से बाहर हुए* शत्रु के सामने जाते ही बल और तेज दोगुना हो गया। इनके दिलों में यह यत्न है ही नहीं कि हमने बचना है, एक ही बात है कि हमने मरना है और शत्रु को मारना है। निर्भयता कमाल है, अकाल पर भरोसा है, मरना तय कर लिया है, अधिक से अधिक को मारना है, अधिक से अधिक समय तक दुश्मन को गढ़ी से दूर रखना है। गुरू की खुशियाँ लेनी है, मरना और जीना समान है। आगे की समझ है, दृष्टि पारदर्शी है, इसलिए जा घोर संग्राम मचाया।

प्रथम तुफंगनि की करि मार। 'मारमार' कर परे जुझार॥२॥
बहुर तड़ातड़ छोड़ि तमाचे, सतिगुर को रुख पिखि रिस राचे।
अपर उपाइन को बन आवै। प्रभ सनमुख हुए सीसं चड़ावै॥३॥
म्रिग झुंडनि महिं केहरि फिरैं। त्रिभै बीर कहि त्रास न धरैं।
'प्रान बचैं' एह लालच छोरा, मारहिं अग्र परहिं रिपु ओरा॥४॥
औ गरजत हैं सिंह जुझारे, थिरे न रिपु इत उत दें टारे।

(गु० प्र० सू० रुत ६-१९)

अब दिन उतर गया था, सूरज डूब गया था, संध्या मारा-मारी करती आ रही थी, उधर सभी छः शूरवीर जूझ रहे थे। जितनी देर ख्याल आस नहीं कर सकता उतनी देर इनका युद्ध जारी रहा। इन्होंने गढ़ी के समीप शत्रु नहीं आने दिये परन्तु अंत में अनगिनतों के सामने अनगिनतों को मारते, ज़ख्मी करते गिराते ये छहों शूरवीर भी शहीद हो गये। अँधेरा अब बढ़ रहा था, सिंहों ने गुरू जी को कहा कि सच्चे पातशाह आप अब अपने बचाव का उपाय करो, अब युद्ध का जारी रहना कठिन है। परन्तु सतगुरू जी बोले कि "यही समय शत्रु का बल समझने का है, वह देखो एक घटा उमड़ कर आ रही है, बहादुर पर बहादुर आ रहा है। लाओ तीरों के बड़े निषङ्ग जो सँभाल कर रखे थे, अब उनका समय आया है। मैं जिस ओर तीर चलाऊँ, सभी चलाओ, दरवाज़े अंदर जो पहरे पर हैं वे दरवाज़े के छिद्रों में से तीर बरसायें।" यह कहकर आप वीरासन हो गये। एक उमड़ी आ रही सेना पर लगी बारिश बरसने। दुश्मनों ने समझा था कि अब अंदर गुरू ही गुरू है, एक हल्ले में गढ़ी मार लेंगे, कितने तीर एक आदमी मार लेगा, सौ पचास लोग हम, अगर मरकर उसको पकड़ लें तो सुख की नींद सोयें। परन्तु गुरू जी गुरू थे और रणविद्या के पूरे उस्ताद थे। इस समय जिस तेज़ी और जिस फुर्ती से गढ़ी से तीरों की बारिश हुई, तुर्क यूथपों को समझ आ गयी कि अन्दर गुरू अकेला नहीं, बल्कि सौ दो सौ आदमी है। आगे बढ़ा हुआ

* कई कवियों ने करुण रस बढ़ाने के लिए वहाँ साहिबज़ादे जुझार सिंह जी का पानी माँगना और गुरू जी का इनकार करना लिखा है, परन्तु कवि संतोख सिंह जी तथा अन्य पुरातनों से यह प्रसंग नहीं मिलता और यह प्रतीत भी गलत होता है। गढ़ी में पानी भी था और पानी से प्यासे को युद्ध में भेजकर कौन मर्दानगी की उम्मीद कर सकता है।

पहला दस्ता सारा मारा गया, पिछला कुछ मारा गया और कुछ ज़ख्मी हो रहा था, और तीसरे पर ऊपर से बारिश (तीरों की) बरस रही थी। जो वीर हिम्मत करके दरवाज़े की ओर आगे बढ़ा, वह भी दरवाज़े में से आते तीरों से बिंध कर गिर पड़ा। इस समय जो दुश्मन के सिपाहियों की, गढ़ी से बरस रही बारिस से, हालत हुई उसने तुर्क सेना को मजबूर किया कि पीछे हट जाये, और डेरे पर जाकर फिर सलाह करे। इसलिए अब यह सलाह हुई कि रात का अँधेरा पड़ रहा है, गुरू ऊँचे स्थान पर गढ़ी की ओट में है, हमने खुले मैदान में निशाने लक्ष्य पर बेंधने के स्थान बिना ओट के बढ़ना है, अगर हमने युद्ध जारी रखा तो बहुत नुकसान होगा। जीत हमारी निश्चित है, चुपकर बैठ जायें तो दो तीन दिनों में गढ़ी अपनी है, वैसे ही क्यों मरें? इस प्रकार सलाह यह हुई कि पहरे तगड़े लगाये जायें, ताकि रात को गढ़ी के अंदर वाले भाग न जायें और दिन की दिन में देखी जायेगी। आखिर गढ़ी के दरवाज़े की ओर दूर जाकर तगड़ा पहरा लगाया गया और गाँव के चारों ओर पहरे लगाये गये, क्योंकि गढ़ी गाँव के बीच थी, अलग मैदान में नहीं थी।

४. (गुरिआई (गुरू का काम या पदवी) पंथ को)

दुश्मनों की अब यह चाल निश्चित करके सतगुरू ने दीवान सजा दिया, रहुरास* का भोग डाला+। आज अरदास आप जी ने स्वयं की और वाहिगुरू का शुक्र किया कि तीन महान कष्ट की रातें खालसे की चढ़दी कलां (बुलन्द हौंसलों के साथ) में बीतीं, और वाहिगुरू अंग संग रहा। जिनको अपनी गोद में बुलाना मंजूर था उनको चढ़दी कला में अपने सम्मुख रहते, चित में नाम और मुँह में फतह, आपने अपने दर पर बुला लिया, परिश्रम सफल होकर परवान हुआ। वे दर घर जाकर पहुँचे। जो बाकी रहे आप की ओट में सावधान, आदेश पर शुक्र करने वाले, कृतज्ञ, मर्ज़ी में खुशी, बुलन्द हौंसलों में तैयार-बर-तैयार हैं और रहें। यह आपकी मेहर है। फिर अपने सारे शहीदों की आत्माओं को वर आशीर्वाद और दर परवानगी बख्शी। अब बच रहे सिंहों ने सतगुरू जी की सेवा में विनती की कि पातशाह! हम हुक्म के बंदे हैं जो आज्ञा होगी वही करेंगे, परन्तु अब एक मान और दावे (अधिकार) के साथ विनती है कि आप यहाँ से चले जाओ, यह हमारा आप के दासों का विचार है और आशा है कि आप प्रार्थना मान जाओगे। हम गढ़ी को जब तक रहे रोकेंगे और आप इतनी देर में दूर निकल जाओगे, यह दाँव है, हार नहीं है। इस समय हमारे पंथ की जीत यह है कि आप शत्रु के हाथ न आओ। इतने अनगिनत लश्कर के सामने चार पाँच पहर चालीस योद्धाओं का अड़े रहना, उनके हज़ारों आदमी घायल और मुर्दा कर देने, यह आपकी शूरवीरता की फ़तह है। अब इस ट्डिडी दल सेना में से निकल जाना और पकड़ में न आना उससे बड़ी वीरता और फ़तह है। दूसरे हमने खालसा रखना है, खालसा अभी बच्चा है, आप सलामत हो तो खालसा सलामत है, इसलिए अब प्रार्थना मान लो। हमने हठ नहीं करना, अपने सिर भेंट करके सुख प्राप्त करना है, परन्तु हमने बहुत प्यार के साथ, विश्वास सहित, मान के साथ और दावे (अधिकार) के साथ अब

* संध्या वेला में किया जाने वाला पाठ।

+ समाप्त किया।

आपको इधर से भेज देना है। यह सुनकर उस वीरों के वीर ईश्वरीय ज्योति के चेहरे पर एक रंग आया, वह द्रवीभूत होने का भाव आया जो प्यार ही ला सकता है। आनन्दपुर गँवाकर स्थिर रहे, परिवार कबीला बच्चे पता नहीं कहाँ गये, परन्तु अविचलित रहे। चुनींदा प्यारे आँखों के सामने कट-कटकर शहीद हुए, आप अविचलित रहे। जवान शूरवीर, सुन्दर पुत्र जूझ-जूझ कर परम धाम गये, आप स्थिर रहे। परन्तु अब जब प्यारों ने प्यार का वास्ता देकर प्रार्थना की तो द्रव गये, परन्तु आँखों और ओठों पर ही रंग छा कर। फिर स्थिर स्वर में बोले: 'अच्छा खालसा जी।' फिर कुछ देर विचार में रहे, फिर बोले आज खालसा अत्यधिक कष्ट असह्य परख में पूर्ण निकला, आज खालसा गुरूआई का मालिक है। देखो खालसा गुरू, गुरू खालसा है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की ताबिया* खालसा किया है। जहाँ पाँच मिलोगे गुरू में, गुरूनाम और गुरू आदर्श और मन में नाम तथा तन में प्रेम के साथ, वहां गुरू होगा। पाँचों की राय गुरू की राय होगी। गुरू ग्रंथ है, गुरू ग्रंथ की ताबिया खालसा गुरू है।

पंचहु मैं नित बरतति मैं हौं
पंच मिलिहिं से पीरन पीर।

पाँच वे खालसा हैं कि खालसा आदर्श जिनमें व्याप्त है, हृदय नाम है, व्यवहार सत्य है। ऐसा कहकर आपने कलग़ी नामक आभूषण और शस्त्र आगे रखे और पाँचों की परिक्रमा करके तीन बार फिर फतह बुलायी। आप शस्त्र पहनाये और कहा–खालसा गुरू! इस बड़प्पन, इस फ़ख, इस भेंट को पाकर खालसे में मान नहीं आया। वे जानते थे कि हम मुर्दे थे, इस सतगुरू ने आत्मा, मन और शरीर करके ज़िन्दगी दी है। गुरू है, हम सिक्ख हैं, इसने गुरूआई बख्शी है, परन्तु इनके चरणों में हमने ही लगना है (इनके प्रति श्रद्धा रखनी है)। हम हमेशा सिक्ख हैं, हम संगत हैं, खालसा हैं, परंतु गुरू के बिना न हम संगत है, न खालसा। जैसे बारात होती है, अगर दूल्हा है तो बारात, नहीं तो आदमियों का जमावड़ा। इसी तरह अगर बीच में गुरू है तो संगत है, खालसा है। अगर गुरू बीच में नहीं तो आदमियों का जमावड़ा है, इसलिए अगर संगत 'खालसा गुरू' है तो गुरू में होकर, गुरू सहित। गुरू को अलग खड़ा करके कोई एकत्रता न संगत है न खालसा।

उस समय के सारे (सभी) सिक्ख नामी (नामस्मरण करने वाले) हुआ करते थे, इसलिए आत्म भेदों के जानकार होते थे। नाम बिना कोई तन वह तन नहीं जिसको गुरू ने प्यार किया है। नाम बिना तन तो खग तन, मीन तन, वराह तन हैं, नाम हो तो मानुष तन, देवता तन बनता है। इसलिए ऐसे नामी, रसिये, सच्चे शूरवीर, जीवित समुदाय, सिक्खों के समुदाय को जब गुरूआई मिली तो उन रसिये पुरुषों ने चरणों पर माथा टिकाया और कहा:

पंचहुँ सिंहन हाथ जोरि कै, रावर चरननि अरपे सीस॥
हम जैसे तुम कहु जनु लाथौ, हम को तुम एकै जगदीस॥
बिरद कृपाल कृपा कर तारे, रामचंद जिम कानन कीस॥
जिय तुम बडे बड बडिआयी, कौन सकै लखि, सभ गुनधीश॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ रुत ६-४१)

---

* गरू ग्रंथ साहिब की हाज़िरी में चँवर लेकर बैठना, अधीन।

इस तरह जब खालसा ने (गुरू ग्रंथ की ताबिया) गुरूआई प्राप्त की तब गुरू के आगे विनम्र होकर अपनी विनम्रता में विनय की। तब समय गुरमते* का आया, हाँ पहले गुरमते का। फौरन विचार होकर गुरू खालसा की ओर से फैसला हुआ कि आप जाओ, आपके साथ दया सिंह, धर्म सिंह और मान सिंह जायें, अंदर भाई संत सिंह, संगत सिंह, अटारी में रहें और रामसिंह, केहर सिंह, संतोख सिंह, देवा सिंह चारों बुर्जों में रहें। जीवन सिंह, काला सिंह नगाड़ा बजाने पर रहें।+ इस तरह गुरू खालसे का फैसला मानकर गुरू जी चले पड़े, साथ में तीनों सिंह चले। गढ़ी के दरवाज़े में से जाना ठीक नहीं था। पीछे की ओर जो एक रास्ता था, उसको तोड़कर धीरे से निकल गये। चारों ने अर्थात् गुरू जी और तीनों साथियों ने शस्त्र धारण किये हुए थे, तरकश भरे हुए थे, कुछ मुहरें भी जेबों में थीं। चारों सम्पूर्ण तैयारी करके निकले थे। चारों गढ़ी के छिपे हुए रास्ते से निकल बाहर आये, दाँव बचाते, पहरों से परे-परे चुपचाप निकल गये। एक ठिकाने पर पहुँचकर गुरू के जत्थे में ललकार उठी "सिक्खों का गुरू निकल गया है।" तीन बार गर्जना करके ताली बजाते हुए कहा: "हिन्द का पीर निकल गया है।" यह आवाज़ सुनकर एकदम सोये हुए लश्कर में शोर मच उठा। एक पहरे से मशालची और पहरे वाले आवाज़ की सीध में भागकर आये। उनको आते ही सतगुरू के जत्थे की ओर से लगातार तीर लगे, और मशालें गिराकर आते ही गिर गये। इन गिरते मरतों की हाय हू की आवाज़ इतनी उठी कि घबराकर सारे जाग उठे, कोई किसी ओर कोई किसी ओर पकड़ने को दौड़ा। आगे से कई स्थानों पर आपस में टकराये। ऊपर से बादल छाये हुए थे। दुष्ट सेना ने आपस में एक दूसरे को घेर लिया और मारकाट शुरू हो गयी। इस हलचल में गुरू जी एक ओर निकल गये और तीनों सिंह दूसरी ओर निकल गये। परन्तु बिछुड़ने से पहले गुरू जी ने प्यारों को कह दिया था कि हमने तुमने बिछुड़ जाना है, इस तारे की सीध रखना हम फिर मिल जायेंगे।

उधर गढ़ी में सिंहों ने गुरमता करके भाई संत सिंह जी@ को गुरू के स्थान पर जत्थेदार (यूथप) नियुक्त किया। कलग़ी लगाकर सोनमुखी तीरों का तरकश देकर अटारी

---

* गुरुमत अनुसार किया हुआ मंत्र।

\+ एक कथा यह है कि अंदर केवल दो सिंह ही थे, एक यह है कि अंदर पाँच के लगभग सिंह थे।

@ (सूरज प्रताप) और गु॰ वि॰ (सु॰ सिंह) में भाई संगत सिंह जी को गद्दी दी गई लिखा है। गुर प्रताप सूरज की एक पुरातन छपाई के नमूने में इस स्थान पर एक तुक भाई संत सिंह जी सम्बन्धी नीचे दी हुई है-'संत सिंह अरोड़ा माझे देश पट्टी नगर का निवासी था। इसके पुत्र हाड़ा सिंह को हुक्मनामा बख्शिश हुआ, जो अब तक इसकी संतान के पास है।' और खोज इस सम्बन्ध में यह है कि हाड़ा सिंह पिशावर में जा बसा था, वहाँ यह हुक्मनामा है जो अब माई बुतकी के पास है, घर भाई उत्तम सिंह का है, कूचा भाइयाँ, महला गंज। हमने इस हुक्मनामे के दर्शन किये हैं, इससे तो पता भाई संत सिंह जी का ही चलता है, परन्तु विचार यह है कि भाई संत सिंह चाहे अरोड़ बंशी थे चाहे खत्री वंशी, चाहे कलग़ी भाई संत सिंह जी के लगी चाहे भाई संगत सिंह के, जो कुछ किया गया खालसे की हैसियत में खालसे प्रति। जातिभेद, देशभेद तो खालसे में सतगुरू जी ने मिटा दिया था। इसलिए दोनों साहिब भाई संत सिंह और भाई संगत सिंह जी हमारे आदर योग्य खालसा हैं। चमकौर का प्रत्येक शहीद रहती दुनिया तक सिक्ख क़ौम के लिए फ़ख्र और आदर्श है और हिन्दुस्तान की वीरता की रोशन मीनार है।

में बिठाया, संगत सिंह साथ में बैठा। बाकी सिंह अपनी-अपनी जगह तुफंग और तीर कमान लेकर बैठ गये। जब कुछ समय बाद गुरू जी की आवाज़ गरजी और तुर्क सेना उठी, तब क़िले के सिंह सतगुरू जी के कौतुक को समझ गये। उन्होंने धौंसे (नगाड़े) पर चोट कर दी और दूर-दूर थोड़े तीर छोड़े। बस, इस नगाड़े की ध्वनि और तीरों की वर्षा ने उनमें शोर मचा दिया। आ गये, आ गये। किसी को ख्याल हुआ कि बाहर से और सिक्ख सेना आ गयी, किसी ने समझा गुरू जी और सिक्ख सभी अन्दर से बाहर आकर छापे मार रहे हैं, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। अंदर से नगाड़े की आवाज़ बताये कि सिक्खों ने अंदर से भी युद्ध रचाया है और बाहर से भी छापा मारने आ गये हैं। इस प्रकार सेनापति और जत्थेदारों के प्रबन्ध ने कोई मिलकर टक्कर नहीं ली, हफड़ा दफड़ी में जो उठा वही जूझने लग पड़ा और आपस में ही लड़ने लगे। अँधेरा वश न चलने दे, इतनी सेना के एकदम उठकर मारने-कूटने से धूल का और गुबार चढ़ गया, जिसने अँधेरा और गहरा कर दिया। सारी रात जो बाकी थी, मार-काट आपस में होती रही।

मचयो कुलाहल भिड़े भेड़ भट, आपस महिं चलिगे हथियार।
छुटी तुपक तोमर तर तीरन, तरवारन जुटके करि मार।
पिता पूत के सिर मैं झारत, पूत पिता के तन पर झार॥
भ्रांत भ्रांत के, चचा भतीजा, सखा सखे के बहि तरवार॥५॥
जथेदार को हनयो सिपाही, मार सिपाही को जथेदार।
नहीं पछान परसपर कोई, कयामत रात भई तिस बार।
भए कतल सिर धड़ किह कर पग, केतिक दरड़े करहिं पुकार।
कहिं लग कहौं बिती तुरकन पर, बिन मारे मरि गये गवार॥६॥

जो समझदार जत्थेदार गढ़ी की ओर बढ़े उनको ऊपर से तुफंगों की गोली लगे, वे पीछे मुड़कर हाहाकार मचा दें कि गुरू तो गढ़ी के अन्दर सेना सहित है। जब गुरू जी गढ़ी में प्रविष्ट हुए थे, अपने साथ जो गोली, बारूद, बंदूक (तुफंग) तीर, तरकश, कमान, गोले बारूद पलीते लाये थे, वे बहुत युक्ति के साथ सारा दिन ख़र्च होते रहे। अब जो बाकी सामान था, वह ही प्रयोग में आना था, परन्तु सिंह बहुत होश के साथ सामान का प्रयोग कर रहे थे। गढ़ी से नगाड़े की आवाज़ और तुफंगों की बौछार दुश्मनों को बताती थी कि सिक्ख सो नहीं रहे लड़ रहे हैं, और उधर मार-काट बता रही थी कि कोई सिक्ख बाहर से आ चढ़े हैं। इस तरह के घमासान में दिन चढ़ आया। अजमेर चंद भी रात को ज़ख्मी हो गया था, ज़ेरदस्त लाहौरी फौजदार भी कुछ ज़ख्मी था, और सारे सरदार भी रात की आपस में हुई मार-काट और गढ़ी से बंदूकों तीरों की बाढ़ द्वारा हुए नुकसान से बहुत दुखी थे। इसलिए अब अत्यधिक क्रोधित होकर बड़ी-बड़ी सीढ़ियों का प्रबन्ध कर एकदम गढ़ी पर चढ़ जाने का सामान करके कोई दुपहर से कुछ पहले चढ़ आये। अंदर वाले सिंह जब तक गोली बारूद रहा, और जब तक तीर रहे, युद्ध करते रहे। गढ़ी पर चढ़ने वालों को घायल कर-करके नीचे गिराया, सीढ़ियों वालों को बेधा, परन्तु अब तीर गोली खत्म हो

चुकी थी, इसलिए तलवारें खींच कर दीवारों पर चढ़ गये। उधर से शत्रु भी समझ गया कि अंदर दारू सिक्का है नहीं, अत: और बहादुरी से चढ़ आये। यह दृश्य देखने वाला था। गढ़ी की दीवारों पर पहुँचते ही हाथों पर किस तरह सिंहों की तलवार मार करती और नीचे गिराती थी, परन्तु अब चारों ओर बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ लग गयीं और किसी न किसी ओर से दो-दो, चार-चार पहुँचने लग पड़े। कुछ देर के लिए अब गढ़ी पर हाथों हाथ तलवार और गतके का युद्ध हुआ।

सभिहूँन, त्रास को त्याग त्याग। जुग सिंह खड़ग ते झागि झागि।
घन घाव देहि को लागि लागि। बहि चलयो रकत पट पागि पागि॥१३॥
तुरकान तोम को काटि काटि। म्रित बेशुमार कीये फाटि फाटि।
रिपु आय सैंकरे घेर घेर। जिम चन्द्र प्रवारे हेरि हेरि॥१५॥
तब गिरे धरन अरि गेरि गेरि। सभ खड़ग प्रहारे हेरि हेरि।
एह गुरू आप रण ठानि ठानि। लश्कर हतिओ धनु तानि तानि॥१७॥

इस प्रकार सिंह लड़ते मारते मरते शहीद हो गये। जब तुर्कों ने कलगी लगी हुई, पतला लम्बा शरीर, सुन्दर सुडौल चेहरा देखा, कमान में सोने का चाँद और तलवार का सुनहरी कब्जा देखा तो भाई संत सिंह को उन्होंने गुरू समझा, फिर उनकी खुशी का कोई अन्त नहीं रहा। तुरन्त लश्कर में ख़बर गयी, ख्वाजा मरद्द सेनापति आप आया, शरीर और सिर देखकर आप अल्लाह का शुक्र किया, जिस के नाम पर कसम खाकर दग़ा किया था। अब ख्वाजा सिर उठाकर ले गया कि पातशाह के पास भिजवाऊँ। भाई संत सिंह का भी और भाई संगत सिंह का भी। दोनों के चेहरे गुरू जी से मिलते थे, विशेष रूप से भाई संत सिंह जी के कलगी भी लगी हुई थी। तुर्क सेना में खुशी के बाजे बजने लगे कि गुरू शहीद कर दिया है।

सूचना:- तुर्क सेना कुछ देर तो भाई संत सिंह जी के शीश को गुरू जी का समझकर बेपरवाही में खुशी के बाजे बजाती रही। पहाड़ी राजा अजमेर चंद को जो ज़ख्मी हो गया था लेकर विदा होने की तैयारी में लगे। लाहौर का फौजदार भी चाहे कुछ कुछ ज़ख्मी था अब कूच की तैयारी में लगा। दिन भर एक और काम होता रहा। तुर्क अपने मुर्दों को बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर दफनाते रहे, सिक्खों की लाशों की किसी ने खबर नहीं ली। रात हुई तो एक बहादुर सिंहनी यह सेवा करने के लिए आई, उसका संक्षिप्त ब्यौरा आगामी प्रसंग में है।

---

७१ प्रसंग बीबी* सरन कौर+

जदो जंग चमकौर का मुक्क चुक्का, तुरका समझिआ गुरू शहीद होया
रहे देहुं सारा दबदे मुर्दियां नूँ, नैनां नाल ही दिले दा दुक्ख रोया।
तुर्क थक के अक के जाय सुत्ते, सुत्ते भासदे जिवें हन हुणे मोये,
गढ़ी बाहर चमकौर दे ढ़ेर लग्गे, लोथां खिलरीयाँ टिब्बियाँ विच टोये।
अद्धी रात दे बाद इक नारि आई, दीवा हत्थ ते भेस तुरकान वाला,
फिरदी मलकड़े (धीरे-से) गढ़ी दे बाहर अंदर, लोथं विच झुकदी कर दी ढूँढ भाला।
मुँह देखदी सिर ते केस तक्के, सिक्ख सयानदी चुक्कदी आप बाला,
लैके मलकड़े जांवदी इक पासे, रखदी हेठ ऊपर अते नाल नाला।
इक्कुर भालदी टोल दी लब्भदी ने, तीहों वद्ध नूँ आंदड़ा ओस पासे।
रात बीत चल्ली वद्ध अद्ध कोलों, अजे जिंद दे खेडदी नारि पासे।
नज़र गयी भौतल, हार गयी हिम्मत, दुखण लग्ग पये अंग ते सब्भ पासे।
सेवा करन दा शौक ना मूल ढट्ठा, फड़ी गयी जो-जाणदी, मिलूँ फांसे।
ढेर लग्गिया देहीयाँ सुहणिआं दा, दीवे धरम ते हो पंतग मोईआं,
जिन्हां वारिया गुरू तों आप ताईं, देख देश दे दुक्ख नूँ अत्त रोईआं,
खेड जिंद ते गईआं संसार उत्तों, घट्टे रुलदीआं सदा ही नींद सोईआं।
ऐस भैण न आ हुण सार लीती, कहिंदी-"वारने तुसां तो अज्ज होईआं,
"तुसां पालिया सिदक निबाह दित्ता, धरम रक्खिया, धरम दी लाज भारी।
"जदों होरनां हारिया धरम ताईं, तुसां सिदक दी डोलदी नाव तारी।
रण तत्तिआं सनमुखी होये वीरो! देहि तूंइआं वांग है तुसां वारी।
"सेवा करां सरीरां पवित्रां दी, जिंद सेव तुहाडी विच जाये वारी।
"ऐहो लोचदी आई हाँ ऐस थां ते, लावां हत्थ पवित्रां देहीआं नूँ,
"जावाँ होय पवित्र मैं सेव करदी, करदा ठौर है धरम सनेहीआं नूँ,
"संसकार एह अंत दा करां हत्थीं, दयां दाह मैं तुसां विदेहीआं नूँ।
"करे वीरां दे भैण ससकार लोको! देखो होणीआं अटल असेहीआं नूँ"।
लोथां उप्परे छापिआं ढेर करदी, ढक दित्तड़ा पासिदां सारिआं तो।
मोड़हे बीड़दी शेरनी ढेर सारे, वीर कज्जदी रब्ब दे मारिआं तों।
म्लेछ हत्थ ना लाण प्यारिआं नूँ, लोथां सांभदी धरम हत्तयारिआं तों,
जिहड़े मोयां दा करन अपमान भारी, धरम बीरता वालड़ा हारिआं तों,

---

* १. स्त्रियों के लिए सम्मान बोधक शब्द। २. कुलीन नारी

+ यह प्रसंग २४ माघ सं० गु० ना० श० ४३५ (९ दिसम्बर १९०३ ई०) को खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

सोध लिया अरदासड़ा शेरनी ने, गल पल्लड़ा घत्तिआ नैण रोंदे।
दसां गुरां दा नाम धिआंवदी है, नाल नैणां तो टेपड़े रत्त चोंदे:-
"वीरां प्यारिआं रब्ब जी वास देवो, चरनीं आपदी लग्ग ए लाल सोंहदे।
"थिर आप है जगत दे रचनहारा, थिर दास तेरे पाके शरण होंदे।
"थिर करीं, दे चरन शरण साईआं, भारथ भूमि दे लाल ऐ तुसां जाये।
"हुकम आपदा मन्निआं इनां सारा, रक्ख कुच्छड़े जगत दी रब्ब माए।
"खेडन गोद ऐ तेरड़ी पिता प्यारे, बंधप तूहीं है तेरी ऐ शरन आये।
"बखश असां सुमति इनांह वाली, सनमुख जूझीए भवजलों पार पाये"।
एह आख के चंडि प्रचंड कीती, सारे लांभियों अग्ग भड़का दित्ती।
भड़क उठिआ जदों प्रचंड भारा, तुरकां सुत्तिआं बी कनसोअ लित्ती।
घाबर देखदे अग्ग की भड़क उट्ठी, लग गई सी दिलां नूँ भरम चित्ती।
धाय आ गया दसलड़ा इक तुरकी, देखी नार है बैठड़ी भरी पित्ती।
कड़क पुच्छदे "दस्स देह अग्ग केही, किस अस्थ ताईं बले भांबड़ा ऐ?"
नारि बोलदी नहीं, ऐ जाणदी है, मतां दस्सिआं बुझू अलांबड़ाए।
झूठ बोलणा धरम ना सिक्ख दा है, मौत चक्खणौं सूल ना कांबड़ा ऐ।
खिझे तुरक चुप ओसदी अग तकदे, भख उट्ठे ज्यों अग्ग ते तांबड़ा ऐ।
अंत कड़क के ध्रीकिआ पकड़ बाहों, धूह खिच्च के परे सटपाइआ ने।
बिल्ली चूहे नूँ जिवें धरीकदी ऐ, तिवें खिच्च के सरीर खटकाया ने।
जदों मूल ना बोलड़ी धरम बीरा, विन्ह नेजड़े नाल पटकाया ने।
दित्ता विच्च प्रचंड दे सुट्ट उसनूँ, जिस दा सिदक नां मूल सटकाया ने।
जीऊंदी भैण शहीद हो गई लोको। मोये वीरां दी देह संभाल दी सी।
इक कुक्ख दी मैण ना जाणनी ऐ, इक गुरां दे धरम नूँ पालदी सी।
अमृत पायके वीर ऐ जाणदी सी, पिच्छे जिन्हां दे जिंद नूँ घालदी सी।
धरम वीर ते धरम दी भैण सुहणी, पिच्छे रही न गई ए नाल ही सी।
शरन कौर सी बीरा दा नाम सुन्दर, सुन्दर प्रभू दी शरन सँभाल बीती।
कीती घाल जो मरद ना सकण करनी, धरम आपणे दी पूरी पाल लीती।
सेवा, सिदक ते प्यार दे महिल उतों, होइ वारने, देहुड़ी जाल लीती।
बीती सिरे ते कशटणी अत्ति भारी, अैपर झल्ल लीती 'सी' नहीं कीती।*

सूचना:- ऊपर वाला प्रसंग चमकौर के युद्ध वाले दिन से दूसरे दिन की रात को बीता, परन्तु उस जंग वाले दिन की जब रात पड़ी (हुई) और सिक्खों ने सतगुरू जी को अपने गुरुमते द्वारा चमकौर से बाहर भेजा तो जैसी बीती उसका संक्षिप्त वर्णन आगामी प्रसंग से समझ आ जायेगा।

---

* चमकौर में शहीद हुए सिंहों का संस्कार अधूरा रहा, इसके पूरे सिरे चढ़ने का हाल आगे कहीं आयेगा।

७२ माछीवाड़े के कौतुक*

१. (अतीत मूर्ति)

चमकौर की गढ़ी से पिछले रास्ते से निकलकर, दुश्मनों में भगदड़ मचा, श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी तीनों के जत्थे सहित मचे हुए घमासान के बीच से निकले जा रहे थे। उस शोर शराबे वाले अँधरे और गर्दगुबार में आप एक ओर से दलों से निकल गये, परन्तु उस कोलाहल में साथी सिक्ख तीनों ही बिछुड़ चके थे। वे भी किसी और शोर-शराबे का हिस्सा बनते फिसलते दूर निकल गये। जब लगभग सवा कोस उस स्थान से गुरू जी निकल गये तो एक स्थान पर बैठ गये। थोड़ी दूर से गुर्जर निकले, एक तो ज़रा दूर था, एक पास आ निकला। उसने गुरू जी को पहचान कर कहा कि हैं। आप तो घेरे में थे, कैसे निकल आये? आपने उसे कहा–बोल न। उसने कहा–मैं पकड़ाकर ईनाम लूँगा। तब सतगुरू ने उसकी ओर कुछ कीमती वस्तु फेंकी कि ले ईनाम यहीं से ले ले। परन्तु वह लेकर भी ऊँची-आवाज़ में शोर मचाने लगा। तब सतगुरू ने अपनी स्वाभाविक फुर्ती द्वारा उस पर वार किया और उसको बोलने से वंचित कर दिया+ और आप आगे की ओर चल पड़े। फिर कुछ रास्ता चलकर आपने एक जंड (एक वृक्ष) के नीचे साँस लिया। बड़ी कठिनाई से नंगे पाँव चल रहे थे, जूते भी पैरों में नहीं थे। एक स्थान पर बेरियों और आकों का झाड़ देखकर गुरू जी इनके बीच में ओट लेकर बैठ गये। थोड़ी देर साँस लेकर फिर तेजी से चले, परन्तु अब शारीरिक शक्ति हार देने लगी, दो दिन दो रातें आनन्दपुर से निकले हो चुकी हैं। उससे पहली रात और दिन भी निकलने की तैयारियों में लगा था। आज अब दो दिन दो रातों से अगली रात है, अर्थात लगभग तेईस पहर सनद्धबद्ध, कमर कसा खोले बिना जागते हुए और जगत के महान कठिन और दुष्कर युद्धों में से महान कठिन युद्ध करते हुए बीता है। शरीर ने जो इस बार सहनशीलता दिखाई है, यह भी एक अनोखी बात है। कौन शूरवीर है जो तीन रातें लगातार न सोये, युद्ध में रहे और लगातार नब्बे या सौ घंटे युद्ध में जुटा रहे? धन्य साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी। स्थिर, अपराजित, अटल मर्जी के मालिक। अब शरीर को थका देखकर भी मन नहीं थका, शरीर का उपाय तुरन्त कर लिया। एक आक के पौधे के फूल तोड़कर खा लिये, शीघ्र असर के लिए आक के पत्ते से दूध टपका कर चाट लिया और इसके नशे से कुछ रास्ता और चल लिये। अब माछीवाड़े की सीमा आ गई, श्री गुरू जी के चरणों में छाले पड़ गये थे, चलना कठिन

* यह प्रसंग १८ पौष सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४५६ (१ जनवरी १९२५) के गुरूपर्व सप्तमी पर 'खालसा समाचार' में प्रकाशित हुआ था।

\+ भाई संतोख सिंह जी लिखते हैं कि दो मुक्कों से उसके दाँत तोड़कर बोलने से रोक दिया। तवारीख खालसा वाले लिखते हैं कि तलवार खींचकर दोनों भाई जो आ पड़े थे, मौत के घाट उतारे।

हो रहा था। एक जगह मिली, छोटे कुएँ के पास घने वृक्ष थे, मानो कोई बाग था। इसके बाहर कुछ दूरी पर एक ओट दिखी और यहाँ ओट देखकर सतगुरू जी बैठ गए। आलस और बढ़ा तो एक टिंड* ली, उसको दुपट्टे में लपेटकर सिरहाने रखा, उसी तरह शस्त्र सजे और कमरकसा बँधे बँधे आप लेट गये। थोड़ा-सा कपड़ा तो कमरकसे के ऊपर से बँधा था, ऊपर लिया और सर्दी की महा ठंडी रात के पिछले पहर नींद में सो गये। वह महापुरुष को देवलोक से ईश्वरीय रंग रमाने आया है, जिसकी सेवा में देवगण और फ़रिश्ते हाज़िर हैं, हां, वह, जिसके चलने के लिए मखमली फर्श बिछते थे, जिसके आगमन के लिए जगत अपना आप न्योछावर करता था, आज देखो! टिंड सिरहाने रखकर ज़मीन पर लेटा है, पैरों में छाले हैं, शरीर थका हुआ है, ऊपर ओढ़ने के लिए कंबली (चादर) तक नहीं, पास कोई दर्द बाँटने वाला प्यारा नहीं, परिवार से बिछुड़ आये हैं, बच्चे कत्ल करवा आये हैं, अँतड़ियों का स्नेह पुर्ज़े पुर्ज़े करवा आये हैं, प्यारे-प्यारों से प्यारे-बलिदान दे आये हैं, जो साथ आये थे, उनसे भी बिछुड़ आये हैं, इस समय अकेले विराज रहे हैं-

धंन धंन गुरदेव जू सुख दुख ब्रिती समान।
हरख शोक जाकै नहीं, राग न द्वैष महान॥२४॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ रुत ६-४२)

देखो गुरू जी एकदम ठंडी, नंगी, कठोर मैली धरती पर जिसका बोझ उतारने आये हैं, भयानक ठंड में विराज रहे हैं। देखो करवट लेकर पड़े हैं, बांई ओर की कमर नीचे को है, दाँयी ओर की ऊपर को है, मुँह उस ओर है जिधर से कोई आ सकता है। पीठ, सिर और चरणों की ओर वृक्षों के कटे हुए तनों की ओट है, दोनों हाथ छाती आगे हैं, गुलिश्त्राण जिसमें हीरा जड़ित है, अँगूठे में ही है। सो रहे हैं। परन्तु हल्की सी आहट पर ही जाग सकते हैं और एक क्षण में तमांचा तीर चला सकते हैं, ऐसे सावधान हैं। गुलिश्त्राण अँगूठे का सहारा होता था जो तीर खींचते समय अँगूठे को छिलने से बचाता था, वह भी हाथ से नहीं उतारा। इस सिपाही मूर्ति को देखना, इस महायोद्धा मूर्ति का दर्शन करना, यह वही मूर्ति है, जो कवियों के दरबार लगाकर कविता और कटाक्ष सुनती और आप कविता कहती थी। हाँ, यह गुलिश्त्राण वाला हाथ वही है जो सिरंदे, रबाब और वीणा पर घूमता कोमलता की हद्द कर देता था। हाँ यह वही मूर्ति है जो दुखियों के लिए पसीजती और मेहर द्वारा अंदर बाहर से घुल घुल जाती थी। यह वही मूर्ति है, जिसकी कद्र करने वाली प्रवृति के कारण जगत के गुणी आकर ओट लेते थे। हाँ, ये वही आँखें इस समय वीररस में मत्त मुंद रही हैं, जिन्होंने जगत के दुख हरने के लिए अपने को कई बार भरा। आह! कौन समझे इस मृदुल और हीरे जैसे कठोर दिल की गाँठ को? हाँ दर्शन करो मूर्ति का। अंदर का किसको पता है इस महान मन वाले का, जो अपनी आँखों के सामने पुत्रों को जूझते और मैदान में मरते देखता और शाबाश शाबाश कहता है? कौन इस गहरे गंभीर अथाह दिल को समझे? हाँ दर्शन करो और नमस्कार करो और कहो-

---

* एक प्रकार का बर्तन, जिसको कुएँ से पानी निकालने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

तूँ धंन हैं साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह।
तूं धंन हैं! तूँ धंन हैं।

२. (आ मिले)

उधर तीनों सिक्ख उस घमासान में बिछुड़े खिसकते फिसलते, शोर मचाते, छिपते-छिपाते उचकते, आवश्यकता पड़ने पर मारपीट करते भागते निकले चले जा रहे थे। ये प्यारे बिछुड़े सतगुरू से अपनी जान बचाने की इच्छा में नहीं थे, परन्तु किसी मुश्किल जगह फुर्ती के सरदार सतगुरू जी ऐसे शीघ्रता के साथ निकल गये कि उसी कठिनाई में से निकलते सिक्ख आपको मिल न सके, और आपकी शीघ्रता की बराबरी न कर सके। परन्तु ये तीनों सतगुरू के अटल वाक्य के भरोसे वाले उसी तारे की सीध में जो सतगुरू जी ने बताया था, चलते गये। रास्ते में दाँयें-बाँये सभी ओर खोजते गये। ये भी अनिद्रा और थकान में थे, परन्तु प्यारे की सेवा का चाव कभी कम नहीं होता था, अनथके-मन चलते गये चलते क्या भागते गये। आखिर पौ फूटने के समय दैव ने उसी ठिकाने पर पहुँचाये जहाँ धरानाथ शीतल कठोर धरा पर विराज रहे थे। कुएँ पर पानी लेने गये तो दया सिंह ने कहा कदम यहाँ से आगे नहीं चलते, या तो थकान हुई है या प्यारे का मिलन होने वाला है। धर्म सिंह ने कहा, वह वृक्षों की ओट में कुछ चमक है। जब आगे बढ़े तो हीरे की चमक और साफ दिखाई दी, इस समय सतगुरू जी का गुलिश्त्राण वाला हाथ आगे से उठकर शीश पर पड़ा था और उसमें जड़ा हीरा चमक मार रहा था। मान सिंह ने आगे जाकर देखा तो खुशी की बाढ़ आ गयी 'प्यारा पा लिया, प्यारा पा लिया' (प्यारा मिल गया)। परन्तु आह! देखो! राठ मान सिंह, अपराजित मान सिंह, अडिग मान सिंह के नेत्र भर आये! हाय! मेरे देवलोक के मालिक किस दशा में कैसे इस कठोर धरती पर नीचे विराज रहे हैं। रोकर दिल में पश्चाताप करके, फिर संभलकर, दिल को कहने लगा– ओ मान सिंह यह ईश्वरीय ज्योति है, आप है, धरा का बोझ हरने आई है। ये तो दुख हमारे लिए डाल रहे हैं, हमारे मन को माया की गुलामी से और हमारे शरीर को पाप की गुलामी से और हमारे देश को तुर्क की गुलामी से स्वतंत्र करने आये हैं। हमें निर्भय पद पर पहुँचाने के लिए भय के साथ लड़ रहे हैं। हमें सुख देने के लिए दुखों के साथ युद्ध रचा रहे हैं। बलिहार जाओ इस पावन मूर्ति के, इसको हर्ष किस बात का और शोक किसका? इसको हानि क्या और लाभ क्या? इसका कौन शत्रु और कौन इसको मोह से प्यारा है? यह एक रस, सदा रंगरत, हरि की मूर्ति, गोबिन्द रूप सूरत है। इस खुशी, वैराग्य, प्रेम और ज्ञान के रंगों में से निकलता मान सिंह पीछे मुड़ा, दया सिंह और धर्म सिंह को इशारा किया, वे भी आये। हाँ, विवश नेत्र भर आये। 'हे खूनी भूमि! तुम अपने भार हरने आये के साथ भी वही रंग प्रयुक्त कर रही हो जो तुम्हारे तल पर आम प्रयुक्त होता है।' परन्तु दोनों नामरसिये शूरवीर थे, मान सिंह की तरह ही खुशी, वैराग्य, प्रेम और ज्ञान के भावों में से निकलकर चरण कमलों के पास आ बैठे, धीरे-धीरे चरण मलने लगे। छाले देखकर फिर नेत्र भर आये। बचा-बचाकर दोनों चरणों को मलने लगे। तीसरे सज्जन जी मानों पहरे पर थे, कमान सँभालकर टहलने लग

पड़े। चरणों पर हाथ-पड़ते ही सतगुरू जी की नींद खुल गयी, परन्तु दिलों के भेदी तथा आत्म इच्छाओं के जानकार प्यार की तरंग से वाकिफ सुख में ही रहे। थोड़ी देर बाद धनुष सँभाल फिर नेत्र खोलकर एकदम उठे। प्यारों को देखा, उन्होंने माथा टेका आपने तीनों को बारी-बारी से छाती के साथ लगाकर प्यार दिया। अब दया सिंह ने विनती की कि सच्चे पातशाह! दिन चढ़ने लगा है, रोशनी होने पर कोई पहचान न ले, इसलिए सूर्य चढ़ने से पहले कहीं छिप जाना चाहिए। सतगुरू जी मुसकराकर बोले:- इस बाग में चले चलो, अगर समय निकल गया तो सुख, अगर नहीं निकला तो इसी की मोर्चेबंदी कर लो, पक्की दीवार है, ओट है, युद्ध रचा देंगे। फुर्ती से कुछ खाने लायक और कुछ और ले आओ। यह कहकर उठे, टाँगें अब अकड़ गयी थीं और पैरों के छाले कदम नीचे नहीं रखने देते थे, कच्छे* (कछना) की मोहरी जांघों के बीच उतर चुकी और चिपक चुकी थी। चलने की कोई हिम्मत नहीं थी, परन्तु बाग़ में जा ही घुसे। 'बाग़ तो अपना लगता है।' कहकर सतगुरू जी ने 'जंग आ पड़ने पर क्या करना होगा' की सोच में चारों ओर नज़र दौड़ायी। बाग़ में घने वृक्षों की ओट में जा बैठे, कुएँ में से पानी निकाला जा रहा था और पानी निकालने वाले ने पहचाना कि कोई वे हैं, जिनकी महिमा मेरा मालिक किया करता है। बाग़ में दावेदार की तरह आ गये हैं, मैं दौड़कर मालिक को ख़बर करूँ, कहीं आवभगत में कोई चूक न हो जाये। जब गुलाबे ने, जहां उसका मालिक था और गुरू घर का मसन्द था, उस श्रमिक से सुना तो भागा आया। यह मसंद गुरू प्रति आकुल मन का तो था, परन्तु था मनमुख+। श्री गुरू जी पर भरोसा रखता था, तथा सेवा पूजा करता था और उस मोहन मूर्ति का प्रेमी भी अच्छा था। सारा हाल देख, सुन और समझकर कहने लगा: यहाँ दिन लुक-छिप कर गुज़ार लेना कठिन है और अँधेरा होने पर मेरे घर चलो, वहाँ पूरा पर्दा रह जायेगा। गुलाबा मीठे स्वभाव का और कुछ अपने पास से देने वाला था, जिस वजह से माछीवाड़े के हिन्दू मुसलमान सभी इसका लिहाज़ मुलाहज़ा अच्छा रखते थे। सतगुरू ने उसके वचन को मान लिया। उसने अब बाग़ की मज़बूती की, मज़दूर को समझा दिया और स्वयं घर से कुछ अन्न पानी लेने के लिए गया। सिंहों ने श्री गुरू जी को पाँच स्नान@ करवाया। इतने में गुलाबे का भाई पंजाबा गर्म दूध छुहारे डालकर उबाला हुआ ले आया। सभी ने दूध पिया। अब गुरू जी की आज्ञा में तीनों सिक्ख और स्वयं महाराज विराज गये और गुलाबा तथा पंजाबा मानों पहरे पर रहे। दिन ढलने के समय सभी उठे, गुलाबे के घर से इस समय लापसी आई और सब ने खायी। गुलाबे ने घर जाकर तैयारी शुरू की और रखवाली के लिए सिंह सावधान हो गये। रात पड़ने पर गुलाबा आकर गुरू जी और सिंहों को अपने घर ले गया। एक चौबारा, जो नया बनाया था# वहाँ गुरू जी को नये पलंग पर

---

* अमृतधारी सिक्खों का विशेष कछना।

+ गुरमत से उलटा।

@ पाँच अंगों को धोना।

'चौबारा साहिब' कहकर यहाँ निशान अभी बताया जाता है।

डेरा करवाया, प्रेमपूर्वक प्रशाद खिलाया। रात सो गये और सवेरे गुरू जी स्नान करने लगे। कछने की मोहरियाँ जाँघों में खिंचकर चिपक चुकी थीं, गर्म पानी से उठाये गये फिर स्नान किया।'

यहाँ अब इस प्रकार की साखियाँ मिलती हैं:- लंगर के लिए जब बकरा आया और गोली मारकर झटकाया गया तो पड़ोस के एक ब्राह्मण ने खटका सुनकर शक़ किया कि क्या है? और टटोलकर उसने पता लगा ही लिया। वह पताशों का एक थाल और एक जनेऊ बीच में रखकर बिना पूछे अंदर आकर चौबारे चढ़ गया और आगे रखकर माथा टेका। यह ब्राह्मण पहले भी गुरू जी के दर्शन कर आया था और गुरू जी पर श्रद्धा भी रखता था, गरीब था और सरल था। सतगुरू जी ने पाँच मुहरें थाल में रख दी। ब्राह्मण आशीष देकर, माथा टेककर और थाल उठाकर घर आ गया। उसका गुरू के साथ प्यार और भाव यह था कि आप सारा कष्ट हमारे धर्म की रक्षा के लिए झेल रहे हो। जनेऊ आगे रखना इस बात की निशानी थी कि मैं आपकी शरण हूँ, मित्रदास हूँ, दर्शन के लिए आया हूँ और आप अपना मित्र समझो। परन्तु ब्राह्मण के चले जाने के बाद गुलाबे की पत्नी घबरायी कि सतगुरू का सुराग़ निकल गया है, ऐसा न हो कि यह पता बाहर निकाल दे। पति को समझाया, वह भी डरा, परन्तु एक ओर उसका विश्वास था, दूसरी ओर डर इसलिए असमंजस में ही रहा। इतने में दूसरे पड़ोसी सैय्यद के घर महाप्रसाद (माँस) की हड्डियाँ जा गिरीं, उन्होंने ऊँची आवाज़ में कहा 'ओय गुलाब! तूने किन लोगों को घर में उतारा है? पर इतने में सैय्यदानी ने क्या देखा कि मुहरें भी गिरी हैं। सैय्यदानी वे मुहरें उठाती जाये और कहती जाये, कोई डर नहीं, बहन! गलती से अगर कुछ कूड़ा करकट हमारी ओर आ पड़ा, तो सुख! 'हमसाये माँ बाप जाये' होते हैं और उधर सैय्यदानी पुत्र पुत्री को मोहरें दिखाकर ऊँची आवाज़ में बोलने से रोकती जाये। पर गुलाबे की पत्नी को इससे भी घबराहट हुई। सतगुरू ने इस कौतुक द्वारा यह जान लिया कि हमसाये लोभी हैं। गुरू जी ने गुलाबे की घबराहट भी देखी। गुलाबे ने विनती की, "कि पातशाह कुछ तुर्क जत्था आ पहुँचा है, आप का अब यहाँ से चले जाना ही अच्छी बात है। यह विनती मैं आपकी सुरक्षा के लिए कर रहा हूँ, पर वैसे मैं भी अपने लिए डरता हूँ, मैं श्री जी से अपनी निर्बलता को भी नहीं छुपाता।" तब गुरू जी कहने लगे, "गुलाबया! घबरा नहीं, वाहिगुरू तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं करेगा, और हम सही सलामत चुपचाप निकल जायेंगे, अकाल हमारे साथ है।"

३. (औरंगज़ेब की ओर पत्र*)

यहाँ माछीवाड़े में सतगुरू जी को आ मिले ग़नी खाँ नबी खाँ दो पठान भाई जो सतगुरू के पास कभी सेवक भी रह चुके थे फिर घोड़े बेचने भी आया जाया करते थे।

* यह अगला लेख इस प्रसंग में इस ग्रंथ के पाँचवें संस्करण के छपते समय जुलाई १९४२ श्रावण १९९९ संवत् गु० ना० सा० ४७३ को सम्मिलित किया गया।

फिर इन्होंने नूरपुर का सैय्यद ला मिलाया जो काज़ी था और जो पहले से श्री गुरू जी का प्रेमी था*। यहाँ सतगुरू जी ने एक पत्र औरंगज़ेब को लिखा। जिसमें किए कसमों वादों को तोड़कर फिर हमला करने के सम्बन्ध में लिखा है। यह पत्र यहाँ से ही भेजना था ताकि सरकारी तौर पर जो सच झूठ की मिलावट भरी ख़बर बादशाह को पहुँचनी है उससे पहले बादशाह को गुरू जी की ओर से सत्य खबर पहुँचे कि जो मनसूबा बादशाह ने या कर्मचारियों ने बनाया था कि कसमें खाकर गुरू जी को क़िले से बाहर निकालो और फिर कसम तोड़कर हमला कर दो और इस तरह के धोखे से मार दो, वह मनसूबा कामयाब नहीं हुआ। फिर बादशाह को पता लगे कि गुरू जी जीवित हैं, अभी लड़ने के लिए तैयार हैं परन्तु शांति से भी बातचीत हो सकती है (देखिये शेर १८)। इस पत्र से यह भी प्रभाव पड़ता है कि राजधानी, फौज गँवाकर और दो पुत्र चमकौर में शहीद करवाकर भी गुरू जी की सुरत नहीं हारी, हौंसला नहीं टूटा, मर्दानगी में कमी नहीं आई और बादशाह से डर नहीं माना। यह पत्र प्रतीत होता है कि भाई दया सिंह जी माछीवाड़े से ही लेकर चले थे और सैय्यद नूरपुरी काज़ी ने और ग़नी ख़ाँ नबी खाँ ने सहायता दी है। पठानों ने तो उनको माछीवाड़े से पार पहुँचाया है, लगभग कोस पर, जब वे ख़तरे में से निकल गये, तब काज़ी ने वह पत्र भाई दया सिंह को पहुँचाया है।+

वह पत्र@ जो माछीवाड़े से सतगुरू ने औरंगज़ेब को भेजा टीका सहित इस प्रकार है:- (नामह गुरू गोबिन्द सिंह बा- औरंगज़ेब)

---

* नूरपुरं काज़ी भनवासी। महरम हुतो आदि अबिनासी। (गु॰ बि॰ सु॰ सिंह)
तवारीख खालसा ने इस काज़ी को, गुरू जी को छोटी उम्र में, फारसी पढ़ाता बताया है और नाम दिया है 'इनायत अली'। पर जिसकी वंश खास हुक्मनामा बताया है उसके वंशज का नाम 'पीर मुहम्मद' बताते हैं। तवारीख खालसा ने इस ठिकाने पर तीन काज़ियों के नाम दिए हैं। काज़ी 'इनायत अली', काज़ी 'पीर मुहम्मद' सलोह वाला और सैय्यद 'हसन अली' मनी माजरे वाला।

\+ सारे ब्यौरे और इस परिणाम पर पहुँचने के लिए ऐतिहासिक खोज और दलीलों के लिए देखिए ज़फरनामा सटिप्पणी, कर्त्ताकृत टीका वाला, जो तैयार हो रहा है और शीघ्र ही छपेगा।

@ यह पत्र पटना साहिब के प्रसिद्ध महन्त बाबा सुमेर सिंह जी के पास था। आप उच्च कोटि के विद्वान, हिन्दी के अच्छे कवि और सिक्ख रहत मर्यादा में पक्के और वाणी नाम के प्रेमी सज्जन हुए हैं। आप के पास प्राचीन ग्रंथ और पुस्तकालय बहुत बड़ा था। यह पत्र आप जी ने बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर, हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध लेखक जी को १९४९ वि॰ के लगभग लिखवा दिया था। (देखें नागरी प्रचारिणी पत्रिका, श्रावण १९७९ वि॰) उक्त विद्वान रत्नाकर जी ने यह पत्र श्रीमान सददार उमराव सिंह जी शेरगिल मजीठिये जी को लिखवाया था। सरदार जी बहुत विद्या प्रेमी और खोजी थे। आप ही पेरिस से सुखमनी साहिब का फारसी तर्जुमा किसी पुरातन कवि का किया हुआ लाये थे और उस पर आप ने भूमिका लिखी थी, जो पुस्तक में छप गयी थी और अब खालसा कालेज अमृतसर से मिलती है। श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के इस पहले पत्र की एक कापी सरदार उमराव सिंह जी ने सरदार ब॰ काहन सिंह जी को दी थी। एक दो वर्ष हुए इस बारे में ज़िक्र आने पर हमने आप जी से इस पत्र की एक कापी माँगी। आपने वचन दिया कि शिमला जाकर भेजेंगे। आप जी ने कुछ समय बाद इसकी कापी खालसा कालेज के प्रिंसीपल के पास हमें पहुँचाने के लिए भेजी, ग़ालबन इसलिए कि लगते हाथ एक कापी इस अमूल्य वस्तु की कालेज में भी उपस्थित हो जाये। अब एक कापी खालसा कालेज में है और एक हमारे पास पहुँची है। इस प्रकार यह अमूल्य वस्तु हमें सरदार उमराव सिंह जी से प्राप्त हुई है, जिसके लिए आपका परम धन्यवाद है।

१. बनामे ख़ुदावंदे तेग़ो तबर।
ख़ुदावंदे तीरो सनानो सिपर।
(तलवार और तबर (एक शस्त्र) के मालिक (ख़ुदा) के नाम सहित, तीर, अणी और ढ़ाल के मालिक (ख़ुदा) के नाम सहित)

२. ख़ुदावंदे मरदाने जंग आज़मा।
ख़ुदावंदे अस्पाने पा दर हवा।
(वीर मर्दों के मालिक (ख़ुदा) के नाम सहित, तीखी दौड़ वाले घोड़ों के मालिक (ख़ुदा) के नाम सहित (हम यह नामा लिखते हैं)।

३. हमां को तुरा पादशाही बिदाद।
बमा दौलते दीं पनाही बिदाद।
(उस (ईश्वर) ने ही कि जिसने तुझे बादशाही दी है हमें दीन पनाही की दौलत दी है, भाव हमें धर्म की रक्षा का काम दिया है।)

४. तुरा तुर्कताज़ी ब-मकरो रिया।
मरा चारह साज़ी बसिदको सफ़ा।
(तुम्हारी दौड़-धूप (या लूटमार) धोखे और छल में है, मेरी तदबीर सच्चाई और विश्वास के साथ है।)

५. न ज़ेबद तुरा नाम औरंगज़ेब।
कि औरंगज़ेब निआयद फरेब।
(तुझे औरंगज़ेबा नाम नहीं शोभा देता क्योंकि औरंगज़ेब (बादशाहों) से छंल नहीं होना चाहिए।)

६. न तसबीहत अज़ सजो रिश्तहए बेश।
कज़ां दाना साज़ी वज़ीं दाना, खेश।
(तुम्हारी तसबी (नाम स्मरण के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली माला) 'मनके और धागे' से ज्यादा कुछ नहीं, क्योंकि तुम मनकों को दाना* बनाते हो और धागे को अपना जाल।)

७. तू ख़ाके पिदर रा बकिरदारे जिश्त।
बख़ूने बिरादर बिदादी सरिश्त।
(तुमने अपने पिता की मिट्टी को बुरे कार्यों द्वारा और भाई के रक्त से गूंथा।)

८. वज़ां खान्हाए ख़ाम करदी बिना।
बराए दरे दौलते खेश रा।
(तुमने उससे कच्चा घर बनाया, अपने रहने के लिए।)

---

* पक्षी पकड़ने के लिए जो दाना या चुग्गा जाल पर डाला जाता है।

९. मन अकनूँ बअफ़ज़ाले पुरुषे अकाल।
कुनम आबे आहन चुनां बर्शकाल।
(मैं अब अकाल पुरुष की कृपा से लोहे के पानी (धार) के साथ बरसात की तरह हमला करूँगा)।

१०. ज़िकोहे दकनतिश्नह काम आमदी।
ज़ि मैवाड़ हम तल्ख़ काम आमदी।
(दक्षिण के पहाड़ों में से तुम असफल आये हो, और मेवाड़ से भी तुम प्यासे आये हो)।

११. बदीं सू चु अकनूँ निगाहत खद।
कि आं तल्ख़िओ तिश्नगीयत खद।
(इस ओर अब अगर तुम्हारी नज़र फिरी कि तुम्हारी वह (गले की) तलख़ी और प्यास जाती रहे। तो)।

१२. चुनां आतिशे ज़ेरि नालतनिहंम।
ज़ि पंजाब आबत नख़ुरदन दिहम्म।
(तुम्हारे पैरों के नीचे इस तरह आग रखूँगा कि पंजाब में से तुझे पानी नहीं पीने दूँगा (भाव ऐसा बेकरार कर दूँगा कि...)।

१३. चिह शुद गरशिगाले बमकरोरिया।
हमी कुश्त दो बच्हाए शेर रा।
(क्या हुआ अगर गीदड़ ने छल फरेब से शेर के दो बच्चे मार दिये)।

१४. चु शेरे ज़िआं ज़िंदा मानद हमीं।
ज़ि तो इंतकामे सतानद हमीं।
(जब कि शेर बब्बर (तुंदखो) अभी जीवित है तुझसे वह बदला लेगा)।

१५. न दीगर गराइम बनामे ख़ुदात।
कि दीदम ख़ुदाओ कलामे ख़ुदात।
(तुझसे तेरे ख़ुदा के नाम पर मैं अब कुछ नहीं माँगता, क्योंकि मैंने तेरे ख़ुदा को और तेरे ख़ुदा के कलाम को देख लिया है)।

१६. ए सौगन्दे तो ऐतबारे नमांद।
मरा जुज़ ब-शमशीर कारे न मांद।
(तुम्हारी सौगन्ध पर मुझे विश्वास नहीं रहा, मुझे (अब) सिवाय तलवार के और काम नहीं रहा)।

१७. तूई गुर्गे बारां कशीदह अगर।
निहंम नीज़ शेरे ज़ि-दामे बदर।
(अगर तुम बहुत चालाक (ज़माना दीदह) व्याघ्र हो, शेर को फिर भी तुम्हारे जाल से बाहर रखूँगा)।

१८. अगर बाज़गुफ़तो शुनीदत बमास्त।
नुमाइम तुरा जादह ए पाको रास्त।
(अगर तुम्हारी फिर मुझ से बातचीत हुई, तो तुम्हें सीधा और पवित्र रास्ता दिखलाऊँगा)।

१९. बमैदां दो लश्कर सफ़ारा शवंद।
जूदी बहम आशकारा शवंद।
(मैदान में दो लश्कर पंक्तियाँ बाँध लें और जल्दी से आपस में प्रगट हो जायें)।

२०. मियाने दो मानद व फरसंग राह।
(दोनों के बीच में हो फासला तीन मील का)।

....

२१. अज़ां पस दरां अर्स ए कारज़ार।
मनायम जुरीद़ह तू बा दो सवार।
(उसके बाद उस लड़ाई के समय मैं अकेला आऊँगा तुम दो सवारों सहित आना)।

२२. तूअज़नाज़ोनेमत समर खुर्दई।
ज़ि जंगी जुवाना न बर खुर्दई।
(तुमने लाड और नियामतों के फल खाये हुए हैं, (पर) जंग के बहादुरों के सामने तू कभी आप नहीं हुआ)।

२३. बमैदां बिआ खुद बतेग़ो तबर।
मकुन ख़लक ख़ल्लाक ज़ेरो ज़बर।
(तलवार और तबर के साथ आप मैदान में आ, खालिक की खलकत को ऊपर नीचे (तबाह, बरबाद) न कर)।

अपना यह कार्य करके सगतुरू जी माछीवाड़े से चले गये और किसी को पता न चला। माछीवाड़े से चलकर श्री गुरू जी घुलाल, ललां, कुबे, कटाणी रामपुर होते हुए कनोच पहँचे। यहाँ आप बैठे थे कि फत्ता नाक का एक जट्ट जो आपका सिक्ख था आ मिला और सेवा पूछने लगा। गुरू जी ने कहा अपनी घोड़ी ला दो। यह घर जाकर घोड़ी तो नहीं लाया, परन्तु एक छोटे टट्टू (अथवा घटिया किस्म का छोटे कद वाला घोड़ा) पर काठी डालकर ले आया, जो बहुत कम ऊँचा था। गुरू जी देखकर हँसे और कहने लगे, फत्ते! बड़ी घोड़ी लेकर आ, यह टट्टू तो हमारी सवारी के योग्य नहीं। फत्ते ने बहाना बनाते कहा, पातशाह वह तो मेरा दामाद ले गया है। गुरू जी ने कहा बहाना मत कर, घोड़ी ला दे, आगे के गाँव से वापिस भेज देंगे और वहाँ से और ले लेंगे। परन्तु फत्ते ने झूठ का पल्ला पकड़े रखा और घोड़ी नहीं दी। घर गया तो बड़ी घोड़ी को साँप डस चुका था और उसी साँप के डंक से आप भी चल बसा। यहाँ से रवाना होकर गुरू जी आलमगीर जोध मोही होते हुए हेहर आ अपने सिक्ख कृपाल उदासी के डेरे पर उतरे।

---

७३ सरहिन्द का साका*

इधर सतगुरू जी मालवे को चले जा रहे हेहर पहुँचे हैं। कहीं दम लेने के लिए ठहरते हैं, कहीं दिन गुजारते हैं और कहीं रात। उधर छोटे साहिबज़ादों के साथ सरहिन्द में जो गुज़री वह इस प्रकार है।

रोपड़ के समीप घमासान मचा था उसमें श्री गुरू जी के माता जी—श्री माता गुजरी जी—और छोटे दोनों साहिबज़ादे गमन करती भीड़ से बिछुड़ गये थे। उस समय गंगू मिल गया जिसका वर्णन गुर बिलास में ऐसे किया गया है:-

हुतो मसंद नीच इक पापी॥
बिप्प बंस चंडार सु खापी॥२४०॥
रोपर ते बहु राहु भुलाई॥
निज पुर को लै गयो कसाई॥
साहिबज़ादे दोऊ कुमार॥
तीजे दादी साथ निहार॥२४१॥
एक आध अन खिजमत दार॥
खच्चर धन घोरे जुग चार॥
पलक हजूर सु रहे पिछारी॥
फरक पयो रजनी मधकारी॥२४२॥
बिप्प कही मिलते हैं अबी॥
ए आगे जावत हैं सबी॥
यौ कह कर दोखी लै धायो॥
आपन ग्राम नीच लै आयो॥२४३॥
खच्चर माया निरख गवार॥
बूडो पापी लोभ मझार॥
ऐस बिचार गाँव लै आयो॥
माता जी यह भेद न पायौ॥२४४॥ (गु॰ बि॰ सु॰ सिंह, धि॰ २१)

इस आपदा में माता जी ने गंगू के इस सहारे को ही उत्तम समझा, और मुसीबतों को निमन्त्रण देते हुए ब्राह्मण के घर जा पहुँचे। उसने घर की अंदर वाली कोठरी में इनको ठहराया, जहाँ एक चटाई पर माता जी ने अपने लाड़ प्यार से पाले पोतों को सुला दिया।

---

* यह प्रसंग सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४२७ (सन् १८९५) में साहिबज़ादा ज़ोरावर सिंह और फ़तह सिंह जी के शहीदी पर्व पर 'बलिदान' शीर्षक अधीन प्रकाशित हुआ था।

माता आज आँख के तारों को चटाई पर सुलाकर रज़ा की ओर देख रही है। क्षण बाद दाँयीं जांघ पर ज़ोरावर सिंह और बांयी पर फ़तेह सिंह का सिर रख लिया। करीब आधी रात तक साहिबज़ादे आराम की नींद सोते रहे परन्तु अब प्यारी-प्यारी रसीली आँखों जिनकी ओर माता जी, ईश्वर जाने किस गहरे प्रेम के साथ देख रहे थे, कमल की तरह खोल दीं। प्यारी माता ने दोनों को गले के साथ लगाया, प्यार किया। इस प्रेम में माता की आँखों से चार आँसू गिरे जो टप टप करते फ़तेह सिंह जी की गुलाब जैसी गालों पर पड़े। ज़ोरावर सिंह जी माता की ओर देखकर और गले से लगकर कहने लगे: "माता जी! आप क्यों उदास होते हो अकाल पुरुष हमारे अंग संग है।" इस उत्तर को सुन और अपने लाडले पौत्रों में पिता पितामह के पूरे प्रतिबिम्ब देख माता के हृदय में प्रेम की खींच का ऐसा ज़ोर पड़ा कि स्नेह के पुतलों को और भी छाती के साथ दबाया, और आँखें बंद हो गयीं, फिर तुरन्त ही माता जी ने आँखें खोलीं। त्रिपहर के बाद अकाल पुरुष का आसरा ठानकर उठे, जल मँगवाया, स्नान किया करवाया और जपुजी साहिब का पाठ सुना।

पाँच अथवा छ: पौष १६६१ की रात्रि को गुरू साहिब आनन्दपुर से निकले थे और माता जी ७ पौष की सुबह के करीब खेड़ी पहुँचे थे। आज ७ पौष का दिन इस घर में बीता। सेवक जो साथ था वह दोपहर का ही भेद निकालने के लिए भेजा हुआ था, आ गया, परन्तु उसको पक्का पता कुछ न लगा। उसको माता जी ने सामान ठीक करने पर लगाया:-

दास गयो थो वहिर को सो तिस छिन आयो।।
तिमर भए ते वसत सभि संभारनि लाइओ।। (सू॰ प्र॰)

सामान संभालकर दास ने बताया कि मुहरों वाली ख़ुरजी* है नहीं, और सामान सारा पड़ा है तब माता जी ने गंगू को बुलाकर पूछा कि "काका अगर आपने यहाँ से ख़ुरजी संभाली है तो अच्छा"। उसने कहा कि "मैंने आपको पहले ही कह दिया था कि अपना आप संभालकर रखना, इस गाँव में चोर बहुत हैं।" माता जी ने कहा, "मिश्र जी! आपके बिना तो और कोई आपके घर में नहीं आ सकता, परन्तु अगर कोई चोरी लेकर ले ही गया है तो वाह वाह।" तब रसोइये ने लाल पीला होकर उत्तर दिया, "वाह वाह! यह नेकी का फल मुझे देने लगे हो, अपनी जान तली पर रखकर आपको बचाया, अपने घर आश्रय दिया, अगर कोई काज़ी या नवाब सुन ले तो मेरा बाल बच्चा सब मारा जाये। हाय हाय! अगर मुझे यह फल मिलना था तो मैंने क्यों एक बाग़ी की माँ और पुत्रों को मौत और विपत्ति के मुँह से छुड़ाया? हाय भगवान, यह कलियुग है कलियुग! हरे हरे नेकी बरबाद ऐसे ही होती है।" माता जी ने बहुत धैर्य के साथ उत्तर दिया: "मिश्र जी! मैंने तो आपको दोष नहीं लगाया, एक सही बात की है, चलो अच्छा वाह वाह जिसके भाग्य का था वह ले गया। वाहिगुरू की जो इच्छा हो, परवान है (स्वीकार है), आप क्रोध को दूर करो।"

---

* जीन के ऊपर रखा हुआ थैला, जिसमें सवार अपना ज़रूरी सामान रखता है।

ये कोमल वचन गंगू के बेईमान मन पर केवल इतना प्रभाव रखते थे, जितना एक ज्वालामुखी पर पानी का छींटा। उसी बनावटी क्रोध में उत्तर दिया: "नहीं नहीं, आप खत्री* बहुत कृतघ्न हो, इसीलिए परशुराम ने आपका नाश किया था, अब मैं भी आपको नाशुक्री का स्वाद चखाता हूँ। अभी मुगल हाकिम के हवाले करता हूँ, तब इस आराम और मेरी दया की क़द्र पड़ेगी।"

माता बोली, "मिश्र जी! क्यों क्रोधित हो रहे हो? हम तुम्हें चोर नहीं बनाते, क्योंकि हमने किसी को देखा नहीं, एक सहज स्वाभाविक बात पूछी है, इसलिए शांति करो। जब हम ठिकाने पहुँचेंगे आपके अंदर बाहर भर देंगे।"

इस धन ने पृथ्वी पर वे वे उपद्रव करवाये हैं कि जिनको सुनकर प्राण काँप उठते हैं। यह बेईमान धन की खातिर ही माता जी को अपने घर लाया था, वह धन तो उसने काबू कर लिया था, अब यह उपाय करने लगा कि कैसे ये यहाँ से निकलें, क्योंकि अगर तुर्कों को पता चल गया कि मैंने पनाह दी है तो मैं भी फँस जाऊँगा, फिर धन की मौज कौन लेगा? यह विचार कर अब वह दादी-पोतों को पकड़ाना चाहता था, इसलिए वह ऐसे कुटिल मनोरथ के कारण गाँव के चौधरी को साथ लेकर मोरंडे चला गया। जानी खाँ मानी खाँ+ दो बड़ों को पता दिया, और प्रातःकाल ही ये खेड़ी आ पहुँचे।

जानी खाँ माता जी को कहने लगा: "माई जी! आप पौत्रों सहित बाहर आ जाइये, आपको नवाब साहब के यहाँ ले जाना है।" दुखिया माता ने उत्तर दिया: "भाई! इन बालकों ने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा इनको क्यों यातनाएँ देते हो।" सरदार ने उत्तर दिया कि "यातना इनको कोई नहीं मिलेगी, आप घबरायें नहीं, केवल नवाब के सामने पेश करना है, और कुछ नहीं।" लाचार वृद्धा माता चल पड़ी। आह! प्यारे पाठक! चली नहीं, चाह से लिये, लाडों से पाले, ईश्वरीय रंग वाले बच्चे, खालसा धर्म की उम्मीदों के नौनिहाल श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की आँखों के तारे, माता के प्यारे लाल, सत्य धर्म के लिए बलिदान करने के लिए, वृद्धा माता साथ ले, निरर्थक है जिसका जन्म ऐसे ब्राह्मण के घर से चली। रथ में बिठायी गयी, क्षण मात्र में धर्मराज के वायुयान जैसा रथ चल पड़ा। ठंडी हवा चल रही है, चादरें डाल डालकर छाती के साथ लगा-लगाकर माता रक्षा करती है, परन्तु पौष की पवन कपड़े बींध-बींध कर जा चुभती है। सूरज उगते ही इस तरह मोरंडे पहुँचे। यहाँ@ कुछ देर ठहरकर सरहिन्द की ओर कूच हुई। जब लौढे# पहर के बाद शाम के समय सरहिन्द पहुँचे तो बुर्ज$ में कैद किये गये।

---

* क्षत्रिय।

\+ मोरंडे गिरफ्तार करने वाला रंघड़ (इस्लाममत धारण करने वाला राजपूत) था, यह बात सूरज प्रताप की रुत ६, अध्याय १, अंक ७, ८, ९, १० से भी विदित होती है।

@ मोरंडे साहिबज़ादों के ठहरने के स्थान पर गुरुद्वारा है। खेड़ी भी निशान है।

\# सूर्य के पश्चिम की ओर उतरने का समय।

$ यह बुर्ज कचहरी घर के नज़दीक चारदीवारी के ऊपर था। गुरुद्वारे के साथ ही अब तक ज्यों का त्यों विद्यमान है।

शहर में और बाज़ार में गली कूचे में बात फैल गयी कि गुरू जी के बेटे पकड़े गये हैं। यह ख़बर सारे नगर में और नवाब के अपने महलों में भी फैल गयी थी। हर स्थान पर हाहाकार हो रही थी और हर घर में सहम छा रहा था।

ठंडे बुर्ज में जगतगुरू जी की माता और दो बेटे रखे गये। सर्दी की बेहद ठंडी रात इस आपदा के कष्टों में नहीं कर सकती। आह! माता गुजरी। कहाँ हैं तेरे मंदिर, गर्म मकान, दोहरे चौहरे तोशक और रजाइयों वाले घर? वे पातशाही सुखों से भरे स्थान किधर गये। उस सुख और सम्पदा को क्या हुआ? त्रिलोक का नाथ तुम्हारा पुत्र, जो तुम्हारे पैर में काँटा चुभता न देख सके, तुम्हारे पास नहीं। तुम इस समय किस आपदा में हो? शूरवीर बड़े पौत्र कहाँ चले गये? आह! प्यारी माता। तुमने क्या-क्या नहीं हम पापियों के लिए बर्दाश्त किया। तुम्हारी गोद में खेलते लाल भी मेहमान हैं, और तुमने आप भी अपनी जान तली पर रखी हुई है। सारे बलिदान देश के छुटकारे के लिए हैं।

मृदुल और कोमल जिगर के टुकड़ों को छाती के साथ लगाकर माता रात बिता रही है। बच्चों ने वृद्धा माता के सीने के साथ जब सिर टिकाया तो नींद आ गयी, परन्तु वृद्धा माता की आँखों में नींद कहाँ? वैसे ही चिन्ता के बहाव में ही ज़रा आँख बंद हुई तो क्या देखती है कि बड़े पोते दोनों ही तीरों से छलनी हो गये हैं इनको माता हिला-हिलाकर मानो कहती है-

"जागो जागो वे लाल दुलारे।
बुड्ढी माता पई वे पुकारे,
केही नींद तुसां नूँ प्यारी,
उठो उठो वे मेरे प्यारे।"

जब माता पीछे की ओर देखती है तो एक भारी भरकम सा छोटे पोतों को भी उठाकर भागा। माता उठी कि पकड़ूँ, परन्तु आँख खुल गयी, माता जी का हृदय इस समय एक बारगी अन्तर्मुखी दशा में हो गया, दुख सुख के दाता अकाल पुरुष की सेवा में प्रार्थना करने में लीन हो गया।

"हे अकाल पुरुष! कृपा करो, अपने प्यारों की इस विपदा को दूर करो, बिछुड़ों को मिलाओ, इन मासूम बच्चों को पापियों से छुटकारा बख्शो (दिलवाओ), आदि।" इस तरह की विनती में माता ऐसी लीन हुई कि पूर्वोत्तर पवन, जो अब बहुत वेग से बह रही थी और उस बुर्ज के दरवाज़ों में से सब कुछ लुटा बैठी वृद्धा माता के शरीर की गर्मी को लूटने के लिए हल्ले कर-कर आ रही थी, कुछ ज्यादा नहीं महसूस हुई, सत्य है:-

जाकउ मुसकलु अति बणै ढोई कोए न देए॥
लागू होए दुसमना साक भि भजि खले॥
सभो भजै आसरा चुकै सभु असराउ॥
चिति आवै ओसु पारब्रहमु लगै न तती वाउ॥"

महाशीत की ठंडी और आपदा विपदा की दुख भरी रात पश्चिम की ओर चल पड़ी। पूर्व दिशा की ओर से पीला-पीला सूर्य सुनहरी और गर्मागर्म किरणों के बाण मारता ठंडे हुए पदार्थों को तप्त करने का यत्न करता हुआ चढ़ा। हमारी माता जी के बुर्ज में भी धूप आई, परन्तु ठंडी पवन बहती ही रही।

ज़ोरावर सिंह जी उठकर बुर्ज के दरवाज़ों में से नीचे देखने लगे, देख-देखकर कहने लगे "माता जी! अगर यत्न करें तो इधर से निकल ही चलें।" माता बोली: "बीबे* जी। आगे नीचे खाई लगती है हर जगह तुर्क सिपाही खड़े हैं। पिता जी आपके का कुछ पता नहीं कहाँ हैं, भाइयों, माता की कोई खबर नहीं, मेरी आँखों के लिए अब हर ओर बियाबान और जंगल हैं, हाँ, जब होश ज़ोर मारती है और मन परमेश्वर के ध्यान में लगता है, तब उस दीनबन्धु के सहारे टिकता है। अथवा अब तुम दोनों बुढ़िया की लाठी नज़र आते हो–

'बल छुटकियो बंधन परे कछू न होत उपाय।।
कहु नानक अब ओट हरि गजि जिउ होहु सहाय।।'

इतने में मोरंडे वाला रंघड़ सामने आ खड़ा हुआ और कहने लगा: "माता! इन बच्चों को ज़रा भेजो।"

माता–इनको क्या करोगे?

रंघड–माई जी! सरहिंद के नवाब वज़ीर खाँ का दरबार लगा हुआ है और वह आपके बच्चों को देखना चाहता है।

माता–नवाब को कहो कि इन मासूमों से क्या लेना है?

रंघड़ चला गया, परन्तु फिर तुरन्त आ गया और कहने लगा कि नवाब कहता है: आप न डरो, इनका बाल बाँका नहीं होगा, सिर्फ इनसे मुलाकात करनी चाहता है।

आप कुछ शक न करें, मेरा ज़िम्मा रहा, मैं आपको ज्यों के त्यों ला दूँगा।+

माता को इन वचनों पर कुछ विश्वास नहीं था। जैसे जैसे वह मीठी बातें करे माता पोतों को और ज़ोर से चिपकाती जाये।

इस समय माता गुजरी जी के आगे कितनी मुश्किल है, किस तरह मासूम बच्चों को वैरियों के हाथों से बचायें और कैसे न बचायें? जानती हैं, परन्तु फिर बच्चे पापी के हाथ पकड़ाती हैं। नहीं नहीं, भारत भूमि के पापों के बदले भेंट होने के लिए अपने लाल दुलारे यज्ञवेदी की ओर भेजती हैं। बहुत निडर हैं, झिझक नहीं रहे। माता ने मिल मिलकर प्यार दे-देकर भेजा, चलते समय कानों में माता ने कुछ कहा, वह मंत्र था धर्म में दृढ़ता का। माता बाहर देखने के लिए खड़ी हुई, सीढ़ियाँ@ उतर रहे हैं कलगियों वाले के नौ-निहाल। जांघों में घुटनों तक लम्बी कछनी, गले में चुस्त कुर्ते और अंगरखे, कमर से रेशमी पटके

---

* भला, अच्छा।

+ पिखहि नवाब, पठावै फेर।
चाहत सभा बिखै इक बेर। (सूरज प्रताप)

@ ये सीढ़ियाँ अभी तक मौजूद हैं।

(वस्त्र) और अपने शरीर के आकार से मेल खाती कृपाणें, सिर पर सीधी पगड़ियाँ और ऊपर दुपट्टे। नवयौवन से सम्पन्न सरू (वृक्ष) जैसा कद, डील डौल सभी मानों साँचे में ढला हुआ। चेहरे गोरे-गोरे जैसे चाँद के टुकड़े होते हैं, शक्ल मनमोहक मानो कोई देवते इस संसार में आ गये हैं। साहिबज़ादे किस हौंसले के साथ जा रहे हैं, माता खड़ी होकर देख रही है, वे कचहरी की ओट में घूम गये। बैठ जाओ प्यारी माता! तुम्हारे लाल तुम्हारी आँखों से ओझल हो गये।

दरबार लगा हुआ था*, बड़े-बड़े हिन्दू और मुसलमान रईस बैठे थे, नवाब वज़ीर खाँ–मोटा, चेहरे पर शीतलता के दाग़, आँखें हाथी जैसी छोटी-छोटी बीचों बीच सज रहा था, शेरदिल बच्चे बेधड़क जा खड़े हुए। मोरंडे वाले रंघड़ ने कहा, बरखुरदारो! तख़्त पर सरहिन्द के नवाब साहिब विराजमान हैं, इनको झुककर सलाम करो।

ज़ोरावर सिंह–गुरू परमेश्वर के अलावा किसी के आगे नहीं झुकते। यह दिलेरी की बात सुनकर सब हैरान हो गये। नवाब कुछ किचकिचाया, परन्तु कुछ आदर भी दिल में उपजा। मोरंडे वाले ने कहा: "देखो कुछ दिन हुए कि तुम्हारा पिता चमकौर में सारे साथियों सहित पकड़ा गया और मारा गया है। तुम उसके बच्चे बच गये हो, और शुक्र है कि इस्लामी दरबार में पहुँच गये हो, तुम्हारे कर्म बहुत उत्तम हैं। नवाब साहिब कितने मेहरबान है तुम्हारे ऊपर।"

ज़ोरावर सिंह–हमारे पिता जी जीवित हैं, हमारे भाग्य सदा ही उत्तम हैं।

वज़ीर खाँ और उसके सलाहकार पहले यही गुप्त विचार कर चुके थे कि बच्चों को मुसलमान बना लेना मार देने से बहुत बड़ी जीत है। इसलिए पास बुलाकर और मेहरबान स्वर बनाकर बोला: बच्चो! देखो, तुम्हारा अपना अब कोई नहीं, तुम पर मुझे बहुत तरस आया है, चाहिए तो यह था कि दोनों मार दिये जाओ, परन्तु नहीं, तुम्हारी आयु पर तरस आता है, तुम जीते रहो और बड़े नवाब बनो और सुख भोगो, बस इतनी बात मान लो कि हमारे धर्म में आ जाओ। फिर तुम्हारी हवा की ओर कोई नहीं देखेगा। तुम बड़े खान बहादुर कि नवाब हो जाओगे, ऐश और सुख की उम्र भोगोगे, दीन दुनिया का सुख पाओगे। परन्तु साहिबज़ादे सिर ही फेरते (इनकार में) रहे। नवाब ने बालक विदा किये और कहा बरखुरदारो और सोच लो, एक ओर तो मौत है इस छोटी आयु में, दूसरी ओर तुम्हारे लिए सुख ही सुख है। बच्चे न बनो, समझदारी करो और सुख का रास्ता अपना लो। जाओ अच्छे बच्चो सोच लो।

लगता है कि अगले दिन फिर सभा में बुलाये गये और फिर प्रेरणा हुई और कहा गया कि तुम अगर इस्लाम में आ जाओ तो बादशाह तक पहुँच करवा देंगे। बादशाह तुम्हें प्यार करेगा और अपने पास रख लेगा, बेटों जैसे पालेगा। हो सकता है अपनी बेटी के साथ विवाह करके सूबेदार बना दे यथा:–

---

* आज अब पौष की दस हो चुकी थी।

तुमै साह को मेल करावैं।
बहु देसन को राज दिवावै।
पट भूखन तुम अनगन दै है।
दुखतर सहित सूब तुम कै है। (गु॰ बि॰ म॰ सिंह)

इस तरह की आकर्षण की बातें सुनकर ज़ोरावर सिंह ने छोटे भाई की ओर एक आश्चर्य और प्रेमभरी नज़र से देखा और धीमे से कहा: "बताइये भाई जी! ये क्या कहते हैं?" देवलोक से आए, जगत गुरू जी की अंश, योगी जननी के पैदा किये, देवता रूप माता द्वारा सिखाये पढ़ाये, दादा गुरू जी के देवत्व से वाकिफ़ और अपना आप कुर्बान करने से प्रभावित, साहिबज़ादे फ़तेह सिंह ने भाई को उत्तर दिया: भाई जी (भैय्या)! चलो इस जगत से कूच करें। हम, हैं! गुरू नानक देव ज़ी के सत्य धर्म को त्याग कर नाश होने वाले सुखों के लिए म्लेच्छ बनें? पिता, दादा और परदादा के नाम पर बट्टा लगायें? कभी नहीं, समय आ पहुँचा है। दादा जी की तरह शीश दे दें परन्तु धर्म न दें।*

यह उत्तर चाहे बहुत धीमी आवाज़ में कहा गया था, परन्तु दरबार में एक चुप्पी छाई हुई थी, सब ने सुन लिया और आपस में आश्चर्यचकित हुए आँखें मारने लगे।

अब ज़ोरावर सिंह ने ऊँची आवाज़ में कहा: हम अपना दीन गँवाने के लिए तैयार नहीं हैं, न स्वर्ग की ज़रूरत है, न दुनिया की सरदारी की। हम अपने धर्म पर खड़े हैं।

"कबीर दीनु गवाइआ दुनी सिउ दुनी न चाली साथि।
पाए कुहाड़ा मारिआ गाफलि अपुनै हाथि।"

वज़ीर खाँ अत्यधिक क्रोधित होकर बोला: "अगर नहीं मानोगे तो जान से मारे जाओगे।" सुच्चानंद ने करीब से सुर में सुर मिलाई; "हाँ हाँ! ठीक है, साँप के बच्चे पैदा होते ही मार देने चाहिए।"

ज़ोरावर सिंह ने उत्तर दिया, "कुछ परवाह नहीं, मौत एक दिन ज़रूर आयेगी, फिर आज आ जायेगी तो क्या बुरा होगा? हम मरने के लिए तैयार हैं, परन्तु धर्म त्यागने के लिए नहीं+।"

फ़तेह सिंह– **"कबीर जिसु मरनै ते जगु डरे मेरे मन आनन्दु॥**
मरने ही ते पाईऐ पूरन परमानन्द॥"

(सुच्चानंद की ओर मुँह करके) मौत से वह डरे जो सिरजनहार (सृजनकर्त्ता) से बिछुड़ा हो।

अब हमारे सारे दरबार में खलबली मच गयी, बड़े-बड़े और बूढ़े सरदार अँगुलियाँ मुँह में दबाकर रह गये कि ये बच्चे हैं कि कोई फरिश्ते हैं? दुष्ट मन वालों को बच्चों की

* फ़तह सिंह ने कहा: धरम पिता ये जिउं रख लीना। शुभ जस ते जग पूरन कीना।
तीन लोक महिं साका चीना। हम तुम कउ तिम ही बनि आवै।
सिर दिहु तुरकन मूल गवावै। (सूरज प्रताप पृष्ठ ५९४९)

\+ आपन हम तज, और न धारें।। (गु॰ बि॰ भा॰ म॰ सिंह)

दृढ़ता देखकर अत्यधिक पीड़ा हुई।* कई कहने लगे जिसके मासूम बच्चे इस हौंसले वाले हैं, वह आप कभी भी साम्रान्त्य मनुष्य नहीं हो सकता। इस प्रकार के ख्यालों में कुछ देर रह कर सारे दरबार में चुप छा गई। नवाब ने मुख्य पुरुषों की ओर इशारा किया, परन्तु सब का जवाब चुप ही पाया। हाँ, सुच्चानंद ने दिलेर होकर कहा: "देखा आपने, जिनका बचपन में यह हाल है वे बड़े होकर कब कम करेंगे? एक पिता इनका सँभलता नहीं, अगर ये दो बड़े हो गए तो पता नहीं क्या अँधेर मचायेंगे? ये जीवित छोड़ने उचित नहीं।" नवाब ने शेर मुहम्मद मलेरकोटला वाले की ओर देखा ओर कहा "ये तुम्हारे भाई के कातिल के बेटे हैं।" मलेरकोटले के नवाब ने उत्तर दिया: "बेशक सच है, परन्तु मासूम बच्चों पर हाथ उठाना कायरता है। इन्होंने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा, इनको छोड़ देना योग्य है। इन बच्चों पर हाथ उठाना इस्लाम को काला करना है। मासूमों का कत्ल किसी शरअ में उचित नहीं, मेरे भाई युद्ध में मारे गये थे उसका बदला मैं युद्ध में ही ले सकता हूँ, सर्द खूनी की बेरहमी में नहीं ले सकता।" परन्तु आह! कच्चे खुशामदी बोल उठे, "नहीं गर्दन काटने के लायक हैं।"

नवाब ने फिर एक बार बच्चों को भरमाने का यत्न किया, परन्तु शूरवीरों ने यही उत्तर दिया कि हम सत्य धर्म को छोड़कर असत्य नहीं ग्रहण करेंगे।

(साका)

गु॰ बि॰ म॰ सिंह के अध्ययन से लगता है कि पहले लगभग तीन दिन बच्चों को लोभ लालच देकर प्रेरित किया जाता रहा है। आज की बच्चों की दिलेरी और कड़े जवाबों ने पासा पलटा दिया और अब डर पीड़ाएँ देकर प्रेरित करने का यत्न किये जाने का दारू प्रयुक्त होने लगा। चुनांचे वहाँ लिखा है कि आप श्री दादी जी से बिछोड़े गये, हाथों में जंजीर और पैरों में शृंखलाएँ ऐसी डालीं कि लासें+ पड़ गयीं, भूखे भी रखे गये और प्यास का दुख भी दिया गया। अंग अंग काटने का डर भी दिया गया। बात क्या कई तरह डराया गया, यथा– 'तहिं तुरक तारन बहु करै', परन्तु उन पर प्रभाव नहीं पड़ा। दो चार दिन बाद यातनाएँ दे देकर फिर से दरबार में लाये गये।@ एक ओर भयानक डर दूसरी ओर बड़े-बड़े लालच दिये गये, अंत में दीवार में चुनवा देने का डर दिया। डर दिया ही नहीं, सचमुच ईंट-गारा मँगवा कर चुन दिया, परन्तु वह दीवार तुरन्त फट कर टूट गयी।# जब बच्चे फिर सावधान हुए और न माने तो नवाब ने उनके कत्ल का आदेश दे दिया। सूरज प्रकाश में ऐसे लिखा है–

पापी निरदयालु मति मंद। गहि खैंची शमशेर बिलन्द।
धीरज धरे गुरु सुत खरे। नहीं दीन मन कै सिहुं करे॥९॥

---

* भारी जवाब जुझार दए सुण के सभ दूतन अंग पिराये। (गुर सोभा, पृष्ठ ७३)

\+ कसकर बाँधने के कारण शरीर पर पड़ा निशान।

@ गु॰ बि॰ म॰ सिंह ने आज का दिन आठवाँ लिखा है।

\# दीवार का गिर जाना तवारीख खालसा और गुर बिलास भाई म॰ सिंह, दोनों में है।

धरम हेत सिर चाहति दीयो। तुरकनि जरां बिनाशी कीय।
सिमरहिं बाल पितामे केरी। लाज बंस की चहै बडेरी॥१०॥
अधम तबै तलवार चलायी।....................
हाहाकार जहां कहिं भयो। जै जै शबद सुरनि महिं थियो।
धंन गुरू सुत धीरज धारी। धरम हेत सिर दयो उतारी॥१२॥

अब अपने किये पाप की फटकार नवाब के मन पर सवार हुई, हृदय में काँपता और थरथराता महलों में चला गया। इधर भारत भूमि में प्रगट हुए ईश्वरीय ज्योति के चाँद सूर्य जिनके प्रकट होने के लिए पता नहीं कितनी सदियाँ लगी होंगी, गुरू जी के होनहार नौनिहाल, सत्य धर्म की उम्मीदों के पुञ्ज जब इस निर्दयता से शहीद किये गये* तब अँधेरी बहुत ही कहर की चली, वृक्ष जड़ों से उखड़ गये। धरती काँपी, भूचाल आया।+

टोडर मल नाम का एक गुरू का सिक्ख कुछ दूर रहता था, जब उसने सुना कि साहिबज़ादे पकड़े गये हैं, तब दौड़ा कि मैं जाकर सारा वंश ख़र्च कर दूँ, परन्तु बच्चों को बचा लूँ। काली अँधेरी का अँधेरा, धूल की भरमार, भूचाल आदि झेलता दरबार की ओर गया, परन्तु हाय! भारत भूमि तुम्हारे भाग्य यह श्रद्धावान पुरुष तब पहुँचा जब तुम्हारे दुलारे शरीरों को त्याग चुके थे। यहाँ से चलकर टोडरमल ने माता जी को जा समाचार सुनाया। यह भयानक ख़बर सुनकर माता जी ने अपने शरीर का त्याग कर दिया और सत्यलोक को प्रस्थान किया।@ टोडरमल ने माता और साहिबज़ादों का चंदन की चिताओं में अंतिम संस्कार करवाया।

---

* तिथि पौष दिन १३ स० १७६२ वि० सवा पहर दिन चढ़े।

\+ कंपी धरत आए भूचाला अैंचत कंकर धूल घनेरी। (सू० प्रताप पृष्ठ ५९५२)

@ श्री माता गुजरी जी के ज्योति ज्योत होने के प्रसंग इतिहासों में अलग-अलग दिए गये हैं। कहीं हीरा चाटना, कहीं बुर्ज से गिरना और कही माथा दीवार के साथ टकराना आदि। परन्तु माता जी का ज्योति ज्योत होना योगाभ्यास के तरीके अनुसार ब्रह्मरन्ध्र दसम द्वार के रास्ते शरीर त्यागना विशेष रूप से सही प्रतीत होता है, क्योंकि माता जी योगी थे और योग साधना साधते रहे थे, जैसा कि साहिब दशम पातशाह ने बचित्र नाटक के अध्याय ६ अंक ३ में आप बताया है "तात मात मुर अलख अराधा। बहु बिधि जोग साधना साधा।" इससे अधिक और प्रमाण की आवश्यकता नहीं, परन्तु जो प्रथा श्री फ़तहगढ़ साहिब जी के ग्रंथी सिंहों से सुनी है वह यहाँ बतानी ज़रूरी है। १९३५ ई० में कुछ एक यात्री फ़तहगढ़ साहिब गये थे। एक यात्री ने कहा 'यहाँ माता गुजरी जी बुर्ज से गिर कर ज्योति ज्योत समाये थे, उन्होंने उस यात्री को कहा 'भाई इस तरह के अनादर के वाक्य श्री माता जी के लिए न कहो हम अपने पिता पितामह जी से सुनते आये हैं, कि माता जी को जब साहिबज़ादों के शहीद होने की सूचना मिली तब उन्होंने श्री जपु जी का पाठ करके अरदासा किया और चौकड़ी (पालथी) लगाकर दशम द्वार में प्राण चढ़ा लिये और शरीर त्याग दिया।'

भारत भूमि का विलाप

धारणा— कहूँ क्या तुझ को ऐ बादे बहार।
तुर गये दसम गुरू दे लाल॥
दुनीआं तिआगी धरम न त्याग्या लिआ जफर सिर जाल।
डगमग धरती दा दिल कंबिआ, आया कहिर भूचाल।
गड़ गड़ाट कर गगन गरजिआ, झक्खड़ झुले कराल॥१॥
कुदरत होए गयी बेहाल॥ तु॰
भारत भूमि रो रो कूके, गए किधर मैं बाल।
नज़र मेरी थीं उहले हो गये जाए लुके किस ढाल॥२॥
हाय! मैं रो रो होई निढ़ाल॥ तु॰
आओ पिआरे दरस दिखाओ, लगे माउं गल नाल।
अक्खीं सुख कलेजा ठंडा, खुशी होय वाल वाल॥३॥
बिछड़ के पै गए चिंता जाल॥ तु॰
आखण लोकी लाल दुलारे, दुशटां कीते काल।
चिण के कंधां विच मैं सुहणे, होए नीच निहाल॥४॥
हाँ जी डिग पई ओ पाल॥ तु॰
दुशट सभा इक बैठी रलके, खड़े बहादुर बाल।
कहिण कबूलो दीन नहीं तां मार करां बेहाल॥५॥
धरम विच रता ना डोले लाल॥ तु॰
दसम गुरु दे बोले सूरे, अंत आवणा काल।
अज्ज नूँ आवे कल नूँ आवे, टले न कीतिआं टाल॥६॥
धरम लई, मरना पुन्न बिसाल॥ तु॰
दरद बिदरदां मूल न उपजिआ, भड़की क्रोध जुआल।
मार खड़ग तन जुदा कराये, पहुँचे पास अकाल॥७॥
हाँ जी पहुँचे पास अकाल॥ तु॰
सिंह ज़ोरावर पिआरे लीते, भ्रात फते सिंह नाल।
धरम रखन हित सिर दे दोवें, पहुँचे पास गुपाल॥८॥
होए शहीद गए गुर लाल॥ तु॰
सहि ना सकेगी दुख एह माता, जाऊ पोतिआं नाल।
शोक होयगा देश देश विच, सुण ए कहिर कमाल॥९॥

गए ओह, चिन्ता भांबड़ बाल।। तु॰
दुशट राज दे सखत उपद्रव, कटणे होये मुहाल।
चढ़े सूर नित सहां नवें दुख, कतल होए मेरी आल।।१०।।
हाय प्रभू जी! मेरी जाय अजाईं घाल।। तु॰
पाप राज दा नाश करो प्रभू, अपदा देवो टाल।
सत्त धरम जग विच फैलावो, सफल होए गुर घाल।।११।।
गजे फिर सति स्री अकाल।। तु॰
स्रिशटी सारी सजे खालसा, दूर होण भ्रम जाल।।
सिंघ सूर हो खुशीआं माणन, करन धरम प्रतिपाल।।१२।।
इस विध, कूड़े टुट्टन पाल।। तु॰

ऐतिहासिक खोज

छोटे साहिबज़ादों की शहादत के सम्बन्ध में इतिहासों में तीन बातों के सम्बन्ध में कुछ भिन्नता है– १. नामों के सम्बन्ध में, २. गिरफ्तारी का ठिकाना, ३. शहादत कैसे हुई।

१. नामों का विवरण

सरहिन्द में शहीद हुए साहिबज़ादे फ़तेह सिंह जी थे, ये सभी मानते हैं। दूसरे अधिकतर ज़ोरावर सिंह जी और कोई जुझार सिंह जी बताते हैं। सबसे प्राचीन ग्रंथ 'गुरसोभा' है, जिसमें पहले तो जुझार सिंह जी को चमकौर में जूझते हुए लिखा है और फिर सरहिन्द के साके के समय लिखा है–

'फते सिंह जुझार सिंह एह बिध तजे परान।'

इसलिए इससे निर्णय पता न लग सका। परन्तु अगर अधिक ग़ौर के साथ प्रसंग मिलाओ तो यह प्रतीत होता है कि जुझार सिंह जी को (चमकौर) लड़ते देखकर ज़ोरावर सिंह जी मदद के लिए आ गये और मारते-मारते जीवित किसी ओर निकल गये। माता जी और दोनों साहिबज़ादे (चमकौर से) गिरफ्तार करके सरहिन्द लाये गये। इस प्रकार सरहिन्द शहीद होने वाले साहिबज़ादे जुझार सिंह और फते सिंह जी हुए।

महिमा प्रकाश कार्तिक (१७९८ संवत् का है)। इसका क्रम है बाबा अजीत सिंह, बाबा जुझार सिंह, बाबा ज़ोरावर सिंह, बाबा फतह सिंह। इसके बाद (१८०८-१८) गुरबिलास मनी सिंह वाला है, उसने चमकौर के दो साहिबज़ादों का नाम अजीत सिंह जुझार सिंह दिया है। इस प्रकार इसका क्रम भी यही हुआ। बंसावलीनामा (१८३६ वि०) इसमें सरहिन्द वाले साहिबज़ादों का नाम ज़ोरावर सिंह और फते सिंह ही दिया है। सिंह सागर (१८८४) इसके कर्त्ता जी ने चमकौर में शहीद होने वालों का नाम अजीत सिंह जुझार सिंह दिया है और सरहिन्द वालों का ज़ोरावर सिंह फते सिंह लिखा है। यही क्रम सरहिन्द के गुरुद्वारे के सेवादारों से मिला था, यही अधिक सही प्रतीत होता है। तवारीख खालसा, कन्हैया लाल, दौलत राय, साधू गोबिन्द सिंह, आदि लेखकों ने भी यही क्रम लिया है।

२. गिरफ्तारी का ठिकाना

गुरशोभा और इससे बने गुर बिलास भाई मनी सिंह नाम वाले ने गिरफ्तारी छोटे साहिबज़ादों की चमकौर से लिखी है परन्तु यह सही नहीं प्रतीत होता। गुरू साहिब जी, माता, दो बच्चे चमकौर गढ़ी में अकेले तुर्कों के रहम पर छोड़कर कब आप बाहर निकलकर जा सकते थे। इन्होंने यह बात अंदाज़े से या सुनी हुई लिखी है, परन्तु सुक्खा सिंह जी, जिन्होंने अपने गुर बिलास में चाहे भाई मनी सिंह वाले गुर बिलास और गुर शोभा से मसाला लिया है, परन्तु आप आनन्दपुर रहे हैं, इसलिए वहाँ के हालात के अधिक जानकार हुए हैं, आपने लिखा है कि रोपड़ से ब्राह्मण मसंद माता जी और साहिबज़ादों को रास्ता भुलाकर अपने गाँव ले गया।

रोपर ते वहु राह भुलाई। निज पुर को लै गयो कसाई।
साहिबज़ादे दोऊ कुमार। तीजे दादी साथ निहार।

यही बात और सबने लिखी है। फिर जिस गाँव खेड़ी जाकर रहे थे, वह बाबा बंदा सिंह बहादुर ने १७६७ वि॰ में उजाड़ा था। बाद में नज़दीक ही 'सहेड़ी' नाम का गाँव बसा। सहेड़ी गाँव से पश्चिम की ओर थोड़ी दूरी पर मँजी साहिब है जो छोटे साहिबज़ादों का यादगारी निशान है। इसी तरह मोरंडे में जहाँ साहिबज़ादे सरहिन्द जाते समय थोड़ी देर के लिए ठहरे थे, भी गुरूद्वारा है जो गाँव से उत्तर की ओर है।

इन सभी सामानों से सही होता है कि भाई सुक्खा सिंह जी की रचना सही है। छोटे साहिबज़ादों को रोपड़ से गंगू खेड़ी ले गया था और वहाँ से गिरफ्तार करके सरहिन्द लाये गये थे।

३. कत्ल अथवा नींवों तले?

गुरशोभा (१७५८ अथवा १७९८) में लिखा है–

यौ प्रभ को करनी तबही दोऊ जूझत ही परलोक सिधाए।

पुनः–

फते सिंघ जुझार सिंघ एह बिध तजे परान।

इसमें 'जूझत' पद है, जिसके अर्थ हैं लड़ते हुए मारे जाना। उन्होंने जो तुर्कों की प्रेरणा से मुकाबला किया है उसको जंग के तुल्य मानकर 'जूझत तजे पराण' कहा है, इसलिए चुने (ईंटों में) जाने का ज़िक्र इसमें स्फूट नहीं है, ना ही कत्ल का साफ ज़िक्र है परन्तु 'जूझत तजे पराण' से ध्वनि कत्ल की हो सकती है। गुर बिलास भाई मनी सिंह (१८०८-१८) सबसे पुरानी रचना नींवों में चुनने* का ज़िक्र करने वाली पुस्तक है।

देकर दूख बहुत अधिकाये।
तब नीहों में बाल चिनाये।
बहुत कलेश तुरक तब दीना।
मुख से नाह उचार न कीना।
जुग अवतार सही मिल पीड़ा।
परालबध वस जान सरीरा।
जबै चिनाय भीत मैं दीने।
रही न भीत दिशट नहि चीने। (अध्याय १६ अंक २५६)

इस गुर बिलास से यह पता भी चलता है कि साहिबज़ादों को शहीद करने से पहले दुख भी कई प्रकार के दिए गये थे। हाथों में हथौड़ियाँ और पैरों में ज़ंजीरें ऐसी डाली गयी थीं कि लासें पड़ गयी थीं। भूखे रखना, पानी न देना, माता जी के पास न जाने देना आदि यथा:-

भूखे रहे कितक दिन मांही। नीर नाहि तिन कछूअक पयाहीं।

---

* चुनना = चुनाई = दीवार की जोड़ाई।

लास परी तां दसत अपारा। पादन मद्ध सु अपर अपारा।*
ऐसे दूख दीन अधिकाई। साहिब जानै आप सु भाई॥२५६॥ (अध्याय १६)

आठवें दिन बंदबंद+ अलग करने का भय दिया गया:-

अष्ट रोज मैं आए कै कीनो रोख अपार।
बंदबंद करीअै जुदा या बिध कहैं सुधार॥२५४॥

बंसावली नामा (१८३६ वि०) इसमें 'खंडे' द्वारा कत्ल किये जाना लिखा है। महिमा प्रकाश (सरूप दास वाला) 'तद उसने जलादां को कहा इस तरहां करके एह कारन हूआ' मतलब क़त्ल किये गये।

गुरू बिलास सुखा सिंह–

दोऊ सिसन के सीस उतारी।
दए काट उन अधम गवारी। (पृष्ठ ४५०)

–सिंह सागर (१८८४)

यह लिखता है कि उखेड़ी गाँव के मसंद ने साहिबज़ादे पकड़ा दिए, नाम इसने ज़ोरावर सिंह और फ़तेह सिंह दिए हैं और लिखा है–

आगे कथा सीरंद की जानत सभ संसार।

जो लिखित पुस्तक हमारे सामने पड़ी है उसमें यह पंक्ति लिखकर विस्तार नहीं दिया।

पंथ प्रकाश (रतन सिंह भंगू) यह लिखता है कि जल्लाद ने कत्ल किये।

सूरज प्रकाश (१९००) में क़त्ल करना लिखा है।

मुफ्ती खैरदीन वटालिया (१८८५) दीवारों में चुनवाये जाना लिखता है।

तवारीख खालसा में लिखा है कि नासमझ मासूमों को दीवारों में चुनवाया जब वह दीवार फट गयी तो क़त्ल करवा दिया।

भ्रम ऐसा प्रतीत होता है कि जो भय दिये गये उनमें दीवारें खड़ी करके बीच में चुन देने का भी ज़रूर होगा। अधिक डराने के लिए दीवार उनके चारों ओर खड़ी भी की गई जो मनी सिंह जी वाले गुरबिलास में बताया है कि दीवार न रही और तवारीख खालसा कहती है दीवार गिर गयी। प्रतीत होता है कि इस डराने से भी साहिबज़ादों ने धर्म छोड़ना नहीं माना तो क़त्ल किये गये। ईंटों में चुने जाने से ही सरहिन्द की ईंट से ईंट करके खड़काने का ख्याल जुड़ा हुआ है। क्योंकि सिक्खों ने १२ कोस में बसते सरहिन्द को ईंट-ईंट करके उजाड़ा और प्रत्येक यात्री सिंह सरहिन्द की ईटों को सतलुज में फेंकना फर्ज़ समझता रहा, आखिरकार सरहिन्द की ईंटें कूटकर रेल की सड़क पर डाली गयीं। यह जो ईंटें उखाड़ने का ख्याल था यह उनके ईंटों में चुने जाने से ही चला लगता है और यह पता भी लग गया कि सबसे पहले (१८०८-१८) का लिखित प्रमाण गु० बि० म० सिंह में है जो 'गुरशोभा' से थोड़े वर्ष बाद का है। और खोज होने से शायद और कुछ निश्चित पता मिल सके। परन्तु अभी यही प्रतीत होता है कि चुनना एक डरावा था ओर शरीरों का अंत क़त्ल द्वारा हुआ है।

सूचना:- छोटे साहिबज़ादों के इस दर्दनाक साके के समय जो गुप्त हाल नवाब सरहिन्द के महलों में घटित हुआ उसका नक्शा आगामी प्रसंग में है:-

---

* दूसरे लिखित संस्करण में इसका पाठान्तर ऐसे है:- डानपरी तां दसत अपारा। पादन मध अखर सु अपारा।

\+ शरीर के जोड़।

७४ ज़ैनां का विलाप*

श्री गुरू कलग़ीधर जी महाराज, जगत रक्षक, अवतार शिरोमणि, गुरू गोबिन्द सिंह जी के साहिबज़ादों को खेल खिलाने (प्रसन्न रखने के लिए) के लिए एक राजपूत जाति से बनी सिक्ख स्त्री सिक्ख पति सहित महलों में रहा करती थी। पहले सल्हेड़ की कोई-कोई सखी कभी-कभी इसको मिलने आ जाया करती थी। एक बार एक राजपूतनी सुहागो नाम की अपनी जवान परन्तु अति सुन्दर और कुँवारी बेटी भागो के साथ आई। कुछ दिन मेहमान रहकर बिलासपुर के राज्य में चली गयी, जहाँ जाकर राजा के महलों में दासी बन गई। इसकी यह जवान लड़की कुछ दिन गुरू महलों में दास घरों में रही थी। जब अब वापिस माँ के पास आई, गुरू घर का प्रभाव उसके दिल पर हो गया था जो अंत तक नहीं भूला। साहिबज़ादों के सुन्दर स्वरूप, सिक्खों के तेजस्वी दर्शन, राजसी और शांतिमय प्रभाव उसके सादे दिल पर पत्थर की लकीर हो गये थे। बिलासपुर के राजा के द्वारे माँ के साथ सेवा करती हुई राजसी रनिवासों की सारी बातों की वाकिफ हो चुकी थी। राजे के जंग युद्धों और गुरू द्रोहों के हाल भी महलों में सुनती रहती थी, परन्तु वह बालपन का बंधा नक्शा सहज स्वभाव में जो असर कर गया था, कायम था। यह प्रभाव कि आनन्दपुर देवताओं की नगरी है, वहाँ के वासी धर्मी हैं और उनके आगे किसी की सामर्थ्य नहीं, दिल से कभी दूर नहीं हुआ। अब यह बहुत जवान हो गयी। लड़की की पिता ने शादी कर दी। इसकी ससुराल सरहिन्द में थी। अभी यह सरहिन्द नहीं पहुँची थी परन्तु इसकी सुन्दरता और जवानी की धाक पहले पहुँच गयी। डोला+ रास्ते में ही रोककर छीन लिया गया और इस तरह नवाब के महलों में पहुँचाया गया कि पता न लग सके डोला किसने छीन लिया है। पहले तो यह बहुत दुख में रही, और महीनों तक नवाब के माथे नहीं लगी और धर्म बचाने का ज़ोर लगाती रही, परन्तु अंत इस का धर्म कई कोशिशों के आगे ना बचा। हठ ने हार दे दी और बेगम बन गयी।@ ऐश्वर्य पाकर विपदा को भूली तो सही, परन्तु वह आनन्दपुर की दैवी हवा का एक झोंका कभी-कभी याद आता तो वह बालपन का धार्मिक प्रभाव विह्वल कर देता। इस याद का शुभ फल भी कई बार निकलता कि सिक्खों को कई मददें इससे गुप्त पहुँच जातीं।# परन्तु तब भी अपनी सुन्दरता और गुणों की कद्रदानी में भूल का नशा अक्सर चढ़ा रहता और बेगम अधिक समय भूल के सहारे सुख में ही बिताती।

---

* यह प्रसंग सं० गु० ना० सा० ४३४, अप्रैल १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

\+ स्त्रियों की सवारी का पर्देदार झम्पान।

@ इस बेगम का मुसलमानी नाम जैनबुन्निसा हुआ। जिसको प्यार के साथ नवाब साहिब ज़ैनां कहकर बुलाया करते थे।

\# देखिए इसी ग्रंथ के पूर्वार्द्ध में 'तिलोक बाई ले घुल्लू शाह' का प्रसंग, अंक ३६।

जब गंगू ब्राह्मण ने छोटे साहिबज़ादे पकड़वाये और नवाब के दरबार में कत्ल की राय बनी, तब घर-घर हाहाकार मची। उस हाहाकार की ख़बर महलों में भी पहुँची और ज़ैनां के कानों में भी पड़ी। ज़ैनां ने असल हाल पूछ मँगवाये। पुराने समय आँखों के आगे आ गये, साथ ही सिक्खों के बल और तेज का डर भी छा गया, और सिक्खों के हाथों अपने राजपाट निश्चित तबाह हो जाने का सहम छा गया। इस डर से व्याकुल हो गयी और कई बार नेत्र भर-भरकर बहने लगे। इस दशा में रात कुछ बीत गयी। इस प्रकार के विलाप में थी कि नवाब साहिब भी महलों में आ गये, उसकी व्याकुलता देखकर उसके रूप के कैदी नवाब साहिब व्याकुल हो गये और पीछे पड़कर पूछने लगे और आगे लिखी बातचीत सारी रात होती रही जो पहले अंक में लिखी है। दूसरे अंक में नवाब साहिब और उनके सलाहकारों की गुप्त सलाह के मशवरे का हाल है, जिसका परिणाम साहिबज़ादों की शहादत था। शहीद करने के बाद नवाब बहुत दिलगीर होकर महलों में गया, बेगम पहले ही यह दिलचीर समाचार सुनकर रो रही थी, नवाब के पहुँचते ही फिर बहस छिड़ी। यह बातचीत तीसरे अंक में वर्णित है। ये हालात एक दर्दनाक गायन धारणा में लिखे हैं।

राग–पहाड़।

ताल–चंचल धमार (या गीत तार)

धारण– { सुण राजा मेरी बात,
हीरा मिरग सुख़न ए बोलिआ }

चित्र बाजे में से गाने के लिए
{ गा गा गा रे रे सा
यह क्या कि ..... या सू काज }
{ गा गा गा गा रे सा सा रे रे रे
सोची नहीं दू......र की शाह ने }

छंद–श्रीखण्डी छन्द*

अंक-१

सरहिन्द के राजमहल, पटरानी ज़ैनां का कमरा
आई ज़ैनां घबरायी हुई और रोती हुई–

ए की कीता सु काज,
सोची नहीं दूर की शाह ने।
रहिसी तखतो न ताज,
दौलत हुकम दूर हो जाणगे।

---

* इस छन्द की चाल श्रीखण्ड है, मात्रा १३+१७ है। इसका तुकान्त बीच वाले विश्राम पर होता है और तुकान्त का अंतिम अक्षर हस्व और उससे पहली दीर्घ होता है। और तुक के खत्म होने पर तुकांत नहीं मिलता, परन्तु अंतिम अक्षर दीर्घ होता है।

उलटी पैंदी ऐ फाल,
खोटे शगन साफ हन हो रहे।
होसी मंदा हवाल,
मत्था लगा रब्ब दे नाल जो।
(दासियों को)
कोई जाईओ शिताब,
लिआवो तुरत सद्द नी शाह नूँ।
मैं हो रहीआँ बिताब,
मैनूँ सहीओ चैन ना आंवदा।
कर न बैठे कुकाज,
होड़ो कुई जाए के शाह नूँ।
उड जए हत्थो जि बाज,
हत्थ आवणा फेर नी औख है।
दौड़ो दौड़ो नी दौड़
लिआवो घरीं सद्द के कंत नूँ।
कंम ना हो जाये चौड़,
छेती करो गोलीओ मेरीओ!
(आ गया नवाब)

नवाब—

पिआरी ज़ैनां अज़ीज़,
तेरा किहा रंग नी हो गिआ?
बोली कोई कनीज़?
मंदा किसे दस्स जे बोलिया?
तेरा चिहरा गुलाब,
किहड़ी वल्ले उडनी है गिआ?
मंदी चिहरे दी आब,
किहड़ी गल्ले दस्स है पै गयी?
दस देह छेती हवाल,
मैनूँ बिचैनी ने है घेरिआ।
देईं मूलों न टाल,
घुंडी दिले दी, नी तूँ खोल्ह दे।

सुण शाहा! मेरी बात,
मंदा किसे मूल ना बोलिया।

मेरे हिरदे दी शांत,
चिंता दी डाइण किते लै गयी।
दस्सां दिल दा की हाल?
खोल्ह आपण भरम है खोवणा।
हस्स के देवोगे हाल,
मन्नोंगे ना मैंडडा आखिआ।
बालक, नौकर ते नार,
इक्को जिहे लोक हन जाणदे।
करदा कौण एतबार?
किहड़ा मन्ने एन्हां दा आखिआ।

नवाब—

सुण बेगम मेरी जान।
तेरे उत्तों वारने मैं गिआ।
घर बार सारे मान,
तेरा सदा प्यारीए रक्खिआ,
मोड़ी कोई न बात,
हासे, सचीं ज़ोर, जो तूँ कहीं?
अपणे जी दी बी जान
तैनूँ सदा सुहणीएं जाणिआं।
अपनी जिंदड़ी दी जान
तैनूँ सदा रक्खिआ प्यारीए!
डाढा होयां हिरान
तेरा बुरा हाल नी वेखके।
हो जा हुण मिहरवान,
गुस्सा गिला छड्डदे सुहणीएं!

बेगम—

घर बाहर ते ईमान,
तेरे पिच्छे टुर गिआ राजिआ!
पेके सछुरे ते साक,
तेरे लई दूर सभ हो गए।
भन्न के गहिणे तमाम,
तैनूँ बणा हस्स मैं वे लिआ।

तूहों ही रब्ब ते राम
    आसरा सभी थोकड़ी मैंडड़ा।
विंगा हो जाये वाल
    तेरे पिंडयों इक जे शाह जी,
मेरा आ जाये काल,
    मच्छी दा जिउं नीर तो बिछुड़िआं।
तूँ भरता वे मैं नार,
    तेरे बिना मूलों ना शोभदी।
मैं पत्तर तूँ वे डार,
    तेरे बिना मेरा की आसरा?
हुण तूँ कीता हनेर,
    आपे वड़िओं विच जा भट्ठ दे,
हो गिओ हदों दलेर,
    विहड़े लग्गों मौत दे खेडणे।
मिल गए खोटे मुनीब,
    खोटीआं पट्टीआं तूँ वाचीआं।
मिट्ठी उहनां दी जीभ,
    मारू जिवें मिठ्ठड़ा तेलीआ*।
जांदे परबत नी पाड
    सुणदे रहिण मंत्र जो खोटड़े।
चुगली निंदा दी चाड़
    बुरजां किले भोइं ते डेगदी।

नवाब–

कैसी अचरज है बात,
    पावें बुझारतां तूँ बेगमें।
बीती किन्नी है रात,
    दस्से नहीं बात तूँ खोल्ह के।
लेखे रब्ब ते रसूल,
    दस्सीं दिली दरद ते दुक्ख जो।
मेरा मिट जाए सूल
    जेहड़ा उदासी तेरी छेड़िआ।

---

* मिठ्ठा तेलिया, नाम को मीठा है, पर वैसे विष है।

बेगम--

खेडें सफां दी खेड
   विठूँहें दा मंतर न तूँ जाणदा।
मारी जाईआ न भेड,
   मत्थे सिक्खां नाल तूँ ला लए।
पुच्छें मैनूँ की हाल,
   सारे व्रताए नी तूँ हाल जो।
वस न चले तेरे नाल,
   निरबल पराधीन मैं ना रहां।
(आसमान की ओर देखकर)
रब्बा! बिजली नूँ भेज,
   भैड़े मुसाहिब तिरे मारदे,
ग़ैबी गोले दी तेज,
   आके लवे माड़े दरबारीआं,
धरती तूँहों ही पाट,
   समेटीं जा काज़ी बुरा बीज दे।
आ पए परबत दी फाट
   सूँहीआं नूँ दब्बे तले नप्प के,
लावीं नदीए नी ढाह
   झूठी शरहा वालडे रोड़ह लै,
पै जाइ मेरी ही हाह,
   सड़ के सुआह सारे हो जाण हो।
मंदी दितड़ी सलाह
   पापी जिन्हां मेरड़े कंत नूँ।
(कंत की ओर देखकर)
सिर दी सहुं साईं खाह
   कौल देईं सुखन दा सच्चड़ा।
दस्ससां तद मैं ओ हाल,
   खोल्हां दिले वाली तां घुंडड़ी,
नहीं तां मारांगी छाल,
   मारां कटारी या मैं पेट नूँ।

नवाब--

हा हा! प्यारी न आख
   ऐसी बुरी गल्ल तूँ मूँह तों।

जल बल हो जावां राख,
तैनूँ हवा तत्तड़ी जे लगे।
खावां सहुं नी सुगंद,
अल्ला मुहम्मद ते मैं पीर दी।
सँभला कच्ची जिउं तंद
तैनूँ सुखन जो हां मैं देंवदा।
जो तूँ आखेंगी आप,
सोईओ करां प्यारीए बेगमें!
मूलों खासां न कांप,
सिखाइआ किसे दे न मैं भुल्लसां।

बेगम—

अैथे भरता ते नार,
मैं हां ते तूँ, होर न तीजड़ा।
कसमां खा लै हज़ार,
दे लै सुखन लक्खां वे वार तूँ।
कोईओ मित्तर न यार,
नेड़े तेरे नवाब जी बैठिआ।
मूँह मुलाहज़े दी कार,
सौहां सुगंदा जो तू खाधीआं।
जायें कल जां दरबार,
होवांगी अक्खां तों मैं ओल्हड़े।
हुन्दा गल विच जिउं हार,
मुसाहब तिवें कोल वे होणगे।
तोड़न तेरी सुगंद,
आखणगे जो सोई तूँ वे करें।
पीह पी पीहेंगा दंद,
टुक्केंगा तूँ जीभड़ी आपणी।
बैठीए ऊपर जि डाल,
कट्टीए उहनूँ, हेठ तां डिग्गीए,
लैसें तिक्कुर तूँ मार,
पैरीं कुहाड़ा हत्थीं आपणे।
मारां खिच्च वे कटार
सीने विखे अज्ज ही आपणे।

होवे कज़ीआ ए पार,
न होवां न देखांगी मैं कहिर नूँ।
(कटार निकालकर मारने लगी, नवाब ने हाथ पकड़ लिया)

नवाब–

मेरी प्यारीए नार
चिंता विखे चल्ली तू आप तों।
हिरदे फूकी की नार,*
किहड़े तंदूरों नी तूँ कड्ढ के।
दस्सें मूलों न भेत
रोंदी जायें खेडदी आप ते।
निन्दें सजणां समेत
मैनूँ, मुसाहब जो हन मैंडड़े।
कौड़ी क्यों होई जिदं
मरना किवें मिट्ठड़ा भासिआ?
केही व्यापी है चिन्द?
होई अवाज़ार तूँ अैतनी?
दस्सदे दस्सदे हवाल,
घुट्टीं न तूँ जहिर नूँ अंदरे।
आवे अगनी दी चाल,
घुट्टी किवें कहिर लै आंवदी।
वद्धदा जाए शिताब,
फोड़े नूँ जे घुट्ट के रखीए।
राज़ी हो जाए शिताब,
तिक्खी धुरी नाल जे चीरीए।

बेगम–

सकिओं शाहा ने मार,
राजा महाराजा जु सी सूरमां,
आयों खा के हार
सच्चे वे तूँ शाह तों राजिआ।
किहड़ा पाणी है हार
जिहड़ा लड़े नाल औतार दे?

* आग।

होंदा ए टुकड़े दु चार
   जिहड़ा लड़े साहमणे ओस दे।
साईं सचड़े संसार,
   आपे है, कहिंदे उनूँ भेजिआ।
लड़ना घल्ले* दे नाल
   पैरीं कुहाड़ा हई मारना।
हुण की मरदां दी कार
   करने लगों आखिआं काज़ीआं।
चंगी उन्हां थों नार
   ग़ैरत जिन्हूँ सुणिआं है आ रही।
कीती भुल तैं अपार,
   लयांदी है फड़ मौत तूँ आपणी।
जाणे फड़िआ शिकार,
   ए तां फड़ी आपणी मौत तूँ।
   (नवाब ने कटार हाथ से छीन ली)

नवाब–

कीती कोई न कार
   उल्हामा जिद्हा देनीं एं सुहणीए।
किहड़ा कीता शिकार?
   नां मैं शिकारे गिआ अज्ज नी।
झूठी कीती पुकार
   तेरे किस पास है आण के।
दस देह दसदे हवाल
   सारा तूँ जिहड़ा नी हैं जाणदी,
अैकुर आ जाऊ शांत,
   दोहीं धिरीं बात जां निक्कलू।

बेगम–

कैसी अचरज है खेल,
   होणी जदों जाल फैलांवदी,
देंदी पहिले ही तेल
   बूटे अकल दी जड़ां विच आ।

---

* ईश्वर के भेजे हुए के साथ।

लैंदी सुरती नूँ मार,
भुला सारड़ी होश नूँ देंवदी।
रहिंदी मूलों न सार,
होसी की सिट्टा किसे बात दा।
साईं खानां ख़राब
खोटे मुसाहबां दा अज्जो करे।
लैणे देंदे न ताब,
धूड़न सिरे बूटीआं खोटीआं।
शाहा सुरती सँभाल,
देवीं दिलों कढ वे ग़ाफली,
भोला बण वे न बाल,
मैं हाँ, शाहा! हाल नूँ जाणदी।
की ना जाणें तूँ आप,
गुरू सिंह गोबिन्द औतार नूँ।
जिसदे दित्तिआं सराप
शाहीआं छिनिक विच लै होंदीआं।
चाली सिक्खां दे नाल,
पाया सी जिन वखत जी आप नूँ।
गिरद पाया सी जाल*
सोहां सुगंदां तुसां भन्न के।
हरनां विचों जिउं शेर,
लशकर विचों निकल के ओ गिआ।
लक्खां फौजां दे नाल,
फड़िआ तुहाथों वे ना ओ गिआ।
पकड़े उसदे दो बाल,
हुण हन तुसां नाल वे ध्रोह दे।
बुड्ढी दादी है नाल
कीती जु है कैद विच बुरज दे।
फड़ लए बालक मसूम
कहिरां दे मुँह हन तुसां पावणे।
करना भारा विनाह,
इस थों बड़ा पाप है होर की?

* चमकौर की गढ़ी में।

सभनां बालक औलाद
   अल्ला तआला तों है मंगणी।
हिरदा करड़ा फौलाद
   बालां वे वाले करन ना कदी।
सिकदे सभ होवे बाल,
   बालक नूँ सभ चित्त तों लोचदे।
बालक सांझा वे माल
   सारी सरिशटी (सृष्टि) दा हन होंवदे।
सारे करदे नी प्यार
   होवे चहे बाल ही ओपरा।
हैसिआरा संसार
   सारे विखे किहड़ा है अैसड़ा
दैवे बालां नूँ मार
   डरदा न है मूल जो रब्ब तों?
अज मैं सुणिआं है आप,
   मारोगे कल्ल आप ओ बालके।
डाढा चिन्ता दा ताप
   चढ़िआ है मैनूँ जीए सुणदिआं,
ओ बेदोसे मसूम
   बालां विगाड़िआ की आपदा?
जाणन झगड़ा न व्याध
   वैरों रहित वांग ओह रब्ब दे।
बच्चे मारन गुनाह,
   गुनाहां विचों है वडा अत्त दा।
बालक मरदे दी आह
   दुनीआं नूँ फूके है, ना मारने।

नवाब—

पुट्टिआ सारा पहाड़
   चूहा विचों इक ही निकलिआ।
अैडा लाइआ तैं साड़,
   किहड़ी निकारी है तुछबात दा।
काफ़र मारन है पुन्न,
   साडी शरहा बेगमें आखदी।

झोली काफ़र दी सुन्न
   करनी महां पुन्न है बेगमें।
साडा शाहां दा शाह
   उरंगज़ेब जिस दा अनी नाउं है
कहिसी वाह वाह वाह!
   सुणसी जदों मारे मैं बच्चड़े।

बेगम—

होणी आई है शाह!
   तेरे सिरे झुरमटा पांवदी।
धूड़ी जादू दी स्वाह
   सारी अकल मारी है वे गई।
करना एं भारे गुनाह
   ओन्हाँ नूँ फिर तुच्छ हैं जाणदा।
फड़ लौ अकलां दा राह,
   ग़फ़लत तों छेती अवे जागपौ।
पावन औझड़ दे राह
   काज़ी जो विगड़े नी आ इस समें।
ए जू दुनीआं दा शाह
   अल्ला तों छोटा ते हे नींवड़ा।
डर खा अल्ला दा नवाब
   खुशामद न कर झूठी तूँ एसदी।
अल्ला देवेगा सवाब
   बालां ते खावेंगा जे तरस तूँ।
गल इक सोचीं तूँ होर
   जी तों तअस्सब नूँ हां छोडके—
फोकी शरआ दे लोर
   भुल्लीं न तूँ सच्च नूँ, हक्क नूँ,
उह तां सच्चा अउतार
   सारा है देश ओस नूँ मन्नदा।
हिन्दू तुरकी संसार
   सारे मुरादां हन जा मंगदे।
मन विच कंघी वे मार
   पुत्तर उह्दे घट्ट किउं होणगे?

अल्ला सच्चे दे यार
बच्चे जो दुनीआं ते हन भासदे।
भुल्लीं तक के न वेस
जामा जो है आदमी वालड़ा।
नूर अल्ला दा देख
देही दे विच आणके वस्सिआ।
मारें उसनूँ तूँ, वाह,
कैसे भुलेवें दे विच फस गिओं?
पईं ना खोटे वे राह,
तैनूँ शैतानां ने है घेरिआ।

नवाब—

तूँ तां भोली नी नार,
जम्मीं पली हिंदूआं दे विखे।
मूलों जाणे न सार,
शरआ शरीअत है जो आखदी।
ओहों पिछली ही बाण
तेरी न जांदी है, नी प्यारिये।
ए मैं जाणां पछाण
भारा गुरू पीर है, ज़ैनबे।
मुसलिम है ना तूँ जाण
साडी शरआ ताईं ना मन्नदा,
तांते मुसलिम न ओह,
साडी शरहा अैकुरां आखदी।

बेगम—

जाणे पीरां दा पीर
खायें शरहा दा हैं तूँ धोखड़ा,
होइओं कंगला ते कीर,
दौलत ते मालां दे वे हुंदिआं।
बलदा दीवा लै हत्थ,
डिग्गें तूँ फिर खूहे दे विच हैं।
अैसा धोखा न खाह,
प्यारे! करीं होश ते संभलीं।
पईए कोहां ते जाइ,
जाईए जि खुंझ पैर वे इक तों।

छड दे बालक अयाण,
  धक्का मसूमां ते ना सोभदा।
कर लै चंगी पछाण,
  मरना है, ओना नूँ जो मारना।
मारिआं मरदे न ओह
  जीउंदे सदा हनगे ओ देवते।
पीआ! निज नूँ न कोह,
  थुक्किआं, पवे आपते, चंद नूँ।
नाले चुकीआ सुगंद
  कीता सुख़न धरम दे ज़ामनी।
पालीं कच्ची जिउं तंद,
  सँभालीं सदा कौल जो दे चुकैं।

नवाब—

डाढी शाहां दी कार
  सूली तो औखी हई चाकरी।
नौकर मै हां स्रकार,
  चाकर तां दिल्ली दे हां ताजदा।
बालक करां ना प्रहार,
  जे मैं दिआं छड इउं जींवदे
मैनूँ पैसी धिकार
  जाए मतां खुस्स ए हाकमी।
काज़ी मुल्लां ते शेख,
  मैनूँ तां क़ड्ढ देणगे दीन तों।
मेरी औकड़ नूँ देख
  देवीं बचन राणीएं मोड़ के।

बेगम—

ए तां झूठी पुकार
  मभांगी मैं ना रता शाह जी।
बच्चे कीतिआं संघार,
  शाह जे तुहाडा खुशी होंवदा,
सूबेदारी नूँ अज्ज
  छड्डो ते फूको हुकमरानीआं
चंगा मंगण दा चज्ज,
  पापों बचे टुक्क मंग खावणा।

चुल्लहे पै जाये राज,
जिहड़ा मिल पापां दे कीतियां।
दरगह लावे जो लाज
अैसी करीं कार ना राजिआ।
छड्डो शरआ दा खौफ़,
डर दूर सिट्ट काज़ीआं वालड़ा।
धन दौलत है वे ज़ौफ*
ख़तरा करो नां रता नाम दा।
पालो बचनां दी लाज,
पकड़ो दया धरम दा राहज

नवाब—

तूँ प्यारी मेरी नार,
मेरी दिले तों सुबीं, बेनती।
मैनूँ डाढी है खार
गुरू नाल, सच्च हां मैं आखदा।
वेहड़े आइआ शिकार
छोडिआ तां मैथों नहीं जांवदा।
बच्चे देसां जि मार
ठंढा कलेजा मेरा होइगा।
तूँह मोमन पाकबाज़,
काफर बचौंदी नहीं सोभदी
हो के मोमन ए काज
सोहे न तैनूं, बुरा भासदा।
वैरी मारन च लाभ,
कूड़ा घटे जग्ग है सोभदा।
सब्भो लईए नी सांभ
दौलत मिलख वैरीआं वालड़ा।
हुण तां छड ज़िद दी बात
मेरी रखीं लाज नी सुहणीएं।
बीती सारी है रात
झेड़े अनीं बेगमे छेड़िआं।

---

* ख़ाली।

बेगम–

पत्थर पै गये नु हाइ!
   समझां विचीं, हाय! क्यों नवाब जी।
मंगां 'चक्की मैं देउ'
   पत्थर तां डाहवो तुरसीं अग्गिओं।
मंगां 'नथली ते लौंग'
   चाकू दिओ कप्पणे नक्क नूँ।
जे तां छड देवो बाल,
   बालां नूँ फैदा ना है एस दा।
जे तूँ कोह सुटें लाल,
   घटणा उन्हां दा नहीं कुज्झबी।
सुणसी जां गुर जी बात,
   'पुतर मेरे नवाब ने मार दे'।
ओ समुंदर है शांत,
   गुस्सा करू नवाब जी मूल नां।
ओह न डोलणगे आप,
   करसन कहिर मूलना आप ते।
तांते कुह दित्तिआं बाल
   घटसी न कुझ वैरीआं तेरिआं।

ऩवाब–

फिर की ऐसा सबब्ब?
   खहिड़े पई मेरे तूँ बेगमे।
जे ओह ऐसे ही रब्ब
   तैनूँ पई लोड़ की? जाण दे।

बेगम–

मोइआ कोईओ बी नांह,
   रोंदिआं गई रात लंघ सारड़ी।
लैंदा अखीआं वञाइ
   अग्गे हनेरे दे जो रोंवदा।
तैनूं दस्सिआ सी, शाह।
   कारण जु सी मेरे इस रोण दा।
तूं ना कीती प्रवाह,
   समझिआ नहीं मूलो ही बोलिआ।

देवां इक्को द्रिशटांत,
 चंगी तरहां नवाब जी समझना।
सुरसुरा* लोहे दा तेज़
 गड्डिआ सी सिद्धा किसे धांउ ते,
जिहड़ा करसी प्रहेज़,
 बचसी, रहू दूर जे ओस तों,
जिहड़ा मारेगा पैर,
 ज़खमी करू पैर ओह आपणा।
लोहे नूँ सत्तीं वे खैर,
 विगड़े न उसदी है हिंग फटकड़ी।
मैं एह डिट्ठा है आप,
 नौकर सां ज़द राजिआं दे घरीं।
जिस ने कीता सी पाप,
 दसमें गुरू नाल ही किस तरहां,
होइआ आपे वरान,
 दुक्खां ते अपदा ने आ घेरिआ।
गुर जी रहे सावधान,
 हरदम सदा रंग वे रत्तड़े,
तीकूँ साडा हो नाश
 छेड़े उहदे बालके जे तुसां।
मैनूँ खांदा ए त्रास,
 सुख एस विच तेरी न भासदी।
तैनू दुक्खां ने घेर,
 चुतरफों जदों मारिआ हेठ नूँ,
घेरन चारों चुफेर,
 मैनूँ तदों दुक्खड़े आणके,
बाल बचड़े उलाद,
 रुलसी निमाणी हुई नवाब जी।
दीन दुनीआं ब्रबाद
 होवेगा, मोर जे तैं बालके।
नदीआं नेड़े वसाइ,
 ना जंगीए नाल मग्र मच्छ दे।

---

* लोहे की कील, जिसके दोनों सिरे तीखे होते हैं।

भंनण सारा ही चाइ,
सुक्खो सुक्खां नाल ना लंघसी।
जाणो अल्लाह समुन्द,
फकीरां मगर मच्छ के जाणीए,
होण इन्हां नाल तुंद
पैरीं कुहाड़ा हत्थीं मारना।
सुण शाहा मेरी बात,
छड्डो तुसीं हठ नूँ आपणे।
नेड़े आई प्रभात,
छुट्टी दिओ बुरज तों बालकां।
छड्डो, छड्डो सुजाण।
पंछी जिवें पिंजरिओं छड्डीए।
घर नूँ आपणे ओ जाण
मिरगां जिवें भरदिआं चौकड़ी।
होणा बालां ते दयाल,
अपणे ते किरपा करो आपजी।
अपणा आ जाऊ काल
दित्ते तुसां बच्चे जे मार ए।
मारें बालक जे जाग
खाना रुड़हे सारा ही साडड़ा।
छड्डें बालक जे जाण
सलामत रहे राज ते माल है।
(नवाब चुप हैरान अपने आप से)
नवाब–
आ गिआ कैसा अज़ाब
अल्ला मिरे, मेरे है साम्हणे,
देवां उत्तर की हाय।
मैनूँ न मूलों है कुझ औड़हदी
होइआ सप वाला हाल
छछूंदर जिद्हे विच मूँह आ फसे।
कैसा तणिआ जंजाल
भौरे दे वांगू मैं निज लांभड़े।

मारां, छड्डां कि भेज
 दिल्ली दिआं दोवें ही बालके?
बच्चे सच्चे ते तेज़
 बालां जिहे आम ना बालके।
डरदे संगदे न मूल,
 जानण न ओ हारनां होए कीह।
मन्नदे दाबा न मूल,
 जाणन न की खौफ है मौत दा।
कि करां, कि करां, कि कराउं
 कोई बी तदबीर ना औड़हदी।
भज्जां कित्थे नूँ जाउं
 अल्ला कुई राह नूँ खोल्ह दे।
 (चुप्प)

बेगम—कुछ देर बाद

केही पै गई है सोच,
 बोलो सही मेरे सिरताज जी।
लेवो बुद्धी नूँ बोच
 खेनूँ तरहां जेड़ही है उच्छले।
रहिसी तखतो न ताज
 मारे जि बालक तुसां राजिआ।
उडडू सारा ए राज
 बालक जि मारे तुसां नवाब जी।
तुहाडा सुन्दर सरीर
 दिस्सेगा हसदा न एऊं ए किते*
रक्खो सुखनां दी लाज,
 सोचो जु अरज़ां हां मैं कर रही।
झूठे वजदे ए वाज
 कच्चे कुशामती जो वा रहे।
काहली करनी न ठीक,
 टोए तां काहली नूँ हन बोचदे।
रखो वागां नूँ छीक
 ट़ोए टिब्बे वेख के दौड़ना।
डर डर उठदी हां आप,

* बेगम के ये सभी खतरे सत्य निकले, थोड़े ही अरसे के बाद सिक्खों ने सरहिन्द जीत ली और नवाब मारा गया।

सोचां जदों अगलीआं सोचदी।
कौड़े फल देंदे पाप
करदयां जु मिट्ठडे हन भासदे।
(चुप्प)

नवाब–(देर बाद)

फुर पई सुन्दर दलील
कंन दई सुण लई राणीए:-
लैसां बालां नूँ कील
कीले जिवें मांदरी सप्प नूँ।
लालच दौलत दा लाइ
भुलावांगा बालां तईं, बेगमें।
अपणी गोदी 'भ पाइ
प्रचावांगा बालाँ नूँ मैं बेगमें।
नरमी खावणगे बाल,
लोहा जिवें तेल लै नरम हो।
एह अमोलक दु लाल
साईं दए तैनूँ, तूँ सांभणे।
हस्सीं गुस्से नूँ टार
केडी अनोखी है ए सोच नी?
लीता सप नूँ बी मार
सोटा बचाइआ है मैं नाल ही।
(चुप्प रही)

बेगम (सिर फिराकर)–

सलाहुण जोगी है सोच,
सोची जु है नवाब जी आप ने।
इस दी वरतण है पेच
औखी लगे है ए हो आवणी।
अक्खीं देखे मैं बाल
वडे, गुरू-महिलां विच खेडदे।
वादी जाणां मैं चाल
ओहो जेहे निक्के बी होणगे।
पक्के धुन दे उह अैन
वाकफ धरम दे उह हन आपणे,

बोलण सुन्दर ओ बैन
   पिच्छे न लगदे किसे दे कदी।
दूजा कारन है होर
   पुत्तर उह अवतार दे हैनगे।
कौण सक्केगा तोर
   बापू दे रसते तों पुट्ठा उन्हां?
चल्लण ओसे ही राह
   बापू तुराऊ है जिस पंथ दा।
देखीं करसनगे नांह
   त्यागण धरम ना, ओ सिर देणगे।
करदी अरज़ां ला तान,
   करदी जु करदी हां मैं सहिम्मदी।
गवाइआ धरमों ईमान
   मैं ता मुड़ी आपणे दीन तों,
दोष भावें सी नांह
   धरम छोड़ने विच मैंडड़ा,
पर सी काइर पुणह
   ग़ैरत तों सी दूर ए हारना।
ख़ैर होइआ सु होइ
   बीतया जु है मुड़ न ओ आंवदा।
हुण की करना है रोइ,
   सप गये लीक किउं पिट्टणी?
पर मैं चाहां न मूल
   धरमों डिगावां किसे होर नूँ।
तोड़ां डाली तों फूल,
   शाखां तो तोड़ां फलां लग्गिआं।
मैनूं नहीं मनज़ूर
   बालां नूँ धरमो गिरा रक्खणा।
छडदे छडदे ज़रूर
   अैवें जिवें फड़ लए बालके।

नवाब–

लै नी होशां संभाल
   अैसे सुखन पुट्ठड़े ना कहीं।

होसी बुरा नी हवाल
   सुण जे लए मुल्लां ते काज़ीआं।
तूँह मोमन पाकबाज़
   अैसे बचन आख ना शोभदी।
रक्खीं शरआ दी लाज
   हलका कदी दीन न आखणा।

बेगम–

सच्च है, सच्च, है नवाब!
   जो कुझ कि आखो सभी सच्च है।
दे दे, डर, ज़ोर, दाब,
   मैंनूं तुसां मारिआ राजिआ।
हुण हां बंदी गुलाम,
   तुहाडी तुहाडी सदा दास हां।
दुनीआं विच्चो तमाम,
   तुहाडे जिहा होर ना लग्गदा,
पर जो बीती महाराज,
   सो तां सची आखणी पाप ना।
इच्छा छड्डो ए काज,
   सौं वे रहो रात है बीतदी।
सवेरे जांदयां ही सार
   छड देवणे बालके कैद तों।
इह है नेकी दी कार
   तुहानूँ भली, रब्ब, मैं भाउंदी।

नवाब–

चंगा चंगा अै जान।
   सवेरे दिआं छड्ड मैं बालके।
तेरा रक्खणा ही मान
   मेरी खुशी, धरम ते दीन है।
                  (सो गये)

नवाब (अपने आप से)–

कोई कड्ढांगा राह
   जीकर बचां पासिआं दोहुं तों।
खाधी सहुं जो मैं, आह!
   पालांगा उसनूँ जिवें हो किवें।

* * *

अंक–२

राजभवन–सरहिन्द
गुप्त परामर्श का दालान
आए–काज़ी, मुल्लां और अन्य उमराव।

मुल्लां ज़हीरुद्दीन–

सुण लैणी मेरी बात,
मोमन सभी दीन दे प्यारिओं।
जो कुझ बीती है रात,
महिलां विच नवाब दे सुण लओ।
हिन्दू सीगी जो नारि,
फड़ के वरी नवाब के सीग जो,
होई दीनों है बाहर,
रातीं रही लड़दी ते झगड़दी,
छेकड़ लीता मनाइ,
लीता बचन नवाब तो ओस ने,
'हुण ना देऊं सज़ाइ,
बच्चे फड़े जो असां हिन्दू दे'।
निहते जावणगे बाल
सलामत घरीं भरदिआं चौकड़ी।
वड्डे होवणगे लाल
तकड़े पिता वांग ओ सूरमे।
देसण जड़ां तों उखेड़
शाही असांडी उ जे बच रहे।
औखे होवणगे भेड़
जंगां मदानां दे, हे सज्जणों।
मुग़ली होवेगी दूर
दुख भोगसण बच्चे सभ साडड़े।
भ्रावो! कर लओ शऊर,
मारो, कटो, सूलां ए फुट्टीआं।

काज़ी रुकनदीन–

सच्ची सुन्दर है बात,
तेरी अकल दे हां मैं वारने।
डूँघी पाई आ झात
बेगम ते बेगे दे तूँ परदिआं।

सारे कर लओ विचार,
आवेगा हुण नवाब एसे जगहा,
सारे करीओ पुकार
मारो इन्हां बच्चिआं डाढिआं।

दीवान सुचानंद–

सुहणी सोची है सोच
तोड़ो कली जो फली न बणे,
पिच्छों कोशश है पोच
बणदा नहीं कुज्झ वी कीतिआं।
हो के जिसने फकीर
पाए बख़त शाहीआं राजिआं।
हो के पुत्त ए अमीर
कढसण तुहानूँ न किउं देश तों?
या तां मंनण रसूल
काबू आए छड्डणे पाप है।
बूटा उगदा निर्मूल
सौखा है करना वधे पुट्टणों।

अमीर रफीउद्दीन–

सारे तुहाडे हां नाल
पट्टी पढ़ावांगे ए नवाब नूँ।
मंतर देवांगे जाल
फूकिआ जु है उस बुरी नार ने।
रातीं जावेगा तांहि
बालक कतल पहिले जे होणगे,
फिर की चल्लेगा दाउ
नारी निकारी दा जी नवाब ते?

नवाब मलेर कोटला–

एका कर लिआ बिझाक
मताइआ मता है तुसां पाप दा
दिल ने कीती न ठाक
रब्बो निआओं तुसीं भुल्लिओ।
है न बीरां दा कम्म
बच्चे ते तीवीआं नूँ मारना।

खावो कोई शरम्म
मसूमां ते हथ कतल दे चक्कणो।
हामी भरसां ना हाय!
देसां दुहाई बाहां चक्कके।
नाअरा देसां मैं वाइ
होड़ांगा हटकांगा, मैं रोकसां।

(चोबदार आ गया)

चोबदार–

जुग जुग होवे ए राज
मुगलां दा दुनीआं ते डंका बजे।
झुल्ले शाही दा साज
आए हैं महिलों श्री नाथ जी।

(आया नवाब, सभी ने उठकर आदर प्रदर्शित किया)

सभी दरबारी–

मुजरा होवे अदाब,
जुग जुग जीओ राज नूँ माणदे।
कुरनिश होवे अदाब
सूरज तरहां तेज़ बाधे रहे।

नवाब–

कैसा औखा है राज।
ख़लकत ख़ुदा वाली नूँ सांभणा।
न्यायीं ते रास्त मिज़ाज,
रहिके अदल तोलणा तक्कड़ी।
कार नाज़क है ठीक
खुशी ते सुखी रक्खणा देश नूँ,
अल्ला होवे रफीक
निभ जए तद कार ए ओसदी।

वज़ीर–

वाफर अकलां दे ताज
लाइक हो हर इलम, हे नाथ जी।
सुहणा करदे हो राज,
तोरा तुसीं तोरदे सोहिणा।

हाकम अते दीनदार
जड़ा काफ़रां खिच्च के पुट्टदे।
सिर ते हन चार यार
शरआ पुजावन सदा आप तों।

सभी–

धन तूँ धन शहिर यार*
तेरा सदा राज हो देश ते।
माह तो माही+ विचाल
तेरा रहे दबदबा फैलिआ।

नवाब–

एह है गुपती सथान
गुपती इकट्ठे असीं हो रहे।
चुणवें गिणवें प्रधान,
सद्दे असां सोचणे सोच नूँ।
औकड़ घेरया है आण,
कड्ढो कुई डौल, जो ठिल्लहीए
लैणी बच्चयां दी जान,
दुनीआं नूँ चंगी नहीं भासदी।

मुल्लां–

कहिंदे हैगे हो खूब
दिल आपदा रहिम है वालड़ा।
वैरी करके मग़लूब
करदे तरस नेक जी वालड़े,
पर ए रहिमां दी कार
डाढी ही नाज़क है, हे शाह जी।
कर दी पुट्ठड़ी है मार
कुवेले कुथावें दइआ कीतड़ी।

काज़ी–

मेरी एहो है राय
शाहां नूँ ही रहिम है सौजदा।

---

* पातशाह।

\+ माह–चंद्रमा। माही–मच्छली, जिसके ऊपर धरती टिकी हुई मानते हैं। भाव धरती से आसमान तक।

पर न करीए कुथांइ
शाहीआं इन्हें डोबीआं बहुतीआं।

मुफ्ती–

सच है सच है हे शाह!
करिये रहिम न जगा खोटड़ी।
सुण लै 'किबल-उल-ईज़ा
कतलउल मूजी* है शरा आखदी।
सप्पां बिछुआं ते शेर
एन्हां नूं मारीए जी, जम्मदिआ।
करनी शाहा। न देर
उगदीआं सूलां नूँ ही नप्पणा।

नवाब–

सुच्चानंद जी दीवान।
दस्सो तुसीं राय की आखदे?
हिन्दू तुसीं हो सुजान
झक्के बिना सच्चु सच्च आखणा।

सुच्चानंद–

मेरी एहो ही राय,
काज़ी ते मुफती ने जो है किहा।
देवां उच्ची सुणइ,
चाहो मैं हिन्दू हां उच्च खतरी।
शरआ मेरा न काम
न्याय दी हां गल मैं आखदा।
वैरी मारीए ठाम
देईए न जावन जदों दा फबे।
वहुटी धीआं ते पूत,
वैरी दे मारीए, जां दा लगे,
फेर वैरी कुसूत
जैसा गुरू लब्भिआ आप नूँ।
पुत्तां तिसदिआं ते रहैम
करना नहीं नीती है दस्सदी,

---

* बुरे से दुख झेलना पड़े इससे पहले ही उसको मार दो।

तांते खाओ न सहैम,
छेती करो कार ए सोहिंणी।

मलेर कोटला–

सुन शाहा नेक नाम,
नेकी दई रब्ब, लै नेकीआं।
करीए ओहो ही काम,
नेकी जिन्हां कारणे जग रहे।
कहीए बुरी ओ न रात,
दिन देख के चमकदा सोहिणा।
दिन बुरा नेक रात,
ए बी न कहु देखके तारड़े।
पाओ सूरज नूँ झात,
जिसने बनाया दिने रात नूँ।
दिन तों उलटी है रात,
दोहां दे विच फरक है बहुत ही।
पर ए दोवें है पुत्त
सूरज दे जाए दुए जाणीए।
देखो सूरज दा बुत्त,
सूरज होवे चानणा चानणा।
हिन्दू अते मुसलमान
उलटे ए दोनों टुरन आपतों,
बख़शी दोहां नूँ जान
अल्ला इको सोहिणे चानणे।
देखीं चानण दा पुञ्ज,
कर जो रज़ा ओस नूँ भांवदी।
मार करना जो सुंज
उस दे बनाये नूँ, ए पाप है।
भावे अल्ला नूँ कौण?
किहड़े समें, थौह ए ना पवे।
सभ दी निंवदी ए धौण,
आखण 'नहीं ग़ैब दा है पता।'
सकिआ कोई न पाड़
तण जु रिहा परदा है ग़ैबदा।

दित्ता किस ने उघाड़
   कुदरत ते कादर दा जो भेत है।
पंछी अंड दी ओट
   कीकर सके जाण है जग्ग नूँ।
बिन खंभा कोई बोट
   असमान दे हाल किंझ कहि सके?
अंकुर* बीजां विचाल
   मौजां लवे कुदरती कीकुरां?
तीकर साडा है हाल,
   जाणीएं की ग़ैब दे विच है।
कीकर आखीए साफ,
   करना कतल रब्ब नूँ भांवदा?
कीकर मारीए लाफ+,
   अल्ला दे जीदी, जु ना देखिआ।
हिन्दू मारन है पुन्न
   अल्ला किसे तांईं ना आखिआ।
धिंगो ज़ोरीं घसुन्न
   आखो कोई जिसदा जो जी करे।
अैपर देही दे विच
   निक्की जिही रब दी लाट है।
उसतों चानण नूँ खिच्च
   दस्सो कि ओ रसता कीह आखदी?
'करना किसे दा विनाह'
   दस्से न है अंद्रली जोत ओ।
फिर मसूमां दा दाह,
   करना कदों बोलदी वाज ओ?
तुहाडे अपणे जि बाल
   हिन्दू कुई पकड़ के लै जए।
होवे तद की हवाल?
दस्सो दिलां दा तुसीं आपणे।

---

* बीज का वह हिस्सा जो पनपता है।

\+ गप्प।

कर लौ चेते ओ बात,
बीतिआं जिनूँ साल ना बीतिआ।
होई तदों वारदात,
इसतों भयानक अते कहिरदी।
राजा नाहर जु दीन*
टिवाणा, लड़ाका गिआ मारिआ।
सिक्खां फड़ उसदे लीन
डोले ते बच्चे मचे ज़ंग आ।
जै गै सतिगुर दे पास,
जाके किहा 'हुकम हो सो करें'।
कैसी नीयत सी रास,
बहादर गुरू जी दी, हां सो सुणोः-
कहिंदे "आदर दे नाल
रक्खो सतर बेगमां दे तुसीं,
"राखी कर जानो माल
सलामत पुचावो इन्हां नूँ घरीं,
"रोणा पावे न बाल
अत्थरु किरे नारि दी ना कुई"।
मालक आपणे दा वाक
सिक्खां सिरे आपणे रक्खिआ।
आए एथे बेबाक+
डोले ते बालक पुचा ओह गए।
ख़ातर कीती वधीक
कर न सके दोसत ते साक बी।
वाल विंगा तहिकीक@
होया न बालां अते बेगमां।
ओवें करना है जोग
कीता जिवें ओसने, प्यारिओ।
देवो बालां न सोग
अज़मत करो माता जी वृद्ध दी।

---

* नाहिर ख़ाँ मलेरीया और था।

+ निर्भय, निडर।

@ निश्चय, ज़रूर।

कीता भारी मैं जंग
   एसे गुरू नाल, फिर तयार हां।
अैपर खांदी ए संग
   उठावां मसूमां ते मैं हत्थ ए।
देवण आ गया न मूल
   मारन दी दुध पींदिआं बच्चिआं
मेरा रब्ब ते रसूल,
   अैसे गुनाहां तों हन वरजदे।
न शुजाअत दा कम्म
   मैं हां जाणदा गल्ल ए, सूरमां।
मैं तां भरसां ए दम्म
   मसूमां नूँ मारन न इस लाभ है।

शहाबुद्दीन—

फिक्का शरआ तों अजाण
   सिपाही, तूँ जाणें हैं की दीन नूँ,
मारें नागां नूँ सयाण
   बच्चे रखें प्यार के ओस दे।
बोले शरआ खिलाफ
   दस्स कोटले। बिगड़िओं कीकुरे?
सूफी हो गइओं साफ?
   कि काफर विदांती कितों हो गिओं?
किउं करें पक्खों पात?
   चेला गुरू दा किते बण गिआ?
दस्स दे दल दी तूँ बात
   दुशमन दे घातों डरें कासनूँ?

नवाब—

देवो मुँह नूँ लगाम
   संभल, शहाबो, ज़रा बोलणा।
ए है मख़फ़ी मुकाम*
   मख़फ़ी+ सलाह कर असीं हां रहे।

---

* गुप्त स्थान।

+ गुप्त।

काज़ी–

शरआ उलटी जो बात
  होणी असंभव अहे नवाब जी।
सभ दलीलां न मात,
  जो कुछ कि उलमाउ हन आखदे।
हिन्दू होवे जि नार
  वसदी किसे मोमने दे घरे।
देईए गरदन तों मार,
  होड़े शरआ हुकम जे मंनणों।
होवे अपना जि पुत,
  मोड़े शरआ तों तां दे मारीए।
रक्खण शाह नाल सूत
  दूजी ज़रूरी है ए गल बी।

नवाब (अपने दिल में)–

खुल्ह गिआ महिलां दा भेत
  निकल गई गल है परदिओं,
गोली कोई सुचेत
  सुणदी रही रात दी वारता।
दस्सी एहनां दे पास
  मेरी ते बेगम दी गल बात जो।
अपणी इज्ज़त दी रास
  औखी हुई हुण है संभालणी।
झूठ वहुटी दे नाल
  बोलण रवा सारे हन आखदे।
एह न मूलों कुचाल,
  टालांगे पज्जीं असीं नार नूँ।
भावे प्यारी है नार,
  मन्नेगी गुस्से गिले झाग के।
आखर जित्तेगा प्यार
  रुस्सी होई नार नूँ मेरड़ा।

नवाब ने कहा–

बोलो बाकी दे यार,
  मुसाहिब, वज़ीरों ते मीरो सभी।

नवाब–

सभनां 'मारो' सलाह
इक वाज सभ 'मारना' आखदे।
मैं बी करदा न नांह,
मंनण जे ना दीन विच आवणा।
चल्लो चल्लीए दरबार,
मजलस है आमां* जिथे लग्गणी।
करीए एहो ही कार,
मिलना गुपत एस थां दा रहे।

मलेर कोटला–

मेरी मूलों न नाल
राय रले नवाब जी! आप दे।
करसां हालों मैं हाल,
मजलस बी आमां दे विच ना टलां।
होवे कैसा हवाल,
सच्चो मैं सच ओस थां कूकसां।
'मारे जावण न बाल'
दुहाई दिआंगा मैं इहो हि इहो।

नवाब–

करीओ करनी जु कार
लगे तुहानूँ भली कोटले।
बालक होसन प्रहार,
मंनण न जे दीन विच आवणा।

यहाँ से दरबार गये, साहिबज़ादों के साथ बहस हुई, काज़ी आदि के फ़तवे दिये। मलेरकोटले ने न मारने की दुहाई दी, वे न माने। आखिरकार शहीद किए गये। उस संगदिल नवाब का दिल भी बालकों के आखिरी खेद देखकर उदास हो गया और टूटे हुए दिल से महलों में गया। आगे बेगम रो रही थी।

अंक–३

सरहिन्द के राजमहल
बेगम ज़ैनां का कमरा
आई बेगम रोती हुईः–

---

* खुला दरबार।

वरतिआ कहिरो कहार,
मारे गए बालके रब्ब दे।
है तूँ डाढ़ा जब्बार,
भेजेंगा सिर साडड़े कहिर नूँ।
हाय अम्मां नी हाय।
जम्मदी दी गिच्ची न किउं नप्पीओ?
घेरे दुक्खां ने पाइ
कीता अवाज़ार है जिन्द तों।
दौलत रुतबा है ढेर,
ग़मां दी है अगनी जला पर रही।
दिल नूँ पैंदी है घेर,
सुखा ने मूँह हाय है मोड़िआ।
हिन्दू खोइआ इमान,
कलंकत किता नाम है बाप दा।
रक्खी खसमे न आन,
मनी नहीं गल बी इक्क है।
कांहनूँ पै गिआ प्यार,
मैं दुशट नूँ नाल सी नवाब दे।
हाय मैनूँ धिकार।
किउं अपणा जनम मैं गालिआ?
(आया नवाब–उदास और दुखी सा)

बेगम–

हुण की रोणे दा लाभ
दस्सो तां की नवाब जी हो सके?
कच्ची तंदां जिउं सांभ
सकिओं न रक्ख सुखन तूँ आपणा।
बच्चे मारे, कसाब*।
मसूमां दा हाय! लहू वीटिआ।
कंधीं चिण दे अज़ाब
मारे तुसां बालके रब्ब दे।
टुट्टू कहिरे कमाल
साईं दा सिर साडड़े राजिआ।

* कसाई।

आंउदे तक खां भूचाल,
धरती तां पाटेगी खबरे हुंणे।
बद्दल बस्सणगे लाल
गड़े बिजलीआं तीर टुट पैणगे।
रोड़्ह लै जाण नाल
कांगां कुई शहिर ए साडड़ा।
किक्कुर बचसी ए शहैर
जिथे कहिर एडड़ा वरतिआ।
कीकुर बचसण ओ महैर*
पुट्टिआ जिन्हां बाग़ है रब्ब दा।
कीकर बचसें नवाब!
मारे नी हां बच्चड़े रब्ब दे।
कीकुर लयावांगे ताब,
फटसी जदों रब्ब दा कहिर वे।
कीकुर बच रहिसां मैंइ
बज्झी जो हां नाल वे तेरड़े।
आउसी दुक्खां दी नैंइ,
रोड़्हेगी मुग़लां दे वे राज नूँ।

नवाब–

प्यारी होहु न नराज़,
बखशीं गुनांह हो गिआ दास तों।
लानत दे न तूँ नाज़+!
अग्गे ही दिल जांवदा बैठदा।
छाइआ डाढा हनेर,
डर आवंदा सारिओं मैं लईं।
सहैम फैलया चुफेर,
भै आंवदा ब्रिच्छ ते पत्तिओं।
वगदी अंन्ही अन्हेर
आए भूचालां दे हन झूटड़े।
ख़ौफ़ छाइआ चुफेर,
उत्तो तूँ हैं रोंवदी, मर रही।

---

* माली।

\+ लाडली।

कर दिलासे दी बात,
दिल नूँ हो ढारस ज़रा मेरड़े।
कल मैं करसां मतांत,
दसमां गुरू ना सुणे बात ए।

बेगम–

हासा आवे नवाब
गल्लां करें बच्चयां वे वांगरे।
हारी इज़त दी आब,
हारिओं सुख़न कौल दे, कसम खा।
मन्नी कोई न हाय!
रो रो के रातीं जो मैं कहि रही।
लीता दुशटां मनाइ,
कीता कहरि है तुसां नवाब जी।
मन्नी उह ना पुकार,
पाई जु सी रहिम दी कोटले।
सूर वीरां दी कार,
दस्सी नबी रब्ब दी गल जो।
डर न गुरू जी दा खाइ,
पापां दा डर आपणे खावणां।
उह तां मन्नदे रज़ाइ,
गुस्सा गिला करदे हन ना कदे।
उह ना मारेगा आन
सानूँ तां मारनगे दो डाढड़े।
पहिलों अल्ला सुब्हान
खोहेगा इस साडड़े राज नूँ।
मारे बच्चे न जाण
'दसवें गुरू दे' तुसां नवाब जी।
ए तां पुत्तर सुजान
अल्ला देसी, जिहड़ा जब्बार है।
अल्लाह भेजेगा कहैर,
उतरू फरिशता गज़ब वालड़ा।
आउसन सिखां दे हेहर,
पुटसन जड़ां थीं ओ इस देस नूँ।

छडसन सानूँ न नाल
   कीता असां कहिर है अत्त दा।
पीड़न सानूँ ओ नाल,
   गन्ने जिवें वेलणे पीड़दे।
थोड़ी सिक्खां दी फौज,
   भुलेखे रहीं एस ना राजिआ।
देखीं अगनी दी सौज
   लक्खां मणां चिणग इक्क फूकदी।
जिसने लीता ए जाण
   'वैरी' ते हां 'अग्ग' नूँ तुच्छ है,
होइआ आपे वरान
   बीतया समां हत्थ ना आंवदा।
लगसी पैरा नूँ ऊछ
   सिखां जदों माजरा सुण लिया।
मारो मारी ओ कूच
   करदे चढ़े आवसन एस थां।
खासण डाढा ही रोह,
   लैके दलां नूँ ओ धा आणगे।
जिक्कूँ बक्करे नूँ कोह,
   कोह वे सिट्टण तेरे दरबारीआं।
अक्खीं देखे मैं बाल,
   वड्डे इन्हां तों जो तूँ मार लै।
डिट्ठा अक्खीं मैं हाल,
   सिक्खां दा सारा जो है जोश दा।
रहीआं किन्नेकु साल
   पहाड़ीआं राजिआं मैं सेंवदी।
तद बी डिट्ठा हवाल,
   अक्खीं इन्हां सिखां दा सारड़ा।
मैंनूँ निशचा है ठीक
   चुक्कणगे ना ओ कदे सूरमें,
थुहड़े बरसां दे तीक,
   दाओ भरे टुट्ट के औणगे।

मैं न सकांगी देख
   कहिरा कहारां दा ओ वेलड़ा।
मेरे भैड़े जु लेख
   मेटां किवें रब्ब वे मेरिआ।
         (आकाश की ओर देखकर)
ध्रिग ध्रिग मैनूँ धिकार
   गवाइआ धरम नूँ मैं माल ते,
जै जै जै जै जैकार
   तुसानूँ, धरम है जिन्हां पालिआ।
लै के चल्लो वे नाल
   मैनूँ, मैं गोली बणां आपदी।
लाज पालो वे लाल।
   चरनां तुहाडे हां मैं तांघदी।
भावें मूरख अजाण
   ढट्ठी दुआरे तुहाडे पई।
भावें मूरख अजाण,
   धूड़ी लग्गी दुआर दी मत्थड़े।
हारिआ भावें इमान
   तुहानूँ बिरद दी सदा लाज है।
छोटे भुलदे नदान
   भलदे ते भुलदे सदा भुल्लदे।
वड्डे बखशी ही जाण
   भुल्लां चितारन न ओ हन कदे।
बखशो बखशो गुपाल
   बखशो वे साईं दिओ पुत्तरो।
ला लओ चरनां दे नाल
   मंदी ते माड़ी ते मैं पापणी।
मरसां होके खुआर
   मैं जे रही एस था जींवदी।
हुण जे मरां आपावार,
   मरसां भी इज्ज़त नूँ मैं पालदी।
रहि गिआ अंगो न साक
   पिआरा ते ना आपणा है कुई।

इक सी साईं ते ताक
इह बी हो झूठा सुखन हारिआ।
करनी बंदे दी आस
झूठी, सदा देंवदी धोखड़ा।
एथों होईआं निरास,
अग्गे दा डर जीअ नूँ खांवदा।
बखशो दीनां दे नाथ।
मैंनूँ लिचल्लो हुणे नाल ही।
धरम राजे दे साथ
देणा फड़ा भावें इस दुशट नूँ,
पर न छड्ड इथाइं,
अैथे दा रहिणां बुरा भासदा।
फड़ लिचल्लो उथाईं
जिगरा दिओ नाल ही मैं चलां।
(जल्दी से कटार खींचकर)
प्यारी आ जा नी बाहर
प्यारी कटारी तूँ कर कार नूँ,
हो जा सीनो तों पार
जिंदड़ी तुरे छड्ड ए पिंजरा।

यह कहते ही पेट में कटारी मारी, नवाब पकड़ता रह गया। बेगम तड़प तड़प कर मर गयी।

खालसे के हाथों सरहिन्द का उजड़ना, नवाब, काज़ियों और मुसाहिबों ने दंड प्राप्त करने यह सारा हाल बाबा बंदा बहादुर के समय वैसे ही घटा जैसे ज़ैनां अपनी परम निराशा में कहती गयी थी।

७५ राय कल्ला*

पीछे बता आये हैं कि गुरू जी मालवे को जाते हुए हेहर पहुँचे थे। हेहर कृपाल उदासी का डेरा था, जिस स्थान को अपना समझकर गुरू जी डेरे पहुँचे और ठिकाना किया। जब गुरू जी डेरे में गए तो कृपाल के डेरे के महन्त ने सोचा कि गुरू जी अगर पक्की तौर पर यहाँ रह पड़े, और ऊपर से चा चढ़े तुर्क तब न हम और न डेरा। यह सोचकर उसने एक साथ के सिख के आगे प्रार्थना की कि किसी तरह साहिब जी को यहाँ से आगे ले जाओ। सिंह ने कहा: "भाई महन्त! हिम्मत करो, गुरू जी रात के समय तुम्हारे डेरे पर पहुँचे हैं, किसी को ख़बर नहीं लगी। न ही उन्होंने यहाँ रहना है। तुम सिक्ख हो, वे गुरू हैं। तुम्हारे मन में प्यार होना चाहिए, उनके मन में तुम्हारे सुख की चिन्ता है, प्यार है।" परन्तु महन्त का मन स्थिर नहीं हुआ। जब सिंह जी ने सतगुरू के आगे विनती की तो आप बोले प्यार हो फिर चाहे डरता रहे तो बात और है, परन्तु इन लोगों की बुद्धि पूजा के आधार ने मैली कर रखी है। चलो सुबह कूच करते हैं। महन्त को यह दो 'भय' 'विपत्ति' को आवाज़ें लगाता है, 'भ्रम' 'क्लेशों' को निमन्त्रण देता है। भय और भ्रम ही दुखों और रोगों को जन्म देते हैं। सुखमनी पढ़कर सुनकर, आपने नाम नहीं जपा, निर्भय नहीं हुए–'दूख रोग विनसे भै भरम'। हाँ, आप नहीं पढ़े कि 'भय और भ्रम' और इनके फल 'दुख और रोग' नाम आराधन से मिटते हैं। प्यार भी नहीं है, प्यार का अंश हो फिर कुछ मन डरे तो साईं मेहर कर ही देता है। चलो अच्छा वाह वाह। भय ने महन्त को, जिस बात से डरता है, उसी में फँसा देना है। भंडारी ने प्रात: काल विदाई के समय आ माथा टेका, कुछ भेंट रखने लगा, आप बोले: "मुट्ठी बंद रख, कभी खुलेगी, डेरा बसता रहेगा, हमारे कृपाल का है। मंहत डरता रहा तो मरेगा।"

यहाँ से चलकर आप 'लम्मे'* गाँव गये। जगरावां के इलाके का एक जाति से राजपूत परन्तु जन्म से मुसलमान चौधरी उस इलाके का मानों राजा था, उसको 'रायकल्ला' कहते थे। यह व्यक्ति अपने विश्वास में पक्का मुसलमान नहीं था, बल्कि हिंदू था, और सिक्ख धर्म की बहुत इज्ज़त करता था, प्रत्येक मत के फकीरों में से कभी (अनख, स्वाभिमान) वाले की ढूँढ रखता था। इसका डेरा सीलोआणी गाँव में पड़ा हुआ था, यह गाँव लम्मे के

---

* प्रस्तुत वर्णन इस सच्चय के लिए सं० रु० ना० सा० ४५६ (जनवरी १९२५ ई०) में लिखा गया था, बाद में ३ पौष सं० गु० ना० सा० ४५७ (१९ दिसम्बर १९२५ ई०) के गुरूपूर्व सप्तमी पर खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ सूरज प्रताप से ऐसे ज्ञात होता है कि लम्मे ठहर गये और यहाँ से दीन गये, परन्तु राय आपको यहाँ से रायकोट ले गया था, जहाँ गुरू जी ठहरे थे वहाँ रायकोट से मील भर की दूरी पर 'टाहलिआणा' गुरुद्वारा है, साहिबज़ादों की ख़बर यहाँ आई प्रतीत होती है। यहाँ से विदा होकर आप दीने गये थे।

नज़दीक था। यह आगे से जाकर लम्मे जा मिला और बहुत आदर सत्कार के साथ अपने डेरे में डेरा करवाकर खुश हुआ,* परन्तु सारे युद्ध और कष्टों के हाल सुनकर रोया, और पहले से भी अधिक दर्दमन्द और प्यार वाला हो गया था। यहाँ कुछ सिक्ख आ मिले, सतगुरू जी का आदर और खातिरदारी बहुत की और कोई खास सेवा पूछी। आपने कहा "छोटे साहिबज़ादे और हमारी माता उस रात बिछुड़े हैं, किसी को भेजो जो सरहिन्द से ख़बर लाये।" राय ने अपने निजी हरकारे 'माली' को भेजा। सरहिन्द यहाँ से लगभग पक्के चालीस कोस दूर है। वह हरकारा चला गया और कुछ देर बाद ही घटित हुई घटना की ख़बर लेकर आ गया। अन्तर्यामी जी की अँतड़ियों के स्नेह तो हो चुकी घटना को देख रहे थे परन्तु जब माली ने आकर वृत्तान्त सुनाया तो सभी को सरहिन्द के नवाब की दृष्टता और कहर के ज़ुल्म पर कष्ट हुआ।+

साहिब इस समय एक अंध पके घास की मलगुज़ार में बैठे थे। हाथ में तीखा खंजर था, इसकी नोक से घास के साथ कौतुक कर रहे थे। जब यह दर्दनाक प्रसंग हो चुका तो आपके नेत्र मुँद गए, खंजर की नोक हिलने से रुक गयी, एक घास के पौधे की जड़ उखड़ चुकी थी। देर तक नेत्र बंद रहे परन्तु रास सहित पास बैठे बाकी सभी रो रहे थे, कोई एक घटिका के बाद आपके इलाही नेत्र खुले, वचन हुआ–

"लाल अमर थे, अमरापुरी से आये थे, अमरापुरी को चले गये। शरीर नाशवान है, नष्ट होनी है, नष्ट हो गयी, आज क्या और कल क्या? परन्तु लाल धर्मपुर जाना खेल गये।, मज़लूमों में जान भर गए, गिरे पड़ों को उठा गए, गुलामों को स्वतन्त्रता का आलोक स्तम्भ दे गए, प्रजा में राज्य का मद भर गए, शरीरों में जान डाल गये, ज़ालिमों के ज़ुल्म का प्याला लबालब भर गये और ज़ुल्म राज्य का मौत नगारा बजा गये। जड़ खोखली हो गई, ईंट से ईंट बज गयी। ..... मेरे पुत्र, हाँ मेरे पुत्र कोई नहीं मरे। ज़ालिम का कायरता वाला वार खाली गया, मेरे पुत्र मेरे पास बैठे हैं, मेरे पुत्र देश देश, गाँव-गाँव बैठे हैं। हाँ मेरे पुत्र, वे जो ज़ालिम ने बहुत बेदर्दी के साथ ठंडे खून में कत्ल किये वे अमर थे, मर सकते ही नहीं थे, वे मरे ही नहीं पिता के देश में जीवित हैं, इस लोक में सुयश के साथ वीरता के 'आलोक स्तम्भ' बनकर जीते हैं। वह जो मेरा पुत्र इस लोक में भी अमर है वह खालसा है। हाँ चार चले गये, चालीस चले गये, सैकड़े और हज़ारों चले गये, परन्तु अभी लाखों जीवित हैं और लाखों जिंदा रहेंगे।@ मेरा आँगन, मेरी आनन्द, मेरी गोद हरी है, मेरा पुत्र–खालसा–इस लोक में अमर है, जी रहा है और सदा इस लोक में जियेगा। मैं इस लोक का नहीं मैं प्रीतम के हेमकुंट का वासी, इस लोक में बापू का हुक्म चलाने आया हूँ। मेरा कौन और मैं किस का? मेरा बापू, मैं बापू का, बापू बेटा एक ही, दोनों में प्रीत

* लम्मे और सीलोआणी दोनों स्थानों पर गुरू जी के ठहरने के स्थान पर गुरूद्वारो हैं।

\+ सारे समाचार इसी पुस्तक के पृष्ठ ११० 'सरहिन्द का साका' में छप चुके हैं।

@ इन पुत्रन के सीस पर वार दीए सुत चार।
चार मुए ते किआ भइआ जीवत कई हज़ार।

तार अटूट, बापू का हुक्म मेरा काम, जो मैंने हँस हँसकर निभाना है। .... मेरा मोह किसके साथ? प्यार के–बापू जी के–हुक्म के साथ। हां, हुक्म है बापू जी के प्यार के प्रचार का, हुक्म है इस सदियों से मज़लूम और गुलाम धरती को ज़ालिमों से छुडानें का और स्वतंत्र, स्व-सत्कारी, आन, शान, ऊँची बान वाला कर देने का, इस बरबाद हुई, मर मिटी प्रजा में रूह फूँक देने का। ..... (ऊपर की ओर देखकर) हां, बापू जी। मुर्दे बहुत मुश्किल जीते हैं। पुत्र क्या हज़ार पुत्र बलि देकर अगर हुक्म पूर्ण हो जाये तो भी सस्ता व्यापार है? (चारों ओर देखकर) न रोओ मेरे पुत्रों-मेरे पुत्र आप हों जो नहीं मरे, मैं अकाल का पुत्र हूँ, आप मेरे पुत्र हो, न रोओ दोनों के लिए जो सरहिन्द में साका कर गये, ना रोओ दोनों के लिए जो चमकौर में तेगे चला गये। वे चार और आप सभी मुझे अलग-अलग न दिखाई दो, आप सब मेरे अपने पुत्र हो, हज़ारों मेरे पुत्र आनंदपुर के युद्ध में, आनंदपुर से निकलने वाली रात रास्ते में चमकौर में शहीद हो गये, चार अलग हुए न गिनो, चार के लिए न रोओ, सभी के लिए खुश होओ, हाँ खुश होओ कि माता जी का शरीर भी जगत यज्ञवेदी पर बलि हो गया।"

रायकल्ला–पातशाह! रोना नहीं रुकता, आप के इलाही रंग इलाही हैं, आप अल्ला का नूर हो। बातों से नहीं, खुशामद से नहीं, मैं सच सच कह रहा हूँ, जो कुछ मैं देख रहा हूँ, सचमुच देख रहा हूँ कि आप पूर्ण पुरुष हो, कोई वह ऊँचा आदर्श आपका है जो न देखा न सुना है। इतना ऐश्वर्य धन धाय, पुत्र, परिवार गँवाकर, दुध मुँहे बच्चे मरवाकर अपने ईश्वरीय रंग में हो। फिर पत्थर की तरह निर्मोह नहीं हो, प्रेम से गदगद हो परन्तु सारी होनी को ईश्वरीय रंग में देख रहे हो। स्थिर हो, अविचलित हो, अजेय हो। हमें आपके पदचिन्हों पर चलना चाहिए। परन्तु पातशाह! सच्चे पातशाह!! रोना इस बात का है कि दुध मुँहे बच्चे ज़ालिमों ने मारकर क्या लिया? बच्चों की मर्दानगी सुनकर नसों में जोश भरता है, परन्तु उनकी यातनाएँ सुनकर नेत्र नहीं रुकते। यह समय नहीं आता कि ज़ालिमों के बच्चे मासूम मारकर क्या हासिल किया?

गुरू जी एक स्थिर, अविचलित, परन्तु गंभीर, गरजती सधी आवाज़ में बोले–"पाइ कुहाड़ा मारिआ गाफलि अपुनै हाथ।" सरहिन्द की ईंट बज गयी, मुग़ल राज्य की–तुर्क राज की, हिन्द में से जड़ कट गयी। राय जी, आप क्या समझते हो? ज़ुल्म से मज़लूम मरता है? नहीं नहीं, यह ईश्वरीय कानून याद रखो, ज़ालिम के प्रत्येक ज़ुल्म के करतब से उसकी अपनी तबाही का प्याला भरता है, और नाम वाले, ईश्वर में जी उठे, जागृत सुरति वाले इंसानों पर जो ज़ुल्म होता है उसकी कंपन साईं तक पहुँचती है, फिर साईं की ताकत ज़ालिम के ज़ुल्म को काटती है। इसलिए राय जी! तुर्क राज्य की जड़ कट गयी है। साईं को ज़ुल्म नहीं अच्छा लगता, पैमाना लबरेज़ (भर गया) हो गया है। पाप को यही फल लगा करता है।*

* होनहार तुरकन घर खोवा। नित अपराध करत ही जोवा। नहीं नगारबंद को रहै। तेज छीनता नित पति लहै। अब इक्की सै कोसनि राज। चक्रवरति को सिर पर ताज। थोरे दिन महिं हम हुइ हाना। नीठ नीठ इन की गुजराना। जिह सिरंद महिं साहिबज़ादे। करी अवग्गया तुकरन बादे। बडी वसहि कोसन लग जोई धनी घनी महिलाइत होई। सकल सदन की जरां उखरि हैं। खेती बहन बोवन करि हैं। अस फल प्रापत पापन करो। तुरक राज को निबेरा। (सूरज प्रताप)

राय काँपा, डरा, मैं भी अब मुसलमानों में गिना जाता हूँ, क्या मेरा राज्य भी गया? यह सोचकर बोला: "पातशाह! मुझे रख लेना।"

गुरू जी–देख कल्ला! मलेरकोट को जिसने उस अत्याचार के समय इंसाफ की आवाज़ दी साईं ने रख लिया है। तूने हमें प्यार किया है, तुझे रख लिया है। यह ले शमशेर, इसका आदर करना, आप इसका सत्कार करोगे तो बचे रहोगे। ख़बरदार! यह खालसाई तलवार है, इसका निरादर न करना, सदा आदर सहित संभाल कर रखना, ख़बरदार।*

सूचना:- आनंदपुर और चमकौर के साकों की ख़बर अब देश में फैल गयी थी। सिक्खों के घरों में क्या कुछ घटा नूमने के लिए अगला प्रसंग-रावी माला कौर-कुछ रोशनी डालता है।

---

* भाई संतोख सिंह जी लिखते हैं कि हम अभी छोटी आयु में थे कि राय कल्ला के पोते ने काज़िओं के कहने में आकर तलवार का अपमान किया, शिकार खेलता इसी तलवार से घायल होकर मर गया, बाद में राज्य भी जाता रहा।

७६ रानी झाला कौर*

सरहाली का चौधरी केसरू मल्ल चार हज़ारी, जिसको राजा की उपाधि थी, सरवर की पूजा छोड़कर स्त्री और पुत्र सहित सिंह (मल्ल सिंह) सज गया था, और दशमेश जी के युद्धों में हिस्सा लेता रहा था, उसकी पत्नी जिसको रानी कहते थे, झाला कौर बहुत विश्वास वाली थी, उसके श्रद्धा विश्वास का नमूना यह है–

बैठी विच सहेलीआं लाइ तिंत्रण झाला कौर ए वचन अलांवदी एः-
"मेरा उछलदा अज्ज कलेजड़ा ए, मेरी जिंद मैनूँ खाई जांवदी ए।
"ग़मां सोचां दे पए हन आन घेरे, चिन्ता चिखा दे वांग जलांवदी ए।
"अड़ीओ! अक्खीआं अग्गे गुबार आइआ, मेरी होश उड्डी टुरी जांवदी ए।"

एक सेविका बोली–

एकके तुद्ध तों वारने सट्टीआं मैं, हो के शेरनी खोफ किउं खावनी एं?
दसमें गुरू दा धक्क के सुधा राणी! चिन्ता चित्त दे विच्च किउं लायवनी एं?
ठिल्ल झाग के लंघीओं शहु सागर, छन्ने विच किउं डुबदी जावनी एं?
जदों पती तेरे सीगा 'सखी'+ छडिआ, दसमें गुरू दी शरन जा लई सीणी।
पिआ कटक सरकार बिरादरी दा ओदों मूल चिन्ता नहीं पई सीगी।
तूँ बी छड्ड पेके अते साक सारे मत्त आपणे पती दी लई सीगी।
जगत इक्क पासे, तुसीं इक पासे, तदों गज्जदी शेर जिउं रही सीगी।
कई बाल मोए, कई माल मोए, कई वेर नुकसान धन धाम होइआ।
ना ही चौधरी आप ना तूँ राणी! तदों दोहां ना हौंसला मूल खोइआ।
कीते कैद से पती जी जदों तुरकां, छुट्टण वालड़ा राह ना रिहा कोइआ,
तुसां करी अरदास ते रहे साबत, इकुर डोब न खाधा सी रता टोइआ।
आप छुट्ट आए, तुसां शुकर कीते, फेर सिंह जी गए आनन्दपुर नूँ।
जा के दुद्ध पहाड़ी विच लिआ हिस्सा, कीता सूब प्रसन्न दशमेश गुर नूँ।
सेवा गुरू ते पंथ विच जंग करदे गए आप सिधार अगम्म पुर नूँ।
तदों राणीए रक्ख के तूँ जिगरा दित्ता शुकर तो टलण ना मिज्ज डर नूँ।
कीता शुकर अकाल दा मन्न भाणा, सती सील संतोख दी बणी राणी।
देवें सिक्खिआ पुत्त इकलौतड़े नूँ, 'करो गुरू सेवा जनम सफल जाणी'।

---

* यह प्रसंग १५ पौष सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४३४ (३० दिसम्बर १९०३) को खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ सखी सरवर।

सच्ची सिंहणी राणीएं। बणी सुहणी लाइना पुत्त नूँ गुरू दी पढ़न वाणी।
'सेवा गुरू दी खूब कमाउ बचड़ा'। जीवन जान जुआन सुहावण ओ।
शसत्र विद्या विच चलाक सुहणा, घोड़ सवार होइआ मन भावणा ओ।
सांगे असतबल पिता दे आप उसने होइआ बीर सी तीर चलावणा ओ,
जदों सब्भ गल्लीं होई गिआ लाइक, करे पिता दा राज संभालणा ओ।
कई साक आये तूँहों मोड़ दित्ते, आखें सुफल करसां जनम पुत्त दा नी।
एस सोच दे दिनीं सी ख़बर आई, तुरक गुरू दे नाल सी जुट्टदा नी।
बाई धार राजे धाई आह सारे, सूबा आन सरहिन्द दा टुट्टदा भी।
फौज दिल्लीओं शाह ने आप भेजी, लशकर कटक दा धरत नूँ पुट्टदा नी।
सारे घेरसन जाइ आनन्दपुर नूँ, जंग मचेगा कहिर कहार भारी।
तदों सद्दिआ पुत्त नूँ लै गोदी, मत्था चुम्म के दएं पिआर प्यारी।
कंड हत्थ फेरें जायें वार फेरे, आखें– 'बचड़िआ तुध तों जिंद वारी।
'मेरी जिंद दा नूर इकलौतड़े वे! सिकदी भाउं दी आस उमेद सारी।
'तूँ तां चानणा मासदा बच्चिआ वे! तेरे बाझ हनेरड़ा जग्ग सारा।
'तैथों बिछुड़ना मौत नूँ सद्दणा है, उहले होवणां कहिर है अत्ति मारा।
'मैनूँ तेरड़ी लोड़ है अतिभारी, अपैर लोड़दा तुद्ध नूँ गुरू प्यारा।
'जनम तुद्ध दे सफल दा पुरब लग्गा, गुरू सेव दा समां ए बड़ा भारा।
'ममता आखदी घुट्ट के रक्ख बचड़ा, छाती नाल लगाइके जिंद टुकड़ा।
'गुरू आखदा सेव नूँ घल्ल बच्चड़ा, झाग मोह दी नैं दा कठन दुखड़ा।
'पंथ आखदा भेज मिराउ साडा, बाझ वीर दे चित्त–उदास उखड़ा।
'देश आखदा बली देह लाल दी तूँ, पाप राज पाटे, देश होइ सुखड़ा।
'सो हुण लाल दुलारिआ! होइ लकड़ा, मोह माउं दा दिलों विसार वारी।
'ममता माउं तिआगदी दिलों बच्चा, सावधान मैं धोलीआं जाहु वारी।
'पहिन पिता दे शसतरां असतरां नूँ, घोड़े जंग दी, पुत्त जी! करो सवारी।
'रण मत्ते दे विच जा लड़ो बचड़ा! जिंद चरन तों लाल जी। घोल वारी।'
दूजे दिनें तूँ लाल नूँ तयार कीता, लाड़ा आप शिंगार बणाइओ ई।
घोड़े चाढ़ के गुरां धिर तोरिओ ई, मत्था चुम्भ इह हुकम सुणाइओ ई:–
'नारफते नूँ बिआहुके लिआउ बचड़ा' 'नहीं तां मौत वरनी' समझाइओ ई।
तेरे हुकम बद्धा आग्याकार तुरिया, दे संदेसड़े शेर तुराइओं ई।
अैसे हौंसले वालड़ी भाउं सिंहणी जिन मौत दे मूँह पुत घत्तिआ ए।
गए गुज़र महीनड़े कई प्यारी, साह इक्क ना पुट्ठड़ा वत्तिआ ए।
अज्ज कीह होइआ राणी रोण लग्गी? तेरी एहो ही सिदक दी सत्तिआ ए?
पक्की रहो खाँ नेम ते राणीएं नी। नेमों हारना असल दी हत्तिआ ए।

रानी बोली–

सुण सखी प्यारी! तेरी समझ हारी, मेरी चिन्त दा हाल ना पुच्छिआ ई,
ऐवें लगी कोसण, मैं न अजे दोसण, बिनां लड़े मच्छर पिंडा उच्छिआ ई।
'पुत्त मरे नाही', इह तां चिंत नाहीं, चित होर ने हौसला मुच्छिआ ई।
'मतां अज्ज आवे पिट्ठ दे आवे' इस अग्ग कलेजड़ा लुच्छिआ ई।
अज्ज ख़बर पाई:- घेरा पिआ आही, लक्खां फौज तरकान रजपूत घेरे,
सच्चे गुरू दी सिंह सिपाह ताईं पुरि अनंद नूँ बैठे हन दई फेरे,
अंदर रसद पाणी सब्भे मुक्क चुक्के सिक्ख गुरू सिउं करदे हन मेर तेरे।
गुरू आखदे 'हौंसला नहीं हारो, रक्खो हौंसला देखणे हत्थ मेरे'।
मेरा जिगर पाटा सुणके विथिआ ए, मैंडा पुत्त ना इन्हां दे विच्च होवे।
देके गुरू नूँ पिट्ठ इस समें विखड़े कुरब पिता दा आपणा मतां खोवे।
जिंद मतां पिआरड़ी करे लालन, मेरा चित्त इउं लहू दी हंझ रोवे।
रब्बा। मार मैनूँ पहिले सुणन कोलों ऐसी बुरी होणी जिहड़ी ज़हिर चोवे।
पिट्ठ दई जे लाल ने, पंथ मैनूँ सदा देऊ धिकार ए आख के नी–
'कुक्ख सिंहणी जाइआ पुत्त गिद्दड़ कुक्ख जाइ सरापड़ी भाखके नी।
अगे गई नूँ पती ना मूँह लावे, परे सट्टसी मुज्झ पटाखके नी।
आखू आपणी कुक्ख सरापीआं नी, नाउं आई है मैंडड़ा ध्वांखके नी।
पंथ आखसी रहिंदड़े जुग ताईं, किते सिंहणी ठौर न मिले तैनूँ।
"सिंह शेर दा बच्चड़ा कैर कीता, मार देंदीओं पालिओ हाइ कैनूँ।"
गुरू आखसी "पिता शहीद होइआ, बग्ग गई ए पुत्त नूँ वाइ वैनूँ"।
अंत आखसण दोष मैं पालणे नूँ, अग्गे गई न ढोई ओ देण मैनूँ।
ए कुझ आखदी अक्खीओं नीर तुरिआ, रो रो वासते पाउंदी रब्ब ताईं।
पल्ला पाइके हत्थां नूँ जोड़ उट्ठी, कर अराधणा गुरू जी लए धयाई।
कहिंदी 'सच्चिओ सच्च दे आगुओ जी। मैं निमाणी दी आस ना टुट्ट जाई।
"पुत जीवे तां गुरू दे रहे सनमुख, मौत आउस तां पिट्ठ ना दे जाई।
"मरे मोहिरी होइके बधे अगे, मारो मार करदा मौत चक्ख लेवे।
"सनमुख गुरां दे पंथ दे रहे सुहणा, पत मुझ निमाणी दी रक्ख लेवे।
"देह रहेगी सदा ना जग्ग उत्ते, एस मत्त नूँ पुत परक्ख लेवे।
"सफल सेवा दे विच जे लग्ग जावे, एस सच्च नूँ बच्चड़ा लक्ख लेवे।"
इक्कुर मिन्नतां जोदड़ी करे राणी, पई रही सी जिवें सथार होवे।
खाण, पीण ते सौण सी भुल्ल गइआ, विच्चे मिन्नतां तरलिआं नाल रोवे।
खंभ हुन्दे तां उड्डके जा मिलदी, कन्न पुत्त दे जाइके मत्त प्रोवे।
ऐपर बेनती बाझ नां होर रसता, साखी सुणी सारी राणी पई रोवे।
रब्ब सच्चड़े अरज़ मनजूर कीती, दिनां दसां मगरों इक सोइ आई:-

"कुछ सिंह बिदावीए होए सीगे, सिदक बहुतिआं मूल ना हारिआ ई।
"तेरा लाल सी सिदकीआं विच सुहणा, तेरा नाम उस बीर निबाहिआई।
"जिंद हूल के गुरां दे चरन उतों, माउं, जिंद, धन धाम विसारिआ ई"।
नाले सूहीये शादी दी ख़बर दस्सीः-"तेरा लाल शहीद हो गिआ अम्मां।
"अंग संग ओ गुरां दे रिहा दूला, नाल विच चमकौर ओ गिआ अम्मां।
"गुरू सिक्ख वारे नाले पुत वारे, गढ़ी गिरद सी घेरड़ा पिआ अम्मा।
"दो दो चार हो के सिक्ख बाहर आये लक्खां नाल आ मामला पिआ अम्मां।
"मार सैंकड़े सिक्ख शहीद हुंदा, गुरू देखके देण असीस भारी।
"जनम सुफल कीता चाली प्यारिआं ने, जिंद गुरां दे हुकम ते वार वारी।
"वडे साहिबज़ादे दोवे बली होए, एस पुरब दे देहुं ते पए पारी।
"तेरा पुत्त वी शाहां दे नाल तुरिआ, खेड जिंद ते गिआ बलवान भारी।
"कई मारके मोइआ ई दूलड़ा ओ, गुरां आखिआ-बचड़िआ धंन तुहनूँ।
"तेरे पिता ने सीस सी दीआ अगे, धंन पिता नूँ, बचड़िआ धंन तुहनूँ।
"धंन माउं जिन जाइआ तुद्ध ताईं, धंन कुक्ख नूँ, बचड़िआ। धंन तुहनूँ।
"धंन वंस सुलक्खणी तेरड़ी ओ, धंन माउं नूँ, बच्चिआ! धनं तुहनूँ।"
सुणके पुत्त दी मौत दा एह साका, अम्मां उछल पैंदी हत्थ दोइ उच्ची,
नाल खुशी, परेम ते चिन्त भारी, नीर वग तुरिया रोई अक्ख सुच्ची।
"धंन धंन गुर" आखदी मुखड़े तों, लूं लूं आखदा 'गुरू है धन' उच्ची।
"मेरे पुत्त नूं लाइके चरन जिसने, दित्ती पदवी है जगत तों बहुत उच्ची।"
कहिंदी "सौतरी अज्ज हां जगग होई, जिस दा पुत्त मोइआ गुय साम्हणे वे।
"देश पंथ तों वारने लाल होइओं, रब्ब नित्त मन्नीं तेरे आमने वे।
"दइआ मुज्झ ते बच्चिआ कीतीआ वे, मौतों सखत हुंदे मूँह उल्हामने वे।
"नार सिंह शहीद दी पती कीती, माउं सिंह शहीद करावने वे।
"मेरी कुक्ख सुलक्खणी दूलिया वे। भागे भरी अज्ज जग विच होईआं मैं।
"जिसदे पती ते पुत्त शहीद होए, ओह अज्ज सुलक्खणी होईआं मैं।
"देह धारके तुसां ने सफल कीती, हो तुसाडड़ी सफल हुण होईआं मैं।
"चरनां आपणे विच निवास बखशो, रब्ब सच्चड़े दी लड़ लाईआं मैं।
"पती पुत्त तां गुरां दे कम्म आए, बाकी देह धन धाम है अज्ज मेरा।
"इन्हां मोआं दे माल नूँ बेच घत्तां, कलग़ी वालड़े करां आ दरस तेरा।
"जे ए बखशिआ आप दा माल आवे कार आप दे, गुरू जी सफल फेरा।
"मेरी देह बी सफल हुण होइ गुर जी! वांग पुत्त ते पती हो अंत मेरा।"

सूचनाः- आनन्दपुर से निकलने वाली कहर की रात को गुरू महिलों की एक सेविका स्त्री धर्म, शर्म, कर्म की पूरी हफड़ा-दफड़ी में बिछुड़ी तुर्कों के हाथ आ गयी, उसकी दर्दनाक आप बीती का कुछ वर्णन आगे हैः-

७७ बसन्त लता*

घर बाहर तज शरन आ रही इक गुर चरन पिआरी।
माता जी दे पास रहि पई करदी प्यार अपारी।
मात पिता पुत पती एस दे सन परलोक सिधाए।
वैरागन हो डेरे इस ने मात चरन विच लाये।
माता जी नूँ प्यार एस दा, ऐसा रिंदे समाइआ।
नाम 'बसन्त लता' कर बोलण, करदे प्यार सुवाया।
कहिर कहारी वेला आया जदों पंथ ते भारी,
हुकम गुरू दा सिक्खां मोड़िआ बेदावा लिख भारी।
रात कटक दी आई धाई, जदों किले तों कल्ले,
गुरू हुकम नूँ रद्द खालसा आनन्दपुर तों हल्ले।
बाकी सिदक यकीनां वाले, लाज पंथ दी,
प्यारे! गुर चरनां विच नाल चले ओ जाना वारन वारे।
हिन्दू तुरक फौज जो उट्ठी, सह्वां सुगंदां भन्ने,
कुम्मस धुम्मस भड़थू मचिआ, वाहो दाही भन्ने।
हा हा हूल पिआ चौफेरे, रौला चांग दुहाई,
पता न लग्गे गोली चल्ले, चल्ले तेग़ हवाई।
माता किते पोतिआं वाली ब्राह्मण नाल गुआची।
डोले किते सिक्ख दे आश्रे भज्जे दिशा अवाची।
बेदावे वाले सिख लड़दे, वांग गाजरां कटदे।
सनमुख सूरे तेग़ वाहुंदे, जांदे फाटां फट्टदे।
जीत सिंह नूँ तद सी नाले सरसे लया अटकायी।
लता बसन्ती ओस समें सी विपदा दे मूँह आई।
ए डोले दे विच न बैठी, माता कहि कहि हारी,
अदब न भुल्ला एस नार नूँ विच इस कहिर कहारी।
डोले लैके सिक्ख जु नस्से, नाले नसदी जावे,
इक थां ठेडा खाके डिग्गी, लुढ़क पैर पै जावे,
उठ सँभली ते नस्सण लग्गी, तुरकां ने फड़ लीती,

---

* यह प्रसंग २४ श्रावण सं० गु० ना० सा० ४३७ (८ अगस्त १९०६) के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

लड़दी रही ज़ोर बहु करदी, बहुतिआं काबू कीती।
बद्धी गई दिलों पर मूलों ना सी नारी हारी।
लै नस्से इक नगर वल्ल नूँ, राज पठाणां भारी।
जा अरपी जिउं माल लुट्ट दा तुहफा एह नवाबी।
घर अपणे लै गिआ 'लता' नूँ, चाहे करन खराबी।
माता दी उह सखी अंतरंग, 'लता' बसंती प्यारी,
गुर प्रेमण सी सिंहणी सच्ची, अंमृत धारन वारी।
'लता' ओस नूँ किहाः दुष्ट सुण, मैं नौकर गुरू घर दी,
जो तूँ जाणे सो मैं नाही धोख मिटा दे उर दी।
मैं चख अम्रित धरम धारिआ, जान खेडणी जाणा,
धरम आतमा नाल जावसी मन्न गुरां दा भाणा।"
तुरक करेंदा हीले डाढे, गहिणे बसत्र सुहावे,
दे दे चाहे मुहंणा उसनूँ, उह ना गथर लिआवे।
महिल माड़ीआं बाग़ बग़ीचे देख न मुट्ठी नारी।
उह मुट्ठा सी सूरत उत्ते, हुण मुट्ठा गुण क्यारी।
हीले लालच वाले हारे, तद डर दाबा आया,
बहुत अजाब पुचाये उस ने, बहुता कहिर कमाया।
फाके कई कड़ाके दित्ते, मुशकां मार कराई,
कुट्टण चट्टू लाया औखा, चक्की बहुत पिसाई।
किवें न हारी धरम सोहिणी गुर चरनां दी प्यारी।
आख़र वकत कशट दा आया, ज़ुलमी कहिर कहारी।
बदो बदी हुण धरम खुहण दा इह हीला सी बाकी,
जदों दुशट ए करने लग्गे रही तदों बी आकी।
अद्धी रात बीत सी चुक्की, 'लता' न निरबल होई,
भुक्खां मारी तेहां कुट्ठी बिरहों पच पच मोई।
दुशट जाणदा निरबल नारी, निरबल बहुती कीती,
मन्न लएगी हुण तां कहिआ, मन्नूँ चुप्प करीती।
ज़ालम जदों आ गिआ ओथे हत्थ उचेरा कीता।
उस दी कमरों खिच्च कटारा 'लता' साम्हणे कीता।
फुरती नाल वाह लिआ निज नूँ, फूक पेट विच लीता,
लहू फुहारा छुटे ज़ोर दा, आपा घाइल कीता।
डिग्गी डिग्ग धरा ते सुहणी सहिक सहिक दम तोड़े,
काफर खड़ा वेखदा हिम्मत, टुक टुक बुल्ल मरोड़े।

हुण जाता उस सिख की हुंदे, किस मिट्टी दे पुतले,
किस धरती ते तुरदे दिस्सण, उडदे किस घर उतले।
देखदिआं उह ठर गई देही, मर गई सुन्दर नारी,
मरी ना जीवी दुहीं जहानीं, धन्नी गुरू सवारी।
अंत समें दी चाह ए उसदी किवें सोइ इह मेरी,
माता जी दे कन्नीं जा पए– 'लता गई शुद्ध मेरी'।
पूरन अैकुर होई इच्छा, गुर है आप पुजावे,
आपे रसता कड्ढे प्यारा, आपे कार करावे।
ज़ालम खौफ अत्त दा खाधा, सहिम गिआ पिख करनी,
तीमीं जात बहादर अैसी, जान तली ते धरनी।
हिन्दू इक्क दास नूँ तड़के, जो सी घर विच रहिंदा,
सद्द कन्न विच ज़ालम उस नूँ, एस तरहां सी कहिंदाः-
"चुप चुपाते एस नार नूँ जा के अगनी साड़ो।
खबर न किसी होर नूँ लग्गे, तुरत चिखा ते चाड़ो।
ख़बर न होवे सिक्खां ताईं, मतां पए फिर भरनी,
बुरी कौम है सिक्खां वाली, कहिर न सकदे जरनी।"
ए नौकर सी सहिज धारीआ, हिन्दू ना सी भाई।
सिक्खी सिदक विच सी पक्का, डिट्ठी 'लता' कमाई।
सुणके हुकम खुशी दिल होइआ, सद्द उस वहुटी अपणी,
लता तईं इशनान कराया, दित्ती, चादर ख़फनी।
तदों लता दे खीसे विच्चों कागत निकलियां भाईः-
"माता साहिब जी नूँ कोई देवो खबर पुचाई।
लता बसन्ती चमड़ रही सी चरन आप दे संगे,
चरन छुटे ते सुक्क गई है मार कटारा अंगे।
धरम सुररू रक्खी एथे मौत बसन्ती कीती,
सुरत आपदे चरनां अंदर हरदम है वे सीती।
होए आप सहाई सतिगुर, मैं चरनां दी बरदी,
धरम शरम संग चली जगत तों गुर गुर मुख तों करदी।
रंज न माता करना मेरा, मैं धरमों ना मोई।
जान मिरी मरनी सी इक दिन इस दा दुख न कोई।
माता! बखश लओ बेअदबी, जो करदी मैं रही आं,
बिरद पालणां माता अपणा मैं भुलदी दुख सहीआं।
अग्गों होण जदों फिर मेले लता न माता! भुल्ले,

चरनां विच समाणी दासी लवां शरन दे बुल्ले।
मंदी चंगी जेही सां मैं गुरू दी दास कहावां,
बिरद टेक लै गुर दी हिरदै, माता! अज सिधावां"।
ओस सिक्ख ने पढ़ ए कागज़ अपणे पास लुकाया।
कर ससकार, दमदमे जाके परचा जाइ पुचाइया।
पढ़ के 'लता बसन्त' सिधारी आपा वार सिधायी,
माता नैणों वीर बहाया, ख़त गुर पास पुचायी।
पढ़के स्री दसमेश आखदे, "लता बसन्त न मोई।
ना रहिणे इस चमनो-उक्खड़ीं, सदा बग़ीचे' बोई।
सदा बसन्त रहू हुण तैनूँ, हे तूँ धरम पिआरी।
आपे सदा प्रभु संग रहिसें कदी न बिछुड़न हारी"।
फिर संगत नूँ किहा गुरां ने, सिख इक मेरा होऊ।
"एस 'लता' दा नाउं निशाना पक्का करसी सोऊ।"
सच्च भिआ उह वाक गुरां दा किसे सिख किस वेले,
मंदर यादगार इक उस दा, रचिआ रंग रवेले*।
सुणों खालसा! उच्च कमाई कैसी इस ने कीती
धरम पालिआ, सिदक न हारी झल्ली जो सिर बीती।

---

* श्री दरबार साहिब जी के प्राचीन बड़े रागियों के खानदान के भाई हजूरा सिंह जी रागी ने, जो थोड़े वर्ष हुए परलोक गए हैं, यह प्रसंग सुनाया था, हमें अभी तक जाकर 'लता' जी का देहुरा देखने का अवकाश नहीं मिला है।

७८ श्री कलग़ीधर जी दीने*

: १ :

बुरा नहीं सभ भला ही है रे हार नहीं सभ जेतै॥ (का॰ म॰.५)

दिन और रात कबड्डी खेल रहे हैं। दोनों एक दूसरे के सामने खड़े होकर घूरे थे कि एक उठ दौड़ा और दूसरा पीछे दौड़ पड़ा है। आगे आगे रात और पीछे पीछे दिन या ऐसे कि आगे आगे दिन पीछे पीछे रात। रात ठंडी और अँधेरी, दिन गर्म और रोशन। दोनों समय (सुबह और संध्या) दिन और रात आमने सामने मानों विहरते प्रतीत होते हैं। सुबह और सांझ के समय चाँदनी और अँधेरे का मानो संगम होता है, वह उषा है, इस समय ठंड और गर्मी का भी संगम होता है, वह शीतलता है।

सनातन कथा है कि प्रजापति अपनी बेटी का प्रेमी हो गया, बेटी आगे आगे उठ भागी, प्रजापति पीछे भागा। देखो दोनों भाग रहे हैं, परन्तु पकड़ नहीं सके। प्रजापति कौन है और बेटी कौन है? बेटी का नाम उषा है और बाप का प्रजापति। प्रजापति का अर्थ है 'सूर्य' और उषा का अर्थ है 'पौ'। पौ है रात के समाप्त होने और सूर्य चढ़ने के बीच का मद्धम रोशनी का समय और सूर्य डूबने और रात पड़ने के बीच का मीठे प्रकाश का समय।

... .

अस्तिव और अनस्तित्व दो नुक्ते हैं। स्याही की बिंदी की तरह, कागज़ के साथ जकड़े नहीं खड़े, खेल रहे हैं। एक दूसरे के सामने हैं, लचकते, झुकते, उछलते, लटकते और ऐसे घूमते हैं कि लगता है एक दूसरे को पकड़ लेंगे परन्तु न वह उसको आलिंगन में लेकर कसता है न वह। दोनों का कहीं आमना सामना है, मानो संगम है, एक दूसरे पर प्रभाव है। वहाँ जगत है।

... .

सुख और दुख दो खिलाड़ी हैं। एक दूसरे के पीछे पड़े हुए प्रतीत होते हैं। दुख नाना भाँति पीड़ाओं का पुतला है, सुख नाना भाँति रसों का पुतला है। अपनी भाग दौड़ और कबड्डी में दुख सुख आमने सामने विहरते हैं+। किसी ठिकाने पर जाकर दुख सुख का संगम है, वह सम है। दोनों के संगम स्थान में उषा जैसा प्रकाश है।

... .

---

* यह प्रसंग गुरुपर्व पौष सुदी सप्तमी सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४६६ पौष की २८ सं॰ १९९१ वि॰ शुक्रवार (११ जनवरी १९३५) को खालसा समाचार में तथा अलग से हज़ारों की गिनती में छपकर संगत में प्रचारित किया गया था।

\+ घूर-घूर कर देखते हैं।

तंदूर पड़ा है ठंडा लकड़ियाँ डालकर आग जला दी, अग्निकणों से भर गया। न ठंडे में रोटी पकती थी न अग्निकणों (शोलों) में। ठंड दूर हो गयी, शोले हट गए, मद्धम आँच है। ठंड और अग्निकणों के संगम में एक तपन आ गई। अब रोटियाँ पकती हैं।

दिन, रात, उषा, तीन हैं, परन्तु तीनों का कारण सूर्य है। अस्तित्व अनस्तित्व, जगत, तीन हैं, तीनों का कारण सत्य* है। सर्दी, गर्मी, तपन, तीन हैं, तीनों का कारण तेज है। सुख, दुख, सम तीन हैं, तीनों का कारण आनन्द है। चित, जड़, अहम्, तीन हैं, तीनों का कारण चेतन है।

इस पहेली को बूझने पर समझ आती है, समझ निर्मलता है, निर्मलता बल है। यह बल आत्मिक है। यह बल सर्व सामर्थ्य के समुद्र के साथ मिल जाने के कारण शिरोमणि बल है। एक बल मानसिक है, जिस में बुद्धि का विस्तार है और हृदय स्थित ऊँचे शील की ताकत है। हाँ, एक बल शारीरिक है। एक बल कुदरत ने पदार्थों में रखा है। इन सारे बलों–आत्मिक, मानसिक, शारीरिक, पदार्थ सम्बन्धी–के मालिक थे साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी, जिनके जीवन की एक दुखों भरी अवस्था पिछले प्रसंगों में देखते आये हैं। ख्याल करो गुलाबे के प्यार का परन्तु उसके डरने का। कोई डर शारीरिक अथवा मानसिक कमज़ोरी से पैदा होता है परन्तु कभी कभी बहुत सोच और एहतियात वाली दूरन्देशी से भी डर उपज पड़ता है। इस तरह की किसी अवस्था में गुलाबे ने कहा था 'महाराज आप अब कूच करो तो अच्छा है।' साहिब बोले: "घबराओ नहीं, डरो नहीं हम एक ठिकाने के लिए नहीं ठहरे, तुम डरो नहीं तुम्हारा बाल बाँका नहीं होगा।" परन्तु गुलाबा कह रहा है–'पातशाह! तुर्कों के जासूस घूम रहे हैं, आपकी सलामती चले जाने में है और मेरी सुरक्षा मेरे घर खाली हो जाने में है। मैं विश्वास में भी हूँ। मैं डरता भी हूँ।'

शक्ति के स्वामी हँसे और सोचने लगे 'विश्वास और डर! अच्छा दोनों सही। अच्छा चलो भाई।' ..... चल पड़े। जाते जाते एक अपना अनुगृहीत जमींदार मिला। कहने लगे 'फत्ते, घोड़ी तो ला दे इस समय ज़रूरत है।' फत्ता डरा, घोड़ी का मोह जागा, बहाना करने लगा 'महाराज! घोड़ी तो है नहीं'। देखो जिस के द्वारे हज़ारों रुपये की कीमत के घोड़े थे, जिसकी फौज के एक एक सिपाही के पास हज़ार हज़ार रुपये का घोड़ा होता था वह आज एक घोड़ी माँग रहा है और आगे से इनकार होती है। इनकार कौन करता है? अपना सेवक, प्यार करने वाला और प्यार किया गया। है कि नहीं दिल तोड़ देने वाला मामला।

कहते हैं मंसूर को सूली चढ़ाने का हुक्म शरअ के काज़ियों ने दे दिया। मंसूर जा रहा है सूली चढ़ने। जनसमूह बाज़ारों में जुड़ा खड़ा है। कोई तमाशा देखने और कोई प्यार, तरस के साथ आँसू बहाने तथा कोई शरअ वालों की संगदिली पर फटकार डालने। परन्तु इन खड़े लोगों को हुक्म आया है कि निकलते हुए मंसूर को कंकड़ मारो। जो नहीं मारेगा सज़ा पायेगा। मंसूर जा रहा है, बेडर (निडर) कंकड़ पड़ते हैं, शरई लोग थूकते हैं, लानतें भेजते हैं, परन्तु वह अपने रंग में जा रहा है।

* वास्तविक अस्तित्व

शिबली खड़ा था, यह उस मंसूर का गुरूभाई था, प्यारा मित्र था, मंसूर को समझता था सच्चा है और काज़ी झूठे हैं, परन्तु शरअ का हुक्म था कंकड़ मारने का। चित्त नहीं सहता कि मित्र को और बेगुनाह (निर्दोष) को कंकड़ मारे, परन्तु शरअ का भय है, इसलिए इसने एक फूल उठाकर मार दिया। फूल लगा, मंसूर ने देखा कि मित्र की ओर से आया है। जहाँ फूल लगा था, मंसूर को तड़प पैदा हुई, वहाँ हाथ लगा, नेत्र भर आए और 'हाय पीड़' की आवाज़ आई। लोग हैरान थे कि हैं कंकड़ों, पत्थरों की मार ने हाय को नहीं बुलाया, इस फूल ने क्यों 'हाय' को कान से पकड़ कर ला उपस्थित किया है। कहते हैं कि पल बाद लोग भी समझ गए कि मंसूर क्यों रोया था–शिबली मित्र को कंकड़ मारने वालों में नहीं खड़े होना चाहिए था। इससे अधिक दिल तोड़ने वाली बात क्या हो कि महरम भी मारने वाला हो जाये। मंसूर रो पड़ने में सच्चा था, मित्र हो और वह भी मारने वालों में हो। चाहे फूल ही मारे, यह थी मंसूर को मानसिक पीड़ा। मंसूर मनुष्य था। साहिब जी गुरू गोबिन्द सिंह जी थे भगवंत रूप, तुलना करना ही बेअदबी है, परन्तु बात समझने मात्र के लिए देखो घर के अनुगृहीत महरम और मित्र गुलाबे ने घर रखकर सेवा करके फिर कहा कि दुश्मन आप के आ गये हैं और अब मेरे घर से विदा हो जाओ, मुझे न पकड़ लें। इसके बाद महरम और सिक्ख 'फत्ता' कहता है, घोड़ी है नहीं। घोड़ी है, दे दे तो वे दुश्मन के निशाने में से जल्दी ही निकल जायें। परन्तु उसको घोड़ी अधिक प्यारी है उससे जो उसके लिए और उसके देशवासियों के लिए घोड़े लश्कर फौजें घरबार क़िले पुत्र परिवार न्योछावर करके आ रहा है। यहाँ ही बस नहीं। आगे अपने गुरू घर द्वारा अनुगृहीत बाबा कृपाल के डेरे के महन्त के पास जाकर एक रात का रैन बसेरा माँगते हैं, एक आधे दिन के लिए आराम चाहते हैं, परन्तु महन्त कहता है, नहीं मैं तुर्कों से डरता हूँ, आप प्रस्थान करो यहाँ न ठहरो।

यह डेरा अपनों का है, महरमों का है, उनका है कि जिन्होंने आज भी चरणों पर सीस रखा है। परन्तु कितनी दिल तोड़ने वाली बात कह रहे हैं कि तुर्कों से डरते हैं, आपको छुपाकर भी नहीं एक आध दिन रख सकते, जाओ और जल्दी जाओ। इतने दिली (प्रिय) मित्रों की ओर से मुसीबत पड़ने पर इनकार में उत्तर मिलने कितने दिल तोड़ने वाले हैं। परन्तु महाबली जी दिल नहीं तोड़ते, बेकसर मज़बूत हैं।

जो नरु दुख मैं दुखु नही मानै॥ सुख सनेहु अरु भै नही जाकै कंचन माटी मानै॥

(सो॰ म॰ ९)

हाँ इस बलवान महांबली जी ने आप कहा है अपने बल के समुद्र को–'नमो तान ताने'। ये कौन हैं? ये हैं साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी, सर्बशक्तियों के मालिक। जिनका नियम है–

दुखु नाही सभु सुखु ही है रे एकै ऐकी नेतै॥ (कान॰ म॰ ५)

देखो आज आप मंसूर की तरह विपदा में हैं। विपदा के कारण जवाब ले रहे हैं, अपनों से। मंसूर की तरह दिल तोड़ने वाले अनुभवों में से गुज़र रहे हैं, परन्तु मंसूर की

तरह दिल तोड़ते नहीं, विपत्ति को विपत्ति नहीं समझते और उसी अपने रोशन बुलन्द रंग में चले जा रहे हैं। किसी साथ जा रहे साथी ने यह अपनों का व्यवहार देखकर आप से पूछा 'अब सलामती के घर पहुँच कर क्या करोगे?' तो उनका जीवन बताता है कि जवाब इस तरह का था कि 'जो करते आये हैं। प्रजा का बोझ हरेंगे। दुख झेलकर दुख दूर करेंगे। इन निराश्रयों की रक्षा करेंगे।' यह थी अवस्था उस बलवान जी की जो दिन रात, दुख सुख, अस्तित्व अनस्तित्व, जिंद जड़, सभी के पीछे 'सत' स्वरूप सूर्य को देखते थे और उसको कहते थे 'नमो तान ताने' और कहते कहते उस तान समुद्र के साथ अभेद हो जाते थे और 'नमस्तं अजीते नमस्तं अभीते' कहते कहते नेत्र खुलते थे, तो 'नमस्तं जरारं' कहते शीश झुकाते थे।

इस तरह अभय और अजेय दिल वाले महाबली जी हर कदम पर दुश्मन के भयमंडल में से, अभय, अजेय रंग के साथ जाते जाते जब राय कल्ले के पास पहुँचे तो उसने बहुत आदर सत्कार के साथ पास उतारा।

यहाँ से अब श्री गुरू जी आगे चले। उधर के लोग बताते हैं कि अभी साहिब रायकोट के इलाके आये ही थे और रायकल्ला अभी नहीं था मिला कि आपने गुर्जर जाते देखे, उनसे दूध माँगा, परन्तु उन्होंने दूध देने के स्थान पर, हाँ पैसे भी लेकर देने की जगह, मज़ाक किया। कहने लगे 'गायें दूध देने वाली नहीं हैं, पीछे आ रहा है दूध देने वाली गायों वाला'। जब बाद वाला चरवाहा आ पहुँचा और उससे दूध माँगा तो उस समझदार ने चरणों पर सिर रखा और कहा 'दूध आप पर से बलिहार न करूँ, परन्तु दूध देने वाली गायें आगे निकल गई हैं। ये तो दूध से भागी हुई हैं जो मेरे साथ हैं, वे जो आपको बता गये हैं मूर्ख थे, आप के साथ मज़ाक कर गये हैं।' साहिब बोले:- 'मज़ाक भी करने के लिए बने हैं। भले पुरुष! बैठ जा, दूध स्तनों में सांईं डालता है दुह दे।' चरवाहा भरोसे वाला आदमी था, देख रहा था कि साईं लोग हैं, तैयार हो गया। एक लोटा था जो छिद्रों से भरा था, इसमें चरवाहा एक गाय का दूध दुहने बैठ गया। भागी हुई या भाग रही गाय के स्तनों में दूध आ गया। चरवाहा दुहे, दूध लोटे में पड़े, कुछ रहे कुद छिद्रों में से बह गये। जब सारा लोटा भर गया तो दूध बहना बंद हो गया।

विश्वास वाला चरवाहा भरा लोटा लेकर हाज़िर हो गया। आपने दूध का प्रयोग कर लिया और 'विश्वम्भर हैं' 'सरबं भर हैं' कहते हुए खाली लोटा चरवाहे को दे दिया। कहा यह रख ले, है तो यह छिद्रों से भरा परन्तु संतुष्ट कर देगा। यह लोटा उस चरवाहे के खानदान में या उनसे मिला किसी खानदान अन्य के पास अभी भी है। देखने वाले बताते हैं कि यह लोटा छिद्रों वाला है, अब भी पानी डालो तो पहले टपकता है, जब भर जाता है, फिर नहीं टपकता।

: २ :

रायकल्ले से विदा लेकर आप अब आगे को चले जा रहे थे कि आगे से एक सिंह मिला कहते हैं निगाहिया सिंह* इसने एक घोड़ा अर्पित किया:-

---

* तवारीख खालसा में यह मिलाप रायकल्ले को मिलने से पहला लिखा है।

परयो ज़ीन जिस पास तुरंगा॥ दीरघ चाल चपल बल संगा।
अरपन करयो हाथ जुगु जोरे॥ स्री प्रभु तब अरोहि करि घोरे॥ (सू॰ प्र॰)

अब घोड़े पर चढ़े जंगल देश को जा रहे हैं, दिल योजनाएँ बना रहा है कि अगर सिरहन्दी आया तो उसके साथ मुठभेड़ करनी पड़ेगी, सो करेंगे। इतने में दीना गाँव आ गया।

लिखा है कि यह गाँव कांगड़ में से निकलकर बसा था*। कांगड़ वह स्थान है जहाँ राय जोध हुआ है। इस योद्धे ने छठे गुरू जी की सेवा में होकर भारी युद्ध किया था। अपनी फौज सहित सतगुरू के दल में आकर तुर्कों के साथ लड़ा था। गुरू की जीत हुई थी और तुर्क दल हार खाकर तबाह हुआ था। यह घराना तभी से ही गुरू का सिक्ख था। राय जोध के इस समय तीन पोते थे। चौधरी शमीर, लखमीर, और तखतमल। इन्होंने जब सुना कि गुरू जी आ रहे हैं तो तैयार होकर भेंटें हाथ में लेकर आगे बढ़कर मद्धे गाँव गुरू जी को जा मिले। रकाबों में पड़े चरणों में शीश रखकर भेंटें अर्पित की। सतगुरू ने राजी खुशी पूछी। तीनों शूरवीर साहिबज़ादों के साकों पर अति प्यारे और हमदर्दी के आँसू बहाकर रोये फिर विनय की कि हम प्राचीन काल से सिक्ख गुरू घर के हैं आपने बहुत मेहर की है कि इधर आये हो, अब चलें और अपने घरों को भाग्य लगायें।

किसी को परेशानी में डालकर खुश न होने वाले गुरू जी बोले–

'भाई! सिक्ख तो आप हो परन्तु हमें घर कैसे उतारोगे। हमने प्रजा सुखी करने के लिए युद्ध रचाये (किये) तुर्कों ने बुद्धि करने की जगह वैर चराया। हम युद्ध करते आ रहे हैं, वे पीछे आयेंगे, आप उनकी प्रजा हो। न तुम्हारे पास कोट है न क़िला, न दिल जमाकर लड़ सकते हो। हमें जो अभी लड़ने के दम ख़म में हैं, जिन्होंने अपना उद्देश्य पूरा क़रना है, कैसे घर उतार सकोगे? अग्नि देवता का डेरा खुले मैदानों में अथवा यज्ञवेदियों पर शोभायमान होता है।' यह सुनकर वे बोले: 'पातशाह हम आपके पुश्तों के सिक्ख हैं, आपके चरण पड़ने से घर पवित्र होंगे। आप आओ और हमारे न उतरो। हमारी सिक्खी क्या हुई। बेशक हम क़िले कोट वाले नहीं, परन्तु हममें आपकी मेहर बसती है। हमारे डौलों में तन और मन में आपका मान है। हमारे दादे ने आपके श्री दादा जी के हुक्म में तेग़ चलायी थी, इन तुर्कों को गर्दन रहित किया था। प्रजा हम आपकी हैं। तुर्कों के साथ हम लड़ेंगे, वे हमारे शत्रु हैं। आप बल दो कि अगर तुर्क यहाँ आयें तो आपके झण्डे तले हम दादा की तरह लड़ें, शत्रु को मिट्टी में मिलायें अथवा शहीदी प्राप्त करें। आप हमारे पातशाह, तुर्क हमारे प्राचीन काल से बैरी। आप की मेहर सदका विपदा आ पड़ने पर भी हम आपका संग नहीं त्यागेंगे, खण्डे की धार तले मरेंगे।

यह हृदय में शक्ति का निवास और रसना पर प्रकाश देखकर आपका हाथ शमशेर पर गया और दूसरे ही क्षण लगाम उधर घुमा ली जिधर घोड़े की गर्दन पर हाथ रखे, समीर

* दयालपुर जहाँ अब थाना है तब अभी बसा नहीं था और यह जगह कांगड़ में ही थी।

धीरे-धीरे साथ जा रहा था और घोड़े को प्यार के साथ मोड़ना चाहता था। थोड़ी देर में गाँव में जा पहुँचे।

: ३ :

साहिब अब दीने ठहर गये हैं*। इस जंगल देश में ख़बरें फैल गयीं कि आप दीने ज्योति जगा रहे हैं। संगतें पहले नज़दीक की फिर दूर की आने लग पड़ीं। समीर भाइयों ने प्रबन्ध किया कि जो गुरू के दर्शन को आये पहले इनको मिले, उन्होंने तसल्ली कर लेनी फिर साहिब गुरू को ख़बर देनी और आज्ञा पाकर दर्शन करवाना। संगतों में गुरू जी की कुर्बानी की और निर्मोहता की चर्चा चल रही थी। गाँव गाँव घर घर आनन्दपुर और चमकौर के साके की वारें चल रही थीं। लोग इस तरह का वार्तालाप करते थे:-

धंन गुरू करि जंग कउ लाखहु रिपु मारे।
साहिबज़ादे रण मरे सुरलोक सिधारे।
पुत्र मोह जिनके नहीं, इस रस मन शांति।
बड़े बहादर अतिरथी शत्रू बलि घाती॥ (सू॰ प्र॰)

संगतें अब चढ़ावे और सौगातें लाती हैं। जैसे जैसे पदार्थ आता है त्यों त्यों आप सेना की शक्ल बाँधते हैं। जितनी गुंजाइश माया देती है शूरवीर नौकर रखते हैं। बैराड़ बहादुरों की सेना जुड़नी आरम्भ हो गयी है, शस्त्र और घोड़े खरीदने शुरू हो गये हैं। अब ख़बर मालवे से बाहर भी सतगुरू जी के पते की निकल गयी है। कुछ दूर से प्रेमी इकल्ले दुकल्ले अथवा संगतें बाँधकर आने लग पड़े हैं। गुरू जी के शस्त्र प्रेम का सबको पता था। इसलिए अच्छे अच्छे शस्त्र भेंट में भी आने लग पड़े। नज़दीक के कारीगरों से आप भी तीर कमान खरीदने लग पड़े। कभी शिकार भी चढ़ते हैं, दीवान भी लगाते हैं, उपदेश भी करते हैं, नाम दान भी देते हैं, परन्तु ख़बर भी सारी रखते हैं। आप समझ रहे हैं कि सरहिन्द से हमला होना है। इस आ रहे दुख के सांड को सींग से पकड़कर मरोड़ देने के लिए दिलेर दिल वाले गुरू जी तैयारी कर रहे हैं।

इस देश में पिता पुत्र दो कारीगर प्रेमी छठे सतगुरू के समय हुए हैं। जब एक बार साहिब डरोली थे तो कई कोस की दूरी पर पिता पुत्र ठंडा जल देखकर प्रेम के प्रवाह में बह गये थे कि जल गुरू के छकने (पीने) का है, हमारे पीने का नहीं। इनकी उस प्रेंम विह्वलता पर प्रसन्न होकर छठे सतगुरू हरगोबिन्द जी तपती दुपहर में घोड़े पर चढ़ बहुत जल्दी में वहाँ पहुँचे, जहाँ प्रेमी जल के लिए इंतजार कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर अत्यधिक प्यासे होकर आपने जल माँगा और पिता पुत्र पिलाकर प्रसन्न हुए। पिता का नाम संधू और पुत्र का रूपा था। जल छककर गुरू हरगोबिन्द जी ने उनको आत्मशक्ति से भर दिया, फिर वर दिया कि आप जगत तारोगे, फिर काम छुड़वा दिया और देग़ चलाने की आज्ञा दी। इस

*एक देसू नाम के बढ़ई का ऊँचा चौबारा था, यह पसन्द करके गुरू जी ठहर गये। यहाँ अब गुरुद्वारा है।

वर के बाद देग़ चली, सत्संग का प्रवाह छूट पड़ा, कुल बढ़ी और गुरू घर के साथ प्रेम भी ज्यों का त्यों रहा। इन बुज़ुर्गों के खानदान के इस समय भी दो सज्जन मुखिये थे जो श्री आनन्दपुर जाकर अमृतपान कर तैयार बर तैयार सिंह सज गये और नामवाली प्रेमाभक्ति का एक नमूना बन रहे थे। इनके नाम थे, परम सिंह धरम सिंह*। इनको जब ख़बर पहुँची कि सतगुरू दीने आये हैं तो ये घर से दर्शनों के लिए तैयार होकर चले। साथ में कुछ सिंह लिये और शस्त्र भी बाँध लिये। कुछ पदार्थ और भेंटे भी लीं। बहुत चाव और प्रेम से भरकर जा रहे हैं। रास्ते में शबद पढ़ते और दीवान लगाते जाते हैं, जगह-जगह से और सिंह भी साथ मिलते जा रहे हैं। अंत में ये दीने पहुँचे। सतगुरू के दर्शन किये, चरणों को लिपट गये, लिपट कर विह्वल होकर रोये, ऐसे रोये कि पत्थर पिघल जायें। दोनों गुरू साहिब के दुख को निज का दुख प्रतीत कर आप पीड़ित हो रहे थे। जब हाय हाय करके रोये तो गुरू जी ने दिलासा दिया, फिर भी आप इस तरह पुकारे–

हाय हाय कर रुदत भे:- 'बड सांग अरंभा।
साहिबज़ादे हति भए इह अधिक अचंभा।
हे प्रभु! महां सपुत्र थे सुन्दर तन सोहे।
तप जप दान अनेक ते अस पाइ न कोहे॥२९॥
आरबला भुगती न कुछ भ्रितु भे तुम आगे।
बसत्र बिभूख़न ते दिपति सभ को प्रिय लागे।
दरब करोरहुं हेम गन सभ शसत्र खज़ाना।
आदि प्रसादी गज बडे जिनि मोल महाना॥३०॥
खरे हज़ारहुं हय ख़रे बड कीमत वारे।
दल बिडार ते आदि जे नहिं परहिं निहारे।
अैशवरज अपर अनेक ही नहिं गिनिबे मांही।
एक बार ही नाश भा कुछ दीखति नाही॥३१॥
श्री प्रभु वड अफसोस है, सिख पिखि दुख पावैं।
अस रावर के सांग ते, नहिं को भरमावै?॥ (रु० ६१ अंक ५४)

सतगुरू जी अत्यधिक गंभीर और दृढ़ आवाज़ में बोले:–

जगत पदारथ रीत इह बिनसै ततकाला॥३२॥
उपजहि बिनसन हार जो आगे क्या पाछे।
इनकी बिरता होति नहिं क्यों गयानी बांछें।
इक आतम सत्ता सदा उपजै न बिनाशी।
सो सरूप निज जानिकै हुइ परम प्रकाशी॥३३॥
कूर पदारथ ते कबहूँ शोक न हरखावै

* यही सज्जन बाबा बंदा को भी दक्षिण से आने पर सेना लेकर मिले थे और काफी मदद की थी।

इक रस ब्रिती सु आतमा तिह जो लिवलावै।
रेख निकारहु मेटीअै जयों लाभ न हाना।
इक सम ब्रिति सतिगुरू की इम जानि सुजाना॥३४॥
तुरकन जरां उखेरने अस क्रित हम ठाना।
साहिबज़ादे रूप मम क्या तिन को हाना।
सदा अमर आनन्द जत मन मोह न लेशा।
तिनहुं शोक हम किम करैं जे मुदति हमेशा॥३५॥ (रु० ६१ अंशु ५४)

यह बलवान वैराग्य का अथवा यों कहो कि 'सत्यज्ञान' का उपदेश सुनकर दोनों को कुछ हौंसला हुआ, परन्तु फिर विह्वल होकर बोले:- 'महाराज आप जगत नाथ हो, आपके लिए दुख क्यों?' साहिब हँसे और बोले: जो किछु करे सो भला करि मानीअै हिकमति हुकमु चुकाईअै॥ किसी मनुष्य ने एक दिन 'दुख' को पूछा:-

हे अनावश्यक! तू कहाँ से उत्पन्न हो गया?

दुख ताली मार कर हँसा और कहने लगा–तू 'सुख' से जाकर पूछ। उसने फिर 'दुख' को पूछा–तू किसलिए बनाया गया? दुख फिर ताली बजाकर हँसा और कहने लगा–'सुख' को जन्म देने के लिए। उसने फिर दुख को कहा–काश तू न होता।

दुख सोच में डूब गया परन्तु फिर सिलखिला कर हँस पड़ा और कहने लगा–फिर भाई तू भी न होता, तेरा भाईचारा भी न होता। पूछने वाला यह सुनकर खीझ गया और कहने लगा–मैं न होता तो अच्छा होता। तेरे साथ होते हुए जो 'अस्तित्व' है इससे 'अनस्तित्व' भला है।

दुख ने अब अत्यधिक शांति वाला मुँह बना लिया और अन्तर्मुखी रुचि कर एक बारीक सुर में बोला: भोले! 'अनस्तित्व' है नहीं। अगर 'अनस्तित्व' होता तो अनस्तित्व से कोई अस्तित्व कैसे उपजता। 'अस्तित्व' है और 'अस्तित्व' तेरे मेरे वश से बाहर है।

वह फिर निराश होकर बोला, हे दुख! फिर तुझसे पीछा कैसे छूटे? दुख फिर गंभीर हो गया और स्थिर आवाज़ में बोला। अगर यह इच्छा है तो मेरे साथ घुल* और उस भावी 'अस्तित्व' और अपने 'अस्तित्व' के बीच की दूरी को मिटाने मे लग जा+। मेरा वास उस दूरी में ही है@।

साहिब अब मुसकरा रहे थे। परम सिंह धरम सिंह दिल में वाह वाह कर रहे थे। अब दोनों ने आपके चरणों में धन्य धन्य कहते एक पोशाक अर्पित की, कुछ माया आगे रखी, एक घोड़ी भेंट की।

---

* भांत अनेक दुखन सो दलहीं। (पा० १०)

\+ प्रभ कै सिमरणि दूखु न संतापै॥ (सुखमनी)

@ की विसरहि दुखु बहुता लागै॥ (आसा० म० १)
पुन:- परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग॥

सतगुरू जी ने प्रेम देखकर वस्त्र पहन लिये और प्रेमियों के चित्त को ठंडक पहुँचाई। चाहे दोनों सुखी हो गये थे, परन्तु चित्त में ये प्रश्न अभी कसकते रहे कि आपने ईश्वर होकर, अवतार होकर, गुरू होकर क्यों दुख प्राप्त किये। आपके नज़दीक दुख क्यों आये। जब सांझ हुई तो अपने डेरे चले गये जो दीने के नगर से दूर तंबुओं में सेना के साथ होने के कारण कुछ दूरी पर लगा रखा था।

: ४ :

अगले दिन भाई धरम सिंह के दिल में प्रेम ने उछाल खायी बहुत ज़ोर की। चाव आया कि अपने हाथों में उठाकर प्रशाद ले जाऊँ, अकेला ही चल पड़ा। रास्ते में आगे पीछे देखता जाता था कि कोई सिंह आ जाये तो साथ में मिला लूँ, रास्ता ज़रा उजाड़ का है। इतने में एक सिक्ख आता प्रतीत हुआ जिसके कपड़ों की ओर देखने से भाई धरम सिंह को कई रंग बदलते दिखाई दिए। धरम सिंह हैरान होकर ठहर गया। यह पुरुष जब नज़दीक आया तो दोनों ओर से फ़तह बोली। धरम सिंह को देखकर कुछ झुनझुनी सी शरीर में से गुज़री, कुछ आश्चर्य हुआ, परन्तु फिर लगा वह सज्जन अच्छा और प्यारा है, इसलिए दोनों बातें करते इकट्ठे चल पड़े।

धरम सिंह–भाई जी समझ नहीं पड़ती कि दुख क्यों है जगत में?

सिंह सुनकर मुसकराया और पूछने लगा भला अगर पता लग जाये कि दुख क्यों है तो सुख उपज पड़े?

धरम सिंह सोचने लगा। फिर कहने लगा, सिंह जी! समझ में पड़ गया तो पता नहीं, परन्तु दिल कहता है कि दुख का दारू होने पर ही ठंड पड़ेगी।

सिंह–भला बताइये तो, धूप सुख है कि दुख?

धरम सिंह (सोचकर)–सर्दी में सुख है, गर्मी में दुख।

सिंह–तो एक ही वस्तु को दो हालातों में आप दो नामों से पुकार लेते हो। जिसको दुख कह रहे हो, उसी को सुख कह लेते हो।

धरम सिंह गहरी सोच में पड़ गया।

सिंह–भला बताइये तो पुत्र दुख है कि सुख?

धरम सिंह–है तो सुख।

सिंह–माँ को पुत्र जन्म सुखों के साथ होता है कि दुखों के साथ?

धरम सिंह–सख्त पीड़ाओं के साथ।

सिंह–माँ को पूछो पीड़ाओं द्वारा प्राप्त पुत्र दुख रूप है या सुख रूप।

धरम सिंह–परम सुख रूप।

सिंह–इस सुख के लिए पुत्र जन्म की पीड़ा को माँ सुख कर के जानती है?

धरम सिंह–जी हाँ।

सिंह–तो किसी दुख को ही इंसान सुख रूप समझ लेता है।

धरम सिंह– कहते तो ठीक हो

सिंह—पूरन को लूना राजपाट के सुख अर्पित करती थी, शारीरिक सुख भेंट करती थी। पूरन ने इन सुखों को जिनको जगत सुख जानता है सुख न जाना और घायल होकर कुएँ में गिरने को और जगत ग्लानि के दुखों को खुशी के साथ कबूल लिया। तब तो कोई मन की अवस्था है कि दुख और सुख की कीमत अंदर बदल जाती है।

धरम सिंह—हैं......। और सोचने लगा।

सिंह—पीपा जी के पास सौ रानियाँ और राजपाट था। ये सुख थे, परन्तु उसने सब त्यागकर वन-वन धक्के खाने और दर-दर रोटी माँगकर खाने को सुख माना।

शूरवीर घर के सुख त्याग कर दिन भर गतके बाज़ियाँ (हथियार चलाने के करतब करना) और कसरतों के कष्ट झेलता है, युद्ध, जिसके नाम से जगत कन्नी कतराता है, शूरवीर उसको हँस-हँसकर आवाज़ें मारता है। जान सबसे प्यारी वस्तु है, उसको भी जोख़िम में डालता है और जान तक दे देता है।

इस प्रकार कहीं सुख को समझने वाला काँटा अपनी चाल बदल लेता है।

धरम सिंह—मतलब यह हुआ कि हमारी समझ ही आप ठिकाने नहीं जो दुख सुख को यह नाम देती है।

सिंह मुसकराया और कहने लगा—कायर बंदूक को हाथ लगाने से डरता है, शूरवीर छाती तानकर गोली झेलता है।

धरम सिंह—मैंने समझा है कि दुख सुख में भेदभाव करने वाला हमारा अन्तःकरण पहले किसी दुरुस्त समझ के घर पहुँचना चाहिए।

सिंह—आपने ठीक समझा है।

धरम सिंह—परन्तु जी जगत दुखी है। श्री गुरू नानक देव जी ने आप इसको दुखी बताया है। 'नानक दुखीआ सभु संसारु।।' फिर दुख तो हुआ न, इसका दारु क्या?

सिंह—आगे की पंक्ति भी पढ़ो। जिस तराजू पर तोलकर सच्चे गुरू ने जगत को दुखी बताया है वहाँ की दूसरी आवाज़ यह है—'मन्ने नाउ सोई जिणि जाइ।' यहाँ दुख को जीतना गुरू जी ने बताया है। दुख का न होना और हाय दुख क्यों है, यह पछतावा नहीं सिखाया। कहा है कि एक तरीका हम बताते हैं जिसके द्वारा दुख को जीता जा सकता है।

धरम सिंह—फिर दुख तो हुआ न। इसको जीतना हुआ।

सिंह—और उसको जीतने के लिए पहली सीढ़ी मन के अंदाज़ को ठीक करना है, जिसने दुख सुख की परख करनी है क्योंकि हमने देखा है कि हालतें बदलने से या ख्याल बदलने से मन एक ही वस्तु को कभी दुख कभी सुख समझ लेता है। फिर ऊँचे घर में जाकर पता लगता है कि समझ की कसौटी हमारी ग़लत है, इसलिए इसको ठीक करने की ज़रूरत है। दूसरा उपाय है दुख को जीतने का, इस पर बल डालने के यत्न करने का।

धरम सिंह—फिर कैसे करें?

सिंह—सतगुरू ने ढंग बताया है।

धरम सिंह—आप खोलकर बतायें न।

सिंह–गुरू जी ने ढंग बताया है–'मन्ने नाउ सोई जिणि जाइ'।। सो पहली बात हुई–'मन्ने नाम' (नाम का माने)

नाम द्वारा मन मैल से साफ होगा–प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ।।–फिर यह मन सीधा हो जायेगा–यह मन उलट सनातन हुआ–तब सच्ची समझ के घर जायेगा। जैसा कि गुरू नानक देव जी ने बताया है–'सुधि बुधि सुरति नामि हरि पाईअै सत संगति गुर पिआर'।। फिर समझ आयेगी कि दुख क्या है और सुख क्या है। इस निर्मल ज्ञान से यह समझ भी पड़ती है–

'दुख सुख दऊ सम करि जानै बुरा भला संसार।।' (मलार म० १)

फिर इसको समझ आयेगी कि दुखों की आग मारती है परन्तु दुख दारू भी है, जैसा श्री गुरू नानक देव जी ने फ़रमाया है–

दुख कीआ अगी मारीअहि भी दुखु दारू होइ।।

धरम सिंह–परन्तु इस वाक्य की पहली तुक में दुख का कैसा नक्शा गुरू बाबा जी ने बाँधा है:-

दुख विचि जम्मणु दुखि मरणु दुखि वरतणु संसारि।।
दुखु दुखु अगै आखीअै पड़ि पड़ करहि पुकार।।
दुख कीआ पंडा खुलीआ सुखु न निकलिओ कोइ।।
दुख विचि जीउ जलाइआ दुखीआ चलिआ रोइ।।

(सा० की वार० म० १)

सिंह जी–फिर इसी की अंतिम तुक है न जो मैंने पढ़ी है। दुख जलाता भी है परन्तु दारू (दवा) भी है।

धरम सिंह–वह कैसे?

सिंह जी–आख़िरी से पहली तुक पढ़िए–

नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ।।

धरम सिंह–सिंह जी आपने बहुत कृपा की है। गुरुवाणी के प्रकाश में चला रहे हो, परन्तु दुख का नाम ही बुरा है। ज़रा सोचना, दुख कई प्रकार के हैं। चार दुख बहुत बली हैं। गुरू बाबा जी ने आप गिने हैं। देखिए–

दुखु विछोडा इकु दुखु भूख।। इकु दुखु सकतवार जमदूत।।
इकु दुखु रोगु लगे तनि धाइ।। वैद न भोले दारु लाइ।। (मलार म० १)

एक दुख बिछोड़ा है, एक दुख भूख का है, एक दुख मौत का है, एक दुख बीमारी है।

ये चार दुख उपाय रहित हैं। आप बताओ कि यहाँ कोई क्या करेगा। गुरू जी भी वैद्य को कहते हैं कि इनका दारू नहीं है। श्री गुरू नानक देव जी वैद्य को फिर बताते हैं कि 'दरद होवै दुखु रहै सरीर।। अैसा दारू लगै न बीर।। जब तक शरीर रहेगा दर्द और दुख बने रहेंगे, तुम्हारे पास ऐसा दारू नहीं है कि जो इनको लग सके।

सिंह–अब आगे भी पढ़िए। गुरू जी फ़रमाते हैं–खसमु विसारि कीए रस भोग।। तां तनि उठि खलोए रोग।। मन अंधे कउ मिलै सजाइ।। वैद न भोले दारू लाइ।।' कि हे वैद्य तुम तो जड़ी बूटियों के लिए घूमते हो परन्तु दुख का कारण तो मन का अँधा होना है। यह अँधा हुआ मन सच्चे ज्ञान से बाहर हो गया। रसों और भोगों को सुख रूप समझता है। वे हैं दुखरूप और प्रत्यक्ष पता लग जाता है कि भोगों का फल रोग निकलता है। मन अँधा क्यों हो गया? बताते हैं कि खसम को भुला कर। आगे चलकर अँधे मन को अरोग्य करने की युक्ति बताते हैं:-

कंचन काइआ निरमल हंसु।। जिसु महि नाम निरंजन अंसु।।
दूख रोग सभि गइआ गवाइ।। नानक छूटसि साचै नाइ।।४।।२।।७।।

(मलार म० १)

कि जिसके अंदर नाम का अंश वास करता है, वह मन की मैलें दूर कर अपनी हंस आत्मा को निर्मल प्रतीत करता है और हंस जैसी उज्ज्वल आत्मा के वास वाली देह कंचन की तरह दिव्य होती है। ऐसे दुख और रोग दूर होते हैं। सिद्ध यह हुआ कि दुखों से नाम द्वारा छुटकारा होता है।

धरम सिंह–परन्तु आप 'चंदन का फलु चंदन वासु।। माणस का फल घट महि सासु।। सासि गइअै काइआ ढलि पाइ।। ताकै पाछै कोइ न खाइ।।'

ये तुकें बीच में से छोड़ गए हो।

सिंह जी–इनमें गुरू जी वही ज्ञान देते हैं कि जैसे चंदन में उसकी सुगन्ध उसकी चंदन हस्ती का आधार है, वैसे ही मनुष्य देह का आधार श्वास है। जब श्वास निकल गये देह मर गई। फिर उस देह को भूख रोग आदि दुख कोई नहीं आकर खाते या ऐसे कि वह देह फिर किसी भूख के दुख से पीड़ित नहीं होती। इस प्रकार इन तुकों में यह भी ज्ञान दिया है कि शरीर तक ही सारे दुख महसूस होते हैं। इसलिए जिस शरीर ने मर जाना है उसके लिए क्यों विकार कमायें। साफ समझ लें कि मन के अंधे रहने से शरीर विकारों में जाता है, विकारों से दुख उपजते हैं। शरीर के अंदर हंस है, परन्तु वह विकारों के कारण अंधे हुए मन से परे रहता है। मन का अंधकार नाम द्वारा दूर होता है और काया दिव्य और मन में उज्ज्वलता आ जाती है तब ज्ञान आता है और पता लगता है कि यह 'आत्म' है, यह निरंजन है, इस प्रकार सुख की समझ आत्म को मन बुद्धि से निर्मल करने में है। देखिए अगले शबद में गुरू जी खोलकर यह बात समझाते हैं:-

दुख महुरा मारण हरि नामु।। सिला संतोख पीसणु हथि दानु।।
नित नित लेहु न छीजै देह।। अंत कालि जमि मारै ठेह।।१।।
अैसा दारू खाहि गवार।। जितु खाधै तेरे जाहि विकार।।

अर्थात् दुख एक ज़हर है, इसको कोई नहीं खाना चाहता, परन्तु यह ज़हर दवाई भी है। सभी ज़हर दवाइयाँ हैं, परन्तु विधि संयुक्त मारने पर और विधिपूर्वक सेवन करने पर। जैसे संखिया विष है, इसको दवाई बनाने के लिए मारना पड़ता है। इसी प्रकार बताते हैं

कि दुख ज़हर है इस विष को मारकर दवाई बनाने के लिए 'हरिनाम' इसका 'मारक'* है। इसको हरि नाम रूपी मसाले के साथ मारकर, संतोष रूपी शिला पर पीसते हैं और हाथ जिस पत्थर को पकड़कर पीसते हैं यहाँ दान के चाहिएँ। अर्थात् नाम, संतोष और दान ये तीन वस्तुएँ दुख को ही दवाई बना देती है। यह दवाई सदा खाओ तो शरीर आपका अरोग्य रहेगा और अंत समय यम को आप ठोकर मारकर मार लोगे। इस प्रकार देखिए 'नाम' दुख को ही दारू बना देगा दुखों के दूर कर देने का।

दशमेश पिता जी ने फ़रमाया है–

जिन जिन नामु तिहारो धिआइआ॥
दूख पाप तिह निकट न आइआ॥

धरम सिंह–ठीक है। बहुत ठीक है। परन्तु सिंह जी शंका अभी दिल को पकड़कर बैठी है। इसलिए अब यह बात बताओ जी कि नामी+ पुरुष तो दुखी नहीं होने चाहिए।

सिंह–फिर आप उसी पंक्ति पर जा पड़ते हो, जिसको मन जो प्रबुद्ध नहीं दुख की लकीर समझता है। जिसको आप दुख समझते हो नामी पुरुष के विचार में क्या पता वह दुख है भी या नहीं। हमारी तो अभी समझ ही ठीक नहीं। नाम जपने पर यह समझ आती है और दुख का बरताव बदला जाता है–

दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु॥ (म॰ १)

जैसे पहलवान का शागिर्द आपको दुखी दिखाई देगा, कई बार हड्डी पसली तुड़वा बैठेगा। आप रोयेंगे कि हाय इसको दुख है, परन्तु यह दुख तो उसकी पहलवानगी की कसरत है। इसलिए प्रबुद्ध मन वाले के दुख को आप जो दुख समझ रहे हो वह तो दुख को दल रहा है आत्मबल के साथ, क्योंकि उसने इनको दल कर मुक्ति की पहलवानगी पाकर सांई को मिलना है जो चोटी का सुख है। देखिए श्री गुरू साहिब दशम पातशाह फरमाते हैं–

जिन मति बेद कितेबन तिआगी॥ पार ब्रहम के भे अनुरागी॥
तिन के गूड़ मत्त जे चलही॥ भांत अनेक दुखन सो दल ही॥

भाव यह है प्रबुद्ध मन वाला जो नाम जपता और दुखों के मुकाबले करता है दुखों को दल रहा है वह दुखी नहीं, वह कृषक की तरह जो जगत जब सुख की नींद सोया होता है, वह उस नींद के समय हल चलाने का दुख भोग रहा होता है। परन्तु वह वास्तव में दुख नहीं भोग रहा वह अपने लिए, परिवार के लिए और जगत के लिए अन्न पैदा कर रहा होता है। इसलिए ज्ञान में आये की पदवी जो दुखों से मुकाबले करता सांईं की लिव में जी रहा है दशम पातशाह ने आप यह बताई है:-

"जे जे जात सहित संदेहा॥ प्रभु को संग न छोड़त नेहा॥
ते ते परम पुरी कह जाही॥ तिन हरि सिउ अंतरु कछु नाहीं॥"

---

* वह मसाला जिससे धातुएँ और बूटियाँ आदि मारी जाती हैं।

\+ नामस्मरण करने वाले।

इसलिए जिस इस राह पर चलने वाले को आप दुखी समझोगे, वह दुख पा रहा है और प्रभु के संग को नहीं छोड़ रहा वह तो परमपुरी को जा रहा है। अंत उसमें और वाहिगुरू के बीच कोई दूरी नहीं रहेगी।

ज़रा विचार करो, आप कभी मीठा मीठा संगीत सुनकर सुखी हुए हो? पता है कि किन दुखों से वह गवैये ने सीखा है? उसके दुख उसको संगीत की मधुर धुनों के सुखों में ले गये। उसकी कसरत के दिनों में जो पीड़ा हो रही थी आपको दुख रूप दिखाई दे रही थी परन्तु वह परम रस रूपी सुख को जन्म दे रही थी।

धरम सिंह–मैंने सब कुछ समझ तो लिया है, आप तो कोई पारगामी हो, ऐसी सुन्दर जानकारी दी है, परन्तु सिंह जी; सब कुछ समझकर भी जी चुराता ही है दुखों से।

सिंह–भाई धरम सिंह जी। एक विचार करो मन चित एकाग्र करके। यह बात जो मैं क़हने लगा हूँ बहुत गहरी समझ और कड़े अनुभव की है। अगर आपको लगातार अखण्ड आपकी मन मर्जी का सुख दिया जाये कि सुख चारों ओर हो जाये, या समझ लो किसी आदमी को उसकी इच्छानुसार पूर्ण सुख उसको लगातार मिल जायें, आप समझते हैं कि वह लगागार सुख को झेल सकेगा?

धरम सिंह जी सुनकर ध्यानमग्न हो गये। कितनी ही देर सोचों में सुख का नक्शा आँखों के आगे बाँधकर खड़े रहे। सिंह ने भी न हिलाया। कुछ देर बाद आपने नेत्र खोले, बहुत लम्बी और ठंडी साँस लेकर बोले–मैं आँखों के आगे सारे खेल को लाया हूँ। आपने बहुत मर्म वाली जगह पर मेरी नज़र डलवायी है। सच है, लगातार अखंडाकार सुख का ज़ारी रहना भी हमें उकता देगा, घबरा देगा और बदलाव के पक्ष की ओर ध्यान को ले जायेगा, अंत में सुख भी निरन्तरता असह्य हो जायेगी। हमारा स्वभाव जो बदलाव का आदी हुआ।

धरम सिंह–इसीलिए श्री गुरू जी ने फ़रमाया है 'सुखु दुखु दुइ दरि कपड़े पहिरहि जाइ मनुख।।" मनुष्य को चाहिए कि–

सुख के पीछे पागल न हो,
दुख का भय न करे।

जैसे जैसे दोनों आयें, कपड़े बदलने की तरह उनको समझे। मन हमारे की बनावट ऐसी है कि वह एकरस सुख की ताब भी नहीं रखता और न ही दुखों की लगातार चमक झेल सकता है। परिणाम अब क्या हुआ? दुख सुख को कपड़े बदलने के समान समझना। देखिए सज्जन जी अब हमारे अंदर की समझ ने कैसा बदलाव खाया है सुख दुख को समझने में। अब आप समझ जायेंगे कि प्रभाती राग में आदि पातशाही ने यह तुक क्यों लिखी थी, "दूखा तें सुख ऊपजहि सूखी होवहि दूख।" और फिर मलार राग में फ़रमाया था–'दुख सुख दोऊ सम कर जानै'।

प्यारे जी! मन में मैल है। १. भोग पदार्थों की 'रस-कमी' की तरह की अंदर एक मैल होती है। २. अभोग्य के लिए तृष्णा की अंदर मैल होती है। ३. सुख की पकड़ की

तीसरी मैल है जो अंदर राग रूप लेकर बैठी है। ४. दुख से नफरत की चौथी मैल है जो द्वेष का रूप लेकर बैठी है। ५. संशयवृत्ति का बेठिकानापन एक और मैल है जो भेदभाव वाले विचार के रास्ते पर डालकर फिर आगे नहीं चढ़ने देती और अपने में ही पकड़ बैठाती है,–सहसे जीउ मलीन है– सतगुरू वाक है। ६. छठी मैल है, मैं मैं की मैं को मैं में प्रतीति करके मैं में गर्व करने की। इस तरह की सूक्ष्म मैलें कई हैं। मन इनके अँधेरे में दुख सुख की असली परख से अज्ञान में है। इस अँधेरे को मिटाने के लिए ही हुक्म यह है–

आस अंदेसे ते निहकेवल हउमै शबद जलाये (आ॰ वा॰ मा॰ १)

मन में निवास है आस अंदेसे का, बुद्धि में निवास है संशय का, आन्तरिक अहम् में निवास है मैं–अहंकार का। क्योंकि परख के घर जाकर बुद्धि ने संशय दूर कर के निश्चय में स्थिर होना है, फिर मन ने इसके पीछे लगकर वाहिगुरू प्रेम में लग जाना है, अहम् ने साईं समर्पित होकर दूरी मिटा देनी है। इस परख की प्राप्ति का साधन 'नाम' बताया है– 'हरि का नाम मन वसाये'। नाम मिलना है सत्संग के साथ। इस प्रकार सत्संग ने नाम के रास्ते पर डालना है, नाम ने मैल काटनी है। नाम है वाहिगुरू। वाहिगुरू है सिफत सलाह (प्रशंसा श्लाघा)। प्रशंसा श्लाघा ने अंदर को ऊँचा करना है ऐसी अवस्था में, जिसमें मनुष्य अपने में लीन हो जाता है, आत्मलीनता में डूबने ने ढंग सिखाना है सत्य असत्य का। इसी ने मन को रसमय और तन को प्रफुल्लित करना है*। असत्य–नाशवान की कीमत फिर हमारे अंदर से घट जायेगी। सत्य वस्तु बेश कीमती और अमूल्य दिखाई देगी। तब दिखाई देगा कि जिसको सुख समझते थे वह तथा जिसको दुख समझते थे वे दोनों क्या हैं। तब परम सुख फिर अविनाशी सुख में दिखाई देगा। अविनाशी सुख अविनाशी के प्यार और प्राप्ति में जचेगा+। जिन बातों में पहले सुख देखते थे उनमें दुख मिलेगा। हाँ, फिर दिखेगा।

'जेते रस सरीर के तेते लगहि दुख॥'

हां तब समझ आयेगी–

दुखी दुनी सहेड़ीऐ जाइ त लगहि दुख॥ (मलार वार म॰ १)

तब फिर पता लगेगा–

दुखु तदे जा विसरि जावै॥ (माझ म॰ ५)

की विसरहि दुखु बहुता लागै दुखु लागै तूँ विसरु नाही॥ (आसा म॰ १)

फिर समझ आयेगी कि हमने दुखों को दलना है। सुखों की तृष्णा में कमज़ोर नहीं होना। 'दुख दारू सुख रोगु भइआ' की तब समझ आयेगी। हाँ तब पता लगेगा कि हमारा काम है–भांत अनेक दुखन सो दलही।

धरम सिंह–फिर सुख की इच्छा ही न रहे।

सिंह–मुख्य बात है, इस सुख दुख की ठीक परख सिखानी जो नाम द्वारा होगी। जिन बातों को आमतौर पर सुख दुख समझा जाता है उनकी ओर यह रवैया रखना चाहिए–

* नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ॥

\+ ना ओहु मरै न होवै सोगु॥ देदा रहै न चूकै भोगु॥ (आसा म॰ १)

सुख की आस ना करनी, दुखतों भैना खाणा।
सुख आवे तां मदमत्ते नहीं होना, नाम जपना
ते भला करना। दुख आवे तां नाम जपणा
ते दुखां नूँ दलना। ब्रिती नूँ ढहिंदीआं कलां
विच ना जाण देणा। अते 'नाम' विच लग्ग
के वापर रहे दुखां तो बनां नूँ नहीं भज्जणा!
विच्चे रहिके जगत दी जल-पछाड़ सहिके
अडोल टिकणा। 'विचे ग्रिह सदा रहै उदासी जिउ
कमल रहै विचि पाणी हे'॥

: ५ :

धरम सिंह जी को बहुत तसल्ली हुई। परन्तु सतगुरू जी से बहुत प्रेम होने के कारण उनके दुख को वे अपना दुख अनुभव कर रहे थे। इतनी बातचीत के प्रभाव ने तबीयत बदल तो दी परन्तु मार्मिक हमदर्दी के कारण फिर आवाज़ निकली–सिंह जी! गुरू साहिब समर्थ हैं। ये दुख अपने पर न लेते तो हम पर मेहर होती, हम उनके दुख से पीड़ित न होते। दुख हमें दे देते वे आप तो सुखी रहते। उनका तो सुखदुख के ऊपर हुक्म है।

सिंह जी हँसे, और कहने लगे 'आपने बहुत गहरे प्यार की बात कही है। सतगुरू समर्थ हैं और मेरे जैसे हज़ारों उनके हुक्म में हैं। मैं अकेला उस समय शत्रु दल को भगा सकता था,* परन्तु सतगुरू ने अपनी रूहानी ताकत का प्रयोग नहीं किया।'

धरम सिंह–क्यों?

सिंह–इसलिए कि उन्होंने यह एक मनुष्य-स्वांग रचाया है। उन्होंने कुछ समय बाद सच्च खंड चले जाना है। पंथ को उन्होंने बल देकर ऊँचा करना है, प्रजा जो निराश्रय होकर दुख भोग रही है उसको ऊँचा उठाना है कि वह ताकतवर होकर स्वतंत्र हो जाये। यह दुखों की दबाई न रहे, मज़लूम और ज़ुल्मों को सहने वाली ही न रहे बल्कि बल पकड़े। हाँ, यह ग़ुलामी के सुखों को प्यार न करे, आज़ादी के दुखों को मीठे मानकर बलवान हो जाये। ग़ुलामी और आजादी–मन की, शरीर की, देश की। दुख जब पड़ता है तो कमज़ोर करता है, क्योंकि दुख के आगे दिल हार देते हैं। दुख को झेलना और हारना नहीं, और दुख को तंग करना और मुकाबला करना हमें शक्तिशाली बनाता है। सबसे बड़ा बल है 'आत्मिक और मानसिक बल' अगर अब गुरू जी आत्मशक्ति से सुख ही भोगते जायें और दुखों को दूर रखते रहें तो इंसान अपने में मानसिक और शारीरिक बल कहाँ से भरे और क़हाँ से सीखे? इसलिए श्री गुरू जी अपने आपको आदमी की हद में रखकर आदमी के बल और बुद्धि द्वारा कष्टों का सामना करते रहे हैं और यही ढंग सिक्खों को सिखाते रहे हैं। सिक्ख

* कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं कि ये शहीद सिंह जी गुप्त संसार से प्रत्यक्ष रूप धारण करके धरम सिंह को संशय रहित करने आये थे और उन्होंने धरम सिंह को अपना आप दिखा भी दिया था।

दुखों के सामने कैसे डटें, कैसे यातनाएँ झेले यह ढंग सिक्खों को सिखाना था। कैसे सिक्ख कष्ट, भूख, बिछोड़े, मौत, ज़ख्म, रोग आदि अपने पर ले और फिर डरे नहीं, झिझके नहीं, अपने आदर्श में अपने उसूल पर खड़ा रहे और मुकाबले में पैर पीछे न रखे और इसको समझे कि सुख है, तो ही वह जगत में सुखी और स्वतंत्र हो सकता है। इसलिए उन्होंने इंसान की तरह दुखों में खड़े होकर, दुखों की नदी तैरकर, दुखों से मुकाबले करके नमूना कायम कर दिया है कि मुश्किलों और दुखों के सामने एक जीवन वाले इंसान ने कैसे काम करना है। अगर इंसान को इंसानी नुक्तानिग़ाह से इंसानी बल पराक्रम के ठिकाने से, इंसानी बुद्धि के केन्द्र से दुख के मुकाबले का ढंग न सिखायें और आप नमूना बनकर न बतायें तो इंसान में बल, बुद्धि, धैर्य, हौंसला और कुर्बानी का भाव कैसे उन्नति करे और कुर्बानी का उद्देश्य और आदर्श सिक्खों में प्रवेश कैसे करे। अब आप देखेंगे कि यह बात सारे सिखों की समझ में आ जायेगी।

सिक्खों ने सच्चे पातशाह के परलोक आ जाने के बाद वे कारनामे करने हैं कि दुनिया दंग रहेगी। ये मनुष्य के नुक्ते से बर्दाश्त किए दुख और बर्दाश्त करके न हारे हौंसले पंथ में आदर्श बन गये हैं कभी भी दिल के कमज़ोर न होने के, कभी भी न पीछे हटने के, कभी न दुखों से, निराशाओं के साथ मुकाबला करने से बचने के। आप देखेंगे, एक ज़माना देखेगा। गुरू गोबिन्द सिंह जी ने इंसानी नृत्य करके, इंसानी तरीके से अपने ऊपर दुख भोग कर इंसान को ढंग सिखा दिया है दुखों के आगे बल सहित मुकाबला करने का और कभी न हारने का। जिस को जगत हार कहेगा, सत्य पर डटा सिक्ख अजेय शूरवीर होकर उस समय भी कमज़ोर नहीं पड़ेगा, हार नहीं समझेगा।

धरम सिंह–ठीक! ... ठीक।

इस तरह कुछ और बातें करके और धरम सिंह जी की तसल्ली करके सिंह जी, जो लिखा है कि शहीद सिंह थे फ़तह बुलाकर जहाँ थे वहीं लुप्त हो गये और धरम सिंह जी ने सतगुरू के जा दर्शन किये और प्रशाद आगे रखा।

गीत

सिर भेटा चा धरीए।
विखम पद–दरशन चल्ल आनन्दपुर करीए।
चलो सहीओ! आनन्दपुर चलीए
दरशन कर कर ठरीए।
झिम्मणीआं दे झाड़ू करके
थां थां पए सम्बरीए।
चरन छोह वरुसाइआ किणका
किणकिआं विच ढुंडरीए।

कर सुरमा अक्खीं विच पाईए
  दिल अँधेरा हरीए।
इस रोशन दिल नाल सखी!
  गुर गोबिन्द सिंह सिमरीए।
सिमर सिमर स्वामी गुर अपना
  नैं समिआं दी तरीए।
दरस सुहावे सै वरिहआं दे
  कलग़ीधर दे करीए।
खिच शमशेर खड़े दे अग्गे
  सिर भेटा चा धरीए।
अंम्रित दात मिले दाते तों
  खिड़ खिड़ घुट घुट भरीए।
जीवाले तां जीउ जीउ पईए
  मारे हस हस मरीए।
मर के अमर, अमर हो सेवा
  करीए, हउं तों डरीए।
सेवक तों तद मिले पुत्र पद,
  भी सेवा नूँ वरीए।
सेवा करीए, नाम सिमरीए,
  हउं हरीए, भव तरीए।
कलग़ीधर दी छुह पारस लभ
  कंचन कायां करीए।
कंचन कायां काल न ग्रासे
  'वाह वाह' सदा उचरीए।

---

७९ चौधरी समीर*

एक ओर वह लवलीनता हो कि सुरत प्रभु चरणों से उठे ही न, दूसरी ओर वह प्रवृत्ति हो, कि राजसी ठाठ-बाट, फौजें, तोपें, युद्ध के प्रबन्ध हो रहे हों। हाँ एक ओर वो कोमलता हो कि जो अद्वितीय कविता कर रही हो, शांत रस के नक्शे बाँध रही हो, दूसरी ओर वह वीरता हो कि औरंगज़ेब जैसे शक्तिशाली के साथ युद्ध अखाड़े रचे हुए हों। हाँ जी, एक ओर कवि दरबार लग रहे हों, दूसरी ओर मैदाने जंग आ रहे हों, दायें हाथ पकड़ी हो कलम और डुबकी ले रही हो दवात में और बायें हाथ में हो कमान और कंधे के पीछे तरकश में पड़े तड़प रहे हों तीर। हाँ, कौन हो उलट बहने वालों को एक ही स्थान पर मिलाकर रख लेने वाला? एक ओर संगतों के तोहफे और भेंटों के अंबार लग रहे हों, दूसरी ओर दान का हाथ बलि, भोज, विक्रम को शरमा रहा हो, हाँ लेने से देने में उत्साह अधिक उछाले खाये। एक ओर माता पास बैठे हों अदब में, फिर पुत्रों के साथ बैठे हों प्यार में, दूसरी ओर वीतराग होकर बैठे हों और देख रहे हों कि चढ़ गयी है प्यारी स्त्री योगीराज जीतो जी, शहीद हो गये हैं जिगर के टुकड़े आँखों के सामने टुकड़े हो-होकर और ख़बर आ रही हो कानों में छोटे प्यारे पुत्रों के चिने जाने और शहीद किये जाने की और माता जी की शहादत की, हाँ दोनों हालातों में बैठे हों एक रस अतीत, रसिक वैरागी जी, 'जत्र तत्र बिराज ही अवधूत रूप रिसाल।' मोह की नैया लीन हो रही हो निर्वाण के सागर में और संगम स्थान पर मृगछाला बिछाकर ऊपर बैठ रहे हों आप, अनुराग रूप और वैराग्य रूप होकर। स्थित (अचंचल) सागर के संगम स्थानों पर दोनों ओर मिलन समय लहरों का ज़ोर असह्य होता है, हाँ उस तड़पते पानी पर मृगछाला बिछाकर स्थिरता से टिके हुए हों ऐसे जैसे टिक रहे हों और ऊँचे पहाड़ हेमकुंट की वादी में, समाधि लगाकर। हां जी! जिसके सामने अपना मनोहारी और उच्छालनहार रूप लेकर खड़ी हो 'फ़तह' और साथ खड़ी हो 'हार' अपनी निराशा उदासियों और ग़मों की सुरत को गिराने वाली उदासियाँ लेकर, दोनों इलाही नेत्रों पर अपना प्रभाव डाल रही हों दृष्टि को असम (अ+सम) कर देने का। हाँ उस समय देखो वे इलाही नेत्र देखकर एक ही मुसकराहट भरी समदृष्टि के साथ देख रहे हों दोनों को तथा असमता वाला असर दोनों का न ले रहे हों परन्तु अपने जलाल वाले मटकारे के साथ रंग लगा रहे हों दोनों को, अपने स्थिर प्रभाव का। जिसके आगे नीति बिछी हुई हो, नीति बरतनी पड़े, नीति के साथ बनावट मिली हुई वाली कामयाबी, हाथ जोड़कर खड़ी हो, इसको तो न प्रयुक्त करे परन्तु ऊँची अकल की कमान पर चढ़ाकर इख़लाक (चालचलन) की सीध में रखकर नीति का प्रयोग करे। कामयाबी

* यह लेख गुरुपर्व पौष सुदी सप्तमी, जो (१ जनवरी १९३६ ई०) पौष की १८ सं० गु० ना० सा० ४६७ को था, को खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

का लोभ उसको अपनी सच की दिशा से न हिला सके। कोई कठिनाई, कोई मुश्किल उसको असत्य की दिशा की ओर न ले जा सके। फिर उसका इख़लाक हिसाबियों की मुर्दा गिनती वाला लेखा जोखा न हो, बल्कि दामनिक हो, हाँ इख़लाक उस का वह हो कि जिसमें जान हो थरर थरर करती। नीति हो सच की, इख़लाक की, हां इख़लाक हो थरकता और जिंदा। कौन हो जो धारण करे दोनों तरह के विरोधी भावों को और वास्तविक जीवन में निभा कर दिखा दे और फिर ऊँचा उड़ता दिखाई दे। कौन हो ऐसा जो विदेही न हो, बल्कि देह वाला हो, इंसानों में इंसान हो, परन्तु फिर अपने में 'एक दूसरे के उलट भावों, रसों, कामों और करनी के संगम' का कमाल रखता हो। दोनों को प्रयुक्त करता हो किसी तुलना पर रखकर और आप को दोनों से ऊपर रखकर तैरता हो अदृश्यता के गगनों में हुमा की तरह। जिसको बीणा का बिलावल आलाप और युद्धभूमि का मारू ढोल दोनों एक जैसा नशा देते हों। हाँ सरूर देते हों, साथ में अलोप रखते हों। वह हो दोनों का रसिया और फिर हो साक्षी दोनों का असंग और 'पाकी नाई पाक'। योद्धे मिलेंगे बड़े-बड़े परन्तु इख़लाक में कमाल नहीं होगा, सल्तनतें बाँधने वाले मिलेंगे परन्तु धोखों द्वारा, कवि मिलेंगे परन्तु एक रंगी कोमल सुन्दरता वाले, तलवरिये मिलेंगे मज़बूत, कठोर, अजेय, तपी जपी समाधियों वाले मिलेंगे परन्तु एकदम शांत रसिये, परन्तु ऐसा व्यक्ति एक ही मिलेगा जिसमें सारे विरोधी भाव, गुण, कमाल और कारनामें एक स्थान पर कमाल पर हों और फिर उसमें सबसे ऊँची उड़ान हो। हां जब अच्छी तरह इतिहास पढ़ोगे, परखोगे, तो एक ही देखोगे व्यक्तिः-

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह।

कहो, हाँ नेत्र मूँदकर, श्रद्धा में भरकर कहो–धन्य साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह! आप कहेंगे–आज आपने गुरू साहिब का ज़िक्र इंसानों की तरह और इंसानों के मुकाबले पर क्यों किया है? उनके सम्बन्ध में तो हमारे बुज़ुर्गों ने लिखा हैः-

'वहि प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप'

तब हम विन्रमता सहित कहेंगे कि भाई हमने आज यह पहलू गुरू जी के जीवन का दिखाया है कि उनको अगर इंसानी ऐनक लगाकर उनके इंसानी रूप में देखें तो भी वे 'वरियाम अकेला' और 'मर्द अगम्मड़ा' हैं।

'वहि प्रगटिओ मरद अगम्मड़ा'
वरियान इकेला*॥

और इसके साथ ही उसी लेखक की तुक पढ़ो–

'वहि प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप गोबिन्द सिंह सूरा+'॥

वे गुरू हैं परन्तु केवल शिक्षा दाता उस्ताद या मुरशिद के अर्थों में गुरू नहीं, वे भगवंत रूप गुरू हैं, जिस बात को पुरातन जन्म साखी में वाहिगुरू जी ने ऐसे कहा है–'मेरा नाम पारब्रह्म परमेश्वर और तेरा नाम गुरु परमेश्वर।' हां जिस बात को पाँचवें

* भाई गुरदास दूसरे की वार।

\+ पाठांतर–वहि प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप गुर गोबिन्द सूरा।

सतगुरू ने 'गुरू नानक देव गोबिन्द रूप'।। 'हरि जीउ नामु परिओ रामदासु' कहा है और जिस बात को दशम पातशाह ने आप अकाल पुरुष की ज़बानी–'मैं अपना सुत तोहि निवाजा' कहकर बताया है। भाई देखो यही है उस बात का एक पहलू जिसको भाई गुरदास दूसरे ने दिखाया है यह कहकर–

वह प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप।

यह है श्री गुरू जी के व्यक्तित्व का दैवीय पक्ष। दूसरा पक्ष है 'वरियाम इकेला' (अकेला वीर), यह है इंसानी पक्ष–वरियाम मर्द, हर गुण में बलवान, कैसा बलवान कि उस जैसा वह आप ही है, इसलिए कहा है 'इकेला' (अकेला)। फिर देखो वरियाम अकेला कैसे है कि उसमें विरोधी लग रहे गुण, प्रवीणताएँ, प्राप्तियाँ और कमाल इकट्ठे हो रहे हैं और एक दूसरे को धुँधला नहीं करते बल्कि चमकाते हैं। विरोधियों का धर्म है एक दूसरे की सुन्दरता को मलिन कर देना या उड़ा देना। यहाँ इस वरियाम अकेला जी ने किस तनासब में, किस पहुँच में, किस दिशा में सबको रखा है कि एक दूसरे को चमका रहे हैं और चार चाँद लगा रहे हैं। हाँ यह कैसे हैं कि यह व्यक्तितव ऐसे अकथनीय कमाल पर है? इस व्यक्तिव के अपने कमाल ने सब कमालों को इकट्ठा करके, प्रयुक्त कर दिखाया है, यह है बहादुरी (वरियामता)। परन्तु यह बहादुरी ढूँढकर देखो, इंसानी इतिहास को खोज मारो, और किसी में इस कमाल की आपको नहीं मिलेगी। इसी इंसानी नुक्ते से भी अगर आप अपनी खोज आरंभ करोगे और आप रसिये होकर सुन्दरता तेज को देखकर परमपद की समझ में पड़कर कहीं पहुँचोगे तो क्या देखोगे कि यह कमालों के कमाल वाला वरियाम अकेला 'भगवंत रूप' है। तब आप अनुभव कर लोगे कि यह परम पुरुष का दास होता हुआ परम पुरुष का सुत कैसे है, द्वै और एकरूप कैसे है? हरिजन और हरि कैसे है? इसलिए आगे भगवंत रूपता दिखाते हुए हमने आज आपको 'वरियाम इकेला' की तस्वीर दिखाई है। हम नहीं, अन्य मतों वाले जब एकदम इंसानी नुक्ता लेकर निष्पक्ष होकर देखते हैं तो यहाँ ही पहुँचते हैं कि जगत इतिहास में यह व्यक्ति यह व्यक्त्वि एक ही है। हाँ यह वरियाम अकेला है* और एक मर्द अगम्मड़ा (अगम्य) है और भगवंत रूप है दूसरा कमाल यह है कि यही आदर्श जो आप प्रयुक्त करके बताया, अपने सिक्खों को सिखाया, जिन्होंने सत्य और उच्च आचरण वाली नीति और दया धर्मपवित्रता वाली वीरता कमाकर जगत को दिखा दी।

लो देखो आज आपके एक इलाही दर्शन। धनधाम, राजधानी गँवाकर, परिवार से बिछुड़कर, पुत्र मरवाकर, अपने बेगानों से जवाब लेकर, जगत में व्याप्त हो सकने वाली भारी आपदा को पैरों तले देकर आप 'दीने' गाँव में बैठे हैं। कष्टों वाले बुलबुले ऐसे आते

---

* ऐसा महापुरुष और वीर न चश्मे ज़मानां ने कभी देखा और न कभी ज़माने ने पैदा किया। सारी कौमें अपने बहादुरों और शहीदों पर जिस कद्र फ़ख्र करें, ज़ेबा। लेकिन जो फ़ख्र हिन्दुओं को और खालसा को गुरू गोबिन्द सिंह का है उसका मुकाबला रूए आलम में शशदर ज़हान में और कोई कौम नहीं कर सकती। क्योंकि वो कोई ऐसी मिसाल पेश नहीं कर सकती। (दौलत राय)

और उड़ते हैं जैसे किसी योगीराज के समाधि आसन पर ओस की बूँदे पड़ रही और उड़ रही हैं। परम प्यारे परम सिंह धरम सिंह दुखों के रोने रो चुके हैं, अपने नहीं आप जी के खेदों से दुखी हो-होकर पूर्ण हमदर्दी और प्यार में। परन्तु आगे से उत्तर क्या देते रहे हैं आप जी, वह सुनो–

साहिबज़ादे रूप मम किआ तिन को हाना॥
सदा अमर आनंद जुति मन मोहन लेशा॥
तिनहु शोक हम किम करैं, जो मुदत हमेशा।
.....रेख निकारहु मेटीअै, जिउं लाभ न हाना।
इक सम ब्रिति सतिगुरनि की, इम जानि सुजाना। (सू॰ प्र॰)

अपनी वृत्ति तो बरियाम अकेला ने यह बतायी और उपदेश भाई परम सिंह धरम सिंह को यह दिया:-

जगत पदारथ रीत इह बिनसै ततकाला।
उपजहिं बिनसन हार जो, आगे क्या पाछहि।
इनकी थिरता होत नहि किउं ग्यानी बांछहि।
इक आतम सत्ता सदा उपजै न बिनासी।
सो सरूप निज जानि कै हुइ परस प्रकाशी।
कूर पदारथ ते कबहूँ शोक न हरखावै।
इक रस ब्रिती सु आतमा तिह जो लिवलावै। (गु॰ प्र॰ सू॰)

इस प्रकार के उस 'वहि प्रगटिओ मरद अगम्मड़ा वरियाम इकेला' के वाक्य रूपी बंसी पास बैठे सुनते रहे और फिर आज्ञा लेकर घर गये। क्या प्रभाव लेकर गये? कवि जी बताते हैं:–

कितिक समा बैठे निकट रूपे के बंसा।
पुन बंदन करि सदन गे मुख करति प्रसंसा।
इतने बिनसयो पास तें जिन शोक न लेशा!
पुत्रादिक प्रिय वसतु बहु हति भै, न क्लेशा। (गु॰ प्र॰ सू॰)

: २ :

पीछे बता आये हैं कि साहिब अब दीने ठहरे हुए हैं।* परम सिंह धरम सिंह कृत कृत्य हो गये हैं। जो संशय प्यार में उपजे थे वे एक शहीद सिंह की बातचीत द्वार दूर हो चुके हैं। समीर गुरू जी से अत्यधिक प्यार करता है और सेवा भाव के साथ कर रहा है। संगतें आती और पहले समीर को मिलती हैं, वह आज्ञा लेकर सतगुरू के हजूर उपस्थित करता है। हाँ जी! आज आया है दयाल दास, भाई रूपे की वंश का एक और रत्न।+ समीर को

* 'श्री कलग़ीधर जी दीने' नामक लेख में देखें।

\+ इसी का पुत्र हुआ है भाई गुदड़िया, एक परम प्रसिद्ध गुरू का करनी वाला लाल।

दयाल दास कहने लगा–हे सुन्दर तुम्हारे घर आ उतरे हैं सुन्दरों के सुल्तान करवा दे दर्शन हमें भी नेत्र प्यासों को, तुम्हारा भला हो। आँखें ठंडी कर लें हम भी दीदार पाकर उस सारी सुन्दरताओं के स्वामी के, जिसने कहकर नहीं परन्तु करके दिखा दिया है, 'जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे'। हाँ हमारे काम, आदतें अपने तो मोह माया की फास में उलझे हैं, दर्शन तो कर लें उस सभी बंधनों से रहित मोह माया परोपकारी के जो नीले-नीले अम्बरों की गहराइयों में उड़ता है और फिर हमारी मिट्टी रंगी धरती पर हमारे बीच चलता फिरता हमारी दुख तकलीफों के साथ हमदर्द हो-होकर अपना आप न्योछावर करता है। समीर, दयालदास के भाव से तर-बतर होकर, ले गया इस साईं प्यारे को हजूरी में जब दीदार पाये रसिक वैरागी के दयाल दास ने तो सुन्दर के चरणों को लिपट गया और प्यार से नेत्र भर आये। आँसू चरणों पर गिरे तो दयालदास काँप गया, विचार आया–हैं मैंने इन परम पावन चरणों को अपने खारे और नमकीन नेत्र जल से क्यों मैला किया है? काँप गया, परन्तु प्यार की द्रव्यता नेत्रों को सूखने नहीं देती और अदब का ख्याल उनको रोकता है। आत्म थरथराहट के महरम ने उस प्यार थरथराहट को देख लिया, सिर पर हाथ रख दिया, थोड़ा सा सिर को प्यार के साथ दबाई रखा, जो अदब का ख्याल प्यार के वेग को अधबीच ठिठकन में न डाल दे। हाँ इस प्यार की फुहार बरसा रहे हाथ की छुअन ने प्यार का वेग और उमड़ा दिया, उड़ गया सिर में से ख्याल सूक्ष्म अदब का जो रोक बन रहा था प्यार लहरों की। मग्नता छा गयी उसकी जगह, हां प्रेमी माथा और प्रीतम चरण एक हो गये प्रेम की गोद में। 'द्वै ते एक रूप ह्वै गयो'।

चिरकाल बाद पवित्र हाथ उठा, पीठ पर गया, पीठ पर घूमा, होश लौट आई, दयाल दास को फिर ख्याल आ गया, हाय कितनी देर से चरण कमलों पर मैं खारे नीर का स्पर्श लगा रहा हूँ और विचारों में डूबे भारी सिर का बोझ डाल रखा है मैंने। साहिब मुसकराये माथे के नीचे हाथ देकर सिर उठाया, बोले 'दयाल दास। अपना आप निज घर को ऐसे प्यार तरंगों में उठता, सूक्ष्म होता लीनता के रास्ते पहुँचता है। शाबाश! सुन्दर लग रहे हो, लगते रहो, नाम चित्त रहे।

'राम नाम गुण गाइ लै मीता हरि सिमरत तेरी लाज रहै॥
हरि सिमरत जम कछु न कहै॥ (रा० म० ५)

दयाल दास ने फिर नमस्कार की, फिर एक सूक्ष्म वस्त्रों की पोशाक आगे रखी जो स्वीकार हुई। अब धीरे-धीरे चुप विदा हो गयी। कुछ देर वचन विलास हुए। दयाल दास को अमूल्य आशीष और प्यार मिल गया। फिर चुप छा गयी। कुछ देर साहिब अपने मग्न रंग रहे, फिर नेत्र खोले और बोले–'समीर तुम बहुत सेवा कर रहे हो, तेरी सेवा सफल हुई है, उठ पहन ले यह पोशाकी जो दयाल दास लाया है, हाथों में उठायी, प्यार से बनायी पोशाकी। अर्पणकर्त्ता का भाव पूरा हो गया है। ले समीर! सतिनाम कहकर पोशाक पहन ले, घोड़े पर चढ़ बैठ और घोड़ा घुमा ले। जहाँ तक घुमा लेगा, तेरा (तुम्हारा) राज्य हो जायेगा, हाँ तेरी (तुम्हारी) वंश में राज्य रहेगा।

समीर खिल उठा। भेंट सिर पर उठाकर घर ले आया। आकर सारी बात बताई। दोनों भाई लखमीर और तख्तमल सुनकर प्रसन्न हुए, परन्तु जैसे प्रकाश के साथ परछाईं चलती है, विश्वास के कहीं नज़दीक ही, पीछे पीछे अविश्वास चलता है। होश करनी चाहिए कि विश्वास की चमक अगर अविश्वास को मिल जाये तो वह सुनते ही भागकर आती है। समीर का एक मामा था जिसका कहना तीनों भाई मानते थे, वह था पाँच पीरों को पूजने वाला, पाँच पीरों का भक्त। था हिन्दू परन्तु मानता था इन पीरों के समुदाय को। इसका गुरूओं पर निश्चय नहीं था। सारी बात समीर से सुनकर कहने लगा, भोले बंदे, कुछ अक्ल से काम ले, आँखें न बंद कर, देख सुनकर धोखे में मत पड़। जो गुरू अपना राजपाट गँवा आया है, वह दूसरे को कैसे राजपाट दे सकता है?

ठीक है, मामे ने बुद्धि की बात कही है। यही अक्ल है जो जगत से इस प्रकार के वाक्य भी कहलवा देती है, जैसे कोई कह दे कि मेरे मुँह में जीभ नहीं। जगत जानता है और अनजान बनता है, देखो, मामा आप पीरों की कब्रों पर टक्करें मारता घूमता है, दुआएँ दिलवाता है, कई नाकामयाब मर चुकों से भी वर माँगता है और शंकाएँ करता है उस पर जिसके आदर्श का वह जानकार भी नहीं।

मामा की बात सुनकर लखमीर ने कहा–'मामा वे हमारे पूर्वजों के गुरू हैं, हमारे पूज्य हैं, हम सेवा कर रहे हैं, अब वे प्रसन्न होकर कोई वर दे रहे हैं, कुछ माँग नहीं रहे, मुश्किल नहीं डाल रहे। हुक्म मोड़कर गुस्सा ही मिलेगा उनका। अगर तुम्हारे कहने पर मान ही लें कि उनकी 'प्रसन्नता और क्रोध' प्रभाव नहीं रखते फिर भी बता असीस अच्छी कि बद असीस? हे मामा जी, पिता, दादा ताऊ की, जिनमें कोई फ़कीरी बल नहीं होता, असीस (आशीर्वाद) दिल पर अच्छा प्रभाव डालती है, चाहे वह कुछ भी न करे। तुम बताओ कि कुल गुरू, अपने गुरू जगत के गुरू की असीस क्यों बुरी है और बद्-असीस लेने का सामान करना क्यों अच्छा है? मामा जी! आप बड़े हो सोच लो।

मामा–ठीक है, परन्तु ऐसे ही दौड़ने और घोड़े भगा-भगाकर थकने का क्या लाभ है? चुप्प कर जाओ, गुरू को कह देना घुमा लिया है घोड़ा। मामा! तुम्हारे पीर तुम्हें झूठ बोलने से मना नहीं करते? झूठ से तो सभी साधु फकीर रोकते आये हैं। मामा! हमने एक ओर तो भावना धारण कर घर पर उतारे, सेवा की, दूसरी ओर झूठ बोलें और लें श्राप। फिर सोचकर देखो कि सरहिन्द तक खबरें जा रही हैं हमारे घर उनके उतरने की, सूबे को ठंडा नहीं लगना है गुरू का हमारे घर ठहरना सुनकर। इसमें गुरू का रत्ती भर जिम्मा नहीं, उन्होंने हमें पहले ही कह दिया था कि आप सब तुर्क राजा के अधीन हो, हमारी उनके साथ लड़ाई है, हमें घर उतारकर आप दुखों में पड़ जाओगे, हम आगे चलते हैं। तब हम मिन्नतें करके मुश्किल से घर लाये। सोचो मामा जी! एक ओर तो वजीर खाँ का गुस्सा अपने पर लिया और दूसरी ओर उनका वचन मानकर उनकी खुशी नहीं ली, बल्कि उनको नाराज़ कर लिया। एक ओर सूबा गुस्से, दूसरी ओर गुरू गुस्से, हमने तो दोनों से गँवा ली, न यह लोक रहा न वह। बताइये घोड़े घुमाने में क्या दोष है, क्या परेशानी है? इतनी बात से अगर रस बना रहे तो अवज्ञा करने का क्या फायदा है?

अब समीर बोला—भई मामा मेरा तो गुरू पर निश्चय है। हमारे पूर्वज इसी घर के सिक्ख थे, उन्होंने सेवा कर सुख प्राप्त किया था, मैं भी आशा लगाये बैठा हूँ। अभी मैंने तो कुछ और माँगना है, अभी जो वह देते हैं वह क्यों लौटाऊँ? फिर दूसरी माँग किस मुँह से माँगूगा। मामा तुम गये नहीं, दर्शन नहीं किए, सोचो। उनका सम्पूर्ण वंश किसी ने तो नहीं न छीन लिया जैसे तूने समझा है। उन्होंने तो प्रजा को सुखी करने के लिए बादशाह के साथ टक्कर ली है। उस परोपकार में उन्होंने सब कुछ न्योछावर कर दिया है। कोई अपने लाभ के लिए उन्होंने युद्ध थोड़े न किया था और उसमें सब कुछ हार आये हैं? मामा! क्या गुण की बात को अवगुण करके मानना यह भूल नहीं? मेरी समझ में तो भारी पाप है, किये को भुलाना, किसी के गुण को मसल देना। मेरी समझ में वे समर्थ हैं, गुरू नानक का हाथ उनके सिर पर है कि आप वही हैं, मेरा तो हौंसला नहीं पड़ता कि बात लौटाऊँ। अब मामे ने देखा कि मेरी नहीं चलेगी, कहने लगा 'अच्छा, बच्चा! फिर दो बातें कर लो, घोड़ा गाँव के चारों ओर साथ-साथ आबादी के घुमा लो, वचन भी माना गया और फालतू का चक्कर भी बचा।' बात क्या यह सलाह होकर समीर ने पोशाकी पहनकर गाँव के चारों ओर घोड़ा घुमा लिया। मामे के लिहाज ने गुरू मेहर का पूरा पात्र बनने से समीर को रोक लिया। जब हुजूरी में गए तो पूछने पर उसने बताया कि पातशाह गाँव के चारों ओर घोड़ा घुमा लिया है। साहिब मुसकराये और समझ गये कि इसका दोष नहीं, कुसंग का फल है, यह भाव वाला है, सेवक है और गुरू प्यारे 'जोध' की वंश है परन्तु अभी समझ में कमज़ोर है, बच्चा है।

: ३ :

जब समीर के घर पर ठहरे हुई कई दिन बीत गये और समीर बहुत भाव के साथ सेवा करता रहा तो एक दिन सतगुरू का प्रशाद बनकर आया। समीर जल का कटोरा भरकर ले आया। समीर प्रशाद का सारा सामान आप देता था, प्रशाद पास बैठाकर खिलाता था। अत्यधिक प्यार में था समीर, परन्तु माया की कुसंगति कदम कदम पर ठोकर का कारण बनती थी। आज जब थाल आया तब समीर ने विनय की कि मुझे प्रशाद मिले। सतगुरू ने कहा कि अगर तुम्हारी यही भावना (इच्छा) है तो थाल ले लेना और छक (खा) लेना। समीर ने कहा, कृपा कर दो, थाल घर ले जाऊँगा और सारा परिवार खायेगा। आप हँस पड़े और थाल दे दिया। जब घर ले गया और परिवार को बुलाया तो मामा जिद्द कर बैठा कि गुरू जी तो महा प्रशाद खाते हैं, झटका भाई झटका। मैं पीरों को मानने वाला हूँ, मैंने उनका प्रसाद नहीं खाना, पीर मेरे गुस्से हो जायेंगे। इस पर बहुत देर बहस होकर अंत में मामा ने तरकीब निकाली कि न खायें और न अपमान से फेंके, किसी अच्छी जगह धरती में दबा दें, ऐसा ही किया गया।

समीर मामा और परिवार के कहने पर पीरों का भय मानकर कर तो बैठा परन्तु अब दिल में दर्द उठता है कि यह बेअदबी हुई है, आप माँग कर ली भेंट और आप अनादर किया। अगर गुरू ने पूछा तो क्या जवाब दूँगा? इस डाँवाडोल स्थिति में किसी सिंह के

साथ बात की उसने। उसने कहा भाई तेरे भाग्य, जितने सतगुरू तुम पर प्रसन्न हैं हमने कभी-कभी किसी पर देखे हैं। तुम इस कुसंगति का त्याग कर दो। कुसंग तो स्वर्ग की दहलीज में पैर रखे हों तो भी पीछे खींच लेता है।

समीर–सच कहा है आपने। पर क्या करूँ, घर का बड़ा है मामा, सामर्थ्यवान और पहुँचवाला, सभी उसके पीछे हैं, पेश नहीं जाती।

सिंह–जब सतगुरू का हुक्म मान लें तो उससे होश में जान भरती है, निर्भयता आती है। जब जगत के अधीन होकर जगत का हुक्म मानो तो होश में मुर्दनी छा जाती है, डर बढ़ता है। सतगुरू गुलाम किसी को नहीं बनाता, बल्कि सभी की गुलामी के बंधन काटता है, अपने पैरों पर खड़ा करता है, और होश में बल भरता है। परन्तु भाई। जगत दूसरे को अपने अधीन करता है, दास बनाता है। इसलिए समीर जी। जीवन और मौत का सवाल है, तप कर लो जो जी में आये, चाहे जीवन चाहे मौत! समीर जी! आप वाणी पढ़ो, नाम जपो, गुरमत सीखो और गुरू हुक्म में टिक जाओ, आपकी सुरत जी कर सीधी अपने आपके धुरे पर टिके तब स्वाद भोगेगी अंदर की स्वतंत्रता का। तब अनुभव करेगी अपने साथ लगा नामी–वाहिगुरू। फिर यह देखेगी बिछा हुआ अपने सामने जगत, जिसकी यह होगी दृष्टा, हाँ इसमें फँसनेवाली और इसके अधीन और नीचे लगी हुई नहीं रहेगी। फिर तुम्हारी सुरत निर्भय होगी, फिर रस है जीवन का भाई।

समीर के मन कुछ होश आई। मामे का दबाव घटा। समझ आई कि मैं ऐसे ही कुसंग के अधीन हो रहा हूँ। मामे ने पहले भी भ्रम उत्पन्न किया और अब भी डरा कर हमें रोका। पीर जानें और मामा, मुझे क्या उनसे लेना देना। हे मन डर निकाल मामे का, पीरों का और नवाब का। अब तो सतगुरू जो कहेंगे करूँगा।

: ४ :

इस तरह ताज़ा दम होकर गया दरबार। आगे बैठे थे स्वच्छन्दता के साईं, होश को जीवित रखने वाले, अहम् (अंहकार) के बंधन काटने वाले, परन्तु 'पवित्र शुद्ध मैं' के केन्द्र पर 'मैं' को स्वयं आधार सीधा करके खड़ी कर देने वाले, भय के दबाव से निकाल देने वाले साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी। दीवान लग रहा था, समीर ने माथा टेका। साहिब देखकर प्यार से हँसे। सुना भई समीर प्रशाद खाया कि नहीं?

समीर घबराया, परन्तु सच बोलने का साहस भर आया। कहने लगा: पातशाह जैतों वाले मामे ने पीरों का डर देकर खाने नहीं दिया, वह फिर आदर सहित धरती में दबा दिया है। कवि जी बताते हैं सतगुरू जी ने तब मालवा की धरती को वर दिया और वचन किया:-

अवनी जंगल देश की बहु अन्न उपावै।
अबि ते दुगने चौगुने अठ गुने जमावै।
होई हमारा मालवा जित कित बिदतावै।

उपजैं सिंह सहंस्र ही मलवई कहावैं।
सुनी अहि सिक्ख समीर भो चाहित हम दीनो।
प्रथम राज ते छूछ रहि अब छेम न लीनो*।

यह वर जो मालवे को दिया सफल हुआ। अगर अब तारीखों की विचार करें तो यह वर कोई १७६० के बाद और १७६५ से पहले हुआ निश्चित है। तब मालवे में मोठ बाजरी होती थी। कवि संतोख सिंह जी ने यह भविष्य कथन जो सतगुरू ने उचारे १९०० वि० से पहले के लिखे हैं। तब भी मालवा वैसे ही था। अब मालवे में कथन पूरे हो रहे हैं। कारण हुई है नहर। नहर बनी है (रोपड़ वाली) १८८२ ई० में अर्थात् १९३९ वि० में, अर्थात् कवि जी के देहान्त से ३९ वर्ष बाद। इस प्रकार सिद्ध हो गया कि कवि जी ने ये कथन मालवे में नहरें चलती हुई और नहरों की सुसिक्तता देखकर नहीं लिखे, न किसी ने १९३९ के बाद जोड़े हैं, क्योंकि १९१२ से १९१९ के लिखे नुस्खों में हैं इसलिए ये कथन श्री गुरू जी ने पहले कहे, पहले कलमबंद हो गये और बाद में नहरें आने पर कथन पूर्ण हुए। यह भविष्यकथन और इसकी पूर्णता अब ऐतिहासिक सत्यता का आदेश रखती है।

: ५ :

समीर की सरलता प्यार और अंदर छिपी बैठी बुद्धि की शक्ति को गुरू जी पसन्द कर रहे थे और उसकी सेवा, भाव भक्ति पर प्रसन्न हो रहे थे। उसको कुसंग मार रहा था, परन्तु अब कुसंग का प्रभाव कम हो रहा था। उसको समझ पड़ गयी थी कि मामा धर्महीन है और दबाऊ बुद्धि वाला है। उसको मामा के ईमान की हीनता और अपने धर्म की जीवन लय का अंतर दिखने लग पड़ा था। सतगुरू जी ने उस नयी जान का परिवर्तन पहचान लिया था और एक दिन बोले 'समीर! माँग जो जी चाहे। तुझे मुँह माँगी मुराद देंगे।'

समीर ने नम्रता सहित कहा–

'मिटहिं चुरासी को भ्रमण भवजल दुखदायी।
श्री सतगुरू। इस त्रास ते लिहु मोहि बचायी।' (सू० प्र०)

श्री गुरू जी चुप हो गये, किसी और ख्याल में लग गये और वह माँग बीच में ही रह गयी। दो तीन दिनों बाद फिर करुणा करते हुए गुरू जी ने समीर से वही बात कही।

परन्तु समीर ने फिर जन्म मरण से छुटकारा और मुक्तिदान माँगा। सतगुरू ने तब कहा 'तूने तो कई जन्म धारण करने हैं।'

...... 'तुव जनम घनेरे। धरने हैं भवजल विखे, किम जाहिं निबेरे।
कहिं लग करहिं बचाइबो, जाचहु बंधु आना। इस बिन अपर अदेय नहिं,
लिहु महिद महाना। हम प्रसन्न पिखि सेव तुम अरु प्रेम घनेरा।

---

* कवि जी बताते हैं कि इस समय सतगुरू ने उस गुलामी के हरकारे अपने दीन से बेदीन हुए मामे को कहा कि उसको कुष्ट होगा, उसको हुआ और उसके वंश में अब तक प्रभाव चला आ रहा है। यह बात कवि जी ने आप सुनी बतायी है।

उर अकपट सच कहत हैं परखयो बहु बेरा। करहु सफल निज
घाल को, हम दें ततकाला।' (सू॰ प्र॰)

परन्तु समीर ने फिर यही कहा, ' हे सतगुरू मेरी भव नौका काट दो और अपने नज़दीक स्थान दो, मुझे और कोई कामना नहीं है। यह सुनकर गुरू जी फिर और ख्याल में डूब गए। एक दिन फिर बोले 'समीर, माँग ले कुछ।'

समीर– **प्रभु जी भवजल ते रखहु कट देहु चुरासी।**
बहुर न पावों जनम को जम परे न फासी।

सुनकर हँसे कृपाल जी और कहने लगे, 'अच्छा भाई यही कुछ मिल जायेगा, कल सुबह आना।'

समीर वरदान लेकर घर गया। चेहरे की प्रसन्नता देखकर कुटुम्ब आश्चर्य में था। परन्तु किसी को क्या पता कि इसको कुछ मिल गया है और उसको अभी अपने आपको भी पता नहीं कि मैं कहाँ हूँ। रात अन्न पानी खाकर सभी सो गये, समीर भी सो गया। क्या देखता है कि मैं मर रहा हूँ और शरीर में से निकलकर किसी और में पड़ रहा हूँ। कोई चक्र चल रहा है जल्दी जल्दी कि जिस द्वारा एक शरीर से दूसरे, दूसरे से तीसरे में पड़ता निकलता हूँ। कई ऐसे प्रवेश और निकास देखकर आखिर वह किसी ग़रीब चाण्डाल के घर जा पैदा हुआ। वहाँ वह पला, बड़ा हुआ, विवाह हुआ, पुत्र पैदा हुए, बड़े परिवार वाला हो गया, देश में फिर अकाल पड़ गया। अब पानी से तंग आकर समीर स्वप्न में ही वन को चला गया, जहाँ पीलू फल रहे थे। वहाँ अब निर्वाह हो चला, पीलू पर्याप्त मिलने लग पड़े। एक दिन एक बड़े पुराने पीलू (जाल [careya, arborea] का वृक्ष और उसका फल) पर चढ़कर समीर पीलू खा रहा था और बच्चों के लिए नीचे फेंक रहा था कि पीलू की टहनी टूट गयी और नीचे आ पड़ा। चोट लगी तो नींद खुल गयी। क्या देखता है कि न तो पत्नी है वह न हैं वे बच्चे, न वह वन और पीलू, परन्तु मुँह में पीलू का स्वाद है। आश्चर्यचकित हो उठा, फिर दीवान में जाने के लिए तैयार होने का उद्यम किया। दातुन करने बैठा तो मुँह में से दाँतों में फँसे हुए पीलू भी निकले। सोचो, यह क्या हुआ? जो देखा था, सपना बीत गया, परन्तु अगर वह स्वप्न था तो ये बीज कहाँ से आ गए? मैंने रात को पीलू खाये नहीं, पीलू का मौसम नहीं। आश्चर्यचकित होता तैयार होकर दीवान में पहुँचा। ऐसे सतगुरू ने समीर को चिन्ता में देखकर कहा–'समीर चिन्ता न कर, भला हुआ है, भले पर की सोच।' समीर ने कहा, 'हे प्रभु जी, हैरान हूँ कि था तो स्वप्न परन्तु बीज प्रत्यक्ष कैसे आ गए। यह स्वप्न था कि.प्रत्यक्ष।' सतगुरू ने फरमाया–'समीर! प्रत्यक्ष भी था, क्योंकि दुख जो तुमने प्राप्त किये उसकी पीड़ा तुम्हें हुई, जो पीड़ा कि तुमने चाहे सपने में भोगी परन्तु उस समय प्रत्यक्ष भोगी। सपना भी था, परन्तु सपना था काल में, हाँ काल अल्प हो गया। नींद के समय में निकल गया। तुम्हारे कर्म जाल ने तुम्हारे लिए यह कुछ रच रखा था। हाँ तुम्हारे कथन, तुम्हारे कर्म, तुम्हारे ख्याल, तुम्हारे लिए यह कुछ रच रहे थे, जिसके बीच में से तुमने निकलना था दीर्घकाल, तुम्हें निकाल दिया अल्पकाल में

और कर्म का फल निपट गया और तुम्हें प्रत्यक्ष की तरह पीड़ा भी दे गया। परन्तु उस प्रेम ने जो तूने किया, उस भावभक्ति ने जो तूने कमायी, उस मेहर ने जो तुम पर हुई उस भोग को समय में अल्प कर दिया, सपना हो गुज़र गया। कर्म का फल और मेहर का सदका दोनों मिलकर सम्पूर्ण हो गये। पीलू बीज तुम्हारे निश्चय के लिए रहे थे, कि वे स्वप्न में 'स्वप्न प्रत्यक्ष' का मामला तुम्हें केवल भ्रम न प्रतीत हो हाँ निश्चय हो जाये कि वह सचमुच भी था। अब मेहर का सदका उस पद की प्राप्ति तुम्हें हुई समझो कि जिसको योगी ढूँढते हैं।

'दुरलभ पद जोगीनि को सो प्रापति होवैं।
भवजल दियो तराइ कर नहिं संकट जोवैं।' (सू॰ प्र॰)

इस समय दयालपुर का एक बढ़ई (तरखाण) पास बैठा था, वह सारी बातचीत सुनकर प्रेम के घर चढ़ गया और विह्वल होकर चरणों को लिपट गया। 'पातशाह! मेरी भी भवबाधा हरो।' उस मेहर वाले क्षण में जब दयाल जी कृपा के घर आये हुए थे, हँसकर बोले 'अच्छा भई तुम भी निकटवर्ती हो और अत्यधिक प्रेम में हो तुम भी समीर के साथ प्राण त्यागोगे, तुम्हारे भी बंधन कट गये, तुम भी हमारे पास पहुँचोगे।' यह कथन सुनकर दोनों के कपाट खुल गये और वह गति हो गयी जो जीवन-मुक्त की होती है।

इस प्रसंग में वही उसूल (नियम) सतगुरू जी का निरूपित हुआ है जो आदि से था कि जिज्ञासु की सेवा और नाम के प्रेमरंग के साथ और सतगुरू की मेहर ऊपर से हो जाने से कर्म दग्ध होते हैं। कर्म जाल अमिट और अटल नियम नहीं, कर्म का फल है, परन्तु कर्म आदि अंत वाला होने के कारण टूट सकता है, यथा–'लोका मत को फकड़ि पाय।। लख मड़िआ करि ऐकठे एक रती ले भाहि।' सतगुरू नानक देव जी की साखी मुहरों से कोयले होने की और सूली से सूल होने की, पाँचवें पातशाह के समय मंडी के राजे का प्रसंग, दसवें पातशाह जी के हुज़ूर काज़ी मलारदीन के साथ कौतुक और यहाँ पर वार्ता, सब उसी नियम के प्रतिपादक हैं कि कर्म है, भोगना पड़ता है, परन्तु कर्म बख़्शा भी जाता है क्योंकि कर्म अनादि और अनंत नहीं जैसे श्री गुरू ग्रंथ जी का कथन है:-

जब कछु न सीओ तब किआ करना
कवन करम करि आइआ।। (सूही म॰ ५)
करम बध तुम जीउ कहत हौ करमहि
किनि जीउ दीनु रे।। (गोंड़ कबीर जी)

कर्म जीव ने शरीर धारण करके किये हैं। आदि में कर्म करके जीव शरीर में नहीं था आया। सो हद्द मिटने वाले के कर्म अमिट और अविनाश नहीं हो सकते, वे मिटते हैं। जो चीज़ मिटती है, वह कई कारणों के अधीन, कभी धीमी और कभी मझोली चाल से और कभी तीव्र चाल से मिट सकती है। इस प्रकार जल्दी मिटाने का ज़रिया जिज्ञासु का प्रेम, नाम की आराधना, गुरू और परमेश्वर की मेहर है।

: ६ :

सरेहिन्द में ख़बरें पहुँच गयी थीं कि साहिब मालवा में हैं और पहले जैसे ही सिक्खों को नाम रंग लगा रहे हैं और जगत को तार रहे हैं। यह ख़बर भी कानों कान वहाँ होने

लग पड़ी थी कि सतगुरू ने फ़रमाया है कि सरहिन्द की ईंट से ईंट खड़केगी। श्रद्धावान सुनकर समझते थे कि यह बात घटेगी, अश्रद्धावान और मुग़ल पठान हँसते थे कि यह एक हँसी की बात है और हँसकर ही टाल देना इसका मूल्य है। सीतल पुरी नाम का एक करामात वाला साधु सरहिन्द रहता था। उसका देहान्त हो जाने के बाद उसका शिष्य (चेला) दयालपुरी वहाँ बसता था, वह करामात वाला और चमत्कार वाला प्रसिद्ध था। वह जानता था कि यह कथन अमोघ बाण है जो साईं के साथ एक सुरति हुए सतगुरू के धनुष से चल गया है। कथन सुनकर वह काँपा और थर्रा गया। फिर विचार कर अवतार गुरू की शरण लेने चल पड़ा। दीने पहुँचा, समीर के पास हाज़िर हुआ। आज्ञा लेकर और आप भी परखकर समीर ने उसको सतगुरू की शरण में पहुँचाया। चरण शरण पहुँचकर माथा टेककर दयालपुरी खड़ा हो गया और यह स्तोत्र पढ़ा–

नमो पाद कंजं गुरू रूप सोहे। धरयो ईश औतार को, लोक मोहे।
नही जान साकैं-प्रभु रूप तेरो। सदा जै, सदा जै, क्रिपा धार हेरो॥६॥
पुरा रूप बेदीनि के बंस होए। गुरू नानकं आदि भे, लोक जोए।
दसो देहि सोई महाराज धारे। उधारे घने, को गने पुञ्ज तारे॥७॥
करयो पंथ बीरानि को सिंह होए। महां पापकारीनि के मूल खोए।
सकेशं सकाछं सदा शसत्र धारी। जपै नाम को तेज दीनो सुभारी॥८॥
नहीं पंथ अैसो कबै अग्र होयो। दुहूँ लोक महिं शोक दासानि खोयो।
महां तेज धारी महां ओजवंते। महां काजकारी महा शसत्र हंते॥९॥
अरै कौन आगे तिहूँ लोक मांहीं। रखो दास लाजे मिटैं दुंद जांहीं।
महां मार मोहं अहो पंखिराजं। सदा जै, सदा जै, सदा श्रेय साजं॥१०॥
छके छैल छाजे छबं छेत्र छत्री। छमा छेम छोनी, छुमै छोभ अत्री।
मलछान लच्छानि छै, रच्छ स्वछं। लसो बीर रूपं बसो दास बच्छं॥११॥
सरूपं अनूपं महां भूप भूपं॥ उधारो प्रभू जो परे मोह कूपं।
निसेशं, दिनेशं, जलेशं, धनेशं। रहैं बीच आगया सु आदं सुरेशं॥१२॥
पगं पंकजं प्रेम पागे परे हैं। जपैं नाम भै सिंध तेई तरे हैं।
अमंदं मुकंदं बिलंदं अनंदं। नमो लेहु मेरी करौं हाथ बंदं॥१३॥

(गु० प्र० सू०)

यह अपने रूहानी स्वरूप की महिमा और शरीर धारण कर किये कौतुकों का यश सुनकर श्री गुरू जी मुसकराये और कहने लगे, 'दयालपुरी। किस काम से आये? साधु ने चरण पकड़कर विनती की, 'पातशाह! भारी पापी हूँ, कि हमारे शहर घोर अत्याचार हुआ और हम सेवा नहीं कर सके, आप जानते ही हो कि हम क्या हैं और क्या कर सकते हैं। सुना है कि अमोघ बाण जैसा कथन हो गया है कि सरहिन्द की ईंट के साथ ईंट खड़केगी। यह कथन टलेगा नहीं, चाहे यह श्री जी ने होने वाली बात कही है, चाहे आपने कही है

और इसने घट जाना है। पातशाह! यह माया मदमाता परन्तु साईं शरण प्राप्ति की मिन्नत करने वाला दास भी वहाँ बसता है, मेहर करो तो इस सन्मुख दास की ईंट से ईंट न खड़के।' यह सुनकर सतगुरू जी का रंग पलटा। पहले गहरा लाल फिर मृदुल कपाही (कपास जैसा) होकर हल्की प्याज़ी चमक में टिक गया और बीच में चमक लगी निर्मल आकाश के नील जैसे रंग की, फिर आप मुसकराये और बोले-'साधराम, तुझे बख्शा, तुम्हारे सम्बन्धियों को बख्शा, जा शंख बजा, जहाँ तक तुम्हारे शंख की ध्वनि पहुँचेगी वहाँ तक सरहिन्द की ईंट से ईंट नहीं खड़केगी।' दयालपुरी ने चरणों पर सीस रखा, धन्यवाद किया, जिह्वा से कहकर, नेत्रों से रोकर, रोओं से काँपकर, मन में शुक्रगुज़ारी की भावना में जाकर, आत्मा से सुखी होकर, फिर आज्ञा लेकर सरहिन्द गया और शंख बजाया, कोसों में बसता सरहिन्द अब उतना बाकी है जितना दयालपुरी ने बचा लिया।

: ७ :

होते होते बात वज़ीर खाँ के पास पहुँच गई थी कि गुरू जी चमकौर युद्ध में शहीद नहीं हुए, रात निकल गये थे। यह ख़बर तब पहुँची थी जबकि आप मालवे में आ गये थे। फिर नवाब ने सुना कि कहीं छिप रहे हैं, अब ख़बर पहुँची कि वे छिपे कहीं नहीं, दीने में प्रगट रूप में प्रचार कर रहे हैं--नाम का। निर्भय विचरते हैं और वही ठाठ-बाट है, वह दमख़म है। सुनकर उसके पाप काँपे, झूठी की गई सौगन्धों ने उसको डराया, मासूमों के कत्ल करने के घोर पाप ने कँपा दिया कि गुरू जी कभी इतने अत्याचार बख्शेंगे नहीं। गुरू का जीवन उसका काँटे की तरह नहीं बल्कि नटसाल* की तरह चुभने और कसकें मारने लगा, लगा जोड़ तोड़ सोचने उस दैवीय शरीर को समाप्त करने के। सबसे पहला यत्न यह अच्छा लगा कि चौधरी समीर के नाम हुक्म भेजे कि वह गुरू जी को बाँधकर उसके पास भेज दे। अपने राजमद में, अपने बल के अभिमान में, इसने समझा कि चौधरी हुक्म सुनकर काँपेगा और फौरन भेज देगा, तब मैं साहिबज़ादों की तरह 'साहिब जी' का भी सरहिन्द के बीच सिर कलम कर दूँगा। हाँ, उसने कई लोगों के सिर धड़ से जुदा किये थे।

यह एक आश्चर्यजनक भ्रम है कि इतिहास में शक्तिशालियों के अंत पढ़ सुनकर भी ज़ालिम हाकिम और शक्तिशाली बादशाहों ने कभी अक्ल नहीं सीखी। यदा कदा ऐसे ही हुआ है कि शक्तिशालियों के पापी जीवनों को साईं ने ज़ोर वाले पैदा करके ही दंडित किया है, उन्होंने आप इतिहास से सबक नहीं सीखा।

जब समीर लखमीर भाइयों के नाम परवाना पहुँचा कि गुरू को पकड़कर, फौरन मेरे पास भेज दो, तो सुनकर आपस में सलाह की उन्होंने। समीर का भरोसा अब अडिग हो चुका था, उसमें मर्दानगी पैदा हो गयी थी, वह जो मामे के लिहाज़ और पीरों के भय कारण डरता था, अब शीश देने को कुछ चीज़ नहीं समझता। उसके अंदर जागृत है आत्मा, जिसने साईं के साथ लिव बख्शी है। जागृत है चाल चलन जिसने सच का प्यार दिया है,

* बरछी या भाले का सिरा जो माँस में धँसकर बीच में ही टूट गया हो।

जागृत है वीर रस जिसने स्वाभिमान, लज्जा, स्वसत्कार और निज का मान बख़्शा है– अभिमान रूपी स्वसत्कार तो नहीं परन्तु पवित्र व्यक्तित्व का स्वसत्कार। तृष्णा रहित मन, कुर्बानी वाला, फिर शुद्ध, निज के केन्द्र पर टिकने वाला मन है अब समीर का जागा और ज़िंदा मन। इसलिए समीर ने जवाब लिखवा भेजा और भाइयों ने भी कह दिया ठीक है। जवाब यह था:- 'मेरे पास मेरे दीन के गुरू ठहरे हुए हैं, दीन के गुरुओं की इज्जत उसी तरह है जैसे आप अपने पीरों पैगम्बरों की करो। मेरे गुरू किसी के द्रोही नहीं, वे सबको प्यार करते हैं, इसलिए मैं मज़बूर हूँ, क्षमा करना।'

यह उत्तर आए अहदिए* को देकर समीर ने भेजा, जो यह ख़बर भी लाया था कि नवाब ने फौज तो तैयार कर रखी है, परन्तु अभी भेजने में कुछ विचार कर रहा है। इधर गुरू जी की ओर से तैयारी बहुत जोरों से आरंभ हो गयी ताकि जंग आ पड़े तो जवाब दिया जा सके। नये सिरे से सामान, आदमी तैयार करने और पदार्थ पूरे करने आदि काम मुश्किल थे, परन्तु वे अचंचल दिलेर मन वाले शूरवीर उसी रंग में फिर लगे हुए थे।

अब इस घटना से समझ आ जाती है कि गुरू जी ने किस तरह के स्व-सत्कार वाले, और सच पर टिकने वाले व्यक्ति रच दिए थे। वह समीर जो मामे से संकोच करता, घोड़े पर चढ़कर घुमाने मात्र की बात नहीं कर सकता, जो उसके लिहाज पर पीरों की नाराज़गी से डरता प्रशाद ज़मीन में दबाता है, आज इतना उच्च बुद्धि और शक्ति वाले मन का मालिक हो गया है कि सरहिन्द के नवाब को बेधड़क परन्तु बुद्धिमत्ता का जवाब देता है। जानता है कि नवाब अगर आ पड़े तो धन धाम चौधराई नहीं रह सकते, पर अब सुरत को परवाह नहीं।

समीर गुरू प्रेम में है, उसकी सुरत लिव में है। एक ओर समीर संत है अकाल पुरुष को प्राप्त, दूसरी ओर शूरवीर है अभय, बीच में स्वत: वैराग्य है माल से, जान से, सम्बन्धियों से। सब कुछ पास है, परन्तु कमल की तरह जल में अलिप्त खड़ा है समीर। ज़रूरत पड़े तो सब कुछ अर्पित है, न पड़े तो बीच में बैठा है, जैसे मुरगाबी है जो है तो नदी में, पर सूखी। जिस दिन आये थे गुरूजी दीने समीर समीर था, शूरवीर परन्तु ठहरी हुई समीर+ की तरह, अब समीर शूरवीर है परन्तु वेग के साथ बह रही समीर की तरह, जिसमें बल होता है जहाज़ चला सकने का, जिसमें शक्ति होती है वृक्ष तोड़ देने की, जिसमें ताकत होती है कभी अटारियों को गिरा देने की भी। ठहरा जल भी जल है, पर बाढ़ वाला जल भी जल है। समीर समीर ही है। परन्तु पहले समीर ठहरा जल था, अब समीर बाढ़ से भरी, ठाठें मारती, ज़िंदा, शोर मचाती, मदभरी नदी का जल है बलवान। हाँ, जी एक ओर पारंगत है, दूसरी ओर तारनहार है। जगत खेल में उसने मैं जीती है परन्तु स्थिर है। फिर वैराग्यवान है और सर्वस्व न्योछावर करने वाला है–तृष्णा रहित कामों के लिए, भले के लिए, दुख हरने के लिए और सुख देने के लिए।

---

* मुग़ल बादशाहों के समय सवारों की एक खास पदवी।

\+ हवा।

गीत

दर्शन-सिक्क*

भर भर डुल्हदे नैण,
कलग़ीआं वाले पिआरे तैनूँ
ढूँढ रहे दिन रैण,
आ वारी हुण पा जईं फेरा,
होर नहीओं हुण हुंदा जेरा,
इक झाके दी कर मिहरामत
बिन दरशन नहीं चैन।



* अभिलाषा।

८० ज़फरनामा*

अब जो माछीवाड़े से भेजा गुरू जी का पत्र मिल गया है। इससे स्पष्ट होता है कि दीने बैठे आप औरंगज़ेब के जवाब का इंतज़ार कर रहे थे कि जब नवाब सरहिन्द का संदेश समीर लखमीर भाइयों को पहुँचा कि गुरू जी को मेरे पास पहुँचा दो। अब कोई पक्ष बाकी न रह गया कि इसने वार करना है। इसलिए गुरू जी ने सेना एकत्रित करने का काम और तेज कर दिया। उधर दक्षिण से भाई दया सिंह जी के संदेशवाहक पहुँच गये। जो प्रतीत होता है कि औरंगज़ेब की अन्य जिज्ञासाओं के उत्तर लेने आये थे। तब सतगुरू जी ने एक और पत्र लिखा जो ज़फरनामा नाम से प्रसिद्ध है। ख्याल पड़ता है कि वही संदेशवाहक यह पत्र लेकर दक्षिण को गये हैं। इसकी असली कापी का तो पक्का पता अभी नहीं लगा, परन्तु जो प्रतिलिपियाँ गुरुमुखी अक्षरों में मिलती हैं, उनमें भाषा फारसी होने के कारण बहुत अशुद्धियाँ हो गई हैं।

इस पत्र का नाम आपने ज़फरनामा रखा, जिसका अर्थ है 'विजय का पत्र', देखो चढ़ती कला के साईं का चारित्रिक आदर्श। ज़फरनामा इसका नाम इसलिए रखा कि गुरू साहिब जी इसमें अपनी जीत बता रहे हैं और इसमें यह नियम बता रहे हैं कि चारित्रिक हार वास्तविक हार है और इस हार से अंत में शारीरिक हार हो जाती है। औरंगज़ेब की हार हुई है, जिसने और जिसके जिम्मेदार ओहदेदारों ने चरित्र का खून किया है, कसमें खाकर तोड़ी हैं और अपने आचरण को गिराया है। उस समय संसार को दिखाई देता होगा कि खालसा जी की हार हुई है, परन्तु नहीं, औरंगज़ेब की वह हार थी और खालसा जी की जीत थी। हार जीत के उसी समय अंकुर फूटे थे, बीच में बात कुछ समय की थी, समय पाकर वह हार जीत के फल की सूरत में मूर्तिमान हो गयी, तुर्क राज्य समाप्त हो गया और खालसा का राज्य पंजाब में कामयाब हो गया। कई बार हार जीत को समझना मुश्किल हो जाता है, परन्तु जब चारित्रिक मूल्य आँका जाये तो ठीक-ठीक पता लगता है। बेशक झूठ, फरेब, दगा, चालें कामयाब होती हैं परन्तु अंत सत्य की जय होती है। सत्य की अगर कहीं हार हो तो असत्य की जय से वह कीमती होती है। अन्तर कीमत पाने वाले मंडलों का होता है, यह पत्र विजय का है, इसकी ध्वनि विजय की है, इसका लेखक विजय में है और अपने इरादे से पीछे नहीं हट रहा।

वह पत्र जो दीने बैठकर गुरू जी ने लिखा उस समय का एक स्वलिखित इतिहास है और सबसे अधिक पक्का इतिहास है, फिर उसका अध्ययन एक रसदायी और जान भरनेवाली ताकत है, परन्तु है वह फ़ारसी में, इसलिए उसका मूल और टीका यहाँ देते हैं—

---

* यह प्रसंग-गुरुपर्व सप्तमी के लिए, जो (२९ दिसम्बर १९३८) पौष की १५ सं० गु० ना० सा० ४७० और वि० १९९५ वृहस्पतिवार को थी, खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

ज़फरनामा (ज़फरनामह)

(मंगलाचरण—वाहिगुरू जी की स्तुति*)

१. **कमाले करामात क़ायम करीम।।**
रज़ा बखशु राज़क रहाको+ रहीम।।

(धन्य है अकाल पुरुष जो) सदा स्थिर है, कृपालु है और जिसकी कृपाएँ कमाल की हैं@। प्रसन्नता का दाता है, रिज़क# देने वाला है, मुक्तिदाता है और रहम० करने वाला है।

२. **अमां बख़शु बख़शिंदह ओ दस्तगीर।।**
रज़ा बखशु रोज़ी दिहो दिलपज़ीर।।

पनाह देने वाला (शरण देने वाला) है, कृपा करने वाला है (निराश्रयों की) बाँह पकड़ने वाला है, खुशी देने वाला, रोज़ी देने वाला और मन को प्यारा लगने वाला है।

३. **शहिनशाहि ख़ूबी दिहो रहनमूँ।।**
कि बेगूनु बचून चूँ बेनमूँ$।।

(वह) पातशाहों का पातशाह है, नेकी (भलाई) का दाता है और (नेकी का) रास्ता बताने वाला है (ऐसे गुणों वाला होकर फिर वह) रंगहीन है, अरूप है और बेनमूना है।

४. **न साज़ो न बाज़ो न फउजो न फर्श।**
ख़ुदावंद बख़्शिंदह ए ऐश अर्श।।

(फिर वह ऐसा है कि जिसके पास न तो शाही का) सामान हो न बाज़ हों न फ़ौज हो न आराम के सामान हों% (उसको) वह देवलोक के सुख देने वाला है।

५. **जहां पाक ज़बरसत ज़ाहिर ज़हूर।।**
अता में दिहद हमचु हाज़िर हुज़ूर।।

संसार से अतिरिक्त है, इससे परे और ऊपर है, (फिर उसका) प्रकाश प्रकाशमान है, संसार से अतिरिक्त और परे होकर फिर मालूम कैसे होता है? उत्तर) उसकी मेहरबानियों से (वह मालूम हो जाता है, हाँ वह) हाज़िरा हुज़ूर है (भाव संप्रत्यक्ष है)।

---

* यह लेख और बीच-बीच सूचना बारीक टाइप में भाव सुगम करने के लिए दी हैं। ये फारसी मूल में नहीं हैं।

\+ पाठांतर-रिहाकुन।

@ (अ) जिसकी करामातें कमाल की हैं।
पाठान्तर ख़ता बख्श

\# रोज़ी।

o दया

$ नमूना, भाव, शक्ल, शबीहा, नुहार।

% फ़र्श—सोने बैठने के बिछौने कालीन आदि, भाव आराम के सामान।

६. **अता बख़्शदो पाक परवरदगार॥**
रहीमसतु रोज़ी दिहो हर दियार॥

(पाक=) अतिरिक्त है (जगत से पर फिर जगत का) पालनहार है, दयालु है, रहम करने वाला है, हर देश का रोज़ी दाता है।

७. **कि साहिब दियारस्तु आज़म अज़ीम॥**
कि हुस्नल जमालस्तु राज़िक रहीम॥

क्योंकि (सभी) देशों का मालिक (वही आप) है (और सब) बड़ों से बड़ा है, (इतना बड़ा होकर सिर्फ जलाल तेज वाला नहीं, बल्कि वह) जमाल (= मीठी सुन्दरता में भी अति) सुन्दरता वाला है (और रोज़ी देने में) राज़िक (रिज़क (रोज़ी) देने वाला है और अवगुण गिनने में) रहम करने वाला है।

८. **कि साहिब शऊरस्तु आजिज़ निवाज़।**
ग़रीबुल परस्तो ग़नीमुल गुदाज़॥

(राज़िक और रहीम होने में वह) शऊर (विवेक वाली बुद्धि) का मालिक है। दीनों का रक्षक है, गरीबों को सम्मान देने वाला और शत्रु दुष्टों का दमन करने वाला है।

९. **शरीअत परस्तो फ़ज़ीलत मआब॥**
हक़ीक़त शनासो नबी उल किताब॥

(वह ईश्वर शरीअत+ परस्त है (परन्तु आप की तरह किसी प्रकार के नीचे भावों के साथ नहीं, वह) बुजुर्गी का घर है, (उस बुज़ुर्गी के घर में बैठा वह शरअ परस्ती करता है, फिर वह) हकीकत का भी जानकार है (जिसको आप नज़रअंदाज़ करते हो, आप नबी और किताब कहकर कट्टरपन में हो, पर) नबी+ वह आप है और (अपनी अगम्य) किताब वाला (वह आप) है।

१०. **कि दानिश पयोहस्तु साहिब शऊर॥**
हक़ीक़त शनासस्तो ज़ाहिर ज़हूर॥

वह दानायी (चतुराई) की कद्र करने वाला है@ (क्योंकि वह आप) विवेक का मालिक है। हकीकत को पहचानने वाला है और उसका प्रकाश (सभी ओर) प्रकाशमान है।

११. **शनासिंदह ए इलमि आ़लम ख़ुदाय॥**
कुशाइंद हए कारि आ़लम कुशाय॥

(हाँ वह) ख़ुदा संसार की (सारी गुप्त प्रगट) जानकारी को जानने वाला है, दुनिया के (मुश्किल) कामों (मामलों) को खोलने वाला है (और बिगड़े हुओं को) सँवारने वाला है।$

---

* धर्म व्यवस्था। शरअ–सीधा रास्ता
+ शब्दिक अर्थ है ख़बरें देने वाला।
@ पयोह–ढूंढने वाला, भाव है कद्र करने वाला।
+ कशूदन से कुशाइंदह–खोलने वाला, कशीदन से कशाय–तरतीब देने वाला, सँवारने वाला।

१२. **गुज़ारिंदहए कारि आ़लम कबीर।।**
शनासिंदहए इल्म आ़लम अमीर।।

(सब से बड़ा काम है संसार का प्रबन्ध किसी तरतीब, क्रम और योजना में, सो साईं) संसार के (इस) बड़े काम को (अपनी) योजना में चला रहा है।* (क्योंकि संसार का) ज्ञान (उसको है, सभी का वह) पहचानने वाला है (और सब पर) हुक्म करने वाला है।+

दास्तान

(भाव हालत का वर्णन चला)

१३. **मरा ऐतबारे बरीं कसम नेस्त।।**
कि एज़द गवाहस्तु यज़दां यकेस्त।।

मुझे इस कसम पर (जो तूने यह लिखकर खायी थी) कि एक है ख़ुदा और वह ख़ुदा गवाह है, ऐतबार नहीं।

१४. **न क़तरह मरा ऐतबारे बरोस्त।।**
कि बख़्शी व दीवान हमह किज़बगोस्त।।

कण जितना मुझे विश्वास उस (कसम) पर नहीं (कि जो आपके सरदारों ने मेरे पास उठायी थी), क्योंकि (आपका) बख़्शी और दीवान (हर कोई) झूठ बोलने वाला है@।

१५. **कसे क़उल क़ुरआं कुनद्द ऐतबार।।**
हमा रोज़ आख़र शवद्द मरद ख्वार।।

(तेरे सरदारों की और तेरी सौगन्धों का यह हाल हो रहा है कि) जो कोई क़ुरान (में देकर किये आपके) क़ौल पर एतबार (विश्वास) कर लेता है वह मर्द उसी दिन या अंत को बेक़द्र ही होता है। (भाव कि न केवल मुझे ही आपकी सौगन्ध पर भरोसा नहीं है, बल्कि अनुभव ने किसी के दिल में भी भरोसा नहीं रहने दिया)।

१६. **हुमा रा कसे सायह आयद बज़ेर।।**
बरो दस्त दारद न ज़ागे दिलेर।।

(पर जान ले कि अगर) हुमा के साये तले कोई आ जाये उस पर कौवा काबू नहीं पा सकता, (चाहे वह कौवा कितना) दिलेर (हो)।

---

* गुज़ारदन, गुज़ारीदन–अदा करना, चलाना, चित्रकार द्वारा चित्र का ख़ाका बनाना। इससे भाव है संसार को योजनाबद्ध करना और इसकी योजना पर अवयवों को तरतीब बार रखकर सारे को चलाना।

+ आमीर, अमीर = अमर करने वाला, हुक्म करने वाला।

@ 'ई' से मतलब औरंगज़ेब की सौगन्ध की है यह बात अंक ४५, ४६ से साफ हो जाती है। बख़्शी उस समय के फौजी सेनानायक को कहा करते थे।

भाव–हम वाहिगुरू की छाया तले थे, शेर ४३ में बताते हैं कि जो सौगन्ध का विश्वास कर ले ख़ुदा उसका रहनुमा हो जाता है। तुम्हारे दिलेर फौजी सरदार जो झूठे होने के कारण कौवे की तरह व्यर्थ प्रलाप करने वाले थे, हम पर काबू न पा सके और हम जीवित निकल आये।

१७. **कसे पुश्त उफ़तद पसे शेरि नर।।**
न गीरद बुज़ो मेशो आहू गुज़र।।

अगर कोई शेर नर की पीठ पीछे आ जाये, बकरी, भेड़ और हिरण (मृग) (ने उसको पकड़ना तो क्या, वे) उस रास्ते से भी नहीं निकल सकते*।

१८. **कसम मुसहफे ख़दअ़ह गर ईं ख़ुरम।।**
न फउजे अज़ीज़े रा सुम अफ़गनम।।

इस 'क़ुरान की सौगन्ध' का धोखा (अगर) मैं खाऊँ न (तो अपनी) प्यारी फौज को लंगड़ी कर लूँ न+।

(युद्ध चमकौर)

आनंद में सौगन्ध खाने और फिर सौगन्ध तोड़कर आ चढ़ने का तुर्क दल का हाल कहकर अब चमकौर युद्ध का हाल वर्णन करते हैं कि जब हम चमकौर की गढ़ी में आ ठहरे तो सौगन्ध खाने वालों ने क्या कुछ किया:-

१९. **गुरस्नह चि कारे कुनद चिहल नर।।**
कि दह लक बरायद बर्र बेख़बर।।

(विचार करो) चालीस आदमी भूखे क्या करें जब दस लाख@ उन पर अचानक आ चढ़ें।

---

* न गीरद गुज़र–वह रास्ता नहीं पकड़ सकते भाव उस रास्ते से नहीं निकल सकते।

+ गुरूमुखी लेखकों ने 'ख़दअह' को खुफिया बना दिया है। 'अज़ीज़े रा' को 'अज़ीं ज़ेर' कर दिया है। 'खदअ़' नाम है फरेब (छल, धोखा) करने का। खदीअत फ़रेब। खदअह = फरेब (लु॰ कि॰) मुसहफ का अर्थ है सहीफे या रसालों (पत्रिकाओं) को इकट्ठा करके बनी पुस्तक – क़ुरान। सुम अफगंदन, अफगंदन सुम = आजज़, अपाहज। लंगड़े होना। दूसरी पंक्ति का 'न' देहुरी दीपक है। 'भाव यह है कि आपकी फौज ने सौगन्ध तोड़कर हमला किया, मेरी फौज शांति से आ रही थी, धावा बोलने की उसको आज्ञा नही थी, मैं अपने वादे पर पक्का था–इस प्रकार वह मानों जंग करने से लंगड़ी थी। भाव रूकी हुई।'

@ दस लाख, देखो शेर–४१। औरंगज़ेब की फौज की बहुतायत का भेद ऐलफिन्स्टन ने पृष्ठ ५३० पर दिया है कि अफसर जितने सिपाही अपने पास रखे हुए बताते उससे आधे अपने पास रखते थे और घर के नौकरों और अन्य ग़ुलामों चरवाहों आदि के बीच में लिख छोड़ते थे और इस प्रकार गिनती बढ़ाबढ़ाकर बताते थे। वैसे पता चलता है कि राजाओं की फौज, लाहौर की फौज, सरहिन्द की फौज के अतिरिक्त पहाड़ी चरवाहे और गुर्जर–आदि लड़ाकू ग्रामीण आ जुड़े थे और आम देशवासी टूट पड़ा था कि गुरू के खज़ाने की लूट हाथ आयेगी। तेरह चौदह मील तक ये सरकारी और ग़ैर सरकारी देशवासी फैले हुए थे।

२०. कि पैमां शिकन बेदरंग आमदंद॥
मए तेगु तीरो तुफ़ंग आमदंद॥

बिना कोई ढील किये (वे सारे किये हुए) वादे को तोड़ने वाले (चमकौर) आ गये, तलवारों, तीरों, बंदूकों सहित आ गये (भाव वार करने लग पड़े)।

गुरू साहिब बता रहे हैं कि आनन्दपुर से हमारे निकलने के बाद कसम तोड़कर तुम्हारे लश्करी और सरदार हम पर आ पड़े। जब हम चमकौर आ ठहरे तो यहाँ भी पीछे आये और मैदान में उतर पड़े, दोनों जगह उन्होंने वादा खिलाफी की। आगे बताते हैं कि फिर मज़बूरी में मुझे भी उनके वार का मुकाबला करना पड़ा–

२१. ब लाचारगी दरमियां आमदम॥
बतदबीर तीरे तुफ़ंग आमदम॥

मज़बूर होकर मुझे भी (जंग) में आना पड़ा। मैं भी तीरों और बंदूकों के प्रबन्ध के साथ आया (भाव मैंने भी आगे से तीरों तुफंगों द्वारा जवाब दिया*)।

२२. चुकार अज़ हमह हीलते दर गुज़श्त॥
हलालस्त बुरदन बशमशीरे दस्त॥

जब (नीति के) सभी (अन्य) उपायों से बात न बने तो तलवार पर हाथ रखना (भाव लड़ना) उचित है।

२३. चि क़समे क़ुरां मन कुनम ऐतबार॥
वगरनह तुगोईमनईं राह चिहकार॥

(अब जब उन्होंने मुझ पर तीर तुफंग के वार शुरु कर दिए) तू ही बता कि कुरान की कसम का मैं क्या एतबार करूँ? (सो मैंने भी वार रोकने की तदबीर की) नहीं तो मुझे इस रास्ते पर पड़ने की कोई ज़रूरत नहीं थी।

(भाव–अगर वे पहले वादा तोड़कर वार न करते तो मुझे लड़ने की क्या ज़रूरत पड़ी थी+?)

२४. न दानम कि ईं मरद रोबाह पेच॥
दिगर हर गिज़ीं राह निआरद बहेच॥

मुझे क्या पता था कि यह आदमी लोमड़ी जैसे छल कपट वाला है (फरेबी है और कपट के बिना) दूसरी और किसी बात की इस रास्ते परवाह नहीं करता। (भाव–अपने ख़्याल को बिना धर्म और आचरण की परवाह किए पूरा करना ही नीति के रास्ते में ठीक जानता है@।

---

* प्रतीत होता है कि यह सरहिन्द से गयी रिपोर्ट के आधार पर बादशाह की ओर से हुई जवाब तलबी का उत्तर है।

\+ भाव यह भी लेते हैं कि मुझे आनंदपुर छोड़कर चमकौर की गढ़ी में आने की क्या ज़रूरत पड़ गयी थी।

@ 'दिगर' की जगह पर 'वगर' समझकर यह भाव भी लेते हैं कि नहीं तो कोई और वस्तु मुझे इस रास्ते (चमकौर) की ओर न लाती।

२५. **हरांकस कि क़ुउले क़ुरां आयदश॥**
नज़ो बस्तनो कुश्तनो बायदश॥

हर वह व्यक्ति कि जिसको कुरान के वचन पर (यकीन आ जाये), उसको इससे (भाव सौगन्ध पर एतबार कर लेने के कारण) न कैद करना बनता है और न कत्ल करना बनता है (पर वे सौगन्धें तोड़कर हमें पकड़ने या मारने आ गये तथा)–

२६. **बरंगे मगस स्याह पोश आमदंद॥**
बयकबारगी दर ख़रोश आमदंद॥

मक्खियों की तरह (वे) काली पोशाकों में आ चढ़े और एक बार में ही शोर शराबा मचाने लग पड़े। (भाव–नारे मारते हुए हल्ला कर दिया, परन्तु आकर फसील (शहर पनाह) की दीवार की ओट ले ली)।

२७. **हरांकस ज़ि दीवार आमद बिरूँ॥**
बख़ुरदन यके तीर शुद ग़रकि ख़ूँ*॥

पर जो कोई कि (उस) दीवार से बाहर आया (हमारी) ओर से एक ही तीर खाकर लहू में डूब गया।

२८. **किबेरूँ निआमद कसे ज़ां दिवार॥**
ना ख़ुरदंद तीरो न गश्तंद ख़्वार॥

उस दीवार से जो कोई बाहर नहीं आये उन्होंने न तीर खाये न ख़्वार हुए*।

२९. **चु दीदम कि नाहर बिआमद बजंग॥**
चशीदह यके तीर तन बेदरंग+॥

(यह देखकर कि घेरा डालने वालों की हार हो रही है, साथी साथ लेकर नाहर ख़ाँ आगे बढ़ा) जब मैंने देखा कि नाहर युद्ध के लिए आ गया तो झटपट उसने भी (हमारे) एक तीर (का स्वाद अपने) तन में चखा। (भाव हमने तुरन्त तीर मारा और उसका काम पार हो गया)।

३०. **हमाख़र गुरेज़ंद बजाए मुसाफ॥**
बसे ख़ानां ख़ुरदंद बेरूँ गज़ाफ॥

(वे) अधिकतर पठान (जो उसके साथ आये थे और जो) बाहर बहुत शेखियाँ (खाते =) मारते थे आखिर लड़ाई की जगह से भाग गये।

३१. **कि अफ़ग़ान दीगर बिआमद बजंग॥**
चु सैले रवां@ हमचु तीरो तुफंग॥

---

* इसमें भी यही भाव है कि जो आगे बढ़कर हमला (आक्रमण) करने आया उसी पर हमने तीर चलाया, जो स्वरक्षा का अधिकार हर एक को प्राप्त है।

\+ यहाँ भी आक्रमण करने की पहल नाहर की ओर से बताई गयी है।

@ पाठान्तर–सैले दवां।

कि (इतने में एक) और पठान लड़ाई में आया, मानों एक बाढ़ चली आ रही है अथवा तीर आ रहा है कि बंदूक (की गोली) आ रही है*।

३२. **बसे हमलह करदंद बमरदानगी॥**
हम अज़ होशगी हम ज़ि दीवानगी॥

(उसने और उसके साथियों ने) बहादुरी के साथ हल्ले किये, अक्लमंदी के साथ भी (और) शुदाई (पागल) के जोश की तरह भी।

३३. **बसे हमलह करदहबसे ज़ख़्म ख़ुर्द॥**
दु कस रा बजां कुशतु जां हम सपुर्द॥

(इन्होंने) बहुत हल्ले किये और बहुत ज़ख़्म खाये, दो (हमारे) आदमियों को जान से मारा और आप भी जान दे गया।

३४. **कि आं ख़्वाजह मरदूद सायह दिवार॥**
बमैदां निआमद बमरदानह वार॥

पर वह रद्द किया हुआ (बेइज़्ज़त, बेग़ैरत) ख़्वाजा दीवार की ओट (ही रहा), मर्दों की तरह (एक बार भी) मैदान में नहीं आया+।

३५. **दरेग़ा। अगर रूए ओ दीदमे॥**
बयक तीर लाचार बख़्शीदमे॥

अफ़सोस कि अगर कभी मैं उसका मुँह देख लेता तो एक तीर ज़रूर उसको भी मैं बख्शता@।

३६. **हमाख़र बसे ज़ख़्म तीरो तुफंग॥**
दुसूए बसे कुशतह शुद बेदरंग॥

आखिरकार दोनो पक्षों से अनेक तीरों और गोलियों के ज़ख़्मों से बहुत सारे आदमी जल्दी जल्दी मारे गये।

३७. **बसे बार बारीद तीरो तुफ़ंग॥**
ज़िमीं गश्त हमचूँ गुले लालह रंग॥

तीरों और बंदूकी गोलियों की बारिश बहुत हुई (इतनी कि उनसे मरे हुओं के रक्त से) ज़मीन लाले के फूल# की तरह (लाल) रंग की हो गयी।

---

* सैले रवां से मतलब उसके साथियों की बहुतायत से है, और तीर गोली की तरह आने से उनकी रफ्तार (गति) की तेज़ी की ओर इशारा है।

\+ सेनापति की ओर इशारा है।

@ शाब्दिक अर्थ–एक लाचार तीर से उसको मैं बख्श देता। शायद यह अर्थ ठीक है और भाव है कि मैं एक तीर मााकर उसके बेईमान हो जाने का गुनाह उसको बख्श देता (लाचार ज़रूर। या ऐसा कि जिसका दारू न हो सके)।

लाल रंग का एक फूल, कई इसको लाल पोस्त का फल समझते हैं।

३८. **सरोपाए अंबोह चँदां शुदह॥**
कि मैदां पुर अज़ गोए चौगां शुदह॥

सिरों और पैरों का ढेर इतना इकट्ठा हो गया कि मानों वह मैदान गुल्ली डंडों से भर गया है। (सिर = गुल्ली, पैर टाँगें–डंडे)।

३९. **तरकार* तीरो तरंके कमां॥**
बरामद यके हाय हू अज़ जहां॥

कमानों (के खींचने की) आवाज़ तीरों (के चलने और लगने की, बंदूकों के भरने और फ़तेह होने की सड़क तड़क की आवाज़ से) दुनिया से एक हाहाकार निकली।

४०. **दिगर शोरशे कैबरे कीनह कोश॥**
ज़ि मरदान मरदां बिरूँ रफ्त होश॥

फिर भंयकर तीरों की शोरश (शोर–शराबा) ने (वह उधम मचाया कि) बहादुरों से बहादुरों के होश गुम हो गये+।

४१. **हमाख़र चि मरदी कुनद कारज़ार@॥**
कि बर चिहल तन आयदश बे शुमार॥

(सोच) कि आखिर लड़ाई में (बहादुरों की अकेली) मर्दानगी क्या करे जब चालीस मर्दों पर बेशुमार# (सेना) आ चढ़े।

(चमकौर से निकलना)

४२. **चरागे जहां चूँ शुदह बुरक़ह पोश॥**
शहे शब बरामद हमह० जल्वह जोश॥

जगत का दीपक$ जब घूँघट निकाल बैठा (और) रात का शाह% पूरे ज़ोश वाले जलवे (के साथ) बाहर आया। (भाव = सूरज डूब गया, रात पड़ गयी और चंद्रमा चढ़ आया)।

४३. **हरांकस कि कउले कुरां आयदश॥**
कि यज़दां बरो रहनुमा आयदश॥

हर उस पर कि जिसको (दूसरे के) कुरान से (दिये) वचन पर (भरोसा) आ जाये (वचन देने वाला चाहे दगा करे, पर जानकर) कि ईश्वर उसके (सिर) पर (होता है और उसका) रहबर हो जाता है।

---

* तंरकार लेखक की गलती है, फारसी पद है तरंग, उससे तरंकार, तरंग के अर्थ है–वह आवाज़ जो तीर छूटते समय कमान से, तीर, तलवार, गुर्ज़ के लगते समय या तलवार के टूटने के समय हो। 'तरंगार' पद में सभी आवाज़ों से मुराद ली गई ठीक प्रतीत होती है।

+ भाव है कि हमारे तीर अचूक निशाने पर बैठते थे और ऐसे ही लगकर नहीं गिर पड़ते थे, जिसको लगते उसको घायल किये बिना नहीं छोड़ते थे। इसलिए आपके दल में सबके छक्के छूट रहे थे।

@ पाठान्तर भेद है, 'कुनद कारज़ार' और 'कुनद वक्तकार' पहला शुद्ध है।

यहाँ मानो पीछे आये 'दह–लक' पाठ का टीका आप कर दिया है–बेशुमार

o पाठान्तर–बहम।

+ पाठान्तर–चरागे जहाने।

% पाठान्तर–शबे शाह।

४४. **न पेचीद मूए न रंजीद तन॥**
कि बेरूँ ख़ुद आवुर्द दुश्मन शिकन॥

सो (देख ले कि वह) दुश्मनों को तोड़ देने वाला (ईश्वर हमें उस रात दुश्मन के घेरे में से) आप बाहर ले आया (इस ख़ूबी के साथ कि) न तो (हमारे) शरीर को कोई नुकसान पहुँचा और न बाल (तक) भी बाँका हुआ।

४५. **न दानम कि ईं मरद पैमां शिकन॥**
कि दउलत परस्ततो ईमां फ़िगन॥

पता नहीं कि (क्यों) यह मर्द* जो वादा करके तोड़ने वाला है (इतना) दौलत की पूजा करने वाला है (कि दौलत के बदले) दीन को भी परे (एक ओर दूर) फेंकने वाला है।

४६. **न ईमां परस्ती न अउज़ाए दीं॥**
न साहिब शनासी न महमद यकीं॥

(सत्य है कि) तू न तो दीन की पूजा करने वाला है, न तेरे (ये) तरीके+ दीन के हैं न तू मालिक (वाहिगुरू) को पहचानता है, न तुझे मुहम्मद पर भरोसा है@।

४७. **हरांकस कि ईमां परस्ती कुनद॥**
न पैमां ख़ुदश पेशो पस्ती कुनद॥

(क्योंकि) हर कोई जो (अपने) ईमान का पालन करता है, वह अपने (किये) इकरार से टलता नहीं।#

४८. **कि ईं मरद रा ज़ँरह ऐतबार नेस्त॥**
चि कसमे क़ुरानसत यज़दां यकेस्त॥

पर इस मर्द को ज़रा सा विश्वास नहीं है (इस बात पर कि) कुरान की सौगन्ध क्या (चीज़) होती है (और न इसको विश्वास है कि) ईश्वर एक है (भाव कि जिस की वह सौगन्ध खा रहा है और जिसके पास हिसाब होना है सभी सौगन्ध खाई हुई का वह सभी का ईश्वर एक ही है)।

४९. **चु क़समे क़ुरां सद क़ुनद इख़्तिआर॥**
मरा क़तरोह नायद अज़ो ऐतबार॥

(अब) अगर (वह) कुरान की सौ कसमें उठाये, मुझे उस पर रत्ती भर विश्वास नहीं आ सकता, इस (ऊपर बताये) कारण की वजह से$।

---

* मर्द से मतलब औरंगज़ेब है जो दुनिया में इतना बड़ा होकर फिर वादा तोड़ता है।

+ औज़ाय, जमां है वज़आ की = तरीके।

@ 'न महमद यकीं' की जगह 'मुहम्मद यकीं' शुद्ध पाठ होगा। पहला न देहुरी दीपक है।

पशोपेश करना = नुक्ते पर न टिके रहना। मुहावरे में है टालना, पूरा न करना।

$ अज़ो का इशारा पिछले शेर में बताये कारण की ओर है। सौगन्ध खाने वाले को स्वयं कुरान की सौगन्ध पर एतबार नहीं और न ईश्वर के ऐक्य पर। कहते हैं कि औरगज़ेब ने आपको बुला भेजा था, जब सौंगन्ध खायी थी कि युद्ध छोड़कर मेरे पास आओ। उस सम्बन्ध में कह रहे हैं कि अब तुम्हारे पर विश्वास नहीं रहा, और मैं नहीं आ रहा। तू आप दगाबाज़ है और तुझे दूसरे पर भी भरोसा नहीं। क्योंकि तुझे किसी पर विश्वास नहीं इसलिए तू भी नहीं आया। प्रतीत होता है कि काज़ी ने पातशाह के आप आने के सम्बन्ध में गुरू जी को सच या खुश करने के लिए कहा था। आगे शेर ५६ तक यही बात खुलती है।

५०. **अगरचिह तुरा ऐतबार आमदे।।**
कमर बस्तहए पेशवा आमदे।।

अगर तुझे (अपनी सौगन्ध पर) विश्वास होता तो तू (अपने किये वादे पर) कमर कस कर हमारे सामने आ जाता।

५१. **कि फ़रज़स्त बरसर तुरा ईं सख़ुन।।**
कि क़उले ख़ुदा असतु कसम असत मन।।

(अब) तुम्हारे सिर पर इस बात (का पालन करना) फर्ज़ है, क्योंकि आपने वचन किया है मेरे साथ और कसम खायी है ख़ुदा की (उस वचन के पूरा करने की)।

५२. **अगर हज़रते ख़ुद सितादह शवद।।**
बजांनो दिले कार वाज़ह शवद।।

(क्योंकि) अगर तू (यहाँ) आप आ मौजूद हो (तो मेरी ओर से) दिल जान से सारा (हो चुका) काम (तुझ पर) प्रगट हो जाये*।

५३. **शुमा रा चु फरज़ अस्त कारे कुनी।**
बमूजब नविशतह शुमारे कुनी।

आपका फर्ज़ है कि (चु =) जब कोई काम करो (तो अपने) लिखे के अनुसार विचार (भी) करो+।

५४. **नविशतह रसीदो बिगुफ़्तह ज़बां।।**
बबायद कि कार ईं बराहत रसां।।

(तुम्हारा) ज़ुबानी कहा (और) लिखा (संदेशा) पहुँच गया था (अब तुम्हारा) बनता है (कि उसे लिखे और कहे अनुसार) इस काम को किसी सुख में पहुँचाये।

५५. **हमूँ मरद बायद शवद सुखनवर।।**
न शिकये दिगर दर दहाने दिगर।।

हर एक आदमी को चाहिए (कि अपने वादों को पूरा करने वाला हो, (यह योग्य नहीं कि) दिल में कुछ और हो और मुँह में कुछ और हो@।

५६. **कि क़ाज़ी मरा गुफ़्तह बेरूँ नियम।।**
अगर रास्ती ख़ुद बियारी क़दम।।

काज़ी ने (आपका संदेश) मुझे यह कहा था (कि बादशाह कहता है कि) मैं (आपके भाव गुरू जी के हुक्म से) बाहर नहीं हूँ। अगर तुम सच्चे हो (तो अब बनता है कि तुम) यहाँ अपने कदम लाओ (भाव आप यहाँ आओ)।

---

* कई विद्वानों ने इसका भाव यह भी निकाला है कि अगर तुम्हारा हज़रत (मुहम्मद) आ मौजूद हो तो उस पर सारी बात खुल जाये और तुम्हारी झूठी सौगन्ध का मूल्य पड़े।

\+ शुमारे कुनी = विचार करो। भाव पड़ताल करो कि लिखकर दिये वादे के मुताबिक काम हुआ है कि उलट।

@ पेट में कुछ और होने का भाव है दिल में कुछ और हो।

इससे प्रतीत होता है कि जब काज़ी ने गुरू जी के पास जाकर बादशाह का लिखित संदेश दिया तो ज़ुबानी संदेशे भी दिए। उस समय यह भी कहा कि बादशाह आपकी बुज़ुर्गी का प्रशंसक है और आपसे मुनकिर (इनकारी) नहीं, अभी युद्ध में व्यस्त है, परन्तु थोड़ी देर में मुक्त होकर वह आप आकर नयाज़ हासिल करेगा, जैसे अकबर गुरू जी को मिला था। किसी एक प्रकार के इकरार की ओर जो काज़ी ने किया था, गुरू जी औरंगज़ेब का ध्यान दिला रहे हैं कि तू यहाँ आ। और अगले शेर में कहेंगे कि जो लिखी हुई कसम तोड़ी है, वह अगर चाहे तो मैं तेरे पास पहुँचा दूँ, गोया उस समय तक वह अहदनामा (वादापत्र) गुरू जी के पास था। इस ५६वें शेर में काज़ी का ज़िक्र है कि ज़ुबानी हुई बातचीत उससे पूछ लो, इससे पहले शेर ५०-५२ में कह आये हैं कि अगर तू मेरे सामने खड़ा (मौजूद) हो तो.......

५७. तुरा गर बबायद ओ* कउले कुरां॥
बनिज़दे शुमा रा रसानम हमां॥

अगर तुझे ज़रूरत हो उस कुरान के वचन की तो वह मैं आपके पास पहुँचा देता हूँ।

कौले कुरां का यह भाव भी हो सकता है, वचन वाला कुरान जिस कुरान पर कौल लिखकर काज़ी गुरू जी के पास ले गया था+ दूसरे कुरां की कसम के साथ जो इकरारनामा लिखा गया था@।

५८. कि तशरीफ दर क़सबह 'कांगड़' कुनद॥
वज़ां पस मुलाकात बाहम शवद॥

(काज़ी के कहे अनुसार अगर औरंगज़ेब) कांगड़ कस्बे में तशरीफ करे, इसके बाद आपस में मुलाकात हो जाये।

५९. न ज़र्रह दरीं राहि ख़तरह तुरास्त॥
हमह कौम 'बैराड़' हुकमे मरास्त॥

इस रास्ते में आपके लिए ज़रा भर भी ख़तरा नहीं है (क्योंकि यह बैराड़ों का देश है और) सारी बैराड़ों की कौम मेरे हुक्म में है।

६०. बिआ ता बमन# ख़ुद ज़ुबानी कुनेम॥
बरूए शुमा मिहरबानी कुनेम॥

---

* फारसी से अनजान लेखकों ने फारसी के 'ओ' के स्थान पर यहाँ 'ब' कर दिया है।

\+ कई बार किए इकरार कुरान के खाली पृष्ठ पर लिखकर साक्षी दी जाती थी। ऐसा एक कुरान महाराजा रणजीत सिंह के साथ हुए काबुलियों की ओर से किसी अहदनामे का किसी सज्जन के पास है सुनने में आता है।

@ वह किया इकरार अभी गुरू जी के पास है और बादशाह को बताने के लिए तैयार हैं। इससे पता चलता है कि इस जफ़रनामा में कुछ जवाबतलबी के उत्तर हैं।

\# यहाँ 'बमन' की जगह पाठ 'सुखन' होगा।

(तू) आप आ मेरे पास तो ज़ुबानी (बातचीत) करें, फिर आप पर मुँह रू-ब-रू मेहरबानी करें। (भाव-जो अहदशिकनी (वादा तोड़ना) की गयी और हमें परेशानी दी गयी वह माफ कर दें)।

६१.* **यके अस्प शाइस्तहए यक हज़ार।**
बिआ ता बगीरी बमन ईं दिआर।

एक अच्छा घोड़ा एक हज़ार (मूल्य) का लेकर (नज़राने के तौर पर) मेरे पास आ ताकि यह इलाका मुझसे ले ले।

उस समय पातशाहों की मेहर के पात्र एक कीमती घोड़ा नज़र के तौर पर पेश करते थे और पातशाह की ओर से जागीर मिल जाती थी। इसलिए गुरू साहिब कह रहे हैं कि यह इलाका अगर तूने लेना है तो घोड़ा नज़र कर तो हम यह इलाका तुझे बख़्श दें।

काज़ी के कहे अनुसार पातशाह के आने की बात ख़त्म कर अपने जाने के सम्बन्ध में ज़िक्र चलता है। यहाँ से प्रतीत होता है कि पातशाह ने आपको बुलाया है। फ़रमाते हैं:-

६२. **शहनशाह रा बंदहए चाकरेम।।**
अगर हुक्म आयद बजां हाज़रेम।।

पातशाहों के पातशाह (ईश्वर)+ के हम सेवक और दास हैं, (अगर) उसका हुक्म आ जाये तो जान से हाज़िर हैं।

६३. **अगरचि बिआयद बफुरमाने मन।।**
हज़ूरत बिआयम हमह जानो तन।।

अगर (उसका) हुक्म आ जाये मेरे पास तो जान और तन से मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा।

६४. **अगर तू बयज़्दां परस्ती कुनी।।**
बकारे मरा ईं न सुस्ती कुनी।।

अगर तू पूजा (सचमुच) ईश्वर वाली करता है (तो चाहिए कि) मेरे इस काम में सुस्ती न कर।

६५. **बबायद कि यज़दां शनासी कुनी।।**
न गुफ़तह कसे कस ख़राशी कुनी।।

(तुझे) चाहिए कि ख़ुदा की पहचान करे तू (और) किसी के कहने पर इंसानों को दुख देना न करे तू।

६६. **तु मसनद नशीं सरवरे कायनात।।**
कि अजबस्त इंसाफ़ ईं हम सिफ़ात।।

तू (पातशाही की) गद्दी पर बैठा है और दुनिया का सरदार है, तेरा न्याय आश्चर्यजनक है, भी तेरे ये गुण आश्चर्यजनक हैं।

---

* ज़फ़रनामे की एक प्रतिलिपि में ६०, ६१, ६२, ६३ चारों नहीं हैं। इनको कई लोग आक्षेपक मानते हैं।

\+ अंक ३ और ७१ में भी 'शाहनशाह' पद आपने परमेश्वर के लिए प्रयुक्त किये हैं।

६७. **कि अजबस्तु इंसाफ़ो दीं परवरी॥**
कि हैफ़ अस्तु सद हैफ़ ईं सरवरी॥

(हाँ), आश्चर्य है (तेरा) इंसाफ और (आश्चर्य है तेरे द्वारा) दीन का पालन करना। इस (तेरी) सरदारी पर अफसोस है सौ बार अफसोस है।*

६८. **कि अजबस्तु अजबस्तु फतवह शुमा।**
बजुज़ रासती सुख़न गुफ़तन जियां॥

फिर आपके फतवे (भी) अनोखे हैं, (बहुत) अनोखे हैं, (कि जो सच को छोड़कर दिये जाते हैं, परन्तु जान ले कि सच्चे ईश्वर की शरअ में) सच के अतिरिक्त (किसी) बात का कहना (अपना) नुकसान (आप करना है) है।

६९. **मज़न तेग़ बर ख़ूने कस बेदरेग़॥**
तुरा नीज़ ख़ून अस्त बा चरख़ तेग़॥

किसी का खून करने के लिए बेदरेग़+ होकर तलवार न चला, (नहीं तो) तेरा भी आसमान की तलवार खून करेगी।@

७०. **तू गाफ़ल मशउ मरद यज़्दां शिनास॥**
कि ओ बेनिआज़स्त ओ बे सिपास॥

तू ग़ाफ़िल न हो हे मर्द। ईश्वर को पहचान# वह ज़रूरतमंद नहीं है और किसी खुशामद की ज़रूरत नहीं रखता।

७१. **कि ओ बे मुहाबस्तु शाहान शाह॥**
ज़मीनो ज़मां रा हम ओ$ पातशाह॥

हाँ, वह निर्भय है, शाहों का शाह है, ज़मीन और आसमान% का भी वही पातशाह है।

७२. **ख़ुदावंद एज़द ज़मीनो ज़मां॥**
कुनिंदस्त हर कस मकीनो मकां॥

वह ख़ुदावंद है (अपने आपसे है और मालिक है) पर ज़मीन आसमान का (पैदा करने वाला) ईश्वर है और वह हर स्थान (और उसमें) रहने वाले का करतार है।

---

* इन दो शेरों में औरंगज़ेब के ज़ुल्मों की ओर नज़र डाली है, जो उसने पिता भाइयों और सूफी मुसलमानों के साथ किये और हिन्दुओं पर जो सख़्तियाँ कीं और सतनामिये सभी कत्ल करवाये आदि, सभी ज़ुल्मों को 'अचरज और हैफ़' कहकर जता दिया है।

\+ बिना अफसोस, निधड़क।

@ दो पाठ हैं–१. 'तुरा नीज़ ख़ून असत बा चरख़ तेग़' = आसमान की तलवार से तेरा भी खून है। २.'तुरा नीज़ ख़ूँ चरख रेज़द ब तेग = तेरा खून भी आसमान तलवार से करेगा।

पाठांतर–'शिनास' की जगह 'हिरास'। अर्थ–हे मर्द तू ग़ाफ़िल न हो ईश्वर से डर कि वह जरूरतमंद नहीं किसी ख़ुशामद का।

$ पाठांतर = हमूँ, सच्चा है।

% ज़मां = समां। परन्तु जब 'ज़िमीं' के साथ यह आये तो अर्थ आसमान लेते हैं।

७३. **हम अज़ पीर मोरो हम अज़ पीलतन।।**
कि आजज़ नवाज़स्त ग़ाफ़ल शिकन।।

हाँ बूढ़ी (कमज़ोर) चींटी से लेकर हाथी जैसे (पुष्ट) शरीर वालों का (सभी का कर्त्ता भी वही है और) वही लाचारों (निराश्रयों का) को महिमा देने वाला है और (वही) ग़ाफ़िलों को मारने वाला है।

७४. **कि ओरा चु इस्मअस्त आज़ज़ निवाज़।**
कि ओ बे सिपास अस्त ओ बे निआज़।।

क्योंकि उसका नाम दीनबंधु है (इसलिए) वह किसी से कोई ज़रूरत नहीं रखता और वह बेपरवाह है।

७५. **कि ओ बेनगूँ अस्तु ओ बेचगूँ।।**
कि ओ रहनुमा अस्त ओ रहनमूँ।।

हाँ, वह (ईश्वर) झुकने वाला नहीं है और वर्णन नहीं किया जा सकता*। हाँ, वही रास्ता बताने वाला है वही रास्ते पर डालने वाला है+।

७६. **कि बर सर तुरा फरज़ क़समे क़ुरां।।**
बगुफ़्तह शमा कार ख़बी रोसां।।

क्योंकि तेरे सिर पर कुरान की सौगन्ध का बोझ है (और बोझ है तेरे सिर पर) तेरी (की) बातचीत का, (अब तेरा) काम है (उनको किसी) खूबी पर पहुँचा@।

७७. **बबायद तु दानश परस्ती कुनी।।**
बकारे शुमा चीरह दस्ती कुनी।।

चाहिए कि तू (अब) अक्लमंदी का पालन करे (यह तेरा अपना काम है, इस) अपने काम में (आवश्यकता है कि) तू बहादुरी करे (परन्तु अक्ल के साथ)#।

७८. **चिहा शुद कि चूँ बच्चगां कुश्ता चार।।**
कि बाकी बिमांदस्त पेचीदह मार।।

चाहे मेरे चार बच्चे मारे गये हैं (इससे पर) क्या हुआ, जब कि टेढ़ा साँप$ बाकी रह गया है।

---

* निगूँ—जो नीचा या उल्टा न हो, अझुक। चरूँ = किस तरह, किस भांति का, जिसके सम्बन्ध में यह न कहा जा सके कि वह किस तरह का है।

\+ 'रहनुमा और रहनमूँ' के लगभग एक ही अर्थ हैं भाव बल देने पर है, क्योंकि उस रात चमकौर से सीधे रास्ते छोड़कर घने जंगलों और वनों को चीरते गुरू जी माछीवाड़े पहुँचे थे, रास्ता बताना और सही रास्ते पर लेते जाना ईश्वर का काम था।

@ अथवा, अपनी कही बात को किसी खूबी के साथ सफल कर।

\# भाव निडर होकर ज़ोर के साथ न्याय और अक्ल का काम कर। चीरह दसती—ग़लबे के साथ काम करना।

$ कई लोग समझते हैं कि अपनी ओर इशारा है, परन्तु अगले शेर से संदेह नहीं रह जाता कि मतलब खालसे से है। गुरू जी नौजवान खालसा को भुजंगी कहा करते थे, जिसका अर्थ साँप है। 'मार पेचीदा' का मतलब ज़ंजीर होता है। 'लुगाते किशवरी'। साहिबज़ादे तो मारे गये फरदन फरदन, पर खालसा तो ज़ंजीर है जो खत्म नहीं होगा।

७९. चि मरदी कि अख़गर ख़मोशां कुनी॥
कि आतश दमां रा बदउरां कुनी॥

यह क्या मर्दानगी है कि (जीवन की) चिंगारियों को बुझा रहा है, परन्तु भड़कती आग को और तेज़ कर रहा है*।

८०. चि खुश गुफ़त फिरदौसीए ख़ुश ज़ुबां॥
शिताबी बवद कारे आहरमना॥

सुन्दर रसना वाले (प्रवीण कवि) फिरदौसी ने कैसी सुन्दर बात कही है कि ज़ल्दी करनी शैतानों का काम है, (छोटे साहिबज़ादों के कत्ल की ओर इशारा है)।

८१. कि मा बारगहि हज़रत आयम शुमा॥
अज़ां रोज़ बाशी व शाहिद शुमा॥

कि मैं तू तेरे ईश्वर की कचहरी में आयेंगे, उस दिन मैं तुम्हारा सरदार और गवाह होऊँगा+।

८२. वगरनह तु ईं हम फ़रामुश कुनद॥
तुरा हम फ़रामोश यज़्दां कुनद॥

अगर तू इस (इंसाफ के काम) को भी (इस समय) भुला देता है तो जान ले कि तुझे ख़ुदा भुला देगा।

८३. अगर कारि ईं बर तो बस्ती कमर॥
ख़ुदावंद बाशद तुरा बहिरावर@॥

परन्तु अगर तूने इस (अब इंसाफ करने के) काम पर कमर कस ली तब ईश्वर तुझे खुशकिस्मत (करने वाला) होगा।

८४. कि ईं कार नेक अस्तु दीं परवरी॥
चु यज़्दां शनासी बजां बरतरी॥

क्योंकि यह काम नेक काम है, हाँ, दीन परस्ती का (यह काम) है, अगर तू ईश्वर को पहचानता है तो (इस काम को) जान से भी अधिक उच्चता दे (भाव प्यार कर)।

८५. तुरा मन न दानम कि यज़्दां शनास॥
बरामद ज़ि तो कारहा दिल खराश#॥

तुझसे (अब तक) दिल दुखाने वाले अनेक काम हुए हैं, (इसलिए) तुझे मैं ईश्वर को पहचानने वाला नहीं समझता।

---

* साहिबज़ादों को 'अख़गर' कहा है और खालसे को भड़कती आग जो उसके जुल्मों से और बढ़ेगी। सुपुत्रों ने आखिर संसार से चले जाना था, परन्तु खालसे ने तो जगत पर सदा रहना है। जो भड़कती आग है चलती रहने वाली।

\+ हज़रत = हजूरी (ईश्वर से भी मुराद है)। (अंक ८३ में खुदावंद कहा है)। बाशी–सरदार, शाहिद = उगाह (गवाह)। (अ) बाशी–होवेंगा (होगा)। उस दिन तू होगा और (मैं) तेरा गवाह हूँगा।

@ बहिरावर = खुश नसीब, खुश किस्मत।

\# पाठांतर = पुर ख़राश।

८६. **शनासद हमीं तो न यज़्दां करीम॥**
न खाहद हमीं तो बदौलत अज़ीम॥

इसलिए* कृपालु ईश्वर तुझे भी नहीं पहचानता और इसीलिए तुझे तेरी इतनी बड़ी दौलत सहित नहीं चाहता, (भाव तुझे स्वीकारता नहीं)।

८७. **अगर सद कुरां रा बख़ुरदी कसम॥**
मरा ऐतवारे न ईं ज़र्रह दम॥

अगर (अब तूने) कुरान की सौ कसमें भी खाईं (भाव खाये) तो मुझे उन पर रत्ती भर एतबार एक क्षण के लिए भी नहीं (आ सकता। भाव अगर सौगन्धे खाकर बुलाये तो भी मैं नहीं आऊँगा)।

८८. **हज़ूरी न आयम न ईं राह शवम॥**
अगर शाह बखाहद न आंजा रवम+॥

न मैं तेरे पास आऊँगा न इस रास्ते ही पड़ूँगा। जहाँ शाह चाहेगा वहाँ नहीं जाऊँगा।

* * *

अब तक औरंगज़ेब की बेइंसाफी, कपट और अधर्म आदि बुराइयाँ उसको निधड़क (निडर) होकर बतायी हैं, पर उस में गुण भी थे, वे किसी गुस्से की लय में भुलाए नहीं, अब उनका ज़िक्र करते हैं, न डरते हैं, न सच को छिपाते हैं।

८९. **खुशा@ शाह शाहान अउरंगज़ेब॥**
कि चालाक दस्तस्त चाबक रकेब॥

शाहों का शाह औरगज़ेब भाग्यों वाला है, (तलवार चलाने में) प्रवीण हाथों वाला है, और घुड़सवारी में लायक है।

९०. **चि हुस्नल जमालअस्तु रोशन ज़मीर॥**
खुदावंद मुलक अस्तु साहिब अमीर॥

कि रूप का सुन्दर है, तीखी बुद्धि वाला है#। देश का मालिक है और अमीरों (सरदारों या हुक्म करने वालों) का भी साहिब है।

९१. **ब तरतीब दानश बतदबीर तेग़॥**
खुदावंदि देगो खुदावंद तेग़॥

तलवार की युक्ति के साथ और चतुराई की विधि से (तू काम कर रहा है, इसलिए तू) देग़ और तेग़ का मालिक हो रहा है$।

---

* हमीं – इसलिए

\+ पा०–अगर शाह बखाहद मन आं ज़ा रवम–मैं उस स्थान पर जाऊँगा, जहाँ ईश्वर चाहेगा। ऐसे भी अर्थ करते हैं–अगर ईश्वर चाहे तो उस स्थान पर जाऊँगा।

@ पा० – खुशश।

\# रोशन ज़मीर = दानिशमंद, ज़मीर = दिल, रोशन – चाँदनी वाला।

$ तेग़ से मतलब जंगी ताकतों और सामानों से है। देग़ से मतलब खज़ाने और माल आदि से है।

९२. कि रौशन ज़मीर अस्त हुस्नलजमाल।।
खुदावंदि बख़्शिन्दहए मुल्कु माल।।

हाँ दानिशमंद (अक्लमंद) हैं, रूप का सुन्दर है, मुल्क और माल का मालिक भी है और बख्शने वाला भी है।

९३. कि बख़्शिश कबीर अस्त दर जंगकोह।।
मलायक* सिफत चूँ सुरय्या शकोह।।

बख्शिश बड़ी है और जंग में पहाड़ (तुल्य) है, ताकतवरी गुण है, प्रताप पृथ्वी तक है (मानो)।

९४. शहनशाह अउरंग ज़ेब आलमीं।।
कि दाराइ दौर अस्तु दुर अस्तदीं।।

जहान और तख्त को शोभा देने वाला शहनशाह है। ज़माने का पातशाह है, परन्तु दीन उससे दूर है।

* * *

आगे अब ईश्वर की मेहर द्वारा अपने बचाव, ईश्वर की प्रशंसा और औरग़ज़ेब के अधर्म के कथन चलते हैं—

९५. मनम कुशतनम कोहीआं बुत परस्त।।
कि ओ बुत परस्तंदु मन बुत शिकसत।।

मेरी (लड़ाई और मरना) मारना बुत परस्त पहाड़ियों के साथ था+ पहाड़िये बुतपरस्त हैं, मैं बुत शिकन हूँ@।

९६. बबीं गरदशे बेवफ़ाईए ज़मां।।
पसे पुश्त उफ़तद रसानद ज़ियां।।

(देख ज़माने की) बेवफाई (बेउसूली, अधर्म) जिसके पीछे पड़ जाये उसका नुकसान करता है।

९७. बबीं कुदरते नेक यज़दानि पाक।।
कि अज़ यक ब दहलक रसांनद हलाक़।।

(पर साथ) देख उस पवित्र और नेक ईश्वर की कुदरत कि एक और दस लाख को हलाकत# (नुकसान) पहुँचाता है।

---

* मलायक—फरिश्ते। अरबी में 'म', 'ल', 'क' वाले अक्षर से जो पद बने उसमें ताकत, कुव्वत के अर्थ ज़रूर होंगे। प्रताप जब पृथ्वी तक कहा तो मलायक का भाव फरिश्ते की नेकी नहीं, परन्तु उसकी ताकत से ही है।

\+ इस शेर का पाठांतर भेद है—मनम कुशतनम कोहीआं पुर फितन। किआं बुत परसतं दो मन बुत शिकन।

@ इस और अगले शेर में औरंगज़ेब को व्यंग्य किया है कि तू खुदापरस्त नहीं, अगर होता तो खुदापरस्तों की मदद करता, नाकि बुतपरस्तों की।

\# हलाक (हलाकत) = नष्ट करना, मारना, नुकसान, मौत।

९८. चि दुश्मन कुनद मिहबरानस्त दोस्त॥

कि बख़्शिंदगी कारि बख़्शिन्दह ओस्त॥

दुश्मन क्या कर सकता है (जब) दोस्त (परमेश्वर) मेहरबान है। क्योंकि उस कृपालु का काम (ही) कृपा करना है।

९९. रिहाई दिहो रहनुमाई दिहद॥

ज़ुबां रा ब सिफत आशनाई दिहद॥

(वह मित्र बंदी में से) छुटकारा देने वाला है (और कुमार्ग में) रास्ते दिखाने (की भेंट) देता है (और छुटकारा पाकर ठिकाने पहुँच गये लोगों की) वाणी को (उसकी) प्रशंसा, गुणगान करने की दोस्ती दान करता है (= गुणगान की सलाह देता है)।

१००. ख़सम रा चु कोर ओ कुनद वक्ते कार॥

यतीमां बिरूँ बुरद बे ज़ख्म ख़ार*।

शत्रुओं को वह (एकदम वैर के (शत्रुता के)) काम (कामयाबी से कर लेने) समय अँधों की तरह कर देता है और अनाथों को (उनके घेरे में से) बिना कांटे जितने ज़ख्म लगे बाहर निकाल ले जाता है।

१०१. हरांकस कज़ो रास्तबाज़ी कुनद॥

रहीमे बरो रहम-साज़ी कुनद+॥

हर वह मनुष्य कि जो (संसार में) सच्चाई (सत्य की कमाई) करता है, रहमतों का साईं उसके साथ रहम का व्यवहार करता है।

१०२. कसे ख़िदमत आयद बसे दिलो जां॥

ख़ुदावंद बख़शीद बर वै अमां@॥

जो कोई दिल जान से उसकी सेवा में ही अधिक रहे, (जान लो) परमेश्वर मालिक ने उस पर ईमान की मेहर कर दी है।

१०३. चि दुश्मन कज़ां हीलह साज़ी कुनद॥

अगर रहनुमा बर वै राज़ी शवद॥

वैरी (शत्रु) उसके साथ क्या चालाकियाँ कर सकेगा कि अगर उस पर (ईश्वर) रास्ता बताने वाला प्रसन्न हो।

१०४. अगर बर यक आपद दहोदह हज़ार॥

निगहबान ओरा शवद किरदगार॥

---

* पाठान्तर–यतीमां विरूँ में बुरद्द बे आज़ार – यतीमों को बिना तंगी पहुँचने के बाहर ले जाता है। अ: यतीम – जिसका पिता न हो। कभी माता हीन को भी कहते हैं। दोनों के न होने पर भी यह पद प्रयुक्त करते हैं। यतीम का अर्थ अद्वितीय भी हुआ करता है। गुरू जी का भाव उस समय की किसी सांसारिक सहायता के अभाव की दशा सूचित करने से है।

\+ पा०–कि बर वै खुदा रहम साज़ी कुनद।

@ पाठान्तर – बिबखशद खुदावंद बर बै अमां। अमां – शरण, पनाह, रक्षा, सुख, शांन्ति।

अगर एक पर एक लाख (भी) चढ़ाई करके आ जाये उसका रक्षक करतार होता है।

१०५. तुरा[0] गर नज़र हस्त लश्कर व ज़र।

कि मारा निगाहस्त यज़दां शुकर॥

तेरी नज़र (अगर अपनी) फौज के सोने पर है (जान ले) कि मेरी नजर परमेश्वर के शुक्र करने पर है।

१०६. कि ओरा[*] गरूरअस्त बर मुल्कोमाल॥

व मारा पनाहस्त यज़दां अकाल॥

अगर उस (औरंगज़ेब) को अपनी सल्तनत और दौलत पर अंहकार है तो मुझे अकाल पुरुष करतार का सहारा है[+]।

१०७. तु ग़ाफ़ल मशउ ज़ीं सिपंजी सराए॥

कि आलम बिगुज़रद सरे जा बजाए॥

तू इस (संसार पर गर्व) करके, जो चलती सराय है[@] ग़ाफ़िल न हो, कि संसार सभी जगह[#] (सभी के) सिर ऊपर से निकल रहा है (भाव सभी ने मरना है)।

१०८. बबीं गरदशे बेवफाईए ज़मां॥

कि बिगुज़शत बर हर मकीनो मकां॥

बेवफा (न अंग पालनहार) ज़माने की गर्दिश की ओर देख, कि यह हर मकान और उसमें रहने वाले हर एक के सिर पर से निकल गया।

१०९. तु गर ज़बर आजज़ ख़राशी मकुन॥

कसम रा बतेशह तराशी मकुन॥

अगर तू (इस समय बहुत) बलवान है तो गरीबों के दिल न दुखा (और अपनी खाई) कसमों सौगन्धों को तेशे[$] के साथ मत काट।

११०. चु हक़ यार बाशद चि दुश्मन कुनद्द॥

अगर दुश्मनी रा बसद तन कुनद्द॥

जिसका ईश्वर मित्र हो दुश्मन उसका क्या कर सकता है, चाहे (वह) एक के स्थान पर सौ बनकर दुश्मनी करता रहे।

१११. ख़सम दुश्मनी गर हज़ार आवुरद्द॥

न यक मूए ओरा आज़ार आवुरद्द॥

शत्रु चाहे हज़ार दुश्मनी करता रहे (जिसके साथ दुश्मनी कर रहा है) उसके एक बाल को नहीं दुखी कर सकता।

* * *

---

0 पा॰--निगर=देखनेवाला सदा जागता, अन्तर्यामी।

* फारसी में इस तरह सीग़ा गायब रहते मुखातिब बदला जाये तो खूबी मानते हैं।

\+ भाव, जिसको आप यज़दां और हम अकाल कहते हैं, हमें उसी एक का आसरा है।

@ सिह = पंजी = ३ + ५ = ८ आठ दिनों। चरवाहे और रखवाले जो अस्थायी झोंपड़ियाँ वनों और खेतों में डालते हैं, उनको 'सिपंजी' कहते हैं, भाव चंदरोज, चलने वाले, अस्थिर आदि।

\# जा बेजा – हर भले बुरे के ऊपर से।

$ लकड़ी तराशने का एक यंत्र॥

ज़फरनामे की अंदर की गवाही

पीछे पहला पत्र जो औरंगज़ेब को गुरू जी ने माछीवाड़े से लिखा था दे आये हैं। इस प्रकार यह दूसरा पत्र है जो दीने से लिखा गया है। प्रतीत होता है कि औरंगज़ेब की ओर से कुछ प्रश्न पूछे गये हैं और इस ज़फरनामे में उनके उत्तर हैं। यह भी हो सकता है कि यह चेतावनी पत्र है और इसमें ब्यौरे दिए हैं जो पहले में नहीं थे। यह ज़फरनामा एक पत्र होने के अतिरिक्त ऐतिहासिक मूल्य महत्व की वस्तु भी है। यह गुरू जी की स्वजीवनी सम्बन्धित स्वलिखित उस मौके का इतिहास है। स्वजीवनी स्वलिखित घटनाएँ इतिहासकारों में बहुत कीमती समझी जाती हैं।

सरसरी तौर पर पढ़ने पर ज़फरनामे के भावों का पता नहीं लगता, परन्तु समालोचना करके पढ़ने पर बहुत कुछ ऐतिहासिक हाल खुलते हैं जो इस प्रकार हैं–

१. पहली बात इसमें से यह मिलती है कि औरंगज़ेब की ओर से गुरू जी के पास कोई काज़ी आया है। (शेर ५६)

२. जिसने आकर पातशाह का लिखा पत्र या वादा या कोई वस्तु दी है। इस पत्र में यह लिखा ज़रूर सही प्रतीत होता है कि काज़ी जुबानी भी मेरे संदेश देगा और जो कुछ वह कहेगा मेरी तरफ से होगा। (शेर ५४)

२. गुरू साहिब ने यह वस्तु (पत्र) संभालकर पास रखी है और इतने झंझट फसादों के बीच में से निकलकर भी वह वस्तु उनके पास थी जो वे दीने से उसको लिखते हैं कि वह लिखा अहदनामा अगर चाहो तो मैं तुम्हारे पास भेज सकता हूँ। (शेर ५७)

४. इस अहदनामे में जो औरंगज़ेब की ओर से आया कुरान की कसम खाई गयी है, ईश्वर की सौगन्ध खायी गयी है और हो सकता है कि यह लिखा ही कुरान की जिल्द के कोरे पन्ने पर हो। (शेर ४८-४९)

५. इसमें यह शर्त ज़रूरी थी कि आप अगर क़िला छोड़ दो तो अमन अमान (शांति-चैन) जिधर इच्छा करे चले जाओ, कोई आपको कुछ नहीं कहेगा। (शेर १८, २०)

६. चाहे औरंगज़ेब के पत्र में यह बात थी और चाहे काज़ी ने गुरू जी को ज़ुबानी कहकर निश्चय करवायी थी कि पातशाह आपको दीन के बुज़ुर्ग समझता है, आपका अदब (सत्कार) करता है, और वह अब दक्षिण के युद्ध में व्यस्त है, नहीं तो वह आप आकर दर्शन प्राप्त करता। अब भी जब दिल्ली आयेगा, वह स्वयं आकर दर्शन (मुलाकात) करेगा। तभी इस बात को गुरू जी खोलकर पत्र में लिखते हैं कि औरंगज़ेब को पता लग जाये कि उसका भेजा काज़ी किस हद्द तक इकरार कर आया है। काज़ी ने ऐसे खुश करने वाले इकरार मात्र इसलिए कर लिये कि आनन्दपुर से निकलते ही तो हमने इसको मार देना है, पातशाह को इकरारों का पता ही नहीं लगेगा साथ ही वह जानता था कि कसम तोड़कर की कामयाबी को औरंगज़ेब बुरा नहीं समझता।

७. इसीलिए गुरू जी औरंगज़ेब को बिना झिझके लिखते हैं कि तू उस इकरार के अनुसार कांगड़ हमारे पास आ तो हम तुम्झे सारा हाल बतायें। और व्यंग से कहते हैं कि इलाका हमारा है अगर लेना है तो घोड़ा लेकर आ तुझे दे दें। (शेर ५८-६१)

८. फिर यह भी पता लगता है कि कसमें सौगन्धें खाने में सिर्फ औरंगज़ेब का भेजा काज़ी ही नहीं था, उसके और ओहदेदार भी थे, और वे फ़ौजी और सिवल दोनों पक्षों के प्रमुख (सिरमौर) थे, जिनको बख्शी और दीवान करके बताया है। (शेर १४)

९. फिर यह ख्याल कि गुरू जी दक्षिण औरंगज़ेब के पास जा रहे थे कई लोगों के अंदाज़े में है, ज़फरनामे के किसी शेर से भी संदेह हो सकता है, परन्तु इसमें साफ शब्दों में इनकार है, कि तू मुझे बुलाये तो मैंने नहीं आना, न तेरी कसम का विश्वास करना है। (शेर ८७-८८) परन्तु यह भी कहा है कि अगर ईश्वर का हुक्म आये तो आ भी सकते हैं। (शेर ६३)

१०. घेरा डालने वालों ने वादा तोड़ा और हमला किया। (शेर २०)

११. उस घमासान में से बहुत मुश्किल से गुरू जी कुछ साथियों सहित निकले और किसी तरह चमकौर जा गढ़ी में ठहरे। वहाँ उनके साथ केवल ४० सिक्ख थे और वे भी रसद पानी से वंचित थे। (शेर १९)

१२. वहाँ भी गुरू जी ने पहल नहीं की, पहला वार तुर्कों की तरफ से हुआ, फिर स्वरक्षा में जंग हुआ। (शेर २१)

१३. अंक २७ से ४० तक पर विचार करने पर समझ आती है कि गुरू साहिब की तीरन्दाज़ी बहुत कमाल की थी। यह ख्याल कि अमोघ बाणों के आख़िरी तीरन्दाज़ गुरू साहिब हुए हैं, इन शेरों में से उसकी सत्यता प्रकट होती है। (शेर २७-४०)

१४. नाहर खाँ का एक आप के तीर से मारा जाना इसमें स्पष्ट है। (शेर २९)

१५. ख्वाजा मरदूद आप की तीरन्दाज़ी से डरता हुआ छिपा रहा है दीवार की ओट में। (शेर ३४, ३५)

१६. चमकौर का युद्ध सारे दिन भर होता रहा, गोया ४० सिक्खों ने बेशुमार सेना को गढ़ी के करीब चार पहर नहीं आने दिया। (शेर ४२)

१७. चमकौर का युद्ध सख्त जंग थी, इसमें मार-काट बहुत हुई और मुर्दों के ढेरों के ढेर लग गये, दोनों ओर मरे, परन्तु सिक्ख तो चालीस थे सारे। अगर ढेरों के ढेर लगे तो साफ है कि घेरा डालने वालों की मारकाट बहुत अधिक हुई। (शेर ३९-४०)

१८. दोनों ओर से निहायत खूँखार युद्ध होते रात पड़ गयी और गुरू जी बेशुमार सेना के घेरे में से सही सलामत निकल गये। (शेर ४२-४४)

१९. औरंगज़ेब के, सिपाहगिरी, हुक्मरानी, राजनीति, खुशशक्ली, दान, कामयाब पातशाह होने, दूरन्देशी, जंग में स्थिर रहना आदि सभी गुण माने हैं और किसी भाव में जाकर जो कुछ सच है उसको नज़रअंदाज़ नहीं किया। (शेर ८९-९४)

२०. इससे पहले भी उसके इंसाफ दीनपरस्तीं, सुखनपरस्ती, मुहम्मद पर भरोसा और ख़ुदापरस्ती पर एतराज़ करते और इन गुणों के असली ईमान पर व्यवहार से उसको खाली बताते हैं। इतिहास बताते हैं कि इन सारी बातों में गुरू साहिब ने इस आदमी का सही अध्ययन इसमें लिख दिया है, और इतने जबर्दस्त पातशाह को उसके असली अवगुण लिख भेजने से बिल्कुल नहीं डरे, हालांकि सरहिंद का नवाब पीछे लगा हुआ है और खतरा है

कि अभी आया कि आया, और थोड़े समय बाद मुक्तसर वाले स्थान पर उसने आ ही हमला किया। अगर औरंगज़ेब भी अपने अवगुण सुनकर तुनक पड़े तो फिर अपनी ज़िंदगी और भी अधिक ख़तरे में पड़ जाये, परन्तु आपने उसके ये अवगुण, जो ठीक उसमें थे माप तौल कर बेझिझक लिखकर भेज दिए थे।

२१. शेर ४९ में पहाड़ी राजाओं को बुतपरस्त (मूर्ति पूजक) कहा है और अपने आपको बुतशिकन (मूर्ति पूजा का खंडनकर्त्ता)। इस शेर का यह मतलब नहीं कि पहाड़ी राजाओं के साथ गुरू साहिब की लड़ाई किसी बुतपरस्ती के उसूल पर थी। इसका भाव केवल औरंगज़ेब को यह जताने का है कि तू मज़हबी नुक्ते से बुतपरस्तों को हानि पहुँचाता रहता है, इस समय अपने मतलब के लिए उनकी मदद कर रहा है मेरे विरुद्ध–मैं जो मूर्तिपूजक नहीं हूँ हाँ बल्कि मूर्तियों की पूजा का खंडन करने वाला हूँ। इस शेर में औरंगज़ेब को मतलब परस्ती का उलाहना है कि वह किसी भी उसूल का पाबन्द नहीं, चाहे वे उसूल अपने आप में बुरे हों चाहे भले। (शेर ९५-९६)

२२. इस पत्र में दो एक बार शत्रुओं की फ़ौज को दहलक (दस लाख) कहा है। इससे दस लाख की पूरी गिनती से मतलब नहीं है, भाव बेशुमार से है। रिवायतें बताती हैं कि १३-१४ मील तक फौजें, मज़दूर चरवाहें, जंगम समाज (विचरने वाला टोला) और लुटेरा देशवासी आ पड़ा था सो दस लाख की आवाज़ ठीक है। (शेर ४१ और १९ के नीचे वाला नोट भी देखें)।

२३. फिर इस सारे पत्र में उस पर प्रकट किया है कि तेरा फर्ज़ अभी भी नहीं समाप्त हुआ। जो कुछ सौगन्ध तोड़कर तेरी ओर से और तेरे जासूसों आदि की ओर से वादा ख़िलाफ़ी हुई है उसको पलटने का अभी समय है और तेरा फर्ज़ है उसको धर्म, न्याय और नीति तीनों नुक्तों (बिन्दुओं) से सफल करे। (शेर ५३-५४)

२४. फिर इस पत्र में से गुरू साहिब का अकाल पुरुष पर भरोसा कमाल का सिद्ध होता है, उसका गुणगान भी कमाल का है। उसके साथ प्यार और विश्वास का उनका संयोग बहुत ज़ोरदार साबित होता है। पातशाह को दौलत पर गर्व है और आपका विश्वास साईं के आधार पर है और वह यकीन कामयाबी प्राप्त कर के नहीं सख़्त दुख मुसीबतें और बिछोड़े झेलकर ज्यों का त्यों है। यह यकीन मात्र ही नहीं बल्कि ईश्वर उनको अपरोक्ष दिखाई दे रहा है फिर अपने ईश्वर अकाल पुरुष और मुसलमानों के ईश्वर 'यज़दां' को एक कह रहे हैं। (शेर १०५-१०६)

२५. फिर औरंगज़ेब को उसी ईश्वर के ईश्वरत्व, शहंशाहों पर भी उसकी कुदरत और ताकत बताकर मरकर उसके दीन अनुसार उसकी ओर से इंसाफ होना और सत्यवादियों की क़द्र होनी आदि उपदेश देकर सत्यता की ओर और नेकी की ओर प्रेरित करते हैं, जगत की असारता का नज़ारा बताते हैं और उसकी रहमत प्राप्त करने की प्रेरणा करते हैं। (शेर ६८, ६९, १०७, १०८)

२६. बैराड़ सभी गुरू के सिक्खे थे। (शेर ५९)

* * *

औरंगज़ेब के चरित्र की तसदीक (प्रमाण द्वारा पुष्टि करने की क्रिया, गवाही) और इतिहासकारों से।

शेर नं० १३, १४, २३, २४ में औरंगज़ेब की कुरान पर कसम/सौगन्ध खाने की बेएतबारी का ज़िक्र है, इस सम्बन्ध में नीचे लिखी तवारीख़ी गवाहियाँ जो औरंगज़ेब की सौगन्धें खाने सम्बन्धी और इकरार तोड़ने के सम्बन्ध में हैं, पाठकों के लिए दिलचस्प होंगी–

१. "(औरंगज़ेब की ओर से) बहुत से ऐसे अहकामात भी दिए गये जिससे उसकी अपनी मतलब बरारी होती थी, मसलन लोगों को यह कहा गया कि बेशक झूठी कसमें खा लो और इस तरह से गिरदोनवाह की सल्तनतों में बग़ावत की आग भड़काकर लोगों को अपनी तरफ मिला लो और जब काम निकल आये तो दस फुकरा को खाना खिला दो और खाह कुरान की हज़ारों कसमें खाकर भी तुमने वादे क्यों न किये हों तुम सबसे बरी हो जाओगे।" (स्टोरिया डोमोगर, जिल्द ३, भाग २, पृष्ठ ५)

२. (गोलकुण्डा के बादशाह ने औरंगज़ेब की चढ़ाई की ख़बर पाकर) औरंगज़ेब को पैग़ाम भेजा कि 'आप जंग न करें मैं अपने आप को हुज़ूर को दीगर हुक्काम और सूबेदारों की तरह समझता हूँ और इसी हैसियत से गोलकुण्डा पर कब्ज़ा रखना चाहता हूँ'। इसके जवाब में औरंगज़ेब ने उसे कहलवा भेजा कि 'आप फिक्र मत कीजिए, आपकी बादशाहत को कोई कुछ नहीं कहेगा, हम सिर्फ 'गुलबर्गा' तक जाना चाहते हैं, जहाँ औलिया लोगों की मज़ारों पर दुआ करने और मिन्नत मानने की ख्वाहिश (इच्छा) है।'

शाहे गोलकुण्डा ने इसके वचनों को सच जानकर इसे पाँच लाख रुपये मज़ार पर फुकरा को बाँटने के लिए भेजे, जिसे वसूल करके औरंगज़ेब ने बजाए गुलबर्गा की ओर कूच करने के सीधा गोलकुण्डा का रुख किया....।' (स्टोरिया डोमोगर, पृष्ठ ३२०)

२. औरंगज़ेब ने जिस समय कुछ तलवार से और कुछ धोखे फरेब से सल्तनत बीजापुर पर कब्जा कर लिया.....' (स्टोरिया डोमोगर, पृष्ठ ३१६)

४. (मुराद बख़्श) जिसको पुरफरेब आलमगीर (औरंगज़ेब) ने यह बात बताकर कि वह दाराशिकोह की लड़ाई के बाद मक्के और मदीने चला जायेगा और अपने बेवकूफ भाई (मुराद बख्श को) सल्तनत और कामयाबी की मुबारक और बादशाही की उम्मीद देकर तसल्ली और दिलासे से खुश रखता था और वह (मुराद बख्श) बेवकूफ मक्कार भाई औरंगज़ेब के फरेब में आकर नि:शंक उसके पास आता जाता था। उसके शुभचिन्तक उसकी इस बेमौका आने जाने की सख्त रोक करते थे, परन्तु वह अपने मक्कार भाई की बातों और वचन इकरार के कारण इससे किसी तरह की बुराई की आशा न रखता हुआ उनकी (शुभचिन्तकों) की नसीहत नहीं सुनता था। दारा शिकोह की पराजय के बाद सफर में जब कि वह दारा शिकोह के पीछे जा रहा था, इस बदनसीब (मुराद बख्श) को भी (औरंगज़ेब) ने कैद करके ग्वालियर के किले में नज़रबंद कर दिया।' (सैरुलमुताखीन, पृष्ठ ३३८)।

५. वह अपने भेद को निहायत छुपाये रखता था, और मक्कारी और रियाकारी (कपट) के फन में तो कमाल उस्ताद था। (बर्नियर (उर्दू तर्जुमा) पृष्ठ १७)।

६. कहा जा सकता है कि आनन्दपुर के जंग की तफसील से औरंगज़ेब को क्या तालुक्क था? परन्तु इतिहास बताता है कि वह अपने जंग में राज प्रबन्ध की तफसील आप हल करता था, यहाँ तक कि परवारी और क्लर्क के चुनाव में भी उसका हाथ होना हैरानी की बात नहीं। ऐलफिन्स्टोन अपने इतिहास के पृष्ठ ५४१ पर लिखता है:-

He alone conducted every branch of this government in the most minute detail. He planned campaigns and issued instructions during their progress.......his letters embrace measures for keeping open the roads in the Afghan Country, for quelling disturbances at Multan & Agra.

७. ऐलफिन्स्टोन पृष्ठ ५४५ के फुटनोट में 'मुलतान' के मामलात से संभावना गुरू गोबिन्द सिंह जी और सिक्खों के मामलात की निकालता है। इस प्रकार ज्ञात हुआ कि आनंदपुर युद्ध की तफसील भी औरंगज़ेब की गिनती में थी।

* * *

अनन्दपुर तों दीने* तक दे मुकामात
जिथे जिथे गुरू साहिब जी ने दम लीता,

---

* यह ज़फरनामा कहाँ लिखा गया? सारे इतिहासों में ज़फरनामा दीने लिखा गया बताया है, परन्तु ज़फरनामे में लिखा है कि हम कांगड़ ठहरे हुए हैं। कांगड़ वह स्थान है जहाँ छठे गुरू का तुर्कदल के साथ युद्ध हुआ और जहाँ के रईस रायजोध ने एक हज़ार अपने साथियों सहित गुरू जी की सहायता में जंग किया था। यह युद्ध १६८८ में हुआ था, जिसमें गुरू जी की फतह हुई थी। इस नगर के बसाने वाले रायजोध का बुज़ुर्ग सहर मिट्ठा था, जिसकी एक पोती अकबर के साथ ब्याही गई थी। जिससे १२० गाँवों का तालुक्का अकबर की ओर से इसको मिल गया और तब से कांगड़ इस तालुक्के की मानो राजधानी थी। दीना कांगड़ से एक मील उत्तर को कांगड़ की भूमि में नया बसा था (सं॰ १७२० वि॰ में) और रायजोध के तीन वंशज-जो दशम पातशाह को मिले-तखत मल, लखमीर और समीर थे। एक भाई दीने रहता था और दूसरे दो कांगड़। जब साहिब मधे आए तो तीनों भाई गुरू जी को सम्मान सहित ले आये और इतिहासों नें बताया है कि दीने में ठहराया। इस प्रकार दीने ठहरना, कांगड़ ठहरना जहाँ बाकी के दो भाई रहते थे, वैसे एक ही बात है, जैसे सुल्तानविंड ठहरना अमृतसर ठहरना कहा जा सकता है। ज़फरनामा कब लिखा गया? गिनती करने पर श्री गुरू जी का आनंदपुर छोड़ना ६-७ तारीख़ पौष की संवत् १७६१ में पड़ती है। यहाँ से चलकर दीने पहुँचने तक माघ चढ़ गया प्रतीत होता है। दीने का ठहरना गुरू जी का लगभग अढ़ाई महीने का रहा। इसलिए हो सकता है कि यह १७६१ संवत् के माघ या शुरू फाल्गुन में भेजा गया हो, इसके रवाना करने के बाद गुरू जी यहाँ से चल पड़े और कोट कपूरे आदि अनेक स्थानों से होते हुए खिदराणे की ढ़ाब पर पहुँचे, जहाँ सूबा सरहिन्द चढ़ाई करके आ पहुँचा। यह युद्ध वैसाख १७६२ के लगभग हुआ।

इसके बाद नौ दस महीने महाराजा का ठिकाना दमदमे साहिब है वहाँ से जब राजपूताने चले गये तो दया सिंह जी वापिस आकर मिले। १७६३ के माघ में औरंगज़ेब का देहांत है (फरवरी १७०७)।

कुछ समय ठहरे, रात या कुछ दिन गुज़ारे, उनके नाम क्रम से ऐसे हैं: लगभग सारे इन स्थानों पर गुरुद्वारे या निशान अब तक कायम हैं–सरसा नाले का किनारा–जहाँ शत्रु दल पीछा करके आ पहुँचा और हमलावर हुआ, जहाँ उदय सिंह जैसे शूरवीर शहीदियाँ प्राप्त कर गये। रोपड़, चमकौर, जहाँ सारा दिन युद्ध मचा। जंड साहिब, झाड़ साहिब। माछीवाड़ा, घलाल, लला, कुबा, घुघराली, कटाणी (देगसर गुरुद्वारा), रामपुर (रेरू गुरुद्वारा), कणेच, आलमगीर, जोध, मोही, हेहर, कमालपुरा, लम्मे, सीलोआणी, रायकोट, माणू के, चकार, तखतूपुरा, मधा, दीना, जो कांगड़ की ज़मीन में कांगड़ के पास मील भर की दूरी पर, उसी खानदान का स्वामित्व था और जहाँ एक भाई रहता था। यहाँ ही आपके ठिकाने वाले स्थान पर लोहगढ़ नामक गुरुद्वारा है।

गीत (तर्ज़ = गज़ल)

महक कलग़ी वालड़े दी ओस थां तो लैके आ।
ऐ सबा! चमकौर जा धूड़ी दे गल लग लग के आ,
महक कलग़ी वालड़े दी ओस थां तों लै के आ:-
होलीआं जिस थां ते सुहणे नाल जिंदां खेडीआं,
अतर ते अम्बीर जिस थां है अजे तक फैलिआ।'
पुत्तरां दे 'फुल शगूफ़े' ख़ून हो जिस थां खिड़े,
मित्तरां दा गुले लालह रत्त हो सी टहिकिआ।
'आपा नुछावर' दी कली जि थां बली हो खिड़ पई,
गुंचह सी दिलवारने दा जिस जगह ते मुशकिआ।'
'बुलबुल' ने जिस थां ख़ून दे 'बाज़ां' दी मारी मुशक सी,
'अतर-गुल' हो लहू जिसदे 'महक डब्बा' खुहलिआ।
इश्क दी रोशन शमा नूँ जिस जगह परवानिआं
ख़ून अपणे दे फुलेलीं वध तों वध सी पालिआ,
ज़ुल्म दी बू बास नूँ कुरबानीआं दे अगर ने
अमन दे बूटे तले कर खाद सीगा डालिआ।
हां जिस जगह सी उग पिआ उह बीज प्यारां वालड़ा,
जिस थली नूँ सी बली ने 'बाग-महकां' साजिआ,
जिस नूँ तशद्दद दे लइ सिंज सिंज के सी पालिआ।
उस बली दी महक हां तूँ ऐसबा अज लैके आ।
वंड दे विच खालसे करदे सुगंधित सब्भ नूँ
'प्यार पलटां' विच लपेटीं ऐसबा! तूँ सारिआं।
महक कलग़ी वालड़े दी लया सबा चमकौर तों
'वैर-ग़फ़लत' विच पिआं नूँ दे सुंघा ते होश लिआ।
कर मस्त सभ नूँ प्रेम विच, दे झूम 'आपा-वार' दी
रस रंग ला दे प्रेम दा, प्यारे दी गोदी विच बिठा।

❒ ❒

८१ मुक्तसर युद्ध*

सरहिन्द से वज़ीर खाँ के फिर हमला करने की संभावना समझकर गुरू जी ज़फरनामा भेजकर आप दीने से विदा होकर आगे को चल पड़े यह विचार करके कि यहाँ घमासान न मचे, और आगे चलकर हम भी प्रबन्ध अच्छा कर सकेंगे। दीने से चलकर जलाल गाँव होते हुए कई और गाँवों में विचरते, ठहरते, उपदेश देते, वीरों को चुनते भगते गाँव गए जो माई बहिलो के पोते भाई भगते के नाम पर बसा था। भगते के पाँच पुत्र थे, उन्होंने एक तैयार घोड़ा अर्पित कर माथा टेका। तीन दिन यहाँ रहकर गुरू जी अनेक स्थानों पर घूमते उपदेश करते, साथ में जंग का सामान और मर्द इकट्ठे करते, एक जंगल में जा निकले। यहाँ कुछ ठहरकर बाहींवाल सरवन आदि स्थानों से होते हुए आप कोट कपूरे जा निकले। यह एक ताल में बढ़ी हुई अंतरीप सी पर बसा था। जो चौधरी कपूरे ने अपने नाम पर वि० १७१८ के लगभग बसाया। कपूरा गुरू का सिक्ख था, पहले भी आनन्दपुर घोड़े आदि भेंट स्वरूप भेजा करता था अब भी दर्शन के लिए भेंट लेकर आया। सतगुरू ने कहा, कोट का कब्जा हम कर लें और वज़ीर खाँ जो हमारे पीछे आ रहा है, उसको यहाँ जंग के हाथ दिखायें। परन्तु कपूरे ने न की कि मुझे तुर्कों से डर लगता है जो फाँसी न लगा दें। सतगुरू बोले–"अपना भय ही स्वरूप धारण कर अपना यम बन जाता है। भावी ने करना ही ऐसा है।" गुरू जी यहाँ से चलकर चार पाँच मील दक्षिण पूर्व दिशा को ढिल्लवाँ गाँव में जा उतरे, यहाँ सोढी कौल पृथीए की वंश का बताया जाता है कि एक बुजुर्ग बहुत आदर के साथ आकर मिला।

फिर सतगुरू जी मलूके और कोठे के वन में ठहरते हुए जैतो आये। यह जगह आजकल नाभा रियासत में है, परन्तु साथ-साथ सारे फरीदकोट का राज्य है। कहते हैं कि चौधरी कपूरा यहाँ आ मिला और सतगुरू को कहने लगा कि मेरा श्राप बख़्श दो मैं तुर्कों से डरता हूँ, राजपाट छोड़ नहीं सकता, इसलिए क़िला दे नहीं सका। भाई मान सिंह जी पास बैठे थे, सतगुरू जी उधर देखकर बोले–"मैं वर श्राप में क्यों, सबसे बड़ा श्राप है भय। (कपूरे की ओर देखकर) निर्भय हो जा। तूने निर्भय होना नहीं है, तेरे भय ने प्रत्यक्ष होकर तुझे लेना है, इसीलिए हमने आदमी का आदर्श 'खालसा' में प्रगट कर दिया है:- 'भै काहू कउ देत नहि, नहि भै मानत आनि'। कोट तेरा हम छोड़ आये, भयभीत मन वालों की मदद की हमें ज़रूरत नहीं। हम अपने पिता का हुक्म पूरा करने आये हैं। क़िला नहीं मिला तो उसका हुक्म है, मैदान में लड़ो, मैदान में लड़ेंगे। हार जीत उसकी है, हमारा धर्म

* यह प्रसंग इस संचय के लिए माघ सं० गु० ना० सा० ४५६ (फरवरी १९२५) में लिखा गया था और उसके बाद ३ पौष सं० गु० ना० सा० ४५७ (१७ दिसम्बर १९२५) गुरुपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

उसके बताये हुक्म पर चलना है। हुक्म है अभय होकर लड़ना। मरना, बचना सब बापू जी के हाथ में है। इसलिए मौज़ें कर कपूरिया। तू अभी खालसा नहीं सजा। अगर बचना है तो निर्भय हो।"

कहते यह भी हैं कि यह वार्त्तालाप जैतो का नहीं, परन्तु ढिल्लवाँ का है। वहाँ कपूरे ने महाराज का उपदेश सुनकर शरण ली, पुत्रों और पौत्रों* को अमृतपान करवाया और आप भी किया, सोढी कौल ने भी अपने पौत्र को अमृतपान करवाकर अभय सिंह बनाया। गुरू जी ने आज्ञा की कि चौथे सतगुरू जी ने जो पृथीचंद को 'मीणा'+ कहा था अब उनकी वश जो अमृतपान कर ले मीणे के दोष से मुक्त की गयी। जो अमृतपान करे वह गुरू का सिक्ख, सारा पंथ उसके साथ शंकारहित होकर व्यवहार करे। कपूरे को भी सतगुरू ने कहा कि तेरी वंश राज्य करेगी, खंडा और एक ढाल भी उसको बख्शी। दोनों सामान अभी तक फरीदकोट के राजघराने में सम्मान के साथ रखे हैं।

इसी इलाके में विचरते हुए एक दिन भोर गाँव के बख्शा सिंह ने ख़बर दी कि वज़ीर खाँ आप फौज लेकर आ रहा है और दो चार दिनों में पहुँचने वाला है, उसके साथ लगभग ५ हज़ार फौज है। सतगुरू ने कपूर सिंह को कहा कि अपना कोई विश्वास वाला आदमी इस इलाके का भेदी दो जो हमें खिदराणे की ढाब पर पहुँचा दे। कपूर सिंह ने 'खाने' नाम के बैराड़ को कुछ सवारों सहित साथ भेजा कि सतगुरू जी को खिदराने पहुँचा दे, परन्तु आप युद्ध में हिस्सा न ले, हो सके तो सतगुरू जी को भी जंग से रोकता जाये। यहाँ से चलकर गुरू जी सनअर गाँव पहुँचे। यहाँ अतरा, चतरा, सतरा तीन भाई जो बहुत निर्भय योद्धा थे और जिनसे देश डरता था, परन्तु जो 'भै काहू कउ देत नहि' के नियम के ज्ञाता नहीं थे, अमृतपान करके खालसा सज गए और सतगुरू के साथ चल पड़े। फिर 'रामिआणे' गाँव में ठहरे, यहाँ एक जट्ट@ को गुरू जी ने कहा, "डेले न खा, फेंक दे, ये कड़वे हैं", परन्तु उसने कुछ रख लिये और थोड़े फेंके। सतगुरू ने कहा, "भोले बंदे! हमने तो मालवे (इलाका) का अकाल काट दिया था, जिससे यहाँ गेहूँ और सुकाल हो, परन्तु तूने थोड़ा रख ही लिया, अच्छा!"

इस आनन्द के रंग में खेलते, निर्भयता के सरदार और आगे बढ़े और एक उजाड़ में डेरा जा डाला।

इधर पंजाब में आनन्दपुर, चमकौर, सरहिन्द के 'साके' प्रसिद्ध हो चुके थे, घर-घर और गाँव गाँव सिक्खों में पीड़ा और चर्चा हो रही थी। आखिर एक बड़ा टोला खालसों का तैयार होकर 'मालवा' को, सतगुरू की ओर, चल पड़ा। इनमें वे भी शामिल थे जो आनन्दपुर के क़िले में सतगुरू की आज्ञा के विरूद्ध क़िले में से चलना अच्छा समझते थे

---

* कोई-कोई कहता है कि कपूरे चौधरी ने अमृत, गाँव सरिये वाले में, पान किया था।

\+ कपटी (जो मन के छल को प्रगट न होने दे)।

@ एक जाति।

और जिन्होंने 'बेदावे'* भी लिख दिए थे, ऐसे पुरुषों में से बहुत तो मारे गए थे, परन्तु जो बचकर घरों को पहुँचे थे, घर वालों ने किसी को मुँह नहीं लगाया और वापिस भेजने का प्रबन्ध किया, साथ में और भी टोले बनाकर चल पड़े। लाहौर से कुछ समझदार पातशाह के साथ समझौता करने की तजवीज़ पेश करने के लिए राय करके चल पड़े। ये सभी श्री गुरू जी को 'रामिआणे' से आगे खिदराणे के समीप जाकर मिले। वहाँ सतगुरू के सामने उपस्थित हुए। पहली बात तो बेमुख हुए लोगों ने अपना पश्चाताप प्रस्तुत करने की की। दूसरी बात नये आये सज्जनों नें उनकी सिफारिश की और तीसरी बात जिनमें लाहौर के समझदार भी थे, पातशाह के साथ सुलह वाली पेश की।

स्थिर, अजेय चेहरा सतगुरू जी का कड़ा हो गया, तन गया, निगाह बासमान की ओर उठ गयी, नेत्र मुँद गए और फिर नीचे देखा, संगत की ओर देखा, इलाही रंग वाले ओंठ 'गरजते शेर वाली' ध्वनि में खुले – "सिक्ख मेरे और मैं सिक्खों का हूँ। गलती इंसानी स्वभाव है और साईं माफ करने वाला है। परन्तु रण में, भंयकर रण में पीठ देना खालसा का काम नहीं, खालसा अभय है। हाँ, पातशाह के साथ सुलह! मेरी किसी के साथ लड़ाई नहीं, ज़ालिम जुल्म करता है, प्रजा की पीड़ा दरगाह में पहुँची है, मैं उस पीड़ा का हरण करने के लिए भेजा गया हूँ। मैंने 'प्रजा की पीड़ा का हरण करना है'। मैंने जंग क्या और सुलह क्या–प्रजा का बोझ दूर करना है, जुल्मों के आगे ढाल बनना है शमशेर होकर। मेरी शमशेर हो रहे जुल्म के आगे ढाल है, और हुक्म में है, आप आओ परीक्षा दो, हुक्म में चलो, फतह अकाल पुरुष की है, हमारा काम हुक्म है। जो आपकी मर्ज़ी है, वह भय की पुत्री है, हुक्म से अनजान है, वह आगे गुरू अर्जन देव जी के समय, गुरू तेग़ बहादुर के समय कुछ नहीं कर सकी, अब क्या करेगी? ज़ालिम अगर नेक नसीहत से सुधर जाये तो बड़ी ताकतों को प्रबल यत्न क्यों करने पड़ें? मुझे दुख नहीं आनन्दपुर के सुखों का, पुत्रों की शहादत का, माता के वियोग का, प्यारे बहादुर सिंह पुत्रों के शहीद होने का। मुझे दुख है कि ख़ालिक की ख़लक दुखी है, मुझे चिन्ता है कि दुनिया का दुख कैसे दूर हो? अब

* आनन्दपुर में जिन मझैलों ने 'बेदावा' लेना मान लिया था उनकी गिनती का पता नहीं, परन्तु जिन्होंने नहीं था माना और सन्मुख सेवा में हाज़िर रहे वे भी बहुत थे। यह बात ग़लत है कि आनन्दपुर से गुरू जी के साथ केवल चालीस सिक्ख सन्मुखिये निकले थे। चालीस तो उस समय की गिनती थी जिस समय कि चमकौर की गढ़ी में दाखिल हुए थे, क्योंकि कितने तो क़िला आनन्दपुर में से निकलने के बाद दुश्मनों के अचानक आ चढ़ने से शहीद हुए। कितने सरसा के किनारे सतगुरू के आगे चले जाने पर साहिब अजीत सिंह की अधीनता में लड़ते शहीद हुए और फिर वह दस्ता कितना होगा जिसने साहिब अजीत सिंह को सरसे नाले से पार कर सतगुरू की ओर दौड़ाया और आप दुश्मन को रोक कर खड़े हुए और कई घंटे लड़ते हुए एक-एक करके कट मरे। कितने रोपड़ शहीद हुए। इनमें से पाँच सिंह सवार चमकौर की ओर सतगुरू को ख़बर देने के लिए भेजे गये थे कि अब पीछे रोक खत्म हो रही है और आप यत्न कर लें। इस प्रकार सतगुरू जी के साथ कई सौ शूरवीर सिंह सन्मुख और जां निसार निकले थे, जिनमें माझे के सन्मुखिये भी थे जो अत्यधिक थे। चमकौर में जो चालीस गये थे, वे सभी कई सौ के जत्थे का बकाया थे जो उस घोर संग्राम की रात बच रहे थे। सतगुरू जी ने आप ज़फरनामें में जो चालीस की गिनती बताई है वह चमकौर की गढ़ी में प्रवेश हुए चालीस सिक्खों की गिनती दी है।

एक ही इलाज है कि शांति रस की शमशेर ज़ुल्म की शमशेर को काट दे। राजा लोग अभिमान रहित (निराश्रय) हो चुके हैं, प्रजा मुर्दा हो चुकी है, एक शांत रस की शमशेर जीवित है। हुक्म के आगे शीश हाज़िर हैं तो आओ। .... आपकी शिक्षा की मुझे ज़रूरत नहीं, मेरा अकाल पुरूष है। आप सिक्ख हो तो शिक्षा मानो, आगे बढ़ो, नहीं तो जहाँ चौरासी बसती है जाओ वहाँ बसते। ख़ालसा तो नाम जपेगा और हुक्म पर चलेगा।" बुद्धिमानों ने जो-जो दलीलें इस समय पेश करनी थीं, वे सारी रह गयीं। दाता ने ये 'वदाण'* की चोट वाले स्थायी वाक्य कहकर, हाँ देवलोक के ज्ञानी के, देवलोक की रोशनी में चलने वाले ने, इंसानी दिमाग़ी रोशनी पर अपनी तीखी रोशनी से चकाचौंध डाली और आगे को कूच किया। आप तो खिदराणे की ओर बढ़े और पीछे पंजाब से आये इस टोले में (जनसमूह) में विचार आरंभ हुआ। विचार बढ़ती और समय बहसों पर खर्च होता, परन्तु थोड़ी देर में ही अचम्भे के साथ फ़ैसला हो गया। एक शूरवीर देव कद पतला, परन्तु हड्डियों से मज़बूत, चेहरे का जलाली और दिव्य, गुरू घर की विद्या का बहादुर सिंह उठ खड़ा हुआ, तलवार खींच धरती पर लकीर निकालकर खड़ा हो गया। 'जो बोले सो निहाल-सति श्री अकाल'। आगे बढ़े वह तरे, अड़े वह झड़ जाये, बढ़े दिल लड़े, जो झुके वह मुड़े, सिर धड़ की बाजी खेले वह जो खालसा हो। यह शरीर तो हुक्म का बंदा हो गया है। बड़े हुक्म का पता सतगुरू को है, सतगुरू के हुक्म का पता हमें पड़ गया है। सतगुरू ने जंग तय किया है, जंग हुक्म है। इसलिए जो खालसा है, जिसने शीश देना है, लकीर फाँद ले।" चार सिंह और लकीर फाँदे और खड़े होकर ललकारते हुए बोले-"आज शीश देना है शीश"। फिर एक माई सांग (एक विशेष प्रकार की बरछी) हाथ में उठाये सुन्दर, सुडौल और शेर नुहार वाली लकीर फाँद कर बोली: "औरत (स्त्री) भी खालसा है भाइयो। और आज लड़ेगी सन्मुख, हाँ, हुक्म के पीछे सीस पर खेलेगी। बहन लड़ेगी, बढ़ेगी, मरेगी, भाई घरों को जायेंगे।"

इस प्रकार की 'प्यारे की पुकार' वहाँ अब लौटती हुई गूँजी, कि चालीस और लकीर फाँद आये+। चालीस और आये। मनमति मर गई, प्रधान हुक्म पर ध्यान केन्द्रित हो गया, निर्भय हो गये, खालसा खालसा हो गये। हाँ जी, अब और आगे आ गये। चेहरे लाल हो

---

* बड़ा हथौड़ा।

\+ यहाँ भी चालीस की गिनती चमकौर की चालीस वाली गिनती का भ्रम है। यहाँ टोला (जन समुदाय) कई सौ का था, केवल जिन मुखियों के नाम लिखे मिलते हैं, वे ४० के लगभग थे। एक ख्याल विचार योग्य यह है कि जितना जनसमुदाय यह आया था सारे का सारा सनद्धबद्ध सामान जंग के साथ सुशोभित था और घर से सतगुरू जी की सेवा में युद्ध करने आया था। महाँ सिंह जत्थेदार देश से ही स्थापित करके भेजा गया था, खर्च के लिए पदार्थ भी साथ था। मुख्य काम तो मुँह पर लगी कालिख़ को धोना था जो बेदावे के कारण मली गई थी। और वह धोने के लिए जंग में फिर अंगपाल होना यह घर से चलते समय कुदरती जज़्बा और विचार था इसलिए सारे जन समुदायं में से जो कई सौ का था और जिसमें मझैलों के अतिरिक्त पंजाब के कई इलाकों के सिंह थे, कोई विरला ही इस समय पीछे लौटे होंगे, पर आशा कोई नहीं कि कोई लौटा हो। सतगुरू जी की ललकार और महांसिंह की आपा कुर्बान करने की पुकार ने सभी को मोह लिया। भाई मागो की ललकार भी इसी समय पड़ी थी। इस जत्थे की गिनती, तैयारी और शूरवीरता का फल था कि कई हज़ार सेना वाला नवाब मुँह की खाकर मुड़ गया।

गये, लहू मानों टपक रहा है। अब खालसा लड़ेगा, मरेगा, हुक्म जो बापू जी का है, वही खालसा जी का कर्म है।

फिर पहले आगे आये सिंह जी–महांसिंह जी बोले:-

"हम तो गुर हित दै हैं प्राण। बिच संग्राम करैं अरि हान।
तुरक हज़ारहुं गुर के गिरद। को इस समै तजै हुइ मरद॥१६॥
एती भीर गुरू पर परी। हो सद हैफ तजहिं इस घरी।
जीवन पाइ करहिंगे कहां। जो प्रभु काज न ऐहैं इहां॥१७॥

अब महांसिंह जी ने अपनी जत्थेदारी में सतगुरू जी के पीछे कूच का हुक्म दिया। ये शूरवीरों का दल-एक बार विश्वास में हार खाकर फिर से जी उठे, तैयार बर तैयार हो चुके सिक्खों का दल-खिदराणे के सरोवर किनारे पहुँचा। सरोवर सूखा पड़ा था, गुरू जी वहाँ पहुँचकर सरोवर को सूखा देखकर आगे कूच कर गये थे। महां सिंह ने खिदराणा सूखा देखकर अपना दल खड़ा करके कहा कि यह समय है सच्ची सेवा का, यहाँ ही टिक जाओ और वैरी को यहाँ रोको, उसने इधर धावा करना है कि पानी का तालाब संभाल लूँ और हमने आगे से रोक की तो वह समझेगा कि गुरू जी यहाँ ही हैं, इसलिए संग्राम यहीं मच जायेगा और गुरू जी को आगे निकल जाने का या कोई और अपने दैवी ख्याल में प्रबन्ध करने का समय मिल जायेगा। इस लिए गुरमता (किसी विषय पर गुरू नियमानुसार सर्वसम्मति होना) करके वहीं डेरे पड़ गये। वहाँ बेरियों का भारी जंगल था, सिंहो ने बड़ी-बड़ी चादरें बेरियों पर डालकर ऐसी शक्ल रच दी जिससे दूर से तंबू नज़र आयें। इधर दस-दस का जत्था बाँटकर एक-एक जत्थेदार के अधीन करके अलग-अलग दाव पेंच के बढ़ने हटने और हमला करने के सामान झटपट सोचकर फैसला कर लिया।

जब टांगू* ने ऊँचे वृक्ष से तुर्क दल के आ जाने की ख़बर दी तो इधर से बंदूकों की बाढ़ छोड़ी गयी। जिससे दुश्मन को अपनी ओर खींच लेने का मतलब था कि कहीं किसी के कहने पर या अचानक शत्रु वहाँ न पहुँच जाये जहाँ गुरू जी हों। इनकी राय यह थी कि हम वैरी को अपने साथ उलझा लें, वश चले तो मार लें, अगर मर जायें तो भी यह पापी दल सतगुरू तक न पहुँच सके। इस प्रकार बंदूकों की आवाज़ सुनकर वज़ीर खाँ ने इधर रुख़ करके हमले का हुक्म दे दिया, पर आगे से कई ओर से बेरियों की ओट से गोलियों की बारिश आ गई। इधर उधर देखकर तुर्कों ने फिर गोलियों की बारिश बरसायी, परन्तु बेरियों और जंगल के कुदरती मोर्चे सिंहों को फायदे का दाँव दे गये। जब दोनों ओर बंदूकें चल पड़ीं तो उधर दान सिंह ने सतगुरू जी को कहा, "महाराज! वैरी ने हल्ला बोल दिया है"। सतगुरू बोले: "पता है सज्जन पुरुष! हल्ला बोल दिया और खालसे ने भी बोल बाला कर दिया है, आओ टीले पर चलो"। यह कहकर दाता जी जहाँ थे वहाँ से टीले पर चढ़ गये, जगह-जगह अपने शूरवीर खड़े कर दिये, आप सबसे ऊँचे स्थान पर वीरासन

---

* वृक्ष पर अथवा ऊँचे स्थान पर चढ़ाया आदमी, जो दूर से आते दुश्मन को देखकर ख़बर दे।

होकर कमान खींच ली। आज इस मैदान में फिर धनुष विद्या के जौहर खुलने लगे। ऊँचाई से देख देखकर और दरारों में से निशाने बाँध-बाँध कर लगे तीर बरसाने। किसी-किसी ठिकाने बैराड़ बंदूकची निशाने लगाने के लिए सतगुरू जी ने खड़े किये थे। इधर से तो तुर्क हमलावरों पर गैबी (गुप्त) आग की तरह तीर और गोली पड़ने लगी, बारिश की तरह बरसती नहीं, कोई-कोई परन्तु ताक कर मारी हुई, चुनी हुई और निशाने पर बैठने वाली। उधर से सीधी बारिश तीरों तुफंगों की खिदराणे से होने लगी।

पहला हल्ला तुर्कों का मुँह की खाकर रुक गया और वज़ीर खाँ ने अब पैंतरा बदला। छोटे-छोटे दस्ते बनाये और इधर-उधर बढ़ाये। आगे हर ओर कहीं न कहीं मोर्चों में सिंह तैयार थे। इसलिए तीर बंदूक की लड़ाई होती रही और बहुत अधिक होने के कारण यह लड़ाई वज़ीर खाँ के लिए अधिक दुखदायी नहीं हुई क्योंकि बहुत मरवा लेने उसके लिए कठिन नहीं था, परन्तु उसके लश्कर में अचानक गोली तीर कहीं दूर से आकर जत्थेदारों को बेधता था, जिससे उसको जल्दी-जल्दी अपना विभाग सुधारना पड़ता और जत्थेदारों के मरने से कष्ट होता, टीले का इसको पता नहीं चला। पर वह लड़ता रहा। इधर खिदराणे के सिंहों ने भी वह हल्ले बोले कि रहे साईं का नाम। आखिर बढ़ते-बढ़ते तुर्क ताल के निकट आ पहुँचे। अब खालसा को हाथों हाथ जंग आ पड़ा। शमशेरें खींचकर नेजे भाले संभालकर अपने हिस्से मुताबिक बढ़-बढ़ कर लड़े। अनेक योद्धाओं की मारकाट करते ज़ख्मी हो-होकर भी बहुत बल के साथ लड़ते-लड़ते टुकड़े हो होकर गिरते।

उच्छले छलंगी, गुरु के भुजंगी, दीओ ओज ऐसो, हजारान जैसो॥२९॥
महां कोप ठानै, गजं कीट मानै, बडे ओतसाहे, रणं शत्रु गाहे॥३०॥

एक पाँच योद्धाओं के जत्थे का युद्ध ऐसे वर्णित है:

पंचहुं बीर जुझारे मारि अनेक को।
कराचोल परहारे तुरक गिराइकै।
परे तुरंगम-भारे मुख अर चरन कटि।
गुलकां तीर सहारे भिदे सरीर सभि॥३१॥
निकसे प्राण सु डिग्गे सनमुख वैरीआं।
सभ शोणत सन भिग्गे बागे लाल है।
तजे न हाथों खग्गे इच्छा हतनि की।
घने घाव तन लग्गे मर कर गिर परे॥३२॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ ऐन १-१०)

उधर बंदूकें चलाने वाले सिंहों के हाल का नमूना इस समय ऐसा था:-

बद्री ब्रिंद मझारे* सूके सर बिखे।
थिरे सिंह तहिं भारे तुपक चलावते।

---

* बेरियों की झाड़ियों में।

उठे शबद कड़कारे गुलकां शूंकती।
लगें तुरक तन मारे गिरैं पवंगमहु॥३३॥ (गु० प्र० सू० ऐ० १-१०)

इस तरह जो जो दस्ता दुश्मन का बढ़कर नाल की ओर आता, इधर से दस आठ का दस्ता बंदूकें तीर ले आगे होता। जब तीर गोली खत्म हो जाते तब तलवारें खींचकर जा पड़ते। ये जानें वार कर लड़ रहे थे, बचने की आशा धारण कर फतह का ख्याल मन में लेकर नहीं लड़ रहे थे, इन्होंने तो लड़ना था और लड़ना था, और मरना था और मरने से पहले अधिक से अधिक को मारना था। इनके तेज, बल, कुर्बानी, वीरता के आगे तनख्वाहदार, बचकर लड़ने वालों ने कभी वह वीरता दिखा ही नहीं पानी थी, जो ये दिखा रहे थे। सिक्खों का जो दस्ता खत्म होता दूसरे ओर की अनगिनती के सामने मरता था, परन्तु गिनती करने पर एक-एक सिक्ख के बदले बीस-बीस, तीस-तीस तुर्क मरते और घायल होकर गिरते थे। इस तरह कई घंटे जंग मचायी लड़ते, मरते, मारते रहे, अंत में बाकी तेरह सिंह रह गये। ये इकट्ठे ही तेरह तलवारें खींचकर बढ़े और शत्रु पर जा पड़े:-

चले बीर सोऊ बडे ओत साहे,
भरे शसत्र मारे महा जंग माहे।
कढ़े म्यान तेगे गहे हत्थ ढाले,
चलाकी करंते सु छालै उछाले॥५०॥
झटा पट्ट जुट्टे लटा लट्ट होए।
सटा पट्ट सुट्टे कटा कट्ट जोए।
कटा कूट कट्टे चटापट्ट मारे,
खटा पट्ट खोटे हटा हट्ट हारे॥५१॥

इस तरह लड़ते ये आगे बढ़ गए और सेना में जा धँसे, बड़े-बड़े जत्थेदार को जो आगे आता ये चुन-चुनकर मारते। इस तरह लड़ते बढ़ते चले गये। अंत में इन्होंने अपने पवित्र शरीर टुकड़े-टुकड़े करवाकर अपने प्यारे सतगुरू पर से, पंथ पर से, देश पर से, सत्य पर से न्योछावर कर दिये। तुर्कों का इतना नुकसान हुआ कि कुछ हिसाब नहीं रहा, किस्से हैं कि पाँच हज़ार सेना में से पीछे मुड़ने लायक मुश्किल से दो हज़ार रह गये। अब यह देखकर कि न तो आगे से कोई दस्ता सिक्खों का लड़ने के लिए आता है न कहीं झाड़ झंखाड़ में से तीर-गोली आती है, नवाब आगे बढ़ा कि ताल पर कब्जा झटपट हो जाये। परन्तु बद-किस्मती से उसने आगे बढ़कर क्या देखा कि ताल सूखा पड़ा है, एक घूँट पानी का नहीं है। हैरान हुआ कि सूखी ढ़ाब (सूखे सरोवर) के लिए सिक्ख क्यों लड़ मरे? परन्तु खाली दिमाग़ वाले ज़ालिम को क्या पता था कि जीवित योद्धाओं के जंगी दाँवपेंच कुछ और तरह का मूल्य रखते हैं। नवाब ने ठंडा साँस लिया और कहा-"अफसोस! सेना भी मरवायी और पानी भी न मिला, पर हसरत मिट जाये, जो अल्लाह चाहे तो मिटेगी कि मुर्दा पड़े जनसमुदाय में से अब कलग़ीधर का कलग़ी वाला शीश मिलेगा, तलाश करो।" आप नवाब दूसरी ओर एक झाड़ी के पास गया, क्या देखता है कि एक मजबूत

लम्बी औरत बरछी लिए खड़ी है। इसने पहले ही युद्ध में बहुत हिस्सा लिया था, अब एक अपनी ओर बढ़े आ रहे पठान को बरछी से बींधकर एक ओर फेंककर आगे बढ़ी ही थी कि एक और तुर्क ने जो घोड़े पर सवार था, आगे बढ़कर तलवार चलायी, परन्तु उससे पहले स्त्री ने उसको बरछी से पिरोकर धरती पर गिरा लिया। इधर से एक और पठान आगे बढ़ा, इसने गतके बाज़ी में एक हाथ पलटने की क्रिया करके वार किया, चोट खाकर औरत गिर पड़ी, उसको गिरी समझकर पठान आगे होने लगा था कि उसके माथे में एक गूँजता तीर आ लगा, वहीं कायर सौ बरसों का हो गिरा। चारों ओर देखभाल हुई कि तीर कहाँ से आया है। आखिर में यह समझकर कि सिक्ख तो कोई बाकी नहीं है, यह कहीं से किसी अपने का ही तीर होगा जो दूर से भ्रम के कारण सिर आ गया होगा और यह समझकर कि औरत मर गयी है फिर तलाश शुरू हुई। परन्तु कपूर सिंह ने पहचान लिया था कि तीर यह मेरे सतगुरू का है। ताल में, ताल के किनारे, जंगल में, बेरियों झाड़ियों में दूर-दूर तक जहाँ सिक्ख मुर्दा या सिसकता पड़ा था, तलाश हुई। कपूर सिंह साथ था, जिस जिस शीश पर शक हो कपूर सिंह को दिखायें, वह सिर फिराये और कहे, नवाब जी, गुरू जी हाथ आने वाली हस्ती नहीं। वे साहिब कशफ लोग हैं। गुप्त ताकतें भी उनके वश में हैं, आप यत्न कर चुके हैं, परन्तु मुझे आशा नहीं कि वे लश्कर में मारे गये हों, जिसमें कि आप इस समय जीत हासिल कर घूम रहे हो।" नवाब ने घूर कर देखा, पर फिर कहने लगा 'बताओ अब चौधरी जी। पानी कहाँ मिले? सारी फौज में प्यास प्यास हो रही है। वैसाख का महीना है, ज़ख्मियों में कुरलाहट पानी की पड़ रही है। मश्के, चमरटे और चरसे जो खच्चरों बैलों के साथ लाये थे खत्म हो गए हैं, दिन ढल गया है, पानी का जल्दी इंतजाम करो।" कपूर सिंह ने कहा, "पातशाह! अगर तो आगे बढ़ना है तो पानी ३० (तीस) कोस पर है और अगर पीछे मुड़ना है तो पानी दस कोस के लगभग मिलेगा।" नवाब ने कहा कि बढ़ना तो आगे है अब पीछा कर के गुरू को पकड़ना है। एकदम इसी समय एक बहुत वज़नदार तीर (शूँ शूँ करता) गूँजता आया और नवाब के सामने खड़े एक तरबूज जितने सिर वाले मुगल के सीने में लगा जो धड़ाम से धरती पर गिरा। नवाब इस समय ताल के ऊँचे किनारे के आसरे था। कपूर ने कहा, "यह मरुस्थल है, पानी है नहीं, गुप्त तीर देख लो कोई न कोई सब के मर जाने के बाद भी आ पड़ता है। कब तक प्यासे रहोगे और आगे बढ़ोगे।" यह सुनकर नवाब ने ओंठ काटे, चारों ओर काँपता देखता डेरे आया, बाकी बचे सरदारों के साथ सलाह की। अंत में पीछे मुड़ना ही सही ठहरा। आज की मार काट को फतह कहकर और जीत का डंका बजाकर लश्कर पीछे मुड़ पड़ा। पानी के अभाव ने मुर्दों के दफ़न करने की भी फुर्सत न दी और ज़ख्मियों के लिए कुछ बैराड़ सेवादार छोड़े गये कि आराम से बंदोबस्त करके वापिस या डेरे के पीछे-पीछे पहुँचा दें। जब लश्कर शाही वापिस लौट चला तो उस टीले से श्री गुरू जी नीचे उतरे, आप घोड़े पर चढ़े हुए साथ प्यारे चलते सभी लोग खिदराणे आये।

आह! अब नज़ारा प्यारों का! आपा न्योछावर करने का आँखों के सामने है। कौन पड़े थे? मारे काटे टुकड़े हुए हुए? शीश कहीं, धड़ कहीं, बाँहें कहीं। कोई गोली द्वारा फटा पड़ा है, कोई शरीर लहूधार बह-बहकर सर्द हो रहा है। कोई तीरों से बिंधा सेह* की तरह पिरोया पड़ा है। कोई सेले द्वारा घायल हो तन तोड़ रहा है। कोई बेसुध है, आँखें आकाश की ओर लगी हैं, जान टूट रही और पिंजरा छोड़ रही है। आह, खालसे के पिता! पुत्रों के इस दर्शन को देख रहे हो। ये वे लाडले पुत्र हैं, जो गुस्ताख़ हो गये थे, बेअदब हो गये थे, टूटे पड़े थे, बेदावे भी हो गये थे। पर हाय! अंदर की लगी, टूटे हुए नहीं टूटे, पीठों के गये, मुँह मोड़ गए परन्तु दिलों में कोई कसक कसकती ही रही। घरों को गए, घर अच्छे नहीं लगे। घरों से फिर मुड़े, फिर आये, फिर बेझिझक हुए फिर झिझके, फिर ठस्सा खाया, पर हाय। अंदर की लगी वे मोह तारें जो अंदर से नहीं थीं टूटीं फिर ले उड़ीं। प्यारे की आख़िरी पुकार पर सदके (न्योछावर) कर ही दिया। हाँ, गुरू गोबिन्द सिंह! ये तेरे आशिक पुत्र हैं, बेदावे वाले पुत्रों का यह हाल है दावेदारों की करनी का कौन अंदाज़ा करे? ये तेरे वे पुत्र हैं जो पीछे हट-हट कर आगे बढ़े हैं। हाँ संसार तो इनको बहुत ही बुरा कहता है, परन्तु मूर्ख है जगत। देखो गुरू इनको कितना प्यार करता है। जिसने चमकौर तन के जाये (उत्पन्न किए) आँखों के आगे मरवाये और आँखों में नीर नहीं भरा, आज देखो उस पिताजी ने नेत्र भर लिए हैं। वह देखो महान योद्धा मूर्ति किस तरह द्रवित है, कैसे एक शीश पर झुके हैं, धूल पोंछी है, माथा चूमा है और कहा:- "मेरा पाँच हज़ारी लाल, शाबाश! पुत्र तेरे ऊपर नर्कों का दुख हराम किया।" वह देखो, एक तीर बिंधी लाश का शीश गोद में लेकर दुपट्टे के साथ पोंछते और कहते हैं, "मेरा तीस हज़ारी पुत्र।" देखो नेत्र भर आये, दैवी स्रोत आँखों से टप-टप गिरे और तीस हज़ारी की गालों पर पड़े। ओ सिक्ख, प्यारे सिक्ख! देख, तू मरकर निहाल हो गया। इस प्रकार उतावले जल्दी जल्दी हर सीस को प्यार और वरदान देते बढ़ते चले गये कि एक सिसकता सीस मिला। कमरकसे की बंदिश से पहचाना, ओह हो यह मेरा जत्थेदार है। सिरहाने बैठ गये, सीस गोद में ले लिया, अपने रुमाल से मुँह पोंछा, ओंठ आप खोले, पानी मुँह में टपकाया, एक घूँट चला गया। दूसरा और टपकाया, यह भी चला गया, और तीन घूँट डाले सारे अंदर चले गये। नेत्र खुल गये, होश लौट आई, उठने की हिम्मत नहीं, परन्तु कुछ देर में जीभ में बोलने का बल आ गया: 'आह, मेरे कलग़ीधर पिता! हाँ, मेरा पिता मुझे गोद में लिए मेरी ओर देख रहा है, कोई कोई नेत्रों का मोती मेरे ऊपर गिर रहा है। आह, सतगुरू बख्शिंद बापू! आह, पापियों के सहायक, बेमुखों के रक्षक, धन्य तू! यह कृपा। मेरा अंत सफल हो गया, तूने दर्शन दिए।'

कलग़ीधर–मैंने पहचान लिया है, बच्चा महां सिंह। माँग, कुछ माँग, समय कम है, माँग मैं दूँ और मेरी छाती ठंडी हो कि पुत्र की मैंने माँग पूरी की है, बच्चा माँग। महां सिंह ने इस समय काँपते हाथ इकट्ठे करके जोड़े और कहा "टूटी गाँठो"। सतगुरू ने कहा– "कुछ अपने लिए माँग"। महाँ सिंह ने कहा "पंथ के लिए, वीरों के लिए, मुझ जैसे

* एक जानवर।

मुरूताख़ पुत्रों के लिए दान दो, दान दो, दान दो, टूटी गाँठो, टूटी गाँठो, टूटी गाँठो।' सतगुरू के नेत्र इस समय वात्सल्य रस और सिक्ख के सिक्खी प्रेम से उछल आये। हैरान मेहर से ताक रहे थे कि महाँ सिंह के मुँदते नेत्र फिर खुले, फिर बोला: "हमारा लिखा कागज़ बुरा कागज़ फाड़ दो।" सतगुरू ने वह कागज़ जेब में से निकाला, महाँ सिंह को दिखाया, सतगुरू ने कागज़ फाड़ा, टुकड़े टुकड़े किया, टुकड़े हवा में उड़ा दिए। कहा "ले बच्चा महाँ सिंह, टूटी गाँठी गई।" हाँ जी महां सिंह ने देख लिया, कागज़ फट गया, टूटी गाँठी गई और श्री मुख से कथन हुआ–

"जाहु महां सिंघ जहिं ममलोक। बसहु सदा कब नहिं तहिं शोक।
दे कर प्राण कीन उपकार। तिसको फल तुह भइओ अपार॥३७॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ ऐ॰ १-१२)

अब महां सिंह ने एक लम्बी सुख की साँस ली और नेत्र मूँद लिये। ठंडे ठंडे नेत्र अंदर की ठंडक से शीतल हो गये, नेत्र मुंद गये, सदा के लिए मुँद गये, परन्तु खुल गये सदा के लिए इस देश के दूसरी ओर।

सूचना: ऊपर लिखे भाई महां सिंह जी जत्थेदार के अंतिम समय दिल का नक्शा, रुचि और इच्छा, कलग़ीधर के दर्शन और मेहर, आगामी कविता में कुछ अंकित हैं:–



८२ भाई महां सिंह*

भाई महां सिंह जी सच्चे शहीद की आत्मा अपने अंतिम श्वासों के समय इस प्रकार संवाद करती है। आत्मा (मानो देह को कहती है)–

हो ज़िन्दगी की कार चुक्की,
देश निज हुण चल्लीए।
दे आगिआ हुण देह प्यारी,
नाल खुशीआं घल्लीए।
धंन हैं तूँ धंन प्यारी।
धंन तैनूं आखीए।
उपकार तेरे सदा प्यारे
रिदे अपणे राखीए।
तूँ धंन हैं जिन्ह क्रिपा कीती
मैं जिहे इक नीच ते।
गुर सेव संदा समां दित्ता,
रक्खिआ जग कीच ते।
हां सेव कलग़ी वालड़े दी–
दास कोलों सुहणीएं।
लै, रोग बेमुख होण दा
हई कट्टिआ मन मोहणीएं।
हां वारने मैं तुद्ध दे,
तूँ सफल गुरू सुआरीए।
हुण देहु छुट्टी चलीए,
है वाट लम्मी प्यारीए।
है आगिआ हुण प्रभू जी दी,
पहुँच पईए घरां नूँ,
है सिक्क दरशन पिता दी,
उड चल्लीए ला परां नूँ।

---

* यह कविता 'सानूँ गुरपुरब करन जोगा किस ने रखिया' के नाम अधीन २९ पौष सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४३४ (११ जनवरी १९०५) में गुरुपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुई थी।

देह (मानों उत्तर देती है)–

हो तुरे जांदे लाल जी।
नहीं अटक सकदे ज़रा बी,
जी नहीं चाहे विछुड़ना,
मैं रोंवदी हां, करां की?
चल सकां नाहीं नाल मैं,
हां नीच मिट्टी अंध मैं,
छड सकां नाहीं संग सुहणा,
खांवदी हां रंज मैं।
हो तुसीं आतम रूप जी,
नित सदा ही अविनाश हो।
मैं नाशवंती बिनसदी,
विगड़ां कदी मैं रास हो।
विछड़नां मैं ना चहां,
मैं आपदे बिन मास हां,
सुरजीत हां मैं नाल लग्गी,
विच्छुड़ी मैं नाश हां।

आत्मा–

तूँ सफल होई सफल होई,
नहीं छुट्टड़ प्यारीए।
हुकम है गुर रब्ब दा ए,
किनें इस नूँ टारीए?
हां, टारीए नां धारीए ए,
धार के उठ चल्लीए।
हुण छड्ड छेती चल्लीए,
ते जाय पत्तण मल्लीए।
दे आगिआ हुण चल्लीए,
हुण चल्लीए, हुण चल्लीए,
हुण रहिण नाहीं बणे सानूँ,
चल्लीए, हुण चल्लीए।

देह–

इक सोच सोचो लाल जी।
है कौम टुट्टी गुरां तों,

इउं छड्ड टुट्टी तुरे जांदे,
चहो सद्दां धुरां तों*
है तुसां सेवा सिरे चाढ़ी,
आप सनमुख चले हो,
पर बेमुखाई है लिखी सो
तुरन नूँ क्यों खले हो?
हुण तुर चले हो आप प्यारे
कौम डुब्बी रही है,
है धंन सिक्खी आप दी की
सफल सिक्खी इही है?

आत्मा–

हां सच्च है, ए सच्च प्यारी,
दुख कलेजे रिहा है:-
मैं आप उठ हां चल्लिआ ते
पंथ टुट्टा रिहा है।
हां, धंन हैं तूँ देहि मेरी,
धंन तेरी सिक्खिआ,
जे गुरू आ हुण बाहुड़े
तां पाठ जावे लिक्खिआ।

(वाहिगुरू की ओर ध्यान करके)

हां प्रभू प्यारे सुणीं विनती
मौत रोकीं प्यारिआ।
हां भेज कलगी वालड़ा तूँ
भेज लाल दुलारिआ।

(गुरू का ध्यान कर के)–

देह दरस कलगी वालिआ! आ
बहुड़ वेले अंत दे,
हुण ढिल्ल दा कुछ समा ना,
आ वासते भगवंत दे।
हां चल्लिआ हां, बहुड़ सतिगुर
बहुड़ कलग़ी वालिआ!

---

* चाहो तैनूँ सद्दा धुरां दा आ गिया है।

तूँ आस पूरीं आप आ के
आउ फौजां वालिआ।
आ करीं औकड़ दूर मेरी,
सनमुखे आ कर लईं,
ते मेल लैणी टुटट् चुक्की,
मुल्ल साडी हर लईं।

(अपने आप से)–

हा! जिंद ना है तुरे मेरी
हुकम नूँ है टालदी।
जे हुकम मन्ने, कार सिक्खी
इस समें नहीं पालदी।
मैं तुरां? रहां उडीक करदा?
फस गिआ दोथौड़ हां।
ते झुकां जेकर इक्क पासे,
दूजिओं फिर चौड़ हां।

(फिर गुरू ध्यान में)–

ए तिल न वधणी उमर है, इस
समें सिर टुट जावणा,
उस समें नालों रता पहिले,
प्यारिआ तूँ आवणा।
हां सुरखरोई सिक्ख दी तद
होए कलग़ी वालिआ।
ते वीर मरिआं सारिआं दी,
बच जिन्हां ने पालिआ–
संदेस 'टुट्टी गंढ देवीं'
सुण लईं रखवालिआ।
कर दया आवीं गुरु प्यारे,
बहुड़ बहुड़न वालिआ।
इस फिकर दे विच सिक्ख सीगा,
पिआ घायल सोचदा,
है पीड़ अपणी चित्त नाहीं,
पंथ मेलण लोचदा,
है जान टुटदी कुड़क मुड़दी

सिक्ख नूँ परवाह ना,
'ऐ किवें सिक्खी जाए बख्शी'
रड़कदी ए चाहिना।
'मैं मेल जावां कौम टुट्टी
आप पहिले मरन तों
'ए रहे नाहीं विच्छुड़ी
गुरू संदी शरन तों।'
है बिनै करदा गुरू अग्गे,
पिआ धर सिर मूध है,
है लहू वगदा फट्ट चीसण
पर न इस दी सूध है।
हां, सूध है इस सिक्क वाली
दरस गुरू दा पा लवां,
ते चरन पकड़ां गुरू जी दे,
पंथ नूँ बख्शा लवां।
उह पंथ पालिक गुरू प्यारे,
प्यार करदे सारिआं,
हां, प्यार दे हर सिक्ख नूँ, जो
गिआ सीगा मारिआ,
आ सहिकदे दे पास बैठण
लहू पूँझण चिहरियों,
ते गरद झाड़न आप हत्थीं
धंन तेरी मिहर ओ।
हुण गोद अपणी सिक्ख दा सिर
आप चा के रक्खिआ,
फिर प्यार दे के नैण खोल्हे,
बिरद अपणा लक्खिआ।
फिर नीर चोइआ त्राण दित्ता
प्यार दे सुरजीतिआ,
ते अंत छिन दी लालसा नूँ
आप पूरा कीतिआ।
सिख नैण खुल्हे देखदे हन:-
सिक्क पूरी गयी है

जो चित्त विच मैं चितवदा सां
चितवनी उह लई है।
है अक्ख दे तिल विच गुर दा
रूप हुण परकाशदा,
है मिहर दा झलकार पैंदा,
प्रेम रंग विगासदा।
गुर होए बिहबल कहिण 'प्यारे
मँग जो तूँ चाहि है।
"जो चाहिंगा सो पाइंगा, घर
मैंडड़े नहीं नांहि है"।
उस धंन मुख सिक्ख धंन तों
बलिहार होवो खालसा।
ओ बुल्ह खुल्हे अंत दे, ओ
बोलदे की खालसा!
ओ आखदे की बुल्ल्ह पावन,
बोलदे की बैन है?
उस बोलणे दा खालसा जी
अज्ज तुहानूँ चैन है।
ओ बुल्ह मिटणे पहिलिओं
की बोलदे हन सोहिणा?
उह बोलणा सी अंत दा, अति
प्यार दा मन मोहिणा।
दो हत्थ निरबल नाल जुड़दे,
अक्खीआं विरलाप के,
ए मधुर बोली बोलदे, ते
राग मेल अलाप के।
ए बिनै आखण गुरू अग्गे,
वाज सुणीं न जांवदी।
ते कंन नीवें गुरू करदे,
वाज की है आंवदीः-
"इस टुट्टड़ी नूं मेल लेवो,
गंढ लेवो विच्छुड़ी।

" 'वेदावि पत्तर' पाड़ सुट्टो,
कज्ज लेवो उच्छड़ी"।
ए नरम धीमी वाज सीगी,
मलहम मेलण वालड़ी।
ए प्रेम दी सी रागणी,
सभ पाड़ मेलण वालड़ी।
ओ गुरू-हिरदा प्रेम वाला,
देख सिक्खी प्यार नूँ,
ओ द्रव गिआ हद लंघके, पिख
सिक्ख दी इस कार नूँ।
झट कड्ढ कागत खीसिओं
दिखलाई प्यारे सिक्ख नूँ।
ओ पाड़ दित्ता उसी वेले,
ठंड पाई सिक्ख नूँ।
फिर लाए छाती नाल सिर नूँ,
गुरू उस नूँ आखदे–
"तैं लई सिक्खी वासते, कुछ
मंग आपणे वासते।"
ओ मंगदा की? आप सी ओ
गुरू दा ते गुरू नूँ
उन सौंप दित्ता सीग आपा,
गुरू आसा पुरू नूँ।
ओ आखदा "हे गुरू देवो,
दान मैनूं अंत नूँ,
"हां मेल लेवो, मेल लेवो,
बख्श लेवो पंथ नूँ।"

गुरू जी–

"तूँ मेल लीती सिख प्यारे।
वित्थ रही ना रता है,
"ए धंन सिक्खी, धंन सिक्खी,
धंन सिक्खी मता है।
"तूँ जाउ सौखा पाए वासा
विच्च खास सरूप दे,
"सचखंड वासी होहु प्यारे
दरस कर प्रभ रूप दे।

"तूँ मेल तुट्टयाँ नूं लिआ तूँ
आप मिलिओं कंत नूँ"।
"हांसदा मिलिओ सदा मिलिओ
सदा ओस अनंत नूँ।"
फिर "धंन सतिगुर" सिक्ख आखे
मीटिआ मुख गिआ सी।
ओ नैण मीटे गए से,
जुट हत्थ दा खुल्ल पिआ सी।
ओ सिक्ख पूरा हो गिआ,
गुर गोद प्यारा वस्सिआ,
दरबार उज्जल मुक्खड़ा लै,
जा सरूपे वस्सिआ।

महां सिंह जी के देहांत के बाद सभी सिक्खों की देखभाल हो गयी, सभी को प्यार और वरदान मिले, एक एक की संभाल शूरवीर सतगुरू ने की। जितने शहीद हुए थे सभी की एक चिता तैयार की गई और सतगुरू ने आशीर्वाद देकर प्यारे पुत्रों के शरीर सफल किये। जिस समय चिता जल रही थी, आपने हुक्म दिया—ये मुक्त हुए मुक्ते, यह ताल अब खिदराणा नहीं, मुक्तसर है।

मुक्तों की यादगार रहेगी, शहीद गंज रहेगा, नगरी बसेगी, सरोवर लह लह करेगा (हरा भरा होगा)। अन्न धन बहुत होगा।*

इस समय एक सिक्ख ने आकर कहा: "सच्चे पातशाह! एक झाड़ी के पास एक माई का शरीर है, मरी नहीं प्रतीत होती, तुर्कों के साथ लड़ी है और घायल लगती है।" सुनकर गुरू जी मुसकराये और उधर गये। आगे माई गिरी पड़ी बेसुध थी, पास में वह तुर्क शरीर भी पड़ा था, जिसको मांई ने बरछी से पिरोकर फेंका था। पास में वह लाश भी पड़ी थी, जिसको वार करते समय टीले से आये आपके तीर ने पिरो दिया था। पास आकर सतगुरू ने कृपा दृष्टि से देखा, आशीर्वाद दिया, होश लौट आई, माई उठ खड़ी हुई। माई को ज़ख्म मामूली थे, सदमा खाकर बेसुध पड़ी थी। सावधान होकर सतगुरू जी के साथ चिता के पास आई। उसके घाव बाँधे गये, जल पिलाया गया। जंग का सारा वृतान्त माई ने सतगुरू को आप बताया कि आपके चले जाने के बाद कैसे गुरमता हुआ? कैसे सिंह आगे आये और कैसे अजेय बहादुरी के साथ कट-कटकर मरे? सुनकर सतगुरू जी के नेत्र कई बार प्यार से भर-भर आये और आशीष देते रहे। अंत गुरू जी ने भागो को महां सिंह की अंतिम करनी सुनाई। भागो की बहादुरी और करनी पर गुरू जी ने वर दिये और संगत में महिमा हुई।

सूचना: माई भागो की करनी और उच्चता का कुछ नक्शा आगामी कविता में अंकित है—



* फीरोज़पुर के जिले में यह ठिकाना अब मुक्तसर नाम का है। नगरी, मंदिर, सर सभी कुछ अब विद्यमान है और देश धन उपजाऊ हो गया है।

८३ माई भागो*

दुनीआं दी उंगल तों उच्चा दाग़ दोख तों खाली।
तेरा तंबू निक्का जेहा, देंदा पिआ दिखाली।
निंदा दी नहीं पहुँच ओस थां जिस टिब्बी तैं डेरा,
कुई उलाम्हां उड्ड न पहुँचे, उच्च टिकाणा तेरा।
तूँ लम्मी उच्ची ते भरवीं सूरत रंग जलाली,
तरसां वाली पर भै नाहीं, चढ़ी सच्च दी लाली।
सच्च उभरेंदा सीने तेरे, चिहरे सिदक चढ़ेंदा,
तोड़ निभावण वाला खेड़ा लूँ लूँ विच्च वसेंदा।
सज्जे खब्बे तक्कें नाहीं, पिच्छे मुड़ ना देखे,
अग्गे तांघ अगेरे रक्खे, अग्गा अग्गा वेखें।
'सच्च' 'सिदक' दो तारे तेरी अखीं अरशों आए,
नज़र उचेरी अरशां वन्ने, पक्की गए टिकाए।
टक बंन्हीं दोहां ते तूँ हैं वधदी वधदी जायें,
इक्को सांग हत्थ दी तेरी दुनीआं राह दिखाए।
भागो! तूँ भागां हैं वाली, बडे भाग हन तेरे।
भाग गए तैं पासों पापी पंज दूत चक डेरे।
नितरी तूँ, नित्तर विच थल दे सच्ची सांग घुकाई,
डुब्बे तरे, नित्तरे वीरन तिक्खी तेग़ चलाई।
तेरे सिदक-सितारे बीरा! किंने राह लगाए,
सच्चे यग, सिदकां यगवेदी, हस हस होम कराये।
तूँ चानण, सागर घर चानण, बड़िआं राह दिखायें,
तैं वल तक्क बचे कई बोहिथ, रस्ते जिनां खुंझाए।
तू मीनार, मुनारा चानण, तूं पांधीआं दा तारा,
अच्चुत+ सदा निरोल लिशकदा तेरा है चमकारा।

---

* यह प्रसंग ३ पौष सं० गु० ना० सा० ४४६ (१७ दिसम्बर १९१४) को गुरुपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ न खत्म होने वाला।

सूचना: मुक्तों का अंतिम संस्कार करके* सतगुरू जी आगे कूच कर गये। फिर नागे की सराय कुछ आराम करने के बाद नौथोहे गाँव जा ठहरे। जहाँ के हरीके गोत्र के जट्टों (जाटों) ने सरदारी के घमंड में अच्छी सेवा नहीं की परन्तु डोगरों+ ने रात पहरा अच्छी तरह दिया, इस पर खुश होकर डोगरों को ज़मीनों के मालिक होने का वर देकर गुरू जी आगे चले और रात वजीदपुर जा पहुँचे@। दूसरे दिन सैंकड़ों ने अमृतपान किया। यहाँ से फिर वापिस मुड़े और जिस स्थान को पवित्र करके मुक्तसर नाम दे आये थे वहाँ जा पहुँचे। प्यारे मुक्तों के दुसहिरे (मरने के पश्चात दसवां दिन) का अरदासा किया और दाह का स्थान बनाया। यहाँ से तीन कोस पर रुपाणे गाँव दक्षिण ओर जा ठहरे। भूंदड़ गाँव होकर दोपहर जंगल में आ टिके, जहाँ अब गुरू सर है। यहाँ से थेहड़ी जाकर रात काटी। सभी स्थानों पर कई कौतुक हुए, जीवदान हुए। थेहड़ी से हरीके, हरीके से कालझिरानी जा ठहरे। मालूम होता है कि मुड़कर मुक्तसर आना निशान कायम करने के लिए था और पास पास के गाँवों में घूमना पिछले जंगों में ज़ख्मी हुए सिक्खों की तीमारदारी और प्यार के लिए था जो प्यारों के घरों में सेवा और सुख पा रहे थे। इन गाँववासियों ने ज़ख्मी खालसे की सुध ली। अमृत प्रचार उपदेश करते आगे चले, पृथीचंद की वंश के सोढी आ मिले, सेवा भाव किया, अमृत पान किया, नौ दिन डेरा यहाँ रहा। यहाँ ही पंजाब की ढेर सी संगत और मुक्तसर के मुक्तों के सम्बन्धी फिर टोले बनाकर आ मिले। यहाँ से संगतों को विदा करके चले, एक टीले पर जा चढ़े, यहाँ से दो कोस आगे जंघीराणे गाँव गये, फिर साहिबचंद गाँव ठहरकर छतिआणे जा उतरे। दूसरे दिन वहाँ से चले, एक छोटे टीले के समीप मालवे के सिंह और बैराड़ों ने जो सतगुरू जी की फौज के सिपाही थे, अपनी तनख्वाह लेने की माँग की। तनख्वाह की माँग तो क़ई दिनों की थी, परन्तु माया (पैसा) न होने के कारण अदायगी नहीं थी हुई। प्रशाद पानी आदि शारीरिक आवश्यकताओं की तंगी कोई नहीं थी, परन्तु नगदी अदा नहीं हो सकी। यहाँ तनख्वाह देने के तथा और हाल अगले प्रसंग 'इब्राहीम-अजमेर सिंह' में वर्णित है:-



---

* यह चिता ठंडी होकर वहाँ ही रही, कुछ दिनों बाद सतगुरू जी फिर आये और निशान कायम किये। बाद में जब समय बीतने पर खालसे के दलों ने जगह ढूँढी तो भाई लंगर सिंह ने, जो तब सतगुरू जी के साथ थे और फिर हरी के गाँव रहे, निशान पता बताया तो खालसे ने पक्का शहीद गंज बनाया, और माघी का मेला यादगार बनाया। यह जंग वैसाख का है, परन्तु माघी ठंडी ऋतु होने के कारण निश्चित की थी, क्योंकि वैसाख में यहाँ गर्मी बहुत होती है।

\+ डोगर, एक जाति, जो राजपूतों में से निकली है, आजकल डोगर अधिकतर मुसलमान हैं।

@ फीरोज़पुर से पाँच मील की दूरी पर पूर्व की ओर लुधियाने जाने वाली जरनैली सड़क पर इस ठिकाने गुरुद्वारा विद्यमान है, नाम 'गुरुसर ' है।

८४ इब्राहीम–अजेमर सिंह*

१. कौतुकी दर्शन

एक टीले के पास एक चितकबरा घोड़ा खड़ा है, सजीला, फबीला, ऊँची गर्दन वाला। इसकी पीठ पर दीन दुनी के साहिब सतगुरू गोबिन्द सिंह जी सवार हैं, ऐसे बैठे हैं जैसे योगी आसन पर बिना हिले स्थिर बैठता है। मस्तक चमक रहा है, दिव्यता दग दग कर रही है। आँखें सामने खड़े लोगों पर टिक रही हैं, न ख़फा हैं, न कृपाल, अछूती, बिना हलचल के स्थिरता में टिकी हैं।

आगे खड़े हुए लोगों ने लगाम को हाथ डाला हुआ है और कह रहे हैं–

"साहिब! हमारी सीमा खत्म हो रही है, आगे साबो का देश आ चला है, हमारी तनख्वाहें यहाँ चुका दो, तब आगे जाओ+।" आप बोले– "तनख्वाहें चुक जायेंगी, संगतें लायेंगी, बाँट हम देंगे, आज पैसे हैं नहीं, देगें मस्तानी@ हैं, मालिक भेजेगा, परन्तु हौसला करो।"

बैराड़ लोग–बहुत हौंसले किये, अब हौंसले नहीं, हमने तो प्रशाद लंगर से खा लिया, घर वालों को क्या भेजें? पिछली तनख्वाहें दो, आगे से मासिक वेतन दो गुना कर दो, तब आगे कदम उठाओ। आप कहते थे कि बारिश करेंगे वह भी नहीं हुई। बारिश हो जाती तो हमारे पिछलों का गुज़ारा खेती बाड़ी करके हो जाता।

अचंचल और स्थिर आँखें आसमान की ओर हो गयीं। पवित्र और बली हाथ तीर कमान की ओर चले गये। तीर चला और टेढ़ा होकर आसमान की ओर चला। तीर निकल गया, परन्तु कमान उसी तरह तनी हुई है और हाथ डोरी पर है। सुन्दर गर्दन तनी हुई उसी टेढ़ी स्थिति में है और आँखें वैसे ही आसमान पर गड़ी हैं।

आसमान गहरा हो गया, बादल छा गये, नीला हो आया, बूँदें उतरीं, बरसने लगा, मूसलाधार हो गया, बैराड़ सिपाही बारिश की बौछार की ताब न झेल पाये और वनों पौधों के नीचे जा खड़े हुए। सतगुरू "बेचैनी, अभिलाषा पलटने वाले" वहीं उसी तरह समाधि लगाये खड़े हैं, जैसे खड़े थे। प्यार वाले सिक्खों ने कंबलियाँ तान-तान कर ढका, परन्तु आपको न बारिश का भय है न कंबलियों के आसरे की परवाह। बारिश बरस चुकी थल जल हो गये। देश बरस पड़ा, अब बैराड़ फिर आगे बढ़े और बोले–हमारी तनख्वाह?

सतगुरू–रुपये कि सिक्खी?

---

* यह प्रसंग ट्रैक्ट की शक्ल में सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४५१ (१९३० ई॰) के गुरुपूर्व पर प्रकाशित हुआ था।

\+ तवारीख खालसा १.३ सूरज प्रकाश से।

@ लंगर बंद होने की क्रिया, भोजन की सामग्री न होने पर चूल्हे आग न जलने की हालत।

बैराड़–रुपये दीजिए, सिक्ख तो हैं ही।

सतगुरू–आगे चलकर सही।

बैराड़–यहाँ ही दो।

सतगुरू–**ददा दाता ऐकु है सभ कउ देवनहार॥**
देंदे तोटि न आवई अगनत भरे भण्डार॥
दैनहारु सद जीवन हारा॥ मन मूरख किउ ताहि बिसारा॥
दोसु नही काहू कउ मीता॥ माइआ मोह बंधु प्रभि कीता॥
दरद निवारहि जाके आपे॥ नानक तेते गुरमुखि ध्रापे॥ (बा॰ अ॰ ३४)

क्यों भई सज्जनों! सिक्खी कि रुपये?

बैराड़–पातशाह! रुपये दान करो।

अब पिछला टोला (जनसमुदाय) आ मिला, साथ नई आई संगत भी कुछ थी, इस टोले में एक सिक्ख आगे बढ़ा, सतगुरू घोड़े से उतरे, सिक्ख ने माथा टेका। इसके पीछे खच्चर खड़ी थी, इस पर छट्ट (सामान लादने की थैली) थी, जिसमें रुपये और अशर्फियाँ थीं। यह थैली आगे रखकर सिक्ख ने कहा–

पातशाह! आपकी माया है।

गुरू जी–कहाँ से लाया है?

सिक्ख–आपका ख़ज़ाना अटूट है। आपका खज़ानची कुबेर है, सिर्फ लाने वाला और पेश करने वाला दास है।

सतगुरू ने खुश होकर प्यारे की नम्रता पर द्रवित होकर उसको गले लगाकर कहा–'निहाल'!

फिर थैलियाँ खोलकर माया देखी, कहा–मोहने वाली आ गयी, करो सेवा। हुक्म हो गया और सब के पल्ले में गिन-गिनकर पड़ गयी माया।

गुरू जी (बैराड़ों के जत्थेदार की ओर मुँह करके)–हे दाने, बैराड़ों के जत्थेदार! तुझे किस हिसाब से दें, तू जत्थेदार जो हुआ?

दाना–पातशाह! मैं तो दास हूँ और सिक्खी दान माँगता हूँ, मुझे मोहनेवाली के साथ न जोड़ो, अपने चरणों के साथ जोड़ो, माया आपकी बख्शी हुई है और वह भी साथ नहीं जाती।

गुरू जी–(मुसकराये नेत्र मुँदे। फिर खोले) हे दाने! महां सिंह ने माझे में और तूने मालवे में सिक्खी को कायम रख लिया,* दोनों स्थानों पर सिक्खी का नौनिहाल हुलारे लेगा। जा:–

जिम सभि माझे की वडिआई।
महां सिंह ने राखि दिखाई।

---

* सूरज प्रकाश, तवारीख खालसा, गुरपुर प्रकाश।

देश मालवे की तूँ राखी।
उपजहिं सिखी के अभिलाखी॥३०॥ (गु॰ प्र॰ सू॰ से १-१७)

अब बैराड़ विदा हो गये, दाना और उसके प्रेमी लगभग २० बैराड़ सिपाही साथ रहे। पचास के करीब प्रेमी सिंह जो प्रेम के परवाने थे, साथ में और थे। कुछ प्यारे सिक्ख आते जाते रहते थे। जो माया खच्चर की छट्ट में से बच गयी थी, वह वहाँ दबा दी। जगह का नाम गुप्तसर हुआ। दाने ने विनती की "मेरे गाँव चरण डालो", सतगुरू ने उधर वागे* मोड़ दीं। रास्ते मे सत्संग के वचन चल पड़े। चलते-चलते एक लहलहाता वन आ गया, ऊपर से शाम का समय हो गया, एक सिक्ख ने कहा: पातशाह! सोदर+ का समय हो गया है। हुक्म हुआ कि दीवान सजे, इसलिए वहाँ ही दीवान सज गया। दाने का गाँव अभी सवा कोस था, जब दीवान सज गया और डेरे लग गये, तब दाना प्रेमी रसद पानी पलंग सामान गाँव में से जाकर वहीं ले आया और लंगर भी वहीं सज गया। गाँव का चौधरी 'सूमा' भूरे रंग की भैंस का दूध ले आया। सतगुरू जी बोले: दूध भूरे रंग की भैंस का है?

सूमा–जी पातशाह!

सतगुरू जी हँस पड़े और रात विश्राम किया। अमृत समय 'आसा दी वार' का दीवान सज गया, दूर दूर तक खबरें पहुँच गयी थी। संगतें अनगिनत मात्रा में उत्साहित होकर आ गयीं, कड़ाह प्रशाद और रसद दूध और अन्य सामान बेशुमार आ गये, वह मौज लगी कि उस जंगल में मंगल हो गया। सतगुरू प्रसन्न होकर बोले यह जंगल तो 'लक्खी जंगल'@ है, यहाँ ही डेरा रहे। कई दिन वहाँ टिके। आनन्दपुर नगरी के वासी, वहाँ के बिछुड़े प्रेमी तथा और प्यारे दूर दूर से दर्शनों के लिए आ रहे थे, इसलिए बहुत यहाँ आ मिले। आनन्दपुर वाला मंगल बँध गया। कई चतुर सयाने कवि पंडित भी आ इकट्ठे हुए।

२. गुरू–लक्खी जंगल

जंगल में मंगल, मंगल में उत्साह, आनन्द, रसरंग, ईश्वरीय उंमग, स्वाद ही स्वाद। एक दिन सूर्यास्त के समय सतगुरू बैठ गये, प्रेमी आसपास आ इकट्ठे हुए, चन्द्रमा के चारों ओर परवार# पड़ गया। चन्द्रमा को रोशनी के चक्र ने घेर लिया, सतगुरू के कवि मन में उमंग जागी और पुकार हुई। हाँ, इलाही गले से माझ में श्री मुखवाक की ध्वनि उच्चारण हुई:-

सुण के सद्द माही दा मेंही पाणी घाह
मुतो ने। किस्से नाल न रलीआ काई

---

* लगाम की डोर।

\+ एक खास वाणी जिसका पाठ संध्या समय 'रहिरास' में होता है। इस सोदर वाणी में करतार का कोई खास द्वार, जो अज्ञानी मानते हैं, उसका खंडन करके वाहिगुरू का असली द्वार बताया है।

@ पातशाहों के दफ्तर में जिस जगह का नाम लक्खी जंगल लिखा जाता था वह ठिकाना बठिंडे से पाँच सात मील खरे महिंमें गाँव के पास था।

प्रकाश का वह गोल चक्कर जो कभी कभी चाँद के चारों ओर दिखाई देता है।

कोई जु शउंक पियो ने। गिआ फिराक
मिलिआ मित माही ताही शुकर कितो ने।

जब सतगुरू ने यह पुकार अत्यधिक रसीली सुर में दी तो आश्चर्यमयी रंग छा गया, प्यारों के हृदय प्यार से उछल पड़े और भाई 'अड्डा' छाप वाले कवि जी बोले:–

***गुरू गोबिन्द जिन्हां दे सिर ते तिन्हां नूँ कमी न काई।**
खावन पीवन ते भोगन भुञ्चन भाग उन्हां दे आई।
करन अरदास सतिगुर दे अग्गे सतिगुर होग सहाई।
अड्डा मैं कुरबान तिन्हां तों जिन्हां मन परतीत सवाई।
मन परतीत जिन्हां दे वुट्ठी काज उन्हां दे होए।
गुर गोबिन्द सिंह दा दरशन कीता+ मुकत प्रापत होए।

कुछ देर ठहर कर अड्डा जी ने फिर पुकार दी–

नाम तुमारा जप जप जीवां सुरत करां जपु माली।
आठ पहिर हीए विच रखदा सूरत सतिगुर वाली।
मन नीवां मत उच्ची होई उनमन दी चढ़ लाली।
गुरमुख हरि हरि जप आधाने सिर ते सतिगुर वाली।@

जब अड्डा जी पुकार दे चुके तो कवि जी 'बिहारी' छाप वाले बोले:-

यार यारां कोलों विदा जु मंगदे आख दिखा की करीऐ?
सिर काटि रीसाल बणाईऐ पेश मित्रां दी धरीऐ।
जो सिर दित्ते राजी थीवन सिर देंदे ढिल्ल न करीऐ?
सिर सदके कुरबान 'बिहारी' जो विचि निगाहां दे मरीऐ।

यह माझ की पुकार जब ठहरी तो लाल कवि जी बोले:-

महिबूबां दे दरशन कारण सूरमां आप पिसाइआ।
दे दे धमकां निक्का कीता पत्थर ज़ोर सहाइआ।
जिउं जिउं घसे तिउं तिउं रस्से चढ़ता रूप सवाइआ।
'लाल' खिआल मुइआं फिर जीवे जा चशमां दाखल आइआ।

इसकी ध्वनि खत्म होने के बाद 'बिहारी'# छाप वाले कवि जी फिर बोले–

इस नेहां मैंडे सतिगुर$ वाले मेरे सीने अंदर पुड़िआ।

---

* ये सभी छंद जो आगे आते हैं 'उचार खासे लक्खी जंगल' करके प्रसिद्ध हैं। अब तक की पड़ताल यह बताती है कि इसी ठिकाने लक्खी जंगल के ये उचारे हैं। यह भी ख्याल है कि शायद ये उचार बठिंडे वाले लक्खी जंगल में हुए हों, परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता।

\+ 'गोबिन्द सिंह दा दरशन कीता' भी पाठांतर है।

@ पाठान्तर यह भी है 'निंदक दा घट खाली'।

\# ये कवि जी भागी बादर गाँव तलवंडी के समीप के इलाके में हुए हैं।

$ पाठांतर 'मुरशद' भी है।

हुण तां मुड़िआं बणदी नाहीं जां सनमुख मत्था जुड़िआ।
भन्नी भभी पत्तण वंझां अग्गहुं बेड़ा हुड़िआ।
तिन्हां नालों टुट्टीआं चंगेरी सिदक जिन्हां दा मुड़िआ।

इस पुकार में बताये विश्वास के जोश में भरकर आपने और एक पुकार लगायी:-

जैं की सिक्क तैंसी दा सिक्का बिआ सिक्का फिक्का लग्गे।
जैंदे दरद तईं दा दारू बिआ दारू कीह लगे।
जैंदा नाउं नीसाण तईं दा वज्ज रिहा विच जग्गे।
सज्जन कोलों* मुख जि मोड़न से दरगहि मूल न लग्गे।

बिहारी के इस विश्वास वाले कटाक्ष, परन्तु कमज़ोरों के लिए थोड़े चुभते ख्याल पर 'नंदलाल' ने नम्रता और संभाल के भाव में पुकार ली:-

एक दिहां मैं सतिगुर कोलों प्रेम सुराही पीती।
भाए असाडे लिखी फकीरी सो मसतक धर लीती।
पिछला जनम अकारथ खोइआ हरि की भगत न कीती।
आगै समझ चलहु 'नंदलाला'+ जो बीती हो बीती@।

इस समय एक 'विहंगम' दूर बैठे थे, इनका व्यवहार मस्ताना था, अपनी मस्ती की लय में यह पुकार लगा उठे–

मुशकल मिलण माही नूँ हीरे औझड़ झंग बलाईं।
कर कर शेर जमातीं बैठे नाग कुंडल बल पाई।
पंध मुहाल न दें दे जावण, मल डाके बहिण सराईं।
अग्गे बेपरवाह रंझेटा भाणें मिलण रजाईं।

इसमें रज़ा और भाणे (ईश्वर की स्वीकृति और मर्जी) का सिक्खी उसूल, परन्तु मुश्किल की आततायी का कटाक्ष था, इस पर एक और विश्वास वाले प्रेमी जी ने पुकार लगायी:-

बेफिकरां नो फिकर न काई सदा रहिण मतवाले।
अट्ठे पहिर रहिण विच गिणती बहुती माइआ वाले।
इस माइआ ते दूर खड़ोते कई विरले साध सुखाले।
कम्म सुआलीआं बेड़े भगतां दे मैंडा सतिगुर आप संभाले।

अब बिहारी ने फिर पुकार उठाई:-

आशक आशक सभ कोई आखे टेढ़ी पगरी धरके।
सिर ते परे इशक दा डेरा सभ मुड़ आए डर के।

---

* पाठांतर–'मित्रां कोलों' भी है।
+ ये भाई नंदलाल जी फारसी वाले कवि नहीं, और सज्जन हैं।
@ पाठांतर–'पिछली होए सु बीती' भी है।

मान मनी ते खुदी तकब्बर कोई न रहिओ जरके।
सज्जणां* दे उस महिल बिहारी। कोई आशक पहुता मर के।
इशक नगीना सोई जाणन जिहड़े होवण आप नगीने।
इशक मुशक दी सार की जाणन कोई कायर लोक कमीने।
इशक नही कोई तिखीआं छुरीआं घाउ करन विच सीने।
तन दीआं तपतां मिटन बिहारी जे दिस्सण गुरू नगीने।+

अब 'बिहारी' जी फिर उत्साह भरी शांत वाली ध्वनि में बोले:-

मन असवार पवन का घोड़ा असां गगन तमाशे जाणा।
गगन अंदर इक बाग़ अजाइब चुण अंम्रित फल खाणा।
मिट्ठा बोलण ते नाम अराधन सीतल पवन फुहारा।
मन दीआं वागां हत्थ बिहारी@ तिन्हां कउण मिलै असवारा।

अब फिर 'विहंगम' मस्त जी ने पुकार लगाई:-

महिबूबां दे वेखण कारन कक्ख गली दा थीवां।
वग्गे वाउ पुरे दी जिउं तिउं दर ते जाए सटीवां।
आंदे जांदे दा दरशन पावां चरनीं कदे छुहीवां।
चरण धूड़ बन सतिगुर वाली मरकै मैं मुड़ जीवां।

इस समय श्री सतगुरू जी ने कृपा कटाक्ष से देखा, तब अड्डा जी फिर बोले:-

गोबिन्द सिंघ गुरां गुर सूरे मिहर आपणी कीती।
जित वल नज़र उते वल मेहर मिहर असां लै लीती।
काहदे इशक ते सिदक असाडे साडी भुल्ल परीती।
नाम दान इशनान दान दे कमीं न कोई कीती।

इस प्रकार लक्खी जंगल में विद्वानों और कवियों के मेले, बिछुड़े प्यारों अनेक के मिलाप हो गये और कई दिन आनन्द मंगलाचार होते रहे। दाना जी ने परिवार सहित अमृतपान किया और इनका पवित्र नाम दान सिंह हुआ। दाना सिंह जी ने इस ठिकाने बहुत टूट कर सेवा की, महां सिंह जी तो बेदावा फड़वाकर सतगुरू के दर जा खड़े हुए, परन्तु दाना सिंह जी ने श्रद्धा सब्र में श्रद्धावान रहकर फिर सेवा का रंग माना। सतगुरू जी अब यहाँ से चलने के ख्यालों में थे कि एक और प्रेम की कली आ खिली।

३. इब्राहीम

मालवा देश, छतिआणा गाँव, लक्खी जंगल सतगुरू वाला, एक छोटा टीला, एक कुटिया सैय्यद फकीर, नाम प्रसिद्ध 'बाहमी सैय्यद' वास्तविक नाम 'इब्राहीम सैय्यद',

* पाठांतर 'महिबूबां'।
\+ पाठांतर 'त्रुस्स मिलन यार नगीने'।
@ बिहारी जी की और पुकारें, देखें प्रसंग बीबी देसां।

कुटिया के बाहर बैठे हैं, नेत्रों से टप-टप आँसू गिरते हैं और अपने आप से बातें करते हैं:-

"मन की न बुझने वाली प्यास! तू कभी नहीं उतरी (हटी)। घर में सारा ऐश्वर्य था, वह देखा, भोगा, तृप्ति नहीं हुई। घर छोड़कर फकीर हुए, दुख भूख सही, तप तपे रियाज़तें* कीं, चिल्हे काटे, रोज़े रखे, अहम् मारा, श्वास चढ़ाये, स्नान ध्यान भी किया, तृष्णा भी कम हुई परन्तु प्यास नहीं बुझी। फिर ऐश्वर्य बना, मुरीद मिले, माया आयी, हुक्म माने गये, प्यार मिले, तलवों तले हाथ रखे गये, परन्तु हे अतृप्त मन! तेरी प्यास नहीं मिटी, नहीं मिटी। पदार्थ को भी मन नहीं चाहता, किसी दिखाई देती वस्तु की लालसा नहीं, फिर यह प्यास किसकी? यह न बुझने वाली प्यास है, यह न समझ आने वाली प्यास मायिक अभिलाषा नहीं, यह प्यास कोई गहरी प्यास है। हाय! मिले, कौन मिले? पता नहीं मन किसको चाहता है?"

फकीर जी इस समय मानों इस प्रकार की पीड़ा में हैं-

तड़प पई तड़पांदी अंदर सिक्क कुई धूह पांदी है।
अणबुझदी कुई डंझ कालजा खुह खुह के लई जांदी है।
कुझ हुंदा कुझ हुंदा भासे, की भासे?
कुई समय नहीं, पीड़ कलेजे।
नीर नैण विच घुलदी जिंदड़ी जांदी है।

आह! कोई देवलोक से आओ, मेरी लगन को निभा दो। मुझ याचक (मंगता) को तो यह भी ख़बर नहीं कि क्या माँगूँ? हाय! कलेजा वश में नहीं, हे चमक रहे तारो। चाँद कहाँ है। क्यों आँखों में जल भर रहे हो? आपको पता है कि यह आपका चंद्रमा है, आपने देखा है कई रातें दर्शनों से मस्त हुए हो, परन्तु मुझ बलिहार जाने वाले को यह भी पता नहीं कि मेरा चंद्रमा कौन सा है? कहाँ है? कभी देखा नहीं, सुना नहीं, सपने में नहीं आया, परछाईं नहीं पड़ी, पर हाय! फिर सदा नेत्र टपकते, कलेजा सरकता और हृदय फड़कता है, माथा तड़पता, कलाइयाँ झनझनाती और छाती थर्राती है।

इतने में आया एक सुन्दर पुष्ट जवान सिपाही।

सिपाही-सैय्यद साहिब।

सैय्यद-आइए, स्वागत है।

सिपाही-आवाज़ बहुत मद्धम उदासी भरी है, सुख है?

सैय्यद-वही बहने का दौरा है, आज फिर, आगे से बहाव अधिक है।

सिपाही-आप नाराज़ नहीं होना, मैं बहुत देर से आया हुआ हूँ, संदेश तो मिल गया था, परन्तु व्यस्तता अधिक थी।

सैय्सद-शुक्र है, व्यस्तता ही सही, समय तो कट जाता है, हम फुर्सतवालों का तो समय ही नहीं निकलता, बात भी किसके साथ करें? सभी मुरीद हैं, किस को बतायें कि

* तप, हठ।

अभी तो अपना कुछ नहीं बना? प्रधान स्थान (धुर) पर आधार नहीं हुआ (बंधा)। किसके आगे दुख रोग कहें? सभी आप दुखी हैं, किसको मित्र कहें? कोई फुर्सत में नहीं। सन्यास करें, किया, छतिआणे की सरदारी छोड़ी और फकीरी ली, परन्तु देखो। मन कुछ माँगता ही माँगता है।

सिपाही–सैय्यद साहिब! आपके मन की माँग लोगों वाली तो है नहीं, यह तो लग्न है। इस लग्न को कोई लगाने वाला है जो वहीं ओट में है, वह बुझाये तो बुझाए। यह तो मेरी समझ में मन की प्यास नहीं, आत्मा की प्यास है जो किसी न मालूम विछोह की कसक खाती है। और आपको कोई लालसा नहीं, मैं जानता हूँ, बाल सखा हूँ। अच्छा जी। आपने कभी मुरशिद भी किया है? बड़े साईं लोग इस टीले पर धूनी जलाया करते थे। जब हम खेलते-खेलते आ निकला करते थे तो उनको देखते होते थे। आपने उनकी कृपा प्राप्त की होगी?

सैय्यद–इकट्ठे खेलते आया करते थे, हां, उनके ही मैं चरणों में लगा (अनुयायी बना), पहले एक और मिर्ज़े की संगति रही, फिर साईं लोगों को पीर बनाया, फिर एक योगी की कष्ट साधना की शिक्षा ली, परन्तु बना कुछ नहीं।

सिपाही–यह अनोखी सी बात है, कि मिलकर और साधना करने के बाद भी कुछ न बना और प्यास फिर बनी रही।

सैय्यद–सज्जन जी! विवाद और निकाह के समय कितने साधन होते हैं, पंडित मुल्ला आते हैं, देवताओं और ऊँची पदवी वाले गुरुओं की आराधना करते हैं, लड़का लड़की को कसमें सौगन्धें देते हैं, सारे ही यत्न साधन होते हैं, कसर कोई नहीं रहती, परन्तु कभी देखा है कि सभी गहरे प्यार में एक जोत हो गये हैं। नहीं। प्यार के क्या साधन, लगे तो ठीक, न लगें तो पड़ा साधन तप करे।

सिपाही–(अचानक डरकर) सच है। (नेत्रों में जल भर आया) जबर्दस्ती कब लग्न लगती है? प्रीत तारें लगाने पर कब लगीं?

सैय्यद–दुख एक और है, तीखी अक्ल और ज्ञान की जानकारी यह जान के दुश्मन हो गये हैं। पीरी फकीरी का मान सम्मान ये दुश्मने ज़ान हो रहा है, नहीं तो देखभाल लगी रहे, और नहीं तो यही सही।

सिपाही–पीर जी! आत्मा के ज्ञान बिना स्थिरता नहीं, संसार के रंग इस मन के आगे पर्दा हैं जो इसको आत्मा के दर्शन नहीं होने देते। आत्मा के आगे आत्मा का ही पर्दा है, जो साईं के दीदार नहीं लेने देता। फिर जितनी आत्मा तीखी सूझ वाली, तीखी अक्ल वाली, ज्ञान वाली, उतनी अधिक हुज्जती, उतना अधिक शंकाओं वाला और दोष निकालने वाला और उतना ही अधिक अपने आप का पर्दा आत्मा के आगे गहरा। दिखे क्या और कैसे? मुझे तो जो चार पंक्तियाँ सुनाई दी थीं बहुत बार अँधेरा बन जाती हैं और आप तो बहुत अधिक पढ़े हो।

सैय्यद–सज्जन पुरुष! बातें बहुत पते की फेंकने लग गया है। नुहार और है, तौर और है, असर तासीर वाली बात करता है। क्या हो गया है? मैंने आज तुझे विशेष तौर पर बुलाया है। यार! छोटी अवस्था का मित्र है, कुछ बता हमें भी। आज मेरी जान बहुत टूट रही है, ऐसे हो रहा है जैसे सारे का सारा पिघल कर ढल चला हूँ। बुद्धिज्ञान कोई रास्ता नहीं दिखाते। इस उमंग को निकालता हूँ, पर निकलती नहीं।

सिपाही–यह कैसे निकले? कोई पराई वस्तु है, कोई विघ्न है जो निकले? हुई तो कुदरती कोशिश। किसी भूले ठिकाने पर पहुँचने की अथवा किसी सुखदायी ठिकाने, पहुँचने की यह प्यास हर इंसान को है। किसी को अधिक किसी को कम, किसी को कभी एक आध बार लगी और झलक दे गयी, किसी को अनबुझी हो गई। यह शराअ के फतवों और पढ़ों की दलीलों के काबू की वस्तु नहीं, इसको हर देश, हर स्थान पर पढ़ो ने मारा, दबाया, पातशाहों ने कष्ट दिए, परन्तु यह आत्मा की प्यास अमिट रही।

सैय्यद–फिर अब, क्या प्यास ही प्यास लगी रहे, इंतज़ार ही इंतज़ार? मिलाप नहीं, तृप्ति नहीं, मेल मिलाप नहीं। इसीं पीड़ा की कसक का 'आपा खाणां रस' को ही महारस जानिये।

सिपाही–(मीठी आह भरकर)–

जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा।।
नानक ताकै बलि बलि जासा।। (सुखमनी)

सज्जन पुरुष! प्यास कहाँ धरी पड़ी है, प्यास लगे तो पानी माँगे न।

साचे नाम की लागै भूख।।
उतु भूखै खाए चलीअहि दूख।। (आ० म० १)

भूख ही तो जी उठना है। भूख ही नहीं तो मौत है। भूख मुबारक है। हां, प्यास भाग्य भरी है, लगे सही, चाहे प्यास में मर जाये, पर साईं जी। प्यास न मिटे, पर न मिटे। (रो पड़ा और नर्म आवाज़ में)

देहु दरसु नानक बलिहारी।
जीअड़ा बलि बलि कीना।।

सैय्यद–हे चात्रिक मित्र! जिसको स्वाति बूंद मिल गई है, ओ बंबीहे (पपीहे)! जिसको वह जल की बूँद मिल गयी है, कि जिसका मैं अभी प्यासा हूँ, तेरे वाक्य सुहागिनों वाले हैं, तेरे नेत्र रसीले हो गए हैं, तेरी वाणी में मिठास आ गई है, तेरी मुबारक बाहें गले से जा लगी प्रतीत होती हैं, कोई बता उपदेशक, कोई डाल रास्ते, कोई बँटा हिस्सा। बाल सखे। छिपाव न कर। तेरी बात निराली है, तूने पा लिया है, तूने पा लिया है, नहीं तो लपट तुझमें किसकी है?

सिपाही–(कितनी देर छमाछम रंगो में रहकर)–किसने पाया है? कौन पा सकता है? टुंडे (हाथ रहित) का अलिंगन करना क्या? साइआं! वह आलिंगन करे जो बाहों वाला है। हद वाले का बेहद को कलाई में लेना क्या? वह परछाईं दे, वह मेहर करे, वह आप गोदी

ले ले। दिखाई दे नेत्रों को, बसे अंदर, चरणों में लगा ले, शरण में रख ले, आप ही। बाजू रहित अथवा हाथों से वंचित ने गले से क्या लगना और पाद रहित ने क्या पहुँचना।

सैय्यद–(महीन और ठहरे हुए स्वर में)–ठीक! फिर बैठे रहें आशावान?

सिपाही–'आसा पिआसी रैनि दिनीअरु रहि न सकीऔ इकु तिलै'।।

सैय्यद–ठीक, पर दिल विकल होता है मिलने को।

सिपाही–यही तो प्यास है और प्यास ही जान है, और जीवित को ही कोई कभी गले आ लगाता है । मुर्दा लाशों को तो सब कोई परे ही परे करता है। हाँ जी, लगी रहे।

देहु दरस नानक बलिहारी।
जीअड़ा बलि बलि कीना।।

सैय्यद–लगी रहे भई।

सिपाही–लगी रहे भी मेहर है, पर लगी रहे और लगायी रखे। हां, पर यह भी मिलाने वाले की मेहर है, और मेहर उसी में बसती और उसी की वस्तु है, मेरे तप हठ साधन के वश काबू की वस्तु नहीं, परन्तु मैं झोली तो फैलायी रखूँ:-

चात्रिक चित सुचित सु साजनु चाहीऔ।।
जिसु संगि लागे प्राण तिस कउ आहीऔ।।
बनु बनु फिरत उदास बूंद जल कारणे।।
हरि हां तिउ हरि जनु मांगे नामु नानक बलिहारणे।।११।। (फुनहे)

पता नहीं कभी ख़ैर पड़ जाये। ऐसे प्यास न बुझे कि आवश्यकता खत्म हो जाये। मिले तो ठंड पड़े, आ बसे तो प्यास बुझे। बूँद मुँह में पड़े तो प्रिय प्रिय शमन हो।

सैय्यद–सुहागिन! लगा कंत के चरणों में हाय! छिपाव न कर।

सिपाही–यार! छिपाव कैसे, लगी के छिपाव कभी होते हैं? रुई के संदूकों में चिंगारियाँ छुपाई जा सकती हैं? मेरी तो लग गई और लग गई है ज़ोरों ज़ोरी। और:-

सैय्यद–(अचानक डरकर)–कहाँ और किस तरह?

सिपाही–आत्मा में, आत्मा के साथ। आत्मा के पीछे, आत्मा के आत्मा साथ।

सैय्यद–कैसे?

सिपाही–एक 'रब्ब (ईश्वर) दीदार के शीशे' में मुँह देख बैठा था कि मैं अपना रूप देखूँ। शीशे में जड़ी थी मूर्ति ईश्वर की, मैं अपना आप देखने लगा उस मूरत के दर्शनों में ही घुल मिल गया।

सैय्यद–पहेलियाँ रसदायी होती हैं, परन्तु प्यासे को पानी की पहेली घबराहट बढ़ाती है।

सिपाही–यह पहेली खुले, फिर पहेली ही रहती है। दफ्तर लिखे गये, पहेली पहेली ही रही। काज़ी, मुल्लां, पंडित, पांधे, ज्ञानी पढ़े लोग दिन रात खोलते हैं, दफ्तर तौलते, कथा व्याख्यान के प्रकाश करते हैं, पर हाय! पहेली खुलती फिर पहेली हो जाती है। उर से उर को जोड़ती है, संकेतों की तार पर चलती है, आँखें मटकाने की सड़क पर घूमती

है। पहेली खुलती है, परन्तु अंदर जाती फिर पहेली हो जाती है। जब खुल गई, न धन, न बाजा। कसी रहे तार, खिची रहे, तो ईश्वरीय नाद। मैं क्या खोलूँ? खोलने के दावेदारों की लम्बी सेवा की, कान सुन सुनकर घिस गये और दिमाग समझ-समझकर पतला पड़ गया (शर्मिन्दा हो गया), पहेली नहीं खुली, बने तो क्या बने? उस जैसे खोलनेवाले, पढ़े तोते ने पढ़ा दी पंक्ति। पढ़ गईं टोलियाँ, परन्तु जो पढ़ते हैं वे नहीं भौंकते। अनपढ़ तोते को पढ़े तोते की अलबेली वर्तनी पहेली, और पढ़े तोते को पढ़ते सुनते पहेली। बात हुई नुक्ता, बिंदी लगी हुई किसी के माथे। माथे के साथ टकराये माथा, लग जाये बिन्दी। बिन्दी के खोलने पर फिर बिंदियाँ चाहे छोटी-छोटी, जैसे जैसे खोले तैसे तैसे बिंदियाँ।

सैय्यद–(आह भरकर)–यार क्या हो गया, कुछ बता भी, तू भी पहेली बन गया।

सिपाही–बताऊँ ही बताऊँ, पर क्या बताऊँ? अच्छा बताता हूँ। सज्जन जी! मैं सिक्ख हो गया हूँ।

सैय्यद–यह फिर पहेली है।

सिपाही–यही तो मैं कह रहा हूँ।

सैय्यद–अच्छा भई न बता। यह तो हमने भी जान लिया है कि:–

तूँ पाइआ (पाया) है तूँ पाइआ है
पर साथों खूब छिपाइआ (छिपाया) है।

चलो तुम्हारे ही दर्शन मेले किया करेंगे, तुम्हारे में से खुश्बू लेकर मस्त हो जाया करेंगे। हमें भी एक लपट का ही चसका है। फूलों में से आ गई तो क्या, अगर फूलवाले के पास से आ गयी तो क्या। हमने लपट लेनी है, इत्र नहीं निकालना, इत्रों का रसायण नहीं ढूँढना। हमने समुद्र तक पहुँचना है, सीधे पहुँच गये तो क्या अगर किसी कूल, नाले, नदी, दरिया के साथ मिलकर जा मिले तो क्या?

सिपाही–पर भई खुश्बू किसी के कैद की नहीं।

सैय्यद–हमें अगर घर बैठे आये तो। आज तू नहीं आया तो बुला भेजा है। कल से अब तेरे दर्शन को आप चला करेंगे। तू कष्ट न करना, लोक लाज के सिर डालते हैं अब खाक। जो कहेंगे लोग सो कहते रहें, हाँ कहते रहें।

सिपाही (हँसकर)–ऐसे नहीं भई।

सैय्यद–तो और किस तरह?

सिपाही–दोनों हुए न यार, दोनों बने संगी, सत्संगी।

सैय्याद–फिर पकड़ बाँह।

सिपाही–मैं सिक्ख बना हूँ, तू भी सिक्ख बन। पकड़ा बाँह जिसने मेरी पकड़ी है उसको।

सैय्यद–तू पकड़कर पकड़ा दे, चल।

सिपाही–चल, नही भई 'शंका की नदी' तैर ले न पहले।

सैय्यद–तैरा ले। बता कैसे तैरूँ?

सिपाही–मैं सिक्ख हुआ हूँ। केश रखे हैं, अमृत पान किया है, तू तैयार है?

सैय्यद–मेरे अन्दर लगी को ठंड डलवा। कोई स्वाति बूँद देकर डाल, केश रखवा, अमृत पान करवा।

सिपाही–भई ठंड तो पड़ जायेगी, परन्तु फिर धार्मिक मर्यादा।

सैय्यद–जिसके कहने पर ठंड पड़ेगी, जिसके मिलने पर मन ठंडा होगा, उसके सारे कहने मूल्य वाले और मानने। वह रहबर रास्ते का, भूल वहाँ कहाँ? वह जो कहे वह मर्यादा, यह तो राह ही इश्क का हुआ, चूँ चाँ कैसी?

सिपाही–मैंने तो आपत्ति (जिद्द) की थी।

सैय्यद–सारी बात सुना न भई।

सिपाही–सुनो! मुझे गाँव के जवानों ने कहा: चल भई तू बन हमारा नेता/मुखिया और सारे इकट्ठे होकर तथा गिरोह/टोला बाँध कर चलें। एक योद्धा आया है, सिपाही रखता है, तनख्वाहें ढेर देता है, चलो उसके पास भर्ती हो चलें। सारे घरों में बैठकर क्या करते हैं? तेरे सहारे चार पैसे ले आयेंगे और अगर कोई मौका मिल गया, तेरी राज सरदारी बन जायेगी और हम तेरे मुसाहिब ओहदेदार (पदाधिकारी) बनकर मौजें करेंगे। लो साईं जी। जब हम गये खिदराणे तो जानते हो वह योद्धा कौन था?

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह!

हमारे सभी लोगों का गुरु, किसी का सुना किसी का माना, बहुत लोगों का आप धारण किया। आनन्दपुर में तो कुछ दिन ठहरकर शत्रुओं के दाँत तोड़कर साथियों के दिल छोड़ने के कारण छोड़ आया था, फिर चमकौर में वह तेग़ चलायी कि दुनिया वारें गायेगी। तोड़े थे कि गलूरे की तरह चऊँ चऊँ करता वापिस चला गया है। हमने जाकर क्या देखा कि वह तो हमारा गुरू है और हम गुरू के घर भर्ती हो गये हैं। खाने-पीने को खुला मिले, परन्तु तनख्वाहें कष्ट के साथ। ख़ैर मतलब की बात यह है कि मुझे तो दर्शन करते ही कुछ हो गया था, जो जुनून बुनियादी अंदर था वह जग उठा। ज्यों ज्यों सेवा की मेरा चाव और आकर्षण बढ़ता चला गया, तलब (तनख़्वाह) और सरदारियों के सपने सपने हो गये। टूटकर सेवा में चाव, प्यार और दर्शनों में इच्छा और प्रेमभाव बस गया। पहला असर यह हुआ कि जगत का मोह टूट गया, दूसरा असर (प्रभाव) अपने आप के प्रति मोह मात पड़ गया, और कुछ हो गया। क्या हो गया? कुछ अपना आप स्वाद में, उच्चता में, किसी लग्न में, पता नहीं किस में वह मेरे अपने लिए पहेली है, अपना आप किसी और ही रूप में हो गया जो कहा नहीं जाता।

अंत, सारा जत्था सतगुरू के सामने हो गया माया के बदले। वे पातशाह हैं दीन दुनिया के, पर कौतुकी हैं, माया आती है लौटा देते हैं, नहीं आती तो कड़की में खुश रहते हैं। जत्थे ने तो बिगाड़ ली, परन्तु मेरे अन्दर आप आ बैठा, मैंने कहा सिक्खी दान कर, अपना ले मुझे, दे मत कुछ, मुझे ले ले, मेरी सेवा न खरीद, मुझे खरीद ले। यह सुनकर हँस पड़े और कहने लगे, 'निहाल'। उनका 'निहाल' कहना था कि मेरे रोयें रोयें में कंपन

छिड़ गयी, आनन्द का एक झोंका आया, आँख पर हो छाला (नज़र को बंद करने वाली झिल्ली) और वह टूटकर गिर पड़े और दिखने लगे संसार ऐसे मुझे हुआ। कोई अकथनीय स्वाद दिख पड़ा, बस! मैं क्या कहूँ?

फिर हुक्म हुआ अमृत छक (पानकर)।

मुझे फिर नीचता सूझी, मैंने कहा, पातशाह! मुझे कुछ और छकाओ।

हुक्म हुआ केश रख, अमृत्त छक।

मुझे फिर नीचता सूझी और फिर बात मोड़ते हुए कहा: पातशाह! केशों से क्या करोगे? हँस पड़े और चोज़ी जी (कौतुक करने वाले) कहने लगे, नारकी (नारकी–नर्क भोगने वाला, पापी)! ओ नारकी! नर्क में से तुझे केशों से पकड़कर खींच निकालेंगे? मैंने फिर ढीठाई की और कहा: पातशाह! मेरी दाढ़ी जो है। हँस पड़े और कहने लगे: हमने ऊपर को ले जाना है*। मैं क्या समझूँ कि क्या बोध करवा रहे हैं। फिर मैंने पूछा: जी केशों का गुण? कहने लगे: मेरी खुशी। मैंने कहा, जी मेरा लाभ? कहने लगे, तेरा लाभ मेरी खुशी! मैंने ढीठ ने फिर कहा, जी और कोई? इस समय आप को अचानक पुकार (बुलावा) आ गयी और चले गये और राधा सिंह जी जो आपके साथ थे, मेरे पास बैठ गये। कहने लगे सज्जन पुरुष! ईश्वरीय मर्जी में क्यों दख़ल? हरि जन इशारा देते हैं, राज़ नहीं देते। मैंने कहा, हे तारनहार! तार दे। वे बोले: जो रस, जो आत्मरंग तुझे चढ़ रहा है इसकी रक्षा केश हैं। जैसे रूई की रजाई लेते हैं कि शरीर की गर्मी बची रहे, जिस तरह गर्म आसन रोटी पर डालते हैं कि इसकी गर्मी जल्दी न उड़े, इसी तरह आत्मशक्ति की बात है। जो अंदर से आत्मशक्ति उदय होती है, उसका मूल सिर में है। सारे शारीरिक और मानसिक बलों का कारखाना सिर में है। दामनिक शक्तियाँ और बिजली की तीखी ताकतें शरीर की और मन की का केन्द्र सिर में है। सारे शरीर का काबू सिर में है। सारे शरीर की चाल चेष्टा हरकत सिर के बीच कारखाना रखती है। सारी प्रतीति, जानकारी, पीड़ा, रस, स्वाद का सिर में एक तरह का अपना प्रबन्ध रखती है।

अब सिर की सारी सूक्ष्म दामनिक इच्छाओं का कोई रक्षक चाहिए जो उनको उड़ने न दे, नष्ट न होने दे। जैसे पानी का देगचा भूसे में दबा उसकी गर्मी को नहीं उड़ने देता, उसी तरह सिर में पैदा हुई दामनिक शक्तियों को केश उड़ने नहीं देते। कुदरत ने केश इसलिए पैदा किए हैं कि सिर के ऊपर ये बचाव का सामान रहे और वह सामान रक्षा का साधन रहे कि जो दामनिक शक्ति को नष्ट न होने दे, व्यर्थ न उड़ने दे, ताकि मन के अधीन सारी की सारी ताकत जो दिमाग़ में से आती है, कायम रहे और मानसिक कमज़ोरी न पड़े। आपने सुना होगा कि बीमार हो तो हकीम कहते हैं 'तबीयत' बीमारी के साथ लड़ रही है और कहते हैं, बुहरान का दिन आता है जिस दिन खास युद्ध होता है तबीयत और बीमारी का, तबीयत जीत जाये तो रोग हट जाता है। मुझे बताया गया कि यह जो तबीयत

* दाढ़ी खींचो तो नीचे को जाते हैं।

क़ी ताकत है, यह उन सूक्ष्म दामनिक शक्तियों के सहारे है जो सिर में मन से होती हैं। उन दामनिक ताकतों का संभालना, व्यर्थ होने से रोकना ज़रूरी है और कुदरत ने उसका आप यत्न किया है जो उसके रक्षक केश उपजाये हैं। मन की दामनिक ताकतों की जानकारी फकीरों को होती है, इसलिए आप देख लो कि राम, कृष्ण, बुद्ध, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और हर काल के अवतारों, पैगम्बरों और फकीरों ने केश रखे हैं। उनको पता है कि कुदरती प्राप्त ताकतें और फिर हमारे साधनों का ऊपर से मेहर सदका सूक्ष्म दामनिक और मिकनातीसी किस्म की बढ़ गई शक्तियाँ सिर के अंदर जन्म रखती हैं। सिर सब ताकतों का मानों खज़ाना है, इसलिए उसके चारों ओर रक्षा का सामान जो कादिर ने रचा है—रखना चाहिए और उसका पूर्ण लाभ उठाना चाहिए, ताकि जो ताकत ऐसे ही बेकार होनी है वह क्यों हो।

सैय्यद—है ठीक! बात मेरे दिल को लगी है (छुई है), मेरे साईं लोग जी के जटाएँ हो गयी थीं तो मैंने पूछा, हुजूर। यह क्या है? और क्यों लम्बे किये हैं ये केश? कहने लगे: "भोले। सर्वोच्च स्थानों पर हरे-हरे आप ही उग और ऊँचे हो जाते हैं।" मैं तब नहीं समझा क्या कहते हैं? आज समझ आई कि सिर सर्वोच्व स्थान है। सब सूक्ष्म ताकतों का मूल है और यहाँ से उपजी शक्तियों को कायम रखने के लिए रक्षा की ज़रूरत है कि जो उन शक्तियों को व्यर्थ होने और उड़ने से रोके। बहुत खूब! हमारे मुहम्मद साहिब भी इसलिए केशधारी थे और सूफी फकीर जो जज़्बे और स्वाभिमान वाले देखे सुने हैं, अकसर केशों वाले, जटाओं वाले हुए हैं। इस बात की समझ फकीरों को है, आम लोगों को नहीं।

सिपाही—फिर मुझे राधा सिंह जी ने बताया जैसे गर्मी और आँच है, वैसे ही एक ताकत और है, बिजली या उसकी एक और शक्ल मिकनातीस (चुंबक पत्थर)। वह जो बिजली बादलों में से कौंधती है वह सारे वृक्षों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों में बसती है और वह अगर कहीं प्रगट हो तो तुरन्त नष्ट हो जाती है। उस सत्ता के कई रक्षित सामान हैं, जिनमें व्यर्थ नहीं होती, जैसे केश। फिर कहने लगे कि उससे भी सूक्ष्म शक्तियाँ इस प्रकार की शीश में है और उनको हमने 'दामनिक' कहा है। दामनिक शक्तियाँ बहुत जबर्दस्त ताकतों को कहते हैं, जो बहुत कम समय में बहुत भारी काम कर सकती हैं और वे हैं अरूप रूप सी और वे सब हमारी इच्छा शक्ति के अधीन हैं, हम उनको मर्ज़ी से प्रयुक्त कर सकते हैं। सिर है उनका जन्म स्थान, खज़ाना और नियन्त्रण स्थान। सिर के चारों ओर केश उन शक्तियों को अपने आप उड़ते रहने से और नष्ट होते रहने से रोकते हैं।

हाँ, हम मन को बिखराई रखते हैं और वे ताकतें कमज़ोर हो जाती हैं। हम जो काम, क्रोध आदि विकारों में लगते हैं तो भी वे ताकतें कम हो जाती हैं। तृष्णा के जितने काम हैं सारे बिखराने के हैं, बिखरने पर वे बल कम होते हैं और मन को इकट्ठा करने पर वे बढ़ते हैं। आपने देखा होगा कि क्रोध करने के बाद शरीर ढीला और हाँफा हुआ सा हो जाता है। इसी तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सभी अंदर की ताकतों को थोड़ी देर में ही प्रयुक्त कर लेते हैं और उन जबर्दस्त शक्तियों के कम हो जाने से शरीर भी शिथिल

हो जाता है। वही ताकतें अंदर प्रबल हों तो बीमारियों के अवयव जब अंदर जाते हैं तब नुकसान नहीं पहुँचा सकते, और वे ताकतें जब निर्बल हों तब बीमारी के अवयव अंदर जाकर बल पा लेते हैं। इसलिए शरीर अरोग्य रखने के लिए, मन को मज़बूत और एकाग्र रखने के लिए, मन के वश में सारी आंतरिक दामनिक ताकतें रखने के लिए जो जब आवश्यकता पड़े जबर्दस्ती प्रयुक्त कर सके, सदा बिखराने के कामों से बचना चाहिए। ऐसा करने से शक्ति अंदर रहेगी और आप ही शक्ति के व्यर्थ होते रहने को रोकने के लिए ताकतों के उपजाऊ स्रोत अर्थात सिर को सदा ऐसे सामानों से ढक रखना चाहिए, जिससे कि वह ताकत नष्ट न हो, अंदर ही कायम रहे। वह ढकने वाले केश हैं, केश उनको उड़ने नहीं देते, फिर दिमाग़ के सभी रास्ते खुले और साफ भी रखते हैं। केश रखो, केशों को सदा साफ रखो, आपकी अंदर की शक्तियाँ दामनिक शक्तियाँ सूक्ष्म इच्छाएँ ही कायम रहेंगी जब आप भजन करोगे, कोई साधन करोगे, जिनके द्वारा मन एकाग्र होता है, तब इसके ये अर्थ हैं कि आप अपने अंदर मामूली से अधिक शक्तियाँ पैदा कर रहे हो और बहुत बलवान हो रहे हो और आपको रक्षा (रखवाली) की बहुत ज़रूरत है। अगर तब सिर पर केश होंगे तो आपको अंदर से समझ और प्रतीति हो आयेगी कि ठीक केश उन ताकतों के रक्षक हैं और इनका रखना लाभदायक ही नहीं अति आवश्यक है और ऐसी आवश्यकता है जिसकी बेपरवाही की ही नहीं जा सकती। यहाँ आकर अंदर से जानकारी बताती है कि केश आत्म-जीवन का हिस्सा हैं, ऊँचे रुहानी धर्म का एक नियम हैं। साधारण हालत में केश रखोगे तो अंदरुनी साधारण दामनिक शक्तियों की रक्षा की अधिक ज़रूरत है क्योंकि जितना अधिक आप बल सँभालोगे उतने कम बीमार होओगे, और अगर बीमार होगे तो जल्दी ठीक भी होगे, इस तरह शरीर को भी सुख होगा। हमारा मन भी ऐसे हावी अधिक रहेगा और दबेगा कम। आम व्यवहार में भी आप ऊँचे और हावी रहोगे। इसलिए आत्मा, मन, शरीर, स्वभाव सभी सुखी रहेंगे।

सैय्यद–है तो ठीक, राधा सिंह जी की बात दिल लगती (को ठीक लगती) है, परन्तु संसार सारा या बहुत अधिक सिर मुंडाता घूम रहा है, फिर इस हिसाब से सभी बुरे हैं?

सिपाही– मैं भी बहुत हुज्जती (झगड़ालू) हूँ, कौन सा जल्दी से मान जाने वाला हूँ, चार अक्षर भी पेट में हैं, वे चैन लेने देते हैं? साईं जी! मैं कई महीनों से सतगुरू के चरणों में हूँ, उनके शरीर पर पहरेदार हूँ, इसलिए हर बात का अवसर सत्संग का समय मुझे मिलता रहा है। ये हुज्जतें मैं पढ़ चुका हूँ। जो सत्संगी मित्र ने मुझे उत्तर देकर मेरी तसल्ली की है वो बताता हूँ। लीजिए सुनें–पढ़े हुए की अक्ल हमेशा लोगों की ओर जाती है, नियम से डरती है और आम रुचि की ओर जा टिकती है। आम लोगों को मैंने न बुरे कहा है न अच्छे। मैंने तो केशों के सम्बन्ध में एक ख्याल आपको बताया है कि कैसे सुखदायक हैं, ज़रूरी हिस्सा शरीर और मन की ताकत की रक्षा का है जो आप कुदरत ने योग्य स्थान पर पैदा किए हैं। आम व्यवहार की ओर देखोगे तो आप क्या देखोगे कि काम क्रोध व्याप्त हो रहा है। लोग जानते हैं कि शराब ज़हर है, परन्तु आम पीते हैं। लोग जानते हैं कि काम

क्रोध्र काया को गलाता है, आम लोग कामी हैं, क्रोधी हैं, कितने हैं जो काम क्रोध के हाथों अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ा नहीं मार रहे? आम लोग जानते हैं कि अधिक खाना आयु घटाना है, स्वादिष्ट भोजन और मिठाइयाँ अंत ज़हर का काम करती हैं और आवश्यकता से अधिक भोजन अंदर ले जाकर मज़बूत (स्वस्थ) रहने के जड़ों में तेल देती हैं, परन्तु आम लोग ये भूल कर रहे हैं। हकीम बताते हैं कि सौ में से निन्यानवें-बीमार आवश्यकता से अधिक खाने के कारण रोगी होते हैं। हकीम बताते हैं कि अफीम खाने वाला, हुक्का पीने वाला, भांग उड़ाने वाला अपनी कब्र आप खोदता है। सारे अफीमची, हुक्कई, भंगेड़ी इस बात को जानते हैं, परन्तु सभी प्रयोग करते हैं, सभी दुख पाते हैं। एक दुख पाता है, दूसरा देखता है, पर फिर नहीं टलता। फल क्या है? क्या जगत में रोग है। आम लोग अपने अपने ठिकाने में थोड़े बहुत रोग देखते हैं, परन्तु फिर भी कोई फिक्र नहीं कर रहा। कथा सुनते हैं कि हमारे पुरखे भीम जैसे कद्दावर और बली होते थे। आम जानते हैं कि हम आदि काल के बुज़ुर्गों के कद से छोटे हो गये हैं, परन्तु सभी उन जैसे जीवन व्यतीत नहीं करते। इसलिए जगह-जगह बीमारी है, हर प्राणी में कमज़ोरी है, मौत सब की करीब आ गयी है। जहाँ सौ वर्ष आम आयु होती थी वहाँ सौ वर्ष का बूढ़ा कोई दिखाई देता है। फिर अगर लोगों की मति का चलन ऐसा हो गया है कि किसी बात पर दीर्घ विचार नहीं करनी, जीवन को कोई पलटा देकर उत्तम और मज़बूत नहीं बनाना, सुख में रहने और सुख में जीने वाले आलसी जैसी मौज में दिन बिताने हैं, तो क्या यह व्यवहार नियम बन जायेगा? अगर हकीम और वैद्य शरीर और तबीयत के नियमों का प्रचार नहीं करेंगे तो क्या उनके नियम ग़लत हो जायेंगे? कभी नहीं। नियम नियम हैं, उनकी दुरुस्ती अज़ली (आरंभ की) है, प्रयोग ग़लती वाले ग़लत हैं, चाहे वे आम प्रवृत्ति पा जायें। आम हो गयी ग़लती कभी दुरुस्ती की जगह नहीं ले सकती, कभी वह ठीक नहीं हो सकती। फिर फल जो है उसके लिए हर कोई मेहनत नहीं करता। एक आदमी अफीमची है, एक संयम के साथ साफ बेनशा जीवन रखता है, दोनों कहते हैं हम ठीक हैं, परन्तु कुछ साल बाद एक बीमार हो जाता है, और दूसरा अरोग्य रहता है। समय पड़कर रोगी पहले मर जाता है, दूसरा लम्बी आयु भोगता है। एक का बुढ़ापा बहुत आसानी से निकलता है, दूसरा बुढ़ापे में कुढ़-कुढ़कर मरता है। मौत आम व्यवहारों की भूलों के कारण सस्ती हो गई है, नज़दीक आ गई है, और शक्ति कम हो रही है। कमज़ोरी और बीमारी और बढ़ेगी, मौत और आसान हो जायेगी, ज्ञान बढ़ेंगे, अक्लें बढ़ेंगी, शरीर के नियमों की और जानकारी होगी, परन्तु तब तक आम को लाभ नहीं होगा, जब तक आम लोगों के व्यवाहर नहीं बदलेंगे। फिर दूसरी बात यह होगी कि आम लोग अक्ल और जानकारी बढ़ जाने से भी मन और शरीर दोनों के कारण सुखी तब तक नहीं होंगे जब तक कि मानसिक शक्तियों को विचार पूर्वक पालन नहीं करेंगे। शरीर के सुख और आराम तब तक पूर्ण नहीं जब तक कि मन की चिकित्सा की समझ न हो, क्योंकि मन शरीर को चलाने वाला है और मन एकदम पशु मन नहीं। मन में ज्ञान है और दामनिक शक्तियों का काबू मन का धर्म है, अगर नहीं काबू

पाता तो पशु समान होता है। सो मन की शक्तियाँ कैसे कम होती हैं, कैसे बढ़ती हैं, कैसे नष्ट और कैसे रक्षित होती हैं? नियम हैं, जिन पर अमल करना ज़रूरी है। अगर अमल (आचार, कर्म) नहीं हो रहा तो नियम अटल है, जो उन पर चलेंगे सुख पायेंगे, एक चलेगा एक सुख पायेगा, सभी चलेंगे सभी सुख पायेंगे। सतगुरू ने तम्बाकू मना किया है इसमें उनको क्या लाभ है? परन्तु इससे शरीर आलसी होता है, सूक्ष्म माँसपेशियों को अधिक उछाल मिलता है जो बाद में निर्बल करता है, स्वभाव सुस्त हो जाता है, आयु कम होती है, परन्तु दूसरी ओर देखो तो इसका प्रयोग आम हो रहा है और बढ़ रहा है, जो एक बाढ़ की तरह आ रहा है। गुरू ने अपनों को बचा लिया, पुकार दे दी है बचो। जो बचेंगे वे सुख पायेंगे आम अगर इसका प्रयोग करेंगे तो आम की गलती है, इसने दुरुस्ती नहीं बन जाना। कई पीने वाले कहेंगे कि यह बुरी आदत है, पर छोड़ेंगे नहीं, वे भी दुख पायेंगे। सतगुरू जी ने तो मनुष्य को चोटी का मनुष्य बनाना है जो:-

शरीर दा अरोग होवे, मन दा नरोआ
होवे ते आतमा दा बलवान होवे।

मुझे राधा जी ने बताया था कि गुरू जी ने आदर्श इंसान, निर्भय, निश्छल आत्मा इच्छा से जीवित सजाना है। वे कहते थे आदर्श न होना क्या है? वह यह है कि इंसान वह कुछ नहीं जो कुछ कि इंसान होना चाहिए, वह यह है कि शक्ल और प्रकृति (स्वभाव) अरोग्यता वाली, प्रभावशाली, हौंसले वाली, अभय, स्वतंत्र और लिव में बसने वाली हो। इसलिए गलतियाँ निकालती हैं चाहे आम व्यवहार में हों। देखो। धर्म के रहबर योगी सारे शराई तक पहुँच गये थे, गुरू नानक जी ने शराब के अवगुण बताकर छुड़वा दी, जिन्होंने नहीं छोड़ी वे चाहे बहुत हों, बुरा कर रहे हैं। गुरू जी के अटल वाक्य मौजूद हैं। बाबर जैसे अत्याचारी बादशाह को शराब से आपने ही रोका था। सती की प्रथा बहुत खराब है, आम व्यवहार में थी, तीसरे सतगुरू ने रोक दी। आप व्यवहार से नहीं डरे, नियम स्थापित कर दिया। केश आत्मिक सत्ता के रक्षक हैं, दामनिक इच्छाओं के रखवाले हैं, मानसिक और आंतरिक उत्पत्तियों और ताकतों को नष्ट होने से–व्यर्थ उड़ने से--बचाने वाले हैं, सतगुरू जी ने आप रखे, गुरू अंगद जी को रखवाये, भाई बुड्ढा जी को रखवाये, आपके पुत्र श्रीचंद लखमीचंद ने रखे, अगर आम व्यवहार जगत का न रखने का था तो गुरू नानक आम व्यवहार से नहीं डरे, उन्होंने आदर्श इंसान बनाया, लिव टूटे तृष्णा में बहे इंसान को लिव धारण करवायी। लिव (परमात्मा में ध्यान लगाना) के सहायक कीर्तन, स्मरण सिखाये, आंतरिक सत्ता की संभाल के लिए केश रखे, वे जानें और ऊँचे भाव जिनकी वजह से केश रखे, परन्तु जो रखे सो ठीक रखे, जिन्होंने पालन किया लाभ प्राप्त किया। इस प्रकार नियम तो यह है, आम व्यवहार कोई नियम नहीं, यह अगर गलत है तो गलत है, आम होना इसको किसी तरह भी दुरुस्त और नियम नहीं बना सकता।

सैय्यद–ठीक जी ठीक। आप तो थोड़े महीनों में फकीर ही नहीं हुए, पंडित भी हो गये हो, कोई और लाभ भी बताओ?

सिपाही—मैंने भाई राधा सिंह जी से प्राप्त शिक्षा आप को सुनाई है कि दामनिक लाभों से बढ़कर आत्म लाभ से बढ़कर और कौन सा लाभ है, जिनके कारण अन्तर ताकत में और शरीर अरोग्यता के बल में रहता है? परन्तु और आम लाभ भी हैं, हम लोग कमज़ोर हैं, बल चाहिए, सूरत रौब दाब वाली चाहिए, गुलाम लोगों को गुरू जी अभय पद बख्श रहे हैं, अभय पुरुष का मन अभय और शरीर शक्ति वाला चाहिए। सदियों से तुर्कों की गुलामी ने हमारी होश तबाह कर रखी है, सुरत को जिलाकर (जीवित कर) शरीर को जबर्दस्त करके सतगुरू ने हमें गुलामी से छुड़ाना है। उन्होंने ऐसा इंसान बनाना है कि इंसान जालिम इंसान से न डरे, शक्ल और स्वभाव रौबदाब वाला धारण करे।

सैय्यद—सूरत (शक्ल) का धर्म के साथ क्या सम्बन्ध?

इतने में राधा सिंह जी उधर से निकले। सिपाही ने आवाज़ लगाई और सारी बातचीत सुनाकर कहा कि सैय्यद साहिब के साथ आप विचार की बातचीत करो। सैय्यद ने फिर प्रश्न किया कि शक्ल का धर्म के साथ क्या मेल है?

राधा सिंह—शक्ल तो कोई न कोई रहेगी, बेशक्ल तो हम हो नहीं सकते, क्योंकि हम बेशक्ल नहीं हैं। इसलिए अगर कटे बाल रखे तो एक शक्ल, गंजे हो गए तो एक और शक्ल, अगर मूँछे नहीं तो एक और शक्ल, अगर हैं तो एक और शक्ल, जो परिवर्तन करो पीछे कोई न कोई शक्ल होगी, शक्ल बदलेगी, परन्तु शक्ल उड़ेगी नहीं। फिर अगर कोई न कोई शक्ल रहनी है तो यह ख्याल कि शक्ल न रहे, व्यर्थ है। फिर शक्ल वह सौभाग्यशाली होगी ज़ो कुदरती होगी, सब से सादी, आसान, और कुदरती शक्ल वही होगी जो कुदरत ने बनायी है, हेरा फेरी वाली शक्ल पर तो एतराज हो, कुदरती शक्ल पर क्यों शंका?

सैय्यद—ठीक है, आप से तम्बाकू भी छूट गया है?

राधा सिंह—हज़ार बुरी आदत उस सच्चे पातशाह के एक इशारे में दूर हो जाती है, भाई नंद लाल जी कहते हैं और मैंने परखकर देखा है। वे जो मैंने शंकाएँ की वे तो मेरे नीचे स्वभाव की हुज्जतें थीं, नहीं तो नेहु क्या और शंकाएँ क्या? दर्शन करने पर पाप झड़ते हैं, कीर्तन सुनने पर समाधि लगती है, उपदेश सुनने पर पूर्ण ज्ञान होता है, नाम लेने पर लिव लगती है।

सैय्यद—हाँ सच! सिक्ख कीर्तन क्यों करते हैं?

राधा सिंह—कीर्तन द्वारा मन का ध्यान लिव की ओर लगता है और तृष्णा बिखरने से मुड़कर जुड़ती है, यह लाभ तो एक है, दूसरे जो अर्थभाव वाणी के हैं उनसे अंदर ऊँचे विचार और खूबसूरत जज़्बे पैदा होते हैं, पशु वृत्ति और पशु स्वभाव छूटता है और दैवी भाव और ईश्वरीय गुण प्रवेश करते हैं। बाणी रचयिता सतगुरू हैं, स्वत: ही मन जो स्थूल रूप की ओर जाता है, तो वाणियों के रचयिताओं की ओर जाता है। उन महापुरुषों ईश्वरीय रंग वालों के चित्त का ध्यान उनके हृदय का नक्शा आँखों के आगे आकर टिकाव और ऊँचेपन का प्रभाव डालता है, जैसे हम दिखाई देते संसार की सूरतों मूर्तियों मोहिनी रंगतों में मग्न हैं, इस तरह हम अदृष्ट के अरूप अंरग स्वरूप के प्रेमी हो जाते हैं, कीर्तन का यह प्रभाव होता है।

सैय्यद–बहुत खूब! फिर सिक्ख और गुरू दिन रात समाधि में बैठे नहीं दिखाई देते। यह क्या बात है?

राधा सिंह–दिन रात की समाधि–हाँ शरीर की समाधि नहीं सिखाई जा रही कि कोई पत्थर हो जाये, सिखाया जा रहा है–'सो इकांती जिसु रिदा थाइ'।।

चलते फिरते, काम करते करवाते अंतर का रुख़ ईश्वर की ओर झुकाव रखे, अंदर ऐसे रहे जैसे ईश्वर के साथ लगा हुआ है। जिस समय शरीर काम करे अंदर कुछ आवाज़ सी गूँजती रहे। ज्यों ज्यों आवाज़ प्रबल होती जायेगी, अपना आप दिखाती जायेगी, परन्तु जब तक शरीर की ख़ातिर का रुख़ संसाराकार है, छोड़ देना हो नहीं सकता, छोड़ेगा तो और पकड़ेगी। जब मन का स्वभाव, मन का रुख़, मन की आवाज़ बदलेगी तो आप ही संसार छूट गया। मानो छोड़ना है न कि शरीर से, मन जब पकड़ में नहीं रहेगा कार्य हो गया। शरीर ने तो एक दिन रहना नहीं, आप ही छूट जाना है और शरीर के सम्बन्ध सभी छूट जाने हैं, नहीं छूटती तो मन की पकड़। क्योंकि इस मन को आवाज़ ने 'पकड़' रखा है। मन की आवाज़ समय के साथ बदलती है। इसलिए निरन्तरता का उपदेश है कि लगा रहे दिन रात, चाहे मद्धम, चाहे ज़ोरदार। इस तरह करते करते अंदर का रुख़ 'ईश्वर रुख़ी' हो जाता है और बाहर से शरीर अपने फर्ज़ों के काम करता है और भलाई में खेलता है। सिक्ख देश और दुखी प्रजा के लिए दानी भी हैं। कभी सतगुरू जी राजधानी, धन-धाम परिवार, पुत्र, सिक्ख, प्यारे, सुख, सामान सब कुछ लुटाकर आये हैं, भले के लिए। दुखी प्रजा के संकट हरने निमित्त सब कुछ न्योछावर कर आये हैं। फिर दुखी नहीं उसी तरह प्रसन्न हैं, उसी तरह बुलन्द हौंसले में है, रस रंग में है, उद्धार करते और प्यार करते हैं, अपने बेगाने जिनके लिए सब कुछ वार आये हैं उनके द्रोह विद्रोह मोह तोड़ने आदि किसी भी बात से नाराज़ नही हुए, फिर दान दे रहे हैं, वार रहे हैं और उन्नत कर रहे हैं।

सैय्यद–कृपा करके बताओ कर्म का क्या ख्याल है? हिन्दुओं में कर्म अटूट है, हमारे में आदतों पर निपटारे हैं।

राधा सिंह–साईं जिये। कर्म देह धारण करके जीव करता है इसलिए कर्म कई तरह के हैं। एक कर्म संसार के प्रबन्ध अर्थ हैं, एक अपनी मुक्ति अर्थ हैं, एक अकर्म कर्म हैं। हम कर्मबद्ध नहीं और हैं भी। नाम जपना कर्म है परन्तु यह अकर्म कर्म नहीं। हम नाम ईश्वर का जपते हैं तो मानों कर्म करते हैं, परन्तु इससे हम ईश्वर के ध्यान में रहते हैं। करते तो हैं कर्म, परन्तु इससे पक्का होता है ईश्वर जी का ध्यान। हाँ, ईश्वरीय गुणों का प्रवेश हमारे मन में होता है इससे। ईश्वरीय गुण स्मरण करते हम फिर उस स्वभाव वाले हो जाते हैं। फिर ऐसे कर्म हमसे नहीं होते कि जिनसे दुख पहुँचे।

इसलिए जिसको कर्म कहते हैं वह नाम से अपने आप स्वच्छ हो जाता है। नाम अभ्यासी पहला कर्म यह सीखता है:-

"दुखु न देई किसै जीअ, पति सिउ घरि जावहु।।"

इस प्रकार जब दुख न देना नियम है तो बरताव सारा नेकी (भलाई) का हो गया, इससे आगे नेकी और फिर निष्काम नेकी है, यह नेक स्वभाव है उसका जिसके अंदर लिव है। अगर लिव नहीं और नेकी करता है तो नेकी की जड़ सवा बालिश्त ऊँची जानो, वह देखेगी मुश्किल। ऐसे कर्म आपने समझ लिया है कि है और नहीं भी है। बाकी रही ईश्वर की प्राप्ति, यह हमारे किसी कर्म के पौधे का फल नहीं यह मेहर है, मेहर हमसे बाहर है, और ईश्वर में है और उसके हुक्म में है:-

दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि॥
इकि जागंदे ना लहनि इकना सुतिआ देइ उठालि॥११३॥

परन्तु यह पढ़कर हमने गंदे आलसी और बेमुख नहीं होना, हमने रात दिन लगे रहना है:-

कबीर केसो केसो कूकीऐ न सोईऐ असार॥
राति दिवस के कूकरे कबहू के सुनै पुकार॥२२३॥

ऐसे हमारी सदा की लालसा, इंतज़ार और माँग ज़ारी है। इसलिए नाम झोली है जो हमने कर्त्तापुरुष के आगे आठ पहर फैला रखी है, लिव हमारी वह लग्न है जो मेहर के दाते के आगे सदा याचक रहती है, ख़ैर डालनी उसके वश है। कारण यह है कि वह है बेअंत, न वह देश के साथ बँधा है न समय के साथ। हम हैं काल में, देश में। हमारा कोई कर्म उसपर हावी हो नहीं सकता, नाम हमें उसी के ध्यान में रखता है, वाहिगुरू की पूजा में रखता है, ऐसे उसका प्यार बढ़ता है और जगत का मोह टूटता है, तैयारी पूर्ण हो जाती है। प्यार और ध्यान द्वारा मानों देश काल की सरहद पर पहुँच जाते हैं। अर्थात् अपने हद्द किनारे वाले, अंत वाले, मित्त वाले स्वभाव के आख़िरी किनारे पर जा खड़े होते हैं। अब आगे अमिट, अनन्त, असीम में छलांग हमसे लग नहीं सकती, वह अनन्त का करिश्मा है, जो हमें अपने में खींच लेता है:-

बांह पकड़ि ठाकुरि हउ घिधी गुण अवगण न पछाणे॥ (जैतसिरी म॰ ५)

यह निग़ाह है, यह मेहर है, परन्तु यह निग़ाह उस अनन्त का अपना करिश्मा है, उसका कटाक्ष है, उसका कोई कौतुक खेल प्यार है। हमारे कर्म का यह 'फल' हमारे कर्म के यह अधीन, हमारे कर्म के वंश का यह कौतुक, यह कटाक्ष नहीं है, न हो सकता है। ऐसे है साईं जी। मुक्ति की प्राप्ति। हमें सत्संग हो, दाता मेहर करे तो हम उठते बैठते, चलते फिरते उस नूरोनूर अकाल पुरुष के प्यार की लिव में रहें। हमारा जीवन हो लिव का, नाम का, रज़ा का। यह जी उठना है: 'नानक से जागंनि जि रसना नामु उचारणे॥' जी उठे का साईं के साथ संयोग साईं की नज़र है–

सहु नदरि करि देखै सो दिनु लेखै॥

हाँ जी–

जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥
नानक नदरी नदरि निहाल॥३८॥

जो नाम में आ गये हैं, मेहर द्वारा आये हैं–हाँ, यह भी एक मेहर है, अपने ज़ोर अहंकार के साथ यह भी नहीं।

जोरु न सुरती गिआनि वीचारि॥

पर क्या जब पता यह लग जाये तो उद्यम और यत्न छोड़ दे? कभी नहीं। हुक्म है:-

उदमु करहु वडभागी हो सिमरहु हरि हरि राय॥

सैय्यद–फिर न ज़ोर करे, न उद्यम करे, यह तीसरी हालत क्या हुई?

राधा सिंह–

प्रभ की उसतति करहु संत मीत॥
सावधान एकागर चीत॥

प्रभु की स्तुति करो, कहते हैं करो, परन्तु ज़ोर से नहीं -

सावधानी के साथ एकाग्रता के साथ, अर्थात आलस न करो सावधान रहो, जोर से न समझो मेहर से समझो।

मेहर समझो परन्तु हर हालत करो? क्या?

नाम आराधन–सिमरन (स्मरण)! फल क्या?

आपका जी उठना, अपने आप का टिकाव (स्थिरता), रस। इस अवस्था पर मेहर होगी, नज़र पड़ेगी तो–

'नानक नदरी नदरि निहाल' हो जायेगी।

इसलिए यह नाम जपना मेहर भी है, परन्तु यह नाम जपना गुरू जी बताते हैं कि मेहनत भी है:-

'जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥१॥'

जो नाम जपेगा वह आप छुटेगा, औरों को छुड़ायेगा, वह मरद सिक्ख है जो जपता और जपाता है। सतगुरू जपने और जपाने वाले के सदके होते हैं।

सैय्यद–हाथ बाँधकर और नम्रता सहित बोले जिसका मतलब यह है:-

तूँ डिट्ठा असां दिखाल कुड़े।
करि दरशन नाल निहाल कुड़े।
तूँ जपिआ असां जपाल कुड़े।
अंग पिआरां वाला पाल कुड़े।

४. अजमेर सिंह

लक्खी जंगल में मानों फिर से आनन्दपुर बन गया। आज देखो क्या कौतुक हो रहा है। दीवान सज रहा है और 'आसा दी वार' का भोग पड़ रहा है (समाप्ति होना), सतगुरू जी मसनद पर बैठे हैं, संगत अपार जुड़ी हुई है, कड़ाह प्रशाद बाँटा जा रहा है, दाना सिंह जी भागे आये हैं और कहते हैं–

सच्चे पातशाह जी! मंहत सुक्खू बुद्धू घुदे गाँव से आ रहे हैं, उनके साथ एक भारी भीड़ लट्ठबाज़ों की, शस्त्रधारियों की है, श्री जी के कर कमलों से शहीदी प्राप्त करने आ रहे हैं।

सतगुरू जी–हमने उनका क्या गँवा दिया है जो हमें मारने आ रहे हैं?

दाना सिंह–मेरे जासूस ने बताया है कि जब श्री जी कोटकपूरे को गये हैं तब मलूके के कोष्ठ के पास एक सिंह जी शिकार खेल रहे थे, तब एक दिवाने साधु को उस सिंह के हाथों अनजाने में चोट लग गयी थी, जिसकी वजह से उसकी मृत्यु हो गयी थी। श्री जी ने उस साधु की बहुत परवरिश की थी, संगत की ओर से यथाशक्ति सेवा मदद हुई थी, परन्तु सुक्खू और बुद्धू मंहत कहते हैं: बदला लेना है, इसलिए आ रहे हैं, कहते हैं 'मार लेना है'।

सतगुरू जी–जासूस को फिर भेजो, वे तो भय ने रास्ते में ही पकड़ लिए हैं और साथी भागे जा रहे हैं, भीड़ खिसक रही है, फिक्र अकाल पुरुष जब कर रहा है तब हम क्यों करें? आप अचिंत रहो। अगर पता करना है तो कर लो, परन्तु चढ़ाई कर पहुँचता कोई नहीं।

कुछ देर सतगुरू प्रेमियों को मिलते रहे, लगभग एक घंटा बीता होगा कि दो सज्जनों ने आकर माथा टेका। सतगुरू बोले: ओ संतों! साज कहाँ छोड़ आये, जाओ लेकर आओ और मालवे की कोई धुन सुनाओं। दोनों भागे गए और ढड्ड सारंगी ले आये और सुरतान कर गाने लगे–

कच्चा कोठा विच वस्सदा जानी।
सदा न मापे नित्त नहीं जुआनी।
चल्लणा अग्गे ना हो गुमानी।
***हरि भज लै न हुए पछुतानी॥**

खुश होकर सतगुरू जी बोले–'कुछ माँगो?'

वे बोले–पातशाह। चढ़कर आये थे, साथ में भीड़ थी, रास्ते में सब पर भय छा गया सभी साथ छोड़ गए। हमने भूल की थी, चाहिए था आपकी शरण में आना, आप गुरू हो, गुरू की शरण झुककर जाते हैं। आपने मेहर की, बेअदबी करने से बचा लिया। पाप उघड़ गया, अच्छा हुआ। अब मेहर करो, बख्श लो और कुछ दिन सेवा दान करो। साथ रहें, हाथ सफल करें, कोई दो चार कोस आपका पलंग कंधों पर उठाकर चलें, जिससे अंदर का अहंकार और मैल धुल जाये। तुझे पहचानें, और तेरे नाम दान के प्रवाह में से कोई चोंच भरकर हम भी प्रसन्न होहों।

तब सतगुरू जी ने सेवा की आज्ञा संगत में रहकर करने की बख्श दी।

अब सतगुरू उठने के लिए तैयार हुए, तब क्या देखते हैं कि दूर एक मुसलमान फ़कीर अच्छे सुन्दर रूप रंग वाला गले में पल्ला डालकर खड़ा है, नेत्रों से नीर जारी है, चेहरे का रंग बताता है कि अंदर से कुछ द्रवीभूत हो रहा है और प्यार के जज़्बे में गुम है। सतगुरू ने आवाज़ दी:–

* चौथी पंक्ति सूरज प्रकाश में नहीं है, तवारीख में ऐसे है: 'हुण होहु सिआणा नहीं पुगू निदानी'। और पाठांतर ऐसे भी है, 'उडया भौर तां खाक निशानी'।

दाना सिंह बरखुरदार! यह प्रेमी कौन है?

दाना सिंह–जी पातशाह! चरण कमल का भँवरा है।

सतगुरू–क्यों आया है?

दाना सिंह–जी दाता जी, शमा (दीपक) जले तो पतंगे स्वयं आ जाते हैं।

सतगुरू–हमने तो तुर्क राज्य की अत्याचारी हो जाने के कारण, ईंट से ईंट बजानी है और यह तुर्क कैसे हमारे आ गया है?

दाना सिंह–पातशाह! अति प्रेमी है* और शरण आया है।

सतगुरू–अकाल पुरुष का दरवाजा सदा खुला है, सिमरन (स्मरण) का रास्ता कभी बंद नहीं। किसी के लिए कभी बंद नहीं।

दाना सिंह–जाप करवाओ न।

इस समय विवश हो फकीर चरणों पर गिर पड़ा, हाँ, शरीर ने गिर कर बता दिया कि प्यारे, दर दर्शन के प्रेमी, किस तरह 'बनु बनु फिरत उदास बूँद जलकारणे' गिरते हैं। सतगुरू सिर पर हाथ फेरकर–सिक्खी धारण करेंगे?

फकीर–जो बख्शेंगे।

सतगुरू–हमारे पास सबसे अधिक प्यारी चीज़ सिक्खी है।

फकीर–करो मेहर! (सिर उठाकर हाथ जोड़कर)।

सतगुरू–क़ौम, गुस्से हो जायेगी?

फकीर–सारी लज्जाएँ घर छोड़ आया हूँ, आत्मा में एक प्यास है, किसकी? पता नहीं, तृप्ति हुई है तो दर्शन करके। एक भूख है, क्यों? ज्ञान नहीं, संतोष आया है तो चरण कमल परस कर। मुझे क्या करना है? आप जाने! क़ौम के लोग मेरे अन्दर ठंडक नहीं डाल सके, बाहर की बनावट मुझे थका चुकी है। अब तो एक यही ओट है (चरण पकड़कर):–

'जिउ भावै तिउ राख लै।'

सतगुरू–सिक्खी कठिन है, दुर्गम है। अगर आप सिक्ख हो गये तो जगत हँसेगा, जगत दुख देगा। सिक्खी 'अलूणी सिला' (भाव सब रसों के त्याग से है) है, ऊँचे रस को पड़ते समय लग जाते हैं। हाँ, सिक्खी कमाना+ कष्टों के वन में गिरना है। फिर आजकल सिक्खी धारण करना जान तली पर रखना है।

फकीर–परन्तु जान किसी तड़प में है, इसको ठंडक पहुँचाओ, फिर जो हो सो हो।

---

* एक पुरातन गीत फकीर की प्रेममयी अवस्था का दर्शनीय है:-

'सिकदे रांहदे नैण मेरे, सिकदे रांहदे।'

रानीं दिहें सानूँ ध्यान तुसां दा जिउं दरया पए वांहदे।

सूरत तेरी साईआं जग विच ज़ाहर उहले किउं छप बांहदे।

नानक गुरू! तेरा सभ सदका जो गुर की पैरी पांदे।

\+ नियमों का पालन करते हुए सिक्खी निभाना।

दाना सिंह की मेहर द्वारा मेरे कर्म जाल के वहम टूटे हैं, मेरी शंकाएँ भागी हैं, मैं बुझा हुआ दीपक किसी बिछोड़े के दाग़ से दाग़ा पड़ा हूँ कोई छुअन लगाकर जगा दो।

सतगुरू–सिक्खी मुश्किल है, अमृतपान करना पड़ेगा।

फकीर–मुर्दा हूँ, दो कोई आबेहयात की बूँद।

सतगुरू–साबुत सूरत।

फकीर–जो ईश्वर ने बनाई, उस पर शक़ करूँ तो कुफ्र है।

सतगुरू–साध संगत (सद्जनों का जमावड़ा) खालसा जी! यह कौन है?

फकीर–मुसलमान।

सतगुरू–कौन सा?

हिन्दू जिनसे ग्लानि करते हैं, तथा अरब के पैगाम्बर के नाम पर जो एक बिरादरी है। या ईमानदार, अंदर से ईश्वर के विश्वास वाला।

फकीर–वे जिनकी परछाईं से हिन्दू नफ़रत करते हैं, घृणित को, उस नीच को कबूल कर।

सतगुरू–साध संगत जी! यह मुसलमान है, मुसलमान से हिन्दू एक अछूत लोगों का भाव लेते हैं, आपने खालसा करना है।

सारा खालसा–पातशाह! तेरे दर पर एकता है।

सतगुरू–आप प्रसन्न हो?

खालसा–आप की इच्छा में अपनी मर्ज़ी मिलाने वाले दास प्रसन्न हैं।

सतगुरू–मान सिंह! अमृत तैयार करो और साईं जी को पान करवाओ। ईश्वरीय दीदार की तड़प वाला हृदय है, दर दर्शन का प्रीतम है, इसके अंदर गुरू नानक मेहर से ईश्वरीय इच्छा आ विराजी है, अमृतदान करो, खालसा सजाओ, जिससे कच्चपिल्ल (अपरिपक्व) नज़दीक न फटके। हुक्म होते ही फकीर के डेरे से सवा सवा मन रसद कड़ाह प्रशाद के लिए आई, लंगर के लिए अलग से रसद आई। अब पाँच प्यारे आये, अमृत तैयार हुआ और सतगुरू जी की हुज़ूरी में मान सिंह जी ने अपने हाथों से छकाया (पान कराया)। पातशाह ने नाम अज़मेर सिंह* रखा। यथा–

सुन श्री प्रभ प्रसन्नता धारी। पूरब भली रीति तैं डारी।
मुसलमान हुए भावन धरै, मिलन पंथ मैं जे हित करै॥८॥
तउ इहु उचित खालसे बीच, अंमृत लै ऊचा कै नीच।
मान सिंघ सिउं हुकम बखाना। खरे होहु करि सिक्ख सुजाना॥९॥
लै आगया अंमृत बनवायो। खरे होय ततकाल छकायो।
श्री मुख ते तबि नाम उचरिओ। शुभ अजमेर सिंघ तिह धरिओ॥१०॥
वाहिगुरू जी की कहि फते। भा कलयाण उचित मुद चिते।
सिमरन करन लगयो गुर केरा। गुरबाणी पठि संझ सवेरा॥

(गु॰ प्र॰ सू॰ अै॰ १-१८)

---

* तवारीख में लिखा है कि बड़ी महिमा के साथ सिंह सजने के कारण सिंहों में अकसर 'महिमा सिंह' करके भी बुलाये जाते थे।

५. सदा अंग संग

अजमेर सिंह का भंडारा छक कर (खाकर) संगते गदगद थीं। खालसे में प्रेम हिलोरे ले रहा था। एक भारी पीरी मुरीदी* वाले, विद्वान, खोजी, जिज्ञासु, तपी, प्रसिद्ध अगुआ का, सतगुरू में इलाही ज्योति की प्रतीति और अनुभव करके, उनके आदर्श पर आ टिकना एक जीवित करामात थी। उधर फकीर द्वारा अपने दीन मज़हब और इज्जत को न्योछावर करना वह कुर्बानी थी कि जो देश में प्राण फूँकने वाली थी। अजमेर सिंह की कथा सारे मालवे में फैल गयी। मुसलमानों में आश्चर्य हुआ, सिक्खों में विस्मय हुआ, हिन्दू हक्के बक्के रह गये, भंडारे और लंगर के समय भी किसी ने कुछ नहीं कहा, सभी ने प्रशाद ग्रहण किया एवं खाया। सच्चे प्राणदाता (प्राण देने एवं डालने वाले) यह भारी क़िला फतह करके यह पक्की नींव रखकर कि सिक्ख धर्म सर्वदेशीय एवं सर्वकालिक है, अब आगे को विदा होने के लिए तैयार हुए। यह तैयारी उस तड़पती आत्मा के लिए भारी वियोग था, जिस आत्मा ने सच्ची प्यास में, सच्ची तलाश में उम्र बितायी थी। उसको ठंड पड़ते ही ठंड के स्रोत से बिछुड़ते हुए एक शल्य पड़ता था, एक घाव लगता था–मार्मिक घाव–जिसको, जिनको लगा हो, वे ही समझ सकते हैं। प्यार न लगे तो सभी सयाने हैं और शिक्षा दाता हैं, लेकिन लगे तो सब सिट्टी पिट्टी भूल जाती है। फिर अगर प्रेम रूहानी पक्ष का हो तो अक्ल प्रेम पर हावी नहीं हो सकती। इसका यह भाव नहीं कि अक्ल से बेअक्ली हो जाती है पर यह कि जगत की अक्ल उसको दबा नहीं सकती। अजमेर सिंह को दो उपदेश कि वियोग की पीड़ा न सहे। कुछ आवश्यकता है? वह आप घंटों तक व्याख्या कर सकता है, पर इस अंदर की प्रेम पीड़ा को कौन सिखाये? विरह विरह है, बातें नहीं।

आये हैं अब दाना सिंह जी, समझदारी दान कर रहे हैं:–

दान सिंह–प्यारे जी! सतगुरू अपनी इच्छा के मालिक हैं। किसी ईश्वरीय रंग में विचर रहे हैं, कौन कहे ऐसे नहीं ऐसे करो। उन्होंने जाना है, कहाँ? क्यों? वे जानते हैं, हमने हुक्म मानना है।

अजमेर सिंह–ठीक है, मैं मानूँ? हैं..........मैंने मानना है, परन्तु हाथ रख कलेजे पर। देखा है। कल रागियों ने क्या गाया था:-

विछोड़ा सुणे डुखु विणु डिठे मरि ओदि॥
बाझु पिआरे आपणे बिरही ना धीरोदि॥३॥

रख तो सही हाथ मेरे कलेजे पर (हाथ पकड़कर रखकर) देख क्या होता है? मैं अपने को आप कह रहा हूँ–तू मर्द है, बड़ी उम्र का है, तुझे सिमरन वाणी दान मिला है, जीवन कणी प्राप्त हुई है, ईश्वर का प्यार पल्ले पड़ा है, तू खुदापरस्त है, तुझे लिव मिली है, तृष्णा तोड़ी गई है, रहो लिव में। व्यापक है परमेश्वर, घर-घर में बसता है प्यारा, रहो उसके ध्यान में, आत्मा का पर्दा उठाई रखो और रहो दीदार में। परन्तु मैं क्या करूँ? मुझसे

---
* शिष्यत्व।

बिछुड़ा नहीं जाता, मैं सिंह हूँ, केशधारी वीर हुआ हूँ, मैं खालसा हूँ, मैं उस आदर्श का राही हूँ जो सतगुरू कहते हैं कि ईश्वर का होता है कि ऐसे लोग हों। मैं अभय पद का राही हूँ, मैं शूरवीर वरियाम फकीर हूँ, पर दाना सिंह। मैं शुष्क बंजर नहीं, मैं खुश्क चट्टान नहीं। मैं दिलहीन वृक्ष पेड़ नहीं, मैं दिल वाला हूँ और उस दिलवाला हूँ जिसमें सतगुरू ने प्राण डाल दिए हैं, जिससे दिल हर उत्तम उमंग को देखता है, द्रवित होता है, बता मैं क्या करूँ? मुझसे बिछुड़ा नहीं जाता।

दाना सिंह (वैराग्य मूर्ति होकर)–सिंह जी! सतगुरू इस प्रेम के ज्ञाता हैं और पसीजने वाले प्रीतम हैं। वे द्रवीभूत होते हैं, पर वे किसी ऊँचे आदर्श, किसी मर्म, किसी फर्ज़ के पीछे हैं। कई बार कह चुके हैं कि अकाल पुरुष के अदेश देश से आने का चित्त नहीं था, हुक्म करके आये हैं, हुक्म पूरा कर रहे हैं, पर ध्यान प्रभु चरणों में ही रहता है, वहाँ से उठता नहीं, प्यार नहीं मुड़ता और याद नहीं बिसरती। अगर आप प्रीततार खेल रहे हैं वे कब दूसरे की प्रीत-तार की झनझनाहट को नहीं पहचानते, और नहीं द्रवित होते, परन्तु हम उनके चित्त को नहीं समझ सकते। वे उदास चित्त होकर नहीं जा रहे। जो हुक्म ईश्वरीय दर से यहाँ ले आया है वही हुक्म हर प्यार, हर सुख के ठिकाने से उनको लिए घूमता है। आपके लिए मैंने विनय की थी, फ़रमाते थे, उदास होने की ज़रूरत नहीं, सिमरन करें, सिमरन करें (स्मरण करें)। अकाल पुरुष अंग संग है, सतगुरू नानक की हिफाज़तें हैं, पहरेदारियाँ हैं, प्यार हैं।

अजमेर सिंह–फिर, क्या हुक्म हो गया है कि मैं यहाँ ही रहूँ और सतगुरू चले जायें?

दाना सिंह–सतगुरू जी चले जायें, यह तो हुक्म है। आप यहाँ रहो, यह सहज-स्वभाव की बात है, हुक्म पा आज्ञा नहीं हुई।

अजमेर सिंह–(सुख की साँस लेकर)–शुक्र है।

दाना सिंह–क्यों?

अजमेर सिंह–मुँह छोटा बात बड़ी है। भाई जी! मैं क्या करूँ? मेरे वश नहीं, बिछुड़कर रहना अगर हुक्म है तो हो जायेगा? परन्तु इस समय मैं विवश चाहता हूँ कि मैं अंग संग रहूँ, मैं सेवा करूँ, मैं ये नेत्र ईश्वरीय दीदार के शीशे पर टिका-टिकाकर दर्शन का शर्बत पीऊँ और शीतल होऊँ। मेरे अंदर सुख व्याप्त हो, समीप रहूँ और सेवा कमाऊँ, जिससे मेरे हाथ पाँव सफल हों। अगर सतगुरू किसी भी तरह नहीं रुकते तो मैं अपनी रोक तोड़ूँ और चरणों में हो चलूँ, आज्ञा ले दो।

दाना सिंह–हैरान होकर, यह डेरा और यह करामात का चमत्कार कैसे छोड़ोगे। आपके प्रेमी कितने अच्छे हैं कि आपके सिंह सज जाने पर भी नाराज़ नहीं हुए सिवाय गिनती के शरइयों के।

अजमेर सिंह–नेत्र भरकर:-

संमन जउ इस प्रेम की दमक़िहु होती साट॥
रावन हुते सु रंक नहि जिनि सिरि दीन्हे काट॥ (चौबोले)

आप ही पढ़ा करते हो, ठीक है ना ....। मैंने पीरी का शिष्यत्व और इस तरह की आई पूजा को क्या करना है? मुझे दिल की ठंड की आवश्यकता है, दीदार की आवश्यकता है, और आवश्यकता खत्म हो चुकी है।

दाना सिंह–बहुत कुर्बानी है।

अजमेर सिंह–कैसी कुर्बानी है? रह जो नहीं होता। रहा जाये तो चलूँ तो फिर कुर्बानी है। दिल की दवा दीदार हो गया है, दवा खानी भी कोई कुर्बानी होती है? यह तो दवा है और अपना भला है, या ऐसे कहो कि खुदगर्ज़ी है। मैं तो अपने मन की ठंडक के लिए बिछुड़ता नहीं, बिछुड़ सकता नहीं। हाँ, कर मेहर जहाँ चरणों में लगाया है, चरणों में समा भी दे, ले दे आज्ञा।

दाना सिंह–सोच ले, सेवा धर्म कठिन धर्म है, हर समय की हुज़ूरी और सेवा मुश्किल कमाई है, पास रहकर शब्द की चोट उससे भी मुश्किल है। बाद में अगर दिल डोलने लगे तो अच्छा नहीं, पहले कदम न उठाना अच्छा है, उठाकर मुड़ना बुरा है।

अजेमर सिंह–दाने! छोड़ समझदारियाँ फार कर, नदी को समुद्र में गिरने दे, गिरने दे बीच में, बहुत दूर से आई है, बड़े पहाड़ पत्थर मैदान बालू स्थलों में, घिसने में घिसटती और टकराती आई है, पड़ने दे सागर में और लेने दे आराम, क्यों डराता और रोकता है? तू तो मरहम है आप, मार्मिक पीड़ाओं का जानकार है और पीड़ाओं वाला है, रहने दे चरण शरण, साथ साथ।

यह कहकर अजमेर सिंह जी विह्वल हो गये। दाना सिंह के नेत्र भी न रुके। चुप्पी छा गयी। आह! प्यार की कसकें।

आ गये ईश्वरीय प्यार के महरम, हाँ, समुद्र आ गया।

'गुरू समुन्दु नदी सभि सिखी'

हाँ, उछल पड़ा है पति समुद्र। दौड़ी नदी को आगे से उछलकर गुरू समुद्र लेने आया है, थल पर आ गया है लेने नदी को। आ गए साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह रूह फूँकने वाले, जिंदा रखने वाले। अजमेर सिंह का सिर अपनी शीतल छाती के साथ लगाया, हां, प्यारा सीस झुक रहा है दर दर्शन के प्रेम के सीस पर, और मधुर तथा प्यारी हो रही है वाणी–

चल्ल प्यारे रब्ब सुआरे अजमेर सिंघ! चल बई नाल चल;
खालसे विच अंग संग रहु, कर सतिसंगत ते कीरतन,
जप ते जपा, विछुड़के किउं रहिणा है, रहु बई नाल।

यह अचानक सहायक होना, इंसानी पीड़ा का फौरन जवाब देना, सारे सिख गुरू साहिबान का एक अनोखा ढंग रहा है। जहाँ पीड़ा है, झनझनाहट है, जहाँ आवश्यकता है, कसक है वहाँ ही पहुँचे हैं। हाँ चक्कर काटकर पहुँचे हैं, खेद झेलकर पहुँचे हैं किसी विलाप करती आत्मा की पुकार सुनकर कभी कान नहीं बंद किये और पहुँचने से कभी चरण नहीं रोके। यह इंसान की अंदर की (आंतरिक) तड़प को उत्तर देना पूर्ण ईश्वरीय

गुण कमाल का सारे गुरू साहिबान में हुआ है। दिलों के महरम दिलों को ठंडक पहुँचाते हैं। इंसान कमज़ोर है, इंसान के अंदर अगम्य के सामान हैं। इंसान अपने अंदर को (आत्मा को) आप नहीं समझता। आत्मा के उछाले और पेच (ख़म), उमंग और उत्कंठा अकथनीय तड़प पैदा करते हैं। इंसान के अंदर कभी कभी न बुझती न सुझाई देती पीड़ाएँ लगाने वाली तरंगे उठती हैं। कौन है जो इनके लहराने के समय सहायक हो (पहुँचे)। सुधारक और शिक्षा दाता, उपदेशक और बुद्धि देने वाले, समझाने और व्याख्या करने वाले अनंत आये और गये, परन्तु इंसान की पुकार, पीड़ा और दिल के दाह पर इन महापुरुषों की तरह ये आप ही प्रसन्न हुए हैं क्यों न इस मेहरबान होने वाली आदत पर इंसान न्योछावर हो। क्यों न दिल, इंसान का दिल, इनके मोह में द्रवित हो? प्रत्येक गुरू साहिब के जीवन में ऐसी घटनाएँ हैं, जब आप इस समझ न आने वाले अनंत भाव से पूरित इंसानी दिल की अबूझ और असूझ बिलबिलाहट, तड़प और उत्कंठा पर स्तम्भों में से मानो पहुँचते रहे हैं। आप अपने रुहानी ओज, इख़लाकी (चारित्रिक) उच्चता, शोभा, ऐश्वर्य प्रताप के कभी अंहकार में नहीं गये। ग़रीब, अमीर, वृद्ध, जवान, मर्द, औरत, हीन, बाहुबली, जिसके अंदर विरह कसका, आप पहुँचे हैं। हाँ जहाँ इंसानी दिल तड़पा है, वहाँ ही गुरू की हुज़ूरी हाज़िर हुई है और ठंडी ठंडी मलहम रखने वाली हुई है। इंसान का दिल क्यों न इस मेहर भरी हमदर्दी और इस प्यार लहर की कंपन पर मोहित हो जाये और कहे कि मेरा आश्रय, सहारा, रोशनीघर, रहबर, रास्ते का ढंग बता, दिल का सहारा और मन का आधार गुरू है। आज भी देखो समुद्र उछल कर दूर से चलकर आई नदी को आ मिला है और कहता है—हाँ जी, आओ चलो मुझमें और मेरे अंगसंग।

अजेमर सिंह जी द्रवित हो गये। द्रवित तो पहले ही हो रहे थे, द्रव कर बह गये। हाँ जी, द्रवित होना ईश्वरीय दरबार में जाने के लिए ज़रूरी करिश्मा है:-

अनिक जतन करि आतम नहीं द्रवै॥
हरि दरगह कहु कैसे गवै॥

आत्मा द्रव गई है, तो अब हरि दरगह की क्या रूकावट है?

हाँ जी, द्रवित हो रहे अजमेर सिंह और द्रवित हुए हैं, बिरदपालक बिरद की करनी देखकर अपना आप घुलकर घुल मिल गया है। चरणों को लिपट गये हैं और बोलते हैं, "धन्य! धन्य! धन्य!' परन्तु गला रुक गया है, शरीर गदगद है और आवाज़ आत्मा में ही गुंजार दे रही है और अनहद रूप में कह रही है, "धन्य! धन्य! धन्य!" और सतगुरू अनुभव कर रहे और कह रहे हैं:—"चलो अजमेर सिंह! सज्जन! इकट्ठे रहेंगे।" यह नक्शा, यह झांकी गुरू सिक्ख संगम की सदा आँखों के आगे टिकी रहे।



सूचना: फिर सतगुरू कई गाँवों (बाजक, जस्सी आदि) में से होते हुए पक्के गाँव आ गये, रास्ते में अनेक कौतुक हुए, मेहरे हुईं। इससे आगे के कौतुकों का कुछ वर्णन आगामी प्रसंग में है।

८५ बीबी देसां*

: १ :

जाचक जनु जाचै प्रभु दानु॥ करि किरपा देवहु हरि नामु॥
साध जना की मागउ धूरि॥ पारब्रहम मेरी सरधा पूरि॥
सदा सदा प्रभ के गुन गावउ॥ सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ॥
चरन कमल सिउ लागै प्रीति॥ भगति करउ प्रभ की नित नीति।
एक ओट ऐको आधारु॥ नानकु मागै नामु प्रभ सारु॥

(सुखमनी २०)

सुखमनी की यह प्यारी प्यारी पौड़ी+ पहाड़ी की मीठी मीठी सुर में किसी तीखे कोयल जैसे गले और बिंधे हुए मन से गायी जा रही है। रात एक पहर के करीब बीत चुकी है, नीले आकाश पर तारों की छटा चमक-चमक कर रही है। देश चाहे बहुत गर्म है, परन्तु मरुस्थल का है और मरुस्थलों का यही स्वभाव है कि दिन में अत्यधिक तपते हैं, परन्तु रात को जल्दी ठंडे हो जाते हैं। इस समय मीठी मीठी ठंडी ठंडी हवा बह रही है, चुप्पी छा रही है और शांति भरा एंकात रसमयी प्रभाव डाल रहा है। इस शांति के समय ऊपर वाली विनती का गायन हो रहा है और आत्मा अरदास में जुड़ी हुई है।

रात कुछ और बीत गयी और यह आवाज़ भी चुप्प हो गई। आवाज भी चुप्प हो गई और अंदर से अरदास भी अब नही हो रही, परन्तु ध्यान उसी दर की ओर, उसी ईश्वरीय नूर (शोभा) की ओर लग रहा है। .... अरदास स्वीकृत होकर चुप देश से, अपना जवाब ले आई है। वह है -- मन में सिमरन (स्मरण) का रस भरकर चल पड़ना। सुरत नाम में लिप्त है, रोम रोम से वाहिगुरू वाहिगुरू की झनकार चल पड़ी है। नेत्रों में एक नशा है, शरीर का हल्कापन इतना है कि शरीर प्रतीत ही नहीं होता। स्वाद है, ठंड है, स्थिरता है, एक खिंचाव है उसका रंग है और सिमरन एक संगीत की झनझनाहट की तरह रोमों में आप ही जारी है। ठंडी ठंडी हवा की तरावट माथे और आँखों पर आकर छूती एक आश्चर्यजनक रस भर रही है। ऐसे निमग्न बैठे हुए रात बीत रही है।

परन्तु निद्रातुर नयन ऊँघ रहे हैं, 'जगत आँख' गहरी निद्रा में है, परन्तु ये स्नेह वाले-ईश्वरीय स्नेह वाले-नेत्र जाग रहे हैं। स्नेह वाले नेत्र जागकर प्यारे की छवि में मस्त हो रहे हैं। इस तरह बैठे हुए दूसरा पहर भी बीत गया। भाग्यों वाला है यह शरीर जो सतगुरू

---

* यह प्रसंग सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४५४ (१९२३ ई॰) के गुरुपर्व सप्तमी पर ट्रैक्ट की शक्ल में प्रकाशित हुआ था।

\+ एक छंद।

की बख्शिश वाले घर आया हुआ है। भाई भगतू परलोक जा चुके हैं; यह आपके घर की एक पुत्रवधू है, जिसका पति भी सच्चखंड (देवलोक) प्रस्थान कर चुका है। यह बख्शे घराने की रंगरत्तड़ी (प्रभुरंग में रंगी) श्री कलग़ीधर जी के इलाही अनुराग में अपना उच्च जीवन बिता रही है। जब कभी समय मिला है, आनन्दपुर गयी है और दर्शनों से कृतकृत्य होकर अपनी आत्मा में दाता की कृपा से वाहिगुरू जी के 'नामप्रेम' में बढ़ोतरी ही लेकर आई है। यह बीबी (स्त्री) अपने घर में बाकी कुल से अलग-थलग रहती है। रिश्तेदारी बड़ी है, जेठों (पति के बड़े भाई, ज्येष्ठ) के परिवार हैं, वे नज़दीक-नज़दीक हवेलियों में रहते हैं, उनके घरों में सिक्खों, संगतों के समूहों का अतिथि सत्कार होता है, परन्तु इस भक्तिन को किसी से लेना देना नहीं। अपने दानों (अनाज) में निर्वाह और अपनी झोंपड़ी में छिपाव। बस उलझन उलझी एक साईं के नाम की, और साईं की सातों ख़ैरीं (पूर्ण सुरक्षा)। रोटी पका लिया करना और खा लिया करना, काम करना तो हरि के नाम का। अगर बीबी के हाथ चलने और ज़रूर न चलें रह सकें तो कपास चुनना, झाड़ना, बेलना, कातना, अटेरना और कोई सुन्दर वस्तु बुनना, जब कभी किसी ने आनंदपुर जाना, प्यारे के चरण कमलों में रेजा* भेजकर निहाल हो जाना, सारा काम करते हुए बीबी के ध्यान ने चरण कमलों में जुड़ा रहना, इसी चाव में ही काम होना, ध्यान ने इस आश्रय से बेमालूमे टिके रहना, जिह्वा ने स्मरण करते रहना और मन ने उड़ने से रुकना और ईश्वरीय लहर में झूमते रहना, लिव में जुड़ जुड जाना। इस तरह के 'जीते जागते सिमरन-रंगों' में इस वीर स्त्री ने अपना जीवन पा रखा था।

पर हाय! इतने सुन्दर रंगों में रहने वाली अब दिलगीर हो हो जाती है। आनंदपुर वीरान हो चुका है, अरशी (दैवी) ज्योति उसको छोड़ चुकी है, ईश्वरीय आदेश (भाणे) और साके+ घट चुके हैं और वह कोमल प्रेम वाली माई, जिस का नाम देसां था, सारी दुख भरी बातें सुन चुकी है, चमकौर के साके कानों में पड़ चुके हैं। वे आनंदपुर के ईश्वरीय स्वादों के नज़ारे आँखों के आगे आते हैं, दिल खिंचता है, फिर वे खेद, वे युद्ध, वे कत्ल, वे प्यारों के बिछोड़े, काली रातें, घमासान, साहिबज़ादों और सिक्खों की शहादतें, जो सुनी थी आँखों के आगे घूमती हैं, कलेजा डाँवाडोल होकर बह चलता है, घड़ियाँ ही वैराग्य में बीतती हैं, परन्तु फिर होश लौटती है और कहती है: "प्यारे के कौतुक हैं, उसकी अपनी प्रसन्नता है। उसको कौन दुख दे सकता है? ये हमारे दुख हैं जो उन्होंने मारने हैं, उनका युद्ध हमारे दुखों के साथ है। सृष्टि का बोझ हर रहे हैं, हमारे मोल लिए अपने पर लेकर खत्म कर रहे हैं। मालिक हैं, पालक हैं, कौतुकी हैं। हाँ उनको दुख क्यों है? उनकी तो दुख दर्द पर फ़तह है, वे तो अकाल के अपने हैं।

ऐसे अभ्यासी, 'नाम अभ्यासी मन' वैराग्य, प्रेम और स्थिरता में घूमता रहता था कि ये खबरें कानों में पड़ीं-मुक्तसर में फिर युद्ध हुआ है, खालसा ने तुर्क मार भगाये हैं।

---

* बढ़िया एवं मज़बूत सूती कपड़ा।

+ कोई ऐसा कर्म जो इतिहास में प्रसिद्ध होने लायक हो।

विजयी सतगुरू मालवे से तप्त मालवे में आ विराजमान हुए हैं, तलवंडी साबो की ज्योति आ जली है, दमदमा रच लिया है, संगतें आ मिली हैं, उस 'हरख सोग बैराग अनन्दी खेलरी दिखाइओ' वाले दाता ने आनन्दपुर जैसा समागम रच दिया है। वही दीवान और कीर्तन हैं, वही इलाही दर्शन, वही अमृत के प्रवाह जारी हैं और वही हँस-रंग प्रेमियों के झुण्ड उमड़-उमड़ कर आ रहे हैं। इस तरह की बातें सुनकर देसां का जी दर्शनों को तड़पता है, परन्तु अभी पैर नहीं चलते। अब किसी माई ने पक्की सूचनाएँ दाता जी के सुखी कौतुकों की आ बताई हैं, तभी इस तरह प्यार में अरदासें कर रही है और दर्शन का दान माँग रही है।

आधी रात बीत जाने के बाद देसां सोई थी, इसलिए तीसरा पहर तुरन्त बीत गया। आज तीसरे पहर पर नींद नहीं खुली, जब मुर्गे बोले तो हड़बड़ा कर उठी:-

'इउ किउ कंत पिआरी होवा॥
सहु जागै हउ निसि भरि सोवा॥'

गाती उच्छवास भरती हुई उठी 'हाय। मेरा रस स्वाद कहाँ गया? नींद खा गयी?' नींद शत्रु भी और नींद सुखदायी भी है। नींद थकान दूर करके सुरत को सुखी करती है, परन्तु कभी ऊँचे सुख के घर में गयी हुई सुरत को नीचे भी ले आती है। अच्छा मिट्टी की देह है, नींद भूख दो इसकी ज़रूरते हैं। हे आत्मा! जितनी देर तेरा साथ इस मिट्टी की कुटिया के साथ है, इसके गुण और स्वभाव प्रयुक्त करते होंगे। शोक न कर, मज़बूत हो, हिम्मत कर।' इस तरह अपने आप से बातें करती देसां उठी, उठकर अपने को सावधान किया और 'भलके उठि हरि नामु धिआवे' के रंग में जुड़ बैठी, परन्तु आज पूरी तरह ध्यान में जुड़ा जाये न नींद ज़ोर करे। इसलिए देसां उठ खड़ी हुई और मीठी मीठी सुर में घूम घूमकर जपुजी साहिब का पाठ करने लग पड़ी। जिस समय 'आदेस तिसै आदेसु' पर आई तो मन एकाग्र (जुड़) हो गया, साईं चरणों पर गिर पड़ा, व्यापक वाहिगुरू के चरण कमलों के स्पर्श का मानों प्रकाश लगा। रोम रोम शीतल हो गया। दो भोग (दो बार समाप्त करना) जपुजी साहिब के इस प्रकार डाले। अब लय बंध गयी, देसां फिर बैठ गयी, लीन हो गयी और मन साईं की याद में सुखी होकर लग गया।

दिन हो आया, प्रातःकाल के सूर्य ने निकलते ही तीखे तीर छोड़े। देसां अब गुरुवाणी बोलती अपने काम काज की ओर ख्याल करने ही लगी थी कि 'अतीसो' सहेली आ गई। यह भी इस भूल वाले जगत में ईश्वर की बंदी (प्राणी) थी। इसने आ नये हाल सुनाये। सच्चे पातशाह के दमदमे के कौतुकों के हाल बताये, परन्तु साथ में ही एक बुरी बात बताई कि तुम्हारे घराने का बुज़ुर्ग दयाला इतना बड़ा आदमी होकर सतगुरू के दरवाजे से उदासी ले आया है। जिस दर से पहले सतगुरू जी* से आशीर्वाद वर और बख्शिश 'मंजी' मिली थी, उस दर से दसवें जामे+ आदेश का उल्लंघन कर के लोक-परलोक बिगाड़ आया है। उसकी आप बीती यह है:-

* गुरू नानक।
+ गुरू गोबिन्द सिंह।

"दयाला जब सच्चे पातशाह जी को मिला है तो उन्होंने कहा–'गुरु के! आप पर गुरू साहिब जी की अत्यधिक मेहर हुई है, आप भाई भगतू की वंश हो, बहुत प्यारे हो, अब सिंह सज जाओ, अमृत छको और खालसा होकर सेवा करो।" दयाले ने कहा–'जी। उम्र बड़ी है, सिक्खी आप और आपके बड़ों ने बख्श रखी है'। सतगुरू जी ने कहा–'सिक्खी ही खालसा है, खालसा ही सिक्खी है। रंग वही है रंगत नई है, रंगे जाओ।' परन्तु दयाले ने नहीं माना तब बख्शिंद जी ने कहा–'लो आप से हम कुछ मांगते नहीं, देते हैं, यह बख्शिश है ले लो। अगर अब प्रेम से मिलती नहीं लेते हो, और मेरे अपने हाथों से नहीं लेते हो तो समय ऐसा आ रहा है कि आप मिन्नत करके सिक्खों के दरवाजों पर धूल में मिल-मिलकर यह भेंट (दान की वस्तु) अमृत-माँगोगे।' यह कहकर मालिक जी चुप हो रहे और दयाला खिन्न सा होकर चला आया है।"

आह! आज दिन आया, पहला दिन आया कि बीबी देसां को पति का वियोग 'प्रभु की मर्जी' नहीं, पर कहर प्रतीत हुआ। सोचती है कि अगर पति जी आज जीवित होते, मैं अभी उनके सहित चरणों पर गिरती और कहती 'हे दाता जी। सिक्खी भी तूने बख्शी और खालसा भी तूने बख्शना है, नाम अमृत का दाता तू ही है, चरणों में बिठाकर दे तेरी खुशी, खंडे का अमृत साजकर नाम अमृत दे तेरी खुशी। तू दाता हम लेने वाले, दे दाता! भर हमारे थैले।' पर हाय! क्या करूँ? किसके पंखों पर उडूँ? अगर सिर के साईं, हाय! एक निशानी छोड़ जाते–कोख का जन्मा एक पुत्र भी होता–मैं उड़ती और जा चरणों पर लाल का सिर रखकर कहती, हे प्राण दाते। आपने खंडे का अमृत देने का हुक्म दिया है, लो यह हाज़िर है, अमृत छकाओ, चरणों में लगाओ और अगर ज़रूरत है तो उसी रास्ते भेज दो जिस रास्ते अपने हाथों भेजे हैं अजीत सिंह और जुझार सिंह। यह जीवन खेल है, तेरे हाथों की खेल है। हम कौन हैं और हमारा क्या है? 'जो कुछ है सो तेरा'। तूने नाम देकर हमें जीवन दे दिया है, तेरे नाम-दान ने आत्म दिखा दिया है। अब देह हमारी हमें छिलका दिखाई देती है। हे पातशाह! अगर छिलकों को किसी अर्थ लगाकर आप रीझते हो तो हमें इससे अधिक क्या खुशी है? ...... परन्तु आह! मैं कहाँ हूँ? मैं तो ऐसे बातें कर रही हूँ कि मानों सचमुच पुत्र वाली हूँ, सचमुच सुन्दर हीरे मृग जैसे जवान पुत्र को सतगुरू के चरणों पर डालकर अरदास कर रही हूँ। .... लो महाराज! अगर हमारे जेठ ने गलती की है तो भाई भगतू के नाम बट्टा न लगे, यह उसी आपके प्यारे भगतू की अंश है, उसी का रक्त है। पातशाह! इसका सिर हाज़िर है, अभिमान रहित भेंट कबूल करो। ..... मैं पागल हो गयी, कैसे मानों सचमुच मैं पुत्र भेंट करती हूँ। हे शहंशाह! पुत्र हुआ ही नहीं तो मैं भेंट क्या करूँ, ऐसे ही अभिलाषा। .... अच्छा मन! आज तूने भी दुखी किया, सुखी होकर ईश्वर के बख्शे नाम जैसे लाल की दाई माँ होकर तूने माँस के पुत्रों का दुख किया। छोड़ दे ख्याल .....। हाँ, क्या करूँ? यह बात खाती है कि भाई भगतू की अंश अपने मालिक के हुक्म से सिर फिरा आई है। ...... परन्तु सब ईश्वर की मर्जी है और दुख करना मूर्खता है। यह तन हाज़िर है, चलूँ और कहूँ, पातशाह! मैं भी भाई भगतू के घराने की सेवा वाली हूँ, मुझे अमृत पान

कराओ। अगर ज़रूरत समझो तो शरीर किसी युद्ध जंग अथवा किसी सेवा में शहीद करवाकर सफल कर लो। अगर मर्द मुँह मोड़ आया है तो औरत पर भाई भगतू की मेहर है, यह हाज़िर है। ...... ये इच्छाएँ हैं। हाँ, इच्छाएँ, परन्तु सुन्दर इच्छाएँ हैं। प्यारे के चरण कमलों से सदके कर देने वाली इच्छाएँ उठी हैं। हे मन! मज़बूत हो, सारे हम सेवक हैं, और हुक्मी (हुक्म मानने वाले) बंदे (लोग) हैं। तुझे हुक्म नाम स्मरण का है, तू अपना हुक्म पूरा कर, ऐसा न हो कि औरों को मिले हुक्मों की नकलें करके तू उच्छवासों में जा पड़े और जो हुक्म तुझे है उसकी कमाई में कसर पड़ जाये। तुझे हुक्म था 'दम बदम वाहिगुरू जी का सिमरन कर' तेरा दम खाली न जाये, तुझसे मालिक ने यही सेवा माँगी है। तू यही कर, बेख़बर न हो। देख चौथे पातशाह जी के बेटे पृथीचंद जी ने कितनी सेवा अपने विचार से की, पर फायदा कोई न हुआ और छोटे बेटे गुरू अर्जन देव जी ने पिता गुरू जी के हुक्म में साईं की याद और ध्यान मग्नता की 'हरि सेवा'* की मेहनत की। वह सार्थक हुई। गुरू जी अन्य प्रकार की सेवा की ओर गए ही नहीं, वह देखो। कितनी कबूल हुई।? आप गुरू हुए। वह गुरू के हुक्म में सेवा थी। तू भी अपनी मर्जी की सेवा न कर, हाँ! मन! हुक्म का पालक होगा तो सुख पायेगा। देख! उच्छवासों और पछतावों में तेरा कितना समय ऐसे ही निकल गया, कितना समय सिमरन से बिछुड़ी रही? मज़बूत हो और संभाल अपना कार्य व्यवहार।

: २ :

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी मालवे देश में प्रवेश करके आगे ही आगे बढ़ते अब पक्के गाँव आये। यहाँ डेरे लगाये आज तक निशान बाकी हैं। जहाँ श्री जी का घोड़ा जंड (एक जंगली वृक्ष) काटकर नये खूँटे बनाकर बाँधा था, वहाँ ही वही खूँटा बाद में अंकुरित हो गया और जंड का वृक्ष बन गया जो अब तक है। संगतों के झुण्ड दीने से शुरू हुए थे और प्रत्येक स्थिति और पड़ाव के स्थान दर्शन करने पहुँचते थे, यहाँ भी पहुँचे। तीसरे दिन कौतुकी महाराज ने आगे कूच किया। अब आये तलवंडी–'साबो की तलवंडी'। यहाँ का मुख्य कर्मचारी था डल्ला। डल्ला एक तरह का राजा था, राजा तो नहीं परन्तु राजे से कम नहीं। तलवंडी के सभी निवासी इसका हुक्म मानते थे, सारे नगरवासी योद्धे भी थे और बारिश पड़ने पर किसान भी थे। खेती बाड़ी का कामकाज करते, डल्ले के हुक्म पर सभी शस्त्रधारी होकर संग्राम के लिए उठ चलते, आसपास के गाँवों के लोग भी डल्ले के हुक्म में थे। तलवंडी में डल्ले का क़िला भी छोटा सा था, ठाठ-बाट भी जंगल के अमीरों जैसा था और आप वह सिपाही और जत्थेदार भी पूरा था, पिता पितामह से गुरू घर का सिक्ख था।

जब गुरू जी आते सुने और पता लगा कि तलवंडी की ओर लगाम मुड़ रही है, तब डल्ले ने पहले ही से आदर भाव के सामान किये, पक्के गाँव में भी आदर सत्कार, लंगर,

---

* निधि निधान नानक हरि सेवा अवर सिआनप सगल अकाथ।।२।। (बिला० म० ५)

सेवा डल्ले के ही हुक्म अधीन इसके भाई बन्दों ने की। डल्ले की गोत्र वाले और सज्जन रास्ते में हर स्थान पर सतगुरू का आदर करते रहे। आखिर बहुत जन समूह के साथ सतगुरू तलवंडी पहुँचे। अभी नगर से बाहर ही थे कि चार सौ शूरवीरों को साथ लेकर डल्ला आगे से आ मिला और चरणों पर शीश धरकर कृत कृत्य हुआ। एक घोड़ा और सौ रुपया भेंट किया और रकाब के साथ पैदल चल पड़ा। जब गाँव नज़दीक आया तो एक स्थान पर गुरू जी झिझके बिना जल्दी से घोड़े से उतरकर खड़े हो गए। बोले:- "डल्ले! डेरा यहाँ ही करेंगे, तेरी नगरी के अंदर फिर चलेंगे।"

डल्ले ने शीश झुकाया। देखते ही देखते वहाँ तम्बू लग गये। यह स्थान था, जहाँ कभी साहिब श्री गुरू तेग़ बहादुर जी दो दिन ज्योति जगाकर जंगल में मंगल लगा गये थे। नज़दीक ही कोई पुरातन मिट्टी का ढूह था जो काफी ऊँचा था, उसी को समतल करवाकर सतगुरू ने खुश होकर कहा–"यह आनन्दपुर का दमदमा है", इस पर शामियाना लगवाकर बैठे और कमरकसा खोला। तबसे इस स्थान का नाम 'दमदमा साहिब' प्रसिद्ध हुआ।

पाँच चार दिन डेरा इसी तरह रहा, प्रसाद लंगर रसद सभी कुछ डल्ले के किले से आये। दोनों समय दीवान सजे। डल्ले ने एक दिन विनती की कि सच्चे पातशाह! जो बैराड़ तनख्वाह वाले सिपाही आप के साथ हैं, इनको आप अब विदा कर दो क्योंकि प्रेम की सेवा वाले आपके साथ अधिक हैं और अब ज़रूरत भी कोई नहीं। अब आप अपने घर में आ गये हो और यहाँ ही अब आराम करो और ज्योति जगाओ। श्री गुरू जी ने सारे दल को जो तनख्वाह वाला था, प्रसाद छकाया (खाना खिलाया) और तनख्वाहें चुकाकर विदा किया। एक दल तो पहले जा चुका था जो बेदावे तक पहुँचा था, यह दूसरा था, जो बेमुख नहीं हुआ, बाकी जो प्रेम वाले थे, सो साथ रहे। यहाँ अब वही आनंदपुर वाला मौज सामान, खालसई प्रचार आरम्भ हो गया। देश जंगल का था बालू वाला, आबादी विरल, लोग सीधे, मूलत: सीधे साधे, पातशाही सेना पानी की कमी के कारण कोई लम्बी मुहिम यहाँ पहुँचा नहीं सकती थी।

एक दिन कीर्तन के बाद दीवान में साहिब जी कुछ वचन-बिलास कर रहे थे कि डल्ले ने साहिबज़ादों की शहादत और आनंदपुर के साके पर बहुत हमदर्दी प्रकट करते हुए कहा कि "महाराज जी! मेरी कौम के, मेरे दल वाले भाईबंद, जंगल के वासी बहुत बहादुर हैं। कभी सच्चे पातशाह इस युद्ध में मुझे याद करते, तो ये दास भी युद्ध में आ मिलते। श्री जी के बहादुरों ने तुर्कों के अच्छे दाँत खट्टे किये, परन्तु अगर बीच में मेरा दल भी होता तो आप की रज़ा में तुर्कों को कुचल ही डालते।" तब आप मुसकराये और बोले–"डल्ले! तेरी बिरादरी सिक्ख तो है, परन्तु वाणी नाम में ढीली है और खालसा नहीं सजी"। डल्ले ने कहा–"पातशाह! तेरे चरणों की सभी धूल हैं परन्तु बहादुरी तो डौलों की वस्तु (गुण) है और डौले इनके बहुत मज़बूत हैं, ये ज़रूर सौ सौ पर एक एक भारी होता। कई बार मामले पड़े हैं, ये शहरों और बसते गाँवों के सिपाहियों पर बहुत भारी पड़ते हैं"। सतगुरू ने कहा "डल्ले! जो बीत गया समय सो बीत गया, जो हुक्म था घट गया, आगे

की सँभाल रखो। अब आप जी उठो, सारे मन और शरीर द्वारा मुर्दापन छा रहा है, इसको निकालो।"

डल्ले ने कहा–सत्य है, महाराज जी! परन्तु अरमान मन में रह गया कि हम यहाँ बैठे रहे इतने इतने कद्दावर जवान देवो को दूर फेंक देने वाले, और हमारे प्यारे साहिबज़ादे कोमल बच्चे सन्मुख जूझते तीरों के आगे छलनी होते रहे, धिक्कार है हमारे जीने को।

सतगुरू फिर मुसकराये और बोले–डल्ले! वह बीत गयी तो बीत गयी। वे बच्चे शेर बच्चे थे, जीते थे, वे कोमल दूध पीते राशों, गिलज़ों और मुगलों को बहुत भारी गिनती में मारते काटते गए हैं। लड़ना और जीतना मनोरथ नहीं, मनोरथ तो प्रजा का सुख है:- आत्मसुख, मानसिक सुख, शारीरिक सुख। दुख आ पड़ने पर, मुर्दनी छा जाने पर शरीर, कौम और सृष्टि तीनों किसी ऊँचे ख्याल के साथ मुड़कर जीती हैं और ऊँचे आदर्श पर नज़र टिकाकर ऊँची होती हैं। जीव के अंदर से आत्मा 'साईं चरणों में' जा ठहरे तो जीवन झोंका आता है। सो यही कुछ आनन्दपुर में हुआ, यही कुछ खालसा है, यही मनोरथ, यही जीत है। हार जीत, बाहूबल और बाहूनाबल, ये बातें बाद की हैं।

डल्ले ने कहा–सत्य है, सच्चे पातशाह! परन्तु अरमान बहुत रह गया। मेरे इतने इतने बली जवानों के होते मेरे सिरों के शहज़ादे मारे गये। देखिये न महाराज! मेरे वीर कितने देवक़द हैं?

सतगुरू जी ने देखा, हँसे और बोले "डल्ले! अभी ये जिये नहीं"। ये बातें कर ही रहे थे कि लाहौर का एक सिक्ख कारीगर आया, आगे बढ़कर चरणों पर गिर पड़ा और एक हल्की सी बेहद सुन्दर बंदूक आगे रखकर बोला–

'पातशाह! तुच्छ भेंट है। श्री गुरू जी ने उठाई और परख की। बहुत खुश हुए कहने लगे: "यह नया आविष्कार, अधिक दूर मार करने वाली है।" (डल्ले की ओर देखकर बोले):–

डल्ले! सज्जन पुरुष! दो एक आदमी अपनी कौम के ले आओ, आपस में पचास पचास कदम की दूरी पर दक्षिण दिशा की ओर उस वृक्ष से दूर खड़े कर दो, हम यह बंदूक चलाकर निशाना लगायेंगे और देखेंगे कि इस सिक्ख की कारीगरी कहाँ तक पहुँची है?" यह कहकर आप तो बंदूक को खोलने बंद करने परखने और कौतुकों में मानों व्यस्त हो गये और डल्ले ने अपने दल की ओर देखा: लगभग आधे आदमी तो देखने से पहले ही खिसक गये थे। डल्ले ने उन देवक़द भाइयों और हुक्म का पालन करने वाले व्यक्तियों की पीठें ही देखी, बाकी सिर नीचा किये सोच रहे थे। डल्ला आप भी वहम में पड़ गया था कि बंदूक परखने के लिए दो जवान मार देने गुरू जी ने क्या सोची है? अकारथ जान कौन दे? परन्तु अभी डल्ले ने अपने दल को आवाज़ नहीं लगायी थी कि कुछ और खिसक पड़े। अब डल्ले ने बहुत हौंसला करके और अपनी आबरू का ध्यान कर ललकार कर आवाज़ दी परन्तु कुछ क्षणों में डल्ला ही डल्ला रह गया। तीन सौ जवानों ने, जिनकी डील देखकर पठान काँप जायें, अपनी छबीली देहें लेकर तलवंडी में आकर मिट्टी की

दीवारों के अंदर खुली साँस ली। जहाँ कि बंदूक चले भी तो कानों के पर्दे पर आवाज़ की चोट के अतिरिक्त और कोई मार न कर सके। गुरू जी उधर जान बूझकर बंदूक के साथ खेल करते अब उसको ठोक, भर, पलीता सुलगा, तैयार हो गये। डल्ला गर्दन नीचे झुकाए बैठा है, शरीर वही, कद वही डल्ला वही, परन्तु चेहरे पर पीलापन है, अकेला है और चिन्ता में डूबा है। अब सच्चे उल्लासी पातशाह–घर बार, किले कोट, पातशाही अमीरी, पुत्र, प्यारे, सम्पूर्ण वंश उजाड़कर दिलगीर न होने वाले खालसा सतगुरू जी हँसे और एक सिक्ख को बोले: "खालसा जी! डेरे में वे दो सिक्ख जो दिखाई दे रहे हैं, उनको हुक्म सुना दो कि "एक सिक्ख बंदूक का निशाना परखने के लिए चाहिए, जल्दी आओ, जिससे पलीता बुझ न जाये, किसी का नाम नहीं लेना।"

"एक सिक्ख गुरू जी माँगते हैं जो जान देने के लिए आये, काम केवल बंदूक परखनी है।" यह हुक्म जब गुरू जी के डेरे में पहुँचा, तब उन दोनों सिंहों ने सुना, दोनों पगड़ियाँ बाँध रहे थे, सुनते ही दोनों उठ दौड़े, एक ने आधी पगड़ी बंधी हाथ में पकड़ी थी, दूसरे ने अभी शुरू की थी। गुरू के सामने पहुँचे तो एक ने कहा–"महाराज! मेरा अधिकार है", दूसरा कहे 'मेरा'। गुरू जी माथे पर थोड़े से बल डालकर बोले–'क्यों झगड़ते आ रहे हो? हमने एक बुलाया था, दो क्यों आ गये हो?" एक ने हाथ जोड़कर कहा–"पातशाह! सिंह ने नाम नहीं लिया, इसलिए दोनों आ गए हैं और मैं कहता हूँ मेरा अधिकार है, क्योंकि पहले मैंने सुना है।" दूसरे ने कहा–"पातशाह! यह मेरा भाई मुझसे अधिक उद्यमी, भजन वाला और शूरवीर है, मैं चाहता हूँ कि इस समय मैं हुजूर के काम आऊँ और यह अच्छा भाई फिर किसी और कठिन समय श्री जी के चरणों पर बलिहार हो।"

यह सुनकर डल्ले के कानों में सनसन हुई और शरीर में झनझनाहट हुई, नेत्र उठे परन्तु दर्शन झेल नहीं सके, हाँ, देवकद योद्धा के नेत्र टप-टप टपक पड़े। बाहर की संगत और गुरू जी के साथ के सिंह जो सभा में थे, सभी अत्यधिक प्यार के रंग में गदगद कंठ हो गये। डल्ले का पीला रंग अब एकदम सफेद हो गया, सोचने लगा कि ये आदमी हैं कि विदेह आत्माएँ हैं? ये शूरवीर हैं याकि वीतराग योगी हैं? तुच्छ एक खेल के लिए जान देने को तैयार हैं और किस उत्साह में हैं, किस प्यार में हैं और एक दूसरे से बढ़कर किस प्रेम और त्याग में आगे आ रहे हैं।* कई रंग ख्याल-मंडल में से असमझे निकलते जायें और रंग बदलता जाये। कभी सफेद, कभी कच्चा हरा, कभी पीला, कभी मिट्टी के रंग का, आखिर रंग ने पलटा खाया जब सतगुरू जी बोले– "डल्ले! उदास न हो। मुर्दा मुर्दा है कितना लम्बा और बड़ा हो, मुर्दा मुर्दा है चाहे कितना विद्वान हो, मुर्दा मुर्दा है चाहे कितना धनपात्र हो। मनुष्य मुर्दा है, कौम मुर्दा है, देश मुर्दा है, जिनमें जीवन इच्छा नहीं रहती, जो इज्जत, आबरू, स्वतंत्रता, स्वाभिमान सब कुछ गँवा चुके हैं। तगड़ा हो, अमृत पानकर और नाम अमृत आठ पहर अंदर बसा, तू मन और आत्मा करके जियेगा। हमने निशाना लगाने के बदले आदमी नहीं मार देने हैं, तुझे खालसा का आदर्श समझाना है।

---

* इस समय गुरू जी ने बंदूक का मुँह ऊपर को करके चला दी थी, जिससे निशाना किसी को न लगे।

"जितने आदमी जगत में देखता है ये सभी बुत तो आदमी के हैं, परन्तु इस कलबूतों के अंदर जान आदमी की है कि जानवर की है? यह बात परखने वाली है। जिस आदमी के अंदर लगातार लगन अकाल पुरुष के चरणों की नहीं, जिसके अंदर भक्ति का भाव नहीं, जिसके अंदर अपने कर्त्ता, अपने कारण वाहिगुरू के मिलाप की चाह नहीं है, उसके अंदर मनुष्यों वाली जान नहीं है, न उसमें असली बल है और न असली खसलत (आदत, स्वभाव)। फिर जिसने जीवन मनोरथ नहीं समझा, वह उस आदर्श पर नहीं आया जिससे कि आदमी वह कुछ बन सके जो आदमी का रचने वाला चाहता है कि आदमी बने।

"डल्ले! उदास न हो, तेरे आदमी बहादुर हैं, परन्तु जब उनके 'अहंकार' से बड़ा दुख उन पर आ पड़ेगा तब उनकी बहादुरी वहाँ लेट जायेगी, परन्तु अगर उनकी बहादुरी आत्मिक 'चढ़ती कला' (पूर्ण उत्साह में) में है तब उस बहादुरी की नींव ऊँची जा चढ़ी है, तब तन जायेगा, धन जायेगा, धाम जायेगा, सर्वस्व जायेगा, परन्तु उनकी शूरवीरता नहीं जायेगी।

"शरीर बड़ा मालूम होता है, परन्तु बड़ा मन है। ख्याल का मंडल बड़ा है, दुख सुख ख्याल में बसता है। जब ख्याल में से पीड़ा जीत ली जाती है तब बहादुर आगे बढ़कर घाव खाकर मरता हुआ भी पीड़ा नहीं मानता। सती (चाहे बुरा काम है) चिता पर जाती पीड़ा की परवाह नहीं करती।

"ख्याल में से पीड़ा और फतह पाने के लिए ख्याल बलवान करने की ज़रूरत है। 'ख्याल' पूरा और असली तरीके का बलवान वाहिगुरू की समीपता से होता है, वाहिगुरू की समीपता उसकी वाणी और नाम के अभ्यास द्वारा होती है, इसलिए गुरू घर में वाणी और नाम का प्यार है। आप सिक्ख हो, परन्तु जंगलों में बसते वाणी नाम के साथ कम जुड़े हो। वाणी वाहिगुरू का तीर है और नाम वाहिगुरू का रूप है। वाणी छिद्र पाकर मन बींधती है और नाम प्रवेश करके आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देता है। फिर ईश्वरीय इच्छा आत्मा में हर समय आती है, फिर इस व्यक्ति का बल वाहिगुरू के बल के साथ जुड़कर वहाँ से ताकत लेता है, इसलिए हम कहते हैं कि–'वाहिगुरू जी का खालसा'

खालसा वाहिगुरू जी का है। ऐसे नहीं जैसे किला, तलवंडी, चने और बाजरा तेरी मलकियत है और वे मुर्दा चीज़ें तेरे कब्ज़े में हैं, परन्तु जैसे किरणें सूर्य की हैं, जैसे पौधे से लगा फूल पौधे का है, जैसे चश्मे की आड* के साथ लगा सरोवर चश्में का है, हाँ डल्ले। वैसे ही खालसा वाहिगुरू का है अपना और उसके अपने आप से मिला हुआ।

"अब समझ डल्ले। जब वाणी से हमारे मन का पर्दा जो हमें पशु और जीव बना रहा है, फटा और नाम ने हमारे अन्तर को वाहिगुरू से जोड़ दिया, तब अपना आप ईश्वर का हो गया। उसके साथ हरदम जुड़ गया। अब हमारी आत्मा वाहिगुरू द्वारा पालित हो रही है, हरदम सामर्थ्य बल और सारे गुणों की साझेदार हो रही है, बता यह आत्मा जी उठी कि नहीं?"

डल्ला–जी सच्चे पातशाह!

---

* आड–पंजाबी में पानी के खाल को भी 'आड' कहते हैं।

गुरू जी—अब समझ! शरीर की मौत—इस जीव और आत्मा को शरीर की मौत—क्या वस्तु रही? कुछ भी नहीं! मरने का भ्रम मिट गया, भ्रम मिट गया तो भय दूर हो गया, जिसके अंदर वाहिगुरू जी ज्योति के साथ सम्बद्ध होकर हरदम प्रतीत होता है कि यह मैं मिला पड़ा हूँ, यह ज्योति प्रकाशित हो रही है, वह अपने जीवन को कभी न मरने वाला देख रहा है। उसको अब मौत का क्या डर है? वह जानता है कि शरीर तो रहना ही नहीं, इसने मरना ही है, जो हिस्सा इसमें **'मैं'** का था वह अब प्रकाशित ज्योति के साथ लगकर प्रकाशित हुआ है और जगमगा रहा है,* तब वह मौत से क्यों डरता है? मौत का डर फतह हो गया। यह खालसा है भई! जब पूर्ण ज्योति वाहिगुरू की अन्तरात्मा अपने में प्रकाशित हो गई तो यह खालसा हो गया और यह खालसा ज्योति के साथ जो प्रकाशित हुआ, वाहिगुरू का हो गया। इसलिए कहो न—

वाहिगुरू जी का खालसा।

वह वाहिगुरू सदा है और यह साथ में मिलकर सदा हो गया+। जब यह ज्योति प्रकाशित हो गई, मौत जीती गई। डल्ले! ले और तरह समझ:—

खंडा प्रिथमैं साज कै जिन सभ सैंसार उपाइआ।

साईं ने पहले खंडा बनाया। (खंडा = खंडन करने वाला शस्त्र) तब जगत बनाया, जब पहले जगत को तोड़ने का सामान किया। पहले मौत रची। इसलिए खालसे को समझ आ गयी कि शरीर की मौत निश्चित है फिर खालसा सोचता है कि मौत तो शरीर को आनी है और मैंने मरना कोई नहीं तब तो मौत झूठी है, मेरा मौत का कोई सम्बन्ध नहीं, चोला बदलना है, कैसे बदल गया। अकसर चोला पीड़ा से बदलता है, इसलिए जब आप ज्योति स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है, फिर पीड़ा क्या और मौत क्या? वह फिर पीड़ा पर विजय पा लेता है। ऐसे वह शूरवीर मौत और पीड़ा से अभय हो जाता है।

डल्ला—पातशाह! हम जंगली लोग हैं और मेहरें कर रहे हो, परन्तु एक मेरी मूर्ख की शंका मिटाना। जब मौत निश्चित दिखी फिर क्यों शूरवीरता करेगा? वैराग्य धारण कर के पहाड़ों में न जा समाधि लगायेगा? उसको जीतने का उत्साह कि प्यार करने का उत्साह और काम करने का चाव किस आश्रय पर रहेगा? मन पर पर्दा पड़ा रहे, ज़िन्दगी अंदर से लेने को, प्यार करने को, हँसने खेलने को, उत्साहित रहे तो ही तो सारे काम हो सकते हैं। 'लेने लेने' का चाव ही तो मन को कामों में लिए घूमता है, नहीं तो फिर दिल दिलगीर होकर शर्मिन्दा हुआ रहे, जीने का क्या स्वाद और काम करने का क्या लाभ? जंगली आदमी हूँ, बख्श लेना, वाक्य किये हैं रूबरू, परन्तु समझने के लिए।

गुरू जी—डल्ले! देखा नहीं न, इसलिए कह रहा है। जब अंदर ज्योति प्रकाशित होगी तो वह कोई आग की लपट तो नहीं जल पड़ेगी, वह हमारा अंतर जगत के आधार अनन्त

* 'पूरन जोत जगै घट मैं तब खालसा ताहि निखालस जानै'।।

\+ 'जहि अबिगतु भगतु तह आपि'।।

पुन:— 'थिरु पारब्रहमु परमेसरो सेवकु थिरु होसी।'

सत्ता के साथ लगकर उसके प्रभाव से एक ऊँचे उत्साह, ऊँचे प्रभाव एक ऊँचाई के रंग में रहेगा। वही असली सत्यधर्म, वही असली ताकत इसमें एक स्वाद का रंग भरेगी। यह उसमें जियेगा, विकसित होगा। साईं आनन्दरूप है, यह आनंद रहेगा इस प्रकार आनन्द तो आ गया। अब रहा काम करने में उत्साह। साईं ने जगत बनाया है, यह उस रचना में उस साईं के काम का साझेदार कामा (काम करने वाला) बनेगा। इसलिए यह बात हमने खालसा आदर्श में रखी है कि अंतर पड़ा जाग, मौत और पीड़ा गई जीती, अब शरीर जो साईं ने दिया, उसको सफल बनाओ। शरीर उसने ऐसे ही नहीं दिया, यह किसी काम के लिए है। इसका काम है आत्मा का उद्धार। आपका उद्धार हुआ है, औरों का उद्धार करो।

जब उद्धार हुए लोग दूसरों का उद्धार करते हैं, तब लोग ईर्ष्या करते हैं। वे बेपरवाह अपने रंग में चलते हैं, निर्वैर होते हैं, परन्तु लोग उनको तंग करते हैं, वे सहारते हैं। इन लोगों के सच्चे स्वच्छ और पवित्र जीवन, 'सच्ची ज़िंदगी' दिखा देते हैं। फिर पुराने मर चुके धर्म के अगुआ, मुर्दा पुजारी और पूजा के आधार पर पल रहे लोग, जिनमें धर्म का अंश ख़त्म हो चुका है, घबराते हैं, क्योंकि लोगों की श्रद्धा इनकी मुर्दापरस्ती से हटकर जीवित ज़िन्दगी की ओर पलटा खाती है, ये फिर उनके साथ ईर्ष्या करते हैं। इनकी ईर्ष्या की वश नहीं चलती, तो फिर ये वक्त के हाकिमों को कोई न कोई बहाना, धोखा, लालच देकर साथ मिला लेते हैं। राजा साथ में न मिले तो राजा को 'राज्य भय' बताते हैं कि ये लोग बहुत हो गये हैं, आपस में इकट्ठे हैं, ऐसा न हो कोई राज उपद्रव कर दें, इस तरह फिर राजा उन जीवितों पर सख्ती करता है। वे उत्तर नहीं देते, झेलते-झेलते मर मिटते हैं। ऐसे ज्योति जल-जल कर बुझती है, फिर जलती है, फिर ऐसे बुझती है। खालसे के ख्याल में, खालसे के आदर्श में यह बात अब और तरह है। वह ऐसे है कि जब अंदर ज्योति प्रकाशित हो गई तो औरों के अंदर ज्योति जगाकर उनको खालसा बनाना है और इस काम में उत्साह और उमंग 'अंदर का ईश्वरीय प्यार वाला' होना है। जब रुकावटें पड़ें, ज़ुल्म हो, तब निर्वैर रहना है परन्तु निर्वैर रहने के लिए भाग नहीं जाना है, बल्कि साथ में निर्भय रहना है। भय नहीं मानना, भय का समय आये तो सुरत ऊँची होकर दुख झेले, अगर भाइयों पर कष्ट पड़े तो यह शरीर मिथ्या है, उनकी रक्षा पर यह लगा दे, इस प्रकार खालसा रक्षा करने, भला करने के उत्साह, प्यार और ज़िन्दगी की हिलोर में झूलेगा। इस प्रकार यह उत्साह खालसे को अन्याय और धक्के को काटने के लिए शमशेर को धारण करने वाला बनाता है। परन्तु इसके साथ ही खालसा पाप और आचरण की गिरावट में नहीं बसेगा, सारे अंदर के महाबली इस के नौकर हो जायेंगे। साहिबी खालसे की होगी, नौकरी अंदर की ताकतों की होगी*। लोभ रहेगा, परमेश्वर के साथ लोगों को जोड़ने का। कामना

* मेरे और मेरे इन्द्रियों के झगड़े पर गुरू साहिब ने यह फैसला किया कि शरीर का मालिक तू है इसलिए सारी इन्द्रियाँ मेरी सेवा में लगा दीं। यथा–

सगल दूत मेरी सेवा लाये।।
तूँ ठाकुरु इहु ग्रिह सभु तेरा।।
कहु नानक गुरि कीआ निबेरा।। (बि॰ प्र॰ म॰ ५)

रहेगी हर समय साईं के साथ अन्तरात्मा के लगे रहने की। क्रोध रहेगा अपने आप को प्रत्येक नीचता से ऊँचा रखने का। मोह रहेगा गुरू के चरणों के साथ, गुरूमुख के साथ साधु संगत के साथ, जी उठे लोगों के साथ, खालसे के साथ। अहंकार रहेगा, अभय रहने की ऊँचाई में, अंदर से ज्योति के साथ दूरी न पड़ने में, शब्द नाम के अभ्यास में, नाम के साथ दूरी न पड़ने की सावधानी के रूप में, सावधान रहने में, अपने मन पर किसी का बुरा असर प्रभाव न पड़ने देने में। जगत की ओर मन का रुख़ (फन फैलाये सर्प जैसा, दुख देने वाला नहीं, पर) किसी के प्रभाव अधीन आकर उसके आगे मन की गिरावट की दशा में न ले जाने वाला रुख़ (रवैया), सदा साक्षी और क्रिया करने में रहने का रुख़। इसलिए डल्ले ....।

डल्ला–महाराज! बुद्धि मोटी और कुंद है।

गुरू जी–आसान कर बतायेंगे, डल्ले! खालसा अंदर से ज्योति के साथ लगा रहे, यह तूने समझा, फिर औरों के घर में ज्योति जगाये, यह तूने समझा, तीसरी बात यह है कि धर्म दोषियों के साथ निर्वैर रहे, परन्तु निर्भय ज़रूर रहे। निर्भय रहने वाले को युद्ध तक नौबत भी कई बार पहुँच जाती है, इसलिए अगर युद्ध आ पड़े, फिर मौत और पीड़ा को जीत चुके योगी शूरवीर बनते हैं, उनकी शूरवीरता जगत से निराली होती है। वे काम करते हैं अपने वाहिगुरू की प्रसन्नता और उत्साह में। जो करते हैं, उसको अर्पित करते हैं, वे अपने निज के, गृहस्थ के, परिवार के, कौम के, देश के और सृष्टि के सभी काम करते हैं, परन्तु अंदर से हर समय अनन्त के साथ, वाहिगुरू के साथ लगे रहते हैं। अंतर आत्मा वाहिगुरू से बिछुड़कर वे कोई काम नहीं करते। जैसे बच्चा माँ की गोद में बैठता, हँसता, खेलता, खाता, पीता, उछलता है, गोद से बिछुड़कर रोता और घबराता है, वैसे ही गोदी के बालक की तरह वे जगत के सभी काम अत्यधिक शूरवीरता के साथ, बल के साथ, उत्साह के साथ करते हैं। हाँ काम करते हैं वाहिगुरू की लगन में रहकर।

तेरे भाई बहुत वीर हैं, परन्तु खालसे जैसे नहीं। वे किसी लोभ के लिए लड़ेंगे, कोई भय पड़ने पर लड़ेंगे, किसी रक्षा के लिए जूझेंगे। जब अपने से बल अधिक पड़ जायेगा, हार मान जायेंगे। जब जीत जायेंगे, अहंकार की गाड़ी पर चढ़ जायेंगे, फिर वही जुल्म, धक्के, जबर्दस्तियाँ आप करेंगे जिनके लिए उन्होंने वैरी (शत्रु) को मारा था। फिर वे जगत–न्याय में आप मारे जाने के योग्य बन जायेंगे। अगर डल्ले। वे हार जायेंगे तो जीते हुए वैरी के आगे अपना मन भी हार देंगे, होश और आत्मा भी तबाह कर बैठेंगे। मन गुलामी में, शरीर गुलामी में चला जायेगा, ऐसे वे आप और उनसे बनी कौम मुर्दा हो जायेगी।

डल्ले! अंहकार के सहारे आदमी बहादुरी कर गुज़रता है, कुर्बान भी हो जाता है, परन्तु सिर्फ अंहकार के आश्रय वाले को तीन डर हैं–१. जब अपने से बड़े अहंकारी, बड़े बलवाले और बड़े जत्थेबंद के साथ टक्कर लेंगे तो हार जायेंगे। २. हारकर देश, धन, धाम देते हुए मन से गुलाम हो जायेंगे और अंत मुर्दनी व्याप्त होगी। ३. अगर जीत गये तो आप

ज़ालिम, सीनाज़ोर बनेंगे, धक्के से (जबर्दस्ती बलपूर्वक) धन इकट्ठा करके धनी बनेंगे, धनी होकर ऐश में पड़ेंगे, ऐश से निर्बल हो जायेंगे, निर्बल होकर फिर मन अशक्त और मुर्दा होकर शरीर, मन और आत्मा का बल क्षीण हो जायेगा। चौथा उनका एक और नुकसान निश्चित होगा कि वे परलोक गँवा लेंगे। गुरू जी ने बताया है–

पउड़ी।। सूरे एहि न आखीअहि अहंकारि मरहि दुखु पावहि।।
अंधे आपु न पछाणनी दूजै पचि जावहि।।
अति क्रोध सिउ लूझदे अगै पिछै दुखु पावहि।।
हरि जीउ अहंकारु न भावई वेद कूकि सुणावहि।।
अहंकारि मुए से विनती गए मरि जनमहि फिरि आवहि।।९।।

(मा॰ वा॰ मा॰ ३)

इसलिए केवल अंहकारी जीते चाहे हारे, मरकर सुखी नहीं हो सकता। इसलिए केवल अंहकारी बहादुर आदर्श बहादुर नहीं है।

खालसा अंदर से ज्योति जला, सदा प्रकाशित ज्योति को जपता, अहंकार से उठ चढ़ती कला (उन्नत अवस्था) में बसता है। सारे काम भी करता है और युद्ध में भी जा डटता है। न तो वह केवल त्यागी की तरह गिरावट वाली स्थिति में जाता है, न अहंकारी की तरह ज़ोर जुल्म कमाता है। वह जंग में जाता है, पर वह युद्ध में भी खेलेगा, वह धर्म के लिए, नेकी (भलाई) के लिए, उपकार के लिए युद्ध में जायेगा, फिर वह जीत के लिए नहीं लड़ेगा, वह ......

डल्ला–तो जी फिर वह किसके लिए लड़ेगा? बावला तो नहीं, ऐसे ही लड़ेगा?

गुरू जी (मुसकराकर)–वह जानता है कि वाहिगुरू सबसे बली है और जीत उसकी है जो सबसे बली है। इसलिए जीत सदा ईश्वर की है और हम तुझे बता आये हैं कि खालसा वह है जो वाहिगुरू का हो चुका है। इस प्रकार खालसा वाहिगुरू का है, वाहिगुरू का खालसा जानता है कि जीत सदा वाहिगुरू की है, वाहिगुरू सबसे बली जो हुआ। अब तू समझ ले कि खालसा भी वाहिगुरू का और जीत भी वाहिगुरू की, तब जीत और खालसा आपस में एक मालिक एक पिता के हुए। ऐसे जीत खालसे की हुई, इसलिए खालसा जीत के लिए नहीं लड़ता, खालसा जानता है कि जीत मेरे वाहिगुरू की है और मैं वाहिगुरू का हूँ, इसलिए जीत तो मेरा पैतृक स्वत्व (विरसा) है। मैंने जीतना है तो उस बल द्वारा जो मेरा नहीं पर जो अंदर से साईं के साथ लगे रहने के कारण साईं में से मुझमें आता है, जीत उसकी जिसका बल मुझमें आ रहा है। खालसा लड़ता है सिद्धान्त के लिए, सच के लिए। सत्य और सिद्धान्त जब जगत के अत्याचार से तबाह (बर्बाद) होने लगें, तब खालसे का नियम है कि वीरता के साथ उसे बचाये। जगत के अत्याचार के आगे अपना खूबसूरत अपना आप लिटा न दे, बल्कि वीरता के साथ अत्याचार को काट दे।

डल्ला–महाराज जी! मैंने मूर्ख ने तो यह देखा है कि जो योगी बने, वैरागी बने वे फिर छिप ही गये, और जो 'ले लेने' की ओर लगे, वे शक्तिशाली डाकू, पठानों मुग़लों

जैसे ज़ालिम हाकिम बने। योगियों ने कभी ज़ालिमों का मुँह नहीं मोड़ा और ज़ालिमों ने कभी सुख नहीं दिया, न्याय नहीं किया।

गुरू जी–खालसा वह जो अंदर से योगी हो, योग नाम और वाणी का। खालसा वह जो ज़ालिम की ईंट आये, तो पत्थर से उसकी ईंट तोड़ दे। अपने आप पर जीत हासिल करे, मौत को तुच्छ समझकर डरे नहीं, परन्तु अंदर के उत्साह के साथ देह को सफल करे। हर एक सिक्ख ज्योति प्रकाशित वाला, अंदर से एक ही टेक वाला, निर्भय रहने वाला, परन्तु भय न देने वाला, निर्वैर ख़ालसा है। ऐसे सारे सिक्खों का हजूम खालसा है। गुरू खालसा है, खालसा भी गुरू है, खालसा ईश्वर की गोद में खेल रहा एक रूहानी ख्याल-ध्यान है, आदर्श है, जिस पर प्रत्येक सिक्ख का ख्याल टिक रहा है, जैसे जहाज़ चलाने वाले का ख्याल अपनी दिशा के सितारे पर अथवा 'रोशन स्तम्भ' के दीपक पर टिकता है। खालसा वह नमूना है, जिस पर आने पर जगत का कल्याण होता है।

डल्ला–मुझ मूर्ख को मोटी सी बात बताओ, अगर खालसा हार जाये तो ईश्वर की हार?

गुरू जी–नहीं सुन्दर जी! वाहिगुरू की हार कभी नहीं। जिसको तू हार समझता है, वह भी जैसे तुझे समझाया है, जीत होती है। यही तो खालसा का मन निरभिमान है और मन ऊँची बुद्धि के वश में है और वह बुद्धि वाहिगुरू की रखवाली में चलती है और बताती है कि जो हार है इसका फल जीत निकलेगा। पराजय (हार) के समय खालसा सोचता है कि यह वाहिगुरू ने जो भाया किया, हमारी समझ समझती नहीं, इसका फल आज वह जीत नहीं थी, जो हम, जीत समझते हैं, इसका फल आगे जाकर जीत है। जिन हमारे साथ जूझने वालों ने आज जीत मनायी है, यह जीत उनकी हार की नींव खुद गई है। खालसा कभी नहीं हारेगा। हाँ! जिस दिन नाम से प्रीत छोड़ेगा, गुरूवाणी का इलहाम (ईश्वरीय संदेश) इसके अंदर नहीं रहेगा, ज्योति से दूरी कर जायेगा, तब फिर जो चौरासी के भाग्य होते हैं, भोगेगा। जब तक पूर्ण ज्योति को जपता है, गुरुवाणी की रज़ा पर मन को पालता है, निर्वैर है, भय देता नहीं, परन्तु भय मानता भी नहीं, तब तक कौन हराने वाला पैदा हुआ है खालसा को? यह 'ऊँचा जीवन' ही जीत है और इस जीवन वाला जिस संग्राम में डटेगा, वह जीतेगा, कभी कैसे, कभी कैसे।

तू समझता है पहाड़ी राजे जीते हैं, खालसा समझता है कि गुलामी का कंठा उन्होंने अपने गले में और कस लिया है। तू समझता है तुर्कों ने फतह प्राप्त की है, खालसा समझता है कि उन्होंने सच त्याग कर अपनी जड़ों पर कुल्हाड़ा आप मारा है। तू समझता है कि चार साहिबज़ादे मारे गये हैं, खालसा समझता है कि उनके रक्त की बूँद बूँद से 'सदा खालसा फल' देने वाले वृक्ष उग पड़े हैं। तू समझता है कि मुग़ल राज्य ने खालसे पर फतह प्राप्त की है, खालसा समझता है कि मुग़ल राज्य की जड़ काटी गयी है। जड़ काटी जानी फतह है, अब किसी झोंके ने इसको गिरा देना है। 'साईं के साथ जुड़े हुओं' के साथ लड़कर ज़ालिम मुग़लों की जड़ कील टूट गई है। खालसे का युद्ध धर्म रक्षा के

लिए था. धर्म पक्का हो गया झाड़-झाड़ से खालसा प्रकट होगा। तेरे जैसे खालसा सजेंगे। जिस खालसे को वज़ीर खाँ खत्म कर गया है, वह खालसा आनन्दपुर से कहीं अधिक बढ़ रहा है। ज़ालिम सरहिन्द की ईंट से ईंट टकरायेगी, दिल्ली में ज़ालिम मुग़ल अन्न माँगते दिखाई देंगे, तख्त ताज़, हुक्म हासिल सपना हो जायेंगे। धर्म छोड़कर जो विजय उन्होंने समझी है वह हार है, जीत नहीं।

: ३ :

सच्चे पातशाह कुछ और वार्तालाप करके फिर डेरे चले गये, परन्तु डल्ला कुछ नीम बावला सा घूमता रहा। उसको समझ आये कि हम बहुत बहादुर थे, परन्तु गुरू जी ने क्षण में कायर साबित कर दिये। सचमुच जिस आनन्दपुर में इन दो सिक्खों जैसे बहादुर थे जो मौत को कुछ चीज़ नहीं समझते, तो वहाँ कितना कहर का संग्राम हुआ होगा? जो सब कुछ न्योछावर करके फिर अभय हैं और अक्षोभ हैं। मेरे बहादुर तगड़े हैं, परन्तु मौत से डरते हैं। असली बहादुरी केवल बड़े डील में, केवल बड़े क़द में नहीं, केवल किसी जाति में नहीं, यह कोई गुरू की दात (दान में मिली वस्तु) है।

शाम के समय डल्ला इस तरह सिर धुनता एक जंड (जंगली वृक्ष) के नीचे बैठा था कि माई भागो आ गयी। लम्बी डील, भरा शरीर, हाथ में दुसांग,* सिर के केश खुले लहरा रहे हैं। माई मुक्तसर के युद्ध के बाद इतनी आत्मारूढ़ अवस्था में चढ़ी थी कि उसको तन के कपड़े की भी सुध नहीं थी रहती+। उसके चेहरे पर ईश्वरीय नूर और तेज इतना था कि जिधर जाये सबका शीश चरणों की ओर झुकता था। वह वीतराग मग्नानंद वाली बोली–

ओय डल्ले मल्ले! केवल माँस के थैले बहादुर नहीं होते, बहादुर मन होता है। शरीर और मन बली है, मन और आत्मा, आत्मा और परमात्मा। परमात्मा देव का अमृत आत्मा और मन को बलवान करता है और शरीर भी बलवान हो जाता है। देख! मैं स्त्री फिर मैं आत्मरंग की जिज्ञासु। अमृत पान करके मैं खालसा हो गयी, मैंने युद्ध किया, मैंने जीत प्राप्त की, मैं गिलजे और पठानों पर भारी पड़ी। जीत पाकर मुक्तसर फतह करके मैं मरी ज़िंदा हो उठी, जी कर मैं और आत्मारूढ़ हुई। फिर मैं खालसा हूँ, उत्साह में हूँ, ज्योति के रंग में हूँ, निर्भय हूँ, निर्वैर हूँ, युद्ध करने के लिए तैयार हूँ, सबसे ऊँची हूँ, परन्तु मैं नहीं, मुझमें जो आत्मा है, 'खालसा,' खालसा है, वह गुरू का खालसा है। खालसा विजयी है शरीर पर, मन पर, जगत पर। मैं कुछ नहीं। .... तगड़ा हो!

डल्ला–(चरणों पर माथा टेक कर)–अम्मां! आज जो गुरू जी ने समझाया मेरी समझ से परे की बात है, मैं गँवार जंगली, वे बातें आत्मा की, मैं बावला हो रहा हूँ।

---

* वह लकड़ी जिसकी आगे जाकर दो शाखाएँ हो जाती हैं।

\+ माई भागो को तलवंडी ही एक दिन दशम पातशाह ने बहुत प्यार भरी शिक्षा देकर चादर की पोशाक पहनवा दी थी कि तू तो पूर्णपद पर है परन्तु हम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, हमारे साथ रहने वाले शरीर सब मर्यादा में चले, यह हमारी शिक्षा है।

माई–चिन्ता न कर, छक अमृत बच्चा! सतगुरू जी ने तो आत्म बाण मारे।

तूने कहना था–जी! सत्य है मुझे तरीका बताओ कैसे बनूँ? मूर्ख! एक तो होता है ज्ञान, एक होता है वहाँ पहुँचने का ढंग, तूने ढंग क्यों नहीं पूछा?

डल्ला–माँ! मूर्ख जो हुआ चूक गया।

माई–तू चूकता ही रहता है, एक समय आयेगा कहीं फिर न चूक जाना।

डल्ला–माई! तू बावली लगती है, पर अन्दर से कितनी सियानी (चतुर, समझदार) है? तू ही रास्ते डाल दे।

माई–मूर्ख कि सियाने, मस्त कि होश वाले, जो हैं सो गुरू के हैं। जैसे प्रेरित करे करना है। काठ के पुतले क्या जानें। मस्ती सिक्खी में उचित नहीं, होश। होश वाली मस्ती, मस्ती वाली होश।

ले तगड़ा हो, काके! बल्ले*! वाणी पढ़, जपु साहिब का पाठ कर, तुझे ज्ञान आये और मन की मैल उतरे, अमृत छक जिससे ज्योति से ज्योति टकरा जाये। नाम जप जिससे ज्योति के साथ ठहाका बजता ही रहे, जब ज्योति के साथ टक्कर लगी तो फिर नित्य लगती ही रहने लग पड़ी, तब आप ही खालसा बन गया, हमने क्या बनाना है? बहादुर तू है ही, अपने शरीर की मौत पर जीत प्राप्त की, निर्भय हो गया। भोले! आम न गिन, पौधे न परख, आम खा। स्वाद न परख, खा और पालन कर। जीत यह रत्न अमूल्य जन्म, कुछ दिन की खेल है।

डल्ला–अम्मां कैसे करूँ?

भागो–भोले! खालसा सज।

डल्ला–कैसे?

भागो–पूर्ण ज्योति अन्दर प्रकाशित कर और साथ लगा रह।

डल्ला–वह कैसे?

भागो–जैस गुरू जी ने आप कहा है।

डल्ला–कैसे?

भागो–'जागत जोत जपै निसबासर'।

दिन रात वाहिगुरू को जप।

डल्ला–जपूँ कैसे?

भागो–नाम दाता गुरू जी के चरण पकड़ और कह जी नाम दान दो।

डल्ला–वे कह देंगे जप तो मैं कैसे जपूँगा?

भागो–वे कहेंगे तुझे अमृत छक खंडे का।

डल्ला–फिर छक लिया, शर्बत पी लिया, कई बार शर्बत पिये।

---

* अपने से छोटों के लिए प्यार में प्रयोग किया जाने वाला सम्बोधन का एक शब्द।

भागो–मूर्ख जंगली। अमृत और शर्बत एक है? देख! शर्बत कई बार पिया, मैं औरत रही। अमृत पिया, इधर मैं ज्ञात ज्ञेय हो गयी, रोशन दिमाग हो गयी, ज्योति जल पड़ी, उधर मुग़लों पठानों को दुर्गा से अधिक मैंने नष्ट भ्रष्ट किया।

डल्ला–हाँ हाँ अम्मां प्रत्यक्ष बात हुई। जी हाँ प्रत्यक्ष जी संप्रत्यक्ष, संप्रत्यक्ष। ठीक! हाँ अम्मां! कैसे, क्या करूँ?

माई–सतगुरू आत्म रंग वाले, सिक्ख आत्मरंग वाले, अमृत पान करवा कर तुममें आत्मा की पूँजी भर देंगे, उनका आत्म बल तेरे अंदर नामदान का प्रवेश कर निवास करवा देगा। अमृत नाम की पूँजी है, घट ज्योति जलने की पूँजी है, अमृत छककर जो नाम जपेगा। नाम जपेगा, ज्योति के साथ जाग पड़े, जाग पड़ा खालसा, निर्भय हो गया खालसा, फिर तू खालसा तेरा गुरू खालसा, यह पंथ खालसा। जो पंथ का वह तेरा, जो तेरा वह खालसे का। अकाल पुरुष की गोदी में खेले खालसा, वह तेरा सहारा फिर जी उठा तू। डल्ले। फिर तू 'पाँच प्यारों चालीस मुक्तों' जैसे खालसा, परन्तु निर्बलता न दिखाना।

ऐसे कहती माई डल्ले के कान मरोड़ती उपकारी वायु की तरह चली गयी।

डल्ला कुछ सुखी हो गया, कुछ बेमालूम सा (नाम मात्र) वाहिगुरू उच्चारण करने लग पड़ा, उठकर दीवान में आया, आगे भोग पड़ चुका था रहुरास का, महाराज बैठे थे और उस समय माता सुन्दरी जी आ पहुँचे थे, चरण स्पर्श करके आँखें भर आईं और सुन्दरी जी के मुँह से निकला–

"हे जगत प्राण दाता!
मेरे चारों लाल ....."

यह कहती का गला रुक गया और सारी संगत पर ऐसा वैराग्य छाया कि सबके मानों कंठ मिल गये, नेत्र बह चले और रोएँ खड़े हो गये। सतगुरू के नेत्र मुँद गये, एक चुपचाप सन्नाटे का रंग छा गया, आधी घड़ी कोई बोला नहीं, पत्ता नहीं हिला फिर सतगुरू के नेत्र खुले। एक अत्यधिक मीठी रोशनी उनसे बरसी, सारे दीवान पर एक ऐसा असर छाया जैसे कोई ठंडी-ठंडी मलहम दिलों पर लग गयी है। फिर मुखारविन्द खुला, इलाही नाद हुआ–

राखु सदा प्रभ अपनै साथ॥
तू हमरो प्रीतम मनमोहनु तुझ बिनु जीवनु सगल अकाथ॥१॥रहाउ॥
रंक ते राउ करत खिन भीतरि प्रभु मेरो अनाथ को नाथ॥
जलत अगनि महि जन आपि उधारे करि अपुने दे राखे हाथ॥१॥
सीतल सुखु पाइओ मन त्रिपते हरि सिमरत श्रम सगले लाथ॥
निधि निधान नानक हरि सेवा अवर सिआनप सगल अकाथ॥२॥

(बिलावल म० ५)

शबद की समाप्ति पर महाराज फिर मौन साध गए, सारे हृदय साईं वाहिगुरू के मानो चरणों से लिपट गये, माता जी भी ज्योति में जुड़ गये। इस हालत में एक छोटा सा झूँटा

(आनन्द) आया, क्या देखते हैं कि चारों बेटे तेजस्वी जामे में देवलोक में विराज रहे हैं। यह झलक कई शरीरों को लगी, तब दाता जी फिर बोले:-

'मरे नहीं एह जींवदे अटल गोद विचकार
साडी गोदी खालसा पुत्तर अमर अपार।'

ठंड पड़ गयी। पुत्र वियोग, दैवी पुत्र वियोग, एक नहीं चार पुत्रों का वियोग, इतने जुल्म, कष्ट, बेरहमी, दुखों, यातनाओं के मुँह आकर पुत्र वियोग का कष्ट माँ के हृदय से इस देवलोक के दाते की मेहर द्वारा शुक्र में पलट गया। ठंडक व्याप्त हो गयी। हँसकर बोले स्वामी तब–

शेर हो जाओ खालसा! आप मेरे पुत्र हो, उन पुत्रों के खून से जन्मे हो। आप जगत में अमर पुत्र हो। खालसा सदा जियेगा। आप वे पुत्र हो जो जगत माता को सुख दोगे।

अब डल्ला और हैरान था कि कितना कष्ट का समय था, कैसे सतगुरू ने ठंड फैला दी? आप द्रवित होते हैं, परन्तु किस तरह अक्षोम हैं। डल्ले ने माता जी के लिए क़िले में स्थान अर्पित किया, परन्तु उन्होंने वहाँ ही तम्बू लगवाकर चरण कमलों में रहना पसन्द किया।

यहाँ गुरू जी का पक्का रहना विदित होता गया और संगतों का आवागमन पक्का हो गया। अनेक साखियाँ सिक्खों के प्रेम, गुरू के तारने वाले बिरद की घटीं, डल्ले को समझ आ गयी और उसने अमृत छक लिया*। उसके देवक़द वाले भाई बंदों ने अमृत छका, सिक्खी रहु रीति में आकर बाणी नाम के सहारे ऊँचे मन होकर इन बातों की समझ आई कि हमारा पहला बल और वीरता, हाथी भैंसे के बल की तरह एक शारीरिक खेल था। अब जो बल आया है, जिसने मौत का भय और पीड़ा का संताप तोड़ दिया है और ख्याल अभय पद में स्थिर कर दिया है, यह वास्तविक शूरवीरता है। सतगुरू जी जब समय उचित लगे संगतों को यह बात तरह-तरह से निर्णय करके बताया करते थे कि केवल शरीर पशुओं का भी तगड़ा है। शरीर तगड़ा जरूर चाहिए, अरोग्य, मज़बूत और बलवान चाहिए, पर साथ मन की शक्ति के सहारे ऊँचे ख्याल, ऊँचे आदर्श के सहारे जो अंदर ऊँचा होता है, वह वीरता वास्तविक होती है, केवल अहंकार की गाड़ी चढ़कर (अर्थात अहंकार में चूर होकर) ज़ोर जबर्दस्ती करना, दूसरे का हक़ गँवाना, अभिमान में ज़ोर जुल्म में शूरवीर कहलवाना वीरता नहीं। यह वही अन्याय है, जिसको तोड़ने के लिए हम अपना आप न्योछावर कर रहे हैं, इसलिए खालसा यत्न सदा करेगा कि ये आत्म नियम वीरता का कायम रहे। इसके साथ ही यह उपदेश भी होता रहता कि शारीरिक बल भी बढ़ाना है, बल रहित रोगी नहीं बन जाना, ऐसे साधन नहीं करने हैं जिससे शरीर बलहीन हो जाये।

खालसा खुश खिला हुआ, अंदर से प्रकाशित ज्योति के स्पर्श में वीर बांकुरा छैल छबीला अब दमदमे के चारों ओर गरजने लगा। मालवे के लोग आ-आकर अमृत छकने लगे, इधर पंजाब आदि स्थानों से संगतें पहुँचने लग पड़ीं। लिखा है कि अमृतसर के समीप

---

* इसके अमृतपान करने का प्रसंग आगे अपनी जगह पर आयेगा, यहाँ ऐसे ही ज़िक्र आया है।

चब्बे की माई सुलक्खणी पुत्र कामना के लिए यहाँ ही पहुँची थी*। महाराज शिकार खेलने के लिए चढ़े ही थे कि इस माई ने पुकार लगायी–

सुहणीए दाड़ीए बींबीए पग्गे,
बिनै करेंदी गुर गोबिन्द सिंघ अग्गे।
गोत वचाइण रहिंदीआं चब्बे।
अफ्फल जांदी नूँ इक फल लग्गे+।

सदा प्रसन्न और हुलारों में रहने वाले सतगुरू ने कहा, "तेरे कर्मों में पुत्र नहीं।" "वह बोली वहाँ भी कर्म लिखने वाला तू ही है, अगर वहाँ नहीं था लिखा तो अब लिख दो?" आप हँसकर बोले 'ला कलम'। किसी ने दवात कलम आगे की, हँसते-हँसते उसके माथे पर एक लिखने लगे तो घोड़ा हिल गया। एक के स्थान पर सात लिखा गया, फिर तो कौतुकी गुरू जी बहुत हँसे और कहने लगे–"अच्छा सात ही सही।" लिखा है कि इसके घर सात पुत्र हुए।

: ४ :

अब आई वह बातचीत, जिसका वर्णन हमने इस प्रसंग के आरम्भ में किया था। दमदमे साहिब दीवान सज रहा था, महाराज ने कई बार कलमें (लेखनी) बनाकर फेंकी और कहा यहाँ गुरुवाणी के लेखक होंगे। कई बार कहा–यहाँ आम लगे हैं, गेहूँ के खेत लहलहा रहे हैं। डल्ले ने कहा–पातशाह! अगर गेहूँ हो गया तो तुर्क आ जायेंगे और हमें सुखी नहीं रहने देंगे। बाजरा ही बख्शी रखो। सतगुरू ने कहा–तगड़ा हो, निर्बल न बन, तुर्क मर मिटेंगे और यहाँ नहरें बहेंगी@। सरहिन्द के पदार्थ यहाँ उगेंगे। इस तरह कौतुकों में भाई भगतू के पुत्र भाई गौरे का पुत्र दयाला आया। रस्म रिवाज के मुताबिक गुरू गद्दी के आगे झुका, भेंट चढ़ाई, तब मालिक जी हँसकर बोले, दयाला भाई! तू सातवें गुरू की बख्शिश है, आप मल्लाह है, परन्तु भई नौका पुरानी हो गयी है। पूजा असर कर रही है, जर्जर नौका नयी कर। दयाले ने कहा–जी आयु बड़ी है, कैसे करूँ? हँसकर बोले–पुराना दयाला अंदर से विदा कर दे, नया हमसे ले। फिर बोला–हड्डियाँ पुरानी हैं, नया कैसे बनूँ? फिर से कैसे उत्पन होऊँ?

---

* कई लोगों का ख्याल है कि यह घटना चब्बे की है जो अमृतसर के समीप है, परन्तु चब्बे दसम सतगुरू जी आये नहीं लिखे मिलते। यह ख्याल भी है कि यह माई और थी और चब्बे वाली माई छठे गुरूजी को चब्बे ही मिली थी। प्रसंग एक जैसा होने के कारण गलती लगती है।

\+ सूरज प्रकाश में इस प्रकार है–
बिनै करेंदी सतिगुर गोबिन्द सिंघ अगे। सुहणी दाड़ी बीबी पग्गे।
गोत वड़ाइच पिंड है चब्बे। खाली दली जो इक फल लगे।

@ ये वरदान देने भाई संतोख सिंह जी ने लिखे हैं, उनके लिखने के कितने ही वर्षों के बाद मालवे में नहर आई। जिससे कि सिद्ध हुआ कि भाई संतोख सिंह जी ने सतगुरू के ये कहे हुए वाक्य तब लिखे हैं, जब नहरें नहीं थीं चलीं। गुरू जी का वर भी नहरों से बहुत ही पहले का है और भाई संतोख सिंह जी का लिखना भी नहरों से बहुत पहले का है।

गुरू जी–गुरू के गृह जन्मो*।

दयाला–गुरू जी! सिक्खी तो खानदान में है, आपकी बख्शिश है।

गुरू जी–फिर से जी उठो, वह सिक्खी पूजा देने वाले खा गये, फिर से जियो।

दयाला–कैसे?

गुरू जी–अमृत छको, खालसा सजो।

दयाला (भय खाकर)–पातशाह! सिक्खी में रखो और निभा लो, अमृत की सामर्थ्य नहीं।

गुरू जी–सामर्थ्य तो है, दोष है। दोष दूर करो! हुक्म पर आओ! परन्तु दयाले ने हुक्म नहीं माना 'जैसे हैं रहने दो' कहता गया।

हुक्म हुआ–अच्छा! हमारा कहा नहीं माना, समय आयेगा, सिक्खों से अमृत माँगोगे, मिन्नतें करोगे तो दान मिलेगा। प्यारे की अंश भी मसंद हो गयी।

यह कहकर गुरू जी ने फिर उसको कुछ न कहा। परन्तु यह बात इनके अपने गाँव के आसपास फैल गयी। यह ख़बर भाई भगतू की दूसरी औलाद को भी पहुँची कि दयाले ने सतगुरू का वाकय उल्लंघन किया है। सबसे पहले यह ख़बर देसां को पहुँची थी, जो बालपन से गुरू चरणों की अनुरागिन, 'वाहिगुरू में दूरी न पड़े' की मिन्नतें करने वाली और नाम की रसिया थी। पति के साथ कभी जाकर साहिब जी के दर्शन करके यह बीबी कृतकृत्य हो चुकी थी। तब से कभी भी उनके चरण कमलों से दिल से परे नहीं हुई थी, सदा हजूरी का वास आत्मा में बसायी रखती थी+। यह खबर सुनकर जो व्याकुलता इस बीबी को हुई वह पीछे हम बता आये हैं। इस बीबी को सभी चाची कहा करते थे, क्योंकि यह छोटी पुत्रवधू थी।

अगले दिन गाँव में फैलती यह कथा भाई भगतू के दूसरे पुत्र जीउंणे की औलाद के परिवार में फैली। जीवण वह सिक्ख था कि जिसको सप्तम सतगुरू अत्यधिक प्यार करते थे और जिसकी नाम लीनता प्रसिद्ध थी। इसको ललकार कर एक ब्राह्मण के मरे हुए या मरे रहे पुत्र को लोगों ने ज़िंदा कर लिया था और इसने अपनी जान उसके बदले में दी थी। जब ख़बर सतगुरू तक पहुँची तो बोले–आपने बहुत पाप कमाया है। एक मुर्दा ज़िन्दगी को जीवित करने के लिए आपने मेरे जीवित पुत्र की जान भेंट दी है।

इस जीउण के चार पुत्र थे, रामा, फतू, तख़्ता, बख़्ता। जब इन्होंने अपने बड़े दयाले की बात सुनी तो ये भी अत्यधिक घबराये कि कुल के बड़े ने जो हुक्म नहीं माना, यह कहीं सारी कुल की अवज्ञा न हो जाये। यह सोच विचार कर चारों भाई गाँव से चलकर दमदमे साहिब आये और चरणों पर शीश धरकर बोले:– "सच्चे पातशाह! कुल के बड़े ने आपकी बख्शी हुई दात नहीं ली, हम आप के दर के कुत्ते हैं, झोली फैलाकर ख़ैर लेने

* सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ।।

\+ हाजरा हजूरि दरि पेसि तूँ मनी।
पुनः– है हजूरि कत दूरि बतावहु।।

आये हैं, आपने जो खालसा रूप धारण किया और करवाया है, हमें बख्शो! यह कुल आपकी मेहर की वरोसाई (वर युक्त होना) हुई है। सतगुरू ने प्रसन्न होकर कहा: "भाई भगतू की रख ली।" फिर चारों को अमृत छकाया गया, राम सिंह, फतहसिंह, तख्त सिंह और बख्त सिंह चारों वीर गुरू के सिंह सज गये।

इस वृत्तान्त को कुछ महीने बीत गये, जो जो सज्जन दर्शनों को आये सतगुरू के उपदेश और कृपा से सुखी होकर गये। कभी कभी सतगुरू कहा करें—राम सिंह! आपके गाँव जाने की कशिश मन में पैदा होती है, आप मिल जाते हो, फिर भी कई बार चलने को चित्त किया है। राम सिंह ने कहा पातशाह! चलो हमारे सौभाग्य हमारा गाँव परन्तु बालू का देश है, आओ, भाग्य लगाओ। हमारे जन्म सफल करो, परन्तु है आपको तंगी। फिर श्री गुरू जी ने कहा—भई चल! कर तैयारी, हम आयेंगे।

धन्य भाग्य जानकर चारों भाई चले गये। गाँव जाकर एक झोंपड़ा बनाया, बहुत मोटी पर्त तिनकों की ऊपर डाली जिससे तपे (गर्म) नहीं और अंदर भूरी बालू बिछाकर पानी डाल डालकर ठंडा ठार कर दिया।

एक दिन कौतुकी गुरू जी चल पड़े, साथ में माता जी भी डोली में सवार थे, और सिंह भी साथ हो लिए। पहले भागीबादर गाँव आये, लोगों ने बहुत प्रेम किया, रात वहीं रहे।

यहाँ से शमीर के कोट वाले अपने गाँव ले गये, बहुत आदर सत्कार किया। ले जाने वालों में एक प्रेमी कवि बिहारी था जो दिवाने साधुओं का अगुआ था और कविता भी करता था, उसकी माझें दिवाने साधु धमालें डालकर गाया करते थे। इन्होंने सतगुरू जी को सुन्दर स्थान पर डेरा दिया, आदर सत्कार सेवा की और फिर इन्होंने धमाल डालकर दिखाई, जिसको देखकर सतगुरू जी खुश हुए। बिहारी* की माझों का नमूना—

१. अम्मां नी हउं मरदी माए,
मैनूँ उठ्ठण सूल कलेजे।
बिरहुं कसाई अंदर वड़िआ,
जिन कीती रेजे रेजे।
जिस दिन दी घर खेड़े दे आई,
सुक्ख ना सुत्ती सेजे।
तिन्हां विटहु कुरबान 'बिहारी'
जो चाक असाथैं भेजे।

२. कर मसलत दरियाउ जे तरीऐ,
मसलत लावे बन्ने।

* बिहारी प्रतीत होता है कि आनंदपुर कविओं में भी रह आया था। इस कवि की रचना पीछे आ चुकी है।

कर मसलत वैरी जित लीजे,
मसलत दावा मन्ने।
कर मसलत गढ़ आकी लीजे,
मसलत लोहे भन्ने।
सभो मसलत सलाहे 'बिहारी'
पर इशक न मसलत मन्ने।
३. रब्ब बिसारिआ तैं कित भरवासे
तैं किउं ग़मान कीतो ई?
अवे लालच लग तैं जनम गवाया,
तैनूँ खुदी ख़राब कीतोई।
धरमराइ तैथों लेखा मंगे,
तेरा भाई बंद ना कोई।
वे सतिगुर के परसाद 'बिहारी'
तेरी सिमरन ते गति होई।

: ५:

देसाँ अपने घर बैठी है, अतीसो आई है, गाँव में से खबरें लायी है कि तेरा शरीका* (हिस्सेदार) भाई जीउण का परिवार जो अमृत छक कर सिंह सज गया है, गुरू जी के हुज़ूर बहुत जाता है और गुरू से खुशियाँ प्राप्त करता है। गुरू जी कभी-कभी राम सिंह को कहते रहे हैं कि तेरे गाँव चलना है। यह ख़बर सुनकर देसां बहुत खुश हुई कि अब दर्शन होंगे। फिर अतीसो ने बताया कि राम सिंह आदि ने आप के उतारे (ठहरने) के लिए गाँव से बाहर बहुत सुंदर छाँव तले एक तिनकों का बड़ा बंगला बनवाया है और भूरी बालू बिछाकर उसको ठंडा कर रहे हैं। फिर एक दिन अतीसो ने बताया कि महाराज चल भी पड़े है और आजकल आने वाले हैं। देसां के लिए सभी खुशी की ख़बरें थी, परन्तु बीच में एक पीड़ा भी थी। वह यह थी कि यह सतवन्ती अकसर घर में ही रहती थी और बाहर अंदर खुली नहीं घूमती थी, और भाई बंदों का घर प्रतिष्ठित होने के कारण और आप अकेली होने की वजह से अंदर रहना अच्छा समझती थी।

नम्रता वाली होने के कारण बिरादरी (हिस्सेदारी) की औरतें इसको प्यार करने के स्थान पर निरादर के साथ देखती थी। इसलिए 'देसां' आप सबसे दूर दूर रहती थी। उसको डर था कि रिश्तेदारी ने मुझे बुलाना नहीं, आप ही गयी तो क्या पता भतीजे जेठ कोई गुस्से हों कि भली औरतों का क्या काम है मर्दाना जगह आने का। अगर सतगुरू जिस समय बिरादरी वालों (शरीके) के घर आये और मैं वहाँ गई तो हिस्सेदारिनें ताने मारेंगी, मन का कोई विश्वास नहीं कि उनके तानों को झेलेगा कि नहीं। हौंसला तो बाँध लिया कि सब

* बिरादरी।

निरादर बर्दाश्त करके भी हिस्सेदारों के घर जाकर माथा चरणों से छुआ आऊँगी इस नम्रता वाली ने मुद्दतें लगाकर एक खेस* अपने हाथों से सतगुरू के लिए तैयार किया था+। सूत ऐसा बारीक काता था कि खेस अत्यधिक मुलायम रेशम जैसा बारीक और तौल में बहुत हल्का बना था, किनारों पर डोरे रेशम के डलवाये थे। यह रेशम भी अपने हाथों से तैयार किया था फिर किनारे की किंगरी सूई और रेशम के साथ काढ़ी थी। कई साल की भजन भरी लगन के साथ यह वस्तु तैयार हुई थी। दिल तो उसका जानता था कि यह खेस एक दीन दुनी के मालिक आगे क्या वस्तु है? परन्तु फिर भी चाहती थी कि भेंट करूँ और जब सतगुरू के आगे रखूँ तो किसी के सामने न रखूँ, कोई मौका बने जो मैं अकेली होऊँ और सतगुरू हों, फिर मुझे आगे रखते हुए शर्म न आये।

बीबी (आदर सूचक शब्द औरत के लिए) के दिल के मर्म को अतीसो जानती थी, वह कभी कभी कोई अपनी अक्ल का रास्ता बताती भी होती थी, पर वह देसां के प्यार वाले दिल को कभी ठीक लगता था कभी नहीं। अतीसो ने देसां को सलाह दी कि आपने ध्यान करके और नाम जपकर खेस बना लिया। सुरत का अभ्यास प्यार में लिप्त एक रुख़ रहने का पकाना था, वह पक गया, अब यह पकड़ छोड़ दो कि खेस एक बार सतगुरू जी के चरणों के साथ छू जाये। पर देसां के भक्ति भाव की गहराई तक अतीसो नहीं थी पहुँच सकती। इसी तरह एक दिन उसने पूछा था कि गुरू तो उपदेश देते हैं परन्तु आप लोग गुरू के साथ ऐसे सम्बन्धित होते हो कि मानो गुरू कोई नज़दीक का रिश्तेदार है। इस पर बीबी देसां ने कहा था–मैं तो कंगाल हूँ, हमारे पंथ सारे में प्राणी-प्राणी उनको अपने रिश्तेदार से ऊपर, केवल अपना और सारा अपना समझता है। कारण यह है कि यह गुरू अवतार है और पिछले सारों से भारी अवतार है। यह सृष्टि को अपनाकर प्यार करता है और हमारी पीड़ाओं के साथ पीड़ित होता है। गुरू ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म रूप और निर्लेप है, परन्तु हमारी पीड़ा से अक्षोभ नहीं। यह ऐसी विशेषता है जो सबको उनका बनाती है। अब देखो क्या घट रहा है? तुर्क राज की पीड़ा कोई नई बात नहीं है? सदियों से यह गर्दन का फोड़ा दुख दे रहा है, परन्तु हमारी इस पीड़ा को गुरू जी ने अपनी पीड़ा माना है, फकीर होकर शहंशाह के साथ जंग रचा दिया है। धन, धाम, सुख, गृह, पुत्र, पूरा वंश कुर्बान कर दिया है। हममें से बेदावे (अविश्वास) भी देने वाले थे, तनख्वाहें लेने के लिए सामने विरोधी हो खड़े होने वाले भी थे, परन्तु उन्होंने हम पर से अपना विश्वास नहीं हटाया। कितने दुख सहारे हैं, फिर हमारे उद्धार में लगे रहे हैं। वे अपनी आत्मसत्ता द्वारा प्रत्येक शरणागत को जीवन देते हैं। हर एक सिक्ख सीधा उनकी आत्मा को छुअन से जी उठा है। जिये हुए महसूस करते हैं कि गुरू मेरा है, यह बापू है चाहे माँ है, परन्तु मेरा है और सारा मेरा है।

---

* हाथ से बुनी विशेष चादर।

\+ मालवे की साखियों वाली पोथी की साखी ८४।

इस तरह की बातचीत में अतीसो भी प्रेम करने वाली और सिमरन करने वाली होती जाती है और हर हाल में अपनी सहेली की मदद करती है परन्तु आज की पीड़ा का दारू अभी इसको भी नहीं सूझा कि जिससे देसां की तसल्ली हो जाये। आख़िर वह समय आया कि दाता जी गाँव आये। तिनकों के झोंपड़े में आ ठहरे, ठंडा शीतल स्थान देखकर प्रसन्न हुए। प्रशाद तैयार हुआ, गुरू जी और संगत ने छका (खाया) महाराज किसी किसी समय अचानक चारों ओर देखते हैं जिसका कारण किसी की समझ में नहीं आता। रात पड़ी ठंड छा गयी परन्तु अभी दाता को खींच (कशिश) सी पड़ती है। रात बीत गयी, परन्तु सारी रात सतगुरू जी को ऐसे लगे जैसे कोई प्रेमी सिमरन में है। दिन हुआ, आज प्रशाद राम सिंह के घर था, श्री गुरू जी ने वहाँ जाकर छकना (खाना) था। माता जी तो भाइओं के घर पहले पहुँच गये, गुरू जी घोड़े पर चढ़कर बाद में चले, राम सिंह घोड़े के आगे-आगे रास्ता बताने के लिए चला। साहिब हर कदम पर कुछ देखें, फिर चल पड़ें, जब गाँव में घुसे तो एक स्थान पर घोड़ा रुका। श्री गुरू जी के दिल ने कोई पहचानी सी कशिश महसूस की। घोड़ा रोक लिया, राम सिंह ने आवाज़ दी–महाराज जी! घोड़ा लेते आओ! मेरे घर का रास्ता आगे है, परन्तु गुरू जी छलांग लगाकर देसां की डयोढ़ी जा प्रविष्ट हुए। वह आगे से डयोढ़ी के बाहर वाले दरवाजे के मेहराब के साथ चिपकी खड़ी थी, ऐसे कि पता नहीं लगे कि कोई खड़ा है, परन्तु उसको वहाँ से निकलते हुए दाता जी के दर्शन हो जायें। जब 'नाथ अनाथां बाण धुरां दी' के बिरद वाले बिरदपालक, दीन-दुनी के मालिक डयोढ़ी के अन्दर आ गये तो बीबी देसां ने देखे, देखे ओर दौड़कर चरणों पर गिर पड़ी–

"ओ मेरे अपने सतगुरू! ओ मेरे दाते सतगुरू! ओ गरीबों के प्यारे सतगुरू! ओ नीचों के प्रतिपालक सतगुरू!"

मिन्नतें थीं जो विवशता में निकल गयीं और देसां चरणों के साथ भँवरे की तरह लिपट गयी। वे सुन्दर जूतों वाले चरण माथे को छुए, माथा ठंडा हो गया। बीबी का अपना आप पारस स्पर्श लगने की तरह दमक उठा। शुक्र का भाव उसकी आत्मा को मानों चरणों में लीन कर गया। उस दिलों पर ठंडक पहुँचाने वाले दैवीय नूर ने बीबी की आत्मा को अपनी सुरत द्वारा वह ईश्वरीय ज्योति का रंग लगाया कि:-

"रूपु न रेख न रंगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभ भिन्न।।" के मिलाप का सुख बीबी की आत्मा ने खाया:-

'तिसहि बुझाए नानका जिसु होवै सु प्रसन्न।।१।।'

प्रसन्न जो हो गया। प्रसन्न हुए ने अकाल, असीम, अनन्त, अरूप, अरंग, अरेख में उसकी आत्मा का छोर छुआ दिया। देसां कृत कृत्य हो गयी। बीबी के प्रेम उत्साह से आप भी गदगद हो रहे थे। अब आप झुके, हाँ जी। शहंशाह झुके, गिरी पड़ी और चरण कमल की मौज़ में समायी का सिर प्यार के साथ थपथपाया, कर कमलों से उठाया। काँपती काँपती उठी, नेत्र भरकर ताका, परन्तु जलवा झेल न पाई, वापिस चरणों में गिर पड़ी। फिर दाता जी ने उठाया, फिर गिरी, फिर दाते ने उठाया और वर दिया–

"उठ बीबी! तेरी साईं के दर समाई। निहाल बीबी! भाई भगतू-परिवार धन्य, धन्य सिक्खी।"

वह सामान्य सा खेस (चादर) जो बीबी की बगल में थी, जिसका लाल किनारी वाला छोर लटकता दिखाई दे रहा था, अत्यधिक प्यार से सतगुरू जी ने खींच लिया।

'इकु तिलु नहीं भन्नै घाले॥'

नम्रता वालों का काम, छोटे दिलों का प्यार, कैसे कबूलता है? खेस नीचे बिछाने के लिए था, वही खेस छाती के साथ लगाकर कहता है–

वाहिगुरु का नाम ले लेकर काता सूत
रूँ रूँ विच तूँ, लूँ लूँ विच तूँ।
तूँईं दा ताणा, तूँईं दा पेटा।
तूँईं दा कत्तण, तूँईं दा तुम्मण।
तूँईं दा खेस, तूँईं दा वेस।
तूँईं दी माई, तूँईं विच समाई।

मनुष्य की दिल की पीड़ा के साथ अपना दिल लगाकर पीड़ा हरने वाले दाते के अपने नेत्रों में–इलाही ज्योति वाले नेत्रों में दो बूँदे किसी अत्यधिक दैवी प्यार की भर आईं। खेस फिर बीबी को देकर गुरू जी बोले "बीबी मेरी अमानत रख, मैं आकर रोटी खाऊँगा।" यह कहते और सिर पर प्यार का दिलासा देते आप बाहर निकले, बिजली की फुर्ती से घोड़े पर चढ़े और इंतज़ार करते राम सिंह के दरवाजे जा उतरे। इधर अतीसो देसां को बाँह से पकड़कर अंदर ले गयी। खेस अतीसो ने आदर सहित ऊँचे स्थान पर रख दिया और फिर आप किसी रस में डूबी मग्नानंद बहन को धीरे-धीरे दबाने लग पड़ी।

राम सिंह अपने अहाते में ले जाकर खुश हुआ, उतारा (ठहराना) ऊपर वाले चौबारे में देना था, परन्तु चौबारे को सीढ़ी साथ वाले घर से थी। यह घर बख़तू सिंह हिस्सेदार (शरीक) का था, हिस्सेदार के घर से गुरू जी न निकलें, यह दोष अभी राम सिंह के अंदर था, इसलिए उसने गुरू जी को अपने आँगन में से काठ की सीढ़ी के द्वारा ऊपर चढ़ाया। ऊपर जाकर जब सीधी मिट्टी की सीढ़ी साथ के घर से देखी तो सतगुरू जी बोले–

इह क्या राम सिंघ तैं कीना।
कठन थान को मारग दीना।
करति शरीका इतहि चढाए।
ऐसे नहिं तुझ को बनि आये॥३२॥ (गु॰ प्र॰ सूरज)

ख़ैर। रात गुरू जी उसी चौबारे में रहे। वहाँ ही प्रशाद रात का खाया। सुबह उठकर वहीं स्नान किया। राम सिंह अभी तैयारी ही कर रहा था कि दीनानाथ जी मिट्टी की सीढ़ी के रास्ते नीचे उतर गये, और बख्त सिंह तख्त सिंह के आँगन जा पहुँचे। दोनों भाई दौड़कर चरणों में गिरे, पलंग बिछाया, आपको ऊपर बिठाया चरण चूमे और बलिहार हो गये। "धन्य हे दिलों को जानने वाले। एक नज़र देखने वाले प्यारे दाते! धन्य तू" कहकर स्तुति

गाई। परन्तु वह भेदभाव की दीवारें गिराने वाला अभी और नीची ओर मेहर की इच्छा बहानी चाहता है। राम सिंह और फतेह सिंह भी अब आ गये थे। बख्त सिंह का एक बच्चा सतगुरू जी की गोदी में आ बैठा। राम सिंह ने डाँटा, कहने लगा–चरणों में लग मूर्ख! महापुरुषों की बेअदबी करता है? गले से लगाकर दाता ने कहा–'राम सिंह! मत डाँट, यह बच्चा एक ऊँचा पुरुष होगा।' ऐसे कहकर आप उठे। कहते हैं कि आँगन (अहाते) की दूसरी तरफ की दीवार में एक दरवाजा कच्ची ईंटों द्वारा बंद किया हुआ था यहाँ आकर दाता जी ने हल्का सा धक्का पैर का दिया तो यह खड़ी की गई दीवार दूसरी ओर जा गिरी, रास्ता खुल गया और आगे आ गया अहाता उस गरीब बेचारी देसां का, जिसको गरीब जानकर बिरादरी ने डराकर भगाया हुआ था। भेदभाव की दीवार तोड़ने वाले ने अब आगे कदम बढ़ाए तो क्या देखते हैं कि एक कोष्ठ में स्थान अत्यधिक साफ करके चौंकी रखी है, ऊपर खेस बिछा है आगे की ओर छोटी चौंकी रखी है, इस पर थाल परोसा पड़ा है और देसां चौकी के पास बैठी पंखा कर रही है। नेत्र बंद है, शरीर सुध में नहीं दिखाई देता, परन्तु वह मानों ऐसे पंखा धीरे-धीरे कर रही है कि उसके विचार में महाराज बैठे प्रशाद खा (छक) रहे हैं। दाता जी धीमे से आगे बढ़े और चौकी पर बैठ गये और प्रशाद जो परोसा पड़ा था, खाने लग पड़े। राम सिंह, फतह सिंह, तख्त सिंह और बख्त सिंह अचम्भित हो रहे थे कि यह क्या कौतुक घट रहा है? हम बड़े, हम बख्शे हुए पिछले गुरुओं के, हमने अमृत पान किया, यह पराये परिवार में से आई गरीब कंगाल कर्मों की मारी, न नाम, न स्थान, इसके घर गुरू जी कैसे आ गये। किस तरह दीवार गिराकर आये हैं। कैसे इसका प्रशाद परोसा पड़ा है। कैसे जान गये कि देसां थाल लगाकर इंतज़ार कर रही है और कैसे आते ही खाने लगे? कुछ घबराते और कुद शर्मिन्दा हो रहे थे, फिर यह बात सूझती थी कि जानीजान हैं, ग़रीब निवाज़ हैं, चींटी की पुकार पहले सुनते हैं, हाथी की चिंघाड़ बाद में सुनते हैं। सारे भाई कुछ बिरादरी के भाव में आकर खीझते भी थे कि यहाँ क्यों आ गये, परन्तु चन्द्रमा किसी मिट्टी की थाली से छिपाया नहीं जा सकता। सतगुरू ने इशारा करके चारों को बिछी हुई चटाई पर पास बिठा लिया और बोले बीबी! पानी!

"पानी"

पानी सुनकर चौंकी नेत्र खुले, ध्यान वाले दर्शन प्रत्यक्ष देखे, माथा टेका। अब प्यार उछाल में बिरादरी से पल्ला नीचा करने का किसको याद है? घड़े में से रात का ठंडा हुआ जल लाई, छन्ना (एक बर्तन) भरकर आगे रखा, खुश होकर दाता जी ने पीया। उस ग़रीब स्त्री के पकाये हुए प्रशादे (चपातियाँ) चारों अमीरों को खिलाये और फिर सिंहनाद में बोले–

हे सुन्दर पुरुषो! अन्दर से दीवारें गिराओ, एक नज़र करो, आप सतगुरू जी ने उपदेश देने वाले स्थापित किये थे (बनाये थे), आप में प्यार चाहिए। याद रखो। ईर्ष्या एक भूत है जो सत्संग में भी छिपकर आ घुसता है, इसकी ज्यादा खबरदारी रखा करो। भेदभाव आप में शोभा नहीं देता, आपने अमृत पान किया है, खालसा सजे हो, आप बख्शिश वाले का

वंश हो, आप में हिस्सेदारी ओर भेदभाव अब न फेरा डाले। भजन बंदगी करने वाले का अन्तर–

"मनु मैदानु करि टोए टिबे लाहि"

वाला चाहिए। देखो भाई भगतू की कमाई की ओर, देखो जीने की ओर। आप अच्छे हो, वाणी पढ़ते हो, नाम की मिन्नत लेते हो, अब अमृत पान कर नये रंग में आये हो, प्रेम आपका रूप रंग है। घबराओ नहीं, कमजोरियाँ और कमियाँ आ ही जाती हैं, पूरा नाम साईं का है। परन्तु भई ग़ाफिल (असावधान) नहीं होना इस मन पर सदा पहरा देना। सिमरन वाले को, वाणी के प्रेम को प्यार का प्रयोग चाहिए। यह बीबी आपकी चाची है, माता है, इसको माता तुल्य प्यार करो। आज के बाद इसके साथ कि आपस में हिस्सेदारी का भाव आप लोगों में कभी लौटकर न आये। ...... राम सिंह। यह सिमरन (स्मरण करने) वाली देवी है, इसका भाव और भक्ति हमें खींच कर यहाँ लाया है। इसकी आत्मा अरोग्य और स्वतंत्र हुई है, पर साईं दर अपने लक्ष्य पर पहुँची है, इसका आदर करोगे तो सुख पाओगे। साईं के दर जाति, जन्म, उच्चता, दौलत, गर्व स्वीकार नहीं है, वहाँ विश्वास, श्रद्धा, प्यार, नम्रता, नाम, साईं लगन में रहना स्वीकार्य है, शीश झुकाओ और इसको माता समझकर आदर सत्कार दो।

ये बातें सुनकर चारों भाइयों के अंदर से एक गुबार जैसे का मानों अंबार गिरा, दिल खिल उठा, डरी हुई 'माई देसां' ठंडी ठंडी देवी नजर आई और चारों भाई दाते की मेहर के सदके होते हुए चरणों पर गिरकर बोले–हे मालिक! बख्श ले।

हम भूलि विगाड़ह दिनसु राति हरि लाज रखाए।।
हम बारिक तूँ गुरू पिता हैं दे मति समझाए।।

इस प्रकार माया की मैल दूर करके, अपने पीछे लगे हुओं के मन उज्ज्वल करके दाता साईं उठ खड़े हुए, बोले–राम सिंह! यह उठा ले खेस और ले चल हमारे साथ। यह तुम्हारी माता ने गुरू गुरू जप कर तैयार किया है, यह भेंट दर स्वीकार हुई है।

इस प्रकार तारते, शीतल करते, अपनाते ग़रीब निवाज़ जी ठंडे शोभन, सुन्दर सतगुरू जी 'देसां' के घर से चलकर फिर बाहर वाले तिनकों के झोंपड़े की ओर आ गये।

सूचना:– यह कौतुक करके गुरू जी बठिंडे गये और क़िले में एक ऊँचे ठिकाने डेरा किया।* कहते हैं कि क़िले में से कोई काणा देव नाम का दुखदाता दूर किया। यहाँ भी बहुत ही प्रचार हुआ, संगतें टूटकर (अत्यधिक मात्रा में) आईं। माई भागो, जो अपने ऊँचे रंगों में रहती थी और अब कपड़े भी पहनने से रह चुकी थी (अर्थात् कपड़े न पहनना) सतगुरू की आज्ञा होने पर कपड़े पहनकर विचरने लगी।+ माई की चढ़ती कला (बुलन्द

* बठिंडे में दो गुरुद्वारे हैं एक किले में और एक बाहर।

\+ कमर में कच्छा (विशेष प्रकार का जांघिया), सिर पर दस्तारा (पगड़ी) और गले में चादर की गाँठ यही माई की पोशाक होती थी।

इरादे, हौंसला आदि) उन्मन समाधियाँ, बंदगी के रंग अत्यधिक प्रभाव वाले थे। इस तरह भाई दयाले का अमृत पान करना तथा और अनेक कौतुक हुए। सतगुरू कई दिन बाद फिर यहाँ से चलकर लक्खी जंगल* के बीच से होते हुए रात रास्ते में गुज़ारते फिर दमदमे (तलवंडी साबो) आ गये। यहाँ कई कौतुक किये, सूखा पड़ने पर बारिश करवायी। महामारी पड़ी तो अमृत दान देकर दूर की। इन्हीं दिनों डल्ले की ओर सरहिन्द के नवाब का परवाना आया कि गुरू जी को हमारे हवाले कर दो, या जगह बताओ हम आकर ले जायें। डल्ले ने जवाब भेजा कि गुरू जी मेरी जान के साथ हैं, मैं बेअदबी नहीं कर सकता। इन मरुस्थलों में मैं और गुरू जी तुम्हारे हाथ नहीं आ सकते। युद्ध आ पड़ा तो तैयार हैं। डल्ले का प्रेम इतना बढ़ गया था कि अपना तन, मन और धन भी समझता था कि गुरू जी पर न्योछावर कर दूँ। अमृत पान करने की अभी कसर थी, जिस प्रकार डल्ले का मन अमृत पर निश्चय वाला हुआ, अगले प्रसंग में है।



---

* सरकारी दफ्तरों में यह इलाका तब लक्खी जंगल लिखा जाता था परन्तु गुरू जी ने जिसको लक्खी जंगल कहा है वह पीछे आ चुका है। एक लक्खी जंगल सिंध में भी बताया जाता है। ऐसे भी प्रतीत होता है कि इस सारे इलाके को प्यार के साथ लक्खी जंगल कह लेते हैं।

८६ करामात, डल्ला और अमृत*

१ करामात+

छतिआणे के टीले का सैय्यद इब्राहीम विद्वान, तपी रयाज़ती जब सिंह सज गया, तब उसकी आत्मा की ठंड ने शांति ने (स्थिरता ने), ब्रह्मानंद ने जो उसको प्राप्त हुए उसको सतगुरू का और भँवरा बना दिया और इतना प्रेमातुर किया कि डेरा, ठिकाना वे सेवक और प्यारे जो सिंह सज जाने पर भी उसके विश्वास में पक्के रहे थे सब छोड़कर सतगुरू के साथ चल पड़ा और सदा चरण शरण की ठानकर सेवा में रहने लगा। सतगुरू जी कई गाँवों से होते हुए उस ठिकाने पर आ टिके थे कि जिसको आपने दमदमा कहा और कई महीने निवास रखा, इसके समाचार पीछे आ चुके हैं। यहाँ एक दिन अजमेर सिंह जी और दाना सिंह जी एकान्त में बैठे उस सरोवर के किनारे वार्तालाप कर रहे थे कि जिस में एक दिन सतगुरू जी ने कलमें@ बना बनाकर फेंकी थीं और कहा था–"लिक्खण सर", यहाँ बड़े लिखारी (लेखक) होंगे।' अजमेर सिंह और दाना सिंह जी के पास राय डल्ला आकर बैठ गया और कहने लगा–

खालसा जी! मैं जंगल वासी आदमी हूँ, सतगुरू का प्रेमी हूँ, बहुत दिनों से अंग संग हूँ, सतगुरू प्रसन्न और कृपालु भी मुझ पर अत्यधिक हैं, मैं उनको करामात का साहिब मानता भी हूँ, आँखों से करामातें देख भी चुका हूँ, सूखा लग जाने पर मैंने विनती की कि बारिश बरसे, तब पहले तो रज़ा का उपदेश करते रहे, परन्तु जब मैंने जिद्द की तो बिरद पालक कहने लगे–डल्ले कुदरत जड़ है, जीवन चेतन है, चेतन जड़ पर भारी है, इस जड़ कुदरत को हुक्म दे कि बारिश बरसाये। मैंने कहा–पातशाह मैं निर्बल क्या जानूँ? आपके हुक्म में सब कुछ है, मेहर करो? कहने लगे, रज़ा है बारिश हो इसलिए बरसेगा कुदरत भय में है, सच्चे की ललकार निकलेगी। इस प्रकार ठीक बारिश हुई तो बारिश हुई। अब जब महामारी फैलने पर बुखार पड़ गया है, तो मैंने प्रार्थना की पातशाह! मेहर करो! तो हुक्म हुआ जो अमृत छके (पान करे) वही ठीक। जो छकता है, एक तो शरीर का बुखार उतर जाता है, साथ में मन की तपिश शांत हो जाती है, यह क्या बात हुई?

दाना सिंह–आपका क्या मतलब है कि यह कुछ कोई भूल भुलावा है?

डल्ला–मेरा अंदर बाहर जल जाये अगर मेरे अंदर साहिब सतगुरू गोबिंद सिंह जी के करामाती होने में शक हो तो, मुझे पक्का भरोसा और आँखों देखा और शरीर पर घटा

* यह प्रसंग ११ पौष सं॰ ना॰ सा॰ ४५१ (२५ दिसम्बर १९१९) गुरुपर्व पौष सुदी सप्तमी समय खालसा समाचार में 'कलगियाँ वाले दे रंग' शीर्षक अधीन प्रकाशित हुआ था।

\+ सिद्धियाँ, वे अलौकिक शक्तियाँ जिनके द्वारा अनहोनी बात हो सके।

@ लेखनियाँ

भरोसा है। मेरी विनती यह है कि यह किस तरह होता है कि उनके कहने से वह कुछ हो जाता है, जो कुछ कि होना मुश्किल दिखाई देता है? बात क्या है? है तो सच, परन्तु है कैसे?

अजमेर सिंह—डल्ले। जब तेरे हाथ में दें गेंद और कहें पहुँचा दे दस गज़ पर, तू दस बारह गज़ चलकर उसको छोड़ने तो नहीं जाता, वहाँ से ही लुढ़का देता है, गेंद लुढ़क कर दूर चली जाती है। चाहिए यह था कि गेंद तेरे हाथ से धकेला तब तक लुढ़कता जब तक कि तेरा हाथ गेंद के साथ लगा उसकी लुढ़कायी जाता, तूने हाथ छोड़ दिया गेंद अपने आप कैसे लुढ़कता चला गया? देख बैलगाड़ी तब तक चलती है जब तक बैल खींचे जाते हैं। गठरी तब तक खेत से घर की ओर चली आती है, जब तक गट्ठर उठाने वाला उसे सिर पर उठाकर चलता रहता है। न बैलों के लगकर खींचे बिना गाड़ी, न गट्ठर उठाने वाले के सिर पर उठाकर चले बिना गट्ठरी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सके, परन्तु तेरी गेंद आप लुढ़ककर ठिकाने पहुँच गई यह कोई करामात है कि नहीं?

डल्ला—यह कौन सी करामात है? सब कोई कर लेता है।

अजमेर सिंह—करामात करामात है, चाहे एक कर सके चाहे सब कोई। तू बता करामात है कि नहीं?

डल्ला—वह कैसी करामात है जो रोज़ होती है, सब कोई करता है और रोज़ होने के कारण आश्चर्य कोई नहीं होता।

अजमेर सिंह—तो तू करामात आश्चर्य करने वाली बात को समझता है। आश्चर्य तो मदारी के तमाशे वाले भी कर लेते हैं, परन्तु तू जानता है कि वह सारी चालाकी और हाथ की सफाई है, पर तू जानता है कि करामात सच है।

डल्ला—(घबराकर) ठीक कहते हो, पर मुझे बताओ न फिर है क्या?

अजमेर सिंह—पहले आप बताओ कि गेंद का अपने आप पहँच जाना करामात है कि नहीं?

डल्ला—यह उस तरह की करामात नहीं जिस तरह की मैं पूछता हूँ।

अजमेर सिंह—पर है करामात?

डल्ला—लगती तो है।

अजमेर सिंह—कभी तेरे घर के दरवाजे दो हाथों अथवा किसी धचका आदि शारीरिक धक्का दिए बिना खुले हैं? कभी दरवाजे आप शारीरिक जरिये द्वारा बंद किए बिना बंद हुए हैं?

डल्ला—नहीं जी।

अजमेर सिंह—कभी तेरी मर्जी मात्र से घर के दरवाजे खुले या बंद हुए हैं? तूने चाहा हो कि दरवाजा बंद हो जाये तो बंद हो गया हो, तूने चाहा हो कि दरवाजा खुल जाये तो खुल गया हो?

डल्ला—कभी नहीं, कोई खोले बंद करे तो खुलते बंद होते हैं, मेरी मर्जी मात्र से तो नहीं खुलते बंद होते।

अजमेर सिंह–परन्तु सुबह जब तू जागता है तो तेरी आँखों के दरवाजे, जिनको आँखों के छप्पर कहते हैं किस तरह खुलते हैं? क्या तू उनको अपने हाथों से खोलता है अथवा कोई तेरे लिए उनको खोलता है?

डल्ला (घबराकर)–नहीं, वे आप ही खुल जाते हैं।

अजमेर सिंह–घबराओ नहीं, सोचो, कंघी मारो मन में! आँखों के छप्पर (पट) अपने आप नहीं खुलते, आप अंदर से चाहते हो कि खुल जायें, वे खुल जाते हैं, आप इच्छा करते हो कि वे बंद हो जायें, वे बंद हो जाते हैं। केवल आपकी इच्छा से, केवल आपके चाहने से आँखों के दरवाजे खुल बंद हो जाते हैं, किसी शारीरिक जरिये की आवश्यकता नहीं पड़ती।

डल्ला–यह तो ऐसे ही होता है।

अजमेर सिंह–क्या यह करामात नहीं?

डल्ला–है तो आश्चर्य परन्तु प्रतिदिन घटित होता है और सब कोई कर सकता है, इसलिए कभी ध्यान नहीं दिया कि कैसे केवल चाहने मात्र से शरीर के दरवाजे खुल बंद हो जाते हैं।

अजमेर सिंह–जब आप एक गाँव से दूसरे गाँव चले जाते हो तब आप पहले चाहते हो कि अमुक जगह चलें, फिर चाहते हो चलना शुरू करें, फिर चाहते हो कि टाँग एक आगे हो और दूसरी पीछे। फिर पीछे वाली आगे जा पड़े और फिर जो पीछे रह गयी है वह उससे आगे जा पड़े और ऐसे चाहते जाते हो तो देखो आश्चर्य, बिना हिलाये, बिना उठाये, बिना धक्का दिए, अपने आप केवल चाहने मात्र से टाँगें चलती जाती हैं, डल्ले! क्या यह करामात नहीं?

डल्ला (और हैरान होकर)–कभी सोचा नहीं था। है तो करामात की तरह ही, परन्तु सब कोई करता है और रोज़ होता है। कभी हैरानी नहीं होती।

अजमेर सिंह–डल्ले। तू बड़ा चौधरी है, मानो राजा है, फिर तू सिपाही राजा है। कभी सवारी घोड़े की की है?

डल्ली (मुसकराकर)–और काम ही क्या है?

अजमेर सिंह–याद करके और विचार कर के बता कि सदा घोड़ा तेरी रास के इशारे के साथ चलता है परन्तु कभी देखा है? कभी एक आध बार ऐसा घटा है? कि तू घोड़े पर चढ़कर किसी नये ठिकाने को चला है, जहाँ पहले घोड़ा कभी नहीं गया, फिर जहाँ से तूने कहीं रास्ते से दायें बाँये लगाम मोड़कर ठिकाने की सीध करनी थी, तूने लगाम नहीं मोड़ी, परन्तु चित्त में वहाँ पहुँचने की तीक्ष्णता अथवा अतिशय इच्छा तुझे उस स्थान के ध्यान में डुबो रही है, और तू उस डूबने में घोड़े को रास का इशारा देना भी भूल गया है। पर देखो उस मोड़ पर जहाँ से तूने रास मोड़नी थी, घोड़ा आप ही ठिठक गया है, खड़ा हो गया है, या तेरे मन के चाहे रास्ते की ओर मुड़ गया है, आप ही बिना लगाम को तुनकाये। यह घटना रोज़ नहीं होती और हर एक के साथ नहीं घटती, परन्तु

कभी-कभी किसी सवार ने ऐसा देखा है या किसी के साथ घटा है। क्या कभी तेरे साथ भी ऐसा घटित हुआ है?

डल्ला-हाँ, एक दो बार ऐसा हुआ है, मैं किसी कठिनाई के काम उसके ध्यान में डूबा जा रहा था और इतना तीखा और ज़ोरदार अंदर से उस ओर डूब रहा था कि लगाम नहीं मोड़ी, परन्तु मेरी हैरानी। तब ही मुझे पता लगा जब घोड़ा दरवाज़े के आगे जा खड़ा हुआ, जहाँ पहले वह कभी नहीं था गया। हाँ, साईं जिये साईं लोग जी! यह बात ऊपर वाली बातों से भी हैरान करने वाली है, परन्तु यह बहुत कम देखने में आती है और कभी कभी होने वाली है।

अजमेर सिंह-क्या यह करामात नहीं?

डल्ला-होगी, परन्तु मेरे करने की तो नहीं न, न मैं आप कर सकता हूँ, आप ही कभी-कभी हो जाती है।

अजमेर सिंह-हो तो जाती है न? है आश्चर्य, परन्तु ऐसी है जो घटित होती है और आम आदमी समझते हैं कि घटित होती है और है उसी तरह की जिस तरह की कि करामात होती है।

डल्ला-ठीक है, परन्तु सतगुरू तो बीमारी उतार देते हैं।

अजमेर सिंह-तूने भी कई बार बीमारी उतारी होगी। क्या कभी तेरे किसी बच्चे को हिचकी लगी है?

डल्ला-कई बार।

अजमेर सिंह-क्या कभी इस तरह का इलाज किया है कि बच्चा आया हिचकी लेता ओर आपने आते ही कहा हो, देख काका! तूने कल माँ के पैसे चुरा लिये थे मैं तुमसे गुस्से हो गया हूँ और आज से मैंने तुम्हारे साथ नहीं बोलना, और तेरे ऐसा कहते ही लड़के की हिचकी बंद हो गयी हो?

डल्ला-हाँ हुआ है, सवा पहर एक दिन काके की हिचकी नहीं थी रुकी, फिर मैंने उसको किसी तरह की बात कही तो हट गयी परन्तु जब उसको पता लग गया कि मैंने उसको बात बहलाने के लिए कही है, तो दूसरी बार ऐसे नहीं हटी।

अजमेर सिंह-डल्ले! यह बात अलग है, पर हिचकी हट तो गयी थी न, बिना दवा से अपने आप तेरे कुछ कहने मात्र से।

डल्ला-हाँ जी।

अजमेर सिंह-क्या फिर यह करामात नहीं थी?

डल्ला (हैरान होकर)-लगती तो करामातें हैं, परन्तु उस तरह की नहीं जिस तरह की गुरू महाराज कर लेते हैं और मैंने समझना यह है कि वे कैसे होती हैं?

अजमेर सिंह-डल्ले। अगर कभी घोड़ी या भैंस दरिया में बच्चे को जन्म दे दे तो उसका बच्चा जन्म लेते ही तैरने लग पड़ता है।

डल्ला-ठीक है।

अजमेर सिंह–परन्तु अगर आदमी का बच्चा दरिया में फेंके तो डूब जाता है।

डल्ला–ठीक है।

अजमेर सिंह–परन्तु फिर आदमी का बच्चा दरिया में तैरता है, तू तैरता है, तेरे बेटे तैरते हैं, क्या यह करामात नहीं कि कुदरत से तो इंसान तैराक नहीं, परन्तु कुदरत पर हावी होकर तैरने लग पाता है?

डल्ला–है तो ठीक, कभी इन बातों पर ध्यान नहीं देते न, परन्तु फिर भी मुझे उस करामात का ब्यौरा बताओ जो सतगुरू जी करते हैं।

अजमेर सिंह–ले सुन–तेरे शरीर में दो हिस्से हैं, एक शरीर, एक जिसको मन कह लिया जाये। शरीर दिखाई देता है, मन प्रतीत होता है। इस मन के पीछे और ताकत है, उसको रूह अथवा आत्मा कहते हैं, परन्तु उसकी बात फिर करेंगे। शरीर सारे काम शारीरिक चेष्टा द्वारा करता है, परन्तु मन केवल इच्छा करता है। जिस तरह शरीर कई बलवान है, कई कमज़ोर, पतले, निर्बल हैं, इसी तरह मन भी कई निर्बल हैं, कई बलवान हैं। जिस तरह बल वाले शरीर की चेष्टा (हरकत) ताकतवर है, उसी तरह बल वाले मन की चेष्टा (इच्छा) ज़बर्दस्त और ज़ोर वाली होती है। जिसको तू करामात समझता है, वे बलवान इच्छा शक्ति के कर्त्तव्य हैं।

यह तू देख चुका है कि इच्छा शक्ति जब अंदर से चलने की होतीं है, तो तुझे ले चलती है। इच्छा शक्ति का रूप रंग नहीं तो तौल तो क्या होना था, परन्तु तेरा शरीर तीन मन का है, तीन मन (माप सूचक शब्द) की देह को तौलहीन इच्छा शक्ति रोज़ ले चलती है, तू यह बात समझता है कि नहीं? फिर आँखों के छप्पर (पट) एक तरह आँखों के दरवाजे हैं, परन्तु तेरी इच्छा शक्ति इनको केवल चाहने मात्र से खोल मूँद लेती है, तुझे घर के दरवाजों की तरह हाथ से खोलने मूँदने की ज़रूरत नहीं पड़ती। इस प्रकार यह तुझे यकीन हो गया कि अन्दर हमारे इच्छा शक्ति है और यह काम करती है, न केवल चाहने का, पर इसका चाहना शरीर को, देह को हरकत में ले आता है। बस, सिद्ध हुआ कि इच्छा शक्ति हरकत करवा सकती है और देह पर हावी वस्तु है।

डल्ला (हक्का बक्का होकर)–बात तो नज़दीक से ही निकलती आती है।

अजमेर सिंह–जब तेरा मन तेरे शरीर को चलाता है, और वह मन वज़नदार रूप रंग का नहीं और वज़नदार शरीर को मर्जी मुताबिक चलाता है, तब करामातों का नियम और नाखून अड़ने वाला स्थान तो मिल पड़ा कि नहीं?

डल्ला–कैसे?

अजमेर सिंह–जैसे तू मैं सभी बातें करते हैं, तो साफ है कि हम से वह कुछ होता है कि जिसको आवाज़ या ध्वनि कहते हैं, अगर आवाज़ न हो तो बातें कैसे करें? यह आवाज़ ऊँची, नीची, मद्धम होती है। यह आवाज़ छोटी, बीच की और लम्बी होती है। लम्बी को हेक कहते हैं, जब कोई हेक (लम्बा सुर) निकाले तो कहते हैं और ऊँची कर। और ऊँची करे तब पता लगा कि हेक ऊँची नीची भी हो सकती है। बस यहाँ से सारे 'गायन', सारे 'राग' का नियम मिल गया।

डल्ला (घबराकर)–कैसे?

अजमेर सिंह–डल्ले। आगे अब बहुत ध्यान देने की ज़रूरत है, ऐसे ही आवाज़ें सारा संसार निकालता है, सब कोई गाता और धुनें निकालता रहता है, परन्तु जो ध्यान देता है कि स्वर के ऊँचे नीचे कितने ठिकाने हैं, तब उसको ध्यान दे-देकर स्वर ऊँची नीची निकालते पता लग जाता है कि इसके सात ठिकाने हैं। फिर वह अपने याद रखने के लिए उन सातों ठिकानों के नाम रख लेता है–

षड़ज, ऋषभ, गंधार, मद्धम, पंचम, धैवत निषाद

सा रे गा मा पा धा नी।

जब कोई इन ठिकानों में से किसी ठिकाने की आवाज़ निकले झट समझ जाता है कि यह अमुक है, परन्तु हर कोई ये ठिकाने नहीं पहचान सकता। फिर वह इनको आपस में कई जोड़ों में मिलाकर गाता है। वे मीठी बनती हैं, उनका नाम तानें रखता है। फिर इनको वह ध्यान और आग्रह से समझता, पहचानता और जोड़ता है और याद रखने के लिए अलग अलग नाम देता है, वे फिर राग-रागनियाँ बन जाते हैं। जब इनमें कोई अर्थ वाले वाक्य (अथवा टप्पे अथवा छंद) गाने लग जाता है तो कहते हैं कि बोल या गीत गाता है। अब ध्यान से सोच ले कि जैसे आम लोगों के स्वरों में और एक गवैये (की सुन्दर मंजी हुई तानों और गीतों की धारणाएँ) के गायन में अन्तर है उसी तरह आम तेरी मेरी करामातों में और ईश्वरीय लोगों की करामातों में अन्तर है। और ज़ैसे 'स्वर' राग का नियम और मूल है, वैसे इच्छा शक्ति करामातों का नियम है।

यह इच्छा शक्ति कई प्रकार की है। १. आम, जिस तरह की कि जन साधारण की होती है। यह इच्छा शक्ति जिस मन की है वह बिखराव में बसता है, अर्थात मन को एकाग्रता का कोई स्वभाव नहीं, सोच, विचार, मनोराज्य (ख्याली राज्य), मन के बहाव, संकल्प विकल्प, तरह तरह के ख्याल इस मन को आते रहते हैं, इनका बेरोक आते रहना मन के बिखराव की अवस्था कही जाती है। २. एक मन ऐसे हैं जो एकाग्र हैं, जो अपने आप में जुड़ते हैं–जुड़ें चाहे किसी उपाय से, परन्तु जुड़ते हैं। ये लोग अपने ख्याल को रोकते हैं, मन जब ख्यालों में बहे तो रोकते हैं, सोचो तृष्णाओं के संकल्पों में दौड़े तो रोक रोक कर अंदर रखते हैं, यह सारा यत्न मन को एकाग्रता में ले जाता है। जो मन एकाग्र होते हैं, उनकी इच्छा शक्ति बलवान हो जाती है। ठीक जिस तरह बलवान शरीर की सारी चेष्टा ज़ोरदार होती है और कमज़ोर तथा आम शरीरों पर भारी और हावी होती है, जिस तरह (एकाग्र) बलवान मन की 'इच्छा शक्ति' और मनों पर , जीवधारियों पर, आम कुदरत पर भारी होती है, आम इच्छा शक्तियाँ उस पर भारी नहीं पड़तीं। ३. तीसरे वे मन हैं जो आम मनों से निर्बल हैं, इनमें बिखराव अधिक होता है, इनके मन अपने वहम (भ्रम) के अधीन चलते हैं, ये जो कुछ चाहेंगे तो थोड़े से दवाब के साथ हवा झूलने से बदल जायेंगे। जानबूझकर किसी भलाई के लिए नहीं, परन्तु स्वाभाविक इन मनों में कोई साहस नहीं, भय और चिन्ता इन मनों पर बहुत प्रभाव रखते हैं। जैसे बीमार शरीर बीमारी से उठे निर्बल होते हैं तथा थके टूटे कमज़ोर हुए, दुखी हारे शरीर उनींदे और थकान से

मारे अपनी शारीरिक चेष्टा में निर्बल होते हैं, इस तरह भय, चिंता और भ्रम के शिकार होने वाले मन निर्बल हो जाते हैं, उनकी इच्छा शक्ति निर्बल होती है। डल्ले! मैं मुश्किल बातें तो नहीं कर रहा?

डल्ला–नहीं जी, ये तो साफ समझ आती हैं, सीधी हैं, परन्तु हैं पते की जो अंदर घर करती हैं (अर्थात् चित्त में जगह बनाती हैं)।

अजमेर सिंह–निर्बल और आम ताकत के शरीर वाले लोग पहलवानों को देख-देखकर हक्के बक्के रह जाते हैं। राठों और महाबली अजेय शूरवीरों के संग्रामों के कारनामे सुन, देखकर अंगुलियाँ कुतरने लग पड़ते हैं। उनके लिए पहलवान और अजेय वीर करामातें कर रहे हैं। इसी तरह बलवान इच्छा शक्ति वालों के, अर्थात एकाग्र मनों के कारनामे देख देखकर महाबली, जिनको सतगुरू ने 'जोध महां बल सूरा' लिखा है उनके अत्यधिक शांत हुए (स्थिर हुए) मनों से उपजी इच्छा शक्ति के करिश्मे देख देखकर साधारण मन हैरान होते हैं। समझ नहीं सकते और कहते हैं करामात। फिर ख्याल करते हैं कि करामात किसी असंभव का संभव होना है। असंभव कुछ नहीं, जितना कोई कर सकता है उससे अधिक करना उसको मुश्किल है और उससे और आगे का कुछ होता देखना उसके लिए असंभव प्रतीत होता है। उस मुश्किल बात को भी अगर कोई कर ले तो उसको कमाल या प्रवीणता कहते हैं और जिसको वे असंभव समझते थे जब कोई वह कर ले तो उसको 'करामात' या 'करामत' कहते हैं।

डल्ला–पर बताओ न जी! सतगुरू के तारे जी! वे कैसे एकाग्र हो जाते हैं? कैसे बलवान होते हैं?

अजमेर सिंह–भई ये दो प्रकार हैं, एक जन्म से, दूसरे साधन से। जन्म से ऐसे लोग बलवान मन वाले होते हैं कि हैरान कर देते हैं, परन्तु ये लोग बहुत दुर्लभ हैं, कभी-कभी होते हैं। जो लोग चोटी के बलवान मनवाले हैं वे महापुरुष कहलाते हैं, जो जन्म से ऐसे हैं उनके कर्त्तव्य समझ में नहीं पड़ते। मेरा ईमान यह है कि वे ईश्वर के भेजे आते हैं और उनका मन ईश्वर के साथ लगा रहता है। जिस तरह तार के एक छोर को तुनक दो तो ध्वनि उपजती है, परन्तु वह तुनकने की ध्वनि तार के छोर तक उस साज़ में सारे जाती है सुर हुई तरबों* (तारों में) में। उसी तरह जो साईं की ओर से आता है, उसका मन ईश्वरीय इच्छा शक्ति की ध्वनि का अंतिम छोर होता है अर्थात जो ईश्वर की इच्छा शक्ति है, चेष्टा या हरकत तो वह करती है, परन्तु उसकी झनकार इनके मन पर बजती है। इनका मन फिर ईश्वरीय बल के करिश्मे बताता है। ईश्वर की इच्छा शक्ति को सतगुरू ने 'रज़ा' कहा है, रज़ा का बल इनके मन को बल देता है।

डल्ला–ये गुरू जी किस तरह हुए।

अजमेर सिंह–ईश्वरीय इच्छा वाले भी (बल और ज्ञान की निर्मलता के कारण) कई दर्जों के हैं। ये महाराज चोटी के निर्मल ज्ञानी और महाबली वीर हैं, जिनकी इच्छा शक्ति साईं की रज़ा के साथ सुर हो गई है। डल्ले! कभी कोई सितार, मद्धम, देखी है?

---

* सितार आदि वाद्ययन्त्रों के वे तार, जो बजाने वाले तारों के नीचे होते हैं और अपने अपने सुर को सहायता देते हैं।

डल्ला–जी हाँ।

अजमेर सिंह–देखी तो सबने है, कभी ध्यान लगाकर देखी है?

डल्ला–हाँ, एक दिन मिरासी* ने मुझे दिखाया था तमाशा। उसने बड़ी तार पर, जिस पर मापने की अँगुली रखता है और मिजराब वाली अँगुली के साथ तुनकाता है, उसके ऊपर अँगुली रखकर तुनका दिया था तो मैंने क्या देखा कि उसकी अंगुल एक पीतल की तार जैसी पर थी, जिसको वह सुन्दरी कहता था, इसी तरह की २१ या २२ सारी सितार पर थोड़े थोड़े अन्तर पर थीं और मुझे कहने लगा, इस ठिकाने का नाम 'सा' है और फिर जो नीचे छोटी तारे हैं, मुझे कहने लगा इनका नाम 'तरबें' है। आप तरबों की ओर देखो, जब मैंने ग़ौर दिया ध्यान के साथ, तब मैंने क्या देखा कि ऊपर मिरासी तुनक तो रहा है बाज़ की सुर+ को और नीचे एक तरब थर-थर काँपती है। मैंने कहा, ओ मिरासी! यह क्या जादू किया है? तुनका कहीं मार रहा है, कम्पन कहीं छेड़ रहा है? तो मिरासी बोला, यह मेरी हाथ की चालाकी नहीं, ईश्वरीय नियम है कि ध्वनि जब किसी आश्रय से निकले तो उसी ठिकाने उसी जैसे खींचे हुए ठिकाने के साथ सुर हुए स्थान थर-थर करते और बल पड़ते हैं, यह कुदरत का नियम है। फिर मैंने कहा, यह जो तू तरबों की खूँटियों के कान मरोड़ता है, किस लिए? कहने लगा, इसीलिए कि मैं तरबों को बाज़ की सुरों के साथ सुर करता हूँ, सुर करने का अर्थ है दो तारों को एक ही आवाज़ निकालने के ठिकाने की खिंचाई जितना खींच देना। जब दोनों को अलग-अलग तुनका दो, तब जो ध्वनि निकलेगी वह एक ही होगी, तब हम कहते हैं दोनों तारें 'एक सुर' हैं और जब वह एकसुरता होगी तब हम एक को तुनका देंगे तब दूसरी आप ही वही आवाज़ देगी, यहाँ तक कि आँखों से देखो तो काँपती थर्र-थर्र करती दिखाई देगी।

अजमेर सिंह–साईं जीवी बस! अब समझ जायेगा, ईश्वर को समझ ले कि उसकी मर्जी जिसको 'रज़ा' कहते हैं, एक बाज़ की तार है। माप अर्थात ज्ञान और खींच, या यों कहो कि बल और तुनका अर्थात हुक्म उसी में प्रयुक्त होते हैं और इधर कोई मन है मनुष्य का जो तू समझ ले कि तरब है। अब जो यह तरब 'रज़ा' के साथ सुर हो गई है तो बोलेगी बाज़, परन्तु साथ बोल पड़ेगी ये तरब। रज़ा चाहेगी कि यह कुछ हो, तब ईश्वरीय सुर के साथ सुर हुए मन की इच्छा शक्ति को होगा ज्ञान कि यह कुछ होना है और वह इच्छा करेगा कि हो यह कुछ और वह कुछ होगा जो ईश्वरीय रज़ा में था, हम समझेंगे कि इसने किया है और असल में है यह कि उसका मन सुर है कादिर (अनन्त) के मन के साथ, जो जो कादिर की रज़ा चाहती है वही कुछ उसकी मर्जी उसकी इच्छा शक्ति करती है। हम कहते हैं कि इसकी करामात है, इसकी सिद्धि है, इसकी प्रतिष्ठा है, इसका पर्चा है, परन्तु वह है तार की ध्वनि, जिसकी आंश दी है सुर हुई तरब ने। परन्तु मैंने यह बात पवित्र मन वालों की की है, ईश्वर की आराधना वालों की। वीराराधन वालों की बात और तरह की होती है।

* एक मुसलमान जाति, जो अपने यजमानों की वंशावली पढ़ती है।

+ बजाने वाले साजों की अंतिम तार को बाज की सुर कहते हैं।

डल्ला–परन्तु सुन्दर जी अगर कभी तरब बोल पड़े तो क्या उसकी एकसुरता बाज़ की तार पर वैसा ही चाहे बारीक असर नहीं करती और वह वही सुर नहीं बोलती?

अजमेर सिंह–ज़रूर करती है, जब ईश्वर के साथ जुड़े दिल, एक स्वर हुए मन कभी किसी अत्यधिक मेहर आदि के घर में कुछ चाहते हैं तब साईं मेहर (कृपा) के साथ पहुँच जाता है। यथा:–

ठाकुर महि दासु दास महि सोइ॥ (धना॰ म॰ १)
प्रभ ते जनु जानीजै जन ते सुआमी॥ (स्री रा॰ रवि॰)

डल्ले! साफ है कि और आसान करके कहूँ?

डल्ला–साफ है जी, ठंड पड़ गयी है, समझ आ गई है, परन्तु साथ ही तृष्णा हो आई है कि मैं कीट कैसे ऐसा होऊँ?

अजमेर सिंह–डर नहीं।

'सुणि गला आकास की कीटा आई रीस॥'

होता ही होता है।

इसके दो ही रास्ते हैं–

१. 'नानक नदरी पाईअै कूड़ी कूड़ै ठीस।'

जिस तरह गुरू गोबिन्द सिंह जी हैं इन्होंने नज़र से प्राप्त की है। वे साईं के साथ जन्म से पहले ही एकसुर हैं, जैसे गुरू जी ने आप बताया है–

'चुभी रही स्रुत प्रभु चरनन महिं॥'

यह नहीं पता उन पर मेहर क्यों है? और मेहर (कृपा) का कारण मिले ही किस तरह? बस है जानना कि वे मेहर पात्र हैं, इसलिए पंचम गुरू जी ने गुरू नानक देव और उनके कायापलटे सतगुरुओं के लिए ये वाक्य कहे हैं–

जनम मरन दुहहू महि नाही जन पर उपकारी आए।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥

डल्ला–और भी किसी ने प्राप्त की है इस तरह?

अजमेर सिंह–बहुतों ने प्राप्त की, परन्तु दर्जे दर्जे अनुसार। पूर्णतौर पर प्राप्त की है, इन दस सतगुरुओं ने, इन दस में और अन्य में अंतर कम है पाने में, अन्तर तो है पूर्णता में।

डल्ला–तो एक तो हुई जन्म से प्राप्त, जिसके हम ज्ञाता नहीं और दूसरी?

२. अजमेर सिंह–दूसरी मेहनत से, सेवा से, कष्ट से।

डल्ला–कैसे?

अजमेर सिंह–

इक दू जीभो लख होहि लख होवहि लख वीस॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीअै होए इकीस॥

ये प्रतिष्ठा की सीढ़ियाँ है, इनके द्वारा 'एक ईश' ईश्वर के साथ, कुदरत के क़ादिर के साथ जिसका नाम ईश्वर है, एक सुर हुआ जाता है। वह तरीका है इस एक जीभ को लाख जीभ करना और फिर साईं का नाम सिमरन करना और फिर एक चक्कर में लाख चक्कर देना।

डल्ला–मैं अभी नहीं समझा।

अजमेर सिंह–परमेश्वर का नाम जपना, नाम जपने के वही अर्थ हैं जो मिरासी ने तुझे तरब दिखाकर कहा था। ध्यान कर, लगा ध्यान, जमा ध्यान, फिर तू देखेगा कि तरब आंश देती है? नाम जपते ध्यान जमता है कादर पर, जमता जमता ध्यान प्यार में जाता है। प्यार द्वारा मन सुर हो जाता है क़ादिर के साथ, मन सुर हुआ बोलता है–आंश देता है, ईश्वरीय सुरों की।

डल्ला–और आपने कहा था इरादे रोको?

अजमेर सिंह–जब हम वाहिगुरू के गुणों का, उसके प्यार का, उसके अंग संग होने का ध्यान बार-बार करेंगे तो और इरादे अपने आप रुकते जायेंगे।

डल्ला–ठीक।

अजमेर सिंह–इस विषय पर आप रोज़ सतगुरू जी के महावाक्य सुनते हो, मैं क्या क्या कहूँ? ध्यान देकर सुना करो तो सफल हो जाओगे।

डल्ला–यह जो लोग तालियाँ बजाते और आँखें बंद कर बैठते हैं, मैं समझता था ये ध्यानी हैं।

अजमेर सिंह–सारे यत्न कर रहे हैं ध्यान के, क्योंकि ध्यान के जपने से ही मन की एकाग्रता है, एकाग्र मन जिस पक्ष की इच्छा करेगा वह पक्ष अकसर सिद्ध हो जायेगा। इसी को सिद्धि, इसी को करामात भी कहते हैं। हमारा मन जो साधारण मन है, कुदरती तौर पर इतना बल रखता है कि आँखें खोल ले और बंद कर ले, परन्तु इससे अधिक कुदरत पर हावी होने के लिए एकाग्रता के किसी अभ्यास की ज़रूरत है। जितना जितना कोई मन को एकाग्र कर लेगा, उतना वह बलवान होगा। योगी लोग कल्याण के लिए ही सही, परन्तु सिद्धियों की खातिर कई साधन करते हैं।

डल्ला–मुझे एक बात समझाओ। आप कहोगे जंगल का रहने वाला इतना सत्संग करके और आकाश तक ख्याल की उड़ान लेकर फिर नीचे शंका की उजाड़ में आ पड़ा है, पर एक ही बार में पार कर दो शंका से। मैंने अपने सतगुरू का हाल तो समझा कि वे जन्म मरण रहितं हैं, किसी पूर्ण पद पर हैं और परोपकार के लिए आये हैं, अर्थात हमें जीव दान देने और ईश्वर के साथ मिला देने के लिए। मिला देना है एक सुर कर देना, ईश्वरीय आंश के उस दायरे में ला देना कि जिस में रज़ा के तुनके हमें ही कुछ झनझनाहट दें। जीवदान भी मैंने समझा है कि सतगुरू के आने से पहले मैं मुर्दा था, अब मेरे अंदर जान का कम्पन है, मैं महसूस करता हूँ कि जान का कम्पन है। करामात जिस पर मैं हैरान था, मैंने समझी है। ये असंभव संभव नहीं होते। निर्बल और साधारण इच्छा शक्तियाँ अपने से बलवान और महाबली इच्छा शक्तियों के कर्त्तव्य और करिश्मे देखकर उसको मुश्किल

और असंभव कहती हैं, असल में वही नियम काम करता है कि मन हावी है ऊपर कुदरत के। अब एक धुँधलका सा निकाल दो कि एक शरीर के बीच बसते मन ने उस शरीर के तो दरवाजे खोल बंद कर लिए, उसको दौड़ा भगा, लिटा, सुला, बिठा लिया, परन्तु अपने शरीर से बाहर के शरीरों या मनों पर किस प्रकार प्रभाव डाल देता है। मैं यह शंका नहीं करूँगा कि प्रभाव नहीं डालता, न, मैं तो यह पूछता हूँ कि किस प्रकार प्रभाव डालता है?

अजमेर सिंह–वर्णन हो तो चुका है, परन्तु और खोलता हूँ। जब गाड़ी हाँकनी हो अथवा कोई बोझ की गठरी कहीं पहुँचानी हो तब 'हाँकने' और 'उठाने' वाला शरीर साथ जाता है, यह है ना शरीर की ताकत का नियम, परन्तु आपने देखा होगा कि जब हाथ ने धकेल दी गेंद, तब शरीर बैठा रहा अपने ठिकाने पर गेंद पहुँच गई दूर ठिकाने, शरीर गेंद के साथ नहीं गया। इस प्रकार यह भी आपने देखा कि इसी 'शारीरिक ताकत' का है यह भी नियम। गलती न लगे। गेंद को इतनी दूर पहुँचाना है, गेंद को ज़रूर पहुँचाना है, गेंद को हाथ से उठाकर नहीं पहुँचाना है, बैठे बिठाये पहुँचाना है, यह तो हैं मन के काम और इच्छा शक्ति के कर्त्तव्य, परन्तु जो धकेला है वह हाथ ने और जो ताकत दी है इच्छा शक्ति के अधीन वह हाथ ने। यह साफ समझते हो न?

डल्ला–जी हाँ।

अजमेर सिंह–लो अब विचार करो कि 'शारीरिक ताकत' का एक नियम और सिद्ध हुआ कि खास परिस्थितियों में आप एक ठिकाने बैठकर एक वस्तु को दूर पहुँचा सकती है। जब गेंद हाथ से निकल चुकी है, शरीर की ताकत जो इसको मिल चुकी है, आगे काम कर रही है। इसी तरह 'इच्छा शक्ति' में एक नियम है कि जिस शरीर में बैठी है उस पर हावी है और उसको संभालती घुमाती है, परन्तु दूसरी ताकत उसमें यह भी है कि शरीर से बाहर भी असर डाल दे।

डल्ला–साईं जीवी (जीने वाले) यही मुश्किल दूर करो न?

अजमेर सिंह–आपको याद है कि बातें करते आप बता आये थे कि आप एक दिन किसी को किसी नये ठिकाने, जिसका घोड़ा जानकार नहीं था, घोड़े पर चढ़कर मिलने गये थे। जिसको मिलना था उसके मिलने की लालसा में आप इतने लीन थे कि मोड़ पर जाकर घोड़े की लगाम मोड़ना भी भूल गये थे, परन्तु घोड़ा आप ही मुड़ गया था। इस प्रकार बात क्या थी? आपके मन की इच्छा शक्ति ने घोड़े के मन पर हावी होकर उसको मोड़ दिया। आपके हाथों ने लगाम नहीं मोड़ी, शारीरिक कर्त्तव्य नहीं हुआ, परन्तु घोड़ा मुड़ पड़ा। बताओ कौन कारण था जिसने घोड़े को मोड़ा? आपका मन आप ही घोड़े के मन को मोड़ रहा था, घोड़े ने आपके मन की शक्ति के आगे मुड़ना तय किया।

डल्ला (साँस लेकर)–ठीक है।

अजमेर सिंह–कभी ऐसा हुआ है कि आप परदेस गये हो, फिर घर लौटे हो, घर संदेश नहीं भेजा कि मैं आ रहा हूँ, जब घर आये हो सारी स्त्रियाँ, पुत्र, नौकर सोये पड़े हैं, परन्तु छोटी बहू खिड़की में बैठी रास्ता देख रही है। दीपक खिड़की के बाहर के जाले

में रास्ते पर प्रकाश डाल रहा है। आपके लिए प्रशाद, पानी, पलंग तैयार है। आपने पहुँचकर हैरान होकर पूछा है कि भाग्यवान! तुझे किस तरह पता था कि 'मैंने आज रात पहुँचना है? तो आगे से उत्तर मिला हो कि आज बार-बार मेरा दिल कहता था कि आप आओगे, मैं बहुत कहती थी कि भ्रम है, परन्तु दुष्ट मन बार-बार कहता था—नहीं, आ रहे हैं, देखो मन भाग्य मेरा सच्चा निकला।

डल्ला—इस तरह तो एक से अधिक बार हुआ है।

अजमेर सिंह—एक बात और ज़रूर हुई होगी। जैसे आपके अत्यधिक प्यार में बहू खिंची हुई थी, आप भी उस दिन घोड़े पर चढ़े घर वापिस आते उसी के प्यार में बहुत खिंचे हुए आ रहे थे। मन बार-बार उसी के प्यार प्रवाह में आ बहता था और तीव्रता होती थी कि उड़कर पहुँच जाऊँ। कई बार बहू की सूरत आँखों के आगे से निकलती होगी, कई बार प्यार से झनझनाहट (कंपन) छिड़ जाती होगी।

डल्ला—ठीक है।

अजमेर सिंह—इस प्रकार फिर समझ लीजिए कि आपके मन का भाव आपके शरीर से बाहर और दूर बैठी स्त्री के मन पर आपके पहुँचने का पता दे रहा था। आपकी इच्छा शक्ति आपके शरीर से बाहर काम कर रही थी, परन्तु प्रभाव किस समय डाल सकी, जिस समय कि आपका और आपकी स्त्री का मन 'एक सुर' में आये, अर्थात दोनों मन प्यार में बहुलता में एक कम्पन में आ गये। इसका कारण ख्याल करो हुआ क्या? दोनों के ध्यान ने परस्पर लगकर दोनों मनो में 'एक झनझनाहट' छेड़ दी, इस प्रकार प्रभाव पड़ गया आपकी इच्छा शक्ति का और अगम्य पढ़ लिया आपकी स्त्री ने। अब यह संभव था, परन्तु प्यार के साथ – हाँ ध्यान में – जुड़ गये मनों के लिए यह असंभव है, बिखरे और कभी न जुड़े मनों के लिए। जो मन परस्पर जुड़ते हैं चाहे कभी ओर कैसे जुड़ें वे एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं, जो मन कुदरत के महान और 'सांझे मन' (क़ादिर) के साथ जुड़ते हैं, वे जुड़े हैं सारे ब्रह्माण्ड के मनों के साथ और (जुड़ने की शक्ति अनुसार) प्रभाव डालते हैं सारे मनों पर, सारी कुदरत पर। अगर आप चाहो कि हावी हो जाओ इस शक्ति में तो साधन करो एकाग्रता के। जिस तरह साधने पर शरीर की ताकत हावी हो जाती है साधारण शरीरों पर, इसी तरह साधी हुई मन की शक्ति हावी हो जाती है दूसरे मनों पर, कुदरत पर। परख करनी है तो एक चली जाती चींटी की ओर ध्यान से देखो और ख्याल को रोक कर अंतर से चाहो कि चींटी किसी एक ओर (अमुक) चले। आप क्या देखोगे कि जिस चींटी को आपके शरीर की एक अँगुल मसल सकती है, वह अपने रास्ते चलती है और आपके मन की शक्ति के आगे नहीं झुकती, परन्तु अगर आप हर रोज़ यही अभ्यास करो तो कुछ दिन बाद चींटी आपकी मन की हरकत के पीछे चलेगी। आप दो जौं अलग-अलग ठीकरों (मिट्टी के टूटे हुए बर्तन) में बीजो, उग पड़ने पर एक की ओर देखो ही न, दूसरे को एक घड़ी रोज़ बैठकर ऊँची ऊँची आवाज़ में कहो जल्दी बढ़। आप दस बीस दिन बाद क्या देखोगे कि दूसरा अर्थात आपका ध्यान लेने वाला जौं पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है।

घास के तिनके और चींटी क्या मैंने हाथियों को मनुष्य की मर्जी के पीछे चलते देखा है। अभ्यास वाले पुरुषों की इच्छा शक्ति के आगे शेरों के मन झुके हैं, रोगी ठीक हुए हैं और विपदाएँ दूर हुई हैं।

डल्ला–अब मेरी तसल्ली हो गई है। एक शंका का बालू कण चुभता है, वह निकाल दो, देर आपको बहुत लग चुकी है। इसलिए मैं थोड़े में कहता हूँ। लिखा है:-

'धिगु सिधी धिगु करमाति॥'

गुरू नानक देव जी ने सिद्धों को कहा था:-

'बाझहु सच्चे नाम दे होर करामात असाथेनाही'

यह क्या बात है? अगर वस्तु धिक है वह गुरू साहिब आप क्यों रखते हैं? जो वस्तु गुरू जी कहते हैं हमारे पास नहीं, वह फिर उनके पास है, क्यों?

अजमेर सिंह (हँसकर)–डल्ले! अभी तो समय साधारण है, तब इतनी शंकाएँ हैं। गुरू जी कहते हैं समय तर्क विवेक का इतना आयेगा कि शंका राज्य करेगा। तब जीवित मनों का काल पड़ जाने का डर है। खैर! उत्तर सुनो–यह सिद्ध हो गया कि करामात है, यह मन की 'इच्छा शक्ति' (मानसिक सत्यता) के कर्त्तव्य हैं जो कुदरती हैं और बढ़ी हुई ताकत के करिश्मे हैं, असंभव नहीं, मूर्खों के ख्याल नहीं।

अब पीछे मुड़ोगे तो पता लगेगा कि यह धिक क्यों है।

जब अभ्यास करके मन एकाग्र किया, मन बलवान हो गया। बलवान मन शुभ काम करता शोभित होता है, खेल करता नहीं शोभित होता, क्योंकि अधिक बलवान होकर मन शुभ काम करे तो योग्य है, तमाशे करे तो अशोभनीय है। फिर मन में ताकत है, जिसके द्वारा वह काम करता है परन्तु मन में रुचि है भोग की जिस तरह पशुओं में रुचि है भोग की, परन्तु समझ नहीं है कि अच्छा बुरा क्या है और रुकावट नहीं कि बुरे से कैसे रोकना है? इस तरह इंसान के मन में तीन वस्तुएँ हैं।

१. रुचि, यह जानवरों के साथ सांझी (हिस्सेदार) है। जानवर और इंसान दोनों में रुचि है एक जैसी।

२. समय (ज्ञान), कि यह रुचि अच्छी है कि बुरी। यह समझ इंसान के मन में ही है।

३. काबू, अर्थात वशीकरण है उस रुचि को जो बुरी है रोक लेने का और भोग तक पहुँचने से बचा लेने का। यह वस्तु भी इंसान में ही है।

इस प्रकार आदमी के पास रुचि है, पर रुचि की परख वाली समझ है और परख में 'बुरी' आई की ओर से रुकने का काबू है। ये तीनों का संगम क्यों है? इसलिए कि इंसान ने तरक्की करनी है और की भी है। मन की मंजिल जहाँ पहुँचना है, बहुत ऊँची है और वह सारी कुदरत पर हावी हो जाना और सारे प्रभावों को कबूल (स्वीकार) करने वाली अवस्था से ऊँचा उठना है। उठकर किसी अत्यधिक ऊँचे, पर रसपूर्ण ठिकाने पर टिकना है, जिसको अभय पद कहते हैं अर्थात सभी प्रकार के भय, सारे प्रभाव से

निकलकर प्रभाव न स्वीकारने वाले बन जाना है। किसी के हावीपन और दवाब के आगे न दबकर स्वतंत्र हो जाना है। यह है चोटी जहाँ पहुँचना है हमने। उसका रास्ता है—एकाग्रता, ठहराव (शांति)। यह एकाग्रता और ठहराव मन की रुचि के कारण दो शक्लें अपना सकता है, अर्थात मन की रुचि की दो दशाएँ हैं—

१. तृष्णा।

२. लिव*।

'तृष्णा' है, जो अच्छा लगे, जिसकी ओर रुचि जाये उसको लेने की इच्छा।

'लिव' है, जो अच्छा लगे पहले उसको ज्ञान (सुबुद्धि) द्वारा पहचानना और वशीकरण अथवा काबू द्वारा अगर बुरा है तो रोकना। और अंत में सभी इच्छाओं से निर इच्छा होकर 'अपने आप' में स्थिर होना और 'अनंत' में डुबकी लगानी।

अब सबसे अच्छा है मेरे ऊपर कहे 'पद' में पहुँचना। यह पद अंत है, फल है, परिणाम है 'लिव' वाले मन की रुचि का। यह तृष्णा वाले मन की रुचि का परिणाम नहीं है। तृष्णा मन को लम्पट करती है भोग के साथ, लिव भोग से स्वत: वैराग्य करवाती है और उनसे ऊँचे ले जाती है, अपने आप को अपने आप में जोड़कर ऊँचा। इस प्रकार आपने समझ लिया होगा कि एकाग्रता के साधन सभी तृष्णा से ऊँचे होकर परमपद पर पहुँचने के लिए करने हैं।

परन्तु सोचो, जब मन साधन करके जोड़ा अर्थात एकाग्र किया और उसी बढ़ गयी ताकत को मन की 'रुचि' के पीछे लगाकर प्रयुक्त किया तृष्णा में, तो क्या किया? पशु वृत्ति को रुचि और बल अधिक दे दिया। 'रुचि' को तो ज्ञान से तौलना और 'वशीकरण' द्वारा काबू करना था और मन को लिव—अपने आप में और ईश्वर में जुड़ने—की दिशा देनी थी। हमने मन को जोड़कर प्रयुक्त किया रुचि के अधिक कामयाब होने की ओर, फल क्या होगा कि तृष्णा बढ़ेगी। यह हम सिद्ध कर आये हैं कि तृष्णा बिखरने वाली है, मैल है, और नीचे ले जाने वाली है। इसलिए मन एकाग्र करके तृष्णा के काम में लगाना, किये को अनकिया करना है। मेहनत द्वारा पत्थर को पहाड़ पर पहुँचाकर फिर से नीचे गिरा देने की करनी है, इसलिए सतगुरू कहते हैं:-

'धिगु सिधी धिगु करमाति॥'

फिर सतगुरू से यह होता क्यों है? इसलिए कि उनका मन एकाग्र है, बलवान है। यह मन का बल ही करामात की शक्ति है। उनका मन वाहिगुरू के साथ एक सुर है, वाहिगुरू का बल उनमें अपनी गति भेजता है। यह उनमें करामात का स्वत: निवास है। जब ईश्वर की इच्छा कुछ होती है, भाव यह कि कुदरत के सांझे, बड़े, एक 'महान मन' (= कुदरत के क़ादिर के मन) में से कोई शक्ति प्रकाश पाना चाहती है, तो सतगुरू का उसके साथ एक स्वर हुआ मन उसकी झनझनाहट में आता है, और जो करिश्मा उससे पैदा होता है, वह ईश्वर के हुक्म का प्रकाश होता है जिसके वे रहबर हैं। उनके मन की 'रुचि' उस

* इसका मूल संस्कृत शब्द लिप्सा है।

करिश्मे के होने की जिम्मेदार नहीं। अगर ऐसे नहीं समझे तो ऐसे समझ लो कि उनका मन लिव में बसता है। वे अपनी साधारण ताकत को, अथवा बढ़ी हुई ताकत को तृष्णा के काम में नहीं प्रयुक्त करते हैं। परन्तु लिव धारी होने के कारण ताकत उनमें अधिक होती है और किसी ऊँची ताकत के अधीन उससे आये बल से वे हिलते भी हैं और इस हिलने को वे परोपकार के कामों में प्रयुक्त करते हैं। सबसे ऊँचा परोपकार 'जीवनदान' है, इसलिए वे ताकत सब से अधिक जीवदान देने पर प्रयुक्त करते हैं। तब कहते हैं कि:-

बाझहुं सच्चे नाम दे होर करामात असाथे नाही।

क्योंकि वे लिव वाले हैं, उनकी दृष्टि यह है कि:-

'सतिनाम बिन बादर छायी।'

जिनकी यह अवस्था है, वे सर्व तृष्णा के तिरस्कार में बसते हैं। वे सिद्धि और करामात को तृष्णा के ही मण्डल का काम समझने के कारण धिक कहते हैं। परन्तु परोपकारी होने के कारण और वाहिगुरू जी के मिलाप करवाने को सबसे ऊँचा परोपकार समझने के कारण 'नामदान' को सबसे बड़ी करामात जानते हैं और अपनी बढ़ी हुई ताकत को 'लोगों की अपने जैसी लिव लगा देने के' काम पर खर्च करते हैं अर्थात आप लिवधारी हैं और लोगों की लिव साईं में लगाते हैं यह है स्वत: और सहज रंग में बस रही करामात का बर्ताव, जो करना वे असल में पवित्र करामात समझते हैं और कहते हैं:-

सा सिधि सा करमाति है अचिंतु करे जिसुदाति॥

यह अचिंत्य मन–यह अंतर की अवस्था कि जहाँ जाकर अनेक चिंतन ख़त्म हैं–अनन्त में प्रवेश रखता है। अनेक चिन्तन देशकाल में है। 'कुदरति सरब वीचारु' = विचार मात्र सारा अन्तर का इरादा कुदरत का हिस्सा है और कुदरत अंत में है। यहाँ से उठकर अचिंत्य पद में पहुँचा मानों अनन्त में प्रवेश है, अनन्त में 'देशकाल' नहीं। हमारा सारा चिन्तन देशकाल अतिरिक्त हो ही नहीं सकता, इसलिए जहाँ अनेक चिन्तन लाँघकर अचिंत्य पद की 'मेहर' (कृपा) हो गयी है, वहाँ अनन्त में प्रवेश है। यही है लिव का परमपद। इसपर ख़र्च करते हैं बल सतगुरू। इसमें लोगों को पहुँचाना यह है प्रयोजन इनका। और यह वास्तविक करामात है, करामातों सिर करामात है। सतगुरू इसको कहते हैं करामात है। इसका यह अर्थ नहीं कि और करामात है ही नहीं। न, यह तो है वृहद करामात, यह है सबसे बड़ी करामात, यह है करामात जो हरिजनों को शोभा देती है। इस बात के लक्ष्य तक पहुँचने में कि तृष्णा में डूबे लोग लिव में आयें 'नानक गुरमुखि हरिनामु मनि वसै ऐहा सिधि ऐहा करमाति' कहा है। वाहिगुरू जो करिश्मे अपनी मर्जी के सतगुरू रूपी तरब में से प्रकाशित करे वे रज़ा (इच्छा) के करिश्मे हैं, यह वह करामात नहीं जिसको वे धिक कहते हैं। हाँ, जो मन की एकाग्रता के अभ्यास कारण उसको अपनी तृष्णा के पालने के लिए करामात प्रयुक्त करते हैं वे ठीक नहीं है, क्योंकि वे उस बल को, जिसने तृष्णा के बंधन काटने हैं, उन बंधनों को और पक्के करने के लिए प्रयुक्त करते हैं। छैनी और हथौड़ी हथकड़ी काटने के लिए मेहनत करके प्राप्त की और फिर उनकी ही श्रृंखला बनाकर और हाथों में डाल ली, यह मनोरथ की सिद्धि नहीं, मनोरथ की बरबादी

और उलट प्राप्ति है, इसको सतगुरू जी तो बहुत ऊँचे हुए, आप क्या और मैं क्या सारे बुरा ही कहेंगे?

और बताओ मित्र जी! करामात की कोई बात करनी है, कि सतगुरू की मेहर से ज्ञान ने आकर दिल को शंका से पार किया है?

डल्ला (चरण पकड़कर, अजमेर सिंह जी दूर होकर बचने के यत्न में होकर)–मित्र! बलिहार जाऊँ तुम पर, शंका नहीं काटी, अतरनी नदी (जिसे तैरा न जा सके) से पार किया है और स़िक्खी सिदक (विश्वास) के किनारे लगाया है। मुझे अब समझ हो आई है कि मन बहुत बलवान है, मन एकाग्र होकर बल में बसता है, बली होने के लिए ध्यान क़ा जुड़ना और इरादे का वश में होना आवश्यक है। तृष्णा बिखराव वाली है, बिखरना अंदर से निर्बल होना है, मन की ताकत को अभ्यास द्वारा बढ़ाकर फिर तृष्णा पर लगाना, फिर मैले होना, निर्बल होना और तृष्णा में बँधना है, इसलिए मन को एकाग्र करना और तृष्णा वाली 'रुचि' को तोड़कर मन को 'लिव' में लगाना और लिव लग जाये तो लिव लगाने के काम कर लेने और अपने आप से न टूटना यह करामात वास्तविक करामात है, परन्तु साथ ही मुझे यह समझ भी आई है कि मन शरीर की तरह एक ताकत है, मन बलवान होकर अपने ख्याल के साथ अपना और दूसरे का भला कर सकता है, परन्तु अगर करे तो रज़ा में और सामर्थ्य विचार कर करे।

अजमेर सिंह–हाँ ठीक है, देखो हुक्म है:

"जे कोऊ अपुनी ओट समारै॥
जैसा बितु तैसा होइ वरतै अपुना बल नहीं हारै॥"

अर्थात–जो मन की शक्ति को सामर्थ्य से बढ़कर इस्तेमाल करेगा, उसका मानसिक बल टूटेगा, जैसे सामर्थ्य से बढ़कर शारीरिक ज़ोर लगाने पर शरीर थकता और कमज़ोर होता है, वैसे ही मानसिक बल सामर्थ्य से बढ़कर लगाने पर मन का बल हारता है।

एक और बात याद रखना। वाहिगुरू के दर (दरवाजे) दर्शन के प्रेमी मन को केवल एकाग्र नहीं करते, पर निर्मल भी करते हैं, निर्मल और एकाग्र मन फिर आत्मरस या आत्म आनन्द में खिलते हैं, वे-वाह वाह-के भाव में सदा आनन्द, आनन्द रस स्वाद में बसते हैं, वे बँधे मन अथवा भारी मन नहीं रहते।

डल्ला–ठीक है। श्री जी। मुझे तो अब लगता है कि सारी ओर करामात ही हो रही है। हकीम की दवा वह असर नहीं करती जितनी कि उसके आने और धैर्य देने से अपने ताकत पकड़ गये मन की ताकत करती है। सारे सेवक रोगी के पास होते हैं, हकीम आते ही पुड़िया नहीं डाल देते, परन्तु उसका दर्शन रोगी को धैर्य देता है और चेहरे को तगड़ा करता है। उसके दर्शन से हमारे ख्याल में बल भरता है, उसका मन अरोग्यता दान का अभ्यासी होने के कारण इस विषय में साधारण मन वालों से कुछ अधिक बल रखता है। उसकी इच्छा शक्ति बीमार के मन पर अरोग्यता दान करती है, अर्थात दवा से हकीम की इच्छा शक्ति अधिक असर करती है। जो हकीम अपनी इच्छा शक्ति से बीमार के मन पर

असर नहीं डाल सकता (जिस असर का सबूत बीमार का भरोसा बँध जाना है) उसकी दवा कई बार नाकामयाब रहती है।

माँ लोरी देती है, उसके मन की मुराद बच्चे के मन को नींद की ओर ले जाती है। माँ के प्यार से पकाये भोजन में माँ की प्यार की इच्छा शक्ति कोई बेमालूम रस भर देती है। हमारे दाँये बाँये, आसपास इसके करिश्मे दिन रात हो रहे हैं, करामात ही करामात है, परन्तु हमारे नेत्र बंद हैं, ध्यान तृष्णा में बिखरकर परेशान हो रहा है।

अजमेर सिंह अब एक लाली से लाल हो गया। आँखें नशे में आ गयीं शरीर में एक लहर दिखाई दी, अंदर एक रस भर गया, बहुत मस्त परन्तु गंभीर आवाज़ हो गयी, लहराता लहराता थोड़ा सा उठा और बोला:-

सब करामात है, सूर्य का जल्वा (तेज) करामात है, चन्द्रमा का जमाल करामात है, बिजली का तेज करामात है, बादल की कड़क करामात है। छः सात इंच लम्बी और तीन चार इंच चौड़ी ऊँची इस खोपड़ी (सिर पर हाथ लगाकर) में सैंकड़ों गज लम्बी, ऊँची चौड़ी किताबों में लिखे भावों का समा जाना करामात है। लाखों आदमियों को मिलकर, लाखों के अलग-अलग अन्तर को बिना शर्त देख लेना और मिलने पर हर एक को पहचान जाना करामात है। इस खोपड़ी में पड़े दिमाग का कुदरत के नियमों और भेदों को जान लेना करामात है। इस मन का इस शरीर को रथ बनाकर चलाना करामात है, इस मन का इस रथ को रोक लेना, अटका लेना, मोड़ लेना, करामात है। क्या नहीं करना ठीक, क्या करना ठीक है यह याद आ जाना करामात है, उसे करने से रूक जाना करामात है। जल करामात है, थल करामात है, अम्बर में, दूरी में, धरती, सूर्य, चाँद नक्षत्रों का उड़ते जाना करामात है, देश (दूरी, आकाश) करामात है। इसमें बिना आश्रय बसना करामात है, इसका बिना स्तम्भों, बिना आश्रय सारे फैलना करामात है, तू करामात है, मैं करामात हूँ।

करामात आश्चर्य है, आश्चर्य अद्भुत है, अद्भुत विस्माद* है,

'माई री पेखि रही बिसमाद॥'

हाँ सबसे बड़ा विस्मय सतगुरू कलगियों वाला है। विस्मय है कि वह इंसान है, विस्मय है कि उसमें ईश्वरीय तेज है, विस्मय है कि वह भगवंत रूप है। विस्मय है कि विस्मय करता है और विस्मय में ले जाता है। पड़ो ओय डल्ले! उस विस्मय की शरण, तुझे ले जाये विस्मय में, तू चढ़ जाये आनन्द को। ओय हमसे क्या पूछता है? ओय पड़ो शरण और लो विस्मय की डुबकी। मरी अक्लें। अक्ल पैर हीन है, पंख हीन है, एक घोंसले से गिरा चिड़िया का बच्चा है, जो जीवित तो है और चीं चीं भी करता है, परन्तु विस्मय में नहीं उड़ता।

निकाल ओय इसको पंख, उड़ ओय। विस्मय में, ओय डल्ले! पड़ो शरण, पी अमृत और झूम और गा मेरे साथ, आ ओय गा, मिला सुर में सुर, देख ओय मेरी ओर, देख खोल मुँह, खोल गला, छेड़ सुर और मिला आसा की आंश, हाँ वही ...., सुर मिलाकर आ विस्मय के पालने चढ़, गा:-

---

* विस्मय।

विसमादु नाद विसमादु वेद॥ विसमादु जीअ विसमादु भेद॥
विसमादु रूप विसमादु रंग॥ विसमादु नागे फिरहि जंत॥
विसमादु पउणु विसमादु पाणी॥ विसमादु अगनी खेडहि विडाणी॥
विसमादु धरती विसमादु खाणी॥ विसमादु सादि लगहि पराणी॥
विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु॥ विसमादु भुख विसमादु भोगु॥
विसमादु सिफति विसमादु सालाह॥ विसमादु उझड़ विसमादु राह॥
विसमादु नेड़ै विसामदु दूरि॥ विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥

हाँ जी!

विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु॥
नानक बुझणु पूरे भागि॥ ....
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥ ....
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु॥ ....
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
हाजरा हजूरि
हाजरा हजूरि
हजूरि
हजूरि
हजूरि

२. डल्ले का अमृत*

आज डल्ला घर जाकर सो नहीं सका, पहले पहर ही शस्त्र लगाकर गुरू जी के पलंग के पहरे पर आ गया। जब सतगुरू ने आवाज़ दी, पहरे पर कौन? तब डल्ले ने कहा:-'दास डल्ला' ऐसे सारी रात डल्ला खड़ा रहा। जब सतगुरू की पुकार आये तो डल्ला ही आवाज़ दे। 'दास डल्ला खड़ा है।' सतगुरू ने एक दो बार कहा, 'डल्ले! जाओ आराम करो' परन्तु डल्ला किसी प्यार भरे रंग में सारी रात खड़ा रहा। सुबह सतगुरू ने उठकर कहा 'डल्ले! कुछ माँग?' डल्ले ने हाथ जोड़कर सिर निवा (झुका) दिया जब सतगुरू ने तीसरी बार यही वचन किया तो डल्ले ने विनती की:-

* इस प्रसंग का यह हिस्सा इस संचय के लिए वैसाख सं॰ ४५६ नानकशाही में लिखा गया था।

श्री प्रभु! जहां बास तुम ठाना।।
इक पीढ़ी कहु मुहि दिहु थाना।
अपन नजीक राखीअहि मोही।।
अवर न मो डर मैं इह होही।। (सूरज प्रताप)

सतगुरू ने वचन किया–फिर अमृत छको, डल्ला सिंह कहलवाओ और सिदक (विश्वास, सच्चाई) की कमायी करो।

डल्ला (हाथ जोड़कर)–पातशाह! मैंने तो बहुत अमृत छका (खाया) है।

सतगुरू–डल्ले। हमने तो तुझे छकते हुए न देखा न सुना है।

डल्ला–हे सतगुरू! आप के थाल में से आप का अमृत प्रशाद मैं लेकर रोज़ छकता रहा हूँ।

गुरू जी–डल्ले, अमृत पान कर जो शस्त्र से तैयार होता है।

डल्ला–पातशाह! आप जो कड़ाह प्रशाद* रोज़ छकते हो कृपाण भेंट होकर श्री जी के मुखारबिन्द को लगता है, इसलिए आपका बख्शा शस्त्र सजा अमृत जानकर दास छकता रहा है।

गुरू जी ये वाक्य सुनकर बहुत खुश होकर मुसकराये और वचन किया, डल्ले खंडे का अमृत पान कर।

जो अंम्रत खंडे को लैहै।
गुर के स जहाज़ चढ़ि जैहै।

डल्ले ने नेत्र भरकर सीस झुकाया और प्रफुल्लित होकर कहा, सत्य वचन पातशाह जी।

अगले दिन सौ अन्य सज्जनों सहित डल्ले ने अमृत पान किया और डल्ल सिंह बन गया। इस वार्त्ता से खालसा में अमृत के साथ 'खंडे का अमृत' जो पहले भी था अब विशेष प्रसिद्ध हो गया, और बोलचाल में आम हो गया। जब डल्ला अमृत छककर हुजूरी में हाज़िर हुआ तो सतगुरू ने सिरोपा बख्शा, जिसमें एक बड़ी खड़ग, एक ढाल और एक जोड़ी जड़ाऊ कड़ों (कंगन) की थी, तथा अपने वस्त्र+। (सूरज प्रताप अैन।)

३. रामां तिलोका और चमकौर@

एक दिन सच्चे पातशाह दमदमें में बैठे ज्योति प्रकाशित कर रहे थे कि रामा और तिलोका दोनों भाई रसद पानी की बैलगाड़ियाँ लदवाकर ले आये। चरणों पर माथा टेककर बैठ गये। सतगुरू जी ने बहुत प्यार के साथ बिठाया और आदर दिया। पास में से एक सिंह ने कहा, सच्चे पातशाह चमकौर के शहीदों का दाह संस्कार इन प्यारों ने किया सुना है, इनके मुँह से प्रसंग सुनना चाहिए।

---

* हलुवा (आटा, चीनी और घी से बना प्रशाद)।

+ वस्त्र ये थे–दो दस्तारें (पगड़ियाँ), दो चोगे, दो घुटन्ने (घुटनों को ढकने का वस्त्र, पायजामा)।

@ यह भी इस संचय के लिए वैसाख ४५६ ना० सा० को लिखा गया था।

रामा सिंह–सच्चे पातशाह! हम सरहिन्द टैक्स आदि भरने गए हुए थे कि वहाँ हमने चमकौर के साके की बात सुनी, और सेवा का समय तो निकल चुका था, आपके किसी दिशा में सही सलामत चले जाने की ख़बर कानों में पड़ती थी, परन्तु यह पता नहीं था कि किधर गये हैं। हमें उस समय अपने सतगुरू की करनी पर सेवा का चाव आया। इसलिए चमकौर की ओर कूच किया, रास्ते में कपड़े थोड़े फाड़ लिये, मिट्टी मल ली, सिर नंगा करके राख मली ओर बावलों का रूप बना लिया। इस तरह पागलों की तरह मिट्टी छानते पहुँच गये। तुर्क सेना कूच कर गयी और कर रही थी। थोड़ी सेना अभी थी, हमने जाकर अपने प्यारे सिंहों के छलनी शरीर, अंग कटे रक्त से धरती लाल हुई देखी, एक ओर कुछ लाशों के ढेर बुझाए गये ईंधन में इकट्ठे भी किये पड़े थे। एक माई का आग से अधजला शरीर भी पड़ा था, मानों इस माई ने दाह संस्कार का यत्न किया है, परन्तु पूरी तरह कर नहीं पाई और आप भी शहीद हुई है। हमने पागलों की तरह घूमते, लकड़ियों के टुकड़े भी इकट्ठे किये, परन्तु बिखरे फेंके और लाशों की खोज पहचान भी की। तुर्कों में भी हम माँगते, बावलापन दिखाते घूमे तो हमें पता लगा कि साके वाले दिन की रात को ही एक माई ने सिंहों के संस्कार का यत्न किया था, परन्तु तुर्क सेना ने उसको भी आग की भेंट किया और चिता भी ठंडी कर दी। अगले दिन तुर्क लाशों की खोज पहचान कर चुके, अपने मुर्दों को उठाकर ले गये और हमारे वीरों के शस्त्र आदि ले गये। आपकी ओर से उनको तसल्ली हो चुकी थी कि सही सलामत निकल गये हैं।

हमने अब बहुत कठिनाई से साहिबजादों के शरीर ढूँढे। उनका अंग अंग तीरों तलवारों से बिंधा हुआ था। पहले एक स्थान पर चिता सजाकर हमने उनका दाह-संस्कार किया। कुछ देर बाद तुर्क अहदिए (सवार) आये, हमें नाचते और बावलों जैसे गाते, राख उड़ाते और आग के साथ खेलते देखकर वे तसल्ली पाकर चले गये कि ये पागल हैं। बाकी लाशें अभी वैसे ही पड़ी थीं, उनको काफी तसल्ली हो गयी कि ये पागल हैं, अगर कभी सिख होते तो सारी लाशें जलाते, साथ में अब उनको प्रयोजन भी कोई रह नहीं था गया। फिर आधी रात को हमने दूसरे स्थान पर सारे सिंहों के शरीर के कटे अंग इकट्ठे करके लकड़ियाँ, तिनके, पत्ते आदि जो मिला डालकर आग लगा दी। अब सारी बाकी रात में चिता जलती रही, परन्तु कोई नहीं आया। अगला दिन हम सभी ने उसी तरह आसपास बिताया। हमें कई बार कभी कहीं, कभी कहीं तुर्क सिपाहियों ने देखा, परन्तु हमारी क्रिया पक्के पागलों जैसी देखकर उनको भ्रम नहीं पड़ा। रात हमने वहीं काटी, चिताएँ ठंडी पड़ गयीं, तब हमने मटकियाँ लेकर उनके अंदर और बाहर कोयलों से पता आदि निशान लिखकर मुँह पर ढक्कन देकर ऊपर से बाँधकर दोनों चिताओं के पास गड्ढे खोदकर उल्टी रखकर दबा दीं, जब मामला ठंडा हो जायेगा तो निशान आकर पक्के कर देंगे जिससे इतने भारी शूरवीरता के साके के पक्के निशान लुप्त न हो जायें। फिर हम वहाँ से छिप कर चले आये।

सतगुरू जी के गंभीर नेत्र आसमान की ओर उठे, फिर कृपा से भरकर दोनों भाइयों की ओर देखा, फिर प्यारे होंठ खुले: प्यारो कुछ माँग लो! कुछ माँग लो।।

रामा–पातशाह! इस देश में मान और भुल्लरों का ज़ोर है, हमारी कुछ चलती नहीं है, जब से आये हैं हमारे पैर नहीं जम रहे। चाहे आपने अन्न धन बख्शा है, परन्तु स्वामित्व नहीं अभी पूरा पूरा कहीं हुआ।

सतगुरू जी–ज़मीन नहीं, आप देश के मालिक हुए। श्री गुरू हरि राय जी का वर अब फलेगा! अमृत छको सिंह सजो, ज़मीन नहीं, आप राज पाओगे, राज करोगे। यह वर सुनकर उन्होंने सीस झुकाया। बहुत उत्साह के साथ भाईचारे सहित अमृत छका। यही वंश फूलकों का है, जिसका वंश अब पटियाला, नाभा, जींद में आज तक राज करता रहा है।

सूचनाः– फिर बंगेहरिये जट्ट शरण आये। अमृत छक कर सिंह सजे, इनको भी ज़मीनों के मालिक होने का वरदान मिला। यहाँ ही सतगुरू जी ने मालवा को गेहूँ, गन्ने के खेतों आमों अनारों के बागों और नहरों से लह-लहाने का वरदान दिया।*

यहाँ ही सतगुरू जी ने श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की बीड़ तैयार की जो दमदमे वाली बीड़ के नाम से प्रसिद्ध है। यह बीड़ 'मुस्तनिद आखिरी बीड़' हुई कहते हैं कि खालसे के दलों में इसका ही असवारा चढ़ता था (श्री गुरू ग्रंथ साहिब को सजा-धजा कर निकाली गई सवारी), जो बड़े घल्लुघारे+ तक दलों के अंग संग थे। गाँव कुठाला रियासत मलेर कोटला के एक शहीदी स्थान में एक बीड़ है, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि बड़े घल्लुघारे के समय बाबा सुक्खा सिंह जी के जत्थे ने यह बीड़ इस ठिकाने पर स्थापित की थी। विशेष के लिए देखें अख़बार खालसा समाचार तारीख़ १८ मई १९३३ ई० जिल्द ३४ नंबर २५, पृष्ठ ५। यह प्रथा है कि बाबा दीप सिंह जी ने चार प्रतिलिपियाँ दमदमे वाली बीड़ की और करायी थीं, इनसे ही फिर नकलें हुईं और छापे में यही मुस्तनिद बीड़ प्रवृत हुई। अब बड़े बड़े नामी कृपा वाले और संतों के झुण्ड आने लग पड़े थे, अनेक वार्ताएँ घटीं, परन्तु गुरू जी अपने किसी आशय में दक्षिण जाने को तैयार थे, सब के रोकने के बावजूद आप अपने इरादे में पक्के चल पड़े। बड़े बड़े मलवई सरदार डल्ल सिंह जैसे और कृपाओं वाले रामा सिंह जैसे साथ नहीं गये। सतगुरू ने परिवार को दिल्ली रवाना किया और आप दमदमे से कार्तिक १७६३ वि० को दक्षिण की ओर चले, रास्ते में कई दशाएँ उपस्थित हुईं, पहला डेरा 'केवल' गाँव में किया, रात वहीं रहे। अगली प्रातः 'झौरड़' गाँव पहुँच दोपहर काटी आर रात 'झण्डे' गाँव जा रहे। दिन चढ़ने से पहले कूच करके सिरसे जा विराजमान हुए वहाँ घटित एक दीनाबुंध से बंदी छोड़ बिरद का कौतुक अगले प्रंसग में है–



* ये वचन १७६३ वि० के हैं। सूरज प्रकाश का रचयिता विक्रम सदी १९०० में अपनी पुस्तक पूरी कर चुका था और नहरें मालवा में १९४१ वि० में चली हैं। इसलिए कवि संतोख सिंह जी ने भविष्यवाणी नहरें चलने से लगभग आधी सदी पहले लिखी है।

\+ सर्वनाश, तबाही।

८७ खुल्ल्हां* दा दाता+

: १ :

पंजाब–दक्षिणी पंजाब और सिरसा नगरी@, सिरसे से थोड़ी दूरी पर खुडाला तब एक सघन बसता ठिकाना था। यहाँ एक पुराना मकान है, इसके नीचे एक तहखाना है अंधेरा और तंग, मैला और कुछ ओस से गीले होने के कारण सड़ी हुई हवा वाला। इसमें बैठा है एक सिंह भाई गुलाब सिंह। यह कोई जागीरदार अमीर नहीं था, परन्तु मेहनती सिंह, सुनार का काम करता था। सुनारा सिंह हो गया था और सिंह होकर चोरी का लगाव रखने वाला नहीं था, अंदर बाहर से पवित्र था, इसीलिए इसका काम बहुत चलता था। सब का–क्या हिन्दू क्या मुसलमान–इस पर विश्वास था। अपनी मेहनत के साथ यह आत्म कृत्य का भी रसिक था। अमृत समय (प्रातःकाल) उठ बैठना, अपने मन को वाहिगुरू जी में लगाना, सतगुरू के चरणों की ओट लेनी, इस प्रकार स्थित मन पर फिर स्थिर मन में आत्मा ने आत्मा का, आत्मा के मालिक की आत्म छुअन का रस अनुभव करना, फिर उठते बैठते छोटे-छोटे रस में निमग्न रहना। परन्तु देखो कई दिनों से बेचारा इस तंग और अँधेरे तहखाने में बैठा है, कभी आठ पहर पर, कभी सोलह पहर पर एक प्याला पानी का और एक जौं की रोटी नसीब होती है, जो यह शुक्र करके खाता है, खाता है और कहता है "धन्य मेरा कलगियों वाला पातशाह!" जो पहरेदार रोटी लाता है, वह अपने दीपक की रोशनी में, जो वह रास्ता देखने के लिए साथ लाता है, इसके स्थित हुए चेहरे को देखता है और शुकराने के स्थिर अकम्पित वाक्य सुनता है तो हक्का बक्का रह जाता है, परन्तु हुक्म का बँधा अपना अशोभनीय काम करके चला जाता है। आज इस सिपाही के साथ एक मौलवी आया है, मेंहदी से रंगी हुई दाढ़ी चेहरे का माँस पतला, हड्डियों के उभार न छिपा सकने वाला, आँखें ऐसे जैसे अपने खोल में कुछ खोखली हैं और उनका प्रभाव भी खाली खाली। ओठों पर एक मुसकराहट मंद मंद, जीभ पर एक राग की धुन जो बाहर से पकड़कर नोक पर हल्की सी धरी हुई प्रतीत होती है, गाता गाता आया दो दीपकों की रोशनी में, उस तहखाने के अंदरः-

जिंदड़ी खा पी लै, एहो ही मौज बहार,
जिंदड़ी नच्च कुद्द लै, एहो ही पार उरार,
जिंदड़ी मिल गिल लै, पउंदी कोई नसार,

---

* स्वच्छन्दता, स्वतंत्रता, आज़ादी।

\+ यह प्रसंग १ माघ सं० गु० ना० सा० ४५८ (१३ जनवरी १९२७) गुरुपर्व सप्तमी समय खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

@ तवारीख खालसा में लिखा है कि तब सिरसा छोटा सा कस्बा था।

जिंदड़ी गा हस्स लै, तूँ हैं दिन दो चार।
जिंदड़ी खा पी लै ....

सिंह जी के पास आकर खिलखिला कर हँसा, एक चुटकी बजायी फिर दोनों हाथों से तालियाँ बजाकर और थोड़ा सा नाचने जैसे कूद कूद कर–

जिंदड़ी खा पी लै, तूँ कर लै मौज बहार,
जिंदड़ी अज्ज कर लै, कल्ल नूँ नहीं करार,
जिंदड़ी अज्ज कर लै,
कर लै मौज बहार, जिंदड़ी ....

वाह भई खालसा! अच्छा ज्ञान सीखा है। जीव, सुन्दर! कहाँ आ पड़ा है? मिट्टी, गर्द, गुबार में। हैं! कोई साँप बिच्छू निकले, ये जिन्दगी सुन्दर सुन्दर डंक मारकर खत्म कर दे। कुछ अपने आप पर तरस कर, कैसा गोरा-गोरा शरीर है, सुडौल चेहरा है, हैं। आ उठ चल बाहर, कहाँ भोले! तहखाने में सूर्य चन्द्रमा से रूठकर आ बैठा है, आ उठ, चलें।

सिंह जी चलो महाराज मौलवी साहिब चलो ले चलो।

मौलवी–चलो भई सिपाही, चलो खोलो दरवाजे, चलो आगे।

(सिंह जी को) चल चाचा, तेरे बिना सुंदरियों की बाँहें और नाक मुँह खाली हैं और कहती हैं, कहाँ गया हमारे हार श्रृंगार बनाने वाला (चुटकी बजाकर)

कर लै मौज बहार, जिंदड़ी अज्ज कर लै।
कल्ल दा की इतबार, जिंदड़ी अज्ज कर लै।

(कूदते हुए नाच का चक्कर लेकर और चुटकी बजाकर, फिर ताली से ताल देकर):

ओ कर लै मौज बहार जिंदड़ी कर लै नी।

हाँ सिंह जी! फिर तगड़े हो जाओ चलो।

सिंह जी–सत्य वचन जी, चलो आगे लगो।

मौलवी–देखो ना, ज़रा बता दो न बच्ची कहाँ है, हम भी बेटियों बहनों वाले हैं, हमारी दाढ़ियाँ देखो लम्बी, मूँछें देखो शरई, हरा हरा चेहरा देखो नूर भरा हुआ, परन्तु पैदा हो गई बेटियाँ, अब क्या करें? घर में रखें? ससुरा परात का आटा, अंदर रखें चूहे नहीं छोड़ते, बाहर फेंकें तो निर्लज्ज कौवे आ पड़ते हैं। बेटी न घर रखने का धन न बाहर ऐसे ही फेंकने का। कोई गधा भार उठाने वाला अगर मिल जाये तो उसके माथे मारी, जा भई गले से उतर और सुखी बस। (फिर हँस पड़ा) और भोले और क्या? तुझे तो गधा आप मिल गया है (सीढ़ियों की ओर देखकर कि साथ आया सिपाही दूर चला गया है। फिर सिंह जी के कान के पास होकर) गधा आप मिन्नतें कर रहा है, मारो उसके माथे। गधे पर झोल (वस्त्र) है सोने का, मोतियों की माला गले में लटकती है, चाँदी की माँद पर चरता है, हाँ, सच में जेब भरी है दीनारों* से और हुक्म मिल गया है शेरों वाला, फिर जो इतना सुन्दर गधा तेरे चरणों पर पड़े–भलेमानुष! तो मार दे लड़की माथे और कह दे, 'लो

* मोहर/मुहर।

गधे जी! उठाओ बोझ, हम हल्के फूल हुए' और साथ में उतार लो मोतियों की मालाएँ और निकाल लो दीनार जेब में से और हुक्म हासिल की पकड़ लो लगाम हाथ में अपने, लड़की मारे गर्दन में डंडा और आप खींचो लगाम आगे से, हम साथ साथ धक्का देने और टिच टिच करने को तैयार, बस कारज रास। चार दिनों की जिंदगी, खाओ, पीओ करो बहारें। हाँ ऐश, लूटो। कहाँ आ पड़े हो बेतरस अपने आप पर, बेतरस बच्ची पर, बेतरस हम पर। चलो चलें। ज़रा बस धीमे से (हौले से) कान में बता दो बच्ची का पता, बाकी काम गधा अपने आप कर लेगा।

सिंह–मौलवी साहिब। बच्ची है सलामती की गोद में, मैं हूँ इज्जत के पालने पर।

मौलवी–कुछ सीधी बात कहो न?

क्यों? ..... सखी हो गर्द गुबार में?

सिंह जी–धर्म है तो शर्म* है,

शर्म है तो जिंदगी, जिंदगी है तो आनन्द, आनन्द है तो इंसान।

मौलवी (सोचने वाली नज़र बनाकर)–

धर्म? वहम करने वालों के दिमाग़ की झाग-उभार।

शर्म बुरे कर्मों का फल। कमज़ोर दिलों की झिझक। बाकी रही ज़िन्दगी, वह है मौज बहार के लिए, ऐश के लिए! ऐश के बिना कैसी प्रसन्नता। हाँ, आओ खाओ पीओ, करो मौज बहारें तो खिलो। भोले बंदी खानों में खुशियाँ?

सिंह जी–बुरे कर्मों का फल है शर्मिन्दगी ना कि शर्म। शर्म कहते हैं इज्जत को, अपनी आत्मा को आत्मा की नज़र में आदर प्राप्त रहे, यह है शर्म। धर्म है आत्मा का आत्मा के साथ, आत्मा के मालिक के साथ नेह, प्यार। आनन्द है वह जो आत्मा का आत्मा में विकास है, जैसे सेवों, अलूचों, नाशपत्तियों को पकने के समय आत्मा का विकास देता है आनन्द। बाकी केवल देह है राख का पुतला। धर्महीन शर्महीन मैले अंदर वाले को ऐश का नशा बेहोशी दे देता होगा।

मौलवी–वाह सिंह जी! मैंने सोचा सुनारे हैं, कुछ दूर की समझ होगी, वाह गधा ही कुँए में उठा फेंका। भोले बंदे! अगर देह नहीं तो आत्मा कहाँ? देह ती तो आत्मा का दीपक रोशन करती है। फिर अगर खाना, पीना, हँसना, सोना खुला नहीं मिलता, तो देह बेचारी कहाँ? देह तो मूल जड़ है और इसको पालना पोसना, ह्रष्ट पुष्ट करना धर्म है और फिर इसके साथ मौजें ऐशें करनी यह आनन्द है। खालसे! तेरा कौन सा आँगन है जहाँ अल्हड़ बछड़े की तरह पड़ा कूदे? उठ चल, पाल धर्म।

'देह को रख' धर्म है।

'देह को पाल' शर्म है।

'ऐश' आनन्द है।

और सब झगड़ा है।

---

* इज्जत, मर्यादा।

फिर नाचकर चक्कर लेकर और चुटकी बजाकर–

कर लै मौज बहार जिंदड़ी कर लै नी,
कल्ल दी किस नूँ सार अज्जो ई कर लै नी।

भोले बादशाह! चलो, क्यों अपनी जान गँवाते हो? बच्ची को रुलाते हो, आख़िर किसी चार पैसे के कमाऊ सारा दिन आग के आगे बैठकर फूँके मार-मार अपना सिर और सोने की जान खाने वाले मेहनती मजदूर के माथे मारोगे ही कि नहीं? उससे तालुक्के का हाकिम, सुन्दर शहजादा, गोल गोल, गोरा गोरा रईस बुरा है जो आपके चरणों में हाथ लगाकर बेटी लेता है, आपके अंदर बाहर सोने से भरता है? रोज की फूँकनी और हथौड़ी और कमर घुटने तोड़ मुर्गी की तरह अंडों पर बैठनी से छुटकारा दिलवाकर घुड़सवारी, रथ की सैर, बाग़ बाग़ीचे देता है। और क्या लेना है? सिंह जी! मैं कोई नीच नहीं, शरीफ परिवार वाला हूँ। अगर तो प्रबन्धकर्त्ता आपकी स्त्री की ओर आँख मैली करे (कुदृष्टि डाले) तो मैं क्या हम सारे ही लानत देंगे शैतान को, परन्तु वह तो कुँआरी बेटी माँगता है। बेटी और बेरी वाले घर किसकी माँग नहीं पड़ती और कौन है जिसके घर बेटी और बेरी है और वह चाकरी करने आये अथवा कुछ बेर माँगने आये के आगे शर्म धर्म के प्रतिबन्ध खड़े कर लड़ता और आँखों की मुक्कियाँ (मुक्के का स्त्रीलिंग) दे देकर रोता है। अल्लाह ने दी बेटी, पराया धन किसी के माथे मारना ही है न, फिर .....। ? हैं .... ? उपालम्भ किस बात का और लाज किसकी? हाँ किसकी कमी और कैसा दोष?

सिंह जी–मौलवी साहिब! होश की दवा खाओ, क्यों ललचाते हो जाग पड़ों को? ललचते हैं:-

शरीर के गुलाम, माया के लोभी, झूठ के पड़ोसी, शर्म हया के दुश्मन, ग़ैरत की आँख से रहित।

हाँ, ललचते हैं:–

गुरु के अस्तित्व से बेखबर,

और वे जिन्होंने माना है कि हमने मर जाना है शरीर के मरने के साथ, जिन्होंने समझा है कि हम हैं पशु पक्षियों जैसे जंतु, परन्तु अधिक चालाक और अक्लमंद! हाँ जिनकी दृष्टि पंखरहित है, नहीं उड़ सकती मिट्टी के देश से जीवन के गगन मंडलों में।

मौलवी–ऊई ईश्वर! ऊई ईश्वर! मौलवी था मैं और यह मिल पड़ा है मुझे आगे से बड़ा मौलवी, परन्तु टेढ़ा मौलवी, मौलवी कि पंडित? पंडित पर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने वाला पंडित। मैंने तो अच्छी बुद्धि दी है और बन गया है ललचाने वाला। अच्छा भई, नेकी का बदला–तभी कहते हैं न नेकी का बदला–दुख, परन्तु कर भला हो भला। चलो कोई बात नहीं हे मन! तू रोते रोगी को घूँट डाल ही दे कड़वी दारू का (दवा का)। सुन ओय दूल्हे (जिज्ञासु)! सुहणे (सुन्दर) दर्शन बघारने वाले! पढ़ते सुनते हैं दो घड़ी के बहलाव के लिए कि वहमी होने के लिए? दो और दो चार होते हैं, तीन नहीं होते। रोटी खानी है तो जीना है, पड़ा याद कर मसले, बिना रोटी पेट भरता है? तू अब कैद है गंदी

जगह, तंग जगह, अँधेरी जगह, निकल तो बाहर ख्यालों की ऊँची उड़ानों से, निकल, बता निकलकर? बदबू चढ़ती है सिर को, रोक ज़रा इसको। मैंने चालीस सेरी (मन, तौलने में एक माप) बात कही है कि बेटी पराया धन है दे, कर्ज़ा उतार, निश्चिंत हो और इस कैद से छूट। बहुत ग़ैरत है, तो ले कुछ न, धर्म का रिश्ता कर दे, अपनी गरीबी में बैठा रह, काम कर (मेहनत कर), बंदगी कर। अगर लोगों की दंत-कथाओं और जीभ-कहानियों पर ही जीना है तो कर ऐसे, जैसे मैंने कहा है, अपने आप जगत कहेगा: पुण्य का डोला (डोली) विदा किया है, धर्म का रिश्ता किया है।

सिंह जी–तुर्क हाकिम के साथ बेटी का रिश्ता करूँ। बहुत मजबूरी में आकर डोली विदा करूँ और कहूँ मैंने पुण्य किया है? हैं! चालीस सेर तौलने वाले!

मौलवी–अब कोई रोक प्रतिबन्ध बाकी है? फूँके मारने वाले मित्र! राजपूताने के ऊँची गर्दन वाले राजाओं ने तो बेटियों की डोलियाँ दे दीं अकबर को, जहाँगीर को, शाहजहाँ को, जो हिन्दू मुसलमान के नाते की रोक थी वह खोल दी ऊँची गर्दन वाले राजपूतों ने। फिर .... ? अब बता न? जो रास्ते बड़े लोगों ने सदियों के बंद पड़े खोल दिए, फिर छोटे लोग पीछें क्यों न चल पड़ें। तूने कभी सुना नहीं–'बड़ों ने स्थान बनाये और वही बन गये रास्ते' पढ़ ज़रा, हाँ कैसे कहते हैं पंडित–'महाजना येन गतः स पंथः*।' ठीक कि नहीं?

सिंह जी–ऐसे मुसलमानों ने भी हिन्दुओं को डोलियाँ दी हैं? कहीं? हैं ...... ?

मौलवी (घबराकर, माथे की माँस की हाथ से चुटकी भरकर)–सिंह जी! लोगों की कथा कहानियों से क्या? प्रत्यक्ष को दर्पण क्यों दिखाना? आओ मैं तैयार हूँ मेरी बच्ची का रिश्ता लो अपने लड़के के लिए। आओ सिंह जी! मैं बकवादी नहीं, व्यावहारिक व्यक्ति हूँ, जो कहता हूँ करता हूँ, चलो ग़ैरत धो लो, अगर ऐसे ही खुश हो तो आओ उठो चलें। अब आप हम समधी हो गये, समधियों का कहा लौटाया नहीं जाता और कच्चे कुँआरे रिश्ते में तो समधियों के इशारे संकेतों को भी कभी रद्द नहीं किया करते।

सिंह जी–सरकारी मौलवी और दरबारी मसखरे जी! सीधा ही चन्द्रमा देखो, पानी में चाँद देखने की मेहनत क्यों? सीधे नाज़िम+ साहब को अपनी बेटी की डोली देकर सारे सुख, सारे सामान और ऐशें, जिनका हरा-हरा चारा डालकर बाघ को मोहित कर रहे हो, अपने आगे ही क्यों न डाल लो? मेरा तो मुँह उनको चबा नहीं सकता और आप उनके लिए ललकते घूमते हो, सामने आओ, और जाओ। नेकी करने आये कहते हो, नेकी हो जाये, अपनी बेटी देकर मेरी मुक्ति कराओ और बेटी देकर जो कुछ मिलना है वह काफिर के घर न जाये, मोमिन लेकर ऐश करे।

मौलवी (ओंठ मोड़कर और फिर हँसकर)–जिंदड़ी (जीवन, जान) (त्यौरी डालकर) कर ले मौज बहार। (चौंककर) कर ले री .... हाँ।

---

* वह ही रास्ता है जिस पर चल पड़े बड़े लोग।

\+ प्रबन्धकर्त्ता

सुहणे (सुन्दर)! गधा रीझ गया है कुलत्थ* पर, भड़आ अगर भंगूर (भीगे चने) खाये तो हम थाल भर कर खड़े हैं। परन्तु चने खाते पीड़ा होती है, हठ करने लगा है, कहता है: कुलत्थ ही खाने हैं, जैसे हकीम बता गया है कि कुलत्थ और भक्खड़ा+ भिगो कर पी, पीड़ा ठीक हो जायेगी।@ आगे से तू भी मिला है, माफ करना दोस्त! उससे बड़ा 'झंग स्याल का साँवला' तुझे कहते हैं, ले भंगूर, मुगल खून के साथ खून मिला, तू कहता है भंगूर नहीं लेने, कुलत्थ नहीं देने। पता नहीं दोनों को कैसी गुर्दे की पीड़ा है। एक कुलत्थ के बिना रहता नहीं एक बिछुड़ता नहीं, अंगूरों जैसे भंगूर दोनों को नहीं भाते। कलियुग के साँवले भी नख़रे वाले हो गये हैं।

सिंह जी–हाँ, कलियुग के इराक़ी# बहुत नम्रता और सहनशीलता वाले हो गये हैं कि गधों के आगे प्रार्थनाएँ करते हैं, औार आगे से गत्थर$ नहीं पड़ते परन्तु वह नम्रता और परोपकार का न खत्म होने वाला खज़ाना दोनों हाथों से न्योछावर करते ही जाते हैं, यह एक काम तो कलियुग ने सतयुग वाला कर दिखाया है।

मौलवी–नहीं ओय मित्र! कलियुग बहुत चालाक है। देख! इराकियों की नम्रता के आगे देसी टट्टू बेटियों की डोलियाँ लेकर आ गये, इराकियों के पातशाहों ने वे बेगमें बनाकर उनके पेट से उत्पन्न हुए बच्चों को अपने तख्त ताज सौंप दिए। अब तख्त पर देसी टट्टुओं के दौहित्र हैं, उनका अपना खून है, परन्तु अभी भी कहीं कहीं गधे की हठ और टट्टू की ज़िद खड़ी हो जाती है, कहते हैं हम नहीं रिश्ता करते।

सिंह जी–परन्तु जिन टट्टुओं के मुँह में लगाम नहीं, पीठ पर छड़ी नहीं, घर में माल असबाब है नहीं, जहाँ रात पड़ी सो गये, जहाँ दिन हुआ चरने लग पड़े, गर्दन जिन्होंने सीधी रखी है वे इराकियों की चालाकी तले अभी नहीं आये।

मौलवी–(अब किचकिचाकर, परन्तु फिर चक्कर खाकर)–ले भई सज्जन! अब बात हँसी हँसी में खत्म होती नहीं दिखाई देती, हमने कहा था कि हँस खेलकर कलह खत्म हो जायेगी परन्तु तू पक्का सुनारा है, अब आखिरी बात सुन ले यह हँसी नहीं है। अगर तो बच्ची देता है तो दे, या पता ही बता दे कि कहाँ है, तो नाज़िम साहब मँगवा लेंगे आप ही, और तू हो जायेगी आज़ाद! और अगर न बताये तो तेरा हो जायेगा सिर कलम (कट जायेगा), हाँ याद रख–कलम को छीलकर काटा जाता है, चाकू से काटा जाता है, जानता है न?

---

* एक प्रकार के रुआंह, दूसरा अर्थ–जो बुरी जगह उतरा हो, नीचा।

\+ भद्रकंट–काँटेदार फलों की बेल, जो ज़मीन पर बिछी रहती है। भक्खड़े की तासीर सर्द खुश्क है। बीजों सहित कूटकर किया इसका काढ़ा मूत्र रोगों को दूर करता है।

@ ये दोनों चीज़ें चार पहर भिगोकर और फिर पानी यह पीते रहने से गुर्दे की दर्द के दौरे हट जाते बताये जाते हैं।

\# अरबी घोड़े।

$ ऊँटों का एक रोग।

सिंह–(हँसकर)–सोने के साथ ने हमें नाम दिया है सुनार, (सोने + हार अथवा स्वर्णकार = सोने का काम करने वाला)। हम हैं सोने के सेवक, सोना है नर्म कोमल, परन्तु न झुकने वाला, अटूट। सोना है पीला, परन्त नहीं खाता जंग, जिसके साथ लगता है उसको देता है अपनी चमक, परन्तु नहीं लेता किसी का रंग, जन्म लेता है खानों में, परन्तु बैठता है सिर शाहों के बनकर ताज। छूते नहीं इसको फकीर और सन्यासी, परन्तु चढ़ बैठता है सोना उनके रोज़ों, छतरियों* के गुंबदों पर बनकर कलश। हम करते हैं सोने की सेवा तो पागल हुई घूमती हैं बेगमें और रानियाँ सोने के पीछे, बाकी रही बात जिसके लिए आये हो आप, मौलवी होकर मसख़रेपन की कलई लगाकर मुझे मोहने, इसलिए मैं हाज़िर हूँ। चलो अगर अब आपकी हँसी मज़ाक से खत्म हो गया है ऊपर का पाखंड तो नीचे से निकल पड़ा है मौलवीपने का तरामा+ अब देते हो त्रास प्राण हरने का, जी सदके! दो। मर मिटेंगे शरीर सारे एक दिन ज़रूर किसी बुरे रोग से, इसलिए अगर मरे खंजर कि शमशेर से तो जल्दी खत्म होगा काम जो सत्य होना था किसी लम्बे होते कष्ट से। बाकी रहा मेरा अपनी बच्ची को लालच कि डर के आगे दे देना, वह प्राणों तक तो संभव नहीं मरने के बाद हो तो उसके भाग्य।

मौलवी–मैं मौलवी हूँ मुझे पेट का मौलवी भी कह लो, परन्तु मेरे साथ गुस्से मत हो। मैं तुम्हें सिक्खों को मूर्ख समझता हूँ। धर्म और शर्म, ग़ैरत और आज़ादी, आज़ादी और धर्म की छूट क्या नये मसले बना दिये हैं? आये दिन दुख पाते हो? भोले व्यक्ति! चार रोज़ की ज़िन्दगी है। खाओ पीओ, आनन्द करो। दीनदार कौन है? पातशाह, पातशाही की खातिर सगे भाई मरवाते हैं, बच्चों और पिता को कैद में डालते हैं, ऊपर दीन का चोगा डालते हैं, हिन्दुओं से छीनते हैं लालच में और फतवा निकालते हैं कुरान में से। सब दिखावा है। दुनिया फ़रेब है, और फरेब के बिना हासिल नहीं होती@ यह हमने समझ लिया है, नदी की गति के साथ बह चले हैं, खाते पीते दिन गुज़ारते हैं। मुसलमान हूँ, इस पर्दे तले हज़ार बुराई फैलती नहीं, और इस्लाम क्या और मौलवी किसके? तुझे अक्ल देता हूँ सच्ची और दिल से, सौगन्ध खाकर कि क्यों दुख पाता है? बेटी दे, झंझट खत्म कर, सुखी हो। मैं किसी दीन को सच्चा नहीं समझता (सीढ़ियों की ओर देखकर कि सिपाही दहलीज से परे दूर है, नज़दीक तो नहीं), सब मज़ाक है, मेरा दीन तेरा धर्म वहम है, खा पी मौजकर, छोड़ वहम, निकल और आराम ले। चार दिन की ज़िन्दगी है सुख के साथ बीते, धर्म ईमान ठग्गियाँ हैं। समय और सुखी हो जा, इस कष्ट से छूट।

सिंह जी–मुबारक! मुबारक!! मुबारक!!!

जो दीन, जो कौम यहाँ पहुँच गयी है खत्म कि खत्म। कलग़ियों वाला हमें सच कहता होता है कि तुम सच पर खड़े हो जाओ तुम देश के राजे हो जाओगे। कलग़ियों

---

* महात्मा की समाधि।

\+ तांबा।

@ अद्दुनियां जूरन ला यह सलो इल्ला बिज्जूरे!

वाला सच कहता है, कि गुलामी में लोगों को पाने वाला या एक कौम दूसरे को गुलाम बनाने वाली–गुलामों पर जुल्म करती–अपने आचरण से गिरती जाती है, गुलामों की बुराइयाँ उसमें घुसती जाती हैं, वह अंत में चाल चलन से पतित हो जाती है और ख़त्म हो जाती है।

आपने जो कहा है दुनियादार की अक्ल यही कुछ बताती है, परन्तु मैं किसी और रास्ते पड़ गया हूँ। धर्म, स्वाभिमान, सत्य मेरे लिए अमूल्य और असली रत्न हैं।

बेटियों के रिश्ते करने पवित्र और लज्जा वाली रस्में और मर्यादाएँ हैं। बेटी देनी होती है, परन्तु शर्म धर्म के साथ, दिल की स्वतंत्रता के साथ योग्य वर को, जिससे पता हो कि बेटी को स्वाभाविक रहन-सहन मिलेगा, दोनों एक मन हो रहेंगे, इष्ट उपासना, आशाओं उम्मीदों की झनझनाहट आत्मा में विरोधी किस्म की बहकर उनके जीवन निर्वाह में कठिनाई नहीं उत्पन्न करेगी, दोनों अल्लाह रहमत करे तो–एक ज्योति हो जायेंगे। प्यार बेरोक प्यार, पवित्र सच्चा प्यार–दोनों को एक करेगा, दोनों के दिल की धड़कन इकट्ठी बजेगी। ये यत्न माँ बाप ने करने हैं बेटी देते समय, यह एक धर्म है, यह मेरा नियम है, यह चाल चलन है, जहाँ यह बात दिखाई दे जायेगी मैं नाता कर दूँगा।

एक विषयी और ज़ालिम हाकिम के आगे झुककर या उसके दिए लालच के आगे नरम होकर रिश्ता डाल लेना मैं अपने फर्ज़ की अदायगी नहीं समझता, पाप समझता हूँ। बच्ची अल्लाह की ओर से अमानत है मेरे पास, मेरा फर्ज़ है एकदम उसके भले के लिए उसके अनुकूल वर को ढूँढना और रिश्ता करना। यह है फर्ज़ मेरा, यह फर्ज़ पूरा होगा। तलवार की आबदार धार, न दीनार की भुलाने वाली चमक मुझे इससे गिरायेगी। आपको पता ही है कि मैं सिक्ख हूँ। मेरे पाँचवें और नौवें गुरू ने शीश दिये, मेरे छठे गुरू ने खंडा खड़काकर इज्जत के साथ मरने का ढंग हमें सिखाया, मेरे अंदर नूर दस गुरुओं ने भरा, मेरे नेत्रों के सम्मुख मेरे दसवें गुरू की तस्वीर है, उनके कष्ट हैं, चार साहिबज़ादे और हज़ारों सिक्खों की शहादत है। मैं जागृत व्यक्ति हूँ, मेरे गुरू ने 'आज़ादी की देवी' प्रगट की है, मैं आज़ादी की देवी की यज्ञवेदी पर हवन होने के लिए तैयार खड़ी बलि हूँ, हाँ अपने तन की कुर्बानी देने को तैयार हूँ।

: २ :

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह नौ महीने नौ दिन दमदमे साहिब रहकर नौ घड़ी दिन चढ़े आगे चल पड़े। कार्तिक की तिथि शुदी पंचमी थी, संवत् १७६३ था*। पहली मंजिल सात आठ कोस 'केवल' गाँव जाकर की, वहाँ सिक्ख संगत भी पहुँच गयी, नामी सिंह भी साथ थे, जैसे भाई रूपे के पोते–धर्म सिंह, परम सिंह, भाई भगतू के – राम सिंह फतह सिंह। डल्ला सिंह राय साबोका। अगले दिन उपकारी वायु की तरह सतगुरू का डेरा फिर आगे चल पड़ा, पाँच छ: कोस पर जा 'झोरड़' गाँव डेरा किया। यहाँ से फिर चले तो लगभग छ: कोस आगे चल 'झण्डे' गाँव जा डेरा किया।

---

* तवारीख खालसा।

अब रोज़ का डेरा सिक्खों में विचार उत्पन्न कर गया कि कहीं लम्बी दौड़ (धावा) न हो और हम घर बार से तैयार भी नहीं होकर आये। अगर तो सतगुरू यहाँ ठहरते तो सेवा और घर के काम दोनों मामले होते जाते, अब दोनों काम कैसे हों। फैसले का समय आ गया हाँ मानो परीक्षा का समय आ गया, घर कि गुरू? पहले तो समझते थे कि हम गुरू के हैं और साथ निभेंगे, सीस न्योछावर करेंगे। सिरों की माँग का समय तो नहीं पड़ा, परन्तु घरों से वियोग का समय आ गया। अब दिलों को पता लगा कि मोह प्रबल है। खासकर दो तीन बड़े-बड़े लोगों को, राय डल्ला सिंह को राज्य का मोह और राम सिंह फतेह सिंह को घरों का मोह बहुत प्रबल हो गया। राम सिंह ने विनती की कि पातशाह! आज्ञा दो तो फतेह सिंह जाये, घर सम्भाले और मैं साथ रहूँ। सतगुरू बोले–मुझे अपने लिए कोई ज़रूरत नहीं, मेरे साथ अपने कल्याण के लिए उस महान कार्य के लिए जो वाहिगुरू ने सौंपा है रहना है तो बहुत खुशी के साथ रहो। मेरी आवश्यकता के लिए रहना है तो आवश्यकता वाहिगुरू के हुक्म की है, प्रजा के कष्ट की है, धर्म बचाने की है, मन माने तो अपना आप न्योछावर करो, न माने तो सुख, चतुराई के साथ न जाओ, जाना आपका प्रतीत होता है निश्चित, फिर बहाना न करो, सुख से जाओ।

सुबह अमृत समय सतगुरू ने डल्ले को आवाज़ दी, तब एक निर्धन फकीर बोल पड़ा। यह फकीर सतगुरू के डेरे के साथ चिरकाल से रहता था। प्यार वाला था, अदब रखता था, कीर्तन का प्रेमी था, परन्तु था खुलासा* और बेपरवाह़। जब सतगुरू ने डल्ले को आवाज़ लगायी तो यह बोला–

ना डल्ला ना मल्ला ते गुरू नाल अल्ला;
अल्ला ही अल्ला ते गुरु शेर इकल्ला।

आधी रात के समय फकीर ने देखा था कि डल्ला सतगुरू के डेरे की परिक्रमा करके, माथा टेककर विदा हो गया था, और फतेह सिंह उससे भी पहले खिसक गया था।

विश्वास के घाट पार उतरना बहुत कठिन खेल है। डल्ला और फतेह सिंह श्रद्धा वाले थे, परन्तु श्रद्धा डगमगा गयी। उधर देखो उस दिलेर मूर्ति की ओर, साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की ओर, उनके संकल्प की दृढ़ता, खिसकते सामानों से बेअसर रहने वाली मज़बूती। हँस पड़े और इतना ही बोले: चौकी बराबर जगह गुरू चरणों में माँगने वाला डल्ला, आनन्दपुर के चमकौर के युद्ध के समय पास न होने का अफसोस करने वाला डल्ला, चलते समय दर्शन भी नहीं दे गया। हाँ, 'विशाल चित्त' गुरू गोबिन्द सिंह जी जानते हैं कि देश सदियों की गुलामी से, ज़ालिमों के जुल्म से, होश रहित-मरी हुई बुद्धि वाला हो चुका है, मर मिटी, दबेल हो चुकी, गुलामी में पीढ़ियों से जम पल चुकी कौमों में फिर से धर्म की जान भर देती, फिर से आजादी का स्वाद चखा देना, फिर से अपना आप न्योछावर करने का भाव भर देना कोई खेल नहीं है। यह धीरे-धीरे भरेगा। भर गया है, हाँ, दाता ने इंसानी कल्पना से अधिक भर दिया है, परन्तु इसमें पुराने स्वभाव की आदत ने

---
* धार्मिक नियमों की पाबन्दी त्यागने वाला।

चक्कर लगाना हुआ, कई न घबराना हुआ। इसलिए चाहे घबरायें, और चाहे हों खिसंकत बहुत सारे, जबकि सच्चा वैद्य कोई हार न मानने वाला सदा अपने इरादे में पक्का परन्तु गंभीर शूरवीर, चतुर सयाना, फकीर परन्तु रसिया, सन्यासी परन्तु सफल करने वाला सन्यास को, अपने काम में लग रहा है।

सतगुरू जी ने सुबह कूच उसी तरह इस स्थान से भी किया, जिस तरह कि रोज़ होता था, मानों कुछ हुआ ही नहीं। सात आठ कोस आगे चलकर सिरसे के कस्बे आ डेरा किया। वहाँ के लोगों ने आव-भगत अच्छी की।

जबकि साहिब प्रशाद छक (खा) चुके, कुल्ला कर लिया और अलग आकर बैठ गए, और दर्शन करने आये लोग प्रशाद खाकर चले गये, तब सिरसे का एक सिक्ख भाई जस्सा सिंह जो अमृत पान करने से पहले वहाँ का एक व्यापारी था और पीछे का पंजाब से आया भाई संत सिंह जी चमकौर की शहीदी वाले का हमवंशी था, सतगुरू को एकान्त में बैठे देखकर विनती करने लगा: सच्चे पातशाह! आप के विराजने का–विश्राम करने का–समय है, और मैंने एक दुखभरी वार्ता बयान करनी है।

आप बोले–कहो प्यारे! हम हमेशा ही विश्राम में हैं।

सिक्ख–पातशाह! हमारे में एक सुनार जाति से बना सिंह था, जिसका नाम गुलाब सिंह था, अमृत उसने आनन्दपुर साहिब में छका था, वह बुद्धि का चतुर और कुछ फारसी और कुछ संस्कृत पढ़ा हुआ भी था। पहले साधुओं की संगति करता था। पातशाह! जब से वह सतगुरू का हुआ, तैयार बर तैयार हो गया, हम यहाँ तीन घर सिंहों के हैं, थोड़े सहजधारी* हैं, बाकी सभी और लोग हैं। भाई गुलाब सिंह जी के साथ मजौर 'दरगाह' के खीझते थे कि उसके सत्संग से लोग धर्म के पक्के रहते थे। उन्होंने खुडाले के हाकिम को ख़बर दी कि गुलाब सिंह की बेटी सुन्दर है, वर प्राप्ति की आयु में है, छीन लो। इसलिए जबकि हाकिम की भेजी खुडाले से बाहर आई, हमें पता लग गया था। समय कम था, हमसे और तो कुछ न हो सका, बच्ची उसके घर से लाकर छिपा ली। सिपाहियों ने आकर उसका घर छाना, बीबी (बेटी) न मिली और कुछ पेश नहीं गई (वश नहीं चला) तो गुलाब सिंह को जबर्दस्ती ले गये। खुडाले ले जाकर तहखाने में डाल दिया है। बहुत लालच डर मिल रहे हैं, परन्तु भाई साहिब बिना डगमगाये खड़े हैं। दूसरे चौथे नई कथा वहाँ की सुनने को मिलती है। इसलिए पातशाह! अगर बेटी दे दें तो सिख को छुटकारा मिलता है, अगर नहीं देते तो सिक्ख बहुत प्यारा है, आपके चरणों का दास और हमारा सिरताज है, पूरा गुरमुख है, अगर वह हाकिमों ने मार दिया तो हम बहुत व्याकुल होंगे। बल है नहीं जो छुड़वा लायें, अधीनता मानने को मन नहीं करता। अगर लड़की देकर सिख को छुटकारा करवायें तो जैसे बनिये महाजन, वैसे हम, हम अपनी शान सिंह होकर कैसे मैली करें?

सतगुरू सुनते गये, नज़र ऊँची होती गयी, सुन्दर नेत्रों के काले-काले गोले ऊपर के नर्म नर्म छप्परों में होते गये। नीचे वाली सफेदी में लाल-लाल डोरे छा गये। फिर अचानक अधखुले नेत्र पूरे खोलकर बोले–जस्सा सिंह फिक्र न करो, वाहिगुरू रखेगा।

---

* सिक्खों का एक अंग, जो खण्डे का अमृतपान नहीं करता और कच्छ कृपाण की मर्यादा नहीं रखता परन्तु श्री गुरू ग्रंथ साहिब बिना अपनी और धर्म पुस्तक नहीं मानता।

(डेरे की ओर देखकर) कोई भुजंगी* है?

एक सिंह दौड़कर आया–पातशाह!

सतगुरू–हमारा अबलक (घोड़ा) ले आओ, पाँच सिंह शस्त्र लगाकर सवार होकर आ जाओ, मुहिम पर जाना है।

जस्सा सिंह–सच्चे पातशाह, आप न जाओ, जस्सा सिंह और गुलाब सिंह की ख़ातिर अपने को जोखिम में न डालो। आप हो तो सब कुछ है। हम कौन हैं? तुच्छ जीव। पातशाह! आपके साथ सिंह बहुत कम हैं, डल्ले जैसे बहादुर चले गये हैं।

गुरू जी–तगड़ा हो भोले। वाहिगुरू हमारा सेनापति साथ है, डल्ले मल्ले ने क्या करना था? शारीरिक शूरवीरों के काम नहीं, यहाँ मन के शूरवीरों की ज़रूरत है, जिन्होंने शरीर से मोह तोड़कर ईश्वर के साथ लगाया है। जानों पर तो वही खेल सकते हैं जिन्होंने जान वाहिगुरू को दी है। अहंकार के वीर साझे डर और साझे लाभ के लिए बहादुरी करते हैं परन्तु सन्यासी वीर पराये के भले के लिए बहादुरी करते हैं। 'वीरता' उत्साह में बसती है, 'कामना' भय में बसती है।

सिंह–पातशाह! खुडाले का हाकिम नबी बख़्श मूर्ख है, तरस रहित है, इलाक़ा उससे डरता है, उसके पास कुछ सेना भी है।

गुरू जी–फिक्र न करो, मेरे साथ अकाल है।

इतने में अबलक (घोड़ा) आ गया, आप शस्त्र लगाकर सवार हो गये। जस्सा सिंह तहखाने का पता बताने के लिए एक तगड़े टट्टू पर सवार होकर साथ हो लिया। जस्सा सिंह को खुडाले का पूरा पता था और वह जानता था कि तहखाना कहाँ है। सतगुरू चले गये परन्तु बाद में पाँच दस सिंह और तैयार बर तैयार होकर आपके पीछे पीछे चल पड़े।

: ३ :

खुडाले की सीमा में वृक्षों के समूह का सुन्दर छायादार एक बाग़ था। यहाँ हाकिम नबी खाँ की मजलिस लग रही थी, मसनद पर आप बैठा था, इर्द गिर्द शतरंजियाँ@ बिछी थीं, इन पर उसके पंसदीदा लोग बैठे थे, बातें हो रहीं थीं–

नबी खाँ–मौलवी साहिब ने बहुत देर लगा दी है।

मुंशी–मौलवी साहिब बहुत गप्पी हैं, बोलने का रोग है उन्हें, जब शुरू हुए फिर बस खुल पड़े चुप कौन कराये?

१. मुसाहिब (पार्षद)–हैं पर बहुत युक्तियों वाले। मज़ाक करते हैं कि सिट्टी पिट्टी भुला देते हैं आगे से किसी को कुछ सूझता नहीं। मुंशी हैं मौलवी, पर मसखरों के कान काटते हैं।

---

* खंडामृतधारी सिक्ख का बेटा, यह पद सबसे पहले साहिबज़ादों के लिए प्रयुक्त किया गया फिर सिंहों के पुत्रों के लिए हो गया।

@ वह बिछौना जिसपर शतरंज के खाने बने हों अब दरी मात्र को भी शतरंजी कहने लगे हैं।

काज़ी–एक ही बात अफसोस जनक है कि दीनदार नाम के हैं, बीच में से हैं पक्के .... पक्के .... दहरिये*।

हाकिम–नऊज़बिल्ला! .... सच? काज़ी साहिब!

काज़ी–पहले तो यह शक नहीं था जबसे हैयत@ पढ़े हैं, तबसे ज्यादा बोलते तो नहीं, परन्तु अंदर दबी कभी होठों से फिसल पड़ती हैं।

२. पार्षद–नहीं काज़ी साहिब, माफ करना, आप बहुत वहमी हो, ज़रा स्वभाव है मज़ाकिया, कह देते हैं सच्ची सच्ची, हँसोड़ लोग इसी तरह के होते हैं।

काज़ी–है तो ठीक, परन्तु अल्लाह के साथ भी गुस्ताखी, नबी रसूल के साथ भी दरीदा दहनी (गुस्ताख़ी करना)?

नबी खाँ–फिर आप की क्या मर्जी है, मंसूर का भाई बनायें?

काज़ी–नहीं नहीं जनाब, ज़रा समझाने से ठीक हो जायेंगे।

नबी ख़ाँ–किसी को भेजो तो, कहीं तहखाने में साँप तो नहीं डस गया।

इस प्रकार बहुत देर तक कई बार फिक्र हुआ, अंत में दूर कुछ धूल दिखाई दी। नज़रें उधर पड़ीं, परन्तु हवा तीखी चल रही थी, खास ध्यान न दिया किसी ने। कुछ देर बाद एक अहदिया भन्ना आया और दमकशी+ के कारण मुँह के भार गिर पड़ा। कितनी देर इसको दबाया तो साँस आयी, साँस आयी तो बोला:-

ग़ज़ब हो गया!

हाकिम–क्या हुआ?

अहदिया ...... हुजू .... र .... हुजू .... र ...... हुजू .... र ..... ग़ज़ब।

काज़ी–ओ शैतान बक भी, क्या ग़ज़ब हो गया?

हाकिम–बक लानती।

अहदिया–सि .... सि .... सिक्ख ..... सिक्ख, सिक्ख आ पड़े।

हाकिम (घबराकर)–हैं?

अहदिया–हाँ ...... हुज़ूर, सि .... सि .... सिक्ख़।

हाकिम–यहाँ कहाँ आ गये?

चौंककर सभी उठ बैठे? बेफिक्र बैठे थे अचानक बिजली आ पड़ी। जल्दी अपना आप सँभालकर उठे, परन्तु जायें कहाँ? गाँव दूर है, कोतवाली दूर है। यहाँ निश्चिन्त बैठे थे, तलवारें तो पास हैं, और कुछ नहीं। कुछ लुकने छिपने की जगह ढूँढते फिक्र दौड़ा रहे थे कि मौलवी साहिब आ पहुँचे।

हाकिम–क्या फौज़ लाये हो?

---

* एक तरह का नास्तिक जो ज़माने को खुदा समझे।

@ पदार्थ विद्या।

+ सख्त साँस चढ़ जाने की हालत।

मौलवी–जनाब! घबराइये नहीं, ख़ैर है, ख़ुदा ख़ैर करेगा। साँपों के साथ खेलना, बांबियों (साँप का निवास स्थान) में हाथ देना और फिर मुँह पीले करने? 'दरगाह' वालों ने तो आपको आगे किया, आपके मुँह में भी पानी भर आया, 'कमीन मज़दूर है, हल्वा है खा लेंगे बिना चबाये, खाओ।

काज़ी–मौलवीपन डुबा छोड़ा है कभी संजीदा बात नहीं की, जब बोले दिल लगी। कब्र में भी मज़ाक का कफन पहनकर जाओगे? ख़बर आई है कि सिक्ख आ पड़े हैं, वक्त नाज़ुक है, आप जल्दी बताओ कि क्या बात है?

मौलवी–फिक्र न करो, काज़ी की पदवी नहीं छिनती, मेरे लड़के भी हल्वा पूरी लायेंगे। ख़तरा है, पर कोई ऐसी बात नहीं है। ख़ुदा ख़ैर करेगा।

हाकिम–फिर समस्या! बको भी कुछ?

मौलवी–'सिक्ख आ पड़े' ग़लत ख़बर है, 'सिक्खों के रसूल अल्लाह आ पंड़े' यह सही ख़बर है।

नबी ख़ाँ–फिर ठट्ठा? मैं अब आपको काम से अलग करूँगा।

मौलवी–वाह किस्मत, मैं सिक्खों के नबी की गुरु दक्षिणा ले लूँगा।

सारे–लानत, मौलवीपन पर धिक्कार।

मौलवी–मैं तो लेता लूँगा, आप अभी लोगे, न लोगे तो देखूँगा।

नबी ख़ाँ–मरे तेरी हँसी, कुछ बक भी?

मौलवी–इधर ही आ रहे थे (सभी घबरा गये) घबराओ नहीं, हाँ, धीमे आ रहे थे, सोच समझ लो। हाँ, अभी नहीं।

नबी ख़ाँ–यह तो बकता नहीं, मोमिनो। तलवारें खींच लो और जानों पर खेलो, और अब वक्त नहीं।

मौलवी–तलवारें खींच लो, परन्तु रखो नीची, जान पर खेलने की ज़रूरत नहीं, थोड़ी अक्ल की ज़रूरत है।

काज़ी (खीझकर)–तुझे दिल्ली भेजकर जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर कत्ल करवाना पड़ेगा। सरमद्द के साथ तेरी कब्र बने। मरदूद! संजीदा (गंभीर) हो और हाल कहो।

मौलवी–वाह किस्मत! जिन सीढ़ियों पर हज़ारों काफिरों का खून गिरा वहाँ ही मेरा? काफिरों के खून के साथ मेरा खून मिलाते हो, वाह काज़ी साहिब।

लो अब सुनो–गुलाब सिंह के साथ मैंने बहुत सिर खपाया।

हाकिम–सिर तेरा खा जाये चील, मरदूद। हाल बता कि सिक्ख किस तरह आ पड़े? कहाँ हैं? हम अपनी फौज तक पहुँच सकते हैं कि नहीं? पल पल जा रही है, क्या पता?

मौलवी–आप अब कहीं नहीं पहुँच सकते, आपके सिपाही कितने हैं? सारे पच्चीस, शस्त्रागार की चाबियाँ सिक्खों के पास हैं और बेहथियार हैं आपके सिपाही। सिक्ख आये हैं बिजली की तरह, असावधान पड़े पड़े ही पकड़ लिए उन्होंने आपके जो थे।

हाकिम–कितने मरे हैं हमारे?

मौलवी–एक बूँद नहीं गिरी रक्त की।

हाकिम–सच बता।

मौलवी–सच, रक्त की एक बूँद नहीं गिरी। एक थप्पड़ नहीं पड़ा किसी को, मुझे एक झिड़की पड़ी है, मैं कुछ लगा था मसख़री करने, परन्तु उस झिड़की से ही मार कुटाई रुक गई, फिर नहीं मैं बोला। बहुत भला बनकर, कान पर हाथ रख, सिर झुकाकर सुनता सुनता चेला हो गया हूँ, सुना आपने?

काज़ी–मसखरे। हर बात की हद्द होती है।

हाकिम–कसमें। मैं अब तंग पड़ गया हूँ।

मुसाहिब–पता नहीं है क्या कि शहंशाह ने मसखरे, संगीत में प्रवीण, नर्तक, गवैये सब दरबार में से निकाल दिये हैं। आप भी डरो।

मौलवी–मैं व्यवसाय का मसख़रा नहीं मैं दीनदार, गुनाह से बचने वाला परहेज़गार मौलवी हूँ।

मुसाहिब–फिर मसखरी क्यों? वक्त की नज़ाकत भी नहीं पहचानते?

मौलवी–रहा नहीं जाता और नाजुक वक्त आपसे अच्छा पहचानता हूँ, निभा आया हूँ, तभी आराम से बैठे हो, नहीं तो अब तक सभी मुर्गे की तरह आप कानों पर हाथ रखकर पड़े बांगें देते–सत श्री अकाल। जी भूल गये, जी। (कानों पर हाथ रखकर)।

हाकिम मौलवी की आदत को जानता था, ठिठक कर बोला–'फिर कुछ बता भी? अगर समय की नज़ाकत सह आया है तो हमारे साथ तो नज़ाकतें मत कर।'

मौलवी–जी हुज़ूर! लो सुनो–

हाकिम–जल्दी।

मौलवी–मैं तो सारी सुनाऊँगा, जल्दी बेस्वाद है।

हाकिम–अच्छा, मार टक्करें, जैसे तेरा जी करे।

मौलवी–अच्छा, मैं संक्षेप में बयान करता हूँ–"मैंने गुलाबू के साथ अपनी सारी कला प्रयुक्त की। संकोच को खत्म किया और हँसी हँसी में जैसे कि मैंने कई परियाँ शीशे में उतारीं और कई जिन्न गुलाबदानों में डाले, यहाँ भी वैसे ही शक्ति लगायी, परन्तु खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि आज मैंने हार मानी, मेरी संजीदा बात का सलीके से जवाब, मेरे डर धमकाने का बेख़ौफ जवाब, मेरी मज़ाकिया युक्ति का युक्ति के साथ मुँह तोड़ जवाब, किसी बात में नहीं हारा वह ईश्वर का बंदा। बस कमाल ...... ।

नाज़िम–किस्सा छोटा कर, सिक्खों के हमले की बात बता?

मौलवी–लो हुज़ूर। बस, जनाब अल्लाह आपका भला करे। मैं कहाँ था? आपने बात काट दी थी, हाँ, सच में याद कराओ न, मैं कहाँ था, बस हुज़ूर फिर ...... ।

हाकिम–बहुत नटखट हैं, (तलवार की मूठ पर हाथ रखकर) बकता है कि नहीं?

मौलवी–(चौंकती शक्ल बनाकर)–जी जनाब। वो नहीं माना। फिर मैं सुनाऊँ उसकी बातचीत के फलसफे* जो उसने आख़िरी जवाब में कहे थे कि आगे चल पड़ूँ?

---

* फलसफा – दर्शन

नाज़िम (तलवार आधी म्यान में से निकालकर)—फलसफा रख घर में, सिंक्खों की कह।

मौलवी—जनाब! मैं भूल भूल जाता हूँ तलवार म्यान में करो न, मुझे डर लगता है और अटक-अटक जाता हूँ, जल्दी जल्दी सुनो, अब तो सिक्ख कहीं यहाँ न आ जायें।

मुसाहिब—न हिंजार! तू भांड है, मौलवी किसने बनाया तुझे? बकता आप नहीं जल्दी-जल्दी सुनो, सुनो क्या इसके कान।

मौलवी—हाँ जी, मेरी बातचीत का सिलसिला .... हाँ, आ गया याद, बस हुज़ूर! मैंने आखिरी मौत का हुक्म सुनाया; किस संजीदगी से, किस सादगी से, किस श्रद्धा से, किन योग्य शब्दों में उसने मंजूर किया, मैं झुक गया। मैं कहूँ मेरे अल्लाह! लानत इस पेट ज़ालिम के, काश! यह मेरी जगह हो और मैं इसकी। यह ईमान के, न न, मैं भूल गया, ये कुफ्र के, हाँ हाँ, ये होश के ख्याल मेरे दिमाग में से फानूस की तस्वीरों की परछाईं की तरह गुज़र ही रहे थे कि सीढ़ियों के ऊपर से प्रभावशाली आवाज़े आईं। मैंने देखा तो एक मिशालची नीचे उतर रहा था बहुत तेज मिशाल, हुज़ूर ऐसा नूर कि जैसा कभी जनाब का होता है (सारे विवश हँस पड़े)। बस जनाब वह आ खड़ा हुआ, सिक्ख का चेहरा चमक उठा। बाद में एक सनद्धबद्ध, न सच में, मुसल्ला सिक्ख आ गया, देवकद, फरिश्ता सूरत, दिल काँपे, परन्तु चाहे काँपता चरणों में जा पडूँ। मैं चौंक गया, मैं पोस्ती की तरह थर्रा उठा, हाय री माँ! और, और आ गया। मैंने देखा नेत्र झुक गये। एक और, एक और लो उस तहखाने में चार हो गये और ऊपर तहखाने के मुँह के आगे दिखाई दें दो, एक के हाथ नंगी तलवार और एक के भरी बंदूक।

हाकिम—किस्सा संक्षिप्त कर, अंत पर पहुँच जल्दी।

मौलवी—जी हुज़ूर! बात में टोक देते हो तो मेरे ख्याल की तार टूट जाती है। ख्याल का सिलसिला गुम हो जाता है, फिर से खोजने में समय लगता है।

हाकिम—मार टक्करें।

मौलवी—जी सचमुच टक्कर लग ही गयी, उन चारों में से एक के कदमों से। मुझे क्या पता था कि मेरा काफिर सिर किसको पड़ा छू रहा है? परन्तु कसम है खुदा पाक की विवश मेरा सिर कदमों से छू गया और वह था जी आप ..... आप ....।

हाकिम (उतावला होकर)—कौन?

मौलवी—जी आप, अल्लाह वाला, नबी रसूल, सिक्खों का गुरू, जी गुरू गोबिन्द सिंह आप।

हाकिम (घबरा कर)—आप? तहखाने में! सुनार, एक गरीब कंगाल की रिहाई के लिए गंदे कैदखाने में? आप! अल्लाह! नहीं नहीं, इतने बड़े आदमी का इतना नीचे उतरना, मैं नहीं मानता, तूने मसखरेपन में अपना विश्वास भी खो लिया है।

मौलवी—हाँ हुज़ूर! अभी फिर विश्वास कायम हो जायेगा।

काज़ी—अगर सच है तो तू काफिर है, मुशरिक* है।

---

* शिरक करने वाला अर्थात करतार की समानता किसी और को देने वाला।

मौलवी–परन्तु आप सब मोमिनों की जान बचाने वाला हूँ।

पर खैर, दुनियां में मुझ जैसे मुँह फटों की कद्र कहाँ? पहले दिन ही कहा था, मजौरों* के पीछे मत लगो, सिक्खों को न छेड़ो, परन्तु किसी ने न माना ......। अब फिर बेइतबा ....।

हाकिम–ओ खत्म भी कर बात, किस्से खोलने लगा है ......!

मौलवी–जी बस, सिक्ख ने–हाँ उस गुलाब सिंह ने पहचान लिया पैरों पर गिरा चरण चूमे। किसी कभी न देखे प्यार से मेरा जी भी उछल पड़ा, ऐसे कभी भाग्यों वाले अरबी मदीने शरीफ में हज़रत के पैर चूमते होंगे, हाय, हमें किस तरह का दीन अब पल्ले पड़ाहै? सूखा, खुश्क। बस ख़ैर! जी सिक्ख तो फिर उनकी पवित्र टाँग के साथ लिपट गया और एक तनी तलवार वाला मेरे सिर पर खड़ा हो गया। मैंने कहा जनाब! मैं शस्त्रहीन हूँ और ओहदेदार नहीं। गुलाब सिंह का मित्र हूँ, समझाने आया था, हाँ, मैं दुनियादार, मेरा समझाना भी ऐसा ही था। फिर सिक्ख ज़ी, वही गुलाब सिंह उठ खड़ा हुआ, अल्लाह के नूर ने उसको छाती के साथ लगाया। क्यों कभी किसी पिता ने पुत्र को इतने प्यार के साथ छाती के साथ लगाया होगा। मेरा मन करे काश! मैं सिक्ख होता, काश! मैं कैदी होता, काश! इस प्यार से धड़कती छाती के साथ मेरा सिर लगता, हँसी नहीं है ये ....। हाँ दिखाओ आँखें, आपने देखा नहीं न, देखते तो परवाने की तरह सारी होश के पंख जलवा लेते। प्यार कोई कहर की वस्तु है। सच।

हाकिम–जल्दी कर जल्दी।

मौलवी–हाँ सच में सिख, फिर जब अलग हुआ तो मेरी सिफारिश की कि यह ख़रा (शुद्ध, सही) आदमी है, नमक खाने के कारण मुझे बुरी सीख देता था, परन्तु यह मालिकों को भी मुझ पर जुल्म करने से रोकता रहा है। तब उस नूरी हस्ती ने अपने तीर की नोक मेरे सिर पर लगायी। मैं सच कहता हूँ, मुझ काफिर, मुझ मनकर, मुझ नास्तिक के अंदर भी झनझनाहट हुई, झरन झरन हो गया बदन, कदमों पर मैं अब गिरा, जो मैंने पहले कहा था और आप उतावले हुए थे। कसम है अल्लाह पाक की–एक है अल्लाह और एक ही है उसका रसूल। न अल्लाह दो हैं, न नबी दो हैं। क्यों अकड़ अकड़ कर देखते हो? आप नहीं मुवाहद, मैं मुवाहद हूँ, जो अल्लाह को भी एक और रसूल को भी एक मानता हूँ। बस एक ही अल्लाह है जो भेजता है एक ही रसूल हर ज़माने हर देश, नाम, वेश, काम अलग-अलग। रसूल वही एक। कभी एक ज़माने दो रसूल आये हैं। अब देखो फिर वही रसूल आया है। सच, भई गुस्से में दाँत कटकटाओ, मैं मोमिन हूँ, रसूल को पहचानता हूँ, आप नहीं पहचानते, ..., न सही, झगड़ा, किस बात का।

हाकिम (खीझ भरी हँसी के साथ)–तू जैतून की लकड़ी है, टूटेगा परन्तु झुकेगा नहीं, चल जा अपने रास्ते। नहीं आयेगी (तलवार दिखाकर)।

मौलवी–बस जी, कदम क्या हुए, सिर में झनझनाहट पड़कर नशा आ गया, मैंने कहा: यह स्वाद इलाही है। मैंने कहा–आज भई पीरा तेरी नमाज़ पढ़ी। वह नमाज़ पढ़ी तो

---

* नज़दीकी, मकबरे का पुजारी।

रोज़, परन्तु डरते हुए लोगों से आज पढ़ी खुशी की, शुक्र है कोई देख नहीं रहा इस समय, मैंने पढ़ी तेरी नमाज़। सच जानो मैंने वह हज़ (स्वाद) देखा, जो ज़रूर अल्लाह का था। मैं कसम खाता हूँ कि अल्लाह है, अल्लाह है, अल्लाह है, उसका नबी है, है, है।

काज़ी–तेरी कतरनी (जिह्वा) बस भी करेगी?

मौलवी–बस जी! फिर मैंने हिफाजत माँगी, मैंने कहाः हमारे हाकिम का दोष नहीं, यह पूजा खाने हम मौलवी, मुजावर, मुफ्ती, काज़ी सभी जिम्मेदार हैं, आप हिफाजत दो मुझे, मेरे मालिक को, सारे नगर को। वे सुनकर बोले, सच में मैं भूल गया, हाँ ..... (अब सभी बड़े, चुपचाप ध्यान के साथ सुन रहे थे) हाँ जी। पहले इससे गुरू साहिब सारा हाल सिक्ख द्वारा सुन चुके थे। इसलिए जी, मेरी प्रार्थना सुनकर कहने लगेः हम अपने सिक्ख को लेने आये हैं, आपको मारने नहीं आये, परन्तु हमने नबी खाँ को सुबुद्धि देनी है, वह कहाँ है? लो हुज़ुर मुझे पता तो था, परन्तु मैंने दिल में कहा, हूँ तो मैं मसखरा, परन्तु आज मैं भी सल्तनत की सियासत की चाल इस्तेमाल करूँ, मैंने कहा: यहाँ ही है, हुज़ूर की खिदमत (सेवा) सौभाग्य में ले आऊँगा उनको। आप अल्लाह के रसूल हो, फकीर हो और वे आप की सीख सुनेंगे, पालन करेंगे। लो जी फिर हम तहखाने से बाहर आये। ...... हाँ सच में मैं भूल गया, जिस समय सिख उठा तो आ हज़रज ने सिर छाती के साथ लगाकर प्यार दिया था। न सच, यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ। मैंने उस समय उनके नेत्र देखे, एकदम माँ लग रहे थे, बच्चे को गले के साथ लगाकर सारे ही प्यार में पिघले हुए। हाँ, वह दर्शन, वह दीदार, मैंने कहा इबादतगाहों से यह कैदखाना अच्छा।

काज़ी–कहीं किसी परिणाम पर भी पहुँच।

मौलवी–जी लो परिणाम भी लो, नाड़* भी लो, सारी गेहूँ आपके घर।

तो अल्लाह आपका भला करे, जब बाहर आये तो मैंने कहा: हुज़ूर! आपकी फौज कितनी है? हुक्म करो जो दाने चारे का इंतजाम करवाऊँ? कहने लगे: मेरे साथ अल्लाह है। मैंने ऊपर देखा तो नीला आकाश, परन्तु बीच में एक दूर खड़ी फौज की बँधी पंक्ति का मुझे धुँधला रूप दिखाई दे, मैंने कहा: वाह फौजों वाले अल्लाह!!

काज़ी–खत्म भी हो कहीं कि काफिरों के साथ मिलकर मरवाना है।

मौलवी–मोमिनों के साथ मिलकर काफिरों को?

लो जी, फिर मैंने कहा, आप चलो जहाँ डेरा है। फरमाने लगे! डेरा सिरसे है, मैंने कहा फिर पधारिये, सिख अपना ले जाइये, हम पर रहमत रहे। तब मुसकराये आंहज़रत और फरमाया, खोलकर अपने सीपी जैसे चमकते और लालों जैसे लाल ओंठ जिनमें से दिखाई पड़े चन्द्रमा जैसे सफेद दाँत और फिर बिखरे कीमती मोती ये शब्द:- कि हमने नबी खाँ को मिलना है। मैंने कोशिश की कि आपको इतने कीमती दर्शन न हों, कहीं खुदगर्जों की चाँदी कलई बन जाये, पर उन्होंने पेश नहीं जाने दी, कहें ज़रूर मिलना है, फिर मैंने कहा कि जनाब तकलीफ न करो, वे आप जनाब की खिदमत में हाज़िर हो जायेंगे।

---

* गेहूँ अथवा जौ की जड़ का वह भाग जो फ़सल काटने के बाद खेत में खड़ा रह जाता है।

हाकिम–मुझे फँसा आया है? 'ना पाय रफतन, ना जाए मांदन*' परन्तु यह बता कि शहर का पहरेदार कहाँ था? फौज को क्या मौत पड़ी?

मौलवी–जो घर से मरना मारना तयकर के चलते हैं वे बेपरवाह और सुख रहने (आराम पसन्द) पहरेदारों का नियंत्रण पहले करते हैं। पहले वे पहुँचे बिजली की तेजी के साथ, पहुँचते ही दरवाज़े के पहरेदार की कस ली मुश्कें+, फिर गये शस्त्रागार में, पहरेदार वहाँ दो थे, बाँध लिये आँख फड़कने की फुर्ती के साथ दोनों और शस्त्रागार को ताला लगाया और आपके प्यादे कोई कहीं, कोई कहीं, जहाँ थे वहीं रह गये। शस्त्रहीन तो थे सारे, फिर थे कितने और कैसे? और वह तो एक एक जवान पीपल के वृक्ष जितना है। बस जी, फिर उन्होंने तहखाना ढूँढ लिया। एक सिक्ख जासूस साथ में था। सच में मैं भूल गया, घर से चले थे छः, एक आं हज़रत और पाँच अन्य तथा कोई उनके पहुँचते ही दस बारह और पहुँच गये, बाद में अब तक पता नहीं कितने हो गये होंगे।

काज़ी–अब फिर खत्म कर बात।

मौलवी–बस खत्म हो गयी।

हाकिम–कैसे?

मौलवी–बस वे दरवाजे से बाहर चबूतरे पर बैठे हैं, आपका इंतजार कर रहे हैं। अगर आप चलो तो वाह वाह, नहीं तो वे आ जायेंगे। फिर खैर है कि नहीं? मुझे पता नहीं।

काज़ी–आप जाने में हानि है।

मौलवी–देख लो! मैं तो मसख़रा हूँ वैसे भी कदमों के साथ लग आया हूँ, मेरी जगह तो शायद अब गुलाब सिंह की जगह तहखाने में होगी, आप मोमिनों से यही आस हो सकती है परन्तु मैंने स्पष्ट और सच्ची बात कहनी है, सुन लोः- वह मामूली इंसान नहीं, बहुत बरकत वाली हस्ती है, आप चलना राजनीतिक दृष्टि से भी अच्छा है, अपना रहस्य गुप्त रहेगा, घर आये का आदर हो जायेगा, गलती हमारी है ही। वे एक कौम के पीर हैं, पीर सब के सांझे होते हैं, शुभ ज्ञान सबसे लेना अक्लमंदी है, बात जल्दी खत्म हो जायेगी, और अधिक नहीं बढ़ेगी। आगे मैं उनको बता आया हूँ कि हमारे हाकिम का कसूर नहीं, उसको किसी ने सिखा पढ़ाकर ग़लती करवायी है।

काज़ी–हाकिम की ग़लती मान आया है बेग़ैरत!

मौलवी–ग़ैरत बँटते समय मैं ग़ैरहाज़िर था और काम सँवारने की अक्ल के समय आप सब सोये पड़े थे और मैं जागता था। चलो मैं अपनी नमक हलाली कर आया हूँ आगे जो आपको ग़ैरत वाले लोगों को अच्छा लगे करो।

हाकिम–व्याकुल हो गया है? मरदूद! हमने किस धैर्य के साथ तेरे किस्से सुने हैं?

मौलवी–जनाब की बुज़ुर्गी है, मैं जल्दी में (व्याकुल) नहीं, मैं कहता हूँ कि उस समय मैं अकेला था, अब सभी हैं, मैं इतनी अक्ल तो कर ही आया हूँ कि आपको सोचने का वक्त मिले और कुछ हुआ है या नहीं? आप जानो, अब सोच लो, जो ठीक हो करो।

---

* न आदमी जा सके न रुक सके।

+ पीठ पीछे हाथ जकड़ने की क्रिया।

काज़ी–राज्य औरंगज़ेब का है, यह गुरू सरहिन्द के नवाब से हार खाकर आया है, क्या करेगा हमारा? हमारी ताकत काबुल से कर्नाटक तक है।

मौलवी–ठीक है जब तक ताकत दिल्ली से आयेगी तब तक आप कब्रों में आराम फ़रमा रहे होगे, और जिसको हारा हुआ कहते हो वह खिदराणे की ढाब पर पाँच हज़ार के मुँह तोड़ कर आया है, वज़ीर खाँ सरहिन्दी की होश ठिकाने कर आया है। फिर निहत्था, निर्भय घूम रहा है। हाँ, सच में शहंशाह की ओर से भी परवाना ज़ारी हो गया है कि उनको कोई कुछ न कहे, परन्तु भई आप समझदार हो फिर भी सोच लो।

मसखरे की यह बात पसन्द आ गयी, दिल में धँस गई।

नाज़िम–फिर कैसे करें?

मसखरा–घर आये मेहमान समझकर कुछ आदर का सामान मिठाई फल आदि पहले भेज दो, बाद में जाकर चरण चूमो, एक फकीर की हैसियत से उसका आदर करो।

काज़ी–जाना अपमान है, वे आ जायें।

मसख़रा–उनका आना आपका अपमान है वे आयेंगे तो हैसियत होगी, फातहि का मफतूर की गोशमाली करने आना (जीते हुए बहादुर का हारे हुए को सजा देना)।

काज़ी–और वहाँ जाने पर उन्होंने सज़ा देनी है, ज़रूर।

मसख़रा–वहाँ तो सज़ा लेने जाना है बहैसियत एक शरीफ इंसान के, पास एक वली के।

मुसाहिब–मौलवी साहिब की राय सलामत रहने वाली है।

दूसरा–ठीक है।

मसद्दी–चलना ठीक है, हम हमरकाब (सवारी के घोड़े पर) जायेंगे।

इस तरह के विरोध और झगड़े के बाद सारे पीछे के रास्ते से हाकिम के घर पहुँचे, वहाँ से कुछ नज़राना (भेंट) और संदेश मीर मुंशी के हाथ भेजा, फिर सभी तैयार होकर आप पहुँचे। जाकर बहुत आदर के साथ मिले, सतगुरू ज़ी ने हाथ से आदर दिया और फिर वार्तालाप शुरू हुआ–

मौलवी–हुज़ूर अनवर (अत्यधिक नूर वाला) आपके कदमों के बंधन से हम आज लाभान्वित हुए हैं, आप दीन के हादी (गुरू, धर्मउपदेष्टा) हो, सब के सांझे हो, आपको किसी से द्वेष नहीं, हमसे उकसाये जाने पर एक गलती हो गयी जो गुलाब सिंह जी को सिरदर्द (कष्ट) हुआ है, वह आपने अपनी फकीराना मेहर में चित्त से भुला दी होगी, हम सबकी ओर से इस नावाजिब (अनुपयुक्त) होनहार (भवितव्यता) पर इज़हार (बयान) अफसोस है।

इस प्रकार की औपचारिक बातचीत सुनकर सतगुरू जी के गंभीर नेत्र और गंभीर हो गये। ओंठ, जो थोड़े थोड़े दाँतों तले होते थे खुले नहीं बंद रहे। आप सुनते रहे और स्थिर बैठे रहे, फिर जब चुप हुई सिर थोड़ा सा हिलाया और हाथ से प्यार का इशारा कर उठ खड़े हुए। नबी खाँ के कंधे पर हाथ रखकर अपने पीछे आने का इशारा किया। कुछ दूर

चले गए, गुरू साहिब और हाकिम, नज़र से ओझल हो गये। यहाँ नबी खाँ विवश सा पैरों पर गिर पड़ा और सतगुरू जी ने कुछ प्यार के वचन किये जो समा गये उसके अंदर उतर गये हृदय में, होश लौटी राज मद से। 'जनाब, मेहर' दो शब्द बार-बार उसके मुँह से निकलते रहे फिर सतगुरू मुड़े, पीछे-पीछे आया सिर झुकाये किसी रंग में, होश में, याद में नबी खाँ। फिर नहीं वह कभी बोला कोई फालतू बात, अथवा ज़ोर ज़ुल्म जबर्दस्ती की कोई मुहर लग गयी मुँह पर, अंदर कुछ ऐसा घट गया जिसको वही जानता होगा, परन्तु फिर प्रजा उसके समय में सुखी रही।

सतगुरू दाता जी वसंत ऋतु की अमृत समय की (प्रातःकाल की) मीठी-मीठी प्यारी प्यारी वायु की तरह कैद से छुड़ाए सिक्ख को, साथ लेकर सिरसा आ गये। गुलाब सिंह की छिपायी बेटी पिता के गले मिली, बिछुड़ा परिवार फिर मिला, सुख व्याप्त हुआ, ठंडक (शांति) पड़ी।

कहो—धन्य आज़ादियों का दाता साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह।

गीत

दर्शन-जोदड़ी

(राग पहाड़ी, तार ३)

अस्थाई—

इक वेरी फेर दिखाईं, वे दिखाईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
कलग़ी दी झमक दिखाईं वे दिखाईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं!

अंतरा—

१. **अवे आ कलग़ी वालिआ।**
किवें आ कलग़ी वालिआ।
इक वेरी झात पुआईं, वे पुआईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।

२. **पछड़ पछड़ मैं वे आई, वे आई।**
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
इक फेरा फेर तूँ पाईं, तूँ पाईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
अवे आ कलग़ी वालिआ।
किवें आ कलग़ी वालिआ।

इक वेरी झात पुआईं, वे पुआईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
३. सिकदे मैं नैण ठराईं, वे ठराईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
इक वेरी ठंडक पाईं, वे पाईं,
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
अवे आ क़लग़ी वालिआ।
किवें आ कलग़ी वालिआ।
इक वेरीं झात पुआईं, वे पुआईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
४. इक वेर ओ चरन चुमाईं, वे चुमाईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
सुहणे ओ चरन चुमाईं, वे चुमाईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।
अवे आ कलग़ी वालिआ।
किवें आ कलग़ी वालिआ।
इक वेरी झात पुआईं, वे पुआईं
मैं कमली दिआ सुहणिआं।



सूचनाः- भंगाणी युद्ध पीछे (पूर्वार्द्ध में) आ चुका है, पीर बुद्धू शाह का कुछ हाल उसमें था। यह पहले भी पक्का शरई नहीं था, इसलिए इससे हाकिम और शरई बुजुर्ग खीझते थे, जब यह भंगाणी में गुरू की सेवा कर आया तो राज्य कोप अंदर ही अंदर बढ़ गया था। परन्तु इसका प्रताप और सिक्खों का बढ़ता रौब सहायक रहा। जब आनन्दपुर की राजधानी लुट गयी और चमकौर का साका हुआ तो उसमान खाँ हाकिम सढौरा को अपने आप या सरहिन्द से आये संकेत के कारण हिम्मत पड़ गयी बुद्धू शाह को कत्ल कर देने की। यह हाल कुछ आगे आने वाले प्रसंग में विदित हो जायेगा। याद रहे कि संवत् १७६६-६७ में बाबा बंदा ने इस अपराध में सढौरे पर हमला करके उसमान खाँ को मौत का दंड दिया था।

८८ नसीरां या नसीर बेगम*

सच की शमा के परवाने।

१. (एक परिवार न्योछावर)।

अपने महल सढौरे में नसीरां+ उदास बैठी ने लम्बी आह भरकर गया:-

फुल्ल खिड़े फुलवाड़ी सहीओ,
अम्ब शगूफे नाल भरे।
बुलबुल भौरे आन जुड़े हन,
कोइल कू कू कूक करे।
दोवें लाल अक्ख दे तारे,
नज़र न आवण सुंझ पई।
अम्मी जाइआ वीर न दिस्से,
नैणों नीर असार झरे।

सैद खाँ–प्यारी बहन जी! आप विद्वान हो, दीनदार हो, फकीरी ख़ानदान में आदर योग्य हो, ज़रा दिल को ढाँढस दो, जो अल्लाह की मर्जी थी हो गयी, अब सब्र शुक्र से काम लो, इस तरह दिन रात बहने (दुख में) से क्या बनेगा?

नसीरां–मेरे वीर (भाई) जी! मैं बहुत अधिक ज़ोर लगाती और इस न मुड़ने वाले मन को समझाती हूँ, इन जलते आँसुओं को आँखों के पीछे बाँध-बाँधकर बैठाती हूँ, परन्तु कलेजे की तड़प कुछ वश नहीं चलने देती। कलेजे को भी थामती हूँ, कुरान पढ़ती हूँ, हदीसें@ विचारती हूँ, परन्तु 'भाई बिछोह' और 'पुत्रों का दुख' जबर्दस्ती विह्वल कर देता है। हूँ तो मैं बेसब्री, परन्तु भाई! उस कलेजे का क्या हाल हो जिसके एक ही दिन दो आँखों के तारे और एक भाई इस संसार में से गायब हो जायें? शाह साहब भी बहुत ही समझाते हैं, पर भाई जी! पत्ते नुचे वृक्षों के ज़ख्म भी उसी समय नहीं सूख जाते, मैं तो आदमजाति स्त्री हूँ।

सैद खाँ–भोली भाली रानी और अच्छी अच्छी बहन जी! आप सच्चे हो, मेरा अपना आप से बुरा हाल है, मैंने जिस समय काबुल में अज़ीज़ों (प्यारों) की मौत सुनी, मैं विह्वल हो गया था, अब तक मेरे अंदर से ऐसी कसक का गुबार उठता है कि आँखों को चीरकर

---

* यह प्रसंग सं० गु० ना० सा० ४४९ (१९१७ ई०) के गुरुपर्व सप्तमी के समय ट्रैक्ट की शक्ल में 'सुहणिआं दे सुल्तान' नाम अधीन प्रकाशित हुआ था।

+ पीर बुद्धूशाह की स्त्री का नाम।

@ पैगम्बर साहिब से सम्बन्ध रखने वाली बात।

ही निकलता है, परन्तु किया क्या जाये? मौत वह दुख है जिसका दारू नहीं है, यह ऐसी हो चुकी बात है जो कि फिर नहीं बदल सकती। हज़ार वैराग्य करो, सिवाय अपने को जलाने घुलाने के और कुछ नहीं। अंत दिन गुज़ार रो धो थक हार कर कलेजे को कोई न कोई ढकने आ ही जाता है। चाहे विछोह के दाग धोने पर कभी नहीं उतरे, पर गुज़ारा होने ही लग पड़ता है। हाँ, अगर कभी अल्लाह रहम करे, कोई सब्र शुक्र का ख़ज़ाना अपने दर घर से भेज दे तो मन जल्दी सुखी हो जाता है। अल्लाह के प्यार की ओर रुख़ करने पर हौंसला तुरन्त आ जाता है।

नसीरां–तो हे भाई! जिस के पुत्र शेरों जितने जवान, युसूफ जैसे सुन्दर, लहू लुहान हो ख़ाक (धूल) में मिल धूल मिट्टी हो चुके हों और दो और उसी किस्मत के लिए ईद के बकरे की तरह पल रहे हों, उस माँ को कौन सा सब्र आकर हौंसला बँधाये? भाई! दो भेंट दे चुकी, दो और भेंट देने के लिए पाल रही हूँ! काश! मैं नि:संतान होती, मेरी अभागी कोख हरी न होती, न हीरे मृग पालती, न निर्दयता से मरते देखती।

यह कह नसीरां का ज़ोर से रोना फूट पड़ा, रोती रोती बेसुध हो गयी। दासियाँ सेविकाएँ अर्क गुलाब और केवड़े के लिए भागीं। एक ने झोली में डाल लिया, एक जकड़े दाँतों को खोलने लगी, एक शाह साहब की ओर दीवानखाने दौड़ी गयी। बात क्या क्षण मात्र में शाह साहब आ गये, होश आने का यत्न होने लग पड़ा और यत्न सफल हो गया। बीबी (भली स्त्री) को होश लौट आयी परन्तु निढ़ाल अत्यधिक थी।

सैद खाँ अपने आप को रोकता था, पर उससे न रहा गया, रोकते रोकते शाह साहब के साथ बातों में व्यस्त हो गया, कहने लगा "आप बड़े हो और मेरे सब तरह आदर योग्य हो, मेहर करो और एक-दान दो, दूसरे साहिबजादों को मैदाने जंग में मत भेजना। आप फकीर हो, फकीरों को जंग युद्ध से क्या? ये मुल्कगीरियाँ* खुसरवां (पातशाहों) को ही सलामत रहें। आपको अल्लाह ने सुख ही सुख बख्शा है, अल्लाह की याद में सुखी दिन गुज़ारो। तीर, तुफंग, गोले, कूच, खून, मरना-मारना, यह हम सिपाहियों के लिए अल्लाह ने लिख दिया है, सो सिर माथे।

शाह साहब–ख़ान जी! मैं सिपाही नहीं, न मुल्कगीरी की हवस है, न मेरे जंग में शामिल होने का कारण तृष्णा है। मैं तो 'इश्क' और 'उसूल' के नुक्ते से 'शरीके जंग' (जंग में शमिल) हुआ था और अल्लाह मुझे सब्र दे मैं–बड़े भाग्यों वाला हूँ कि मेरे पुत्र मेरे महबूब के काम आये। दो माँस के टुकड़े जिन्होंने महामारी, मारी, घटना, किसी तरह अंत मरना ही था, वह एक अल्लाह की ख़िदमत, दूसरे रसूल की ख़िदमत, तीसरे उसूल परस्ती के लिए कुर्बान (सदके) हो गये। मैं सपूतों वाला हो गया हूँ, नसीरां की कोख हरी हो गई है। रहती दुनिया तक इसकी कुर्बानी पर देवलोक से कृपा बरसेगी।

सैद ख़ान–शाह साहब! मुझे खुद कहते शर्म आती है कि मैं सिपाहगीरी के विरुद्ध कुछ कहूँ। मैं आप सिपाही हूँ, पाँच हज़ारी का दर्ज़ा कई बहादुरियाँ करके प्राप्त कर चुका हूँ, परन्तु पता नहीं हमशीरा+ साहिबा के सदमे ने मुझे क्यों कमज़ोर कर दिया है?

---

* हुकूमत।

\+ सगी बहन, सहोदरा।

बरखुरदारों की और भाई की मौत मैंने काबुल में सुनी थी, सुनते ही ग़म में डूब गया और सख़्त उदास हो गया था, ख्याल था कि मैं वतन आकर कुछ सुखी हो जाऊँगा परन्तु यहाँ आकर और भी दुखी हो गया हूँ। ख़ैर! कुछ है और किसी तरह है, चाहे कमज़ोरी है चाहे मुहब्बत, यह इकरार मैंने आपसे ज़रूर लेना है कि छोटे साहिबज़ादों को आप मैदाने जंग में नहीं भेजोगे।

शाह साहिब–खान साहिब! आप किस भ्रम में हो, मैं किसी को 'शर्बत शहादत' पिला सकता हूँ, यह तो अल्लाह की रहमत है। बड़े बरखुरदार तो आप भाई साहिब और मेरे छोटे भाई साहिब नसीबों वाले थे जो वे वह 'आब-ए-कौसर' पी गये, जिसका ज़िक्र करते हैं कि बहिश्तों में होता है। नहीं नहीं, रसूलों का रसूल आप जगत में आया है और 'आब-ए-कौसर' साथ यहाँ ले आया है और यह 'आब-ए-कौसर' 'शर्बते शहीदी' है, जो उसके फ़रमान में, उसकी खुशी में, जान निसारां (न्योछावर करने वाले), मुहब्बत के बंदों को उसकी नज़र मुहब्बत शिनास (प्यार पहचानने वाली दृष्टि) जाम (प्याले) भर भर कर पिलाती है। मैं भी उस महफिल में गया था, पुत्र और भाई साहिब भाग्यों वाले थे, पी गये, नशई हो गये, जन्नत नसीब हो गये (स्वर्ग पहुँच गये), मैं जीवित वापिस आ गया। मेरा नसीब (भाग्य) सहायक होता, मैं भी वह नशा पी लेता जो तलवार की नोक से पिया जाकर अमर पद पर ले जाता है।

नसीरां–भाई जी! शाह साहिब को न समझाओ, इनके दिल को कष्ट न दो। ये किसी नशे में है, मैं बदनसीब न उस नशे में हूँ, न पहले मर गई कि अपने दुलारों की लहू लुहान लाशों का नज़ारा इन नेत्रों से न देखती। काश! मेरे अल्लाह! (आसमान की ओर देखकर) काश! ऐ मेरे ख़ुदा! ऐ मेरे रसूल! मुझे भी मेरे लालों के पास बुला ले, या हे मेरे अल्लाह! उस नशे की कोई बूँद मुझे भी पिला कि जिसके नशे के कारण विछोड़े (बिछोह) की खंजर, भाइयों और पुत्रों के बिछोह की सांग मेरे शौहर (पति) के दिल पर बेअसर हो रही है। ऐसे कहती नसीरां फिर बेहोश हो गयी।

अब छींटे नहीं मारे गये, शाह साहिब ने बाजू से पकड़कर नेत्र आकाश की ओर करके ज़रा सा दबाया तो कुछ पल बाद नेत्र खुल गये और स्वाभाविक बोली–

(ऊपर देखकर) "मेरे अल्लाह! मेरे अल्लाह! (नीचे देखकर) शाह साहिब! भाई जी! लाल तो जीवित हैं। हाँ जी, मैंने आँखों से देखे हैं, भाई जी! सुनो!

एक ज़मीन मैंने देखी है अभी अभी, सोने की है और बीच में मोती और हीरे लगे हैं। उस पर एक नीले रंग का घोड़ा है जिस पर एक कलग़ीदार 'हुस्न का वजूद' खड़ा है। कलग़ी की हर नोक में एक एक सूरज है, माथे पर जीग़ह* है, जिसमें नगों के स्थान पर छोटे-छोटे चन्द्रमा जटित हैं। गले में जामा (वस्त्र) है, जिस पर आसमान के तारों की गहरी कहकशाँ (आकाश रंगी) की तरह छिड़काव हुआ चमकता है। कंधों के पीछे तीर कमान है, पर वे कोई बिजलियाँ हैं जो आँख की एक-एक चमक में हज़ार हज़ार रोशनियाँ

---

* महाराजा और प्रतापी पुरुषों के सिर का आभूषण। जीग़ह और कलगी राजचिह्न हैं।

मारती हैं। भाई! इस 'हुस्न वजूद' के चेहरे पर ऐसा जमाल* है कि यूसुफ सुना है, मेरी समझ में इनके मुबारक कदमों के तलुए यूसुफ से सुन्दर होंगे। फिर भाई जी! (आँखें बंद कर ली) .... हाँ (नेत्र खोलकर फिर) मेरे भाई जी! इस चेहरे में रौब उठता था चढ़ते सूर्य की तरह, एक जलाल फर्राटे मारता था, मेरे तो नेत्र बंद हो हो जाते थे। भाई जी! यह कौन था? हाँ कौन था? भाई जी! मैं देखकर बेसुध हो चली थी तो क्या देखा कि चेहरे पर प्यार, रस, नम्रता, नरमी, कोमलता आ गयी, आवाज़ बुलबुल की तरह दिल को खींचने वाली हो निकली, नेत्रों से मीठे और रसीले प्यार की बारिश बरस पड़ी, कहने लगे:–

'आओ मेरे शेरो, माँ को मिलो।'

तो भाई जी! मेरे दोनों शेर प्रगट हो गये, और मेरे गले लिपटकर बोले:- 'अम्मीं! हम जीवित हैं, हम स्वर्ग में सुखी और ऊँचे हैं, अम्मीं। अब्बा (पिता) को कहना अल्लाह तुम्हारे ऊपर कृपा करे, यह स्तर, हे अब्बा! (पिता) तुम्हारी कृपा से हमें नसीब हुआ है।' इतने में मेरे देवर और वीर (भाई) जी भी आ गये खुश खुश भाई जी मेरे सिर पर प्यार देकर बोले–'हमशीरा (सहोदरा) साहिबा! हमने जन्नत (स्वर्ग) पाई, आप हमारे सोहिले (आनन्द का गीत) गाने के स्थान पर वैण (दुख के गीत) डाल रहे हो? भाइयों के स्तर ऊँचे हों और बहनें रोयें?'

मेरे भाई जी! फिर उस 'हुस्न वजूद' ने मेरी ओर देखा, मैं विवश हो पैरों पर गिर पड़ी, तीर जो उनके हाथों में था, जो किसी पारस जैसी 'कभी चमक से अचमक न होने वाली' धातु का बना लगता था, मेरे सिर से छुआकर कहा 'तेरी नज़र कबूल।' बेटे दिए, हाँ, तूने हमें भाई, देवर और बेटे दिए, हमने तुझे नाम बख़्शा। और भाई जी! मेरे मुँह से–नहीं रोम रोम से निकला–वाहिगुरू!

फिर मुझे किसी ने कंधे से पकड़कर प्यार दिया और मेरे नेत्र खुल गये। हाँ, आँखों मुँद जाओ। यह दर्शन न हटे, आँखों के आगे से न हटे।" यह कहकर नसीरां ने फिर नेत्र बंद कर लिये। कमरे में एक सन्नाटे का आलम छा गया, चुप हो गयी। सैदख़ान के नेत्र बंद हैं, शाह साहिब चुप हैं, परन्तु पल बाद शाह साहिब के गले को कोई स्वर्ग की तंरब मानो आ लगी, एक इलाही स्वर में गा उठे–

ऐ खुसरवे खूबां नज़रे सूए गदा कुन,
रहम बमन सोखतहए बे सरो पा कुन।
दारद दिले दरवेश तमन्नाए निगाहे
ज़ां चश्मे सयाह मसत बयक ग़मज़हदवाकुन।
गर लाफ़ जनद्द माह कि मानद बजमालत,
बिनुमाए रुख़े खेशो माह अंगुशत नुमा कुन।'
ऐ सखेचमन! अज़ चमनो बाग़े ज़माने बख़ाम,
दरीं बज़मो दो सद जामा क़बा कुन।

---

* तेज।

शमा ओ गुलो परवाना ओ बुलबुल हम जमांअंद
ऐ दोस्त बिआ रहम ब तनहाईए मा कुन।
बा दिलशुदगां ज़ोरो जफा ता बकै आख़र,
आहंगे वफ़ा त के जफ़ा बहरे ख़ुदा कुन।
मशुनौ सुखने दुशमने बदगोये ख़ुदा रा,
बहाफ़ज़े मिसकीं ख़ुद ऐ दोस्त वफ़ा कुन।

अर्थात:-

सुहणिआं दे सुलतान शाह जी!
नज़र फकीरां वल्ल करो।
कंगलिआं दिल सड़िआं उत्ते,
रहमत अपणी नाल ढरो।
इस दरवेश निमाणे दा दिल
तरसे नदर तुहाडी नूँ,
काली मस्त अक्ख तों अपणी
दिओ मटक्का पीड़ हरो।
जेकर चंद गप्प इह मारे
'तेरे जेहा सुहणा मैं'
रुख़ दिखला के उसनूँ अपणा
शोभा उस दी सगल हरो।
तूँ हैं सरू चाल जिस सुहणी,
बागों इस दम आप टुरो,
दो सौ पड़दे पाड़ 'चंद जी!'
मजलस साडी आन वड़ो।
शमा, गुलाब, पतंगे, बुलबुल,
सारे एथे आन जुड़े,
आ हुण बेली! पास इकल्लिआं,
इकल्ल साडी ते रहम करो।
दिल दे चकिआं पर की धक्का
कद तक मिलन जुदाईआँ जी?
रब्ब वास्ते मार जुदाईआँ,
समां विरद दा, पाल वरो।
दूती दुश्मन दी हुण लूती
रब्ब वास्ते सुणनी नां,

' अपनाये कंगले 'हाफज़' नूँ
लड़ लाओ, लज पाल धरो।

इस तरह कहते, गाते शाह साहिब जी चुप हो गये। सामने नसीरां उसी ध्यान को सुरत का आलिंगन किये मग्न बैठी थी और दायीं ओर सैद खाँ जी शाह साहिब की राग ध्वनि में मस्त हो रहे श्री वृक्ष की तरह झूमते झूमते मग्न हो गए।

: २ :

ये शाह साहिब बुद्धूशाह* फकीर हैं जो जागीरदार, पदार्थों के स्वामी भी हैं और चेले भी अनगिनत रखते हैं और राज दरबार में सभी द्वारा आदर सत्कार और प्यार भी प्राप्त करते हैं। नसीरां आपकी घरवाली (पत्नी) है और सैद खान जी नसीरां के भाई लगते हैं। बुद्धूशाह अपने समय के भारी पीर थे, तपी भी थे, परन्तु किसी रसावेश के आपको ज़रूरतमंद समझते थे। श्री कलग़ीधर जी का यश सुनकर पांवटा साहिब दर्शनों के लिए गये, दर्शन किये, किये क्या? दर्शन हुए। दर्शन होते ही आप दर्शन समा गये, कवि संतोख सिंह जी उस मिलन को ऐसे बताते हैं–

'ऐसी मिलनी अबि मिल गइओ।
ले दरशन कउ मन दे दइओ।
अस बिवहार बिना मुख बोले।
होइ चुकयो तूरन बिन तोले।।'

इस तरह गुरु चरण कमलों का भँवरा बनकर बुद्धूशाह ने जीवन-कण प्राप्त किया+, गुरू आदर्श से ज्ञान पाया, फिर सढौरे अपने नगर आकर साईं सिमरन में सुखी दिन बिताने लगा। एक बार बुद्धू शाह ने पाँच सौ पठानों का एक दल सतगुरू जी की फौज़ में नौकर रखवाया था। कुछ देर बाद भंगाणी का युद्ध छिड़ गया (होने लगा), इस युद्ध में वे पठान शत्रु दल के साथ जा मिले। बुद्धूशाह को सुनकर बहुत खेद हुआ, इसलिए वह सात सौ चेलों, अपने दो पुत्र, एक भाई और नसीरां के प्यारे एक भाई जी को साथ लेकर आप पहुँचे और सतगुरू जी की अधीनता में खूब लड़े। इसी युद्ध में आपके दो ल़ायक सुन्दर जवान पुत्र और एक भाई शहीद हो गये, नसीरां का भाई भी शहीद हुआ, जीत सतगुरू अटल स्थिर प्रतापी गुरू कलग़ी वालों की हुई। बुद्धूशाह पर सतगुरू की अत्यधिक मेहर हुई, अलौकिक खुशियों के साथ एक पोशाक सिरोपा, आधी अपनी दस्तार (पगड़ी), कंघा, एक कटार भेंट किये। चेलों को पाँच हज़ार की मिठाई प्रशाद मिला। ये भेंटें लेकर और सतगुरू जी की फकीरी का असली रूप देखकर और सिक्खी का व्यवहार सीख कर शाह जी अपने गाँव सुखी वापिस आये।

---

* इनका असली नाम था, सैयद शाह बदरुद्दीन। सढौरा जो अम्बाले के ज़िले में है आपका निवास स्थान था।

\+ देखें पीछे भंगाणी युद्ध।

परन्तु माँ की ममता कहर की कोमल वस्तु है, जिसने नसीरां जैसी पति की प्यारी और विद्वान स्त्री को भी पुत्र वियोग और भाई वियोग में घायल कर दिया है, ढाँढस देती ओर भाणा* मानने का यत्न करती है। पीर जी भी कई बार समझा चुके हैं परन्तु ऐसे ऐसे बहाने वाले विरह दुख में बहती है कि मरने वाली होकर बचती है। आज नसीरां के भाई सैद खाँ–जो काबुल किसी सरकारी काम गये हुए थे–वापिस आये हैं, आप पाँच हज़ारी हैं, भारी ओहदेदार और बहादुर हैं, परन्तु दिल बहुत मीठा और प्यार वाला रखते हैं। परमेश्वर के भय वाले भी हैं, बंदगी का शौक भी है, परन्तु बंदगी का प्यार और रस नहीं पड़ा। आज इस बहन बहनोई को बुलाने आये इस रंग में डूबे हैं? पीर जी का कीर्तन और बहन जी के देखे दर्शन ने बींध दिया है। कुछ देर तो मग्न टिके रहे, फिर उठे तो कुछ-बौराने से दिखते थे। पीर जी ने भी यह हालत देखी।

नसीरां अब सुखी हो रही थी, उठती, बैठती, चलती, घूमती 'वाहिगुरू' 'वाहिगुरू' करती दिखाई देती थी और शुक्र शुक्र के मोती भी कभी कभी नेत्रों में भर लाती थी। पीर जी प्रसन्न थे कि आखिर दिल की महरम को भी सतगुरू जी ने ईश्वरीय दात बख्श दी है और कितनी दूर से उसकी आत्मा में नाम का प्रवाह चला दिया है परन्तु अब पीर जी को सैद खाँ जी का फिक्र हो रहा था।

उसी दिन संध्या समय एक बाग के बीच बारादरी में पीर जी अकेले बैठे थे कि सैद खाँ जी आ गये, प्यार सहित आप जी ने सैद खाँ को पास बिठाया तो वार्तालाप होने लगी–

सैद ख़ान–शाह साहिब! यह आज सुबह क्या इलाही माजरा (वृत्तान्त) था?

पीर जी–कुछ नहीं, केवल मेरे प्रीतम जी का एक बाँये हाथ का करतब!

सैद ख़ान–यह हमशीरा साहिबा का प्रताप वाला सपना केवल ख्वाब ही नहीं था? कुछ वास्तविकता भी थी?

पीर–सारी वास्तविकता भी।

सैद ख़ान–क्या जो कुछ उसने देखा सारा सच था?

पीर–जी हाँ, यही है न जिसको इबरानी पैग़म्बर कहते थे कि 'रोया' उतरा और सूफी कहते हैं कि फकीर ने हज़ारों कोस से अपने कृपापात्र पर 'हलूल'+ किया है। तात्पर्य यह है कि सतगुरू समर्थ है, मेरे सिर पर उस समर्थ ने हाथ रखा, उसकी महा पवित्र सेवा में मेरे पुत्र शहीदी का सम्मान पा गये अब अन्तर्यामी जानता है कि मेरे दिल को उसके प्यार का मीठा नशा है, परन्तु मेरी स्त्री अछूती है और इसीलिए उस दुख को सह नहीं रही, इसलिए दाते महाबली ने आज मेहर करके उसकी आत्मा में नाम का कण डाल दिया है और उसके पुत्र जीवित दिखाकर ठंडक डाल दी है तथा अपने दर्शनों से निहाल कर दिया है, आप प्रत्यक्ष प्रभाव देख लो, कि उस समय से बराबर ज़िक्र कर (नाम जप) रही है, और प्रसन्न मुख घूम रही है।

---

* ईश्वर की मर्जी।

\+ पैठना, दाखिल होना।

सैद ख़ान—मैं ऐसे नहीं था समझता। शाह साहिब! क्या सचमुच गुरू गोबिन्द सिंह ऐसे 'साहिब कशफ' हैं?

पीर—जी हाँ, इससे बहुत अधिक।

सैद खाँ—लोगों में आपकी बदनामी होती है कि आपने ख़ानदानी फकीर होकर हिन्दू मुरशिद किया है?

बुद्धू शाह—परवाह नहीं, मैं तो सच की शमा का परवाना हूँ, सच वहाँ है, वह सच है। मैं उसके प्रेम में हूँ, वह जीवन है, मेरा जीवन आधार है। बदनामी को मैं क्या करूँ? जगत सदा बदनामियाँ करता है। कमज़ोर है वह जो बदनामियों से डरता है। बदनामी निशानी है बड़े होने की, बदनामी बदख्वाहों के दिलों की मैल है, जो ऐसे रोशन करती है हमें, जैसे काली बदलियाँ अपने घेरे में चन्द्रमा का जलवा सौ गुना बढ़ा देती हैं। खाँ साहिब परवाह न करो। लोगों का समय नहीं बीतता बातों के बिना, दिल अच्छा नहीं कि अच्छी बातें करें। लोग बातें करते हैं बुरी, निंदा की। निंदा जगत का आधार है, जिसके सहारे दिन काटते हैं, इस पर अपने जीवन का आधार नहीं रखते, जीवन का आधार एक सच है।

खाँ साहिब—बहुत खूब! परन्तु बेअदबी माफ, नाराज़ न हो तो एक प्रार्थना करूँ?

पीर जी—हुक्म करो, नाराज़गी? भला आपके साथ?

खाँ साहिब—अगर गुरू गोबिन्द सिंह जी ऐसे बुजुर्ग हैं तो जंग युद्ध क्यों शुरू हैं?

पीर जी—जंग कैसे? वहाँ तो वाहदत का दरिया* ठाठें मार रहा है, इश्क की बाढ़ें भर यौवन पर हैं, याद इलाही के तूफान चढ़ रहे हैं। न वहाँ शासन की तृष्णा है, न हुकूमत की हवस है, एक अल्लाह के इश्क का समुद्र लहरें ले रहा है।

खाँ साहिब—परन्तु आख़िर आपका जंग में शमिल होना, साहिबजादों का शर्बत शहीदी पीना, यह जंग नहीं तो क्या है?

पीर जी—आप बताओ आसाम से अफगानिस्तान तक और काश्मीर से दक्षिण तक कोई व्यक्ति है जो इस समय सपने में ख्याल कर सकता हो कि मुगल सल्तनत कभी तबाह हो सकती है?

सैद ख़ान—ऐसा ख्याल करना पागलपन ख्याल किया जायेगा।

पीर जी—और अगर कोई औरंगज़ेब के साथ लड़ना चाहे तो वह कोई पातशाह हो, किलेकोट फौज़ों लश्करों पदार्थों वाला हो, कि एक कोने बैठा फकीर! जो कहता है कि मुगलिया सल्तनत की ईंट से ईंट बजा देनी है, हाँ फकीर और हाथों हाथ भी, औरंगज़ेब जैसे पातशाह के साथ हाथ बाँटने को तैयार हो, कभी वह जंग युद्ध और शासन की हवस वाला हो सकता है?

सैद ख़ान—फिर है क्या?

पीर जी—उसूल परस्ती (नियम पालन)।

सैद ख़ान—किस तरह? हाँ, वह किस तरह?

---

* वाहिगुरू की एकता के अनुभव का दरिया।

पीर जी–वह इस तरह कि बाबर ने जब पंजाब जीता तो सैदपुर में सख़्त कत्लआम शुरू किया। अल्लाह का नूर गुरू नानक तब पंजाब की धरती को चार चाँद लगा रहा था, वह निधड़क बाबर के सामने जा चमका और 'रौबशाही' पर 'रौब इलाही' ऐसा डाला कि पातशाह को उनके हुक्म अनुसार कत्लआम बंद करनी पड़ी। उस समय बाबर ने गुरू जी से ख़ैर की दुआ माँगी, तो सतगुरू ने कहा "हे बाबर! शराब बंद कर और अगर पठानों पर जीत प्राप्त कर जुल्म से हाथ संकुचित रखेगा, प्रजा के धर्म में ज़ोर जबर्दस्ती नहीं करेगा, समता रखेगा, हिन्दुस्तान का वतन बनायेगा तो राज करेगा, परन्तु जब इंसाफ छोड़ा, पठानों की तरह दीन में दख़ल दिया, तभी समाप्ति समझ लेना।" अब औरंगज़ेब ने दीन में ज्यादती शुरू की है, काश्मीर तथा और जगह से दुखी लोग उनके 'सज्जादा नशीन' गुरू तेग़ बहादुर जी पास पहुँचे। चुनाँचे आपने औरंगज़ेब को पत्र लिखा कि पातशाह के लिए उचित नहीं है कि प्रजा के धर्म में जोर जबर्दस्ती का व्यवहार करे, तू इस बात से रुक जा परन्तु औरंगज़ेब ने मानने की जगह गुस्सा खाकर उनको कत्ल करवा दिया। अब उनके 'सज्जादानशीन' गुरू गोबिन्द सिंह जी उसी नियम पर खड़े हैं कि पातशाह को प्रजा के धर्म में दखल देने का अधिकार नहीं है। इस नियम को कह नहीं रहे, व्यावहारिक रूप प्रदान कर रहे हैं और इतनी सामर्थ्य रखते हैं कि मुगलिया सल्तनत से निर्भय हैं और कहते हैं कि सल्तनत अब तबाह हो जायेगी।

सैद खाँ–बहुत खूब। है भी ठीक, औरंगज़ेब जिद्द में है, जुल्म पर जुल्म कर रहा है और समझता है कि जबर्दस्त हो रहा हूँ, परन्तु वास्तव में सल्तनत की जड़ आप खोखली कर रहा है। पर हाँ, यह बताओ कि यह जंग तो हिन्दू राजाओं के साथ थी, मुगल राज्य के साथ तो जंग नहीं थी?

पीर जी–ठीक, पर आप ओहदेदार सरकारी हो, सल्तनत की रमज़ों (इशारों) को समझते हो। औरंगज़ेब बाख़बर पातशाह है उसके खुफिया अखबार नवीस गुरू जी के नजदीक रहते और खबरें भेजते हैं। वह जानता है कि मैंने उनके पिता साहिब को बेगुनाह होते हुए भी कत्ल किया है, वह जानता है कि उनके शिष्यों की गिनती लाखों को पार कर चुकी है। वह जानता है कि गुरू गोबिन्द सिंह जी की आत्मा पिता के कत्ल से दबी नहीं और वह यह भी चाहता है कि वे मारे जायें, परन्तु वह झिझकता भी है कि इस कत्ल का असर पंजाब में शोर शराबा न मचा दे। दक्षिण में मराठे सिर उठा रहे हैं, आप अभी बारकजइयों के इंतज़ाम करते आये हो, इसलिए उसने पहाड़ी राजाओं को इशारा किया कि इस फकीर के बालक को कुचल दो। इस इशारे पर सभी पहाड़िये चढ़ आये थे*। आगे वह पाखण्डी फकीर नहीं कि मुर्दा दिल्ली से दब जाये, वह तेजोमय ईश्वरीय नूर है, उसने तलवार का जवाब खण्डे की ढाल बनाकर दिया है और कहा है कि मैं अपने नियम पर खड़ा हूँ और नियम पर ही शहीद होऊँगा, परन्तु कभी दबूँगा नहीं। यह राज्य बरबाद हो

* देखें जंगनामा या वार गुरू गोबिन्द सिंह जिसमें भंगाणी के युद्ध के सम्बन्ध में (जो राआओं का गुरू जी के साथ था) जेबुन्निसा औरंगज़ेब को समझाती है कि गुरू जी के साथ युद्ध न करो।

जायेगा, अल्लाह को अब इसका रखना मंजूर नहीं। इसलिए उसने चढ़ आये हिन्दू राजाओं को, जो औरंगज़ेब के इशारे पर नाच रहे हैं, पहले समझाया कि अपनी गैरत क़ौमी और धर्म की आन को सँभालो, क्यों तुम्हारी रगों का खून सर्द (ठंडा) हो गया है? परन्तु जब वे लड़ाई पर उतर ही पड़े तो खूब चने चबाये और उनके पैर पीछे हटा दिए हैं। फिर देख लो कि एक बालिश्त जमीं पर कब्ज़ा नहीं किया, भागे जाते राजाओं का पीछा तक नहीं किया।

सैद खाँ–अब सारी बात मेरी समझ में आ गयी है कि मामला नियम पालन का है, बल्कि यह तो औरंगज़ेब की बेहतरी और उस की भलाई की बात है, वह धर्म में जबर्दस्ती न करे तो राज्य की मज़बूती बढ़ जाये, परन्तु हुकूमत का नशा (राजमद) बुरी बला है। हाँ, एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि नियम पालन ठीक, गुरू जी का इच्छा तृष्णा से पाक होना ठीक, पर यह मारना, कत्ल, ज़ोरजबर्दस्ती, किस तरह फकीरी में योग्य है?

पीर जी–यहाँ ही सारा भेद है और मैं भी हैरान होता था, परन्तु यह गुरू जी के परोपकारी सत्संग के बिना बात खुलती ही नहीं। वास्तव में क्या मुसलमान फकीर, क्या सूफी और क्या अन्य, क्या हिन्दू वेदांती, योगी ओर सन्यासी, सभी एक भूल कर रहे हैं, धर्म को वे गरीबी, कमज़ोरी, कायरी, बुज़दिली आदि अर्थों में ले रहे हैं और पढ़ सुनकर भी यही पता लगता है कि नम्रतापूर्ण व्यवहार करना, गुनाह से बचना, डरकर चलना, वैराग्य यह फकीरी और साधुपन है। यह ठीक है पर फकीर की 'मन की दशा क्या होगी?' कभी किसी ने विचार नहीं किया क्योंकि ज़िंदा फकीर नहीं मिलता, इसलिए लोग वैराग्य से चलकर मन की कमज़ोरी में निवास कर लेते हैं। मैं जब गुरू जी का बन गया तो मेरे सामने वास्तविक नियम उनके इलाही जीवित धर्म का खुला: धर्म कमज़ोरी नहीं परन्तु आत्मा की ताकत है। धर्म कायरता नहीं परन्तु आत्मा की बहादुरी है। धर्म केवल वैराग्य नहीं, परन्तु आंतरिक खुशी, मंगल। धर्म हारना नहीं, परन्तु उसूल की जीत।

सैद खाँ चौंककर–हैं!

पीर जी–हाँ!

सैद खाँ–कैसे?

पीर जी–यह बातों से समझ नहीं पड़ती। अपने ऊपर बीते तो समझ पड़ती है। जैसे कोई रेहड़* का टट्टू हो, जिसका दिन रात बोझ तले दबे रहने के कारण बल मर चुका हो, उसको क्या पता है कि कोतल+ घोड़े का बल क्या वस्तु है? वह अपनी हीन, नीची, निराश्रित दशा नम्रता, वैराग्य और फकीरी समझ ले तो क्या ठीक है?

सैद खाँ–नहीं, वह तो एकदम मुर्दा दशा है।

पीर जी–इसी तरह मुझे कलगियों वाले से ज्ञान मिला है कि हिन्दुस्तान में प्रवृत फकीरी अकसर इस 'नीम मुर्दा हालत' (एकदम मुर्दा हालत) का नाम हो गया है, परन्तु

---

* वह एक्का जिस पर छतरी न हो।

+ अमीरों की खास सवारी का घोड़ा।

वास्तव में मणियर साँप की फन फैलाने वाली दशा जैसी 'सुरत की खड़ी दशा' फकीरी पहलू की नज़ीर* है।

सैद खाँ–अल्लाह माफ करे। यह जुल्म नहीं? साँप और फकीरी!

पीर जी–आप गलती खा गये, मैं साँप के ज़हर, उसका दुख देना और जान मारने (प्राण लेना) को फकीरी नहीं कह रहा, मैंने केवल उसकी ऊँची ऊँची डौल, फाइली पहलू+ (विषय प्रधान व्यवहार) उसके ऊँचे रुख़ का ज़िक्र किया है।

सैद खाँ–मैं नहीं समझ रहा।

पीर जी–समझना कठिन है, क्योंकि अन्दर सुरत सोई पड़ी है, इंसानियत और मर्दानगी का वास्तविक बल अपनी उमंग में नहीं है। (माफ करना) तबीयत में से ज़हर साफ नहीं, इसलिए कठिनाई है। परन्तु मैं कुछ प्रार्थना करता हूँ, जरा ध्यान लगाकर सुनना। आप फाइल (क्रिया करने वाला) और मफऊल तो समझते हो? अपनी अन्तर का रुझान हर वस्तु हर प्राणी के साथ फाइली@ हालत का होना यह फकीरी है, सच्ची इंसानियत और मर्दानगी यही है। ऐसे समझो:-

हर आदमी जिसके साथ आपका वास्ता पड़ता है वह अपने गुण, स्वभाव, बातचीत का कुछ न कुछ प्रभाव आप पपर छोड़ जाता है। जब तक आप इस तरह प्रभावों को स्वीकार करते हो आपका अन्तर मफऊल होता है, अगर कोई ऐसी करामात हो जाये कि आपका अन्तर किसी के प्रभाव अधीन न लगे, सीधा खड़ा रहे, हर प्रभाव जो पड़े वह नीचे फिसल जाये और आपका असर (प्रभाव) औरों पर पड़े तो आपके अन्तर की दशा 'हालत फाइली'# वाली होगी। जब यह घटना आपके अन्दर घट जायेगी तब आपको अपने अन्तर में स्वाद, रस, ताकत एक उत्साह प्रतीत होगा, कायरता और नपुंसकता अन्तर में नहीं प्रतीत होगी।

सैद खाँ–फिर चंगेज़ खाँ और तैमूर जैसे ज़ालिमों और फकीरों में फर्क क्या बाकी रहेगा?

पीर जी–बहुत खूब! ज़ालिम के अन्तर में तृष्णा होती है, वह तृष्णा का बँधा हरेक पर हावी होने का पहलू अपनाता है, फकीर अंदर से तृष्णा का ज़हर दूर करता है, और अपने अन्तर के गुण में चमकता है। अन्तर की वास्तविकता यह है कि वह अपने आप में मग्न रहे, अपने में टिकेगा जैसे सयाने कहते हैं अपने स्वरूप में स्थित हो तो खुश, सुख, रस, आनन्द स्वरूप है। अगर वह आदमियों, जानवरों, वस्तुओं में घूमे फिरे, लेन देने करे तो हर दिखाई देती वस्तु और जानदार के साथ उसके अन्तर की बनावट (रुख) फाइली सूरत की होगी, अन्तर का रुख़ औरों पर हावी होगा, परन्तु उसके मन पर हावी कोई नहीं होगा।

---

* मिसाल।

\+ Subjective attitude

@ साखी (साक्षी) रूप, इसको गुरू जी ने अपने आदर्श में 'चढ़ती कला' भी बताया है।

\# मन का ऊँचे उठकर दृष्टापद अपने आप को प्रतीत करना।

सैद खाँ–मैंने काबुल में सुना था कि पंजाब में एक फकीर कहता है कि मैं सवा लाख के साथ एक शिष्य को लड़ा सकता हूँ, तो मैं पागलपन समझ कर हँसा था।

पीर जी–उसका यही अर्थ है कि सवा लाख आदमी अगर गुरू गोबिन्द सिंह के सिक्ख पर प्रभाव डाले तो सिक्ख की सुरत उनके आगे प्रभाव स्वीकारने वाली हालत में नहीं जायेगी। उसकी अपने अन्तर की हालत फाइली कायम रहेगी। इस प्रकार देख लो फर्क अब आपने आप।

सैद खाँ–परन्तु शाह साहिब! आप एक बड़ा गज़ब (धक्का) कर रहे हो, क्या नम्रता, गरीबी, रहम, वैराग्य ये चीज़ें कायरता है, आज फकीरी में इनको जगह नहीं है? अगर दीन में से ये दूर हैं तो 'दीन' और 'जबर'* एक ही हो गये?

पीर जी–नहीं जी। वैराग्य, रहम, नम्रता 'फादे ज़हर' हैं, अर्थात मन में प्रविष्ट ज़हरों के प्रभावों को काटने वाले दारू हैं, फकीरी के स्तम्भ हैं, परन्तु लायक वैद्य के हाथ में।

सैद खाँ–मैं नहीं समझा।

पीर जी–'तृष्णा' 'ले लूँ' 'अपने आप को आगे करके दावा जमाने की लालसा' यह एक दशा है, जो प्रत्येक मन पर हावी है, और यह तृष्णा है एक तरह का ज़हर है, जिसने हमारे अन्तर के वास्तविक नूरानी चेहरे को छुपा रखा है। इस ज़हर को मारने वाला 'फाद' (ज़हर) वैराग्य है। रहम, दया, त्याग, नम्रता सारे वैराग्य में मैं शामिल (सम्मिलित) समझता हूँ। इस प्रकार लायक मुरशिद, मेरे कामल ईश्वर रूप मुरशिद और रसूल गुरू गोबिन्द सिंह ने यह बताया कि वैराग्य दारू है जो तृष्णा के विष को काटता है, जब विष दूर हो गया फिर चित्त की अवस्था–अंतर का कुदरती (प्राकृतिक) स्वरूप–क्या होगा? 'मंगलम्' मंगल ही मंगल, आनन्द।

वैराग्य धर्म की मंज़िल नहीं,
वैराग्य धर्म का रास्ता है।

धर्म है अनन्त के साथ राग, 'अनन्त' मंगल है, उस मंगल के साथ राग करके मंगल रूप हुआ जाता है। वह मंगल जो तृष्णा रहित है।

सैद खाँ–फिर गुरू जी को जो तृष्णा रहित मंगल में हैं, जंग की क्या ज़रूरत है?

पीर जी–उनको तो ज़रूरत नहीं परन्तु जगत को ज़रूरत है। जिन पर अत्याचार हो रहा है उनको ज़रूरत है। ईश्वर के बनाये इंसान जो निर्भय, स्वतंत्र इंसानियत के कमाल में चाहिएँ, वे तलवार के बल पर बुज़दिल, कायर, दीन हीन बनाये जा रहे हैं। हिन्दू ही नहीं सूफी, और अन्य मुसलमान फकीर भी मारे जा रहे हैं। हाँ, अल्लाह की सृष्टि को तबाह किया जा रहा है, इसकी रक्षा के लिए ज़रूरत है कि कोई तृष्णा रहित वीर बांकुरा मुकाबला करे। अगर बकरियों के झुण्ड में भेड़िया आ घुसे तो गडरिये का क्या धर्म है? आप विचार कर लो। क्या उसकी नम्रता और अहिंसा उस समय बकरियों के झुण्ड को बचा सकेगी? क्या गडरिया अहिंसा का बहाना बनाकर जानवरों के झुण्ड की रखवाली कर सकता है, और क्या रखवाली अथवा रक्षा करना उसका धर्म नहीं?

---

* प्रबल, बहादुर।

गुरू गोबिन्द सिंह का आदर्श है कि 'इंसान वह है जो तृष्णा के ज़हर से पवित्र हो, उसके अन्तर में खुशी, उमंग, उत्साह और स्वतंत्रता हो, जगत के साथ प्यार हो परन्तु अंदर से रुझान फाइली रुझान हो।' न तो वे कायर को और न ही 'ज़ालिम क्रूरकर्मा' को इंसानी आदर्श समझते हैं, क्योंकि कायर में इंसानी मद और मर्दानगी का मद नहीं है, उसके अन्दर उसका असली रूप उमंग और स्वतंत्रता वाला बेकार और तबाह या गुम और दबाब अधीन हो रहा है, अर्थात कायर अपने आप को उस आदर्श से गिरा रहा है जिस पर अल्लाह ने उसको बनाया था। और ज़ालिम दूसरों को उस आदर्श से गिरा है, जिस पर अल्लाह ने मनुष्य निर्मित किया था। वह मनुष्य को धक्के और जुल्म के साथ गिराकर निर्बल जानवर बना रहा है। मेरा मतलब है इंसान को खुदा ने:-

'इसु धरती महि तेरी सिकदारी।।' सरदार बनाया है। कायर उस दशा को आप अपने में से तबाह कर रहा है और ज़ालिम उसको दूसरों में से धक्के के साथ तबाह कर रहा है। दोनों अल्लाह के आदर्श को गिरा रहे हैं।

कायर खुदकुशी (आत्मघात) कर रहा है।

ज़ालिम दूसरों का ख़ून (घात) कर रहा है।

गुरू गोबिन्द सिंह जी का आदर्श यह है कि इंसान 'इंसान और मर्द' हो, न तो अपने आप को तबाह करे, न दूसरे को तबाह करे।

उनका आदर्श यह है कि जिस प्रकार के ज़ालिम और जबर्दस्त औरंगज़ेब ने अपने सिपाही बनाये हैं ऐसे सवा लाख सिपाहियों पर एक इंसान ऐसा हो जो अकेला भारी हो। ऐसा ताकतवर, स्वतंत्र, खुश और कर्म करने की प्रवृत्ति को अंदर कायम रखने वाला इंसान मैं तैयार करूँ और वह इंसान दूसरे इंसानों को अपने जैसा बनाने की कोशिश करे। ज़ोर जुल्म करके औरों को कमज़ोर और ग़ुमराह (खोया हुआ) न करे। इस समय वे एक ओर कायर हो चुकी प्रजा को ऊँचा कर रहे हैं, दूसरी ओर दरिन्दा हो चुके ज़ालिम को नीचे ला रहे हैं। अब आप सोच लो कि उनका आदर्श आपकी समझ में आ गया है।

सैद खाँ–हाँ शक दूर हो गये हैं, परन्तु अंदर व्याप्त नहीं हुआ।

पीर जी–अंदर व्याप्त होगा, जिस दिन दर्शन होंगे। अभी यह बताओ कि क्या मैं इस 'बरतरी इंसान' (ऊँचे से ऊँचे मर्द) गुरू गोबिन्द सिंह की पैरवी में गलती पर हूँ? और क्या मेरे निंदक ठीक हैं?

सैद खाँ–आप ठीक हो, निंदक गलती पर हैं, परन्तु यह हालत अंतर की ऐसी सुख रूप और कर्म करने के रुख़ वाली प्राप्त कैसे हो?

पीर जी–मैं बता जो आया हूँ कि 'हमारे अंतर का ऊँचे से ऊँचा अंत' 'मंगल' आनन्द है। यह मंगल रूप है और मंगल रहेगा पर तृष्णा द्वारा हमने इसमें भय, भ्रम, ईर्ष्या, लालच डालकर इसको

या तो निर्बल या ज़ालिम

बना रखा है। दोनों का दारू 'वैराग्य' है।

वैराग्य द्वारा ज़ालिम के अंदर से जुल्म की तृष्णा हटती है और वैराग्य द्वारा निर्बल के अंदर से शरीर से मोह टूटता है, उसका भय दूर होता है और निर्भयता आती है, 'वहम' दूर होता है, भ्रम कटता है।

सैद खाँ–फिर अंहकार नहीं रहता, अगर अहंकार नहीं रहता तो आदमी अंदर से ऊँचा कैसे रहता है?

पीर जी–एक अहंकार है, एक 'ऊँचाई' है। जो सचमुच अंदर से ठीक नहीं हो गया और समझता है मैं ऊँचा हूँ वह अंहकारी है, परन्तु जो वैराग्य करके साफ हो गया और नाम जपकर एकाग्र हो गया है, वह सचमुच (अपने अंतर में) किसी ऊँचाई पर पहुँच गया है।* उसको जो अपने अंतर का ऊँचापन दिखाई देता है और प्रत्येक दिखाई देने वाले के साथ उसके अंतर का रुख़ कर्म करने वाला हो गया है, यह अंहकार नहीं, यह इंसानियत, हाँ इंसान की सबसे ऊँची हालत है। इस अंतर के रंग को अथवा हालत को गुरू गोबिन्द सिंह जी 'चढ़ती कला' कहते हैं। यह चढ़ती कला अंतर की पवित्र ऊँचाई है यह अंहकार अथवा अहम् नहीं है। अंहकार को चढ़ती कला कहना गुरू गोबिन्द सिंह जी के आदर्श में गलती करना है। चढ़ती कला एक कमाल है, इसके तीन पहलू लहराते हैं–

१. 'अपने आप' में यह सुख रूप है।

२. ऊपर 'अनन्त' की ओर इसमें लगातार खींच और लिव है।

३. बाहर 'जगत' के साथ इसका रुख साक्षी रूप (फाइली) है और प्रयोग प्रेम है।

सैद खाँ–क्या गुरू गोबिन्द सिंह जी उपकारी भी हैं।

पीर जी–जगत का उपकार यह है कि आप बेइंसाफी करनी, ज़ुल्म करना, लोगों का तंग होना, दुख पाने, फिर उनकी मदद करनी और नाम उपकार धारण करना। गुरू गोबिन्द सिंह जी का उपकार यह है कि वे आप एक पूर्ण इंसान का नूमना हैं और लोगों में बैठकर यह नमूना बता रहा है और ढंग सिखा रहा है कि प्रत्येक आदमी इस नमूने का आदमी बने। फिर वह अपने आत्मबल द्वारा मुर्दों में रूह फूँक कर ऐसे इंसान पैदा कर रहा है–मर्द से मर्द पैदा हो रहा है। वैसे वह आप तो गुरू है और यह इलाही ताकत गुरू की है। मेरा मतलब यह है कि वह रसूल है वह इंसानी कमाल का भी नमूना है, व्यावहारिक तौर पर वह प्रत्येक इंसान को कामल इंसान बनाता है। यह उसका सबसे ऊँचा उपकार है।

सैद खाँ–क्या और इंसान पशु हैं?

पीर जी–जो दूसरों पर भय डालकर उनकी आत्मा को कमज़ोर करते हैं वे इंसान नहीं हैं, दरिन्दे (फाड़कर खाने वाले पशु) हैं और जो आप भय खाकर डरते, कायर होते धँसते जाते हैं, वे भेड़ों बकरियों की तरह बलहीन पशु हैं। इसीलिए सतगुरू ने यह आदर्श बताया है–

'भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि॥

---

* योग में भी लिखा है 'तदा द्रष्ट स्वरूपे अवस्थानम्'। अर्थात् दृष्टा की अपने दृष्टा स्वरूप में स्थिति। यो॰ दर्शन १.२.

अर्थात्– न तो डर देकर दूसरे इंसानों को इंसानियत से गिराता है। न किसी का डर मानकर अपने आप को गिरने के रास्ते पर डालता है।

सैद खाँ–परन्तु जब गुरू गोबिन्द सिंह जी युद्ध करते हैं तो दूसरों पर भय नहीं डालते?

पीर जी–यहाँ ही तो उनकी सुन्दरता है, वे भयभीतों पर भय नहीं ड़ालते। वे ज़ालिमों पर भय डालकर उनका जुल्म तोड़ते हैं कि वे दूसरों को भय न दें और भयभीतों को कहते हैं: डरो नहीं, मैं–

सवा लाख संग एक लडाऊँ।
तबै गुबिंद सिंह नाम कहाऊँ।

इनकी इच्छा यह है कि जैसे हर पौधा जब अपने कमाल पर पहुँचता है, तो खिलता है, वैसे ही हर इंसान जो कमाल पर है, वह प्रसन्नता में चाहिए। वे ऐसा एक इंसान लाखों कायरों से कीमती समझते हैं। इस जीवित पौधे की मुर्दे पौधे खाद बनते हैं। परन्तु गुरू जी यह नहीं चाहते कि इस किस्म का कामल इंसान जगत पर रहे ही न अथवा एक ही हो या वह ज़ालिम बन जाये। उनका आदर्श यह है कि यह इंसान हर एक में 'प्राण कण' फूँकने वाला हो, अर्थात् वह यह 'कालम का नमूना' बनाकर फिर इसका बढ़ना चाहते हैं कि सभी कोई इस कामल पर पहुँचे। इसीलिए कायरों को निर्भय करते है।, भय देने वालों को पहले उपदेश द्वारा, प्यार द्वारा समझाते हैं अगर आवश्यकता पड़े तो तलवार के साथ भी दुरुस्त करते हैं कि वे दूसरों को भय न दें। ताकि 'कामल नमूने का इंसान' पैदा होने और बढ़ने का अवसर बने।

भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।।

सैद खाँ–आपने कई बार बातों में 'नाप' का उल्लेख किया है, यह क्या बात है?

पीर जी–जिस तरह कायर भयग्रसित तथा ज़ालिम भय देने वाले अर्थात् 'तृष्णालु' मनों को मैंने बताया था कि 'अभय पद' पर ले जाने के लिए वैराग्य दारू है, जो तृष्णा की मैल काट देता है, इसी तरह नाम साफ हुए मन को 'हर पल में फाइली (कर्म करने वाली) हालत में रखने का यत्न' है। यह इंसान को कमाल में ले जाता और नमूने का इंसान 'अभयपद' पर स्थित आदमी बनाता है। 'नाम' अंतर की 'अनंत' के साथ लिव (एकाग्रता) है।

सैद खाँ–समझता हूँ, परन्तु व्याप्त नहीं होता।

पीर जी–अंदर व्याप्त होगा, जिस दिन दर्शन होंगे। अभी आपका अंतर सोया पड़ा है।

'मनु सोइआ माइआ बिसमादि।'

इस 'माया विस्माद' पर 'रब्बी (ईश्वरीय) विस्माद' प्रकाश डालेगा, जैसे सुबह नसीरां पर ईश्वरीय विस्माद ने प्रकाश डाला है। उसी समय से उसकी सुरत जाग उठी है, अब वह नाम द्वारा अंतर के कमाल पर पहुँचेगी। देखो, जागते ही पुत्रों के वियोग का दुख दूर हो गया है। यह है कलगियों वाले का कमाल! जो वे इंसानों में डाल रहे हैं।

इस कमाल पर पहुँचे इंसान को चाहिए कि वह वैद्य बनाया जाये, और बीमार लोग उसकी सुपुर्दगी में दिये जायें।

कह इंसान है कि जिसे सुपुर्द बच्चे किये जायें, कि उनको शिक्षा देकर और रुह फूँककर कामल व्यक्ति बनाये।

यह इंसान है कि इंसाफ की कुर्सी पर बैठाया जाये, कि वह पशुवृत्ति वाले इंसानों में एक संतुलन कायम रखे।

इस नूमने का इंसान कामल इंसान है कि हुकूमत के तख्त पर बैठाया जाये, जो भयदायी मनुष्यों को सीमा में रखे, और 'अभय पद' के आदर्श को इंसानियत के लिए प्राप्त होने योग्य रहने दे।

हाँ जी, यह इंसान है, जो धर्म की बागडोर हाथ में देने के लायक है, जो आप 'अभय पद' पर हो, औरों को शिक्षा पथ प्रदर्शन देकर अभय पद पर लाये–

'जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुर सिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै।'

सारी सृष्टि इस पूर्ण इंसान, व्यक्ति कहो सेवक कहो उसकी दर्शन लालसा में है, जो सच्ची ऊँचाई आंतरिक में शिरोमणि अवस्था में है, और उसका जागृत अंतर सब सृष्टि की सुरत को जागृत देखने का उपकारी है।

इसलिए जी! यह राज तृष्णा है। यह भूमि भूख है! यह मुल्कगीरी की हवस है। यह राजमद है। यह तृष्णा है! यह हिन्दू परस्ती है जो जगत कहे सो कहे, परन्तु यह कलगियों वाले के दिल की तसवीर का निराभिमान सा खाका है, जो मुझ जैसा गरीब खींच सकता है। पर भाई साहिब–

'शुनीदा कै बवद मानिंदि दीदह'

(अर्थात सुनकर और देखने पर तौल नहीं होता)

: ३ :

'मेरे वीर (भाई)! मैं आज क्या देख रही हूँ? बहन कुर्बान जाये प्यारे भाई! अभागी बहन आज क्या देख रही है? मैं बलिहारी मेरे भाई! मेरी बेनूर आँखें आज क्या देख रही हैं? मेरे भाई जी एक सब्ज (हरे) घोड़े पर सवार हैं, जांघ पर पट्टी कैसी जमी है। बहन कुर्बान! मैं पास होती तो हिन्दू बहन की तरह भाई की आरती उतारती, भाई जंग में खड़ा है, ढाल कंधे पर कैसे सज रही है? तीरों का तरकश कैसे लटक रहा है? तलवार कमर पर है, हाथ में भाला नहीं, परन्तु गूँजती गुँजारती बंदूक है। भाई ने घोड़ा खड़ा किया है, कैसा बेदम खड़ा है, मानो घोड़ा पत्थर का है। भाई की ओर देखो, साँस खींचकर संधान किया है, हे भाई! ठहर जाओ, मैं बलिहारी ठहर जाओ, बंदूक का घोड़ा न दबाना भाई रे! यह गोली तुम्हारे कलेजे में लगनी है। पर हाय! भाई को पता नहीं, और मैं घर बैठी हूँ, भाई मेरी आवाज़ नहीं सुनता। अच्छा क्या हुआ? मैं कौन सी कायर हूँ, दो शहीदों की माँ हूँ, एक शहीद की बहन हूँ, एक जीवित शहीद की दासी हूँ। खड़ा हो (रुक जा) भाई, मैं आई। ओह मैंने हिला दिया, घोड़े-बंदूक के घोड़े–से हाथ हिला दिया, गोली तो निकल गई, परन्तु निशाना चूक गया। नाराज़ न हो मेरे भाई! मैंने बहुत उपकार किया है, यह

निशाना जो तूने लगाना था तुम्हारा अपना आप था। लो भाई जी! बहन चली। नाराज़ होकर मत देखो, हँस पड़ो। हँसो तो फिर छोटी सी गुस्ताख़ बहन चली जाये, मुसकरा दो न, बहन का प्यार देखो न। भाई हँस पड़ो, बहन शीतल हो गयी। लो भाई! वाहिगुरू चित्त आये!! बहन की ओर से विदा, अलविदा।

यह एक चिट्ठी है जो सैद खान जी रात के समय तारों भरी परन्तु अँधेरी रात में पढ़ रहे हैं। मैदाने जंग में पलंग पर लेटे हुए खेमे के बाहर पड़े हैं, दास दीपक लिए खड़ा है और हरकारा कुछ दूरी पर जवाब का इंतज़ार कर रहा है।

सैद खाँ जी ने चिट्ठी पढ़ी, काँप उठे, चिट्ठी ने किसी आंतरिक स्रोत को हिला दिया, नेत्रों से आँसू बह चले, शरीर काँप उठा, पसीने से तरबतर हो गये, रोएँ खड़े हो गए, अंतर किसी आंतरिक गहराई में उतर गया, 'वाह अदृश्य हिस्से इस जगत के! तेरी गहराइयाँ अथाह हैं।'

सैद खाँ जी उठे, कागज़ लिया, कलम पकड़ी, कलम का सीना किलक उठा, स्याही के आँसू भर लायी और कागज़ के तख़्ते पर बैठकर मोती पिरो दिए–

'प्यारी बहन! बहन का रिश्ता पवित्र। पंजाब की ख़ास विशेषता:– 'बहन भाई का प्यार।' कुर्बान, 'सहोदरा! मेरे दूध की हिस्सेदार', तेरे प्यार पर क़ुर्बान। ज़िन्दगी बख़्श बहन! तेरा इशारा आ पहुँचा और पहचाना, मैं घायल हुआ पड़ा हूँ, बिस्मिल (ज़ख्मी, घायल) तड़प रहा हूँ। तूने मेरा निशाना चुका दिया, मैं आप निशाना हो चुका हूँ, अथवा जैसे निशाना चुकाया है वैसे अब मुझे उस तीरन्दाज़ के निशाने में ला और सिफारिश कर–'घायल को मौत के घाट उतारो।' 'दरेगा दर्द! कि दर जुस्तजूए गंजि हजूर। बसे शुदम बगदाए बरो करामे न शुद*।' मेरी माँ द्वारा उत्पन, मेरे दूध की अमृत धाराओं की साझीदार (हिस्सेदार), मेरे दुख सुख की हमदर्द बहन, मेरी प्रेम पीड़ा का दर्द बाँटने वाली बन गयी, बस अब काम बन जायेगा। कह दाते को कि अब मैं। आज़ादी से घबरा गया हूँ, अपने जाल में मुझे फँसाये, किसी तरह अपने पिंजरे में डाल ले, किसी असीरी (क़ैद) में फँसा दे, अथवा तीर का निशाना करके मेरा शिकार करे, मैं स्वतंत्रता के जीवन से परेशान हूँ, अच्छा बहन। दुआ कर, सिफारिश कर, कि सौभाग्य वाला दिन आये और मैं–

होवां कैद पिंजरे तेरे,
पिंजरा तूँ निज हत्थ फड़ें।
चाई फिरें तूँ कैदी अपणा,
कैदी खुश हो हसे खिड़े।
वाहवा कैद सुभागी सहीओ,
मिली हज़ूरी कैद पिआं;
सभ फिकराने पए सैय्याद+ नूँ,
कुच्छड़ रहिंदे असीं चढ़े। (सैद खाँ)

* अफसोस है और पीड़ा है कि उसकी हुज़ूरी के खज़ाने के लिए कई फकीरों के दरवाजों पर गया, परन्तु हुज़ूरी प्राप्त नहीं हुई।

+ पिंजरे में डालने वाला शिकारी।

हरकारा जवाब लेकर हवा हो गया (तेजी से विदा हो गया), परन्तु सैद खाँ जी को नींद नहीं आ रही है। तारे आकाश में उसको किसी के इश्क में रत इंतज़ार में बेकरार दिखाई देते हैं। आकाश की नीली चादर ऐसे दिखाई देती है कि अपने पीछे किसी अत्यधिक आकर्षक भेदों वाले भेद को छुपाए तनी खड़ी है और जिस भेद का खुलना शायद सारे जगत को पिघलाकर उस छुपे भेद में मिलाकर इस दिखाई देते रंग को मिटा दे। तारे आशिक नयन हैं, जो जगत से दुखे जले उठकर भेद की थाह लेने गए इस शून्य रूपी चादर के साथ अटक गए हैं और आगे चादर रास्ता नहीं देती और अब लटके हुए अपनी ज़मीनी हसरतों और आकाश में से अगम्यता के दुखों को ढलका ढलका कर रो रहे थे, वाह! हसरत!

ऐसे सोचते सैद खाँ जी रात बिता रहे हैं। कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं–

सैद खाँ जिस ढिग सरदारी।
जिस के सकल सैन अनुसारी।
तिस के जागे भाग विशाला।
उपजयो प्रेम आनि तिसकाला।
सुजस गुरू को सुनतो रहिओ।
नहीं विलोचन ते कबि लहिओ। ....
सैद खान सुनि सुनि गुन गन को।
चाहति पिखयो प्रेम कर मन को।

हाँ जी, ये वही सैद खाँ जी हैं जो बहुत समय पहले सढौरे पीर बुद्धूशाह के घर मातमपुर्सी करने गये थे और कलग़ियों वाले के नाम और गुणों से वाकिफ हो आये थे। नसीरां का देखा वह दिव्य दर्शन, वह कलग़ियों वाले की अनुपम झलक, जिसने उसका जन्म पलट दिया था और पीर बुद्धूशाह का वह कथन, कलग़ियों वाले के आदर्श का नज़ारा, ये दो बातें सैद खाँ जी कभी नहीं भूले। काम काज सरकारी करते हैं, परन्तु बेमन से, दिल में धड़कन और हो रही है। 'मुझे कब दर्शन हों' वर्षों के वर्ष बीत रहे हैं परन्तु यह चाह कोई दिन खाली नहीं जाता कि ज़ोश नहीं मारती। जब कोई बात बुद्धूशाह की याद आकर सुख देती है तो जी उछलता है कि नसीरां की तरह एकदम मेरी काया क्यों नहीं पलटती? बुद्धूशाह की तरह मेरा रंग क्यों नहीं जमता? परन्तु साथ ही वह पीर का वाक्य कानों में गूँज उठता है:-

'अंदर वापरेगा (व्याप्त होगा) जब दर्शन होंगे।'

ऐसे समय निकलता गया, सरकारी अफसर होने के कारण और सभा का मुसलमान होने के कारण गुरू जी के पास जाने से शर्माता है, परन्तु कलेजे में घुस गयी चुभती पीड़ा करकें मारती है और प्यारे के दर्शनों की इच्छा को सूखने नहीं देती। महाबली समय ने रंग पलटे, औरंगज़ेब के ये मंसूबे कि गुरू गोबिन्द सिंह की पहाड़ी राजाओं के हाथों जीवन लीला खत्म हो जाये और शाही उद्यम को और हाथ काले न करने पड़ें, पूरी न हुई। जितनी

बार राजाओं ने चढ़ाई की, हार खाकर गये। आख़िरकार सूबा सरहिन्द को शाही इशारा आया, कि राजाओं की मदद करे, परन्तु वश नहीं चला। एक बार शहज़ादा आया, वह मित्र और शिष्य बनकर गया। अब अंत में औरंगज़ेब के लिए अंतिम उपाय बाकी था कि उसने शाही सेना भेजी कि हिमालय से आ रही बाढ़ को रोके। इस सेना में एक पदाधिकारी सैद खाँ* था, दुखी था कि किस दुखदायी काम के लिए चला हूँ, परन्तु सुखी था कि शायद जीवन का कार्य इसी मुहिम पर फतह हो जाये। आनंदपुर के बाहर मैदान पड़ा था और रोज़ युद्ध होता था। जिस रात का हमने ऊपर वर्णन किया है, इससे कुछ दिन पहले सैद खाँ ने एक निशाना बंदूक का देखा था, इसके विचार में कोई सिक्ख सूबेदार खड़ा था, परन्तु उसके पीछे कलग़ीधर घोड़े पर थे। अगर निशाना ठीक बैठता तो शायद श्री हुज़ूर जी के लगता परन्तु अचानक उसकी आँखों के आगे नसीरां की सूरत आई और रोएँ खड़े हो गये, और घोड़ा दबाते समय हाथ उखड़ गया और गोली खाली गयी। यह उसको एक ऐसे ही आकस्मिक बात हो गुज़री थी, परन्तु आज बहन की चिट्ठी ने परेशान कर दिया, कि हैं! मैं उस प्यारे को ही मारने लगा था, जिसके प्यार में सिर धुन रहा हूँ। फिर आश्चर्य हुआ कि उस समय नसीरां को कैसे पता लगा? वह लिखती है कि मैंने तुम्हारा बंदूक से हाथ हिलाया था। है भी ठीक, अकारण मेरा हाथ काँप गया था, और उस समय नसीरां याद भी आ रही थी। अल्लाह! अदृश्य (ईश्वर) के भेद कितने गहरे हैं? मैं पदार्थ विद्या पढ़कर केवल दिखाई देने वाले को समझता था कि है, परन्तु न दिखाई देने वाले हिस्से में कितना कुछ है, जिसके मर्म न मिलने वाले हैं। इसका मैं ज्ञाता नहीं था। अच्छा बहन! तेरा भला हो, जिस तरह उस समय चूक करवा कर बचाया था, अब दर्शन और दो बातें भी करवा दे। फिर आपने आधी रात के समय उठकर दुआ की–

अंतरजामी पीरन पीर।
उर की लखहिं प्रेम की धीर।
तौ अबि तज तुरंग कुदावहिं।
कलग़ी झूलत रूप दिखावहिं॥
अब उत्कंठा लखि चित्त मेरी।
एक बार इत पावहिं फेरी। (गु॰ प्र॰ सू॰)

रात बीती, दिन चढ़ गया, इधर तुर्क सेना तैयार हुई, उधर सिक्ख सेना, आमने सामने आ डटे। परन्तु सतगुरू जी आज और यत्न में हैं, प्रेम को पहचानने वाले:-

सहि न सके ब्रिहु प्रेमी केरा।
बड़ी प्रात ते उठि बिन देरा।
ह्वै तिआर तबि ही कट सकी।
सदा प्रेम के जो हैं बसी।
धनुख बान निज पान सँभारा।

---
* सैदाबेग अन्य सेनापति था।

भए तुरंगम पर असवारा।
करति शीघ्रता हय चपलाये।
तत छिन खान अग्र को आये। (गु॰ प्र॰ सू॰)

सैद खान के देखकर आश्चर्य से रंग बदल गये। हैं! वह दर्शन जिसको तड़पते ये दिन आये हैं, इस तरह मैदान जंग में आमने सामने संप्रत्यक्ष हो गया है। एकदम सब कुछ भूल गया, झुककर सलाम की, नेत्र भर आये और विवश बोल उठा:-

खुदा आइद! खुदा आइद! कि मे आइद खुदा बंदह? हकीकत दर मिजाज़ आइद कि मुरदह रा कुनद्द ज़िंदह*।

परन्तु कौतुकी सतगुरू बोले, आओ खान जी! दो हाथ करें। खान में मुकाबले में दो हाथ उठाने की सामर्थ्य कहाँ बाकी थी? तुरन्त घोड़े से नीचे उतर आया और रकाब में रखे चरण कमल पर शीश रख दिया। सतगुरू जी ने:–

क्रिपा द्रिशटि ते धरि सिर हाथा।
तत छिन सेवक कीनि सनाथा। (गु॰ प्र॰ सू॰)

सतगुरू की कृपा प्राप्त की, नाम का प्रवेश रोएँ रोएँ में हो गया, वैराग्य ने आ डेरे लगाये, उसी समय सब कुछ त्याग कर वन को प्रस्थान कर गया।

यह घटना बिलकुल शत्रु दल के बीच बीती, जिस समय सतगुरू इस मैदाने जंग पर छिड़े रंग में वाहिगुरू जी के एक व्यक्ति को ज़िंदा करने आये, कोई प्रभाव छाया कि दोनों दलों का ध्यान इधर लग गया, शायद दलों का ख्याल हो गया हो कि दोनों का व्यक्तिगत युद्ध होने लगा है। तीर, गोली सब को चलानी भूल गयी। जब इस प्रज्वलित मैदान में एक आत्मा का कल्याण हो गया, सैद खाँ ने कदमों पर सिर रख दिया और दो बातें करके चला गया, आश्चर्य छा गया, तुर्क दल दंग रह गया। इसी क्षण सच्चे पातशाह घोड़े को एड़ी लगाकर अपने दल में चले गये। अब तुर्क सरदारों को होश आई कि कलग़ीधर जी हमारे बीच आकर निहत्थे निकल गये, और हमारे सरदार पर क्या छिड़क गये कि वह सेना बे सरदारी (सरदार रहित) छोड़कर चला गया। हा, दुनिया! प्रत्यक्ष देखकर भी तुझे संदेह होता रहा! बात क्या, उधर सैद खाँ जी दुआब में से होते हुए कांगड़े के ऊपर की ओर पर्वतों में एक रंग नाम की लिव (ध्यान) में मग्न होने के लिए टिक गये (ठहर गये)। इधर जंग होता रहा, उधर नसीरां और बुद्धूशाह को सारी घटना सुनकर ठंडक पड़ गयी है कि भाई की कल्याण हो गई परन्तु समय अपने रंग बदलता चलता गया।

: ४ :

एक सुन्दर सी पहाड़ी के एक सिरे चट्टान, बड़ी सी चट्टान खड़ी है। इसके पास से एक पगडंडी ज़रा नीचे की ओर जाती है। काफी दूर जाकर छोटा सा चश्मा (पानी का

---

* ईश्वर आता है, ईश्वर आता है, कि ईश्वर का प्यारा आता है? हाँ, यथार्थ स्थूल रूप में आ रहा है कि मुर्दे को ज़िन्दा कर दे।

स्रोत) निकलता है, जो बहुत छोटी सी नदी बनकर नीचे बहता चला जाता है। यहीं एक तृणकुटी–पत्तों और तिनकों की झोंपड़ी–है, ऊपर कुछ एक बढ़े हुए चट्टान की, छोटी कंदरा जैसी ओट और छाया है। यहाँ सैद खान जी रह रहे हैं। सिमरन, निरन्तर सिमरन (स्मरण) का जीवन है। रस आरुढ़ हैं, शरीर का निर्वाह कुदरत कर रही है, जल चश्मे से मिल जाता है। खाने के लिए यहाँ कुछ प्राकृतिक रतालू (एक प्रकार का कंद) की बेल उगती है, नीचे से उसकी जड़ (मोटे टुकड़े जैसी) निकलती है, उसको धूनी में भून लेते हैं। कभी गाँव से कोई अन्न ले आता है। कभी अगर गेहूँ के पाव भर दाने मिल जायें तो दाना-दाना करके कच्चे चबा जाते हैं। हालत मग्नता की बहुत रहती है। कभी कभी दो चार दिन एक रस हो टिके रहते हैं, किसी ज़रूरत के लिए नहीं उठते, 'तिथै ऊंघ न भुखं है हरि अमृत नाम सुख वासु!! नानक दुखु सुखु विआपत नहीं जिथै आतम राम प्रगास' वाला रंग है। जो संसार का कभी प्रतिबिंब हृदय पर पड़ता है तो नसीरां और बुद्धूशाह का उपकार अथवा मैदाने जंग का नक्शा! यह नक्शा अब व्याकुल करता है, क्योंकि कलग़ीधर जी के पक्ष को घेरे में देखकर दिल में तरंग उठती है कि तेरा त्याग निकम्मा है, जिस समय तेरे दाता सतगुरू जंग मे व्यस्त हैं, तू क्यों जंगलों में आया, क्यों नहीं सतगुरू के दल में शामिल होकर सतगुरू के वैरियों के साथ लड़ता मारता मर गया? यह सच्ची जीवन मुक्ति होती। इस तरह के प्रेम में 'हुक्म' की याद करके ठंडक व्याप्त हो जाती। परन्तु जब उसके मन के प्रकाशित मण्डल पर आनन्दपुर के संकट का नक्शा पड़ता तो उतावला हो जाता। एक दिन आप उच्च स्वर में अरदास करने लग पड़े कि 'हे कलग़ीधर जी! आज्ञा दो कि मैं आकर जंग करूँ'। परन्तु अर्द्ध रात्रि को स्वप्न आया कि कलग़ीधर जी कह रहे हैं, 'घबराओ नहीं, मेरे जंग वैर विरोध हार जीत नहीं है ज़ालिम (अत्याचारी) को बताना है कि मर्द, जिनके अंदर जागृति आ गई है, वे भय नहीं माना करते। जीवन-मरण, यश-अपयश वे किसी बात से नहीं हिला करते, वे निर्भय हैं, सत्य पर खड़े हैं, किसी की टक्कर से नहीं गिरते, जो टकराता है, वह अंत में आप गिरता है। हम हार जीत, हानि लाभ, सदा उत्साह में है और अजेय हैं। हमें क्या हमारे शूरवीरों को, क़ोई नहीं जीत सकता। हाँ, जब मन सो जायें तो यही हार है, फिर जीत कोई नहीं, आप हमारे लिए शोक न करो, जो हमने कहा है, फलदायी होगा। धर्म में सीनाज़ोरी करने वाले नष्ट हो जायेंगे और चढ़ती कला वाले भुजंगी जगत को अभय करेंगे, आप सैद खान जी! टिके रहो, भजन करो।' यह हुक्म सुनकर ठंडक पड़ गयी, फिर व्याकुल नहीं हुए। कुछ समय और निकल गया।

अब सैद खाँ की अगर कभी किसी ध्यानमग्न अवस्था में आनंदपुर के मैदान में नज़र जाती है, तो सुनसान दिखती है, शहर उजाड़ है, न सिक्ख है न तुर्क। सतगुरू भी नज़र नहीं पड़ते, अब फिर व्याकुलता होती है। जब भी ध्यान आनन्दपुर जाता है, सतगुरू को न देखकर तड़पता है। अपने हृदयमण्डल में तो दिव्यता है, सुख है, रस है, आनन्द है, परन्तु जब उधर ध्यान लगाते हैं, तो सुनसान दिखाई देती है। अरदास करते हैं तो जवाब नहीं। अन्तर में देखते हैं तो कलग़ीधर जी तेज प्रताप में खड़े मुसकराते दिखाई देते हैं।

कुछ समय बीतने पर प्रेम ने उत्कंठा अत्यधिक बढ़ा दी, त्याग, वैराग्य भूल गये और आप निकल खड़े हुए। पहाड़ों पहाड़ आनन्दपुर आये, आगे उजाड़ देखी। सारी घटनाएँ सुनी। कैसे खालसे ने वे युद्ध किये जो कोई नहीं कर सकता, कैसे निकलना पड़ा और कैसे चमकौर का युद्ध हुआ और साहिबज़ादे चढ़ाई कर गये और कैसे सरहिन्द में छोटे साहिबज़ादे शहीद हुए? कैसे सतगुरू मालवे पहुँचे, मुक्तसर युद्ध हुआ। साहिब आगे चले गये? शांत चित्त में दुख उत्पन्न हो और रोना आये। प्यार की तरबें कस जायें और विवश ले चलें। इस तरह दमदमा साहिब पहुँचे।*

सैद खाँ का ख्याल था कि पता नहीं अब क्या रंग होगा? परन्तु जो बातें बुद्धूशाह ने कही थीं और जो कुछ घटा था वही संप्रत्यक्ष था। सतगुरू जी उसी तरह आनन्द की प्रसन्नता में ईश्वरीय नूरी रंगत और अलौकिक मौज़ में थे। चेहरे पर कोई उदासी नहीं थी, आनन्दपुर की राजधानी की तबाही का कोई पछतावा नहीं था। साहिबज़ादों के बिछोह के ग़म की कोई लकीर माथे पर नहीं थी, प्यारों, मुक्तों, सत्य के धारण करने वालों, पूरे सिक्खों की जुदाई (बिछुड़ने) की कोई परेशानी माथे पर दिखाई नहीं पड़ रही थी, सफ़र के कष्टों और अपने परायों के धोखे देने का कहीं पश्चाताप नहीं था खलता दिखाई देता, ज्यों की त्यों प्रकाशित ज्योति, जैसे बादलों के छँटने पर सूर्य की रोशनी चमक मारती है, उसी तरह जलाल वाला नूरी चेहरा चमकें मार रहा था।

सैद खाँ जी खुशी में थे और शुक्र कर रहे थे कि मुझे फिर दर्शन हो गये।

लिखा है कि दमदमे में दूर दूर से अच्छे-अच्छे नामी सिक्ख और संगतें आकर मिल गई थीं। वहाँ वही आनन्दपुर की तरह रौनकें लग गई थीं। एक दिन अमृत समय (प्रातःकाल) 'आसा की वार' (वाणी) लगी, सतगुरू दीवान में आ सजे (विराजे), भोग पड़ा, अरदास हुई, कड़ाह प्रशाद बाँटा गया, दीवान में ईश्वरीय रंग है, सतगुरू की दिव्य मूर्ति चमक रही है, सिख प्रसन्न मुख दर्शन का आह्वन ले रहे हैं कि मेवड़े+ ने अरदास की, 'सच्चे पातशाह! एक ग़रीब मुसाफिर पंजाब से आया है, उसके पास एक संदेशा है सैद खान के लिए। कहता है सढौरे से आया हूँ, मैं पहले पहाड़ गया था और सैद खान को सभी जगह ढूँढा है, वहाँ से मुझे बताये हुए ठिकाने से पता लगा कि वे चले गये हैं। वहाँ से चलकर उनको ढूँढता यहाँ आया हूँ एक पर्ची है जो उनके हाथों में देनी है। सतगुरू जी मुसकराये, मुसाफिर को दीवान में बुला लिया। सैद खान ने उससे पर्ची लेकर सतगुरू जी की आज्ञा से पढ़ा, उस महात्यागी वैराग्य मूर्ति के चेहरे पर लालिमा छा गई और कई आँसू आ गए।

सतगुरू जी बोले-'साधू सैद पिआरे जीउ! पत्तर सुणा दिओ'।

तब आपने पत्र सुनाया-

---

* नई खोज और जानकारी के प्रकाश में यहाँ और इसके आगे प्रसंग में संशोधन किया गया है।

+ सतगुरू के हुज़ूर संगत के अर्ज (विनती) करने और अतिथियों का आदर सत्कार करने वाला कर्मचारी।

"सहीओ नी अज फाग मचया जे
सुहणे 'आप' मचाइआ।
'रत्तू' दा रंग अज्ज उडेगा
होर रंग नहीं भाइआ।
'सीस' कुमकुमे अज्ज चल्लणगे
अतर 'उलाद' खिलाया।
'आपावार' गुलाल उडेगा
आटा नहीं उडाया
आओ सहीओ रल होला खेडो
'शहु' खेडण नूँ आया।

प्यारे भाई! पता नहीं आप कहाँ हो, पर्वतों में हो कि किसी और जगह? मैं हरकारा पहाड़ आपके पास भेज रही हूँ। आप कहीं हो, अब जीवित दिखाई देते हो। जीओ! युग युग जीओ! भाई जी! बहन को बधाई दो! यह हरकारा मेरे हाथों पला बच्चा है, यह मेरी इच्छा पूरी करेगा, मेरी पर्ची आपको पहुँचायेगा। ज़रूरत कोई नहीं, भाई! परन्तु आपको प्रसन्नता में खिले देखने की लालसा थी, वह कोई नहीं, आगे जा देखेंगे। देख भाई! मेरे मिट्टी के नेत्रों ने कलगियों वाले के सुन्दर शरीर के दर्शन भी नहीं प्राप्त किये, हाँ, परन्तु वह जो आपके पास बैठे हुए इलाही दर्शन हुए थे, बस उन दर्शनों की मोहित मैं फिर नहीं मरी। बहन को बधाई दो। भाई जी! आज फाग मचा है। सढौरे, हमारे घर पर दल चढ़ आया है उस्मान खान का, शत्रुओं का दल क्यों कहूँ, हमारा स्वामी होला* खेलने आया है। शाह साहिब और छोटे शाहज़ादे यत्न में हैं।

(बाकी कल लिखूंगी)

लो भाई जी! आज काम रास आ गया (ठीक हो गया)। मैं सौभाग्यशालिनी हो गयी: दो लाल और एक भाई आगे+ शर्बत शहीदी पी गये, आज शाह साहिब और एक लाल स्वर्ग में जा चढ़े की ख़बर मैंने पा ली।@ एक पता नहीं कहाँ है और कैसे है। मैं सुलक्षणी भाग्य सुलक्षणी हो गयी। क्यों न होयें? आपको पता है कलगियों वाले ने अपने चारों लाल हँस हँस कर शहीदी के मैदान में भेजे थे। परिवार, धन धाम, राजधानी सभी कुछ हम पर

---

* गुरू गोबिन्द सिंह जी ने 'होला' की रीति चलाई थी। इसमें दो दल बनाकर प्रधान सिक्खों के अधीन लड़ाई करवाते, दोनों दलों को शिक्षा देते, जो जीत जाता उसे दीवान में 'सिरोपा' भी देते।

\+ भंगाणी युद्ध में।

@ असमान खाँ हाकिम सढौरा ने आनन्दपुर की राजधानी उजड़ी देखकर समझा कि सिक्ख ताकत नष्ट हो गयी है इसलिए उसने धार्मिक कट्टरता में बुद्धूशाह को गुरू जी के साथ सम्बन्ध होने के कारण कत्ल करवा दिया था।

क़ुर्बान कर दिया। शुक्र है आज इस ग़रीब के चारों लाड़ले* सिर के सांईं और वीर जी (भाई जी) उस कलग़ियों वाले की सेवा में मुझसे बिछुड़ चके हैं। बाग़, किला, हवेली लुट गये हैं मैं एक गरीब के घर बैठी हूँ, मेरी खोज हो रही है, मैं न उनके हाथों में फँसूंगी, न खुदकुशी करूँगी। अगर बची रही तो आपके पास आऊँगी, नहीं तो जूझकर मर जाऊँगी। कौन है जो कलग़ीधर के पुत्र-पुत्रियों को जीत सकता है? हम अजेय शूरवीर हैं। जिन्होंने मौत को जीत लिया है उन पर तृष्णालु योद्धे क्या वार कर सकते हैं? लो वीर जी! अब स्वर्ग में मिलेंगे। शत्रुओं को मेरा पता लग गया है। छिपना धर्म नहीं, ग़रीबों का यह घर लुट जायेगा, इसलिए मैं चली हूँ।

देख भाई! बहन की कमर कसी है, सिर का दुपट्टा माथे का मज़बूत ताज बन गया है, बहन के पास ढाल भी है, खंजर चमकदार है, हाथ में तेज (चंचल) तलवार है, चेहरा मेरा खुश है, हिन्दू औरत सती होने जाती है, मैं शहीद होने चली हूँ। शरण नहीं माननी, क़ैद में नहीं पड़ना, 'शर्बते शहीदी' जीना है। कलग़ियों वाले ने अमृतपान नहीं कराया, मैं यही अमृत पियूँगी और मुक्त हो जाऊँगी। देख भाई! वह रोंदू बहन कलग़ियों वाले के नाज़ पर, लाड़ पर, फ़ख्र पर ऐसे चली है, जैसे शमा पर पतंगा जाता है। मौत के साथ लड़ने चली हूँ, हाँ, मौत को मारने चली हूँ। इस समय चढ़ती कला सलामत है और काव्य के चाँद हृदय के आसमान में चमक रहे हैं–

चल वे दिला कर सुहणे दा लाहीए,
सिर दे शुकर मनाईए।
सिर दा भार गरदनों उतरे,
पंड फिकरां दी लाहीए।
भौरे वांग सुतंतर हो के,
कमला पुर नूँ जाईए।
पा गुञ्जार दुआले कमलां
सदके हो हो जाईए।

अपने भाई की नसीरां, मौत पर विजयी नसीरां, चढ़ती कला में खेलती नसीरां, चमकदार तलवार वाली नसीरां।"

यह पत्र सुनकर 'वाह कलग़ीधर' की गुञ्जार गूँज उठी। हे मर्दों के मर्द! क्या जादू स्वर्ग से तू लेकर आया कि मुर्दों में रूह फूँक दी? वे लोग बनाये कि जिन्होंने मौत पर जीत प्राप्त की। वे औरतें बनाईं कि 'मर्द' होकर परलोक को विदा हुईं?

कलग़ीधर जी इस समय नेत्र मूँदकर चुप बैठे थे। फिर कमल पुष्प से सुन्दर नेत्र खुले, मुसकराये, सैद खाँ की ओर देखा 'मुबारक'। फिर हरकारे की ओर देखा, उसने

---

* कहते हैं कि सबसे छोटा बच्चा किसी ने छुपाकर बचा लिया था, जिसका वंश अब है। बंदा बहादुर ने सढौरा पहुँचकर असमान खाँ को इस पाप के बदले फाँसी दिलवायी थी। सू० प्र० में भी एक बच्चे का बच निकलना लिखा है। (ऐ: २.६.२२)

बताया कि कैसे नसीरां तलवार लेकर निकली और सन्मुख होकर जूझी और कैसे टुकड़े टुकड़े होकर शहीद हुई। धन्य धन्य कहते सतगुरू जी ने फिर हुक्म दिया कि "कड़ाह प्रशाद और आये, बुद्धूशाह के परिवार और उसकी प्यारी जी उठी 'नसीर बेगम' का अरदासा किया जाये।" कहाड़ प्रशाद आया। जगत के रक्षक के सम्मुख अरदास की गयी। आपने आशीष दीः-

"निहाल! सच्च खण्ड निवास।।"

कुछ दिन रहकर सैद खाँ जी को फिर आज्ञा पहाड़ जाकर ही बंदगी करने की हुई। आप साहिब कुछ समय बाद दक्षिण को चल पड़े।

गीत

सुहणिआं के सुलतान शाहु जी दरशन असां दिखाओ जी।
इक झलका दे पातशाहु जी घाइल असां कहाओ जी।
बुद्धू शाह नसीरां विंन्हे सानूँ विंन्ह विखाओ जी।
'हुसन वजूद' पिआरे प्रीतम! पिंजरे अपणे पाओ जी।
सिक्क सिकेंदिआं दर ढठ्ठिआं नूँ चा अपणे लड़ लाओ जी।
तूँ हैं शमअ सच्च दी सुहणे। तड़प आपणी पाओ जी।
परवाना कर लओ आपणा बिसमिल असां बनाओ जी।
हो शैदा, तैं दुआले घुमीए, सानूँ घोल घुमाओ जी।
कर नौछावर नाम आप तों अपणे असां बनाओ जी।
हे वरयाम कलग़ियाँ वाले, आका इक दिखो जी।
'हुसन वजूद' ग़मज़िआं वाले, क्रिपा कटाख्य चलाओ जी।
कर अपणा, अपणे नूँ अपणा, अपनाओ अपनाओ जी।
आओ अज सरदार जगत दे, अज आओ अज आओ जी।



सूचनाः- पीछे सिरसा का प्रसंग आ चुका है। सिरसे से कूच करके गुरू जी धूसिंघाणे आये, यहाँ से भादरे, नौहर, सुहेवे आदि स्थानों पर ठहरकर चुरू पहुँचे। फिर दादू द्वारे (नारायण पुरे) ठहरने का प्रसंग घटा। फिर नीचे जाकर अजमेर के समीप पुश्कर तीर्थ पर जा डेरा किया। इन दोनों स्थानों के प्रसंग आगे हैं–

८९ दाता जी दादू द्वारे*

: १ :

नारायणपुर में दादू जी के द्वारे के एक दालान में बैठे हैं महन्त जैत राम जी, कि एक साधु ने आकर नमस्कार की, जिसको देखकर महन्त जी बोले—आओ साध राम! जय हो दादू जी की।

संत—जय हो दादू जी की, नमस्कार, दण्डवत प्रणाम महन्त साहिब।

जैतराम—आप बाहर से आये हैं, कौन राजा आ उतरा है द्वारे के बाहर? बरगद तले। साथ में सेना है, घोड़ों की हिनहिनाहट और आदमियों की चहल-पहल सुनायी दे रही है?

संत—जी, बहुत स्वादिष्ट योद्धा है, योद्धा है परन्तु योद्धा नहीं; राजा है, परन्तु राजा नहीं।

जैत राम—अच्छा, कैसे है और कैसे नहीं?

संत—गद्दी राजगद्दी नहीं, परन्तु फकीर गद्दी का गद्दी नशीन है। प्रताप, लोभ वाले ज़ोर का नहीं, परन्तु त्याग के बल का प्रताप है।

जैत राम—पहेलियाँ डाल रहे हो, साध राम। विपरीत बातें करके हैरान कर रहे हो।

संत—श्री जी! साहिब गुरू गोबिन्द सिंह है, गुरू नानक देव जगत गुरू की गद्दी का दसवाँ गद्दी नशीन। गुरू नानक को जानते ही हो, उनकी प्रसिद्धि घर-घर है। कलियुग के अवतार पूर्ण अवतार, भक्ति अवतार, प्यार के अवतार, समझौते के अवतार, जगत को आपस में भाई बना देने वाले और भाइयों को साझा पिता दिखा देने वाले गुरू नानक, गुरू नानक.......।

यह कहते-कहते संत के नेत्र ऊपर हो-होकर बंद हो गये और शब्द रुक गये।

जैत (सिर झुकाकर)—धन्य गुरू नानक भक्ति अवतार और भक्तों के शिरोमणि, नारायण और नारायण के अवतार, शांति और धैर्य, वाह परन्तु उनकी गद्दी पर तलवारधारी? हैं।

संत (नेत्र खोलकर) तो क्या गुरू नानक जी तलवारिये (तलवारधारी) नहीं थे? किसी के आगे झुके हैं, किसी के आगे हारे हैं। किसी की शरण पड़े हैं जो आया सो शरण, जो अड़ा वही पराजित।

जैत (सोचकर)—हाँ। परन्तु कैसे? तलवार के साथ?

संत—नहीं आत्मबल की तलवार द्वारा।

---

* यह प्रसंग गुरूपर्व सप्तमी जो शनिवार १३ पौष सं० गु० ना० सा० ४६२, वि० १९८७, दिसम्बर की २७ सं० १९३० ई० की थी, को ट्रैक्ट को शक्ल में प्रकाशित हुआ था।

जैत–ठीक; पर संत जी। वैसे तो सभी स्थान पराजित का न्याय मानते रहे हैं।

संत–परन्तु पराजित के न्याय में जीतते और विरोधी को पराजित करते रहे हैं। अगर किसी ने कहा, ख़ुदा के घर की ओर पैर क्यों किये हैं, तो कहा जिधर ख़ुदा का घर नहीं मेरे पैर घुमाकर उधर ही कर दो। बहस नहीं की, संवाद नहीं रचा, शंका करने वाले की मान ली, परन्तु देखो इस हार मानने में विरोधी हार गया, आप जीत गये। 'हार की जीत' यह गुरू नानक का करिश्मा था सारे जीवन का। अगर नवाब ने कहा मेरे साथ नमाज़ पढ़ो, तो कहा वाह वाह चलो, पर नमाज़ पढ़ी नहीं। जब उन्होंने पूछा कि आप वचन देकर हारे हो, तब कहा कि आप ने अपने साथ ख़ुदा की नमाज़ पढ़ने के लिए बुलाया था, घोड़ों की सौदागरी और बछड़ों की रखवाली की नमाज़ पढ़ने के लिए मुझे नहीं बुलाया था। इकरार (वचन) ख़ुदा की नमाज़ पढ़ने का था। इस प्रकार देख लो हार में आप जीते हैं और नवाब ने, काज़ी ने, अपनी हार मानी और उनकी जीत मानी है।

जैत–ठीक कहा है, ऐसे प्यार पुञ्ज की गद्दी पर तलवारिया?

संत–वही बात है, आत्मबल ही बड़ा बल है। मुझे शर्म आती है बात करते हुए, मैं हूँ दास, आप हैं महापुरुष, छोटा मुँह बड़ी बात। मैं क्या बताऊँ, आप जानते हो।

जैत–नहीं साध राम! आप सारी बात सुनाओ न। गुरू नानक का गद्दी नशीन आये और मैं आदर न करूँ यह भी लानत है। परन्तु अगर मैं हिंसक और तलवारधारी के पास चलकर जाऊँ तो भी मुझे धिक्कार है। इसलिए बता सारी बात जो समझ आ जाये। तू कुछ सूचनाएँ जानकारियाँ लेकर आया प्रतीत होता है।

संत–आप में ज्योति वही गुरू नानक की है। नाम का रंग वैसा ही लगाते हैं। धन धाम चार पुत्र न्योछावर कर आये हैं। सारा पातशाही ठाठ लुटा आये हैं, परन्तु फिर अछोह हैं। कोई थोड़ा सा गये का पछतावा अथवा खोये का दुख नहीं। रेखाएँ खींचकर रेखाएँ मिटा देने में जैसे हर्ष शोक नहीं ऐसे अतीत रहे हैं। हैं फकीर, मुकाबला समय के पातशाह के साथ है। फौजें, किले, तोपें बना ली हैं और वे घमासान किये हैं कि तुर्क सल्तनत काँप उठी है। इधर युद्ध के ठाठ हैं, उधर नाम रंग नित्य नया है। कीर्तन–हरि यश–होता है, उपदेश करते और तारते (कल्याण करते) हैं। बड़े बड़े त्यागी और तपी चरण पकड़ते और शरण माँगते हैं।

जैत: आश्चर्य है युद्ध और हरि प्रेम! आपको विश्वास आ गया कि हरि प्रेम में रत हैं।

संत–रत क्या हरि प्रेम का मस्त चश्म हैं, उछल उछल पड़ रहा है प्रेम आपके नेत्र स्रोतों से। देखो आप फ़रमाते हैं–

"साच कहउ सुन लेहु सभै जिनि
प्रेम कीओ तिन ही प्रभु पाइओ॥"

जैत–नमस्कार! यह सुगन्ध गुरू नानक की है। परन्तु युद्ध और प्रेम कैसे इकट्ठे?

संत–औरंगज़ेब के हाथों प्रेम और भक्ति वालों की रक्षा के लिए युद्ध किये हैं। फकीर हैं इसलिए तलवार पकड़ ली है कि अत्याचारी के हाथों से संत फकीर नहीं मरने

देंगे। प्रयोजन स्वार्थ का नहीं, लोभ का नहीं, राज्य और तृष्णा का नहीं परन्तु एकदम धर्म रक्षा का है। बतायें राम जी ने राक्षसों को तलवार दिखाई थी कि नहीं? कृष्ण जी ने दुष्टों के प्रहार के लिए पांडवों को तलवार पकड़ायी थी कि नहीं? आप रथवाह युद्ध में बने थे कि नहीं? वैसे ही कलियुग मे यह संतों का कल्याण करने वाला अवतार प्रकट हुआ है।

जैत–चलो फिर दर्शन करें।

संत–चलो, आप देखो, तसल्ली करो।

बाहर बरगद के नीचे डेरा डाला है*, अपने ही घर आये हैं, वे पहचानते हैं आत्म रोग को, श्री दादू जी के ही मेहमान आए हुए प्रतीत हो रहे हैं।

जैत–तब चलो साधराम घर आये अतिथि को सिर पर उठाते हैं और ये तो गुरू नानक के हुए, हाँ, गुरू नानक हुए आप। दादू के घर नानक आये तो दादू बलिहारी जाये।

: २ :

बरगद के नीचे छोटा सा शामियाना (तम्बू) तन रहा है, नीचे सिंहासन बिछ रहा है, ऊपर बैठे हैं, साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह। चँवर कर रहा है एक सिक्ख, और सिंह, आ आकर बैठ रहे हैं, कोई पहुँच रहे हैं कोई कील गाड़ रहा है और घोड़े बाँध रहा है। धीरे-धीरे सारा विचरने वाला टोला पहुँच रहा है। दिन की स्थिति, रसद पानी, आराम के प्रबन्ध हो रहे हैं। कोई दर्शन को आ रहा है, कोई खबर पाकर रसद ला रहा है, कोई घास दाना ला रहा है। दाता जी के पहुँचने की ख़बर सारी ओर फैल चुकी थी और लोग दर्शनों के लिए आ रहे थे कि इतने में महन्त साहिब भी पहुँच गये। महन्त दर्शन करके निहाल हो गया। आगे होकर चरणों पर शीश रखा। सतगुरू ने आदर के साथ सिर सँभाला और प्यार के साथ उठाकर अपने आप बिठा लिया। आप महन्त था अभ्यासी आदमी और अपने निश्चित किये सिद्धान्तों पर व्यवहार करने वाला और करनी करतूत में पक्का, पास बैठते ही सतगुरू की आत्म शक्ति की इच्छा पहचान गया।

महन्त–आप बहुत साके करके आये हो, परन्तु सबसे अधिक साहिबज़ादों की शहीदी का हाल सुनकर दुख होता है। धन्य हो आप, दो लाल बहादुर तो आँखों के आगे शहीद करवाये और सी नहीं की ओर दो किस बेदर्दी से शहीद किये गये सुना और झेल लिया। आप महापुरुष हो, आप से बर्दाश्त हुए ये दुख नहीं तो पुत्रों का दुख गृहस्थी के लिए बुरा, फिर एक ही बार में चारों पुत्रों का, भगवान रक्षा करे। क्षमा करना, दावे में दुख ही होता है, श्री दादू जी ने तभी कहा है:-

दादू दावा दूर कर बिन दावे दिन कट्ट।
केती सौदा कर गए एस पसारी दे हट्ट।

गुरू जी–ठीक है, दावा दाह का मूल है, निर्दावे (निराधिकार) रहना अशंक रहना है, दावे हीन सुखी और खुश रह सकता है, परन्तु महन्त जी! दावे दावे का अन्तर है। एक

* यहाँ अभी तक निशान बताते हैं।

दावा है निज के स्वार्थ के लिए, अपने लिए सब कुछ चाहना और दूसरे को वंचित रखना, कोई जन्मसिद्ध अधिकार समझना कि मेरा हर पदार्थ पर है और अन्य सभी तृतीय हैं। यह दावा अपने आप में दुख का सामना करवायेगा, बल्कि यह दावा तो जीत होकर प्राप्ति हो जाने पर भी दुख दाता ही बनेगा। क्योंकि मन का धर्म है कि यह एक विजय प्राप्ति के बाद दूसरी की ओर और दूसरी से तीसरी की ओर ले जाता है, ऐसे हमेशा अतृप्त और अशांति रखता है, और फिर दूसरों के दावे के साथ टकरा जाने के कारण मुकाबला आ पड़ता है। परन्तु महंत जी! एक दावा और है, मन तृप्त है और शांति है, साईं चित्त है और साईं के रंग रस का स्वाद बना रहता है पर उसकी नज़र पड़ते हैं दावे वाले लोग, जिन्होंने अनेक गरीबों, दुखियों, दर्दमंदों को उनके उचित अधिकारों से वंचित कर दुखी कर रखा है, अथवा संतों साधुओं को विपत्ति में डाला है और प्रजा इन दावेदारों के हाथ तंग है। ये दावेदार अपने घर छोड़कर दूसरे के घर आकर वहाँ के मालिक होकर उनके अधिकार नहीं पहचानते, पूरा नहीं तौलते, दुख और पीड़ा की आवाज़ पर नहीं पसीजते, बल्कि अपने दावे, झूठे दावे ही ज़ोर ज़ुल्म के द्वारा पूरे करते हैं। ऐसे पापियों के दावे तोड़ने के लिए वाहिगुरू हुक्म देता है फकीरों को–कि सब कुछ मेरा है, आप मेरे पुत्र हो, अच्युत तनय आप हो, मेरे वारिस होकर दावा बाँधो और झूठे दावेदारों के दावे तोड़ दो। महंत जी! ऐसे दावेदार बनकर उठना पड़ता है। आगे से झूठे दावों वाले मुकाबला करते हैं, फिर सारे कष्टों का सामना करना पड़ता है। वह सामना करना अपना धर्म बन जाता है, क्योंकि उसका फल सृष्टि की पीड़ा हरण करना है। अगर अपने सिर कष्ट झेल लेने से अनेक लोगों का उद्धार हो तो उस दावे के दुख झेलने सुखों से प्यारे होने चाहिएं। महंत साहिब! आप फकीर के चेले हो, साईं के प्यारे हो, त्याग और क्षमा में अपनी गुज़ार सकते हो, परन्तु अगर आपके कलेजे में जगत पीड़ा भर जाये तो आप फिर मुश्किलों के सामने करोगे, और संकटों के बीच से निकलोगे। उस समय आपका ईश्वरीय रंग आपको बंदगी में ऐसे जीवन सत्ता सहित रखेगा कि मेरा दावा मेरा नहीं पर असली दावेदारों का दावा मेरी वकालत में आ घुसा है। इसी तरह की हालत में हमने यह चतुर गुण उठाया है और खालसा इसी तरह का उपकारी निर्मित किया है, इसलिए आपका वाक्य सुनकर हम कहते हैं:-

दादू! दावा बंन्ह के दुश्मन लईए लुट्ट*।
इको रहिसी खालसा होर मरेसी हुट्ट।

महंत–सत्य कहा है आपने, परन्तु सब बातों की दारू श्री दादू जी ने तो क्षमा को कहा है, इसीलिए उन्होंने फ़रमाया है:-

दादू समा विचार के कलि का कीजै भाइ॥
जे को मारै ढीम ईंट लीजै सीस चढ़ाइ॥

गुरू जी–ठीक है अगर जगत से परे होकर प्रवृत्ति और दूर रहकर निवृत्ति में दिन गुज़ारने हों तो सुन्दर शिक्षा है। हाँ हृदय को निर्वैर रखने के लिए वैर करने वाले के साथ

* सभ नूँ लईए लुट्ट, भी पाठांतर है।

वैर न करना आत्म गुण है, और हमारे घर में भी श्लाघा रखता है। घूँसा मारने वाले के पैर चूमने गुरू ग्रंथ साहिब जी में भी आये हैं पर उसका भाव हृदय की निर्वैरता और सर्व प्यार से है। इतना प्यार में ऊँचा हो कि बुरे किये का रोष न करे, इतना प्रेम करे कि बुरे का भी भला करे। महंत जी! यह अपनी छोटी 'मैं' को अहम् से साफ करने के निमित्त है। जीव का अपना आप अज्ञान में होने के कारण अहम् धारण करता है और अहम् को जो अच्छा लगे उसको लेने की ओर यत्न करता है, जो अहम् की वांछित वस्तुओं की प्राप्ति के रास्ते में रुकावट डाले तो यह उसके साथ क्रोध और वैर करता है। यह क्रोध है इसी यत्न में लगा सुखों दुखों में फँसा जीव भय भ्रम और दुख दर्द में फँसा जीवन काटता है। इस सारे क्लेश के मंडल को दूर करने के लिए प्रेम दारू है, जिसके प्रयोग से जीवन अंदर से सुखी हो जाता है। फिर जीव को किसी ओर मोह की जकड़ बंद और किसी ओर वैर द्वैष का भभूका उठ-उठकर तंग नहीं करते, इसलिए पहला सबक (पाठ) यही सिखाते हैं:-

"दुखु न देई किसै जीअ पति सिउ घरि जावउ।" (गउ: वा: म: ५)

भई! अगर नेकी (भलाई) नहीं होती तो बुराई करनी तो छोड़ दो। जब बुराई छोड़ दे तो कहते हैं, नेकी कर–

"सुक्रितु करि करि लीजै रे मन॥"

जब नेकी सीख जाता है तो कहते हैं:-

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ।"

जब ऐसा करते हुए निंदा होती है तो कहते हैं–

"करि पुनहुं नीच सदाईऐ॥"

इस तरह मन निर्मलता में चल पड़ता है, बुराइयों से मुँह मोड़ता है, फिर साथ ही नाम में भेज़ देते हैं तो बेहिसाब मैल कटती है और मन जो निर्मल हुआ था ऊँचा हो जाता है। ऐसा करते हुए फिर जीव की गति उन्मन हो जाती है। उसको फिर साईं के साथ नेह लगता है। साईं के साथ लगकर अपना आप सीधा हो जाता है और अहम् को टेढ़ापन निकल जाता है, अविद्या की काई कट जाती है और हर्ष शोक, राग द्वेष दूर हो जाते हैं। इस प्रकार का जब रंग लग जाये और फिर हुक्म हो कि जगत की ओर देखो, और जगत दुखी नज़र पड़े तो दुख हरने का सामान करना पड़ता हे, चाहे वह उपदेश हो चाहे नाम की भेंट देवी हो और चाहे उस में जंग आ पड़े। जंग आ पड़े तो फिर सारा कुछ साहस वाला, वीरता वाला करना पड़ता है। मन, महंत जी! जब उन्मन हो चुका है, जाग चुका हे, अहम् को टेढ़ापन निकाल चुका है, साईं के साथ लगकर साईं के रंग से रंग चुका है, उसने अगर पराये हित के लिए तलवार पकड़ी हैं तो उसके ज्ञानवान हो चुके मन में वापिस अज्ञान नहीं आ रहा, वह तो परहित के लिए दुख पा रहा है।

आपन बिगार बिराना सांढै॥ (गौ: रवि:)

उसके अंदर तृष्णा नहीं, उसको राग द्वेष कहाँ? अब वह उसको कि जो साधुओं को, गरीबों को, बेदोषियों को ईंटें मार रहा है समझायेगा; अगर वह न समझे तो वह उसको

मारने के लिए डटकर खड़ा हो जायेगा, अगर वह आगे से इस समय क्षमा धारण कर के खड़ा हो जाये तो आप भी मरेगा, जिसकी रक्षा करने लगा था वह भी मारा जायेगा, तो उसका रक्षा करने का अथवा परस्वार्थ करने का प्रयोजन नष्ट हो जायेगा। अगर वह परस्वार्थ को सिरे चढ़ाना चाहे तो आगे से रोक करेगा, रोकने में कशमकश होगी उसमें शक्ति लगायेगा, शक्ति लगाते हुए झेलेगा पर मारेगा भी, इस प्रकार वह लगेगा अक्षमा में, क्रोध में, पर होगा वह दूसरों के भले के लिए क्रोध बर्दाश्त कर रहा, उसके लिए फिर यह न्याय क्षमा तुल्य होगा। इसलिए हे दादू!

समा विचार कै कलिका कीजै भाए॥
जे को मारै ईंट ढीम पाथर हनै रिसाए*॥

हमने ऊपर बताये इंसान जैसे लोग पैदा करके खालसा सजाया है, पत्थर इनके हाथ ऐसे पकड़ाये हैं। ये तृष्णालु ज़ोरावर नहीं बनाये, ये रक्षा करने वाले सन्यासी वीर बनाये हैं।

आप अपने चारों ओर नज़र दौड़ाओ कि समय में पीड़ा और कष्ट व्याप्त है कि नहीं, और इसका दारू करना इस समय धर्म है कि नहीं।

गुरू कहयो आयो कलि काला।
दुश्मन को भा तेज कराला॥२६॥
संत ग़रीब धेनु दिज दोखी॥
करहि अवग्ग्या मूरख रेखी॥
तिन सों दंड करन बनि आवै॥
धरनी छिमां नहीं निबहावै॥२७॥
तेग़ तुपक तीरन खरि धरि कर॥
करहिं दिखावन तेज तरातर॥
तउ कलिकाल बिखै बनि आवै॥
जीतहि हति चिन्ता बिसरावै॥२८॥ (सूरज प्रकाश)

महंत जी! हमने लोभी, कपटी, स्वार्थियों और भूले भटकों को धन-धाम धरती की तृष्णा के लिए थोथे (सार रहित) शूरवीर नहीं बनाया, परन्तु शुभ गुणवालों और नाम रंग वालों को शस्त्र पहनाये हैं कि ज़ुल्म दूर करके धर्म का राज्य पैदा कर दें। यथा–

सुध बुध सहित भले गुन सारे॥
नर उतरे कलियुग निरवारे॥
धरहिं शसत्र सिमरहिं सतिनामु॥
धरम धरहिं पहुँचहिं सुर धामु॥२९॥
इस कारन ते पंथ उपायो॥
दे आयुध रसबीर वधायो॥ (सूरज प्रकाश)

---

* 'पाथर तिसै टिकाउ' भी पाठान्तर है।

ये शूरवीर जो नाम वाणी के अभ्यासी हैं और जो पर स्वार्थ के लिए लड़े हैं और लड़ेंगे, योगियों से उत्तम पदवी पायेंगे। आप बताओ इनको अब निर्दावे होना सिखायें, और दोषी दुश्मन के आगे लेट जाने की क्षमा का उपदेश दें कि शूरवीरता का उपदेश देकर दुश्मन के अत्याचार के आगे सत्य पर खड़े होकर हठ करना और पाप के आगे न झुकना सिखायें धरती का बोझ दूर करना सिखायें और सभी साधुओं ग़रीबों आतुर हुए नेक जनों को सुखी करें?

महंत जी! गुरू अर्जन देव जी ने 'उफ' तक न करके शरीर दे दिया, क्षमा की हद्द की। हमारे पिता जी ने सीस दिया 'सी' नहीं की, शांत रहे, क्षमा और अंहिसा की हद्द की परन्तु ज़ालिम जुल्म से नहीं हटा। इसलिए उसको उसी के ढंग द्वारा जुल्म से रोकना है।

महंत जी! सभी अच्छे लोग धर्म धारण करके और धर्म को केवल त्याग में समझकर वनों में चले जाते रहे हैं। देश निराश्रित हो तुर्कों के वश पड़ गया है। अब घर-घर कष्ट है, इस कष्ट को दूर करना है। न धर्म को राज्य का पिच्छलग्गू बनाकर, पर राजसी लोगों को धर्म वाले बनाकर। खालसा धर्म वाला है, इसका आदर्श अन्तरात्मा में पूर्ण ज्योति का जागना है*। ऐसे जागृत और रोशन मनों का जगत में रहकर, गृहस्थ धर्म, राज्य धर्म, नीति धर्म में जीना जीवन है। हाँ, धर्म मुख्य रखना है। खालसे का तेज धर्म की नींव के कारण है। खालसा पूर्ण साधु, गुरमुख, नाम का रसिया, बाणी का प्रेमी, ऊँचे जीवन में जागता विचरण करेगा, परन्तु अन्तर सिर्फ यह है कि आवश्यकता पड़ने पर गृहस्थ के सारे धर्म निभायेगा। सिपाही सिपाहगिरी करता, मेहनती मेहनत करता, राजा राज्य करता, ऊँचे धर्म जीवन वाले होंगे। खालसा जो असली खालसा रहेगा, वह धर्म को सबसे आगे रखेगा, यह भूल कभी नहीं करेगा कि धर्म को पीठ देकर राजसी मामलों में पड़े, अथवा राजसी मामले सिक्खों का मुख्य काम हों और धर्म पीछे पड़ जाये, या नीतियों में पड़कर धर्म से पैर खिसकाये और धर्म द्वारा नीति की सफलताएँ प्राप्त करे। जब जब खालसा यह भूल करेगा, तब तब पंथ की जड़ खोखली होगी।

महंत साहिब के पास इन बातों का उत्तर कोई नहीं था। वे अच्छे और शुद्ध पुरुष थे। वे समझ गये कि गुरू जी वह काम कर रहे हैं जो हम नहीं कर सकते। फिर गुरू जी की वह समदृष्टि और समझ है कि अपने काम के अंहकार में नहीं हैं और हमें बुरा नहीं कह रहे। जिस उच्च दृष्टि में और उच्च क्रिया में खड़े होकर आपने दादू जी के वाक्यों पर अपने वाक्य कहे हैं वह ठीक है, दुरुस्त है।

महंत जी इन विचारों में थे कि करीब से एक सिक्ख ने सहज में कहा: श्री महन्त जी! साईं ने कलग़ियों वाले को प्रजा का रखवाला बनाकर भेजा है, अगर भेड़ों में बाघ आ घुसे, उस समय गडरिया (चरवाहा) जो रखवाला है क्षमा धारण कर बैठे तो इसका क्या अर्थ बनेगा? महंत साहिब की समझ में इस मोटे दृष्टांत ने बहुत काम किया, हँस पड़ा और कहने लगा: सत्य है सतगुरू जी आप सर्वज्ञ हो और समर्थ हो। आपका कार्य श्लाघा योग्य है। हम निवृत्ति के सुख के एक पक्ष के ज्ञाता साधु लोग हैं।

---

* पूरन जोत जगै घट मैं तब खालसा ताहि नखालस जानै (३३ सवैये)

फिर दादू जी की गद्दी के महंत जी ने श्री गुरू जी को नम्रता के साथ कहा: 'पातशाह! दादू जी का हुक्म है कि जो यहाँ आये उसको भोजन कराओ। आप कृपा करके यहाँ आये हो, हम आपके साथ होकर हिस्सा बँटाने योग्य तो नहीं पर इतनी कृपा तो करो कि आज का भोजन यहाँ प्राप्त करो।'

श्री गुरू जी सुनकर मुसकरा पड़े और परीक्षा के लिए इस प्रकार के वाक्य कहे:-

संत जी। हमारे साथ बाज़ हैं जिनको अब तक खुराक नहीं मिली। पहले इनको खिलाकर संतुष्ट कर लो, फिर हमें देग़ दो, हम भोजन आपका पा लेंगे।

यह वाक्य सुनकर महंत के चित्त में दुविधा उठ खड़ी हुई कि हमारा धर्म अहिंसा है, हमने माँस खाना नहीं, खिलाना नहीं, अगर माँस बाज़ों को खिलायें तो हिंसक हो गये और अगर न खिलायें तो वे भूखे हैं, वे भूख रहे तो सतगुरू जी भोजन नहीं खायेंगे। इस बात को सतगुरू जी भी जानते हैं कि हमारा माँस न खाना पाखंड के लिए नहीं, हमारा निश्चय ही इसी प्रकार का है, क्या पता परखने के लिए ही ये वाक्य कह रहे हों। फिर संत का हृदय अपनी सच्चाई पर अरदास में चला गया और उसको सत्य पर भरोसा हो गया, हाथ जोड़कर कहने लगा: पातशाह! आज हम आपके बाज़ों के आगे विनती करेंगे कि यह द्वार ग़रीब साधुओं का है, यहाँ माँस नहीं बनता। ज्वार, बाजरा हमारा खाना है आप हमारे अतिथि हो, हमारा भाव (प्रेम, श्रद्धा) अंगीकार करो और आज के दिन ज्वार बाजरा ही खा लो। मुझे आशा है वे आपके हैं और आपके होने के कारण हमारे भाव को अंगीकार करेंगे और आपकी कृपा से अपने स्वभाव पर हठ नहीं धारण करेंगे, आप इनको आज्ञा कर दो कि ज्वार बाजरा स्वीकार कर लें।

श्री गुरू जी मुसकराये और बोले: अच्छा साध राम जी भाव (प्रेम, श्रद्धा) स्वीकार है।

केवल 'भोजन' प्यार नहीं, 'भाव' प्यार है।

: ३ :

जैतराम गुरू जी के दर्शन कर कृतार्थ हो गया था। पास बैठकर आत्मिक प्रभाव की थाह पड़ गयी थी। वचन विलास करके उनकी बल बुद्धि और हर तरह के गुरुत्व का प्रशंसक हो गया था। आपकी कुर्बानियाँ और साके, किसी भी मौके पर चारित्रिक कमज़ोरी न दिखाना, ये सारे गुण सोच-सोचकर महंत अपने मन ही मन में वाह वाह कर रहा था। उसके अंदर यह भावना दृढ़ हो गयी कि यह ज़रूर अवतार हैं। जीव में इतने गुण कहाँ। महंत इस भाव में गदगद् हो रहा था कि उसको सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर रूप ज्योति के मनुष्य शरीर में दर्शन हुए हैं। इस तरह के भावों में वह रसद लाया और रसोइयों के आगे रख दी। फिर आप ज्वार बाजरे का खाना बनाकर लेकर बाज़ों के पास गया, और कहा कि सतगुरू के सेवादारो। आज का दिन हमारी खातिर अन्न पर निर्वाह कर लो, भोजन की ओर न देखो पर हमारी भावना की ओर देखो। बाज खाने की ओर देखते रहे। फिर जैतराम जो भक्त ज्ञानी था समझ गया कि मेरे वाक्यों में कुछ अहम् की बू है, यह सतगुरू के घर

नहीं चाहिए तो बोला: सतगुरू के सेवकों आज सतगुरू ने ग़रीबों के अन्न जल स्वीकार किया है, अपने सतगुरू की ख़ातिर अन्न का भोजन प्राप्त कर लो। दाता ने कृपा की है, अन्न स्वीकार किया है, आप उसके हो उसके सदके उसकी ख़ातिर अन्न ले लो। बाज़ों ने तत्काल वह ज्वार का खाना खाना शुरू कर दिया। इस समय सिक्ख और साधु सभी हक्के बक्के होकर देख रहे थे और हैरान हो रहे थे कि यह क्या कौतुक घट रहा है। बाज़ों को ऐसे खिलाकर साधु डेरे चले गये और आपस में कहें कि सचमुच सतगुरू कला (शक्ति, बाज़ी) वाला है, जिसके बाज़ भी अपने स्वभाव को छोड़ देते हैं*। कोई कहे देखो भई आश्चर्यजनक होता था कि अवतार होकर श्री राम कृष्ण युद्धों जंगों में कैसे रचते और शिकार खेलते थे। आज प्रत्यक्ष देखा है कि अवतारी व्यक्ति सचमुच अस्पृष्ट हैं। एक ने कहा हर ज़ोरावर (बलवान) और बढ़कर काम अथवा कुर्बानी करने वाले को लोग अवतार कहने लग पड़ते हैं। जैतराम ने कहा यह भी सच है परन्तु प्रत्येक योद्धा हर कुर्बानी करने वाला हर त्यागी वैरागी हर कोई वह जो सर्वसाधारण से बढ़कर कोई काम करे अच्छा तो हो सकता है, परन्तु अवतारी अंश अलग वस्तु है। पहचान वाले उसको पहचानते हैं। अवतारी अंश वाले की शूरवीरता आत्मिक चढ़ती कला में होती है; 'अहंकार के सामर्थ्य अथवा अहम् वाली त्यागवृत्ति' में नहीं होती। अवतारी अंश वाले का प्रभाव नाम के रसियों और ब्रह्मज्ञानियों पर शीतलता और आकर्षण का प्रभाव डालता है। अवतारी अंश वाले के कामों में आत्मशक्ति का प्रकाश होता है उसके करतब सदाचारी होते हैं, बल्कि सदाचार उससे चलता है। थोड़ी परख करने पर पता लग जाता है कि वह किसी प्रभाव द्वारा लिपायमान (लेप वाला) नहीं होता, जैसे उस सिक्ख ने कहा था, वह जल में कमल की तरह निर्मल होता है। अंतिम बात यह भी है कि उसमें से आत्मशक्ति करामात की शक्ल में स्वत: प्रकाश पाती है। वह करामात नहीं करता, न क़रनी पसन्द करता है, पर उसकी स्वत: एकाग्रता और स्वत: आत्म आरूढ़ता उस से कुछ न कुछ लक्षण दिखला जाती है। जैसे किसी अत्यधिक दुखी को देखकर अगर वे स्वत: पसीज जायें तो उस पर अरोग्यता का प्रभाव पड़ जाता है। वे इसको छिपाते हैं और जोश में आकर किसी खींच (आकर्षण) में नहीं जाते, किंतु पर स्वार्थ के किसी ठिकाने कृपा के घर में कभी आ जाने पर स्वत: सिद्ध उनसे कुछ हो जाता है, जैसे आज हमारी इस सरलता पर प्रसन्न हो गये हैं कि हमारा नियम माँस न खाना है और इस बात पर हम सच्चे दिल से टिके (स्थिर) हुए हैं। इसलिए उनकी आत्मशक्ति ने बाज़ों के स्वभाव पर अपना बल डाल दिखाया है। मेरा ख़्याल था कि मेरे एकाग्र मन का प्रभाव बाज़ों पर असर करेगा परन्तु मैंने विश्वास करके देखा कि गुरू जी के मन की प्रेरणा से उनके दृष्टा पक्ष की ओर से बाज़ों की चिन्तावृत्ति पर डाले प्रभाव द्वारा बाज़ों का मन फिर (बदल) गया। इस प्रकार का करिश्मा जीव श्रेणी का अभ्यासी पुरुष नहीं दिखा सकता; परन्तु गुरू जी में यह शक्ति (सामर्थ्य) है, वे अवतारी महापुरूप हैं। फिर देखो कि इस शक्ति को गुरू जी अपनी कोई बढ़ाई नहीं समझते। न

* सूरज प्रकाश ऐ : १, ३७।

ही गुरू जी ने यह करिश्मा अपनी आत्मशक्ति जताने के लिए दिखाया है, उनको तो हमारी सच्ची बेबसी पर तरस आ गया, मेहर (कृपा) के घर चले गये (कृपालु हो गये) तो यह स्वतः सिद्ध करामात हो गयी। जिस हालत को यथार्थ कहते हैं, अथवा जिसको वह सिख ज्ञानी, गुरू जी के साथ का सिंह, जो मेरे साथ बातें करता था सहज कहता था, उस सहज में करामात कम प्रगट होती है। करामात दिखाने की मेहर या कहर के मकान पर जाना पड़ता हैं। इसलिए ईश्वर के लोग करामात नहीं करते, रज़ा (ईश्वर की मर्जी) पर टिकते हैं। सहज का रस भोगते हैं और यह करामात करके खुश होते हैं कि किसी को ईश्वर के प्यार में डाल दें, किसी को 'वाहिगुरू योग' में जोड़ दें, किसी को ज्ञान दान कर दें। हम लोग अभ्यासी हैं, हमारा वेग योग अभ्यास की ओर बहुत है और हमारा रुख़ करामात दिखाने की ओर बहुत पड़ता रहता है, परन्तु उस सिक्ख ने बताया था कि गुरू घर में स्वतः सिद्ध करामात हो जाती है, नाटक चेटक* अथवा स्वार्थ के लिए कभी सहज के घर से नहीं उठते। नौवें सतगुरू का साका उसने सुनाकर कैसा स्पष्ट कर दिया था।

इसलिए साधुजनों। सबसे बड़ी परख कि महापुरुष में ईश्वरीय अंश है कि नहीं वह स्वतः ज्ञानारूढ़ है कि नहीं, वह स्वतः 'दृष्टा' पद में स्थिर है कि नहीं, यह है कि उसके सहज में कहे वाक्य अमोघ बाण होते हैं; जो उन वाक्यों पर चलें उसको अपनी वाकशक्ति और ध्यानशक्ति द्वारा आत्मरंग लगा देते हैं, माया की निद्रा खोलकर परमार्थ के रास्ते पर डाल देते हैं, और उनकी इच्छा, उन का इशारा, उनके वाक्य, परमेश्वर पारायण कर देते हैं। यह सबसे बड़ी करामात उनमें होती है।

जो महापुरुष जगत का भला कई और प्रकारों से करते हैं, परन्तु उनमें अवतारी अंश नहीं होता, जैसे किसी म्लेच्छ को मारकर ग़रीबों की रक्षा करनी, किसी को धन धाम ले देने, अपना आप न्योछावर कर जाना, वे आप अपनी इस कमी को मानते हैं। उनमें अज्ञान निकालकर ज्ञान आरूढ़ कर देने की शक्ति नहीं होती। मुझे आज आप प्रभाव देखकर और परीक्षा करके तसल्ली हुई है कि इस महान योद्धे में अवतारता है, यह योगी है, इसको सिद्धि स्वतः प्राप्त है, यह स्वतः ज्ञानी है और जो खेल कर रहा है, जगत के भले के लिए कर रहा है। इसकी बहादुरी, शूरवीरता, कुर्बानी, उपकार में अहम् की कोई लेशमात्र नहीं, मैं तो कहूँगा कि इसके अंदर लेशाविद्या तक नहीं है।

इधर तो इस प्रकार वचन विलास हो रहे थे, उधर डेरे में सिक्खों में भी विचार हो रहे थे। एक सिंह एक और समझदार को पूछ रहा था कि कैसे बाज़ों ने स्वभाव विरुद्ध काम किया? दूसरा कह रहा था सतगुरू की इच्छा ने बाज़ों के मन पर असर किया है। हम देखते हैं कि कई लोग अपने करतबों में ऐसा असर अपनी इच्छा का दूसरे की इच्छा पर डाल देते हैं। उसके पक्के हुए स्वभाव को अपनी इच्छाधीन लाकर उससे अंदर के भेद निकाल लेते हैं। फिर कई बार वे दूसरे को ऐसा नीम मूर्छित कर लेते हैं कि कड़वी वस्तु खिलाकर कहते हैं यह मीठी है तो उसको मीठी लगती है, तब सर्वशक्तियों के स्वामी

---

* भांडों का तमाशा, कौतुक।

सतगुरू जी का तुच्छ सी बाज़ों की मर्जी पर प्रभाव डाल देना कौन सी बड़ी बात हुई। यह पक्का जानो सतगुरू ने यह लोगों की तरह सोचकर और बल लगाकर नहीं किया। साधु की सरलता और निश्चय की परिपक्वता पर रीझ पड़े हैं, उस खुशी के समय स्वत: सिद्ध उनका चित्त किया कि बाज़ अन्न खा लें, तो उनकी स्वत: बलवान इच्छा का असर बाज़ों पर पड़ गया।

सिक्ख–अच्छा आनन्दपुर में जो सतगुरू ने ब्रह्मभोज किया था और माँस खाने वाले को अन्न खाने वालों से अधिक दक्षिणा देनी कही थी, उस समय माँसाहारियों को क्यों अधिक दिया था और यहाँ माँस न खाने वालों पर क्यों रीझे हैं?

दूसरा समझदार सिक्ख (जो अच्छा अभ्यासी और पठित था)–प्यारे! न तब माँस खाने से प्यार था, और न अब माँस न खाने से कोई राग था। तब भी इस नियम का प्रतिपादन कर रहे थे कि अपने सही किये निश्चय पर सच्चाई और ईमानदारी के साथ कौन चल रहा है और कौन है जो नियम तो और बताता है पर चलता उसके विरुद्ध है। तब भी 'सचियार' (सत्य को धारण करने वाला) की परख और क़द्र की थी, अब भी 'सचियार' की परख और क़द्र की है। अगर जैत राम मान जाता कि अच्छा जी! बाज़ों को माँस डाल देते हैं और आप अन्न खा लो तो सतगुरू जी इसको अपने निश्चय पर दृढ़ विश्वासी न समझते। जब उसने कहा कि मैं बाज़ों को अन्न डालने की विनती करूँगा तो सत्य के प्यारे सतगुरू ने समझ लिया कि यह अपने निश्चय पर पक्का है यह सच्चा पुरुष है, इसका अन्न स्वीकार करना चाहिए और इस आत्मरंग की कृपा करनी चाहिए, तो बाज़ों के मन को प्रेरित कर दिया।

सिक्ख–सिंह जी! फिर हम माँसाहारी हैं कि नहीं?

दाना सिक्ख (समझदार, सयाना सिक्ख)–"मासु मासु करि मूरखु झगड़े गिआनु धिआनु नहीं जाणै।" आदि पातशाही का महावाक्य है मुसलमान की तरह हमारे में माँस खाना पुण्य नहीं, जिस तरह उनमें है कि अपने हाथों बकरे पुत्रों की तरह पालकर कुर्बानी करो और माँस खाओ। न जैनियों की तरह ख्याली अहिंसा हमारा धर्म है कि मुँह पर पट्टी बाँधो और पानी दूसरों के मैले किये पिओ और जूओं तक को मनुष्यों का लहू पिलाओ और हिंसक पशुओं के आगे भी आप मरो परन्तु उनको न मारने दो। हमारा धर्म है नाम जपना, अंदर 'जागृत ज्योति'* हरदम जगे, सुरत साईं के साथ लगी सदा जिये और जागे+, हमारा मन चढ़ती कला में रहे@, कर्म हमारे अच्छाई के हों और वचन हमारे ठंडक डालने वाले और साईं की ओर प्रेरित करने वाले हों#। खाने पीने के लिए विहित अविहित का मसला हमारा एक ही है कि जिस वस्तु के खाने से मन में विकार उपजें और तन को

* जागत जोत जपै निस बासर, एक बिनां मन नैक न आनै।

\+ सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।।

@ अनद बिनोद तितै घरि सोहहि।।

\# जन आवन का इहै सुआउ।
जन कै संगि चिति आवै ठाउ।।

पीड़ा हो वे वर्जित हैं। यह नियम सारे जगत में एक ही अर्थ रखता है और प्रत्येक प्राणी के लिए एक जैसा है। सब कोई अपने लिए देख ले कि बीमार करने वाले पदार्थ और मन में विकार उपजाने वाले पदार्थ मना हैं, वह न खाये। आदि पातशाही ने फ़रमाया है:-

बाबा होरु खाणा रवुसी खुआरु॥
जितु खाधै तनु पीड़ाऐ मन महि चलहि विकार॥

इस तुक में से एक और भाव भी निकलता है कि बुरा धान भी नहीं खाना। जैसे चोरी का माल खाने पर जब पता लग जायेगा तब राजा पीड़ा देगा और चोरी का धान खाने पर सुरत विकारी भी होती है।

सिक्ख-ठीक है, पर क्या दिल की खुशियों और ऐशों के लिए गुलछर्रे उड़ाने वाले इस तुक, को बहाना बनाकर इस के आशय के उलट व्यवहार नहीं करेंगे!

समझदार सिक्ख-फिर झूठे तो कभी किसी रस्सी के साथ नहीं बंधे। तब तो वे अपनी करनी के फल भोगने के आप जिम्मेदार हैं, सतगुरू ने तो जगतव्यापी नियम बाँध दिया है, अमल (पालन) करना सच्चाई के साथ जिज्ञासु का धर्म है। गुरू का नियम पक्का और स्थिर है।

सिक्ख-ठीक कहा है।

समझदार सिक्ख-सिक्ख मुसलमानों की तरह एक ओर अथवा जैनियों की तरह दूसरी ओर अति पर न पहुँच जायें और वाहिगुरू प्रेम के आदर्श के स्थान पर खाना पीना ही पूँजी (प्रतिष्ठा) न बना लें, सतगुरू जी इस बात के लिए अनेक कौतुक करते रहते हैं। महा प्रशाद (मांस) बनता है पर देख लो कि महा प्रशाद ज़रूर ही पकाने की मज़बूरी नहीं है। जो नहीं खाना ठीक समझते उनको दूसरा भोजन मिल जाता है। सिंह जी नियम नाम जपना और वाहिगुरू प्रेम और वाहिगुरू ज्ञान में जीने वाले हो जाना है, बाकी तन की पीड़ा और मन की समझ करके चलना है इन विषयों पर झगड़े करने गुरू नानक देव जी ने मूर्खता बताई है। जो परमेश्वर को भूल जाते हैं वे हिसाब में हैं, अभिमान में हैं, वे अगर मांस न खाकर या खाकर अकड़ें तो दोनों बातें मूर्खता की हैं। जो जी उठे हैं पर माँस खाकर मन विकारी हो जाते हैं, वे आप नहीं खायेंगे जो इतने मन के ऊँचे हो गये हैं कि खाकर भी वृत्ति आरूढ़ रहते हैं, उन पर किन्तु करना नहीं बनता।

सिक्ख-ठीक।

इतने में लंगर (भोज्य) तैयार हो गया था, तैयारी की आवाज़ आ गई और सभी लोग लंगरखाने में चले गये।

: ४ :

प्रशादे (भोजन पदार्थ) खाकर सबने आराम किया। तीसरे पहर जब सतगुरू जी फिर तैयार बर तैयार होकर सज गये तो महंत जी आ गये और बहुत आदर के साथ विनय करने लगे कि डेरे के अन्दर चलकर चरण डालो, श्री दादू जी का स्थान देखा और हमें भाग्य

लगाओ, जहाँ जहाँ चरण डाल जाओगे हम याद रखा करेंगे कि ये स्थान सौभाग्यशाली हो चुके हैं।

महंत की श्रद्धा देखकर श्री गुरू जी ने इनकार नहीं किया* और अन्दर चलने के लिए तैयार हो गये। साथ में कुछ सिंह भी तैयार हुए।

दादू जी अपने समय में सच्चे खोजी और फिर भक्ति और योग के अच्छे फकीर हुए हैं। उनकी सच्चाई की मेहनत और भक्ति पर सतगुरू खुश थे। आश्चर्य नहीं कि दादू जी श्री गुरू घर में कभी आये हों। बाहर के प्रमाणों के लिए तो इतिहास खोज की आवश्यकता है, परन्तु अंदर की गवाही के लिए इस लेख के अंत में कुछ भजन दादू जी के दिए हैं जिनसे पक्की झलक दिखाई देती है कि दादू जी को गुरू घर की वाकफ़ियत थी, आश्चर्य नहीं कि चौथे पाँचवें सतगुरूओं के समय आप दर्शन स्पर्शन भी कर गये हों और कृतार्थ भी हो गये हों। दादू जी का जन्म सं० १६०१ वि० में अहमदाबाद में होने का पता चलता है। आपके माता पिता का पता ठीक ठीक नहीं चलता। पौष के बेहद ठंडे महीने में आपका मासूम शरीर नदी किनारे पड़ा एक नागर ब्रह्मण को मिला था, जिसने तरस खाकर उठा लिया और घर लाकर पालन पोषण का प्रबन्ध किया। अपने घर औलाद न होने के कारण ब्राह्मण ने इनका पालन पोषण पुत्रों जैसे किया। बचपन में ही योग आदि के मसले और शास्त्र के संस्कार कानों में पड़ते रहे पर वे काफी नहीं हुए दिल को ठहराने के लिए। फिर आप एक त्यागी साधु नितानंद नामक के सत्संग में गए और इनके प्रभावाधीन ही सन्यास धारण कर लिया। इसके बाद आप बंदगी में रहे और देशाटन भी किया। इसी समय में ही अगर कभी आप सातवें अथवा नौंवे सतगुरुओं को मिले हों तो आश्चर्य नहीं। अंत आप अजमेर से चालीस पैंतालीस मील दूर नरायणपुर नाम के गाँव में ठहर गये। आप के उपदेश से संप्रदाय चल पड़ा जो अब तक है और 'दादू पंथी' कहलाते हैं। दादू जी की समाधि इसी स्थान पर है। आप बहुत त्यागी थे, कम्बली और तूँबी+ आप का सारा साजोसमान होता था, वाणी भी आपने उचारी (कही) है, जिसका नमूना हम इस लेख के अंत में देंगे। उपदेश आपका नम्रता, त्याग और भक्ति का था। जैत राम आपकी गद्दी पर महंत हुआ है जो आज सतगुरू जी को मिला है। इस मिलन की निशानी इस समय तक गुरू जी के बैठने का निशान मौजूद है। इस प्रकार गुरू जी जैत राम के प्यार के कारण और दादू जी की तपस्या और भक्ति की ज़िन्दगी के कारण और आश्चर्य नहीं कि दादू जी के गुरू घर के साथ किसी सम्बन्ध के कारण, जिसकी झलक उनकी वाणी में है, अंदर गए और उस सत्पुरूष की समाधि को देखकर प्रसन्न हुए। इस समय गुरू जी ने सोचा कि आया यह हमारे साथ खालसा जिनमें अधिकतर नवीन सजे सिंह हैं, तैयार बर तैयार हैं कि नहीं, इसलिए दादू जी की समाधि की ओर देखकर चाव तो उसकी याद में आया, परन्तु तीर से नमस्कार की। तब यात्रा कर के और महंत का ठिकाना देखकर उसको प्रसन्न करके

---

* तीसरे पहर गुरू जी महंत की श्रद्धा देखकर जब उनके डेरे अंदर गए। (तवा० खा०)

\+ कद्दू की जाति का एक फल जिसे फकीर गडवी के स्थान पर प्रयोग में लाते हैं।

सतगुरू जी ने डेरे आकर आराम किया; तब अंदर साथ गए सिंहों ने आकर विनय की:-

सदा अभूल आप उर माहूँ।।

पर अब:-

भएं उचित दैबे तनखाहू।।

हम जानते हैं कि आप-

बखशहु जग औगुण समुदाय।।

पर अब आप:-

लेहु खालसे ते बखशाय।।
सुनि बिबेक* को भए प्रसन्न।।
कहयो कि 'गुरू खालसा' धंन।।
करी नमो हम परखन हेत।।
भए सिंह कै नहीं सुचेत।।
लिहु तनखाह अवाज सुनावउ।।
इस बिधि की नित रहत कमावउ।। (सूरज प्रताप)

यह वचन सुनकर खालसे का दीवान सजकर धर्मदंड सोचने लगा, आखिर सवा सौ रुपया फैसला हुआ जो सतगुरू ने हँस-हँसकर दिया और खालसे ने उस रुपये का लंगर के लिए तम्बू बनवाया।

गुरू जी की इस चेष्टा पर खालसे को एक खुशी तो यह हुई कि मालिक ने हमारी परीक्षा ली और खालसा पूरा उतरा गुरू की कृपा से। दूसरी खुशी यह हुई कि जिसको हम सच्चा गुरू समझते हैं, जिस 'एक' के वचन पर हज़ारों सिक्खों के समुदाय जानें वार गये और अब जो हमारे साथ हैं जानें तली पर रखी खड़े हैं। हाँ, जिस के वचन पर लाखों सिक्ख तन मन लिये खड़े देस परदेस में बस रहे हैं, वह गुरू ऐसा बहादुर, प्यार वाला और ग़रीब निवाज़ और दासों की प्रशंसा करने वाला है कि उनके कहे वचनों पर गुस्सा नहीं करता, बल्कि खुश होता है। हम सौभाग्यशाली हैं कि ऐसे ईश्वरीय नूर के साथ सम्बन्ध बनाया है। आप भगवन्त रूप+ होकर, अभूल होकर पापों के बख्शने की सामर्थ्य पर शक्ति रखकर, परखने के लिए किये कौतुक पर भी अपने बँधे नियम पर खड़ा है। हाँ, खालसा खुश था और गदगद था, समझदार सिक्ख यह भी विचार रहे थे कि यह बात तब कि जब कभी पंथ में श्रद्धाभक्ति और प्यार घटा, जब नाम सिमरन और वाणी का प्रेम थोड़ा सा भी नीचे को गया तो उस वीर गुरू के लोग इस घटना को मिसाल बनाकर उपद्रव किया करेंगे, परन्तु वे देखते थे कि शूरवीर गुरू भूत भविष्य का ज्ञाता है और सब कुछ जानकर कौतुक करता है। सतगुरू जी का आशय पंथ में जत्थेबंदी कायम करने का था जिसकी नींव आप रखी थी। खालसे को सर्वकाल के लिए अपने दिए अटल नियमों पर

---

* विवेक, ज्ञान, विचार।

\+ वहु प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप गुर गोबिन्द सूरा।। (वा॰ भा॰ गुरदास सिंह)

चलने की आज्ञा की थी और यही प्रयोजन था कि बाल खालसा सीख जाये कि नियम पालन हमारा धर्म है। पंथ गुरू है पर गुरू के साथ। गुरू अगर बीच में नहीं तो पंथ 'गुरुपंथ' नहीं। जैसे बारात दूल्हे के साथ बारात है अगर दूल्हा है ही नहीं तो किसी जनसमूह किसी मनुष्यों की भीड़ को बारात नहीं कहा जा सकता। संगत की प्रशंसा का नियम सतगुरू के घर में आदि से है, "विच संगत हरि प्रभु वसै जीउ।" परन्तु संगत अथवा पंथ है गुरू के साथ, सिख है गुरू के क़ारण अगर गुरू नहीं तो सिख किसका और संगत कैसे है। इसीलिए गुरू जी ने जब खालसे को गुरू स्थापित किया तो श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी को गुरू स्थापित किया कि गुरू सहित खालसा गुरू है। ज़ैसे गुरू जी अपने जीते जी (जीवनकाल में) अपने सहित खालसा कहते थे और उस शूरवीर गुरू सहित खालसा गुरू था, वैसे ही अब गुरू ग्रंथ सहित खालसा गुरू है। इस घटना को बहुत अदब के साथ पढ़ना सुनना चाहिए और असीम और अनन्त आदर के साथ भर ज़ाना चाहिए उस वीर गुरू के लिए जिसने गुरू होकर, समर्थ होकर, अकेले ने पाँच को अमृत पान करवाकर खालसा सजाया, और फिर उसको आप ही गुरू स्थापित कर दिया। हाँ जिसके अपने दिमाग़ में से खालसा का आदर्श उपजा और जिसने खालसा बनाया, उसने उनसे जो हथेली पर सिर रखकर उसके चरणों पर सदके (न्योछावर) करने आये थे, उन से जो उसके निर्मित किये थे, आप अमृत पान किया। यह अपने बनाये नियमों की हद दर्जे की कमायी है। वही रंग देखने के लिए सतगुरू ने आज का कौतुक किया था। 'पंथ में कोई बात नियम विरुद्ध न चले' यह सतगुरू जी ने खालसे को इस कौतुक में सिखायी है। यह कौतुक बेअदबी का अधिकार पत्र नहीं, न इस का यह भाव है कि महापुरुषों और सतगुरुओं की यादगार ही न बने। आनन्दपुर से चलते समय इस बली सतगुरू जी ने अद्वितीय साका करने वाले गुरू तेग़ बहादुर जी के स्थान की सेवा के लिए एक साधु को स्थापित किया। जानते थे कि आनन्दपुर में लूट मचेगी, सब लोग दौड़ जायेंगे, बरबादी और उजाड़ आयेगी, परन्तु कितने ख़बरदार थे उस पवित्र स्थान की रक्षा के लिए, कितने सूझवान थे उस पंथ में जानभर देने वाले पवित्र ठिकाने को कायम रखने के लिए। यह साधु जिसको स्थापित किया था, ऐसा बंदगी वाला और खालसे के रस्म रिवाज और गुरू के नियमों का ज्ञाता था कि जब गुरू जी के अपने सम्बन्धियों में से एक आनन्दपुर में मुखिया हो गया और गुरू मंदिर में गुरू बनकर अपनी पूजा करवाने लगा तो इस गुरू के बनाये साधु की ही हिम्मत थी कि इसने जाकर कहा कि यह नियम विरुद्ध है, आप गुरू पद पर नहीं स्थापित किये गये। इस प्रकार गुरू गोबिन्द सिंह जी का गुरू तेग़ बहादुर जी के स्थान के सदा आबाद रहने का फिक्र और प्रबन्ध करना बताता है कि आपका तात्पर्य यादगारों के स्थानों को यादगार के लिए कायम रखना था। 'गोर मड़ी मठ भूल न मानै' के स्पष्ट वाक्य भी इसीलिए कहे थे कि इनकी अंध पूजा न हो। फिर परम्परा से पाँचवें सतगुरू और अन्य गुरू साहिबान के देहुरे चले आये हैं जो कौम के नेत्रों के आगे जीवित इतिहास और रूह फूँक देने वाले प्रकाश स्तम्भ बनकर कायम हैं।

दूसरी बात यह है आप को धर्मदंड लगा आप द्वारा उसको स्वीकार करने से यह भाव था कि पंथ के फैसले के आगे हर एक सिक्ख सिर झुकाये, एक एक का अहम् पंथक जत्थेबंदी के आगे विद्रोही न हो, क्योंकि जत्थेबंदी का नियम यही है कि एक की आवाज़ पर समूह की आवाज़ बलवान हो। हर एक जो एक एक है, अकेला है, वह समूह के आगे झुके और अपनी अकेली आवाज़ से ज़िद और हठ करके जत्थेबंदी को न तोड़े।

"शायद कोई मानवीय व्यक्ति कभी अपने आदर अथवा ज़िद में होकर पंथ के आगे अकड़कर जमातबंदी की नींव रख दे" इस भूल से बचाने के लिए सतगुरू ने यह सबक सिखाया कि जब मैं अपने बँधे नियम का आदर करता हूँ तो हर सिक्ख उसका आदर करे। परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि बुरी नियत से चार शरीर मिलकर हर एक के आदर सम्मान पर हमला करें और अपने इस निरादर के बुरे काम को विहित बताने के लिए बेअदबी के साथ इस साखी को प्रस्तुत करें, ऐसा करना भी जत्थेबंदी को चोट मारनी है। क्योंकि जब पंथक फैसलों की नींव केवल नियम परस्ती और हर तरह के व्यक्तिगत वैर विरोध से सफाई पर न होगी तो जत्थेबंदी पर से विश्वास कम होने लग जायेगा और जत्थेबंदी अपने आप टूटने लग पड़ेगी। जत्थेबंदी पर विश्वास होना यही जत्थेबंदी की ताकत है, और विश्वास तो होता है अगर इस जत्थेबंदी के लोग नियमपरस्त हों, टुकड़े बनाने में न पड़ें और व्यक्तिगत बातों को दिल से भूलकर केवल पंथ के भले के लिए कुछ करें कि जो कुछ करना हर समय आ बने। दूसरे सिक्ख मामलों के फैसले के समय सिक्खी विश्वास वाले नाम और वाणी के प्रेमी, सिक्ख धर्म को समझने वाले, रहनी कहनी के वीरों की भागीदारी ज़रूरी है। अज्ञानता वाला दिखावे का सिख और नास्तिक कैसे नियम प्रतिपादन कर सकता है।

इसीलिए श्री गुरू गंथ साहिब जी सिर पर स्थापित किये हैं। श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी नाम स्मरण सिखलाते हैं, प्रेम सिखलाते हैं और सत्य की पैरवी सिखलाते हैं और इनकी रोशनी में चलता पंथ गुरू आदर्शों पर ठीक चलता है अगर सिक्ख इन नियमों पर ठीक चलें तो उनकी जत्थेबंदी में कभी फूट और जमातबंदी (ग्रुपबाज़ी) नहीं पड़ सकती, उनमें गुरू आप विराजमान होता है।

यहाँ से अब दक्षिण की ओर कूच की तैयारी हुई। पहले दिन और देर तक रात को और अमृत समय (प्रातःकाल) चलने तक दूर-दूर से सिक्ख, जिनको ख़बरें पहुँचीं, आते रहे। दूर नज़दीक के और लोग भी परमार्थ के खोजी आते और नामदान प्राप्त करते रहे। साधु जैतराम ने बहुत सम्मान के साथ आपको विदा किया। प्रतीत होता है कि आपका प्रेम बहुत अधिक हो गया था क्योंकि जब श्री सतगुरू जी वापिस दक्षिण आयें और ठहरे*। बुरहानपुर गये हैं और योगी जीवनदास की भावना पूर्ण की है, जब जैत राम महंत वहाँ भी पहुँचा है और सतगुरू जी के दर्शन मुलाकात करके फिर प्रसन्न हुआ है। वहाँ जब महंत जी को पता लगा कि गुरू जी दक्षिण जा रहे हैं और गोदावरी के तट कहीं ठहरेंगे तो बंदे

* गुरू जी यहाँ से दक्षिण को जा रहे थे परन्तु बघौर तक जाकर फिर मुड़े और दिल्ली आये। वापिस फिर बहादुर शाह के साथ दक्षिण को गए और बुरहानपुर ठहरे थे।

की (बंदा बहादुर की) कथा इसी ने सतगुरू जी को सुनाकर रोका था कि आप उधर न जाना क्योंकि वह कौतुकी फकीर है और अपने वीरों द्वारा साधुओं संतों का अपमान करता है। जैत राम जी ने अपनी आप बीती भी सुनाई थी कि पलंग पर पहले मुझे बिठाकर फिर उलटवा मारा। सतगुरू ने सुनकर कहा था कि जैत राम जी, इस जैसे आदमियों को ठीक करना तो हमारा मुख्य धर्म है, हम उसके मठ ज़रूर जायेंगे और उसको आदमी बनायेंगे, आप फिक्र न करो, हमारे शीश पर अकाल पुरुष का हाथ है। अकाल पुरुष की शक्ति उसको अधीन करेगी, और वह सेवा करेगा। तवारीख खालसा में तो लिखा है कि गुरू जी ने यह भी कहा था कि आप कोई साधु अपना साथ भेजो जो वहाँ घटित होने वाले कौतुक को देखे और फिर आपको आकर बताये कि वह आदमी बन गया है और सेवा में लग गया है तो जो आपका फिक्र दूर हो और वाहिगुरू जी की शक्ति दिखाई दे कि वह अपने काम कैसे पूर्ण करता है।

इस प्रकार जैतराम जी को प्यार करके उसके भजन बंदगी वाले मन को रसिया बनाकर श्री सतगुरू जी उपकारी वायु की तरह आगे चल पड़े और हमारे लिए यह उपदेश दे गए कि सदा जीवन को सत्य पर टिकाओ और नियम पर खड़े होकर बनावटों से बचने के यत्न में और नाम प्रेम में रहो।

: ५ :

कुछ एक भजन दादू जी की वाणी के हम आगे दे रहे हैं। इनका प्रयोजन यह है कि इनमें गुरूवाणी की झलक है*, गुरू आदर्शों की सुगन्ध है, प्रतीत होता है कि आप सतगुरू जी को मिले होंगे और कोई सुख संयोग प्राप्त किया होगा और गुरुवाणी की जानकारी प्राप्त की होगी। दादू जी अहमदाबाद में जन्मे और हिन्दुस्तान के ही रहने वाले थे, परन्तु वाणी में पंजाबी के पद आये हैं, बल्कि पहरे+ पंजाबी में ही हैं, जो बताते हैं कि पंजाब में ज़रूर आये और रहे होंगे। पंजाब में आकर रहकर गुरू साहिबान के दर्शन मुलाकात होनी बहुत ही संभव और होने वाली बात है, अगर कोई सज्जन आपके जीवन के सम्बन्ध में अथवा गुरू घर के साथ भेंट होने के सम्बन्ध में ऐतिहासिक रोशनी डाल सके तो बहुत उपकार है।

१. आरती, राग धनासरी

निरंकार तेरी आरती ए अनंत भवन के राय।।
सरब निरन्तर रवि रहे महिमा कही न जाय।।रहाउ।।
सुर नर सभि सेवा करैं ब्रह्मा बिसनु महेस।
देव तुम्हारा भेव न जानै पार न पावै सेस।
चंद सूर आरती करैं नमो निरंजन देव।

* दादू जी की वाणी में श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी में आई भक्त वाणी के साथ भी कई स्थानों पर समानता दिखाई पड़ती है, भक्त वाणी तो हिंद में प्रवृत है ही थी।

+ प्रहर प्रथा में उच्चारण की गई वाणी।

धरन पवन आकास अराधैं सभै तुमारी सेव।
सकल भवन सेवा करैं मुनि अरु सिद्ध समाध।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन अविगत के अगाध।
जै जै जीवनि राम हमारी भगत करैं लिव लाय।
निरंकार तेरी आरती कीजै दादू बलि बलि जाय।

आदि पातशाही जी की आरती राग धनासरी में है, यह भी धनासरी में है। ख्याल, चाँद, सूर, पवन, की ओर से आरती होने के उससे मिलते हैं।, पद 'लिवलाय' खास ध्यान योग्य है। फिर हिन्दी, संस्कृत वाले पद 'निराकार' प्रयुक्त करते हैं, 'निरांकर' पंजाबी का प्रयोग है और आदि पातशाही ने प्रयुक्त किया है।

२. पहरे ।श्री राग।

पहिले पहिरै रैण दै वणजारिआ मित्रा तूँ आइआ एह संसार वे।
माइआ दा रस पीवण लग्गा विसरिआ सिरजणहार वे।
सिरजणहार विसारन कीआ मात पिता कुल नार वे।
झूठी माइआ आप बंधाइआ चेतै नहीं गंवार वे।
गंवार न चेते अउगुण केते बंधिआ सभि परवार वे।
दादू दास कहै वणजारया तूँ आइआ एह संसार वे।

दूसरा॥ **दूजै पहिरै रैणि दे वणजारिआ मित्रा तूँ रत्ता तरुणी नाल वे।**
माइआ मोहि फिरै मतवाला राम न सक्या सँभाल वे।
राम न संभारे सत्ता नारे अंधि न सूझै काल वे।
हरि नाहि धिआइआ जनम गंवाइआ दहि दिस फूटै तालि वे।
दहि दिस फूटा नीर निखूटा लेखा देवण साल वे।
दादू दासि कहै वणजारया तूँ रत्ता तरुणी नाल वे॥२॥

तीसरा॥ **तीजै पहिरै रैण दै वणजारिआ मित्रा तै बहुत उठाइआ भारवे।**
जो मन भाइआ सो कर आइआ ना कुछ कीआ विचार वे।
बिचार न कीआ नांव न लीआ किउं कर लंघै पार वे।
पार न पावै फिर पछुतावै डूबण लगा भार वे।
डूबन लग्गा बेड़ा भग्गा हाथ न आइआ सारवे।
दादू दास कहै वणिजारया तैं बहुत उठाइआ भार वे॥३॥

चौथा॥ **चउथै पहिरै रैण दै वणजारिआ मित्रा तूँ पक्का होइआ पीर वे।**
जोबन गइआ जरा बिआपी नाहीं सुध सरीर वे।
सुध न पाई रैण गवाई नैनउ आइआ नीर वे।
भउजल बेड़ा डूबन लगा कोई न बंधै धीर वे।
कोई धीर न बंधै जम के फंधै किउं कर लंघै तीर वे।
दारू दास कहै वणजारया तूँ पक्का होइआ पीर वे॥४॥

आदि पातशाही श्री गुरू नानक देव जी ने श्री राग में पहरे उच्चारण किये हैं, दादू जी ने भी श्री राग ही पहरे कहने के लिए लिया है। गुरू जी ने बनजारे के पुत्र की मृत्यु प्रथा यह शब्द कहा था, दादू जी ने भी संबोधन बणज़ारे का ही ले लिया है। वहाँ भी पद बनजारिया मित्रा है यहाँ भी पद बनजारिया मित्रा ही प्रयुक्त किया गया है। गुरू नानक देव जी की बोली पंजाबी है, यहाँ भी पंजाबी प्रयोग में लाई गई है, चाहे श्री दादू जी पंजाबी नहीं थे। यहाँ से ही पक्का अनुमान होता है कि आप न केवल पंजाब में आये बल्कि पंजाब में इतनी देर रहे कि यहाँ की बोली में कविता रचने लग पड़े। फिर पहरे लिखने और श्री राग में लिखने और छः तुक वाले बंद* गुरूवाणी के पहरों जैसे लिखने, एक तुक को पलटा देना उसी तरह, चारों पहरों में गुरुवाणी की तरह चार अवस्थाएँ लिखनी बिना गुरुवाणी के पहरों से पूरी जानकारी के हो नहीं सकता। इसलिए यह अनुमान करना कि दादू जी ने गुरूवाणी के चश्मे से अमृत पिया था सत्य से दूर नहीं होगा।

३. राग डोडी ।काफी।

नाउ रे नाउ रे नाउ रे।
सगल सिरोमणि नाउ रे।
मैं बलिहारी जाउं रे।१। रहाउ।
दुतरि तारै पार उतारै नरक निवारे नाउ रे।
तारन हारा भउजल पारा निरमल साचा नाउ रे।
नूर दिखावै तेज मिलावे जोति जगावै नाउं रे।
सभ सुखदाता अंम्रित राता दादू माता नाउ रे।

हिन्दी संस्कृत में पद 'नाम' प्रयुक्त होता है। 'नाउं' ठेठ पंजाबी पद है और श्री गुरू ग्रंथ साहिब में आदि पातशाही से प्रयुक्त होना आरम्भ हुआ है, हिन्दी पद 'भवजल' है, 'भउजल' पंजाबी है, 'सगल' भी 'सकल' पद की पंजाबी सूरत है।

४. फुनहे

माप माप दरयाउ दिवाने होए रहे॥
अंत न पारावार और आगे गए।
चलि चलि रहि गए हार अंत न पाईअै॥
दादू थाका पंथ तहां अबि पाईअै॥

'फुनहे' इस छंद का नाम पंजाबी है जो संस्कृत के पुनः पद से बना है। पुरातन नाम चन्द्रायन और अड़िल+ था, सबसे अधिक प्रसिद्ध फुनहे पाँचवी पातशाही के हैं। दादू जी की रचना में भी यह छंद प्रयुक्त करके नाम 'फुनहे' दिया है। वजीद और कामन दास फकीरों ने भी 'फुनहे' इसी वज़न पर पंजाबी में कहे हैं।

---

* छंदों का समुदाय, जिसके अंत के पद एक ही प्रकार के हों।

\+ अड़िल के चारें रूष हैं, तीसरा और चौथा 'फुनहे' से मिलते हैं।

संपूर्ण जाति का एक राग।

५. राग कान्हड़ा*

आउ वे सजण आउ॥ सिर पर धर पाउ वे सजण आउ॥
ज़ानी मैंडा जिंद असाडे तूँ रावौं दा राउ वे॥१॥ रहाउ॥
इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां हउं जीवां तुझ नाल वे।
मीआं मैंडा आउ असाडे तूँ लालों सिर लाल वे॥१॥
तन डेवां औ मन भी डेवां डेंवा पिंड परान वे।
सच्चा साईं मिल्लि इथाईं जिंद करां कुरबान वे।
तूँ पाकौं सिर पाक वे सजण तूँ खूबौं सिर खूब॥
दादू भावें सज्जन आवे तूँ मिट्ठा महिबूब वे।

यह ठेठ पंजाबी है। बल्कि इसमें पद, इत्थां, उत्थां, मैंडा, डेवां, इथांई लहिंदा पंजाबी के हैं।

६. राग किदारा

हमारे तुमही हो रखपाल॥
तुम बिन अउर नहीं को मोरै भउ दुख मेटणहार॥१॥ रहाउ॥
बैरी पंज निमख नहीं निआरे रोक रहे जमकाल॥
हा जगदीस दास दुख पावै सुआमी करउ संभाल॥१॥
तुम बिन राम दहैं एह दुंदर दसहुं दिसा सभ साल।
देखत दीन दुखी किउं कीजै तुम हो दीन दिआल।
निरभउ नाउं हेत हरि दीजै दरसन परसन लाल।
दादू दीन लीन कर लीजै मेटहु सभै जंजाल।

पद 'निरभउ' और 'नाउं' ठेठ पंजाबी और गुरू नानक देव जी ने प्रयुक्त किये हैं। 'हेत' पद भी पंजाबी रूप है हित का और गुरुवाणी में है।

इस प्रकार ऊपर दिए नमूनों से अंदर की गवाही मिलती है कि श्री दादू जी पंजाबी में लिख सकने वाले, गुरुवाणी कार वाकिफ (ज्ञाता), गुरुवाणी की उच्च ख़्याली के जानकार और लाभ उठाये हुए सज्जण थे। गुरू घर के साथ आपका अच्छा ताल्लुक पड़ा हुआ सुन्दर अनुमान हो रहा है। दसवें गुरू जी की महंत पर कृपा का कारण यही हो सकता है और महंत जैतराम जी का प्रेम और आदर सत्कार का कारण भी यही हो तो सच से दूर नहीं समझना चाहिए।



---

* संपूर्ण जाति का एक राग।

९० पुष्कर – चेतन ब्राह्मण और भाई पृथी*

शनैः शनैः विचरते श्री गुरू जी पुष्कर पहुँचे। यह ठिकाना अजमेर से करीब तीन कोस पर एक भारी झील है, जो हिन्दुओं का एक महान तीर्थ है, यहाँ पहुँचकर बाहर डेरा किया और अगले दिन उस घाट पर स्नान किया जहाँ कभी गुरू नानक देव जी ठहरे थे+ गुरू नानक देव जी को यहाँ भी सिद्ध आकर मिले थे और कुछ चर्चा की थी और उस चर्चा से संतुष्ट होकर यश करते हुए विदा हुए थे। गुरू गोबिन्द सिंह जी आये हैं सुनकर 'चेतन' ब्राह्मण आ मिला और दान प्राप्त कर सुखी हुआ। गुरू जी का नाम सुनकर और यह पता पाकर कि 'चेतन' ब्राह्मण बहुत श्रद्धा के साथ जाकर मिला है, उस स्थान पर और ब्राह्मण और बनिये आदि लोग दर्शनों को आये। खालसे का रंग रूप सब नया देखकर पूछने लगे, 'इन सिक्खों की जाति क्या है? हिन्दू हैं कि कुछ और'। तब उनको बताया गया कि यह तीसरा पंथ है, धर्म रक्षा के लिए रचा (बनाया) गया है। मज़लूम हिन्दू जाति, साधु ब्राह्मण सब की रक्षा कर रहा है और करेगा, खालसे के हाल और चलाई हुई तलवारों के समाचार सुनकर सब लोग खुश हुए और माथा टेककर विदा हुए। जितने दिन गुरू जी ठहरे, दीवान सजते रहे, लोग आते रहे और कई लोगों का उद्धार हुआ।

इनमें से याद में और लिखित में रह गयी एक वार्ता भाई पृथी जी की है। आप भी ब्राह्मण ही थे और पंजाबी थे, नक्के में आपका जन्म गाँव था, परन्तु तपस्या करने के लिए घर से निकले तीर्थाटन करते पुष्कर ठहर गये थे। योग साधन, तप, हठ, व्रत, उग्र किये थे परन्तु हृदय की ठंडक प्राप्त नहीं थी हुई। गुरू जी का नाम गुरू नानक की गद्‌दी, प्रजा रक्षा के हाल सुनकर 'पृथी' ब्राह्मण दर्शनों के लिए आया। आगे दीवान सज रहा और कीर्तन हो रहा था। पृथी जी दूर से दर्शन करके अपने आप झुक गए और नमस्कार करके वहीं बैठ गए। तप से साधे हुए मन पर कीर्तन का असर और दर्शन का प्रभाव विस्मादी@ रंग ला गया। मन किसी आश्चर्य के रस में लीन हो गया। आज अपने आप में से अपने आप का रस आया। भोग पड़ गया तो आप वहाँ से ही रसलीन अपने ठिकाने चले गए। अगले दिन अमृत समय फिर आये। आसा की वार सुनी, भोग पड़ने के बाद जब गुरू जी उठे और दूर अकेले जा ठहरे, पृथी जी पीछे-पीछे गए और यहाँ आपने तप, हठ, व्रतों के

---

* यह लेख इस सञ्च के लिए सितम्बर १९४२ (सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४७३) को लिखकर सम्मिलित किया गया था।

\+ इस स्थान को श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी द्वारा स्नान के कारण 'गोबिन्द घाट' पुकारते थे। हमने पहली बार जब स्थान देखा तो लोग गर्व के साथ यह बात बताते थे, परन्तु अब कुछ इस नाम पर साखी बदलने का यत्न हो रहा है।

@ विस्मय प्रद।

साधन और छ: शास्त्रों की जाँच पड़ताल की मेहनत सुनाकर अपने खुश्क रहने का और कीर्तन द्वारा रस में आकर निरुद्ध हो जाने का नया अनुभव कहकर प्रार्थना की कि मेरा कल्याण करो। श्री गुरू जी ने अपना प्रेम मार्ग उसको समझाया। वाहिगुरू जी जो 'प्रेय' रूप हैं, उनकी प्राप्ति मन के प्रेम द्वारा बतायी और प्रेम के लिए वाहिगुरू जी के गुणों की प्रशंसा का मार्ग समझाया। गुणों की प्रशंसा करने वाला अपने प्यारे के नाम स्मरण में लगा हुआ उसको प्राप्त हो जाता है, कष्ट साधनों की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे सुनकर और प्रत्यक्ष अनुभव करके पृथी गुरू मार्ग में आकर सिख होकर सुखी हो गया। जब गुरू जी पुष्कर से विदा होने लगे तो भाई पृथी को आज्ञा की कि पंजाब अपने इलाके में जाओ और गुरू सिक्खी का प्रचार करो।

भाई पृथी जी पंजाब आ गए, लाहौर के ज़िले में गाँव माणक आ डेरा लगाया। गुरू का यश और हरि कीर्तन शुरू कर दिया। आपके उच्च जीवन, पवित्र करनी, आत्मिक प्रभाव और सत्संग से सारे इलाके में सिक्खी फैल गयी। आप सहजधारी* थे, परन्तु आपके उपदेश से अनेक सिंह सज गए, यह डेरा अब तक बसता है।

ऐतिहासिक पहलू

भाई पृथी जी के डेरे के महंत मिहरदास जी ने माफी की पूछताछ के समय २७ अप्रैल सन १८६६ को डिप्टी कमिश्नर लाहौर के पास एक आवेदन पत्र में यह बात लिखी थी कि यह डेरा भाई पृथी जी का है जो दशम पातशाह के पूर्ण सिक्ख हुए हैं।

इसी तरह जनवरी १९०५ में गुरुद्वारे के सेवादारों ने सरदार अब्दुल रहमान डिप्टी कलक्टर को गुरुद्वारे के हाल बताये। उक्त सरकार ने जो प्रमाण पत्र (सर्टिफिकेट) दिया उसमें लिखा है कि १७६३ वि० में बहादुर शाह के राज्य में भाई पृथी जी ने यह डेरा श्री गुरू गोबिन्द सिंह ज़ी के हुक्म से कायम किया। यहाँ लंगर+ चलाया और प्रचार आरम्भ किया।



सूचना: पुष्कर से चलकर आप लाली, घमरौदा और कुलायत होते हुए जा रहे थे कि रास्ते में (सूरज प्रकाश अनुसार) भाई दया सिंह जी दक्षिण से आ मिले। और उन्होंने बताया कि औरंगज़ेब ने दिल्ली परवाने लिख भेजे हैं कि सतगुरू जी जिस ओर जायें, कोई आगे से युद्ध न करे, जहाँ चाहें विचरें। यह भी बताया कि गुर्जदार दिल्ली की ओर चले गये थे और हम आप की सुध यहाँ की पाकर यहाँ आ पहुँचे हैं और यह भी ख़बर वहाँ आम फैल गयी है क़ि औरंगज़ेब बीमार हो गया है और बहुत सख्त बीमार है। यहाँ ही किसी पड़ाव पर साहिब रामकौर जी की माता भाई राम कौर जी को दक्षिण से लौटाकर साथ ले जाने के लिए आ मिली। इसलिए यहाँ साहिब राम कौर जी का हाल देते हैं, जो उनका मानो जीवन है:-

* सिक्खों का एक अंग जो अमृतपान तो नहीं करता परन्तु श्री गुरू ग्रंथ साहिब के बिना अपनी और धर्म पुस्तक नहीं मानता।

\+ पाकशाला

९१ भाई साहिब भाई राम कौर जी

अथवा

श्री बाबा गुरबख्श सिंह जी*

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की गद्दी नशीनी का दिन था+। श्री गुरू तेग बहादुर जी के बख्शे गुरिआई के सामान साथ लेकर श्री बाबा गुरदित्ता ने अनुज@ बाबा हरदित्ता जी आए, साथ में भाई रामकौर जी थे। जब दीवान सजा और सब साहिबज़ादे, बख्शिशों वाले, मसंद, सिक्ख संगत गुरमुख और ऊँचे रसों वाले प्यारे इकट्ठे हो बैठे तो बालक रूप राम कौर जी ने अपने चाचे के साथ आगे होकर दसवें पातशाह के आगे पाँच पैसे, नारियल, श्री साहिब (तलवार) रखकर (जो दिल्ली से आये थे) नमस्कार की। श्री हरदित्ता जी ने कहा: धन्य गुरू तेग़ बहादुर, यह भेंट ज्योति उनकी भेजी आपकी अमानत हाज़िर है। तो देखो कि साहिबज़ादा जी पातशाहों के पातशाह पिता गुरू जी की तरह प्रकाशित हुए, चमके और तेज की ऐसी चमक मारी कि देखने वाले मोहित हो गए। अब श्री रामकौर जी ने केसर हाथ में लिया और चाचा जी की सहायता के साथ सुन्दर मस्तक पर तिलक का मंगलमय बिन्दु लगाया तो छोटा सा अँगूठा छूते ही हाथ में झनझनाहट हुई और दूसरे क्षण बौराना हुआ सिर चरणों पर जा लगा। यह चरण स्पर्श और कँपकपी छेड़ गया। शरीर में एक लय घूम गयी, वाह वाह की और अंदर विकास हो गया:-

'नानक भगता सदा विगासु'।

यह विगास रूप भक्ति, गुणों की प्रशंसा के रंग से रंगी गयी वाह वाह से प्राप्त होने वाली सदगति, स्पर्श मात्र से झोली आ पड़ने वाली उच्चता गुरू बाबे ने बख्शी थी श्री बाबा बुड्ढा को मेहनतों के साथ। चाहे प्रेम लग गया था उसको भी दर्शन करते ही। परन्तु देखो एक बालक छोटी अवस्था# में आज कैसे इसको झेलता है। इसने स्पर्श मात्र से, परिश्रम वाली आयु आरम्भ होने से पहले ही वह वस्तु पा ली है। 'दात जोत खसमै वडिआई'। कौतुक करने वाला वाहिगुरू दिखाता है कि शरीर तो बालक, जवान, वृद्ध होता है, बुद्धि बचपन में और, जवानी में और तथा बुढ़ापे में और रंग दिखाती है। परन्तु शरीर के अंदर बैठा अपना आप आत्मा-बाल बूढ़ा जवान नहीं। "ना एहु बूढा ना एहु बाला"। अनुभव

---

* यह प्रसंग गुरुपर्व सप्तमी, जो सं॰ ४६६ गु॰ ना॰ सा॰ पौष की १८, शुक्रवार सं॰ वि॰ १९९१ अनुसार ११ जनवरी १९३५ को था, ट्रैक्ट की शक्ल में प्रकाशित हुआ था।

\+ यह प्रसंग पीछे पूर्वार्द्ध में आ चुका है।

@ छोटे भाई।

\# सूरज प्रताप अनुसार आयु तीन चार साल की थी।

करके, शरीर को सावधानी के साथ साधकर, मन राग द्वेष, हर्ष शोक से माँजकर, बुद्धि संशय से धोकर, आशा और चिन्ता के पट तोड़कर और अहम् को मैं से निखारकर, जिस तत्त्व वस्तु के साथ जा टकराना है वह स्पर्श मात्र से भी दे देनी—अनजाने और बिना पता लगे ही रंग लगा देना—साईं के कौतुकों में है, चाहे मन बुद्धि अभी किसी रंग में हों। अर्थात् अन्दर उच्चता की प्रतीति, हल्कापन और आत्मा का दृष्टा जैसा रुख़ (फाइली रुख़) ला देना साईं की मेहर में है।

इस बच्चे को बेखुदी सी में माथा टेकने की हालत में देर हो गयी तो चाचे ने उठाया। बच्चे को छूते ही एक झनझनाहट सी चाचे को भी हुई। रसिया था वह भी खूब, परन्तु यह सिहरन अनोखी थी, एक बार उसका भी अंतर स्वच्छ शुद्ध होकर अकाल जी से टकराया। हरदित्ता जी के मन के मानों पर्दे फट गए। जानना, ख्याल करना, प्रतीति तीनों एक क्षण के लिए मानो अटक कर खड़े हो गए। आत्मा परमात्मा की रंगत में जा पड़ा, अनन्त के साथ जा छुआ। अर्थात अंत के घेरे में आई 'आत्मा' ने परम आत्मा के साथ जा भेंट की। जीवतत्त्व परमतत्त्व को जा मिला, किसी बेहोशी में नहीं, सुज्ञान की चोटी से परे विस्माद की चोटी पर। बच्चे का सिर उठाते समझदार (चाचे) का सिर भी धरती की ओर झुका, गया परमात्म अग्नि के शोले वाले दिव्य शरीर के चरणों की ओर। जगत की दृष्टि में संगत में से दो शिरोमणियों के मस्तक टिके हैं गुरू जी के चरण कमलों पर, परन्तु वास्तव में गुरू सिक्ख में हीरों की संधि हो गयी है।

इस दिन के बाद बालक राम कौर चाचे सहित कुछ दिन आनन्दपुर रहा, दर्शन भेंट करता रहा। वह जो चरण स्पर्श से विस्मादी रंग लगा था अब कैसे है। है तो बच्चा, बुद्धि नहीं पकड़ती उस खेल को, परन्तु उसके अंदर कशिश है, दर्शन इच्छा है। स्वरूप देखता है तो खिल उठता है, नहीं देखता तो कशिश में भी रंग रहता है देखे हुए के गुणों की श्लाघा का, और वाह वाह का उच्चारण स्वत: होता रहता है। परन्तु दर्शन इच्छा अनजाने लगी रहती है। जब चाचा की पीछे लौटने की सलाह बने तब बालक का मन न करे बिछुड़ने को परन्तु आयु कम होने के कारण और माँ का लाड़ला पुत्र होने के कारण चाचा ने वापिस जाना जरूरी समझा, इसलिए बिछुड़ना पड़ा और साहिब राम कौर जी अपने नगर आ गए।

चाचा भाई हरदित्ता जी ने भतीजे का पालन पोषण बहुत प्यार के साथ किया। गुरू घर की आत्मविद्या और शस्त्र विद्या दोनों सिखाई। संगत का, प्रजा का, सेना का, सारे प्रबन्ध आपने बड़े होकर करने थे। परन्तु जो अंदर गुरू स्पर्श होने से कशिश लग गयी थी वह आयु बढ़ने के साथ साथ चलती रही, जो रंग चढ़ा था गहरा होता गया। अभी बारह चौदह वर्षों के ही थे कि बाबा बुड्ढे ज़ी की समाधि पर जोड़ मेले (इकट्ठ, मेला) के समय संगतें आईं। उनमें एक अपनी आयु के लगभग का नौजवान था रामा, उसकी ओर देखा, मन को भा गया, कहने लगे, हे रामा! कहाँ जाना है लौटकर, ठहर जा हमारे पास और कह वाहिगुरू! रामे ने कहा 'वाहिगुरू' और शीश झुक गया। यह रामा फिर सदा आप की सेवा में रहा और सेवा करता सुख के घर पहुँचा।

: २ :

बड़ी आयु में तो पता लग जाता है कि मुझे कशिश है, प्यार है, किंतु छोटी आयु में कशिश तो होती है परन्तु पता नहीं लगता कि यह क्या है। मन खिंचता है, कसकता है, और जिधर की प्यार इच्छा हो उधर का रुख़ रखता है। चाहे अवस्था छोटी थी पर कशिश अंदर भरपूर लगी हुई थी। हर साल और कई बार साल से भी पहले चाचा जी को यह प्रबन्ध करना पड़ता है कि बालक आनन्दपुर जाये और श्री गुरू जी के दर्शन पाये। कई बार माता साथ जाती, कई बार चाचा तथा कभी कोई और घर का व्यक्ति साथ जाता। आनंदपुर वास के दिन बहुत चाव और आनन्द के निकलते। गुरू जी भी बहुत प्यार करते। कभी 'बुड्ढे के' कहकर आवाज़ मारते, कभी 'रमदास के' कहकर बुलाते। कभी मनोहर गले से 'रामकौर' की ही सादी पर कशिश भरी आवाज़ लगाते। इस तरह किशोर अवस्था बीती, अब यौवन का आरम्भ था कि आप के विवाह के लिए आज्ञा हो गयी। चाहे श्री रामकौर जी ने घर की विद्या भी ली, शस्त्र की कला भी सीख ली, कीर्तन के रसिये हो गए परन्तु मन अधिकांशत: अंतर्मुख किसी सुख प्रतीति की उच्चता में बसता था। यह स्वच्छता और निर्मलता का प्रति क्षण अमूल्य था। आप का रुख़ कुछ अपने आप में मस्त से रहने का बढ़ रहा था कि जब विवाह की आज्ञा हुई थी। इस प्रकार अब भकने गाँव, जो अमृतसर के ज़िले में है, एक संधू घराने में आपका विवाह हो गया, राम के घर राज़ आ गया अर्थात भाई रामकौर के घर राज देवी आ गयी।

जब विवाह होकर बारात विदा हुई तो गाँव भकने के लोग हाथ जोड़कर आ खड़े हुए कि भाई साहिब आप बाबा बुड्ढ़ा जी की वंश में से हो। आप उनकी गद्दी के मालिक और गुरू नानक जी के वज़ीर हो, हमारे गाँव चरण रखे हैं, हमारे गाँव की दासी स्वीकार की है, हम पर कृपा करो, कि हमारे गाँव में जहरीले साँप बहुत हैं और पानी की कमी है, गाँव उजड़ता जा रहा है, ग़रीबी प्रवेश कर रही है, दुखी हैं हमें सुखी करते जाओ। आप प्रार्थना सुनते रहे और आँखें मूँदते गये, फिर नेत्र खोले और कहने लगे भाई गुरू नानक का घर बेअंत का घर है और बेअंत भेंटों का देने वाला है, परन्तु आप भी कुछ करो न। कृषक बोले जो आप आज्ञा करो। कहने लगे अगर किसी करामात से आपका दुख दूर भी हो गया तो भी आप फिर दुखी हो जाओगे। दुख घटते हटते नहीं, परन्तु सूरत बदल लेते हैं। दुख दूर तो होते हैं अगर "ऐसा दारू लोड़िलहु जितु वंञै रोगा घाणि।" रोगों के ढेर ही दूर हों तो सुख होता है, आप शरण लो कलग़ियों वाले पातशाह की जो आनन्दपुर में ज्योति जगाये बैठा है। मस्तक झुकाओ और कहो 'वाहिगुरू', आज से यह नाम जपो। नाम दारू है सभी दुख निवृत्तियों के लिए। वाणी पढ़ा करो, आये गये की सेवा किया करो, जो मेहनत करके कमाओ बाँटकर खाओ। ऐसे दुख दूर होंगे। नाम दारू का सदा हित से सेवन करो। पानी बढ़ेगा धरती धन उपजायेगी, सर्प विषहीन हो जायेंगे। यह वर पाकर लोग खुश हुए। गाँव में नाम वाणी का प्रवाह चल पड़ा, लोग मानकर (मन से) सुखी हो गए, नाम के पीछे सब कुछ है।

नाए सुणिअै सभ सिधि है रिधि पिछै आवै।। (वा॰ सारं: म॰ १)

पुन: **मुकति जुगति नावै की दासी।।** (भाई गु॰)

बताया जाता है कि गाँव के लोग तभी से सिक्खी में आये और इन बाहर की ज़रूरतों मे भी सुखी हो गए।

इस साखी द्वारा एक बात परिश्रमी सिक्खों और संतों के लिए सीखने वाली है कि अपनी एकाग्रता की शक्ति को करामातों में खर्च करने के स्थान पर ऐसे प्रयुक्त किया जाये कि वाहिगुरू जी के नाम अभ्यास में और अपना आप सँवारने में लग जाये, जिससे कि वह आप उस वस्तु का स्वामी हो जाये जो वस्तु कि नाम अभ्यास में रखी हुई है और जो रोगों के ढेर दूर करती है। 'नाम अउख़धु जिह रिदै हितावै।। ताहि रोगु सुपनै नहीं आवै।।' सबसे बड़ा रोग अहम् है जिसको नाम काटता है।

जब आप भकने से डोला (बहू को लेकर) लेकर चल रहे थे तो वहाँ का एक मिरासी* जिसका नाम मुराद था, आ उपस्थित हुआ। यह बहुत रसिया गवैया था और गला भी गंन्धर्वों जैसा रखता था। इसने विनती की कि मुझे साथ ले चलो। सिफारिश भी हुई, आप भी कीर्तन के रसिये थे खुश हो गये, और मुराद को साथ ही झण्डे रामदास ले आये। यहाँ लाकर इसको गुरुमुखी पढ़ाई और गुरुवाणी कंठ करवायी। मुराद को गुरुवाणी ने रंग लगा दिया, रसिया हो गया वाणी का, इसका कीर्तन भाई साहिब सुनते रहे। इसकी औलाद के लोग बाबा बुड्ढा जी के गुरूद्वारे कीर्तन करते आये हैं।

अब आप जवान हो गये थे, अधिक समय आनन्दपुर साहिब बिताते, थोड़े समय के लिए रामदास आ रहते। अवस्था आपकी अन्तर्मुख रहने की बढ़ती गयी। परन्तु श्री सतगुरू स्वामी जी आपको अधिक इस रंग में रखते कि आप अन्तरात्मा में तो लिव में रहें, बाहर उस लिव का विकासकारी प्रभाव पड़े कि आपके हाथों भला हो। श्री भाई राम कौर जी का शरीर निर्विकार था, मन स्वच्छ और आत्मा साईं प्रेम में लीन रहती थी। बाबा बुड्ढा जी की तरह आप बड़े प्रेमी और नाम के परिश्रमी थे। परन्तु इस रास्ते में बहुत कठिन पड़ाव आ जाते हैं। तभी तो श्री गुरू जी अपने प्यारे सिक्ख को ऊँचे से ऊँचे स्थान पर ले जाने के लिए शिक्षा, सम्बोध (सम्यक, ज्ञान) और परीक्षाओं द्वारा कुन्दन बना रहे थे। ब्यौरे, सारे जीवन की तरह तिथिवार सविस्तार लिखे हुए नहीं मिलते परन्तु जो साख्यिाँ फुटकल (बिखरी हुई) मिलती हैं, इस प्रकार हैं:–

साहिब दीवान सजाकर बैठे थे, आगे एक कुदण्ड (धनुष) इतना भारी पड़ा था कि जिसकी प्रत्यंचा खींचने पर कमान झुक जाये, यह बात संभव नहीं प्रतीत होती थी। भाई जी आप बहुत शक्तिशाली थे और शस्त्र विद्या भी जानते थे। सोचते थे कि यह अत्यधिक भारी और कठोर कुदण्ड दर्शनीय होगा, चला सकना कठिन है, साहिब का शरीर लम्बा और पतला है। यह शंका जो उठ रहा था, साहिब ने देख लिया। हुक्म दिया हाथी घोड़े

* मीरास सँभालने वाला; एक मुसलमान जाति, जो भाटों के तुल्य है और अपने यजमानों की वंशावली पढ़ती है और उनके द्वारा तय आमदन को अपनी मीरास समझती है।

लाओ, वन के पर्वत शिकार को चलना है। भाई जी को भी आपने साथ ले लिया, हाथ में वे भारी कुदण्ड और तीर भी उठा लिए। अंदर से बाहर गये और वहाँ खड़े होकर लगे हाथी आदि सामान की इंतज़ार करने। फिर कहने लगे कि जब तक इंतज़ार करना है तीर चला लें। कमान पर चढ़ाकर एक पौधे की जड़ की ओर निशाना बाँधा और ज़ोर के साथ खींचकर तीर छोड़ा। कमान चिरचिराई और तीर भयानक आवाज़ देता पौधे की जड़ में जा लगा और उसको उखाड़कर धरती में धँस गया। जब तक हाथी नहीं आया आप सहज स्वभाव तीर चलाते रहे। यह बल, यह पराक्रम देखकर सभी हैरान होते रहे। परन्तु रूहानी मर्मों के भेदी भाई साहिब को एकदम होश आयी और दिल में व्यतिरेक करके विचारने लग पड़े कि सर्वशक्तिमान गुरू जी की ताकत पर मुझे शंका नहीं करना चाहिए था। यह माया मुझे कैसे हो गयी। मेरे मन प्राण मेरे प्राण गुरू जी, मैं सिक्ख वे साहिब, मैं जीव वे मेरे ब्रह्म फिर मुझे शंका क्यों हुआ? वाह सतगुरू तेरे कौतुक! मेरी न्यूनता और तेरी माया! कैसा मेरा मन संशय वृत्ति को जीत-जीतकर फिर संशय के घर जा प्रवेश करता है।

साहिब ने देखा और मुसकराये। कहने लगे, बुड्ढे! सर्व-शक्तिमान होना और बात है, परन्तु कमायी कुछ और वस्तु है। प्रत्येक जीव जो सीधे रास्ते चलता है किसी शक्ति के घर पहुँचता है। जो व्यक्ति नाम में आ जाता है, वह मन की रुचियों और बुद्धि की संशय वृत्तियों से ऊंचा उंठकर निश्चय के घर द्वारा शुद्ध चेतनता में जाता है। उसके अंदर पहले अपने शरीर पर काबू पैदा होता है, वह योद्धा महाबल शूर हो जाता है। कर्म की निर्मलता और स्वच्छता, हल्कापन और रस पैदा करती है। यह रस इकट्ठा हो-होकर बल बनता है, यह मानसिक बल शरीर को बलवान करता है, यह अंदर का बल निर्बल देह को भी बल देता है। बल कई प्रकार के हैं, जो अंदर का बली है वह शरीर की मामूली ताकत से ही अधिक बलवान काम करेगा। इसीलिए नाम सामर्थ्य दातार है। शारीरिक बल भी अभ्यास द्वारा बढ़ता है, अगर साथ में मानसिक बल भी हो और इस बल की दिशा ठीक हो, नाटकों कौतुकों में न लगे, तो अभ्यासी सब तरह से बल वाला हो जाता है। अभ्यासी का–ज्ञानी का–बल सभी को सुखदायी होता है। यह बल दुखदायी नहीं होता।

उच्च जीवन की एक बात दिखाकर कौतुकी उस्ताद ने और खेल रची। अब सारा सामान वनों को जाने का और हाथी आदि आ गये थे। महावत ने हाथी को बैठाया, आप चढ़ने के लिए तैयार हुए और बोले: 'कोई है जो हमारा बोझ उठा सके, वह कंधा दे तो हम हाथी पर चढ़ जायें।' भाई राम कौर जी शरीर के बहुत तगड़े और मज़बूत थे। आगे बढ़े और कंधा आगे कर हाथी के करीब खड़े हो गये। साहिब ने कंधे का आश्रय लेकर ऐसा बोझ डाला कि भाई राम कौर जी भी सहार नहीं सके। गिरे तो नहीं परन्तु बोझ से झुक गए। जब झुके तो उनके मन में विचार आया– 'यह भी बुड्ढे! तुम्हारे साथ कौतुक घटा है। सतगुरू का बोझ कौन झेल सकता है? तू भाग आया था अंहकारी! कि मैं हूँ जो बोझ झेल सकता हूँ। पहला कौतुक करके सतगुरू ने तुम्हारी बुद्धि उज्ज्वल की है कि यह विवेक की शक्ति संशयों के लिए नहीं थी दी गयी, यह तो परमात्मा के रास्ते खोजने के

लिए दीपक था और निश्चय के घर पहुँचना इसका धर्म था। अब दाता बताता है कि अगली मंज़िल जो 'अहम्' की है उसका निवारण करना है। अंदर जो पकड़ की तरह अहम् का इरादा जागता है यह भारी रुकावट है। एक तो मैंने गुरू शक्ति में संशय किया था, एक अपने को बोझ उठाने में समर्थ समझा था। सच्चे गुरू ने पहले मुझे अपना इंसानी कमाल बताया है और अब गुरिआई (गुरू की पदवी) की ताकत दिखाई है। सचमुच संशये और अहम् चाहे मैंने जीत लिये थे, अभी मेरे अंदर चक्कर लगाते हैं। मेरी न्यूनता है और माया प्रबल है, परन्तु माया मुझे पूर्ण करने के लिए डाली जाती दिखाई देती है। जब यह चमक मन से टकरा गयी तो शरीर से सीधे हो गये। साहिब हाथी पर चढ़ गए और हाथ नीचे करके कहने लगे: 'आ जाओ चढ़ बैठो हमारे साथ।' भाई साहिब ने विनती की: "मैं नीच हूँ, बेअदब हूँ, आगे भी अवज्ञा कर रहा हूँ, मुझे बख्श दो और चरणों में स्थान बख्शो।" परन्तु साहिब ने एक न मानी और जबर्दस्ती भाई राम कौर का हाथ पकड़कर ऊपर खींच लिया और हौदे में बैठा लिया। फिर आप हँस पड़े और बोले: रमदास के! गुरू गद्दी का बोझ बहुत भारी (गौरवशाली) है, इसको कौन झेल सकता है, जितना कि तूने झेला है, यह इसलिए बर्दाश्त किया जा सका है कि बाबा बुड्ढा जी और गुरू नानक पातशाह की अत्यधिक कृपा हुई थी, वह कृपा आपके सिर पर है। तभी तो गुरू को तिलक देना आपके सुपुर्द रहा है और आपका खानदान फिसलनों में से सही सलामत निकलता रहा है।

रामकौर: पातशाह! जब आपने फ़रमाया, 'कोई है हमारा बोझ जो उठा सके" तब मेरे मन में क्यों आया कि मैं हूँ और मैं उठा सकता हूँ? कब ये कमियाँ दूर होंगी?

'अस माया ते आप बचावहु।
राखहु निशचा नहीं डुलावहु।। (सूरज प्रताप)

गुरू जी—प्यारे! अंदर की चोटें बुरी हैं, तू तो भक्त है, रसिया है, कृपा प्राप्त है, सोना है, तुझे कुंदन करना है, इसलिए यह कौतुक था, मेरे प्यारे। मन को पहचानना शुद्ध कठिन काम है।

इसु तन महि मनु को गुरमुखि देखै।।

फिर कथन है:-

सनकादिक नारद मुनि सेखा।
तिन भी तन महि मनु नहीं पेखा।

इस मन को अलग करके देखना बहुत कठिन है। अथाह तो पड़ती है अगर पहले नाम की खोज (कमाई) हो, फिर नाम का रस पड़े, रस अंदर समाये। गुरूवाणी का प्रकाश मार्ग दर्शन करे तो अंतर के कई परत ठीक होते हैं। एक मन है जो रुचि अरुचि में रहता है, सुख मिले तो राग करता है, दुख मिले तो द्वेष करता है। यह भले बुरे के कतिरेक की परवाह नहीं करता। फिर भाई! बुद्धि का मंडल है, इस का रागद्वेष वाले मन पर अंकुश है, यह बुद्धि व्यतिरेक करती है और सुखदायी तथा दुखदायी की परख बनाती है। फिर यह

बुद्धि अगर कुछ ऊँची और साफ हो जाये तो धर्म अधर्म बताती है, तौलती है, परन्तु संशय और निश्चय करना इसका धर्म है। धर्म अधर्म की समझ से कुछ मैल उतर जाती है, जो रह जाती है उसको विश्वास जीतता है। इसके साथ एक और परत है अंतर का 'अहम्'। जो इसको अपनी (मैं) के घेरे में रखता है। जो अपने आप को 'अहम्' (मैं हूँ) मात्र में दिखाता है। इससे जब ऊँचे उठ जायें तो अपने आप निखरता है। यह है शुद्ध चेतनता, कोई इसको 'शुद्ध मन' कह देता है। कोई 'अ+मन' कोई 'चित्त' कह लेता है, पर यह है कोई अमूल्य मूल्य वाली वस्तु।' इसमें कोई मन वाणी से परे की समझ है, वह सत्य वस्तु को पहचानती जाँचती अंत उसके साथ मिल जाती है--अमर रंग में। यह पहचान अनुभव है। एक भ्रम नहीं डालना चाहिए कि अहम् से निखरने पर हमने निर्बल हो जाना है। बल्कि हौं (मैं) की मैल गई तो असली बल जागता है। जब चित्त अपने आप में आता है तो उसमें अपने आप का बल होता है। फिर सत्य को अथवा परम तत्त्व को मिल जाने पर अगम्य शक्ति उपजती है क्योंकि फिर तो परम तत्त्व की महान शक्ति की हिस्सेदारी आ जाती है। कुछ ऐसे जैसे नदी समुद्र में मिलकर नदी 'समुद्रबल' की हिस्सेदारी में पहुँचती है। तभी गुरू सच्चे ने 'अहम्' की निवृत्ति वाले के लिए बनाया है कि वह शूरवीर और बहादुर हो जाता है।

नानक सो सूरा वरीआमु जिनि
विचहु दुसटु अहंकरणु मारिआ......
करम खण्ड की बाणी जोरु॥.......
तिथै जोध महाबल सूर॥........... (जपुजी)

पर होश चाहिए कि इस बल को और पशुशक्ति को, जो शक्ति के उपासकों और बलवानों में होती है, एक ही न समझ लिया जाये। उनके मन और बुद्धि पशुवत्ति में व्यवहृत है। गुरू नानक जी द्वारा प्रदत्त ज्ञान का ज्ञानी होना न निर्बल त्यागी होना है, न पशुवृत्ति के ज़ोरावर (बलवान) होना है। परन्तु ज्ञानी हो जाना, भक्त हो जाना, शुभ गुण निपुण हो जाना, मानसिक शारीरिक बल से बलवान हो जाना है और सभी गिनतियों परखों और कीमतों से ऊपर उठकर एक रत्न अमूल्य पा लेना है।

नानक गिआन रतनु परगासिआ हरि
मनि वसिआ निरंकारी जीउ। (सो॰ म॰ १)

इस प्रकार की एक और वार्ता भाई राम कौर जी की परीक्षा परख की लिखी हुई मिलती है, वह ऐसे है:-

एक बार आप आनन्दपुर आये हुए थे, दीवान लग रहा था, आप जी भी संगत सहित आये और माथा टेककर विराज गये। सतगुरू जी की आज्ञा अनुसार एक हज़ार रुपये का कड़ाह प्रशाद (गुरू घर में बनने वाला हलुवे का प्रशाद) आया और स्वच्छ चादर बिछाकर उनपर सजाकर ऊपर चादरें डाल दी गयीं। हुक्म हुआ खालसा जी, साधु संगत जी। कहाड़ प्रशाद आज बँटेगा नहीं, सभी लोग इसको लूट लो और लूटकर खाओ। यह आज्ञा देकर

गुरू जी महलों को चले गए। पीछे से लूट पड़ी और सभी ने भरपूर पाया। परन्तु श्री राम कौर जी अपने ठिकाने टिके रहे, आप ने समाधि लगाये रखी तो आपकी ओर देखकर आपकी संगत भी नहीं उठी। जब कार्य हो गया, आप के नेत्र खुले, चारों ओर देखा, संगत स्थिर बैठी देखी फि आराम से उठे और अपने डेरे चले गये। सारे नगर में कीर्ति फैल गई कि साहिब राम कौर जी समवृत्ति वाले हैं, जिन्होंने कड़ाह प्रशाद की लूट में हिस्सा नहीं लिया। परन्तु सतगुरू जी ने सुना तो मुसकराये। अगले दिन फिर दीवान लगा। सतगुरू की जगमग ज्योति विराज रही थी, श्री राम कौर जी भी संगत सहित आकर चरण कमलों में सज रहे थे, साहिब ने श्री राम कौर जी की ओर देखा और हँसकर बोले, क्यों जी आपने कल लूट नहीं की? श्री राम कौर जी ने शीश झुका दिया और बहुत अदब में हो गये।

इस समय का सतगुरू जी का रूहानी इशारा कुछ गहरी बात प्रतीत होती है। साहिब राम कौर जी ने कड़ाह नहीं लूटा, इसमें त्याग है और पदार्थों की ओर वृत्ति की विरक्ति है। परन्तु केवल त्याग कोई अपने आप में कमाल नहीं, किसी कमाल की प्राप्ति का सहायक है। इसलिए कहीं त्याग का त्याग भी जाकर सीखना पड़ता है और वह 'त्याग का त्याग' 'ग्रहण' नहीं होता। इस समय सतगुरू जी का हुक्म अब विशेष वस्तु था, इसके आगे त्याग का त्याग चाहिए था। हुक्म अनुसार राम कौर जी का कड़ाह प्रशाद लूट कर ले लेना ग्रहण वृत्ति कभी न बनता, क्योंकि त्याग तो उनके स्वभाव भूत हो चुका था। अब हुक्म होने पर किसी और भाव से त्याग का सावधान रखना एक लेशा विद्या की अथवा सूक्ष्म मैं की सूरत रखता था, जो ईश्वर की मर्जी मानने की लहर में एक रूकावट थी। इसको त्यागना चाहिए था। त्यागवृत्ति की मैं (अभिमान) को त्यागना त्याग का त्याग है, और ज्ञान अवस्था है।

'ब्रहम गिआनी अहंबुधि तिआगत।।' इस परम सूक्ष्म 'मैं' को भी सतगुरू शूरवीर ने दूर किया है।

लूटने में वृत्ति का विक्षेप हो सकता था, परन्तु सतगुरू चाहते थे कि सुरति का पकाव इतना मज़बूत हो कि वीतराग महापुरुषों को कठिन प्रवृत्ति के आ पड़ने पर भी विक्षेप न हो। विक्षेप वाले काम उनके स्वत: सिद्ध होते जायें और वृत्ति उच्चता की प्रतीति में (उन्मनी दशा में) विक्षेप मण्डल से ऊँची रहे। जैसे गाड़ी का पहिया पूरा धरती के साथ हर क्षण नहीं छू रहा होता, उसका एक अंश धरती के साथ छूता है और बाकी सारा धरती से ऊँचा रहता है वैसे प्रवृत्ति के कामों को चलाने के लिए ज्ञानी की सारी वृत्ति लगनी ज़रूरी नहीं, सारी वृत्ति ऊँची रहे और पहिये जितनी वृत्ति का स्पर्श प्रवृत्ति की धरती को छूता चला जाये और कार्य होते जायें।

राम कुइर जी की संगत ने आप की नकल करके नहीं थी लूट डाली। उनको जो शूरवीर सतगुरू जी ने प्रश्न किया कि आपने क्यों नहीं लिया, तो उन्होंने दिल खोलकर बता दिया कि हुज़ूर चित्त तो षट रसों पर जीत नहीं प्राप्त कर चुका हुआ, पर बाबा जी की ओर देखकर रुके रहे हैं। संगत का अपने पर काबू का (नियंत्रण का) गुण तो इस इशारे में उपमा योग्य है, परन्तु हुक्त होने की हालत में रुकना और अंदर से मन करना एक बनावट

सी थी। जब मालिक की-गुरू की-मर्जी हो चुकी है कि इस तरह सभी कड़ाह प्रशाद छको तो त्यागी और ज्ञानवान पुरुषों द्वारा खाने में त्याग नष्ट नहीं होता, और ग्रहण नहीं चिपकता, बल्कि उसकी मर्जी पर चलती सुरत मालिक के साथ एक स्वर होती है। रज़ा में मर्ज़ी का प्रफुल्लित होना, रज़ा में अपनी मर्जी को ग़र्क कर देना, यही तो रूहानी परम पद है, यह अपने आप की तबाही नहीं बल्कि कमाल है। जैसे साज़ से लगी तरब जब साज़ की तार के साथ मिलान कर लेती है तो वह निराश्रित और तबाह नहीं होती बल्कि एक स्वर हो जाने के कारण सुरीली और आश्रय वाली हो जाती है। जब साज़ की सुर बोलती है तब तरब बिना छेड़े बिना हिलाये उसके साथ बोलती है। बल्कि अगर कभी तरब को छेड़ो तो देखो कि उस स्वर पर साज़ की तार में से कंपन जाती है और वह थिरकती दिखाई देती है। शूरवीर सतगुरू ऐसे अपनी तरबों को बिल्कुल ठीक-ठीक तरह से सुर कर रहा था और लेशमात्र भी लोक लाज आदि का ख्याल ग़ैरियत की बू रखने वाला अपने सबसे अधिक प्यारे गुरूमुख में नहीं था रहने देना चाहता, क्योंकि उनको बहादुर गुरू साईं की रज़ा में एक स्वरता प्रदान कर रहा था*।

दूसरी भेद की बात यह भी इस खेल में सही होती है कि गुरू जी चाहते थे कि बाबा जी अपनी समाधियों में निद्रावली नशीली अवस्था में न जा पड़ें। विस्माद और लिव लीनता तो रहे परन्तु होश रहित मस्ती अथवा चंचल हुई होश की मस्ती न आ बीच में घुसे। कड़ाह प्रशाद घर की वस्तु है, संगत को गुरू देता है, और उत्साह के लिए कहता है लूट लो। यह कौतूहल और चढ़ती कला का कौतुक एक प्रफुल्लता का रंग था, जिसमें कोई पाप नहीं था। उछाल और उत्साह जो निष्पाप है शरीर को हिलाता और मन को प्रसन्न करता है। भक्त की प्रसन्नता सुरत का विकास है। 'नानक भगता सदा विगासु।' विकास रंग है जो भक्ति को लगता है। हुक्म में बाबा जी प्रशाद का कण मात्र भी उठकर यत्न से ले लेते तो हुक्म होने के कारण सुरत को एक और प्रसन्नता मिलनी थी। इस प्रकार योद्धा गुरू अपने सिक्खों को नाम में रसिया करके, जागृत ज्योति अंदर जगाकर, एक के रंग में उच्च सुरत वाला करके प्रसन्नताओं के घर में बसाकर किसी जीती जागती अवस्था में ले जा रहा था।

: ४ :

ऊपर तो थे नमूने उनके गुरू प्रेम गुरूकृपा से आनंदपुर जाकर उन्नत होने के। अब लो उनके कुछ हाल उनके अपने नगर झण्डे रमदास के।

आम प्रसिद्ध बात एक ऐसे भी है कि श्री भाई राम कुहर जी मस्ताने फकीर थे और बेहोशी सी में मस्त रहते थे। कथा कहने वाले बाज वक्त और बढ़ा देते हैं। पर साहिब

---

* इस समय बाबा जी प्रति गुरू जी के श्राप के वाक्य कहने वाली बात जो लिखी मिलती है झूठी प्रतीत होती है। बहादुर सतगुरू ने कसर तो निकालनी है पर अपने अत्यधिक प्यारे सिक्ख को, आदि गुरु से सारी पातशाहियों द्वारा वरदान प्राप्त वंश के हीरे को श्राप देना, गुरू दशमेश के स्वभाव और व्यवहार से उलट है। यह 'लोक कथा' बाद में कोई घटना घटे तो लोग अपने आप बना लेते हैं और वे बाद में चल पड़ती हैं। लगता है 'सौ साखी' में हस्तक्षेप करने वाले ने श्राप की बात डाली और अन्य ने नकल की है।

दशमेश जी के प्यारे सिक्ख कभी बेहोशी वाली मस्ती में नहीं हो सकते, वे थे–

बालक समता बेद जु कहे॥
तिस मैं सदा बरततो रहे॥ (सू॰ प्र॰ रा॰ १)

भाई नंदलाल जी गुरू सिक्खी की इस अवस्था की पहचान बता गये हैं कि बेहोशी पर मस्ती गुरू घर में नहीं रखी।

दर मज़हबे मा ग़ैर परस्ती न कुनंद।
सर ता बकदम बहोश मस्ती न कुनंद।

गुरू घर में मस्त बेहोशी की किस्म की और सूफी मुसलमानों वाले हाल जैसी और खेल देने जैसे सिर मारने की मस्तियाँ विहित नहीं हैं। सिक्ख सदा होश में बसते हैं। पर इस होश का मतलब 'अलिव होश'* भी नहीं। गुरुवाणी के साथ मन को, बुद्धि को उज्ज्वल न करना, सुरत को नाम के प्रवाह के साथ लिव+ वाला और अमृतमय न कर लेना और केवल पंडिताई, दर्शन विद्या और आम जानकारी द्वारा समझना, कि यह वह लिव वाली होश है, भूल है। यह वह होश नहीं, यह अलिव होश है, साईं से दूरी पर रखती है। होश से भाई नंदलाल जी की मुराद है नाम की लिव वाली अवस्था, जो मस्तियों में नहीं डूबती, परन्तु गुणों की श्लाघा के घर बसती, जगत और जगत के पदार्थों से नफरत न करती हुई हर रंग, हर पदार्थ में उसकी विस्मादी छुअन लेकर ऊँची चलती है। सुन्दरता का अहसास जो नाम की लिव से उपजे, शुद्ध नेकी का अहसास जो राग द्वेष से ऊँचा हो, सत्य का अहसास जो मन बुद्धि अहंकार के पर्दे फाड़कर असलियत के जा दर्शन कराये, ये हैं अहसास जो ऊँचे हो-होकर विस्माद में तो ले जायें और लिव में भी रखें, मिलन भी करायें परन्तु नीदों बेहोशियों और तमोगुणी मस्तियों में न ले जायें क्योंकि फ़रमान है:-

ब्रहम गिआनी सदा सद जागत॥

श्री भाई गुरदास जी फरमाते हैं:-

भाए भगत भै चलणा
मसत अलमसत सदा हुसिआरी॥ (वा॰ भा॰ गु॰ वा॰ ११-१२)

भाई राम कुहर जी की 'मस्ती निद्रा' अथवा बेहोशी या हाल@ की किस्म की नहीं थी, वह उनकी प्रबुद्ध अवस्था थी, नाम की लिव थी। वे विकास के व्यक्ति हैं, प्रशंसा के रंग में रंगे रहते थे, इसीलिए सतगुरू के साथ प्रेम मग्न भी थे। परिवार वाले भी थे, राज्य भाग्य भी था, घोड़े और सेना भी रखते थे, शिकार पर भी चढ़ते थे, घुड़सवार भी पहले दर्जे के थे, परन्तु रहते सदा नाम की लिव में और साईं के रंग में थे। इसलिए जब आपकी स्त्री स्वर्ग सिधार गयी तो फिर दूसरा विवाह हुआ#। नहीं तो मस्त अवस्था जो निद्रा

---

* लिव विहूणी, (लिवरहित)।
+ लौ, लगन।
@ मुसलमानों में कव्वाली करते जो सिर मारते बेसुधी में जाते हैं, उसको हाल खेलना कहते हैं।
यह विवाह डोगरों के निवास स्थान 'वरन' गाँव में भाई सुजाने नाम के गुरू सिक्ख की नाम प्रेमिन बेटी सरजन जी के साथ हुआ था।

और मस्ती की हो वह विवाह से उपराम* करती और गुदड़ी में लपेटकर किसी नदी के किनारे लिटा देती।

जब दूसरा विवाह किया, डोली लेकर चले और चलते चलते भरोके गाँव के करीब आये तो बारात को प्यास लगने पर पानी न मिला। इस समय आपकी दृष्टि पड़ी जमीदारों पर जो माल पशु एक ओर लिये जा रहे थे। आपने पूछा ये सभी किधर को जा रहे हैं? रामे ने पूछकर आ पता दिया कि इनके गाँव ज्येष्ठ आषाढ़ में पानी नहीं रहता, इसलिए लोग पशुओं को पानी पिलाने के लिए रावी नदी पर ले जाते हैं। यह सुनकर सुन्दरता की आंतरिक प्रतीति में रहने वाले भाई जी नेकी+ के अहसास में आये। अपने घोड़े को एड़ी लगाई और गाँव के चारों ओर घूमे, एक स्थान पर अटक गये। जहाँ घोड़ा अटका था उतरकर निशान कर दिया और कहने लगे यहाँ कुआँ लगवा दो, अपार जल निकलेगा, गाँव के लोग माल पशु सुखी हो जायेंगे। हुक्म होने की देरी थी वहाँ कुआँ लग गया जो अब तक है, साहिब राम कुहर का कुआँ कहलाता है, और उस समय से अब तक भलाई का चश्मा होकर सुख दे रहा है।

सदा साईं के रंग में रत, सदा लिव (लौ, लगन) वाले, सदा होश वाले भाई राम कुहर जी सिक्खी की चोटी पर खड़े सतगुरू जी के प्यारे सिक्ख और वज़ीर, इन रंगों में चलते रहे। स्त्री आपकी दूसरी और फिर तीसरी भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी। चौथी शादी भी आपने की परन्तु सारा प्रवृत्ति का प्रभाव आपके सदा रंग में रत मन पर नहीं पड़ा। डेरे और घर के प्रबन्ध का प्रवाह स्वतः चलता रहा। पहले चाचा और फिर पुत्र प्रबन्ध करते रहे आपकी आज्ञा का पालन होता रहा। जब आप अपने रंग में बहुत रहने लगे तो घर कम रहते थे, बाबा बुड्ढा जी के स्थान पर अधिक वास किया करते थे। आपकी सुपुत्री बीबी@ सुक्खां का विवाह हो गया। जब बेटी विदा होने लगी तो असीस दी, 'बच्ची वाहिगुरू तुम्हारा नाम के साथ बिछोड़ा न डाले, रंग में रत रहना।' बीबी को आशीर्वाद ने सुखी कर दिया, बीबी का जीवन ऐसा पवित्र और नाम रसिया हुआ कि उसकी यादगार में गाँव के लोगों ने मंदिर बनवाया हुआ है।#

इस तरह दूसरी बीबी धरमो का विवाह हो गया। जब अभी बीबी पिता के घर पहले फेरे में ही आई हुई थी, पीछे गाँव$ पर तुर्कों की भीड़ आ पड़ी, गाँव लूट लिया और कत्लेआम कर दिया। कुछ बचे थे, वह भी वे जो मुसलमान हो गये थे। बीबी वापिस उस गाँव नहीं गई, सारी उम्र भजन करती रही, और पिता जी जब तक जीवित रहे बीबी को सत्यमार्ग में सहायता देते रहे।

---

* विरक्त।

\+ भलाई।

@ आदर सूचक शब्द।

\# इस गाँव का नाम ढ़ाला नुशहिरा बताते हैं।

$ सतराह संधूआं जिला स्यालकोट।

जब लोग श्री कुहर कौर जी की आगे लिखी कथा सुनते हैं तो भी समझते हैं कि आप बेसुध मस्ताने रहते थे। कथा यह है:-

किसी कृषक ने आकर प्रशाद खिलाया, प्रशाद अत्यधिक स्वादिष्ट था, अब कहने लगे तुम्हारे घर क्या था जो ऐसा स्वादिष्ट प्रशाद खिलाया है? तो उसने कहा कि श्राद्ध था पिता का। आप मुसकराये और कहने लगे तुम्हारे सदा श्राद्ध होते रहें। वह घबराया। जब उनके परिवार में कुछ मौतें हो गयीं तो उन्होंने समझा कि भाई जी का श्राप लग गया है तो जल्दी से एक विवाह रचा दिया और बहुत भावना के साथ प्रशाद लेकर गये। भाई राम कुहर जी फिर छक कर (खाकर) प्रसन्न हुए और कहने लगे आज तुम्हारे क्या था कि ऐसा स्वादिष्ट भोजन बना? तो वे कहने लगे जी शादी थी तब आप बोले ऐसी भावना वालों के सदा शादियाँ ही रहें।

इस साखी के दो अर्थ निकलते हैं। एक तो यह कि आपकी वाक्य सत्ता प्रबल थी। दूसरे यह कि आपकी मस्ती मस्ती नहीं थी, लौ लीनता थी, जिसमें नाम की लगन और होश दोनों होते हैं*। प्रशाद का स्वाद अनुभव कर लेना और आशीष देने के लिए उत्साहित होना यह तो 'ज्ञानी की होश' है। उस समय श्राद्ध पद के अर्थ सोचने अथवा पूछने की ओर न पड़ना यह नाम के लिव रूप होकर चल रहे प्रवाह का सूचक है। साखी आगे वाली बात नहीं बताती कि इस समय भाई जी ने उनको सच्चा उपदेश देकर नाम और प्रेम के रास्ते पर डाला कि नहीं, जिससे उनकी कल्याण हो जाये; पर ख्याल है कि ऐसा हुआ होगा। इस तरह भाई राम कुहर जी के जीवन को और उनके अपने उनके साथ घटित सतगुरू जी के इशारों को समझ सकना बहुत कठिन हो जाता है और गुरू सिक्खी के कटाक्ष लोग ऐसे वर्णन कर लेते हैं कि जैसे किसी साधारण तमोगुणी मस्तियों वाले निंद्रा वृत्ति वाले बावले ही करते हों। कर्म के बली ज्ञान में महापूर्ण साहिब राम कुहर गुरू घर का रत्न थे तथा पूर्ण पद के पुरुष और सिक्खी आदर्शों में निपुण थे। यह बात ज़रूर जीवन घटनाओं से प्रतीत होती है कि आप की तबीयत का रुख़ अन्तर्मुख रहने का था और इस हद तक था कि बहुत बार चारों पुत्रों के परिवार को संसार व्यवहार आप ही करने पड़ते थे और कई बार इस अवस्था को गहरी होते देखकर श्री कलग़ीधर जी ने ऐसे कौतुक किये थे कि श्री राम कुहर जी होश वाली मग्नता में रहें+। भाई साहिब जी अपने घर अपने रंग में विचरते थे, अगर वह मस्ती होती जो बेहोशी जैसी होती है तो घर में ही मसताने होकर पड़े रहते और अगर खुश्क ज्ञान में आरूढ़ बैठे रहने वाले थे तो भी गुरू के द्वार जाने की आवश्यकता महसूस न करते, परन्तु आप वर्ष में कई बार तड़प-तड़प उठते और चुंबक की ओर खिंचती तार की तरह अपनी आत्मा के आधार के जीवित मिकनातीस की ओर खिंचे चले जाते और चरण कमलों में जाकर सुखी और खुश होते और महीनों तक चरणामृत नैन कटोरों से भर भर पीते रहते। ये बातें पूर्ण प्रेमाभक्ति और शुद्ध अनुभवी अवस्था की सूचक हैं।

* मसत अलमसत सदा हुशिआरी।। (भा॰ गु॰)

+ ए मन मेरे सदा रंगि राते सदा हरि के गुण गाउ।। (वडहंस मः ३)

: ५ :

(श्री बाबा गुरबख्श सिंह जी)

अब समय आया कि जगत रक्षक गुरू जी ने और कौतुक आनन्दपुर में किया, अपने आदर्श को सदा जीवित रखने के लिए और अपने खालसा स्वरूप को सदा के लिए दृश्य जगत में क्रियमान रखने और जगत निस्तारण के लिए।

धन्य साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी! आनन्दपुर रंग लगा रहे हैं। ज्योति जल रही है। जगत का बोझ दूर करने के लिए, प्रजा को सुखी करने के लिए, संतों को सुख देने के लिए अब आपने खालसा बनाया है। खालसा सदा जारी रहे इस प्रयोजन के लिए आपने एक अमर पुत्र पैदा किया है जो इनके आदर्श को धारण कर बैठा है। इसकी दीक्षा के लिए, इसमें रूहानी मानसिक और शारीरिक बल भरने के लिए, अमृत की मर्यादा चलायी है। नाम देकर एक-एक को ज़िंदा कर जो कौम बनायी है उसको जत्थेबंद करके समूह का एक वजूद बाँध दिया है। उस समूह को भी खालसा कहा। एक एक जिज्ञासु सिक्ख जो अमृत से जी उठा है खालसा है। इन जिंदा हुओं की जत्थेबंदी भी खालसा है। गुरू आप भी खालसा है, खालसे का गुरू भी है। खालसे का पिता भी है और आप भी खालसा है। खालसे को गुरू बनकर अमृत पान करवाया। खालसे को आपने पिता होकर जत्थेबंद किया, लोगों की जत्थेबंदी की तरह नहीं, पर पुत्र बनाकर परिवार का सम्मान प्रदान कर। फिर खालसे को कहा यह है 'गुरू खालसा'। गुरू खालसा जुबानी ही नहीं कहा करके दिखाया: आप गुरू होते हुए भी खालसे के आगे खड़े हो गये। 'खालसा जी! अमृत छकाओ (पान कराओ)'। खालसे से आपने अमृत छका। फिर खालसा पुत्र और गुरू पिता।

'हां जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की।'

जब आपने औरंगज़ेब को ज़फरनामा लिखा था तो कहा था, चार मेरे पैदा किए अगर तूने मार लिये तो क्या हुआ अभी मेरा अमर भुजंगी जीवित है, इसके आलिंगन से तू नहीं छूट सकता*। तूने चिंगारियाँ बुझा लीं तो क्या हुआ, वह आग जो लपटें बनकर जली+ है उसको बुझायेगा तो जानेगा। ये सारी बातें अपने अमर करके बनाये जानशीन खालसे को कर रहे हैं। हाँ खालसा सतगुरू जी के आदर्श को ओट में न करो, आदर्श सामने रखो, आप सिक्ख हो, आप पुत्र हो, आप परिवार हो, आप गुरू खालसा हो। आप एक एक ने केवल व्यक्ति अथवा जाति उन्नति ही नहीं करनी, आप ने खालसा जत्थेबंदी की समष्टि तरक्की भी करनी है। आदमी अकेला आत्म उन्नति अच्छी कर सकता है, किन्तु गुरू बाबा सिखाता है कि आप उन्नत हो तथा आन्तरिक उन्नति का बाहर भी प्रभाव डालो, और भला करो। भाईचारा इंसान दूर नहीं कर सकता। अपना रंग भाईचारे में भी दो जिससे आपका चौगिर्दा उन्नत हो। खालसा पंथ गुरू होकर-पंथ खालसा जत्थेबंद होकर-जगत में सुख

* फारसी मुहावरे में मार पेचीदह जंजीर को कहते हैं।

\+ आतशदमां = भड़क रही आग।

फैलाओ। आपस में सगे भाइयों जैसे रहो, खालसे पर अपना आप न्योछावर कर दो, नाम में, वाणी में, आचरण में, भलाई में, ऊँचे पवित्र होकर सत्य को प्राप्त करो। निर्भय पद में खेलो, शक्तिवान बनो, प्रकाश वाले होओ और प्रकाश दो। निर्भय विचरण करो परन्तु भय मत दो। शक्तिवान हो परन्तु अत्याचारी न बनो। अंदर बाहर से असलियत और सच्चाई पर पहरा दो।

इस प्रकार जब खालसा मूर्तिमान हुआ था। तब श्री भाई राम कुहर जी झण्डे रमदास में थे। जब भाई जी आनन्दपुर आये तो उन्होंने देखा कि मेरे प्रीतम जी ने नया रंग फैलाया है। कहते हैं कि किसी ने सतगुरू जी को कहा कि आपके घर के दो सज्जित सम्मानित वज़ीरी की पदवी रखते हैं बाबे बुड्ढे के, उन्होंने अमृत नहीं छका तब गुरू जी मुसकराये और फ़रमाने लगे कि राम कुहर गुरू का है अपने आप अमृत छकेगा*।

जब राम कुहर जी ने आनन्दपुर प्रीतम जी के दर्शन किए, नया ठाठ, नया रंग, नया बाना देखा तो मोहित हृदय और मोहित हो गया। सारा व्यवहार देखकर कहते हैं कि मन में चाव उपजा और अमृत याचना की। सतगुरू जी ने आप प्यार के साथ लेकर अमृतपान करवाकर श्री राम कुहर जी को बाबा गुरबख्श नाम प्रदान कर सिंह सजा लिया। अब ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता परमतत्त्व को प्राप्त महापुरुष जी खालसा हो गए हैं। आप घुड़सवारी, शस्त्र विद्या के पहले से ही अच्छे ज्ञाता थे शस्त्र सजाते थे, गुरू जी के साथ कई बार शिकार पर भी जाते थे। कुछ समय इस प्रकार सच्चे पातशाह के दर्शनानंद में बीता। यह भी लिखा हुआ मिलता है कि एक दिन गुरू जी ने श्री गुरबख्श सिंह जी को कहा:- बुड्ढे! तुम्हारी आयु बड़ी होगी तुम चिरकाल जिओगे। हमारा घर इस किनारे तेरा उस किनारे, तेरा घर इस किनारे हमारा उस किनारे, जैसे कृष्ण ऊधव को छोड़ गए थे। इसका अर्थ यह है कि जब तुम परलोक में थे हम यहाँ आ गये थे, अब तुम यहाँ रहोगे हम परलोक चले जायेंगे। मतलब यह कि तुम हमारे बाद बहुत देर तक जीवित रहोगे।

एक दिन आज्ञा हुई कि अपने गाँव जाओ और गुर सिक्खी का प्रचार करो। यह आज्ञा पाकर आप अपनी राजधानी आ गए।

आप के घर आने पर आप की कुल में अमृत प्रचार हुआ। सबसे पहले आप के सुपुत्र मोहरी जी ने अमृत छका और सिंह सजकर मोहर सिंह हो गए। ये अभी बच्चे ही थे, छः सात वर्ष की अवस्था होगी, परन्तु भाई जी ने अमृत छका दिया। इसके बाद आपके परिवार ने यही धारणा धारण करनी शुरू की। फिर अपनी सेवकी के मण्डल में आपने यही

---

* सूरज प्रकाश में इस तरह की वार्ता तो लिखी है परन्तु अमृत छकने का प्रसंग नहीं दिया। वैसे भाई संतोख सिंह जी ने आपका नाम जो अमृत छकने पर रखा गया था गुरबख्श सिंह–कई स्थानों पर लिखा है। गुर विलास पातशाही १० में लिखा है कि 'राम कुइर ते क्रिपानिधि गुरबख्श सिंह कर दीन'। जीवन बाबा बुड्ढ़ा में श्री राम कुहर जी का आप याचना करके अमृत छकना लिखा है कि अमृत आप सतगुरू जी ने निज कर कमलों द्वारा छकाया था। आप के सिंह नाम–गुरबख्श सिंह–और आपका बसाया गाँव अब तक है। आपका सिंह नाम सौ साखी में भी कई स्थानों पर आया है।

प्रचार चला दिया। फिर भाई जी ने झण्डे से कोस भर दूरी पर एक गाँव बसाया, इसका नाम अपने नाम पर 'कोट गुरबख्श सिंह' रखा। यह गाँव आपके पुत्र मोहर सिंह के लिए खास तय किया गया और ज़मीन रमदास की ज़मीन में से इसके नाम पर लगायी गयी। इस तरह भाई साहिब जी ने अपने निज प्यारे सेवक रामे के लिए एक गाँव बसाया जिसका नाम 'रामे की तलवंडी' रखा, ज़मीन साथ में लगा दी और यह रामे की उपजीविका के लिए उसको बख्श दिया। इस तरह के व्यवहार करते अमृत का प्रचार बढ़ाते भाई साहिब जी अब सिक्खों की संगत साथ लेकर साहिब गुरू जी के दर्शनों के लिए आनन्दपुर को गए और अपने दैवी दाता जी की खुशियाँ प्राप्त की।

: ६ :

आनन्दपुर कुछ दिन रहकर साहिब जी की आज्ञा बाबा जी को अमृतसर जाने की हुई। बाबा गुरबख्श सिंह जी श्री अमृतसर पहुँचे। यहाँ गुरसिक्खी और माझे में अमृत का रीति रिवाज चलाया और श्री दरबार साहिब के प्रबन्ध में कुछ सेवा की। लिखा हुआ तो अभी तक नहीं मिला पर प्रतीत होता है कि अकाल बुंगे में अमृत छकाने की मर्यादा इन दिनों में ही चली थी। माझे में अब अमृत का प्रचार बहुत ज़ोरों के साथ हो गया और अनेक सिक्ख सिंह सजकर आनन्दपुर साहिब पहुँचने लग पड़े। इस इलाके का मसन्द दुनीचंद था, इसने अपने पुत्र सिंह सजा दिये।

बाबा जी अभी श्री अमृतसर ही थे कि एक कौतुक और घटा। साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की माता, श्री परम पवित्र गुजरी जी, एक दिन अमृत समय अपने नामआराधन के बाद पाठ करने लगे। जपुजी का भोग डालकर सुखमनी साहिब का पाठ किया। पाठ करते करते इस तुक की विचार मन में समा गयी कि ऐसा संत जिसमें "तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी।। तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी" वाला गुण हो, गुरू जी की परख का देखना चाहिए। गुरू में तो ये सारी विशेषताएँ स्वत: ही हैं, परन्तु जीव श्रेणी में से इस परम पद पर पहुँचा कोई संत देखना उचित है। तब अपने सुपुत्र जगत के नाथ साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी को कहने लगे:-

हे सुत सभ थल गयातावान।
हाथ बॅद्रि सम बिदत जहान।
ऊच रु नीच रंक कै राजा।
साध असाध लखहु सभि पपाजा।
इन तुकहन महिं जो भिप्राय।
हरख शोक रहितो इक भाए।
इस प्रकार को संत विसाला।
मोकउ दिखरावहु किस काला।
दुंदन महिं जिस ब्रिती समान।

मान अमान असुख सुख जान।
हरख शोक नहिं कबि उपजंता।
सदा एक रस को निबहंता।
जिस की ऐस अवस्था होए।
बडे साहिबन बरनी जोए।
उज्जल अर वडभागा माता।
कह्यो दिखावहु तिह सखयाता। (सूरज प्रताप)

श्री सतगुरू जी जानते थे कि मेरे सिक्खों के सीधे साधे स्वरूप में हरभाँति के संत पद के रत्न हैं। राह के पथिक की तरह कोई आज चला है, कोई दस बरस से, कोई बीस, पच्चीस, तीस से, इसी तरह कई पिछले जन्म से ही परिश्रम करते आ रहे हैं। कई परमपद के करीब हैं, कई ज़रा इधर हैं, कई उनसे भी इधर, इस तरह आत्मिक उन्नति की मंज़िलें भरपूर हैं। परन्तु माता जी को चोटी के महापुरुषों में से किसी एक के दर्शन करवाये जायें। इसलिए आपकी दृष्टि बाबा गुरबख्श सिंह जी पर गयी, उस समय नेत्र मूँद लिये और दिल की खींच द्वारा (कशिश से) बाबा जी को बुलावा दे दिया। माता जी को कहने लगे 'कल ऐसा संत आ जायेगा, दर्शन कर लीजिएगा। पर संत के दर्शन आदर के साथ करने ठीक हैं, आप बहुत ऊँचे भाग्य वाले हो, जो मेरे पूज्य माता जी हो, सिक्ख रूप में सभी संतों के दर्शन करते हो। तथा सिक्ख सभी नाम में रत हैं, कोई कम कोई अधिक। नाम वाले सभी संत होते हैं, कोई रास्ते के किसी कोस पर, कोई किसी पर, अब आप सिक्ख का संत रूप दर्शन करना चाहते हो, इसलिए ऐसा करो कि कल प्रशाद आप तैयार करवाओ, उस सिक्खी वेश में पूर्ण संत को श्रद्धा और सत्कार के साथ प्रशाद छकाओ तो जो संत दर्शन का सुख आपको हो और आपके आदर द्वारा संत और संत बने।' यह कहकर आप अपने दीवान के कामों की ओर चले गये। उधर बाबा गुरबख्श सिंह जी के हृदय में खिंचाव सा हुआ। समझ आ गया कि श्री गुरू जी याद कर रहे हैं और बहुत जल्दी बुला रहे हैं। आपके अंदर मन ही मन में जो कुदरत की तार है, वह तार खटक गयी। आपने रात तक तैयारी कर ली और अपनी संगत के सिंहों को कहा कि मैंने बहुत सुबह आनन्दपुर के लिए चल पड़ना है, आप चाहो मेरे साथ, चाहो पीछे पीछे चल पड़ना। मैंने तो जल्दी पहुँचना है आप पीछे पहुँच जाना। अमृत समय आप जग उठे, वाहिगुरू का आराधन करके जपु जी का भोग डालकर (पूर्ण पाठ कर अर्थात समाप्ति कर) चढ़ बैठे घोड़ी पर। अमृतसर से लगामें घुमा लीं आनंदपुर के रास्ते की ओर। घोड़ी आपकी अत्यधिक तीखी थी, चलाते भी आप हवा की तेज़ी से थे, कई बार दोनों टाँगें एक ओर करके और कई बार लगामें भी बहुत ढीली छोड़कर, इस तरह घोड़ी को सरपट दौड़ाते गए। परन्तु फिर भी रास्ता लम्बा था, दुपहर हो गयी और आनंदपुर न पहुँचा जा सका। इस समय आपने सोचा कि हुक्म है जल्दी पहुँचने का और प्रशाद वहाँ पहुँचकर छकने का। अब हुक्म का पालन पूरा करने में अपने रूहानी बल को प्रयुक्त करने में किसी तरह की अवज्ञा नहीं हो सकती। यह मन

से फैसला करने में किसी तरह की अवज्ञा नहीं हो सकती। यह मन से फैसला करके आपने अपने आपको आत्म बल द्वारा बहुत जल्दी आनन्दपुर पहुँचा लिया। उधर श्री बड़े भाग्यों वाली माता जी, जिनके सम्बन्ध में साहिब जी ने आप लिखा है– 'तात मात मुरिअलख अराधा। बहु बिधि जोग साधना साधा।' अर्थात जो माता जी भी योगी और बलवान थे, रास्ता देख रहे थे। जब दुपहर हो गयी, तो माता जी ने दास के हाथ संदेश दे भेजा 'हे देवलोक के लाल जी दुपहर हो गयी, संत जी जो आपने कहे थे कब आयेंगे? गुरू साहिब बोले, आप प्रशाद परोसने की तैयारी करवाओ, चाहे वीतराग संत ने दूर से आना है, पर अब पहुँचा कि पहुँचा जानो। श्री पावन माता जी ने जो भोजन तैयार करवाये थे, आप देखे, आप भावना के साथ बर्तन ठीक-ठाक करवाये, आसन और चौकी लगवायी। इतने में गुरू जी का निज दास आया, कि माता जी। ब्रह्म ज्ञानी जी आ गये हैं और सतगुरू जी ने प्रशाद छकने के लिए भेजे हैं। माता जी थाल तैयार कर चुके थे, ब्रह्म ज्ञानी का आना सुनकर हर्ष से भर गए। आदर से उठकर कदम उठाया ही था कि (राम कुहर) गुरबख्श सिंह जी ने चरणों पर आ शीश रखा। माता जी ने बहुत भाव के साथ सीस उठाया, आदर दिया और सम्मान सहित आसन पर बिठाकर थाल आगे रखा। बाबा जी ने प्रशाद छका। माता जी आदर सहित पंखा करते रहे। देखो जगत गुरू की माता अपने पुत्र द्वारा वर दिये और ब्रह्मज्ञान के पद पर पहुँचाये सिक्ख का आदर सम्मान कर रहे हैं। कैसे भाव भक्ति के रंग हैं।

माता जी के मन पर उनकी आत्मा का प्रभाव वीतराग अवस्था का, स्वर्ण माटी को एक तुल्य जानने की अवस्था का, पड़ता रहा। खुश हुईं कि गुरू घर में कैसे कैसे पूर्ण लोग तैयार होते हैं। जब प्रशाद छक चुके तो आदर से पूछने लगे कि आज सुख से कहाँ से चलकर पहुँचे हो? प्रत्यक्ष में मस्ताने दिखाई देने वाले समझदार गुरसिक्ख अब वह उत्तर देते हैं जिसमें यह अहंकार न हो जाये कि मैं इतनी दूर से आत्म बल द्वारा आ पहुँचा हूँ, और न माता जी इस किसी संशय में पड़ जायें कि गुरू जी ने मुझे जो इतना आदर दिया है तो मैं कोई बड़ा हूँ और फिर जो कहूँ एकदम सच भी हो। आप हाथ जोड़कर बोले,

हे जगत गुरू की माता:-

"तहां रहे राखे गुर जहां!! जहां पठावहिं जावहिं तहां।।
पुतली के अधीन क्या अहै।। नर के बस बरती नित रहै।।
जथा कराय तथा सो करिही।। तिउं सतिगुर के हम अनुसरही।।
हम सुछंद कुछ कर सक नांही।। सदा चलहिं गुर आगया मांही।।"

यह कहकर माता जी को माथा टेककर बाबा जी फिर सतगुरू जी के चरणों में आ बैठे। श्री गुरू जी ने हाल चाल पूछे, माझे के सारे हाल समझे। फिर आशीर्वाद देकर बोले:–

मोहि सरूप अहै सो तेरो। तेरो अहै सु जानो मेरो।
तोहि मोहि महिंभेद न कोऊ। एक रूप के तन हैं दोऊ।

हरि हरिजन द्वै इक हैं जैसे। श्री गुर गुरसिख लखीअहि तैसे॥४५॥
भेद लखत है जे इनमांही॥ परम रहस सो जानै नांही॥
सभ सिक्खनि को हहु सिरमौर। समता पहुच न सकहै और॥४६॥
सदा एक रस गयानानंद। तुरीआ महिं थिरकता जग बंद॥

बाबा गुरबख्श सिंह जी दाता जी का ऊपर वाला वर कहो या यथार्थ तुल्य वाक्य कहो, पाकर भी सिक्ख ही रहे, और स्वयं को किसी तुल्यता किसी बराबरी पर नहीं ले गये। तंरग समुद्र से उठती हैं, समुद्र कह सकता है—तरंग मेरी हैं, परन्तु तरंग नहीं कहती मैं समुद्र हूँ। दशम पातशाह ने अपने मुख से फ़रमा दिया कि तू मैं है, मैं तू हूँ। परन्तु बाबा जी ने न दम मारा कि तू गुरू है और मैं भी गुरू हूँ। और योद्धा गुरू ने आप कहा कि तू 'सदा एक रस गयानानंद! तुरीआ मैं थिरता जग बंद' हैं। परन्तु बाबा जी सिक्ख ही कहलाते रहे और पंथ उनको बाबा जी बुलाता रहा। उनका प्रेम देखकर कि वे आखिरी याचना सतगुरू से क्या करते हैं कि हुज़ूर में आपके दर्शनों के बिना कैसे जिऊँगा। यह है गुरू घर में ब्रह्मज्ञान और भक्ति की एकता।

एक बार एक परशुराम योगी ने सतगुरू जी के पास प्रार्थना की कि मुझे योग का रास्ता बताओ, मैं सद्गति को प्राप्त नहीं हुआ, आप कृपा करो तो मैं भी सुखी होऊँ और परमपद को प्राप्त करूँ। वास्तव में उस समय प्रसंग ब्रह्मरंध्र तोड़कर शरीर छोड़ने का चल रहा था। सतगुरू ने उसको योग के रास्ते ही ऐसा समझाया कि वह ठीक रास्ते चलकर सद्गति को पहुँचा। उस उपदेश के समय बाबा गुरबख्श सिंह जी पास थे, विनती करने लगे कि हे पातशाह मुझे भी इस रास्ते पर डालो कि अंत समय मैं भी इसी तरह जाऊँ और सद्गति प्राप्त करूँ। भाई राम कुहर जी अपनी लिखाई पोथी (पुस्तक) में यह बातचीत आप भी बताते हैं और कवि संतोख सिंह जी उसका ऐसे अनुवाद करते हैं।

सुनि करि कलगीधर मुसकाये। मो संग कहयो अधिक अपनाये।
ब्रह्म आतमा सचिदानंद। गयान भयो सुख भोग बिलंद।
कहयो सबद मै जो तत सार। सो तव प्रापत अहै उदार।
अंत काल जब होवहि तोरा। तांहि समे दरशन हुए मोरा।
मोहि चरन को सिख मुखि अहैं। मम समीपता सद ही लहैं*।
निस दिन मन सतिगुर महि लायो। नहीं बिकारु छुहन को पायो।
हाथ बंदि मैं बंदन कीन। पद अरबिदंन सिर धर दीन।

इस तरह पता चलता है कि बाबा गुरबख्श सिंह जी अब इतने प्रेम विवश हो गए थे कि वापिस लौटकर अपने गाँव नहीं गये, आनन्दपुर साहिब ही रहे, तथा अंतिम युद्ध में भी आनन्दपुर थे। बाबा जी मालवे में सतगुरू के विचरने के समय भी साथ ही होते हैं। क्योंकि बाबा बुड्ढा जी के जीवन में सैय्यद ब्रह्मी को अमृत छकाते समय पाँच प्यारों में इस भाई गुरबख्श सिंह का पता देते हैं। साखियों की पोथी में लिखा है कि गुरबख्श

* सतगुरू की समीपता ब्रह्मलोक का निवास है।

सिंह रमदास से आकर दमदमे में मिले हैं*। साथ न होने का संदेह यहाँ से मिट जाता है कि दक्षिण जाते समय दूर आगे जाकर बाबा जी की माता सतगुरू जी को जा मिलती है और राम कुहर जी को वापिस ले जाने के लिए विनय करती है। पर जीवन बाबा बुड्ढा जी में माता सभराई बाबा जी की माँ नंदेड़ पहुँचती है और वहाँ से पुत्र को वापिस लाती है। साथ में होने की बात यहाँ से भी सिद्ध हो जाती है कि बाबा जी सतगुरू जी को विनय करते हैं कि मैं दर्शन बिना प्रशाद नहीं छकता, आप माँ के साथ भेज दोगे तो मैं अन्न किस तरह खाऊँगा।

प्रसंग इस प्रकार है कि आप की माता गुरू जी का मालवे में घूमना और बाबा जी का साथ होना सुनकर तो नहीं अकुलाई पर जब पता लगा कि साहिब दक्षिण जा रहे हैं तो दौड़ी आई और दमदमे से काफी दूर आगे जाकर पहुँची और विनय की कि मैं एक पुत्र वाली हूँ, आप अब दक्षिण जा रहे हो जो बहुत दूर देश है। दूरी तो दीवार के परे जाने पर भी हो जाती है और यह तो हज़ारों कोस की दूरी है। कृपा करो और इसको मेरे साथ भेज दो। परम त्याग में बस रहे सतगुरू पर प्रेम की पीड़ाओं को जानने वाले सतगुरू, द्रवित हुए और आज्ञा की कि भाई बुड्ढे के। आप अब जाओ, अपने घर रहो, माता को सुख दो, सिक्खी का विस्तार करो और जीवन को सफल बनाओ। ब्रहम ज्ञान में आरूढ़ पर सच्चे व्यापार के व्यापारी बाबा जी नेत्र भरकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए और बोले– 'पातशाह मैं तो सदा हुज़ूरी वास की अभिलाषा रखता था, मैं आपके दर्शनों के बिना अन्न नहीं खा सकता। आपकी आज्ञा अटल है, टाल नहीं सकता। परन्तु हे प्राणप्रिय! मैं बिछुड़कर चाहे दैवगति से साँस लूँ, पर अन्न के बिना कैसे ज़ीवित रहूँगा? माँ मुझे बिछोड़कर ले जाकर अन्न बिना कितने दिन मुझे देखने का सुख प्राप्त कर सकेगी?' सतगुरू जी फिर द्रवित हुए। परखने वाले, पहचानने वाले, गहरे प्यारे के पारखी बाबा जी के अपने साथ अनन्य स्नेह को जानते हैं, उधर माँ के संत पुत्र के साथ अनन्य प्रेम को नज़र में ला रहे हैं। फिर प्रेम की किसी ऊँची परख के घर होकर बोले: 'बुड्ढे के रत्न! माता प्रेम का हम उल्लंघन नहीं कर सकते। हमारा तुम्हारा प्रेम मन के मण्डलों से ऊँचा है, वह किसी अगम्य हद का वासी है, जहाँ अकालता है, अमरता है और देशकाल की दूरी नहीं है। तुम जाओ अपनी माता के साथ। बाकी रहा दर्शन, उसको अब तूने नहीं निभाना। तुम निभा चुके हो, अब हम निभायेंगे। तुम जिस समय शस्त्र लगाकर घोड़े पर चढ़कर वन को जाओगे वहाँ तुम्हें हमारे दर्शन हो जाया करेंगे। जब दर्शन की इच्छा हो शस्त्र लगाकर चढ़ पड़ा करना, तुम कभी दर्शनहीन नहीं लौटोगे। अब बचन मान लो और माँ के हृदय को ठंडक पहुँचाओ।' यह कहकर सच्चे गुरू ने अपने साथ अभेद हुए प्यारे को विदा कर दिया।

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी।।

(गउ० म० ५)

---

* साखी १०५।

गुरू जी के व्यक्तित्व का यह कर्त्तव्य 'रस वैराग्य' के संगम का एक नमूना है। एक ओर अपना और अपने प्यारे का प्यार है, एक ओर माँ का पुत्र के साथ प्यार है। कैसे रसिक पारखी होकर पहचानते हैं और कैसे वैराग्य में आकर अपना पूर्ण त्याग माँ के साथ भेज देने में दिखाते हैं और उस त्याग में आप फिर प्यार के साथ बँधते हैं। 'प्यारे के अपने साथ प्यार को घाटा न हो, चोट न लगे' उसको वर देते हैं कि दर्शन होते रहेंगे और अपने आप को, ऐसे अनन्य प्यार करने वाले से दूरी पड़ जाने में कैसे अतीत हो जाते हैं। अपने ही श्री मुख वाक्य से फ़रमाया था:-

जत्र तत्र दिसा विसा हुइ फैलिओ अनुराग॥
जत्र तत्र बिराज ही अवधूत रूप रसाल॥ (जापु साहिब)

आपके व्यक्तित्व में ही 'रस वैराग्य' तथा 'अवधूत और रसाल' दो ताकतें एक स्थान पर एक संगम में एक रूप होकर बह रही नदियों की आभा देती दिखाई दे रही हैं।

श्री बाबा जी अब हुक्म सिर माथे स्वीकार करके अबिछुड़ते दिल को लेकर शरीर के साथ बिछुड़े, अपने देश आए और टिक (ठहर) गये। पर किस रंग? सदा लौ में, नाम में, रंग में। दर्शन बिना मन रह नहीं सकता, दर्शन बिना अन्न विष दिखाई देता है। शस्त्र धारण करते हैं, घोड़े पर चढ़ते हैं, वन को चले जाते हैं, जिस समय प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं, शीश धरती पर रखकर, 'धन्य कलगियों वाला मेरा पातशाह' के भाव से पूरित हुए धन्य धन्य करते उठते हैं और डेरे आ जाते हैं।

आपका नित्य व्यवहार अब यह है? अपने रंग में रत रहना, या आये हुए सिक्खों के साथ गुरू कृपा की बात, गुरू यश की बातचीत करनी, अमृत प्रचार करना, सिक्खी को बढ़ाना, कीर्त्तन का प्रवाह तय समय पर डेरे में जारी रखना। सिंहों से खबरें नांदेड़ की माँगनी और सुनकर प्रेम में आ जाना। आदि पातशाही से लेकर दस सतगुरुओं तक के प्रसंग अपने घराने में मौजूद थे। हर समय रंग में रत रहने वाले प्यारे ने, जिसको लोग मदहोशी वाला, निद्रावाला, मस्ताना समझ लेते हैं, वे सारे समाचार लिखे या लिखवाये। एक साखियों की पोथी तैयार की जिसमें, मशहूर है, कि ५०० साखियाँ थी। ये साखियाँ एक लेखक, साहिब सिंह नाम के, से सुन्दर लिखवायीं जो उस रूप में अभी तक नहीं मिलीं। ये हैं मस्ताने गुरू घर के। जो सदा अन्तर्मुख भी रहते, पर होश में भी, आत्म रस रंग में भी रहते। आप की नाम की लगन भी चलती रहती, आप कथा वार्त्ता भी करते, पुस्तक भी लिखते लिखवाते, सिक्खी प्रचार भी करते, घोड़े की सवारी भी करते, शस्त्र भी लगाते, वीतराग भी होते फिर प्रेम की द्रवणता की भी अवधि होती। यह सफल ज्ञान और ज्ञानमयी भक्ति का दामनिक शक्ति वाला परम पद है। डेरा लूट जाये तो वीतराग हैं, परवाह नहीं, माल वापिस आ जाये तो अंहकार से फूलना नहीं। फौज़ रखनी, रियासत चलानी, प्रबन्ध भाई करे कि पुत्र पर आप सहारा देने से परे नहीं होना। हर रंग खेलना, हर रंग हर स्थान पर प्रीतम को देखना। बल और शक्ति और समझ अंदर ऐसी कि दोनों पैर एक ओर करके घोड़ी पर चढ़ना और बिना लगाम पकड़े मीलों सरपट दौड़ाते जाना। अगर अन्तर्मुख मग्न होना तो कई कई दिन रंग रस में जुड़े रहना।

कुछ एक प्रसंग आपके इस समय के इस प्रकार के मिलते हैं:- सांसारिक ऐश्वर्य इतना था कि आपके बेटे का विवाह पटियाला के महाराज आला सिंह की पुत्री बीबी परधान के साथ हुआ था। दूसरा पुत्र अनूप सिंह था, तीसरा पुत्र किशन कँवर बचपन में ही फकीरी रंग का था। यह बच्चा कोई करामात की बात कर बैठा, आपने मना किया कि यह बात रज़ा (उसकी मर्जी) समझे बिना नहीं किया करते तो बच्चा शरीर त्याग गया। इस समय आप बिलकुल भी उदास नहीं हुए।

शाह हबीब नाम का मुसलमान फकीर हुआ है, यह सैयद था। यह बग़दाद का रहने वाला अपनी टोली में ही हिन्दुस्तान आ निकला था। अपनी जिज्ञासा में यह प्रत्येक फकीर को मिलता था परन्तु ठंडक कहीं से नहीं मिली। फिर यह अपने धर्म का पक्षपात छोड़कर दूसरे मतों के फकीरों को मिला। अंत में बाबा जी के पास आया, गुरूवाणी सुनी और यहाँ से ठंडक पाई। भाई जी से सुखी होकर यह यहाँ ही ठहर गया। बाबा जी ने शाह हबीब को ज़मीन देकर घर बना दिया और बटाले विवाह कर दिया। यह सज्जन धन्य गुरू नानक जपता यहाँ ही चढ़ाई कर गया। इसके स्थान पर अब तक मेला लगता है। बाबा जी की आपके सम्बन्ध में कई करामातें प्रसिद्ध हैं।

यह भी प्रसिद्ध है कि बाबा गुरबख्श सिंह जी को प्रशाद छकते समय जब रामा कहे कि वृद्ध के तृप्त हो गए तो आप बस कर देते। ऐसी बातें लोग ऐसे रंग में वर्णित करते हैं कि जिससे आप इतने बेहोश लगें कि अपने तृप्त हो जाने की ओर से भी बेहोश थे। अगर ऐसी बात हो भी तो कभी कभार हो सकती है, नित्य क्रिया ऐसी होनी निभती नहीं। बात यह मस्ती की नहीं पर ध्यान की होती है। देखो अगर बातें करते करते ध्यान किसी और तरफ चला जाये तो फिर कहते हैं, मैंने सुना नहीं जी, ज़रा फिर कहना आपने क्या कहा था? यह बात हर किसी के अनुभव में आती है। उस समय आदमी बेहोश नहीं होता, ध्यान अन्य ओर गड़ गया होता है। वैसे ही आप पक्के ध्यानी अन्तर्मुख लगन में थे, बेहोश नहीं थे। आपका सहज ध्यान अपने प्रियतम में रहता था और उस ओर ध्यान होने के कारण ऐसे वाक्य होते थे कि प्रशाद खाने बैठे तो खाते चले गये और अंतर की इच्छा ध्यान की प्रशाद की जगह अपने प्रवाह में मग्न रही। रामे ने देखा कि कठिनाई न हो तो उसने आवाज़ दी कि बस करो महाराज बाबे के तृप्त हो गए हैं, तो आपका ध्यान प्रशाद की ओर आ गया। ऐसे प्रसंग बाबा बीर सिंह जी नौरंगाबाद वालों के भी सुने हैं कि वन में अपने रंग में मग्न बैठे वक्त पर डेरे जाने के लिए उठना आप कई बार भूल गए। आम लोग वृत्ति की परिपक्वता की जगह मामूली मस्ती को यह अवस्था समझकर कई मस्ताने फकीरों को ऊँचा फकीर समझकर कठिनाइयों में पड़ जाते हैं।

एक बल्ली नाम का जुलाहा आपको कपड़े बुनकर पहुँचाया करता था। बारह बरस बुनाई नहीं माँगी तो एक बार वह वस्त्र लाया। आपने पूछा 'बुनाई ले ली है बल्ली?' तो वह कहने लगा 'दो न बुनाई'। जब बाबा जी ने पता किया तो आप को थाह मिली कि बारह वर्ष से बल्ली को बुनाई नहीं मिली। आपने हँसकर हुक्म दिया 'सारी बुनाई गिनकर

बल्ली के पल्ले में डालो।' तब बल्ली ने हाथ जोड़े और विनती की अब माया न मुझे दो, आप भी कोई बुनाई जानते हो, मेरा भी कोई ताना बाना उलझा पड़ा है। कृपा करके सुलझा दो और फिर थोड़ा बुन दो। आप हँस पड़े और सतनाम का उपदेश देकर गुरू का सिक्ख बना लिया। यह गुरू का सिक्ख बहुत नामी हुआ है, जिसका स्थान अभी तक 'धनौडे' में कायम बताया जाता है।

इस तरह एक भाई दयाला आपके सत्संग से नाम रसिया हुआ। इसको एक तो नाम दान दिया और साथ ही इसके नाम का दयालपुरी गाँव भी बसाकर उसको दे दिया। इस दयाल दास सज्जन के यत्न से लुबाणे सिक्खों में गुरू सिक्खी का बहुत प्रचार हुआ था।

लूट

जब नादिर ने आकर लाहौर लूटा है तो यह लूट दायें बायें सारी ओर फैली सुनी है। झण्डे रमदास भी लूट पड़ी। लूटने वाले अफसर को जब पता लगा कि इस नगरी का मालिक फकीर और फकीर दोस्त है और हिन्दू मुसलमान के साथ समान व्यवहार करता है तो आपके पास आ पहुँचा। पास जाकर सलाम करके बैठ गया और कहने लगा 'बाबा जी! आप की लूट नहीं थी होनी पर अनजाने हो गयी है। अब आप बता दो आप का जितना नुकसान हुआ है मैं वापिस भिजवा दूँगा।' आपने चारों ओर देखा, हँसे और कहने लगे– 'बाज़ों की रस्सियाँ नहीं दिखाई देतीं, ये अगर मिल जायें तो भेज देना।' यह सुनकर इसको आश्चर्य हुआ कि सारा घर बार लूटा गया, इस साईं को परवाह नहीं पर मुझे शायद इशारा किया है कि मुझे बाज़ों की रस्सी जितनी पीड़ा नहीं, या इनको लूट हुई का पता ही नहीं है। यह सोचकर मन किया कि परीक्षा करूँ अगर सचमुच वली हैं तो करामात बताने में पूरे उतरें। इसलिए प्रतिष्ठा देखने की दिल में ठानकर कहने लगा भाई साहिब हमारे साथ लाहौर चलो। आपने कहा सत्य वचन। घोड़ी पर अपने स्वभावानुसार एक ओर टाँगें करके बैठ गए और बिना लगाम चला दी। मनसबदार समझता था कि गिरेंगे, परन्तु वे बिना हिले पहुँच गए। लाहौर पहुँचकर डेरा करवा दिया। अगले दिन आकर मिला और करामात देखने के लिए ज़रा अधिक गर्म पानी का देगचा स्नान के लिए दिया। परन्तु भाई जी शीतल जल की तरह स्नान कर गये। फिर एक मस्त हाथी लाया गया, पर हाथी ने आपको कुचला नहीं बल्कि सिर पर उठाकर बिठा लिया। एक दिन बहुत अड़ियल घोड़ी पर आपको बिठा दिया गया और हाकिम जी आपको शिकार पर साथ ले चले। भाई जी उस घोड़ी पर शिकार भी हो आये। इस तरह के करामातों के प्रसंग लिखे और ज़ुबानी मिलते हैं। प्रतीत होता है कि आपको लूट के बाद लाहौर ले गये थे, पर वहाँ जाकर आपकी फकीरी ताकत और बुज़ुर्गी का हाल पता लगने पर आप माल असबाब सहित सम्मान सहित वापिस भेजे गए।

बाबा जी चिरकाल तक जिये हैं, बाबा बंदा का समय, पंथ की कठिन हालत, अब्दुल समद्द खाँ के और ज़करीया खाँ के वहशियाना ज़ुल्म देखे हैं। नादिर की लूट भी देखी, परेशानी भी झेली। बाबा दीप सिंह का समय देखा है। शहीदों का समय और मीर मन्नू के

कत्लेआम देखे सुने हैं। फिर पंथ का ऊँचा पलड़ा होता भी देखा है। नवाब कपूर सिंह का समय देखा और बाबा जस्सा सिंह अहलूवालिये की जत्थेदारी में पंथ की ऊँचाई होती भी नज़र (दिखाई) पड़ी। आप कहा भी करते थे कि अंत में खालसा बली होकर टूट पड़ेगा। जब शरीर अच्छा वृद्ध हो गया तो सरदारी और प्रधानगी पुत्र मोहर सिंह को सुपुर्द की और आप काश्मीर की सैर करते नैणे के कोट आ गए। यहाँ आप सावन २१ संवत् १८१८ तक टिके रहे, जिस दिन कि आप गुरसिक्खी के झण्डे झुलाते नेत्रों वाले के देश पहुँच गये। आपका जीवन गुरू प्रेम की हद्द थी। आपका निश्चय स्थिर और अचंचल वस्तु थी। आपकी भक्ति की अवस्था बेमिसाल थी। आपके हृदय में पूर्ण ज्ञान था और आपको कोई अगम्य ज्ञान था उच्च मंडलों का। आप का निर्मल ध्यान था अपने आप में और परमात्मा के साथ मिलन था आपका। आप पूर्ण ज्ञानी और महापुरूष थे जिनके अंदर प्रेम और ज्ञान एक रूप हो गए थे। जैसे आपने सतगुरू के साथ निभाई और प्रेम पाला, जैसे निज आनंद में मग्न रहते हुए प्रचार किये, सिक्खी फैलायी, कथाएँ कीं, साखियाँ लिखी वे कमाल के काम हैं।



सूचना: सतगुरू जी अपने सफर में राजाओं के देश के बीच में से दक्षिण को जा रहे हैं। कुलायत के बाद आप जी का पड़ाव बघौर हुआ, यहाँ खबर आई कि औरंगज़ेब मर गया है, यहाँ ही भाई नंदलाल जी बहादुरशाह की विनती लेकर मिले और पीछे लौटे और दिल्ली आये। बहादुरशाह का ताराआज़म के साथ युद्ध जाजू के पड़ाव पर हुआ। तारा आज़म मारा गया और बहादुरशाह युद्ध जीत कर हिंद का पातशाह हो गया। श्री गुरू जी दिल्ली से मथुरा मथुरा से वृन्दावन और यहाँ से आगरा आये। पातशाह ने मुलाकात के लिए आदर के साथ बुलवा भेजा। गुरू जी जब गये तो बहुत सम्मान के साथ मिला, एक कलग़ी, एक धुकधुकी और कीमती खिल्लत सहित प्रस्तुत करके शुक्रिया अदा किया*। जो गुरू जी ने अपने साथ के सेवक से उठवा लिए और आदर सहित विदा हुए+। प्रतीत होता है कि मुलाकात फिर भी होती रही है। एक दिन की वार्ता अगली कविता में नमूना मात्र दर्ज है:-

---

* यह वस्तु साठ हज़ार रुपये की बतायी जाती है।

\+ यह वार्ता 'गुर शोभा' में लिखी है। दूसरे मुगल पातशाह की दी खिल्लत आदि को पहनना नहीं और उठवाकर ले आना केवल वे कर सकते थे जो बादशाह की ओर से दीन के बुजुर्ग समझकर सम्मानित किये जाते थे। जिससे स्पष्ट है कि पातशाह उनको दीन के बुजुर्ग समझकर आदर करता था।

९२ बहादरशाह और गुरू गोबिन्द सिंह जी*

(एक बातचीत)

बहादरशाह–एक खुदाए जी एक खुदाए।
गुरू जी–तीन खुदा भई तीन खुदाए।
बहादरशाह–देवो सतिगुर मोहि बताए। तीन खुदा कि एक खुदाए?
गुरू जी–तीन खुदा बई तीन खुदाए।
बहादरशाह–देवो गुरू जी भेद बताए।

गुरू जी– एक खुदा जिस कहो खुदाए, ख्याल तुसाडे लिआ बनाए।
दूसरे सो जो राम कहाए, पर जो तुहाडे दिल नहीं भाए।
ख्याल विच दो भए खुदाए, दो खुदाए ऐ दोए खुदाए।

बहादरशाह– समझी नहीं फिर दिओ सुझाए। आखे तुसां जु दोए खुदाए।

गुरू जी– एक खुदा जो राम कहाए, दिल तुहाडे नूँ जो नहीं भाए।
जो कुई सिमरे एस खुदाए, मुसलिम उस नूँ दुक्ख दिवाए।
दूजे, जिस नूँ कहो खुदाए, आखो, भिशतीं लए सदाए।
दोवें ख्याली एह खुदाए, वहिम आप दे रिहा समाए।
समझ तुहाडी वैर विराए, उस लीते दो रब्ब बनाए।
दोवें ख्याली तुसां खुदाए! तीजा सच्चा सुणों खुदाए,
'अकाल मूरती' ओह खुदाए, सारी सृष्टि प्यार कराए,
नाम अनिक पै एक खुदाए, ख्याल फिकर तों परे रहाए,
ओहो अल्ला आप खुदाए, ओहो राम रहीम कहाए,
ओहो कादर करम करीम, ओहो किरपा धार करीम।
तीजा सभ दा एह खुदाए, असली असली सच्च खुदाए,
जो इसदी शरनी पै जाए, मुकती उस दी है हो जाए।'
सुणके पैरीं पै गिआ, शाह बहादर शाह।
आखे आखिआ सच्चे जे, सच्चे हो पातशाह!



---

* यह प्रसंग १४ पौष सं० गु० ना० सा० ४४८ (२८ दिसम्बर १९१६) गुरूपर्व सप्तमी समय खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

सूचना: आगरा में पातशाह के साथ देश के सुख शांति के लिए और उसके जंग से पहले से किये इकरारों के पूरा करने के मामले सुलझाये जाने के यत्न होते रहे। आशा थी कि फैसले हो जाने पर आप आनन्दपुर को लौट पड़ते और पातशाह की पहले कछवाहे के राजपूतों पर हमला करने की सलाह हुई और फिर दक्षिण से कामबख्श की बग़ावत की खबर सुनकर पातशाह जल्दी चल पड़ा और गुरू जी भी दक्षिण को चल पड़े। कि रास्ते में बातें तय हो जायेंगी। इस प्रकार जब आगरे से दक्षिण को चले और बुरहानपुर आये, वहाँ सतगुरू जी के ठहरने और इलाही भेंटें देने का जो प्रसंग घटित हुआ वह आगामी प्रसंग में है।

१३ योगी जीवण दास*

: १ :

ताप्ती नदी, मुलताई से कुछ मील ऊँचे स्थान से जन्म लेकर, नीचे उतरती कई मोड़ और चक्कर खाती, अपने मतवाले रंगों में अठखेलियाँ करती, पश्चिम को बहती सागर को मिलने और उसमें अपना आप अर्पण करने को जा रही है। इसके किनारे, उत्तर की ओर, उस ठिकाने कि जहाँ बुरहानपुर शहर अब तक बसता है, एक रमणीय स्थान पर एक बड़ी उम्र के संत बैठे हैं। आयु अंतिम चरण में है, पर शरीर अरोग्य है, चेहरे की चमड़ी कुछ थोड़ी थोड़ी झुर्रिआँ ले रही है परन्तु रंग अभी भी लाल है। बुढ़ापे में जो कुदरत ने दिया है, साधु के किन्हीं शुभ कर्मों के कारण अभी जवानी वाली जीवन सत्ता है। बुढ़ापे के सभी लक्षण प्रगट हो चुके हैं, परन्तु जवानी की आभा अभी भी दमक रही है। इस समय आप दक्षिण की ओर मुँह करके बैठे नदी की तरंगों को देखते हुए उच्छवास भरकर कह रहे हैं–कभी उदास हो होकर गाया करते थे, 'नित जोबन जावै मेरे पिआरे जमु सास हिरे।।' यौवन चला गया और अब तो बुढ़ापा भी जा रहा है। हे 'मेरे मन परदेसी वे पिआरे आउ घरे।। हरि गुरु मिलावहु मेरे पिआरे घरि वसै हरे।।' अब तो घर बसो, हे दाता। अब तो दर्शन दो? अब तो 'जम सासु हिरे' से आगे यम सिर पर खड़ा होगा (काँप कर) हाँ श्वास खत्म होने वाले होंगे ...... (सोचकर) यम का मेरे साथ क्या काम है? मेरे सिर पर बहादुर का हाथ है। ...... (फिर नेत्र भरकर) आह आयु बीत गयी, मन की मुराद (इच्छा) नहीं पूरी हुई। दर्शन, फिर दर्शन न हुए, होंगे, जरूर होंगे, यह अमर वाक्य है, टलेगा नहीं। यह कहते हुए फिर नेत्र भर आये ...... हाँ कब था ..... हैं जी ...... चालीस कि अधिक कि कुछ कम? इतने वर्ष! बिछोह में मैंने निकाल लिये। पापी शरीर बिछुड़कर जीता ही रहा? आह! पर दाता की भेंट, जबसे मिले चक्कर मिट गया, ठिकाना आ गया, टिककर बैठ गया। साईं की याद मिल गयी और फिर नहीं भूली। स्नेह मिला कृपा द्वारा, अब कोई उसे लाये न कि हे बुड्ढे। जिसका तूने इतने वर्ष स्मरण किया है, वह भी तुझे प्यार करता है। मुझे तो कृपण तपी को उससे प्यार – ब्रह्मपुत्रा के किनारे – भेंट में अनमाँगा दान मिल गया था, पर लालसा यह रही 'जितु सुणि धरे पिआरु' वे क्या 'बोलण बोलीए'? 'वह मुझे प्यार करे' यह इच्छा कैसे पूरी हो। हाँ सत्य नाम मिला, वाणी मिली, कृपा हुई पर वह मुझे प्यार करे, वह मेरे साथ 'धरे पिआरु' यह लालसा रही। हाँ, वह अरूप, अरेख, अरंग, मुझ वृद्ध को प्यार करे? क्यों करे (दुख भरी चीख निकल गयी)? मुझ में क्या गुण? 'विणु

* यह प्रसंग ४ माघ सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४५५ (१७ जनवरी १९२४) को गुरुपर्व सप्तमी के खाल्सा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

गुण कीते भगति न होए' यह तो मेरी हालत है। मुझमें गुण ही कोई नहीं, बल्कि 'सभि गुण तेरे मैं नाहीं कोए।।' (ऊपर देखकर) हाँ कृपा कर न आज ताप्ती के किनारे, जैसे कृपा की थी ब्रह्मपुत्रा के किनारे, इन बहते नेत्रों को, मिट रहे नेत्रों को दे न दीदार? इन नेत्रों के अंदर के नेत्र नहीं खुले जो अरूप को देखते, इन नेत्रों को नेत्रों के साथ हो सकने वाले दीदार देकर तो निहाल कर। आ एक बार इन नैनों में, इनके सदा के लिए मिट जाने से पहले, आ इन मरणहारों की ज्योति न समाप्त होने से पहले, हे दाता अपने बिरद के सदके आ।

ऐसे कहते और रोते हुए हिचकी बँध गयी, कितनी देर आँखें बंद रहीं मानो गुम हो गये। कोई झपकी नींद सी की आई, कोई क्षण चित्त गुम होने का बीता, फिर होश आई, मन ठंडा और हल्का था। प्यार की कशिश शुक्र, विनती और याद के रंग से मीठी मीठी होकर कलेजे को खींच रही थी, इस समय वृद्ध गला खुला और थिरकती, पर रसीली सुर निकली जैतसरी की और वृद्ध प्रेमी जी, जिन के प्यार की कंपन जवानों से भी तीखी है, विह्वल हो गा उठेः-

कोई जनु हरि सिउ देवै जोरि॥
चरन गहउ बकउ सुभ रसना दीजै प्राण अकोरि॥१॥ रहाउ॥
मनु तनु निरमल करत किआरो हरि सिंचै सुधा संजोरि॥
इआ रस महि मरनु होत किरपा ते महा बिखिआ ते तोरि॥१॥
आइओ सरणि दीन दुख भंजन चितवउ तुमरी ओरि॥
अभै पदु दानु सिमरनु सुआमी को प्रभ नानक बंधन छोरि॥२॥५९॥

(जैत० म० ५)

अब सूर्य लटपटा गया था, आप के दर से वर प्राप्त किए कुछ शरीर आकर थोड़ी दूर अदब के साथ बैठे आपके प्रेम और कीर्तन को सुन रहे थे। आँखें खुली देखकर आगे बढ़े और माथा टेककर बैठ गए। वृद्ध जी ने कहा, सज्जनो! रहुरास जी का पाठ सुनाओ। एक प्रेमी पाठ करने बैठ गया। गुरूवाणी का एक मन प्रेम के साथ पाठ, नाम के प्रेमी का प्रभाव, संध्या का समय, आँखों के सामने नदी का प्रवाह, चलते जल का नज़ारा, पार दूर तक शून्य ही शून्य, बहुत ही स्वाद का समां बँध गया। भोग पड़ने पर (पाठ की समाप्ति होने पर) संत जी उठे, आपके साथ वे बाद में आये शरीर भी हो लिये और शनैः शनैः अपने डेरे पहुँच गये।

: २ :

कुछ दिन बीत गए, किसी ने आकर कहा:– 'महाराज जी! दो जहान के वाली (स्वामी) श्री सतगुरू जी बुरहानपुर आ गए हैं और ताप्ती नदी के किनारे ज्योति प्रकाशित हो रही है।' यह ख़बर थी कि व्याकुल प्यासे को अमृत की बूँदे थीं, रोम रोम में एक रस भरी कंपन फिर गयी, कलेजा उछलकर थिरका और फिर अंदर धन्यवाद के बाजे बज गये। 'हाँ ठीक है, तब भी आप ही प्रसन्न हुए थे, अब भी आप ही'। संत जी ऐसे धन्यवाद करते

उठे, 'वाहिगुरू वाहिगुरू' उच्चारण करते चले, चलते तो गये नदी की ओर, जिसके शोभनीय किनारे ज्योति फैला रहे थे त्रिलोकी के नाथ साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी। दीवान सज रहा था, बीच में आप सुशोभित हो रहे थे, जैसे भीगी रात के तारों में निर्मल चंद्रमा।

साधु धीरे-धीरे जा रहा है, शरीर वृद्ध है। वही प्यार, शुक्र, कशिश, इच्छा, रुचि के भाव का मद, एक आश्चर्य डगमग चाल से प्रेम के रास्ते चल रहा है:-

रिदे अनंद उमंगत जोवा। रोमंचति साधू तन होवा।

नीठ नीठ पायन कहु डालत। डगमगात, डोलत, द्रिग चालत। (गु॰ प्र॰ सू॰)

इस तरह जाता नदी किनारे पहुँचा। साथ के शरीर धीमे धीमे स्वरों में शबद पढ़ते जा रहे थे। वे ठीक ठिकाने पर ले गये साधु को। जैसे ही साधु जीवणदास की दृष्टि दीवान पर पड़ी और देवलोक के जग जीवन दाता मनुष्य शरीर में ईश्वरीय नूर प्रकाशित करते हुए बैठे देखे, द्रवित हो रहा मन और पसीजा, आपे से बाहर हो गया, ऐसी विह्वलता छाई कि अपना आप न सँभाला गया और वहीं धरती पर नमस्कार की मुद्रा में लेट गया, मानों सतगुरू जी के चरणों पर माथा धर दिया है और उन कमलों से भी अधिक कोमल कमलों को भँवरा होकर लिपट गया है। क्यों न लिपटे और बेसुध होकर लीन हो जाये? चालीस-बयालीस के लगभग वर्ष इस दर्शन के इंतज़ार में बीत गये थे। इतनी देर इस सुलक्षणी घड़ी की इच्छा लगी रही है। हाँ यह सुखपूर्ण क्षण आज, हाँ आज, मानों युगों बाद मिला है। उस प्यारे पल पर कुर्बान जो तड़पते मनों को ऐसे तरस-तरस कर मिलता है। साधु पड़ा है ज़मीन पर, पर लिपट रहा है चरण कमलों को। उधर देखो उस प्रेम सागर, हाँ उस प्रेम समुद्र के चरण कमल भी अकुला कर उठे हैं, उतावले होकर चले हैं, दीवान से बाहर आ गये हैं, सैंकड़ों को छोड़ आये हैं, अमीरों धनी लोगों से ग़रीबों की ओर आये हैं, श्रद्धावानों से उठकर एक टूट गए निराभिमान ग़रीब दिल की ओर आये हैं, उस दिल की ओर जहाँ एक 'गुरू दर्शन की पीड़ा' बसती है और कुछ नहीं। हाँ जी, आये हैं कृपा के साईं, देखें? झुके हैं उस गरीब पर, अपने आप—जी हाँ, अपने आप अपना चरण कमल उसके धूल में पड़े माथे के नीचे कर दिया, आँखों से बह रहे बूड्ढे के नेत्रों के नीर के नीचे चरण कमल दे दिया, कितने हैं प्यार वाले? प्रेम के दर तुल रहे तराजू पर इतना अमूल्य जल चरण कमलों के बिना अन्य स्थान पर गिरना प्रेम की बेकद्री है। प्रेमी के मन में उसका माथा परम पवित्र चरणों को छूने की बेअदबी नहीं कर सकता, ऐसा नीचा माथा है कि धूल ही इसका महा ऊँचा ठिकाना है, इसलिए धूल पर ही बिछा दिया था सुन्दर माथा; परन्तु क़द्र वाले दिलों के महरम के अपनाने वाले के बिरद की ओर देखना कि चरण कमल दे दिए हैं उस प्यार भरे माथे के नीचे, झुक गए हैं रस के मद से मस्त बेल की तरह प्यारे के शीश पर, जैसे वह झुकती है अपने सुन्दर फलों पर। हाँ अब पवित्र हाथ घूम रहे हैं प्यारे के शीश पर, पीठ पर, जा पहुँचे हैं कंधों पर। इन बलवान पवित्र हाथों ने दबाव डालकर, आप उच्चता देकर उठा लिया है प्यारे को धूल पर से और खड़ा कर लिया है, दर पर पड़े को अपने भुजबल से:-

भुज बलबीर ब्रह्म सुख सागर॥
गरत परत गहि लेहु अंगुरीआ॥

हाँ जी! गिरे पड़े हुए को उठा लिया; धूल में सने को धूल सहित गले लगा लिया। गले के साथ लगाकर अपनी मीठी कलाइयों से दबाया, छाती के साथ लगाकर कसा, हाँ जी साधु तो पहले ही पसीजा और रुआँसा हुआ पड़ा था, अब तो ईश्वरीय इच्छाओं और दैवी कम्पनों से बह ही गया, अपना आप अपने से उठकर सतगुरू जी में मानो समा गया। हाँ जी, ज़रा सतगुरू की ओर देखना, संत को आप हाथ में हाथ डालकर सभा में ला रहे हैं। अनेक हैं सिक्ख, शूरवीर, दास, पर किसी को यह काम नहीं सौंपा। दास को सम्मानित करने का काम, प्यारों को आदर देने का मीठा मीठा काम आप ही करते सुशोभित होते हैं, यही है आपका बिरद! प्यार में तड़पते दर पर पड़े हुओं को 'कंठ लगाये' 'कंठ लगाये' हमारे स्वामी का यही बिरद है, कुर्बान इस बिरद के। ले आये वृद्ध साधु को, गरीब निराश्रित साधु को, दीवान में आप और बिठाया अपने दायें हाथ आप, और अब लगे अपने अंदर से ठंडे प्रवाह डालने। शनैः शनैः साधु का दिल स्थिर हो गया, धैर्य आ गया, शरीर भी अंचचल हो गया, नज़र भर भरकर अब सतगुरू की मूर्ति देखी, फिर देखी, अच्छी तरह सूरत देखी, अब देखी तो पहचान ही ली और पहचान क्या ली? वह तो दूर से ही पहचानी थी अब तो जैसे प्यासा पहला कटोरा एक ही साँस में पीकर फिर घूँट घूँटकर स्वाद लगा लगाकर पीता है, वैसे ही 'नयन कटोरे दर्शन के घूँट फिर-फिर भरते और पीते हैं। सतगुरू जी ने अत्यधिक प्यार के साथ अब पूछा–जीवण! कुशल है। अच्छी गुज़र गयी, घर के दूतों ने तो फिर नहीं सताया, सिमरन चलता रहा? रस पड़ता रहा? प्रेमा भक्ति मिलती और फलती रही?"

साधु जीवणदास–कुर्बान, ऐसे ही बोले थे 'जीवण'। तब जब मिले थे ब्रह्मपुत्रा नदी के किनारे। वही आवाज़ है, यही पुकार थी, यही अक्षर थे 'जीवण'। तब भी जब बुलाते थे 'जीवण' तो रोमों में कंपन होता था, अब भी वैसे ही कम्पन हुई है। कुर्बान! तब नौवाँ रूप था, अब दसवाँ, परन्तु पुकार वही की वही है, ज्योति वही की वही है।

गुरू जी–सुना भई जीवण! पिता गुरू जी की कोई कथा कहानी?

जीवण–सच्चे पातशाह! जब आसाम का कल्याण कर रहे थे और धुबड़ी में डेरे थे, मैंने तब दर्शन पाऐ थे। मैं एक बड़े सेठ का पुत्र वैराग्य कर साधु बन देश देश घूम रहा था, हठ योग के साधन सारे करता था, पढ़ा भी था, परन्तु ठंडक नहीं थी पड़ती। घूमता घूमता जब मैं ढाके पहुँचा तो बुलाकी दास आपके घर के प्यारे भक्त को मिला। यह बहुत प्यार के साथ नौंवे सतगुरू जी की इंतज़ार कर रहा था। उनके लिए एक दालान तैयार करवाया, एक पलंग* खासतौर पर बनवाया। इनकी माता ने अपने हाथों से कातकर, थान बुनवाकर, पोशाक बनवाकर रखी थी कि आयेंगे तो भेंट करूँगी। इनकी संगति में मुझे

* यह पलंग अब तक ढाके में आदर सहित रखा हुआ है, ऐसा सुनने में आता है।

हठयोग के रास्ते से उपरामता हुई और भक्ति की ओर प्यार हुआ और मैं सतगुरू जी के दर्शनों के लिए इनसे भी अधिक उतावला हो गया। ये तो ढाके में इंतज़ार करते रहे और मैंने अनुमान लगाया कि पहले धुबड़ी पहुँचेंगे, इसलिए मैं वहाँ पहुँच गया, परन्तु गुरू जी पहले ढाके पहुँचे। पूर्ण भक्त बुलाकी दास और उसकी वृद्ध माता का कल्याण किया, फिर धुबड़ी आये। बुलाकी दास ने मेरे त्याग, वैराग्य, दुख, कष्ट, तप करने का हाल कहकर विनय कर दी थी कि अगर दाता जी चाहें तो कृपा का छींटा मार दें। धुबड़ी मैंने सतगुरू जी को ब्रह्मपुत्रा नदी की बहती तरंगों के किनारे ऐसे ही जा देखा जैसे आज आपको ताप्ती नदी के किनारे देख रहा हूँ। सतगुरू जी ने कृपा की, इस कीट को नाम दान दिया। मेरी बुद्धि मोटी, मन मैला और शरीर कड़ा सा था, परन्तु आपने मेरे अंदर नाम पिरो ही दिया। जितनी देर महाराज आसाम रहे, मैं साथ रहा और दर्शन सत्संग का लाभ लेता रहा। जब आप विदा होने लगे तो मुझे हुक्म हुआ कि यहाँ से चले जाओ, दक्षिण देश कहीं एकांत में डेरा लगा लो, बंदगी करो। मैंने विनय की: पातशाह! आप के सिक्ख सब गृहस्थी हैं, मैं अतीत हूँ* हुक्म हो तो मैं भी गृहस्थ करूँ? साहिब बोले: "चित्त करता है?" दास ने विनय की: "नहीं पातशाह!" केवल इसलिए पूछता हूँ कि अगर श्री जी की विशेष प्रसन्नता गृहस्थ पर है तो दास को अतीत रहने का हठ नहीं। और जी स्वभाव अकेले रहने का पक चुका है, गृहस्थ निभना कठिन दिखाई देता है, परन्तु अगर हुक्म हो तो दास के सिर माथे पर है।" तब दाता जी बोले:– भाई गृहस्थ में रहकर भजन करना क़िले की लड़ाई है, विरक्तता में निभना कठिन है। और मुख्य बात साईं का सिमरन अर्थात उसके चरणों के साथ स्नेह है। 'इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा'।। जिस हाल में जो रहे वही धन्य है। अगर वाहिगुरू से प्रेम है तो 'इस ही महि जिस की पति राखै तिसु साधू चउरु ढालीऐ।' दुख दोनों दशाओं में है–

ग्रिह राज महि नरकु उदास करोधा।।
बहु बिधि बेद पाठ सभि सोधा।।
देही महि जो रहै अलिपता तिसु जन की पूरन घलीऐ।

इस प्रकार प्रेम मुख्य है। आपके लिए यह आज्ञा है–

कबीर जउ ग्रिहु करहि त धरमु करु नाही त करु बैरागु।।
बैरागी बंधनु करै ताको बडो अभागु।। २४३।। (स: क:)

तू बंदगी कर, सिमरन कर, तेरे विकार नष्ट हुए। गृहस्थ में सुख और निबाह सिमरन का विशेष है, परन्तु हे सिक्ख, साधु! तुम्हारे लिए यही श्रेष्ठ है, तुम्हारा स्वभाव निवृत्ति में रहने का पक्का हो चुका है, गृहस्थ तुम्हें कठिन लगेगा। मूल बात को तुम समझते ही हो, देखो आदि पातशाह क्या फ़रमाते हैं–

---

* विरक्त

सुरती कै मारगि चलिकै उलटी नदरि प्रगासी॥
मनि वीचारि देखु ब्रह्म गिआनी कउनु गिरही कउनु उदासी॥३॥
जिस की आसा तिस ही सउपिकै एहु रहिआ निरबाणु॥
जिस ते होआ सोई करि मानिआ नानक गिरही उदासी सो परवाणु॥४॥

(प्रभा: म: १)

इस तरह पातशाह! उनके चरणों में रहकर रस पाया। अंत समय बिछुड़ने का आया! सच्चे पातशाह! क्या विनय करूँ? जब बिछुड़ने लगे, मेरा मन टूट गया और बहुत वैराग्य छूटा। साहिब बोले, क्यों वैराग्य करते हो? दास ने विनय की, पातशाह! आप पंजाब को चले हो एकदम उत्तर को, दास को आज्ञा दक्षिण की है, फिर कब दर्शन, और जिऊँगा कैसे दर्शनों के बिना? तब आपने नेत्र मूँद लिए और बहुत देर बाद खोले, कहने लगे–दर्शन! होंगे। हाँ, आयेंगे पर और शरीर में, पहचान तुम कर लेना।' 'फिर, पातशाह! दास का दिल ठहर गया और सिर्फ यही विनय निकली–

'पहचान भी आप बख्श देना?'

सतगुरू ने 'निहाल' कहकर घोड़े की लगाम घुमा ली, वह आशा मानों युगों बाद पूर्ण हुई है। आप का बख्शा हुआ सिमरन है, साथ निभा है, विकारों ने आप के वरदान के कारण दुख नहीं दिया। चित्त में प्रीत भी है, पर एक ही कसक थी आपके दर्शन की और विराग्य टूटता है कभी इस कशिश में कि साईं चरणों से प्रीत तो भेंट मिल गयी, 'साईं इस कीट को प्रीत दे, यह कब मिलेगी? पर अब सब आशाएँ पूर्ण हुईं। यह छंद आपके चौथे अवतार का सदा उच्चारण करता और वैराग्य करता रहा हूँ–

पंथु दसावा नित खड़ी मुंध जोबनि बाली रामराजे॥
हरि हरि नामु चेताए गुर हरि मारगि चाली॥
मेरे मनि तनि नामु अधारु है हउमै बिखु जाली॥
जनु नानक सातिगुरु मेलि हरि हरि मिलिआ बनवाली॥२॥

इस प्रकार पातशाह आपके तब किये वचन आपने आ पूरे किये हैं।

सतगुरू जी–जीवणु! आसाम में कितनी देर हुई आप मिले थे?

साधु–संवत् १७२३ वि० की बात है, हाँ ठीक सच में श्री जी के संसार में अवतार धारण करने की ख़बर तब ही धुबड़ी में पहुँची थी। दास हाज़िर था, जिस समय तोपों से बौछार हुई और बाजे बजे और सारे सिक्खों में तथा राजा के दलों में खुशी मनाई गयी और मैंने सतगुरू से पूछा था कि साहिबज़ादे के लिए बहुत खुशियाँ हो रही हैं तो वचन हुआ था:–

बली पुरख लीनस अवतार॥
कारज बडे लेहि एह सार॥ (गु० प्र० सू०)

तब सतगुरू जी मुसकराये और बोले–'जीवण! अब कोई और जीवन की आस है?'

संत (चरण पकड़कर)–'एक और एक ही। आप सिंहों सहित दास की कुटिया में चरणे डालो, प्रशाद छको, इन अब मिट जाने वाले नेत्रों से आप का यह दीदार भी कर

लूँ।' ये प्यार के वाक्य सुनकर गुरू जी बोले–जीवण! तुम्हारा जीवन सफल, तुम्हारा फिर भवजल फेरा नहीं। नाम का रंग जो चढ़ा है, गहरा हो गया है। तुमने पिता गुरू रिझाए, वाहिगुरू की प्रीत कमायी, तुम्हारे डेरे प्रशाद ज़रूर खायेंगे। ये आशापूर्ण वाक्य सुनकर साधु चरणों में गिर पड़ा और धन्य धन्य करता विदा हुआ।

: ३ :

अगले दिन जीवण ने बहुत भारी लंगर तैयार करवाया। बहुत बहुत स्वादिष्ट भोजन बनवाये। आप भी सेवा में लगा रहा। सतगुरू जी समय पर खालसे सहित आ गए, शहर और बाहर की सिक्ख संगतें सारी आ इकट्ठी हुईं, बहुत भारी भीड़ हो गयी, सब की पंक्तियाँ लग गयीं, बीच में सतगुरू जी को चंदन की चौकी पर बिठाकर साधु ने पूजा और आरती की, फिर थाल आप आगे रखकर पास ऐसे बैठ गया कि मानों उसके नेत्र इस इलाही दर्शन पर तृप्त हो रहे हैं। भोजन करवाकर कुल्ला करवाया, और सुन्दर स्थान पर बैठाकर भेंट आगे रखकर चरणों को लिपट गया। इस समय सतगुरू की कृपा से साधु को अभय होने का दान प्राप्त हो गया, परम पद का ज्ञान हुआ।

सतगुरू जी जाने को तैयार थे कि जैतराम आ गया। यह महन्त था दादू द्वारे का, जो अपने सेवकों में घूमता कुछ दिनों का यहाँ आया हुआ था, और सतगुरू जी के दर्शन दीदार पहले करके उनके आदर्श का सम्मान करने लग गया था। यह भी प्रशाद पर आया और अब गुरू जी को एकांत में मिलकर कुछ वार्तालाप की। योगी जीवण भी पास बैठा था, वह भी वार्त्तालाप करता रहा।

गुरू साहिब जी ने कृपा वाक्य किये अंत वह चरणों पर गिर पड़ा और एक स्तोत्र उनकी महिमा का गाया।

कुछ दिन और सतगुरू जी बुरहानपुर रहे। ताप्ती के किनारे डेरा रखा, जहाँ अब यादगारी स्थान गुरूधाम है। यहाँ बहुत प्रचार सिक्खी का हुआ, दूर दूर से संगतें आईं, आए लोगों को नाम दान बख्शा, अंत सतगुरू जी ने यहाँ से भी कूच की।

कलग़ीधर जी के गोदावरी में चरण कमल

गोदावरी में जब प्राणदान दाता ने अपने चरण कमल रखे तब मानों गोदावरी संगीत रूप हो नाद करती है।

राग मालकौंस तार ३

टेक– नी मैं चरन परस बउरानी।
थरर थरर कुई छिड़ी खिरन है लरज़ गए मेरे पानी।
झरन झरन रस भिन्नड़ी छुट पई कंब उठी जिउं कानी।
चमक चमक लहिरां विच लिशकी बिजली जिउं थर्ररानी।
मसत अलसती झूमन झूंमी प्रेम लटक लटकानी।

जोगी जती तपी सिद्ध परसे परसि परसि पछुतानी।
परसि चरन नित्त खुश रही मैं रस बिन उमर बिहानी।
कउण सखी अज छुह गिआ सानूँ जीअ-दान दा दानी?
नीविआं तो नीवीं मैं वगदी बणी अरश दी रानी।
किस ने प्यार अणी आ चोभी प्रीत-तार खिंचानी?



सूचना: पीछे दो सूचनाओं में बता आये हैं कि गुरू जी दमदमे से दक्षिण को गए और बघौर से फिर वापिस दिल्ली और आगरे आये। यहाँ से फिर दक्षिण की ओर चले और बुरंहानपुर से चलकर अनेक स्थानों पर रुकते चलते गुरू जी गोदावरी के किनारे नांदेड़ शहर पहुँचे। यह स्थान बहुत पसन्द आया। जो स्थान पसन्द आया खरीद लिया और वहाँ डेरा डाल दिया। नज़दीक के सिख लुबाणे आदि सुन सुनकर दर्शनों को आने लगे और रौनकें लग गयीं। यहाँ ही माधो दास को अपना बंदा और बंदा सिंह बनाकर गुरू जी ने पंजाब को भेजा।

१४ बंदा मिलाप और विदायगी*

१. (सिक्ख आदर्श)

दक्षिण हिन्द की गंगा जिसका नाम गोदावरी है, धीरे-धीरे बह रही है, अपने स्त्रोत 'नासिक' के पास से निकलकर पूर्व को बहती एक चक्कर सा खाती है जहाँ कि पुरातन समय कभी 'नौनंद डेरा' नामक नगरी बसती थी। इस इलाके में एक रमणीक स्थान पर नदी के किनारे एक वैरागी साधु का आश्रम था। चारों ओर से अहाता बाड़ से घिरा था और अंदर सुन्दर बाग़ीचा था। फलदार और फूलदार पौधे और बेलें लह लहा रही थीं। एक ओर एक खुला मैदान था, बीच में एक कुटिया थी। इसके अंदर एक बड़ा पलंग हाथी दाँत के पायों (पाँवों) वाला ऊँचा किया हुआ और कसा हुआ बिछा रहता था, जिस पर सुन्दर शैय्या बिछी रहती थी। आश्रम में बकरियाँ रखी हुई थीं जो साधुओं को दूध का सुख देती थीं। कई एक जिज्ञासु भी शिक्षा पाने वाले इस उपवन में अपनी अपनी तृण कुटियाँ बनाकर रहते थे। ये कुछ विद्या पढ़ते थे, पर विशेष योग मार्ग की तंत्र विद्या के अभ्यास सीखते थे।

बाग़ीचे के अंदर कदम रखने पर तो यह डेरा शैव प्रतीत होता था। दरवाज़े के बाहर त्रिशूल गड़ा था और उसके ऊपर एक खोपड़ी सी लटकती दिखाई देती थी। अंदर जाओ तो एक चबूतरे पर कुछ शंख चक्राकार कस रखे थे (जड़े हुए थे)। कुछ आगे जाकर पत्थर की गाय की मूर्ति रखी थी। एक स्थान पर देवी शिला की बनी पड़ी थी। एक गुम्बद वाला चबूतरा था, यहाँ कृष्ण मूर्ति थी, पर एकदम कुटिया के आगे राम तीर चला रहे का चिह्न मात्र दिखाई देता था। कुटी के ऊपर शंख, तीर, रुद्राक्ष की मालाएँ, बिल्व के पिरोये हार, तुलसी की माला और ताज़े फूलों के सेहरे लटक रहे थे। एक गणेश और एक शेर का आकार दीवार पर सिंदूर के साथ बनाया हुआ था, मानों सहम और ठहराव के मिश्रित सामान रच रखे थे। कुटी और बाग़ीचा सुन्दर थे, पर अंदर जाने पर सुरत पर प्रसन्नता का प्रभाव नहीं था पड़ता। आश्रम यह वैरागियों का था, परन्तु चिह्न सभी खिचड़ी की तरह मिले जुले थे।

दिन चढ़ आया, दुपहर हो गयी। सावन भादों की ऋतु है, धूप बहुत चुभ रही है। आश्रम के साधु भोजन तैयार कर चुके थे, स्वामी जी की इंतज़ार में थे कि आयें और भोजन पायें पर वे आज सुबह से गये लौटे नहीं। भूखे, साधु रास्ता देख रहे हैं। इतने में कुछ धूल उड़ी, कोई दूर से आश्रम की ओर आते दिखाई दिये। टापों की आवाज़ आई, थोड़े समय में एक महा तेजस्वी, महाबली, प्रतापशाली महापुरुष घोड़े पर सवार आ गए,

---

* यह प्रसंग २२ पौष सं० गु० ना० सा० ४५३ (५ जनवरी १९२२) गुरुपर्व सप्तमी के समय खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

दस पाँच योद्धे साथ घोड़ों पर सवार थे, एकाएक आश्रम के अंदर आ गए। साधु सहम गए, कुछ हैरान हो गए, परन्तु कुछ कशिश भी हुई, बेबस सिर झुक गए और अदब के साथ खड़े हो गए।

महाबली–साधुजन! तुम्हारा आचार्य कहाँ है?

साधु–जी कहीं वन में समाधि लगाये बैठे होंगे।

महाबली–हम आप के आश्रम आये हैं, क्षुधा लग रही है, भोजन छकाओ?

साधु–जी भोजन तो तैयार है, परन्तु स्वामी जी नहीं आये, आप आचमन करें तो पीछे किसी को मिले।

महाबली–स्वामी जी को मिलने आने वालों को तो खिला दो।

साधु–ऐसा होना हमारे अधीन नहीं।

महाबली (अपने योद्धाओं को)– रामसिंह! प्रशाद तैयार करो।

महाबली जी आगे बढ़े, घोड़े से उतरे; एक साथ वाले प्रेमी ने घोड़ा पेड़ के साथ बाँधा। आप कुटी के अंदर चले गये और पलंग पर जाकर बैठ गए। बाकी के साथी बाग़ीचे में घूमने लगे, दो फल ढूँढ लाये। दो सिंहों ने बकरियों में से ढूँढकर एक बकरे का शिकार किया और देखते ही देखते प्रशाद तैयार कर लिया। अंदर खबर दी एक सुन्दर स्थान साफ किया गया और वहाँ महाबली जी आ बैठे। साथ में साथियों को बैठा लिया और सबने प्रशाद छक लिया। प्रशाद छककर आप तो पलंग पर विराज गये, दो लोग आपके चरण दबाने लगे। कुछ ने घोड़ों को चारा डाला तथा और कामों में लग गये।

आश्रम के साधु देख देखकर हैरान हो रहे थे, बैरागी का आश्रम, महा वैष्णव स्थान! यहाँ मांस पकाया और खाया गया। परन्तु डरे हुए इतने थे कि बोले कुछ नहीं। फिर अपने स्वामी के पलंग पर दूसरे का विश्राम, यह भी बात अच्छी लगने वाली नहीं थी, कुछ देर किचकिया के दो लोग चले गये और जा अपने स्वामी 'माधो दास' को वन में ढूँढा और सारी बात बतायी। वह सुनकर लाल पीला होने लगा। "अच्छा दिखायें बकरा मारने का स्वाद"! यह कहकर खड़ा हो गया, सिर आसमान की ओर उठ गया और आँखें त्राटक बन गई, कुछ आवाज़ भी आये, पर समझ में कुछ न आये।

उधर महाबली जी के पैर दबाने वाले प्रेमी एक ने कहा–'पातशाह! भूचाल तो नहीं आया, जल्दी जल्दी पलंग कुछ हिलता लगता है?'

महाबली–भूचाल नहीं, साधु जी पलंग उलटाने का बल लगा रहे हैं।

प्रेमी–कैसे?

महाबली–वह मन की एकाग्रता का अभ्यासी है। एकाग्र मन अगर वाहिगुरू में न जुड़े और पदार्थों में लगे तो एक खास हद तक इच्छा तृष्णा की पूर्णता होती है। इसलिए वह एकाग्रचित्त होकर पहले यह ज़ोर पलंग के उलटाने का लगाता रहा है, अब वह कुछ कर रहा है, जिसको जादूगरी के नाम से लोग याद करते हैं। दुनिया में अच्छी बुरी अनन्त शक्तियाँ और व्यक्ति दृश्य अदृश्य हैं, वह अब अपनी साधी हुई बलवान ताकतों को इस ओर लगा रहा है।

इतने में पलंग को फिर झटका लगा।

प्रेमी फिर बोले: 'जी यह फिर हिला है?'

महाबली जी–फिक्र न करो; पलंग गिरता नहीं, परमेश्वर पर भरोसे वाले और नाम रसिकों को अपने अंदर अपने ध्यान में टिककर अभय बैठ जाना चाहिए, उस पर कोई वार नहीं चल सकता, उसका अचंचल और स्थिर टिकाव ही बस है।

प्रेमी–फिर जी अब क्या होगा? पलंग फिर हिलता है।

महाबली ने एक तीर उठाकर पलंग पर रखकर ज़रा दबा दिया, और कहा:- अब हिलेगा भी नहीं, हिलाने वाला ज़ोर लगा लगाकर आप हट जायेगा। उसके बल का बेकार लगना और कामयाबी न मिलनी आप ही उसके लिए कमज़ोरी और मन की हीनता पैदा करेगा। बुरे काम अंत में करने वाले को थका देते हैं।

अब आप बिराजे रहे, फिर पंलग नहीं हिला। कुछ समय बीता तो बाहर से कुछ शोर सुनाई दिया। साधु जी आ गये थे और आश्रम के लोग फरियादें कर रहे थे, और वह कह रहा था: "पहले तो कोई नहीं था कभी टिका जो आया मुँह की खाकर गया है, यह ज़रा कोई तगड़ा है, पर अच्छा अब लेते हैं।" यह कहकर आगे बढ़ा, कुटिया के नज़दीक जाकर बाहर ठिठक गया। क्या देखता है कि पलंग के सिरहाने और पाँव की ओर एक एक रौब दाब वाला आदमी नीचे बैठा है, मुँह कुटिया के बाहर की ओर वाली दिशा मे किए हैं और पालथी मारकर अचंचल बैठे हैं। पलंग के ऊपर बीचो बीच एक महान तेजस्वी जी बैठे हैं, नेत्र बंद हैं दोनों हाथ रानों पर रखे हैं, शरीर कसा हुआ और अचंचल है, माथे पर जगमगाहट है, कोई बल नहीं पड़ा हुआ, मानों नेत्र और ओंठ बंद किए हुए, पर एक प्रसन्नता का रंग जम रहा है। साधु अब वहाँ ही खड़ा हो गया, नेत्रों को पलंग पर बैठी सूरत पर टिका दिया, दाँतों के साथ दाँत जुड़ गए, जीभ का किनारा बीच में आ टिका, गर्दन अकड़ गयी, नयन हिलना भूल गए, इनमें एक लाली और कहर का रंग छा गया, भवें कमान की तरह चढ़ गयीं, भवों के बीच बल पड़ गया। यह मूर्ति बनकर साधु देर तक खड़ा रहा, जिज्ञासु भी सभी पीछे पंक्ति बनाकर खड़े हो गए, जैसे स्वामी था वैसे ही वे भी नज़रें बाँध खड़े हो गए। महाबली जी के बाकी साथी काम से फुर्सत पाकर जब आये तो यह कौतुक देखकर खड़े हो गए, वे घबराये नहीं हँसकर तमाशा देखने के लिए खड़े हो गए। वे जानते थे कि महाबली जी स्वत: शक्तिमान हैं, उन पर कोई त्राटक शक्ति असर नहीं करेगी, चाहे साधु आँखें जमाये उन पर वशीकरण का अत्यधिक ज़ोर लगा रहा है, पर पेश नहीं जायेगी।

कोई तीन घड़ियाँ ऐसे बीती होंगी कि साधु के जिज्ञासु एक एक क़रते आँखें बंद करते, बैठते, झुकते, गिरते, लेटते गए, अंत में स्वामी जी आप भी धड़ाम करके गिरे जैसे कोई देव गिरता है। आँखें ऊपर को चढ़ गई, चेहरा काला पड़ गया और मुँह में से आग आने लगी और लम्बी लम्बी साँस लेने लग पड़ा। महाबली के साथ के योद्धे जो खड़े तमाशा देख रहे थे, पहले तो हँस पड़े और एक सामूहिक आवाज़ में ज़ोर के साथ बोले:–

'सति श्री अकाल!'

पर फिर उन्होंने आगे होकर साधु को उठा लिया, एक ने सिर अपनी जाँघ पर लिया ओर कपाल में अँगुलियों के साथ सहलाना शुरू किया, दो लोगों ने तलुए रगड़ने आरम्भ कर दिए, एक ने टाँगें दबायीं, एक पंखा करने लगा, एक ने मुँह खोलकर ठुड्ढी ऊँची कर के जीभ थोड़ी सी बाहर को नीचे की ओर करके खींची, कुछ देर बाद आँखों की पुतलियाँ नीचे आकर जगह पर आ गयीं। पहले चेहरे का रंग लाल और फिर सफेद हो गया। अब नाड़ी ठीक चल पड़ी और साधु जी होश में आ गए। इस समय एक बकरी का दूध आपके गले में दुहा गया। इसी तरह बाकी के साधु भी तलुए रगड़ने पर होश में आ गए। एक दो को होश नहीं आई तो एक योद्धे ने उनकी रानों पर खड़े होकर सारा बोझ डालकर ज़रा लताड़ दिया। एक ने बेहोश की रानों पर हाथों से ज़ोर डाला, तब ऊई, हाय! हाय! हाय! करते सभी होश में आ गए।

माधो दास अब ऐसे था जैसे निचुड़ा हुआ नींबू, शक्तिरहित खोखला और कमज़ोर, एक सज्जन की बाजू का सहारा लेकर कुटी के अंदर गया और पलंग की पाटी को पकड़कर महाबली जी के चरण पर (जो पालथी मारने के कारण गोद में थे) सिर रख दिया। आप इस समय खिले कमलों की तरह हँस रहे थे और कह रहे थे–

"बिना सरण ताकी नही अउर ओटं।"

माधो दास का सिर जब गोद बीच के चरण को छुआ, तब सिर को ठंडक पड़ी, यह ठंडक शरीर में घूमी, एक लहर सी लहरायी, एक कम्पन ज़ारी हो गया, ऐसे लगने लगा जैसे बिजली की लहर पड़ती है। सिर उसका हल्का हो गया, मानों है ही नहीं। चरणों में से एक लहर उठती है और साधु के सिर में जाती है। माधो ने महसूस किया मैंने किसी कम्पनों के गोले के साथ सिर लगा लिया है। हाँ, अब शरीर हल्का हो गया, शरीर में लहर घूमे, कपकंपी आये और ठंड फिर जाये, फिर लहर उठे और रोम रोम झनझनाहट में हिल जाये, सारा शरीर बिजली की तरह दमक उठे*। हाँ, अब अंदर का बंधन फटा, पत्थर हो

* भाई प्रभदयाल जी पेशावर में एक वकील थे जो ऐबटाबाद वाले सरदार रोचाराम के सुपुत्र सहजधारी सिक्ख थे। आप बताते थे कि वे जब चिलास के इलाके किसी काम से गए तो एक सुन्दर सा पठान उनको मिला। इसने आपको बताया कि मेरा बाबा महाराजा रणजीत सिंह के पास नौकर था। मेरे बाबे ने अपनी आँखों देखा एक समाचार सुनाया था जो ऐसे था कि–"एक दिन महाराजा जी कीर्तन सुनकर उठे तो किसी प्यार में आदेश दिया कि कोई सिंह मेरे राज्य में ढूँढो जिसने श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के आप दर्शन किए हों। हुक्म होने पर सारे देश में तलाश आरम्भ हो गयी, अंत में एक वृद्ध निहंग सिंह मिला, जिसकी आयु ११५ वर्ष की थी, जिसको पालकी में बैठाकर लाये। जब महाराज जी ने श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के दर्शनों का हाल पूछा तो उसने बताया कि उनका शरीर पतला और लम्बा था, पर शक्ति बेअंत थी, आँखों का तेज न झेला जा सकने वाला था और चरणों में कोई ऐसी ताकत थी कि जब किसी का माथा उन पर पड़े कि सिर चरणों को छू जाये तो एक लहर अपने शरीर में छूट पड़ती थी मानों बिजली लहरायी है और कम्पन कोई ऐसी छिड़ती थी, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि जिस शरीर से हम छुए हैं कम्पनों का बनां है, किसी पिंड का नहीं। निहंग सिंह कहता था कि मेरा और सारे सिंहों का यह नित्य का अनुभव आप बीता था। यह कहकर निहंग सिंह वैराग्य में जलपूरित हो गया।" प्रभ दयाल जी बताते थे कि मेरे साथ ज़िक्र करता वह पठान भी इसी तरह अदब में नेत्र भर लाया और कहने लगा: "कि मेरा बाबा जब यह बात सुनाया करता था, उसका हाल भी ऐसा ही हो जाता था।" खालसा जी। यह आँखों देखी और आप बीती गवाही श्री गुरू जी के 'छुअन (स्पर्श) के प्रभाव' की हम तक पहुँची है।

चुके मन ने द्रवणता प्राप्त की। साधु का मन द्रवित हुआ साथ में शरीर भी द्रवित हुआ, जल भर आया नयन कटोरों में और बहने लगा। आहा! त्राटकों और विभूतियों में संयम करने वाला योगी, तंत्र विद्या का तांत्रिक, कठोर मन बह चला तो उसको आनन्द आ गया किसी और तरह का। एक रसभीगी सुगन्ध उसके नाक ने महसूस की, एक स्वाद छा गया। बैरागी माधो दास आज 'रसिक बैरागी' के साथ छूकर रस में आ गया–आत्मा के रस में। बैरागी था, तांत्रिक था, अन्य रसों का ज्ञाता था, परन्तु आत्मा रस का ज्ञाता नहीं था। आश्चर्य है, अभ्यासी था, एकाग्रता वाला था, फिर आत्मरस का ज्ञाता नहीं था? हाँ नहीं था। वह एकाग्रता की साधन सम्पत्तियों को शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए विभूतियों पर लगाया करता था। उसका ध्यान आत्मा पर नहीं लगता था, पर ध्यान अनात्मा पर लगता था। जो ध्यान आत्मा के अलावा और जगह लगता है वह उन ध्येय पदार्थों के रंग में तो जाता है, पर आत्मरस में नहीं जा सकता। आज उस मन ने हार खायी, बल, फ़ख्र टूटा, अहंकार टूटा, उसके अंदर ज्योति जगी तो आत्म रस आया। अब महाबली जी का पवित्र हाथ राख वाली पीठ पर घूमा। राख मले हुए सिर पर घूमा, हाँ जी! राख वाली लटों पर घूमा, उस सिर पर जिसके बाहर राख है और अंदर तुम्हारे साथ गुस्सा बस चुका था। तुम ही हो प्यार के स्त्रोत। जो इतने कृपालु हो जाते हो कि बाढ़ आए दरिया की तरह तट नहीं जानते। आहा! प्यारा हाथ किस प्यार के साथ साधु के सिर पर घूम रहा है, प्यार दान कर रहा है, प्रेम की छूत लगा रहा है, जीवन की शक्ति भर रहा है, जीवदान देकर भक्ति लगा रहा है, हरि के साथ मिला रहा है।

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे
भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी॥
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक
जनम जनम की सोई जागी॥

नींद खुल गयी, होश आ गयी, दाता जी ने वह राख से भरा सिर उठाया, राख से सनी गालों और ठुड्ढी को सहारा देकर उठाया। अपने प्यार भरे नेत्रों से उन जादू की विष के स्वभाव वाले नेत्रों की ओर देखा, उनमें अपना अमृत भरा। नेत्र रंग ले आये। अब प्यार नाथ जी मुसकराये और बोले:–

तुम कौन?

बैरागी रस रंग में रत हुआ, मैं से रहित हुआ, उनका हुआ, क्या कहता, मैं कौन हूँ? हाँ! प्राणदान ले भक्ति में रत और क्या कहता? वह जो कुछ हो गया था, बहुत प्यार और रस में वही कुछ बोला–

"जी मैं आपका 'बंदा'*

बंदा, बंदा, बंदा" यह उसके मुँह से फव्वारे की बूँदों की तरह लगातार कितनी देर निकलता रहा, साथ में नेत्रों ने झड़ी लगायी रखी, आँसू रूपी मोती पवित्र गोदी में गिरते

* सेवक, दास।

रहे। प्यार के महरम अब आप भी द्रव गए, योगी की महाशक्ति के आगे अटूट बादाम की तरह स्थिर शक्ति के मालिक अब द्रव गए और बोले:–

तू बंदा
और मैंने तुझे किया
बुलंदा।
तू अब बुलन्दा*

उधर हल्की हल्की ध्वनि–त्राहि त्राहि करती सुर में, रस भीगी और वैराग में रत–आ रही है–

मैं बंदा, मैं बंदा,
मैं बंदा, मैं बंदा।

इधर कृपा, दया, प्रेम में प्रसन्न होने और दान करने की गंभीर प्रेमवाली ध्वनि आ रही है:-

पर किया बुलन्दा, बुलन्दा
बुलन्दा, बुलन्दा।

धन्य गुरू, धन्य सिक्ख! हाँ सदा ध्वनि चलती रहे सिक्ख की 'मैं बंदा, मैं बंदा' हाँ तेरी कृपा सदा बख्शिश करे: अनाथों को बुलन्द।

: २ :

ढाई सौ बरस से कुछ अधिक बीता होगा कि पुंछ के समीप राजौरी में एक रामदेव नामक राजपूत हुआ है, जिसके घर एक बालक जन्मा। इसका नाम लछमन देव रखा। पिता का काम जमींदारी का था, बेटा भी जवान होकर इसी काम में लगा, परन्तु स्वाभाविक रूप से बहुत तगड़ा था, शरीर मज़बूत, लम्बा और डील वाला था। मन की मर्ज़ी का दिलेर था और हँसने खेलने की ओर रुचि अधिक थी, इसलिए शिकार के शौक में दिल अधिक लगता था। तीरन्दाज़ी और बंदूक चलानी अच्छी सीख गया और जमींदारी के काम से जब फुर्सत मिलती जंगलों में शिकार खेलता घूमता। एक बार शिकार खेलते हुए इसने एक हरिनी (मृगी) मारी, यह हरिनी गर्भवती थी, इसके पेट में से दो बच्चे निकले जो आँखों के सामने तड़प-तड़प कर मरे, ये दर्शन बहुत दुखदायी हुए। लछमन देव के दिल पर कोई ऐसा सहम छाया कि वह दृश्य आँखों के आगे से हटे नहीं। दिल चोट खा गया और वैराग्य गहरे घाव डाल गया। पहले तो शिकार छूट गया और फिर गृहस्थ आश्रम। नज़दीक ही एक बैरागी साधु बसता था, जानकी प्रशाद उसका नाम था, इसकी संगति में इसने भेस लिया और घर बाहर, देश छोड़कर देशाटन को निकल पड़ा। कई साधु, फकीर मिले, कई तप साधन किए आखिर तीर्थ करता यह 'नासिक' पहुँचा और वहाँ बहुत देर तप करता रहा। कृष्ण की भक्ति के रस ने इसके तगड़े मन पर लम्बा असर नहीं किया, पर तपो साधन

* ऊँचा।

और दार्शनिक विचार का प्रभाव हुआ, परन्तु अंत रुचि तपस्या की ओर हो आई, इसलिए यह तप करने लगा। जिस फकीर ने इसको वैरागी बनाया था उसने नाम माधोदास कर दिया था। 'नासिक' में यह इसी नाम से प्रसिद्ध था। 'नासिक' के ऊपर गोदावरी का स्त्रोत है और उग्र तीर्थ है, वहाँ कई बरस यह परिश्रम करता रहा। यहाँ इसका एक योगी से मिलन हुआ, जिसका नाम लूनी था। इसने वैरागी की तपोवृत्ति देखकर योग मार्ग के रास्ते पर डाला, प्राणायाम आदि सिखाकर तंत्र विद्या बतायी। यह योगी इसका नाम अब नारायण दास या नारायण गिर रख गया, पर इसका नाम माधो दास भी प्रचलित हो गया। बचपन से ही स्वभाव अत्यधिक रजोगुणी था, चोट खाकर वैराग्य जो हुआ था फकीरी में फेंक गया था, परन्तु फकीरी में भी मन तपोसाधन में गया। योग मिला तो मन ने सिद्धियों की ओर पलटा खाया। तंत्र विद्या ने अधिक इस ओर लगाया। सिद्धियों के रास्ते कुछ एकाग्रता का असर देखकर माधोदास वीराराधन में लग गया। इस जगत के अदृश्य हिस्से में वाहिगुरू जाने क्या क्या शक्तियाँ और हस्तियाँ भरी पड़ी हैं कि जिधर इंसान ध्यान लगाये कुछ मिल ही जाता है। इसलिए इस ओर इस विद्या* के साधन करते हुए माधो को कुछ प्राप्ति हो गयी। यह विद्या माधोदास के समय केवल सिद्धियों और जगत में वशीकरण और कई बार नाटक कौतुक की घटनाएँ देखने दिखाने में प्रयुक्त होती थी। तंत्र विद्या और वीराराधन आदि साधनों में सम्पन्न होकर माधो दास फिर चल पडा और नदी गोदावरी के किनारे-किनारे घूमता नांदेड़ आ निकला। यहाँ इसकी विभूति का कुछ यश हो गया और इसने यहाँ डेरा लगा लिया। लोग अपने लाभों के लिए मदद लेने को आते और दूर पास से कुछ लोग आकर चेले भी हो गए। ऐसे इसकी कुटिया एक आश्रम बन गया। माधो दास अकसर अपनी तप साधना के लिए कुटिया से दूर नदी किनारे जा बैठा करता था, कभी कुटी में ही तप किया करता था, पर इसका नाम फैल चुका था और दूर दूर तक लोग इसकी इस ताकत का लोहा मानते थे। त्यागी और वनवासी होने के कारण लोग इसको वैराग्यवान साधु समझते थे। चेलों को शिक्षा देने, आए गए की कामना पूर्ण करने और आश्रम के निर्वाह से जितना समय बचता वह यह अपने साधनों और तपों पर लगाता था। गोदावरी के एकदम किनारे एक छोटे टीले पर बैठकर इसका अभ्यास का कर्त्तव्य हुआ करता था, कभी मनोविचार और शास्त्र विचार भी वहीं बैठकर करता था।

यह है कहानी 'माधो दास' वैरागी की, जिसका हाल हम पहले अध्याय में दे आये हैं। इसका था वह आश्रम, जिसमें महाबली जी ने आकर पलंग पर डेरा जमाया था और ये साधु जी, जिन्होंने पलंग उलटवाना चाहा और यत्न करते हुए आप गिर गए, शरणागत हुए और प्राणदान प्राप्त किया और 'बंदा' बने।

महाबली जी कौन थे?

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी। आप आनन्दपुर से चले, चमकौर, मालवे, राजपूताने, बाघौर होते फिर लौटे दिल्ली को। फिर दिल्ली, आगरे होते आखिर बुरहानपुर

* वीराराधन (मर गए लोगों की आत्माओं के साथ ताल्लुक़ करना आदि) वह विद्या हिन्दुस्तान में थी, जिसकी एक शक्ल आजकल यूरोप और अमरीका में स्पिरिच्युलिज़्म के नाम अधीन पैदा हुई है।

की संगतों को तार कर (कल्याण कर) कुछ दिनों से नांदेड़ के बाहर आ ठहरे थे और स्थान मन को भा जाने के कारण यहाँ टिकने के संकल्प से ठहर गये थे। माधोदास की कहानी और शक्तियों को सुन चुके थे। आज दीन दयाल जी दयालु होकर उसके आश्रम आप आ गए और प्यार की कला व्याप्त कर उसी विभूतियों के रंग में अड़ गए योगी को वहाँ से ऊँचा करके केवल वाहिगुरू के प्यार और रस रंग का रसिया बना दिया। सर्व अनात्म से गुप्त प्रकट, सूक्ष्म, स्थूल माया से ऊँचा करके उन्मन कर दिया। बंदे का कल्याण करके गुरू जी अपने डेरे आ गए, पर बंदे का दिल अब आश्रम में कैसे लगे, कशिश कलेजा चीर गयी, उम्र भर जो प्राप्ति हठ और विभूतियों के कारण ओट रही थी, संप्रत्यक्ष हो गयी, अब दाते से दूर रहा न जाये। इसलिए सतगुरू के डेरे आने जाने और सेवा करने लग पड़ा। सिक्खी मर्यादा और निश्चय देखे: योद्धे महाबली, पर सच्चे और पवित्र, नेमी (नियम पालन करने वाले) और प्रेमी नाम के रसिये और बहुत ऊँचे आचरण वाले, निश्चय में जीवनमुक्त, फिर उपकारी, त्यागी परन्तु जगत के प्रतिपालक। सैर, शिकार, शस्त्र विद्या सारा सामान रजोगुणी बढ़त-चढ़त, रहन-सहन सभी रजो के ऊँचे हिलोरे, पर अंदर से देखे तो माया को जीते हुए वैरागी और आत्म मे सदा लीन। यह रहन सहन उसको दंग कर गया। अपने पर रस का हिलोरा लग चुका था, रस वाले नाम का रसिया हो चुका था, पर 'गृहस्थ उदास' आँखों से उसने आज ही देखा था। शिकार में साथ जाता है, पुराने अपने शिकार याद आते हैं, पर अब यह शिकार और तरह का देखा, नई तरह के लोग देखे, नया गुरू, नया अवतार और नया मार्ग, नया पंथ देखा। वैरागी के सूखते अंग और कुम्हलाती उमंगे जाग पड़ी, तपों से बुझे दिल ने खिलना शुरू किया और जीवन पलटा खा गया। आठों पहर लौ मिली, पर साथ अहम् रहित चढ़ती कला और आत्मा की प्रसन्नता मिली। इसलिए बंदे की उस दाते के साथ महाप्रीत हो गयी और धीरे-धीरे उसकी काया सारी पलट गयी। अंत में बंदा अत्यधिक प्रेमी हो गया। और उसने अमृत छक लिया* खालसा तवारीख वाला लिखता है कि उसका नाम गुरू जी ने बंदा सिंह रख दिया था। यह भी बताया जाता है

---

* १ सौ साखी (१८३३-३७ ई०)–
सुन बंदे तुम खालसा पंथ। मिले खालसा पाहिल संथ।

२ अहमद शाह बटालिया–
पस हमाँ गाह ओ रा पाहल दादह सिंघ करद व बा खुद व डेहरा आवुरद। (पृष्ठ ११)

३ अलीउद्दीन मुफ्ती–
बंदा बइसतमाअ ईं माअनी अज़ दिलो जांन
इरादतमंद शुद वा पाहल गरिफतह मुसतइद
हंगामा वा मुहारबा गरदीद। (इबरतनामह ९३)

४ गणेशदास बढेरा–
दर असनाए राह शखसे मझहूल उल इसम व
नसब रा मुसतमाल साखतह ब मज़हबे खुद आवुरद
बर तरफ माखोवाल बनिआब ते खुद रवाना करद। (रसाला साहिब नुमा १८६-१८७)

कि उसका नाम गुरबख्श सिंह रखा था। जब वह शारणगत आया है तो महाराज जी ने पूछा था कि तुम कौन हो? उसके कहा था मैं बंदा। उसका बंदा कहना ही उसका प्रसिद्ध नाम हो गया और आज तक रह गया। और उसके चारों नाम लछमन दास और देव, माधो दास, नारायण गिर अथवा दास और गुरबख्श सिंह आम लोगों में प्रसिद्ध नहीं हुए। 'बंदा बंदा' ही आज तक चलता है।

बंदे को अब सिक्खों में बसकर पंजाब के सारे हाल मालूम हुए, गुरू जी के कारनामों का पता लगा। साहिबज़ादों की अकथनीय प्रयाण की घटना, पंथ के कत्ल के दुखड़े सुने। गुरू जी के अवतार और पैगम्बरी के साथ जगत के सिर से ज़ुल्म के बोझ उतारने के साके और यत्न कानों में पड़े, तब उसका स्वत: ही पुराना वीर मन उछाले खाये और चाहे कि उस महान दाता की कोई सेवा करूँ; जिसने मुझे नाटकों कौतुकों से निकालकर ब्रह्म का साक्षात्कार करवाया है, और वह मार्ग बताया है, कि जिसमें सहज से ही योगी बनकर राजयोग कमाया जा सकता है। सुरत सदा साईं की लगन में रहती, निष्काम काम-जिन में उत्साह हो-कर जाती है और काम करती दाग़दार नहीं होती+। कुछ देर तो बंदे ने दर्शनों

---

५ कन्हैया लाल–

बावजूदे कि अव्वल वोह खानदान बैराग का चेला था, इस सिलसिला से अलहिदा होकर गुरू गोबिन्द सिंह का चेला बन गया और पाहुल लेकर गुरू का सिक्ख हुआ। (तारीखे पंजाब)

६ सिक्खों के राज्य की विथया (आपबीती कहानी)–

एक वैरागी साधु ने गुरू गोबिन्द सिंह से पाहुल ली हुई थी। (पृष्ठ ६४)

७ मैकग्रेगर साहिब (१८४६ ई०) लिखते हैं–

Banda immediately consented, received the pahooldee and became a Sikh.

(History of Sikhs p. १०६)

८ मुहम्मद लतीफ की पंजाब की हिस्टरी में ऐसे लिखा है–

Govind and Banda soon became intimate friends, and the former, by his persuasive eloquence and religious zeal made such a deep impression on the mind of Banda that he was initiated into the pahul, and became a disciple of the Guru.

(History of the Punjab, p. २९४)

९ ज्ञानी ज्ञान सिंह (१९०० ई०)–

गुरू जी ने उसको अतिरथ योद्धा शूरवीर समझकर गुरू घर का सिक्ख बनाकर उसका नाम बंदा सिंह रख दिया। (तवारीख खालसा, पृष्ठ १४२२, १९०० ई०)

तथा

दसमा गुर जब सिंधन केरा। देस बिराड़न त्याग अछेरा।
दक्खण देश विखे चलि गयो। वली साध इक तांहि मिलयो।
चेला कीनो सहज सुभायक। और पेख तिस ही को लायक।
गुर बंदा सिंह नाम धरयो है।
दौलत गुपत प्रगट थी जेती। गुर बंदे सिंघ को दई तेती।
(पंथ प्रकाश, पाँचवी बार, पृष्ठ ३२८)

+ करम करति होवै निहकरम।। तिस वैसनो का निरमल करम।।

का रस लिया, सत्संगति का रस, अन्तरात्मा होकर ब्रह्मज्ञानी होकर लौ लगाने का रस लिया, फिर दाता की कृपा से क्या देखा कि मैं सिमरन में रहकर काम भी कर सकता हूँ, तब उसने फैसला किया कि अगर दाता हुक्म करे तो मैं वह कुछ ज़रूर करूँ जो कुछ कि दाता कहे।

युद्ध सब कोई कर सकता है, मैं, अंहकार में कुर्बानी करनी भी बहुत कठिन नहीं, पर वाहिगुरू का रसिया होकर और कोई कामना न रखकर केवल पराये भले के लिए युद्ध कर सकना, यह उन योगियों का काम है जो गुरू गोबिन्द सिंह जी ने बनाये।

एक दिन गुरू जी उस स्थान बैठे थे, जो अब शिकारघाट कहलाती है। शिकार खेलकर आये थे, कमरकसा खोलकर विश्राम कर रहे थे, कुछ सिंह प्रशाद तैयार कर रहे थे, बंदा पास बैठा चरण दबा रहा था कि गुरू जी बोले:- त्याग भला है कि ग्रहण?

बंदा–केवल ग्रहण मैंने अपने घर राजौरी रहते समय करके देख लिया है, केवल त्याग मैंने नासिक और नांदेड़ रहकर आयु गँवाकर किया है, दोनों दुख का मूल है। अगर आप नयन खोल दो, पार उतरने का दीदार बख्श दो, मन नीचा मति ऊँची कर दो, मति वाहिगुरू की रखवाली में रखवा दो, फिर ग्रहण त्याग इकट्ठे हो जाते हैं और दोनों वाहिगुरू का जलाल प्रगट करते हैं। अहम् अहंकार के बंधे ग्रहण त्याग दोनों निकम्मे दिख गए हैं, हाँ आपने दिखाये हैं।

गुरू जी– फिर अगर कोई गृहस्थ में मायाधारी होकर और ईश्वर को भुलाकर दावा करे कि गृहस्थ बड़ा है क्योंकि साधु गृहस्थी से दान लेकर खाते हैं, तो व्यर्थ डींग है और अगर त्यागी डींग मारे कि मैं महाबली हूँ, जिसने गृहस्थ जैसी सुखदायी वस्तु को टाँग मारकर त्यागा और दुखों के साथ नेह लगाया है, तो वह भी व्यर्थ है। अगर साईं रंग में लीन मनुष्य गोदावरी के किनारे बैठा रहे तो सफल, अगर युद्ध के मैदान में जा खड़ा हो तो भी सफल।

बंदा–सत्य है।

गुरू जी–फिर हमारे द्वारा युद्ध करने आपको क्या लगे हैं?

बंदा–आपके कौतुक।

गुरू जी–अगर आप के सिर युद्ध की गठरी रखी जाये तो।

बंदा–अगर आप रख दो और अंदर मेरे बैठ जाओ तो नाम रस में लीन होते हुए, सुरत आप के चरणों में पिरोते हुए, सत्य वचन। मैं त्यागी का त्यागी हूँ, मुझे लूट का लालच नहीं राज्य का मोह नहीं, प्रशंसा की तृष्णा नहीं, आपके हुक्म में मैंने काम करना है। आप बख्शो कि मेरी लगन न टूटे, मेरे नेत्र बंद न हों, मुझे नाम न भूले, मैं करता हुआ फिर अक्रिय* रहूँ। हाँ कृपा करो कि मैं माया में भूलकर मैं में भरकर, आचरण में गिरकर, निज के लाभ की तृष्णा में आकर युद्ध न करूँ, न ही साधु बनकर अपने आप और जगत के साथ रूठकर अलग हो बैठूँ।

---

* न करने वाला।

सतगुरू इस समय मुसकराये और बंदे को गले से लगाकर बोले: "तुझे बुलन्द किया है और विजयी अगुआ किया है।"

बंदा समझ गया, नेत्र भर लिये, सिर झुका दिया और बहुत ही मृदुल और द्रवित हालत में फिर बोला–

"मैं बंदा"

बंदे को बंदा कहलवाकर और आप 'मैं बंदा' कहकर स्वाद आ रहा था, उसने माया के पटलों में रहकर दुख पाया था, जिस दाता ने चेतनता आ बख्शी, अमूल्यता आ बख्शी, घर आकर दी, उसके साथ इसने तो लड़ाई ही रचाई थी, पर उस दाते ने आगे से भेंट बख्शी थी और भेंट अकथनीय बख्शी थी किस तरह न सच्चा और साफ दिल न्योछावर हो और मैं बंदा कह कहकर खुश हो।

सतगुर पसीजे, सिर पर प्यार दिया, अपनी कमान उसके कंधे पर पहना दी और एक तरकश पाँच तीरों का उसको आप सजा दिया और कहा:– "देख! यह तेरी ताकत है जो तुझे बख्शी है, यह चिह्न है जो तेरा निशान होगा, यह ओट है जो कठिन समय काम आयेगी, तूने लौटकर देश जाना है, खालसे को जत्थेबंद करके भेजना है जुल्म दूर करना है।

: ३ :

एक दिन कौतुकी सतगुरू बैठे थे कि गुरबख्श सिंह अथवा बंदा सिंह (बंदा) आ गया। माथा टेककर बैठ गया। हुक्म हुआ कि बाबों को बुलाओ। इसलिए बाबे उसी समय हाज़िर हो गये:–

बाबा बिनोद सिंह और उनका पुत्र बाबा काहन सिंह।

फिर हुक्म दिया: बाज सिंह, राम सिंह, बिजय सिंह को बुलाओ।

तब हाज़िर हुए भाई बाज सिंह, भाई राम सिंह, भाई बिजय सिंह।

हुक्म हुआ: आप पाँचों सलाहकार बनाये हैं, बंदा (गुरबख्श) सिंह हमने मुखिया (अगुआ) स्थापित किया है खालसे का। बंदा मुखिया जत्थेबंदी का जत्थेदार, फौजों का सरदार, युद्ध का अतिरथ योद्धा, खालसे के सिर 'जो राजनैतिक काम' रखा है, उसका मुखिया सुनो भाई खालसा! बंदा हमने गुरू नहीं स्थापित किया, अपना जानशीन नहीं किया। पंथ खालसे में बंदा धार्मिक मुखिया नहीं, पर खालसे का राजनैतिक जत्थेदार, प्रबन्धकर्त्ता।

पाँच सिक्ख सलाहकार बनाये हैं, इनकी सलाह से बंदा पंथ की जत्थेदारी करेगा। धार्मिक काम में बंदा आप अकेला मुखिया बनकर कभी अगुआई नहीं करेग। धार्मिक कामों में पाँचों की सम्मति से काम करेगा।

बंदा–सच्चे पातशाह! मैं तो दिनों का बालक हूँ, अगुआई किस तरह करूँगा? मैं सेवक हूँ, मुझे नौकरी बख्शो?

साहिब बोले–यह अगुआई तुम्हारी बंदगी है।

बंदा–पातशाह! मैं मदद का मोहताज हूँ, मुझे अपने पर भरोसा नहीं।

गुरू साहिब जी–पाँच सिंह तुम्हारे सलाहकार साथ हैं, ये तेरा पक्ष और धुरी होंगे। छः के छः मिलकर विचारकर काम करना, आप इनसे नाराज़ मत होना।

बंदे ने और पाँचों सिंहों ने सिर झुकाया।

बंदे! माया जब आती है तो भुलाती और लुभाती है परन्तु शूरवीर का काम है शक्ति; बल का आश्रय है इन्द्रियों का वंशीकरण (मति का भाव), आपके सिर बहुत भारी काम है, आप निष्काम सेवा का काम लेकर चले हो, आपने किसी भोग विलास में नहीं डूबना। यति रहोगे तो दिन रात अपने पुरुषार्थ (उद्यम) में लगे रहोगे, भोग विलास में पड़े तो सुस्त हो जाओगे। सुरत में ढील आई, फिर–'न अर्थ न परमार्थ'।

सुरत कसी रहे तो ही इलाही नाद साफ बजता है तो ही इतना बड़ा काम जो आप करने चले हो सम्पन्न होता है।

बंदा बुलन्दा! फिर सुनो:-

१. पाँचों सलाहकारों की सलाह के साथ कार्य करना, इनकी और तुम्हारी सदा एक राय रहे, इनसे अलग मत होना।

२. तुम राजनैतिक जत्थेदार हो, गुरू नहीं। गुरू मत बनना पंथ खालसे का, न अपना पंथ चलाना किसी और नाम अधीन। खालसे का अदब रखना।

३. सत्य का त्याग मत करना।

४. यति रहना।

अगर यह आदेश मानोगे तो तुम्हारा तेज बढ़ेगा, जीत तुम्हारे पीछे घूमेगी। कोई मुश्किल आ जाये और कोई वश न चले तब उस दिन बख्शे हुए तीरों में से अरदास करके एक चलाना, तुम्हारी जीत होगी।

एक दिन गुरू साहिब जी वहाँ बैठे थे कि जिसको बाद में नगीना घाट कहा जाता है। गोदावरी की धारा मंद मंद बह रही थी, आप उसके बिल्कुल जल पर बैठे थे और चरण कमल बीच में लटकाये हुए थे और उसकी छोटी छोटी तरंगों की ओर देख रहे थे कि बंदे ने आ माथा टेका। आपने प्यार देकर पास बिठा लिया। बंदे ने विनती की:-

सच्चे पातशाह! आप दो जहान के स्वामी हो और दास मूल्य लिया सेवक है। जो आदेश हुआ खुशी के साथ करना है। वही आदेश मेरा कल्याण है, मेरी खुशी है, मेरा जीवन और मेरी मुक्ति है, परन्तु काम बहुत बड़ा है और आदि स्थान से आए महापुरुषों के करने वाला है। मैं एक दासों में भी तुच्छ और नया दास हूँ, मुझे सफलता की भी निराशा नहीं, वह सभी कुछ आपके आदेश ने कर देना है, मैंने तो एक बहाना बनना है। इसलिए मुझे यह काम करने से न तो डर आ रहा है और न ही निराशा हो रही है, परन्तु मैं इस योग्य नहीं। दो वैराग्य मुझे उठ रहे हैं (मन में पैदा हो रहे हैं) एक तो आपके चरणों की कशिश मुझे आपसे बिछुड़ने नहीं देती, दूसरे इस महान काम में भूलें कर बैठने का डर है।

सतगुरू जी मुसकराये, आसमान की ओर देखा, वाहिगुरू दो बार कहा और फिर बंदे के माथे की ओर देखकर बोले–"बंदे बुलन्दे प्यारे जी! प्यार के कम्पन के बिना मनुष्य

पशु है, साईं की ओर से यह भेंट आपको मिली सच्चा ईश्वरीय प्यार आपके अंदर आया, इसका रूप कशिश है और कशिश बिछुड़ने नहीं देती, कशिश नज़दीक रखने का यत्न करती है। इसलिए अगर कशिश न टूटे, वास चाहे दूरी पर हो, व्यक्ति जीता है। बाकी रहे दर्शन 'ईश्वरीय प्यार' का नियम है कि दूरी पर बसते हुए भी 'दर्शन-दीप्ति' होती रहती है और इधर से हमने भी आपको भूलना नहीं है"। यह कहते कहते रंग पलट गया, दो बूँदे मोतियों जैसी आँखों में आईं तो दिखीं पर गिरती नहीं दिखाई दीं। "बंदे! हम भी अपने प्रियतम से बिछुड़ कर आये हैं, जब आदेश हुआ था, हमारा मन भी इस लोक में आने का नहीं था, परन्तु आदेश के कारण आना भी था। आए, परन्तु सुरत की तार वहीं बजती है, चाहे कितने कठिन कामों में हैं, परन्तु सुरत प्रियतम वाहिगुरू के चरणों में सदा लीन रहती है*। यह आधार और यही जीवन है, इस 'लगाव' के बिना मनुष्य देव श्रेणी में नहीं रहता, इस लगाव के बिना मन व्यर्थ और बेठिकाने रहता है। अगर कोई आश्रय और सहारा अनात्म दुनिया में से बनता है तो वे उसको वास्तविक 'आत्मकेन्द्र' से बेहिसाबी दूरी पर फेंके रखते हैं। केन्द्रहीन होना बेठिकाने होना है, बेठिकाने होना अपने आप से खोये रहना है। चार युगों की आयु हो, नौ खंडों में प्रसिद्ध हो, जगत महिमा करे, परन्तु ये सब किसी काम के नहीं। राज्य संसार का प्राप्त करे, आदेश करे, सिद्ध हो, करामातें करें+, पर कुछ नहीं, क्योंकि सब कुछ होकर 'आत्मकेन्द्र' के लगाव बिना लाभ रहित रहता है। न यहाँ से असली रस मिलता है, न आगे, न देव श्रेणी में यहाँ पहुँचता है न आगे। इसलिए शुक्र करो कि आपको सच्ची प्रीत की कम्पन हुई; आपको कशिश लगी, आपको कशिश ने आत्मकेन्द्र पर खींच कर पहुँचा दिया, मन सीधा हो गया और बुराइयाँ निकल गयीं, अब साईं कृपा करे, कशिश ज़ारी रहे और आत्मकेन्द्र का लगाव अंदर से कभी न हिले।

बंदे! तुझे हमने एक व्यावहारिक काम सौंपा है, ये बातें जो हमने की हैं, ख्याल मण्डल की हैं, व्यवहार वाले अथवा व्यावहारिक लोग 'ख्याल मण्डल' के आदर्शों को मज़ाक किया करते हैं, परन्तु याद रखना 'आदर्श' बिना 'व्यवहार' ताकतों का व्यर्थ खोना है। आदर्श में ही सारा बल है।

जो बातें हमने ऊपर बतायी है वह कर्म करने वाली अन्तरात्मा की जागृति है, अन्तरात्मा जागकर केन्द्र पर खड़ी होकर जगत के साथ एक खास रुख़ बनाती है जिसमें वह साक्षी सी होकर कर्म करने में सदा ऊँची और कुछ निर्लिप्त सी, परन्तु सफलता की गेंद सदा कैच करके ले जाने वाली हो जाती है, इसलिए यह आदर्श व्यावहारिक जीवन का पहला अंग है। इसके बिना कर्म माया में खो जाना है, पापी हो जाना है, बिखराव है, फैलाव है, विपर्यय है, विक्षेप है, याद रखो सुरत का बिखराव बल को हारना है।

---

* चित्त न भइओ हमरो आवन कहि।
चुभी रही स्रुत प्रभ चरनन महि।। (श्री मुख वाक पातशाही १०)

\+ जे जुग चारे आरजा।
पुनः– सुल्तान होवा मेलि लश्कर।
पुनः– सिधु होवा सिधि लाई।

जहां एकाग्रता है बल है।

जहाँ बिखराव है, बल हारना है।

इसलिए व्यावहारिक जीवन के लिए पहले 'आदर्श' और फिर अन्तरात्मा में इसकी प्राप्ति, ये आपको मिल चुके हैं।

अब समझो व्यावहारिक मुश्किलें, कर्म की ज़िन्दगी में जब जा पड़ते हैं तो प्रबन्ध की मुश्किलें सामने आती हैं और लोगों के साथ मुकाबले पड़ते हैं, वास्ता पड़ता है, लेन देन होता है। लोग केन्द्रहीन होते हैं, वे अपने कामों में सफलता की चिन्ता में सच झूठ, दग़ा फरेब शुद्ध आचरण से उलट कार्य करने और पाप अपराध करने से कहीं नहीं रुकते। वे लोग इस तरह के कर्त्तव्यों द्वारा 'आत्मकेन्द्र' पर खड़े आदमी को मुश्किलों में बसाते हैं, उन मुश्किलों को तोड़कर सफलता प्राप्त करने का जोश इस केन्द्र वाले को भी, जोश और तीखापन देता है, यह ज़ोर लगाता और उनको तोड़ता है और कई बार अपनी सीमाएँ लाँघ जाता है, भूलें कर बैठता है और उनकी तरह छल फरेब से काम लेने लग जाता है, सभ्यता से दूर हो जाता है। पर फिर इसको वह आंतरिक ज़िन्दादिली लौटाती है, यह फिर पैरों के बल गिरता है और अपने केन्द्र पर खड़े होकर सारी हालत देखता है और अपने सत्य पर खड़ा हो जाता है, पर मुबारक है वह हालत कि यह सदा केन्द्र पर रहे और वहाँ टिक कर काम करे।

जिस तरह परमार्थ में ग्रहण त्याग दो मार्ग हैं, इसी तरह व्यावहारिक जीवन है। त्याग है मन का विचार कर सर्व अनात्म का त्याग करना, अपनी 'मैं' अथवा 'अहम्' के कामों की पकड़ छोड़ना और एक तरह की निवृत्ति चित्त में बसानी, किसी पर ज्यादती न करना, आप ही बर्दाश्त करना, हारना और पीछे हटना। ग्रहण है रजोगुण में बसना, मैं, सामर्थ्य, अभिमान, अधिकार जताना, आप सबसे आगे और ऊँचे होना, हर किसी को नीचे लगाना और अपने आगे चलाना आदि।

पहले, त्याग मार्ग की अति (इंतहा) का नमूना हिन्दू और हिन्द के राजे हैं और दूसरे ग्रहण मार्ग की अति का नमूना ये मुगल पातशाह हैं। हिन्दुओं ने आदर्शमयी त्याग किया, कर्म में त्याग आया। इनके त्याग ने बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी, ऋषि, दर्शन विद्या के पंडित पैदा किए, तप और सन्यास की बेमिसाल मिसालें कायम कीं, परन्तु इनके केवल त्याग की सुन्दरता के उपदेश आम प्रजा और लोगों में एक ढीलापन पैदा कर गए, गुणवान और ऊँचे मनों वाले त्यागी होकर वनों को चले गए। बाकी लोग ऐयाश हो चाल चलन से पतित हो गए*। इस तरह शारीरिक बल में ये लोग संसार में निर्बल हो गए और परिणाम यह हुआ कि अपने घरों के भी आप मालिक नहीं रहे, अपने देश में आप अपरिचित (बेगाने) और विदेशी हो गए।

मुगलों में ग्रहण बसता है। इन्होंने त्याग की सुन्दरता देखी ही नहीं थी, ये शूरवीरता, बहादुरी, दान, स्वामित्व, हुकूमत में गए, माया के आधार वाली चढ़ती कला इनको मिली,

---

* आठवीं नौवीं सदी की ऐयाशी को इतिहासकार हिन्द की काली सदियाँ समझते हैं।

सब कोई इनके आगे झुकता भी है, परन्तु ये ज़ोर ज़ुल्म में चले गए। अधिकार अनधिकार की पहचान छोड़ बैठे, सच झूठ से किनारा कर बैठे। अब इनके कामों में और जंगली जानवरों के कामों में केवल चतुराई की अधिकता का अन्तर है और कोई अन्तर नहीं है। ग्रहण और त्याग दोनों आदर्श खूबसूरत हो सकते हैं, पर अकेले अकेले दोनों हानिकारक हद्दों पर पहुँच जाया करते हैं।

सुखदायी अवस्था यह है कि नींव तो त्याग की रखो और वह नींव तो रख होती है अगर पहले आत्मकेन्द्र का टिकाव (शांति) प्राप्त हो। केन्द्र पर खड़े को नाशवान संसार नाशवान दिखाई देता है और उसमें अंधा होकर कभी नहीं फँसता, परन्तु त्याग का वह आदर्श न बाँधे कि जंगलों में भाग जाये (हाँ, अपनी सामर्थ्य ज़रूर पहचानकर चले), पर बीच में ही रहे और काम करे। यहाँ से अब ग्रहण शुरू हो गया, वह काम करे सभी प्रकार के जो कुदरत उसको सौंपे। उनमें यह आप साक्षी होने के कारण चढ़ती कलाओं में बसेगा, ऐसा प्रतीत होगा कि यह ग्रहण में है, पर यह अँधेरे में नहीं पैर रखेगा, इसलिए इसके कर्त्तव्य व्यावहारिक जीवन के कर्म, ज़ोर ज़ुल्म पर नहीं जायेंगे। यह कायर, डरपोक, बेचारा नहीं होगा, यह निर्भय होगा, परन्तु यह दुखदायी और ज़ालिम नहीं होगा। कपटी, छलिया, झूठा और ज़ालिम नहीं बनेगा, ज्यादती नहीं करेगा, न्याय की सीमा का उल्लंधन नहीं करेगा। सदा जागृत रहेगा और कभी ग़लती नहीं करेगा।

भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि॥
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि॥ (श्लोक म० ९)

बंदा—मैं पहली पंक्ति नहीं समझा।

साहिब बोले—'किसी को भय न देना' यह वास्तविक त्याग मार्ग है।

'किसी का भय न मानना' यह वास्तविक ग्रहण मार्ग है।

दोनों का मिलन सिक्खी मार्ग है।

नींव त्याग की, इमारत ग्रहण की।

फल:-

'इह लोक सुखीए परलोक सुहेले॥'

बंदा—अभय पद तो शास्त्रकारों ने भी परम पद बताया है।

गुरू जी—परन्तु वह आदर्श है त्याग का। व्यावहारिक (सांसारिक) जीवन में अभय पद ज़ोर ज़ुल्म की शक्ल में पलट जाता है, इसलिए अगर उसको निर्मल रखना हो तो दूसरे को भय न देना, यह त्याग का नियम धारण करना ज़रूरी है। भय वह नहीं देगा जो वैरहीन होगा, इसलिए हमने खालसे के लिए आदर्श बनाया है कि सदा याद रखो कि:-

करतार ने पहले मौत बनायी, मौत कभी न भूले। फिर अंतर से अपने केन्द्र पर आये, आत्मकेन्द्रीय बने, फिर वह निर्वैर हो जायेगा चढ़ती कलाएँ हो जायेंगी, अभयपद आ जायेगा, अब वह वैरहीन होने के कारण भय किसी को नहीं देगा, इसलिए वह आप अभय होकर औरों को अभय होने का मौका देगा, अगर आप भयदायी हो जायेगा तो औरों को

अभय होने से रोकेगा। कोई नेकी (भलाई) नेकी नहीं, जो नेकी को बढ़ने से रोके। इसलिए जो अभय पद पर है वह और किसी को अभय होने से रोक नहीं सकता, इसलिए खालसा वह है जो–

'भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।'

जगत मिथ्या है। बंदे। इसने रहना नहीं, इसलिए जीव जो इसमें आया है जन्म सफल करे, अपने अंदर अपने केन्द्र पर स्थिर हो, अपने अंतर का लगाव अपने मूल कारण वाहिगुरू की लगन वाला, रुख़ वाला, झुकाव वाला बनाये। यह काम हो गया तो वास्तविक सन्यास हो गया। परन्तु अब ढीले नहीं होना; सुरत कसी रहे; मन प्रसन्नता में रहे तो समझो कि वास्तविक चढ़ती कलाओं का वास हो गया, अभय पद पा गया, अब उसके कर्त्तव्य किसी को भय न दें। वह विचरेगा हमेशा चढ़ती कला में, जगत और शरीर को मिथ्या जानकर वह शरीर का सबसे सुन्दर प्रयोग करेगा, उसके व्यवहार और लेनदेन ग्रहण मालूम होंगे, वह बहुत मज़बूत और स्थिर आचरण का होगा, पर वह ज़ोर ज़ुल्म और ज्यादती में नहीं जायेगा। झूठ, दगे, फरेब, छल आदि अपराधों और कमीनेपन से दूर रहेगा, ऊँचा और पवित्र घूमेगा, पर फिर जगत के काम सँवारेगा और से अच्छे, खालसा यही है*।

इतने में पाँच सिंह भी आ गए।

बंदा–बहुत ऊँचा और साफ आदर्श है, परन्तु व्यवहार में कठिन है।

गुरू जी–कीमती वस्तु मुश्किल से प्राप्त हुआ करती है। कभी इस भूल में नहीं पड़ना:- 'कि ये ख्याली बातें हैं, हम व्यावहारिक जीवन में पड़े हैं, अथवा यह कि ख्याल और है व्यवहार और है। नहीं खालसा वह है, जिसका 'ख्याल और व्यवहार' बेमेल न हों।

'आदर्श' बिना 'व्यवहार' धुएँ का वेग है।

दुनिया में जब कोई व्यावहारिक बदलाव आता है तो पहले इंसानों के ख्यालों में बदलाव आता है, इसलिए ख्याल हँसी की बात नहीं सारे बदलाव ख्याल से ही होते हैं। इसलिए ख्याल या आदर्श ऊँचा और पवित्र बनाकर और आँखों के आगे बाँधकर फिर व्यवहार करना चाहिए। इसलिए आप समझ लो कि आपका आदर्श यह है, इसी आदर्श को हमने व्यावहारिक जीवन दिया, जिसके लिए आनंदपुर का कौतुक रचा था।

बंदा–वह क्या था?

साहिब जी ने बिनोद सिंह बाबा जी को आज्ञा दी कि अमृत का प्रसंग सुना दो। बाबा जी ने सारा हाल बंदे को सुनाया और बताया कि छप्पन लाख+ सिक्खों में से पाँच प्यारे बनाकर सतगुरू जी ने एक नमूना@ खड़ा कर दिया कि यह है नमूना–खालसा। गुरू को

* जागत जोति जपै निस बासुर एक बिना मन नैक न आनै।।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गौर मड़ी मट भूल न मानै।।
तीरथ दान दइआ तप संजम एक बिना नहि एक पछानै।।
पूरन जोत जगै घट मै तब खालसा ताहि नखालस जानै।।१।।

\+ सिक्खों की गिनती तब की कोई एक करोड़ और कोई ५६ लाख की बताते चले आ रहे हैं।

@ Type.

यह आदर्श पसन्द है। अब सारे सिक्खों को यह जानकारी हो गई कि यह है नमूना जो गुरू को पसन्द है। हमें चाहिए कि इस नमूने के साथ, इस प्रकार के साथ हम अपने आप को मिलायें। इसलिए पंथ में आम काया पलट आ गयी। भजन बंदगी वाले तो सिक्ख थे ही, मन साधे हुए थे, इसलिए सिख उस नमूने को देखकर उसी इच्छा के होने लगे। सतगुरू जी ने केवल पाँच प्यारे ही नहीं थे पैदा किए, बल्कि सिक्ख पंथ को, नहीं सारे जगत को एक पलटा दे दिया है। उस नमूने की समझ ने सिक्खों, हिन्दुओं और मुसलमानों में से खालसा नमूने पर आ जाने वाले लोग पैदा किए। वे पाँच प्यारे एक आकार खींच दिया गया, जिसके अनुसार बनने का चाव फैल गया और अपना चमत्कार दिखा गया।

बंदा सारे विस्तार को समझता और विचार करता कितनी देर सोच और सतगुरू के गुणों की प्रशंसा में गुम हो रहा।

गुरू जी–बंदे! इस खालसा आदर्श को कभी आँखों से परे नहीं करना, युद्धों के चाव और लूट के लालच में सारे देश के गुंडे और उचक्के तुम्हारे पास आयेंगे, पर तुमने आदर्श पर रहना है, भीड़ बढ़ती का चाव और फौज़ बनती का लालच तुम्हें आदर्श से न गिराये। भेड़ों के झुण्ड के स्थान पर एक शेर काफी है। हमने पाँच सिंह जो तुम्हें दिए हैं, ये सुन्दर दीदार वाले, ये आदर्श खालसा हैं। यह नमूना है जो काम कर सकता है। यह तुम्हारी आँखों के आगे आदर्श है। इनकी सलाह तुम्हारे व्यवहारों में सहायक होगी। संसार अहंता में है, मनुष्य की पीड़ा देवलोक तक पहुँची है, इस दुख को हरने के लिए हम आये हैं, देखना। कहीं पीड़ा हरण करते–करते तुम पीड़ा न देने लग पड़ो। एक और होश रखना:-

जगत में कई बार अच्छे मुखिया (अगुआ) काम करते हैं, वे स्वयं तो कोई ऊँचा आदर्श लेकर उठते हैं, परन्तु अपने पीछे लगने वालों को कोई नमूना बनाकर, आकार खींचकर सामने नहीं रखते कि तुम इस नमूने पर अपने आपको लाओ, तो मेरे साथ काम कर सकोगे। उनको आदमियों की ज़रूरत होती है; जो मिले साथ मिला लेते हैं, उनके अवगुण आचरण की गिरावट की ओर नहीं देखते। इस तरह बुरे लोग तृष्णालु और कई बार लोभी, पापी, बदचलन उसके इकट्ठे किए दलों में मिल जाते हैं, इन लोगों के कारनामे उसके आदर्श और उसके मनोरथ को चोट मारते हैं और अंत में कामयाबी नहीं होती। अगर कुछ हो भी तो जगत की पीड़ा बढ़ती है, पाप बढ़ता है, साथ में पाप का फल पीड़ा बढ़ती है। इसलिए मुखिया का धर्म है कि पहले आदर्श बनाये, फिर उस आदर्श पर लोगों को लाये, जो आदर्श पर आयें उस नमूने की ओर चलने का यत्न करें, उनको साथ में ले, आचारहीनों से दूर रहे। इस प्रकार आदर्श और व्यवहार दोनों हमने आपको समझा दिए हैं। आदर्श से उखड़ोगे तो दुख पाओगे।

बंदा–सच्चे पातशाह! काम अच्छा कठिन था, पर अब अत्यधिक कठिन हो गया लगता है। आप ने कृपा की है, मुझे जगाकर (जागृत कर) अपने आप पर खड़ा किया है, कृपा करो, मुझे नाम न बिसरने पाये, आप का प्यारा मुखचन्द्र ओझल न हो, गुरूवाणी मीठी लगे, मेरी आत्मा 'वाहिगुरू' करती रहे, मैं आपके प्रकाश में चलूँ, ये पाँच खालसा मेरे सहायक हों, इनकी सलाह पंथ बनाये और पंथ बढ़ाए। परन्तु हे साईं! मेरे व्यवहारों में आप बैठो।

गुरू जी–देखो भई! एक उसूल याद करो। ताक़त सारी एकाग्रता में है। एकाग्रता की सफलता 'शुभ आचरण' के साथ है।

मोटी व्यावहारिक बात यह याद रखना! शुभ आचरण बनाना है। भलों को मिलाना है और कार्य करना है।

बंदा–तब फिर मैं बुरे लोगों से दूर रहूँ? और अकसर देखा है कि शक्ति बुरे लोगों में होती है और युद्ध आदि शक्ति वाले ही कर सकते हैं?

गुरू जी–ठीक है, परन्तु शक्ति (सामर्थ्य) वाले जो बुरे होते हैं वे बुरी रहनुमाई के कारण होते हैं। बुरों को अच्छी रहनुमाई दी, अच्छी ओर लगाया, बुराई छुड़ाई, वाणी और नाम का रसिया कर लिया, खालसा जी के आदर्श पर ले आए, अमृत छकाया, काम में लगाया। ऐसे बुराई छूट गयी, बल अच्छे अर्थ में काम आ गया। पर बंदे। इन दानों तले जाल है, शक्ति की ख़ातिर बुरों को ले बैठो तो बाद में वे सभी कामों को डुबाते हैं, बुरों को भले बनाना कोई आसान काम नहीं। देखो बड़ों के काम। भाई बिधीचंद पता है कौन थे?

बंदा–जी नहीं?

आज्ञा हुई कि बिनोद सिंह कथा सुनाये। इसलिए उसने सारी सुनायी।

गुरू जी–देखा कि बिधीचंद जो डाकू था, कितनी शक्ति वाला और कितनी बुद्धि वाला था। पाँचवें गुरू ने उसको सत्संग में लाकर सारी बुराई निकाल दी, उसका लालच निकाल दिया, वाणी और नाम का रसिया बना दिया, वह फिर छठे गुरू के पास महा उपकारी हो गया। हमने भी कई बुरे लोगों को ठीक किया, परन्तु कभी किसी कामयाबी की तेजी में धर्म (कि उसूल) घात नहीं होने दिया। हम धर्म उबारने आये हैं, धर्म चलाने आये हैं, संत रक्षा के लिए आये हैं, हमने किसी तरह भी बुराई का नाख़ून अड़ने नहीं देना। खालसा मेरा रूप है, जो मेरा आदर्श है वही खालसे का है, जो मेरा व्यवहार है वही खालसे का व्यवहार होना उचित है। आप मेरा काम करने चले हो, मेरे वाहिगुरू का काम करने चले हो, आपने उस मालिक के आदर्श को आँखों से परे नहीं करना। हर समय और हर हाल में इन आदर्शों पर चलना।

बंदा और सारे सिंह–सत्य वचन, आपकी बरकत (सौभाग्य) से।

गुरू जी–अब आपने चलना ऐसे है–पंजाब को जाओ, हमारे हुक्मनामे माझा, मालवा, दड़प, नक्का, पोठोहार, दुआबा, मैनदाब, धन्नी, सुआं, सारे पंजाब, पिशावर, मुल्तान, सिंध तक पहुँच जायेंगे, खालसा आ मिलेगा। जैसे जैसे सिंह आ मिलें वैसे वैसे काम आरम्भ करना। बुद्धू शाह प्रेमी हमारे साथ रहा, उसने अपने पुत्र खालसे के युद्ध में अर्पित किए। तुर्कों ने कट्टरता और ज़ोर जुल्म की लहर में उसको बेरहमी से कत्ल किया। नसीरां फरिश्ता और देवी औरत और महाबली, कवि और संत, उनके हाथों गीत गाती नाद बजाती कत्ल हुई। उस प्यारी ईश्वर की दुलारी और उस प्यारे का एक छोटा बच्चा सढौरे में अभी कै़द है ऐसा सुनने में आता है, अथवा कहीं छिपा हुआ है। उसका पता करो, अगर कै़द हो तो उसको छुड़वाकर स्वतन्त्र करना और अपने पैरों पर खड़ा करना, यह ज़रूरी काम

है। इसके बाद दिग्विजय आरम्भ कर दो। सरहिन्द जीतो तो मैनदाब फतेह हो गया, पंजाब कमज़ोर हो गया तो दिल्ली की धुरी ढीली पड़ गयी। सरहिन्द हिन्द का सिर, एक भारी नाका है, दिल्ली और काबुल की भीतर से एक धुरी है। आनन्दपुर की ख़बर भी लेनी है।

पर जो हुक्म हुए हैं वे अकाल पुरुष की ओर से हैं, मैंने आदेश देने वाले का काम करना है, आदेश बताने हैं, आपने व्यवहार करना और सुख पाना है।

खालसा एक ईश्वरीय आदर्श है, एक व्यावहारिक मानवीय नमूना है उस इंसान का जो इंसान उचित है कि बने।

बंदा–पर पातशाह! आदर्श तक पहुँच हर एक की नहीं होती।

गुरू जी–पर नज़र हर एक की आदर्श पर चाहिए, जिसकी नज़र आदर्श पर नहीं वह तो मुर्दा लाश है, जिसकी मुर्दा छूत सारे पंथ में वही मुर्दापन फैला देगी कि जिसमें से हमने लोगों को निकालकर पंथ बनाया है। जीवन व्यावहारिक हो, हाँ, खाली वहमी न हो पर नज़र आदर्श पर हो तथा जीवन कर्म उस आदर्श पर पहुँचने का यत्न, उपाय और कोशिश हो; कभी किसी लहर में, किसी तेज़ी और ज़ोश में, किसी बहाने ज़रूरत के भुलावे में आदर्श से न चूकना फिर भूल नहीं होगी। वाहिगुरू कृपा करे और अंग संग अपना आप बताये। मैंने 'हरि के जन' बनाये हैं, फकीर निर्मित किए हैं, स्वाभिमान वाले जीवित लोग सम्मानित किए हैं, जीवितों का पंथ रचा है, आप सदा 'जीवन अनख' अपने अंदर बसाकर और रखकर चलना। बुद्धि, चतुराई, दूरन्देशी सदा प्रयोग में लाओ, परन्तु झूठ और पाप से सदा बचो, नाम और वाणी न भूलो। शुभ आचरण सदा रखो, सदा आचरण सँवारो। आपका शारीरिक बल और सारी आयु का सिद्धियों का प्रेम–बहुत डर है कि–आपको कभी ग्रहण की ओर फिर न ले जाये, इसीलिए सभी आदर्श आपको समझाये हैं, सावधान रहना।

अब सांझ हो आयी थी, रहुरास का पाठ आरम्भ हो गया, नदी किनारा और एकांत था। इसलिए दैवीय रंग बँध गया।

: ४ :

आज दीवान सज रहा है, कीर्तन हो रहा है, संगत इकट्ठी हो रही है, नज़दीक के और बुरहान पुर के समीप के प्रेमी भी आए हैं। कभी तलवार खींच कर सीस माँगकर पाँच प्यारे भेजे थे, आज और पाँच दुलारे आ दीवान में खड़े हुए हैं। ये सीस भेंट कर चुके हुए हैं ये परीक्षाओं में से निकल चुके हैं, ये पाँचों जी चुके जीव हैं, भय मानते नहीं, भय देते नहीं। चढ़ती कलाओं के चमकते सूर्य हैं, साथ आये हैं, सारे दुख झेलते आये हैं, परन्तु निर्भय और निर्वैर ऐसे खड़े हैं जैसे दूल्हे हैं: अभी ब्याह के आए, डोली लेकर आए, माता के लाडले और न्योछावरों द्वारा आदर किए गए दूल्हे खड़े हैं, चेहरे चमकते हैं, आँखें चमकती हैं। इतने में–

आ गए दीवान में
साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी
स्वामी दो जहान।

संगत ने शीश झुकाया, आप दीवान के केन्द्रीय ठिकाने पर सज गए, कीर्तन का भोग पड़ा, अरदास, अरदास करने वाले सिंह ने की:-

"हे अकाल पुरुष। आपका बनाया और सम्मानित किया बंदा सिंह और पाँच लाख खालसा* देश चला है, धर्म युद्ध करेगा, चढ़ती कलाओं में खेलेगा, बरकत दो कि तुम्हारी कृपा अधीन चले।"

उठे साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह।

अपनी बख्शी कमान और तीरों का भत्था आप उठाया और सजा दिए दोनों अपने सम्मानित बंदे के शरीर पर और हँस कर कहा–

'यह है मेरा बंदा'।

फिर उठाई पाँच तलवारें और सजा दी पाँच दुलारों को–'ये हैं मेरे दुलारे, श्री साहिब खालसे की और खालसा श्री साहिब का, पाँच सलाहकार खालसा'।

छः के छः गिर पड़े चरणों में।

उठाये छओं सतगुरू ने प्यार और दिलासा दे देकर और आदेश दिया:-

'जाओ मेरे पुत्रो! वाहिगुरू का हुक्म पूरा करो।

'आप में धर्म और न्याय आया है, आप अधर्म और अन्याय की सफा+ लपेट दो'।

कहाड़ प्रशाद बाँटा गया, सभी ने छका (खाया)। अब घोड़े आ गए, एक एक घोड़ा एक एक को बाँटा गया। बंदूकें आईं, एक एक बंदूक (तुपक) एक एक प्यारे को दी। आप कंधे पर रखकर हाथ में पकड़ायी, कहा–"खालसा निशाने में अद्वितीय होगा।' चल पड़े आगे आगे आप और साथ साथ बंदा और दुलारे, पीछे संगत शबद पढ़ती हुई। वाह! गुरू सच्चे पातशाह तेरे प्यार के सदके। दासों को विदा करने जा रहे हो, अपने बनाये हुओं को विदायगी देने जा रहे हो, अपने द्वारा सम्मानितों को आप पहुँचाने जा रहे हो, धन्य तुम्हारी मेहर (कृपा) और धन्य तुम्हारा प्यार। चलते गए! कोई स्थान आ गया, बंदा रुक गया, नयन भर आये, हाथ बाँधकर सम्मुख खड़ा हो गया:-

"दाता! कृपा कर! बस, सेवा वालों को भेज, बिछुड़ने का चित्त नहीं, पर और कष्ट न कर। कृपा! कृपा! कृपा!"

वह वैरागी, जो कुछ दिन बीते हैं राख मलकर गोदावरी के किनारे वीराराधन और तंत्र की छानबीन कर रहा था, आज सनद्धबद्ध योद्धा खड़ा है। क़द बहुत लम्बा नहीं, पर चेहरे पर रौब पातशाही छा गया है, चढ़ती कला का सूर्य चमक रहा है, नेत्रों में ज्योति है और ज्योति में कोई महान उत्साह है। हाँ भय लगता है देखने पर, सुन्दर भय, परन्तु देखो इतनी बलवान डील डौल और बहादुरी रूप वाला इस समय आँखों में पानी भरकर हाथ बाँधे खड़ा है। कंठ गदगद है, शरीर रोमांचित है, आँसू पर आँसू टपकता है और चरणों पर गिर पड़ा है। बंदा अब ज़ोर से चरणों को आंलिगनबद्ध कर बैठा है, मानों अब बिछुड़ना ही नहीं

* पाँच सिक्खों को पाँच लाख कहा है।

\+ जिस वस्त्र पर शतरंज खेलते हैं उसे लपेट देना।

है। प्यार का स्त्रोत यहाँ फुहारें मार रहा है। कौतुकी गुरू जी कहाँ हैं? वीर रस के रंग कहाँ हैं? यह प्रेमाभक्ति की तरंग! 'तेरी उपमा तोहि बनि आवै' तुम्हारे ही घर हैं, सारे कौतुक! संगत पर भी प्रेम का भाव छा रहा है, दाता जी आप भी प्रेम में हैं। आप खड़े हैं, बंदा चरणों में शीश धरे पड़ा छमाछम बौछार कर रहा है, दुलारे घुटने टिकाए सिर पृथ्वी के साथ लगाकर पड़े गदगद कंठ हैं।

आपके नेत्र खुले, रस भीगे नेत्र खुले, बंदे का शीश उठाया, चेहरा देखा, गले के साथ लगा लिया, आशीर्वाद दी, कहा: "जाओ! हुक्म का पालन करो। जब तक आदेशों पर चलोगे मैं साथ रहूँगा।"

फिर पाँचों दुलारों को एक एक करके गले से लगाया, प्यार दिया, कहा: 'गुरू अंग संग, जाओ कार्य करो"।

इस तरह प्यार देते हुए सौभाग्य बख्शा और विदा किए सुन्दर! यह भी पता चलता है कि बंदे के साथ लगभग पच्चीस सिक्ख और भी चले थे। साथ में डेरा, कुछ नौकर और सामान भी दिया था। चले गए और भेज दिए आसपास खड़े होकर अपने प्यारे दुलारे जो आदेश का पालन करें।



सूचना: बंदे ने अपना काम खरखौडे से आरम्भ किया, मैनदाब में ज़ोरों से बढ़ा लिया, और श्री गुरू जी को बंदे के जाने के बाद वाहिगुरू जी के दर से अटल बुलावा आ गया। श्री गुरू जी के परलोक प्रस्थान के दर्शन अगले प्रसंग में से कुछ दिखाई देंगे।

९५ अरशी प्रीतम*

१. बंदी छोड़

धीरउ देखि तुम्हारे रंगा॥

तूही सुआमी अंतरजामी तूही वसहि साध कै संगा॥ (बिला॰ म॰ ५)

सुन्दरता का एक अलौकिक टुकड़ा, इस धरती पर श्री दरबार साहिब अमृतसर है। कोमल कलाओं का कमाल भी यहाँ है। सारे जगत के सुन्दर ठिकाने देख आओ, यह गंभीरता, यह प्रकाश, यह खुलापन, यह अछूती सुन्दरता, यह दैवी प्रभाव, यह अमर छवि किसी की बनावट में नहीं दिखाई देगी जो इस मंदिर–हरिमंदिर–में दिखाई देती है। इलाही नूर, दैवी प्रकाश, आत्मरंग, गुप्त कथा और ईश्वरीय भेदों का जिम्मेदार यह सतगुरू का शरीर मानो अविचलित, स्थिर समाधि में स्थित है। इर्द गिर्द इतना खुला है कि कोई छिपाव, पर्दा और नहीं। आकाश बंधन रहित दीदार करें, रोशनी मुक्त आकर माथा टेके, चारों ओर जल का घेरा है, जिससे हवा का मण्डल सदा खुला और साफ रहता है। सरोवर की गहराई नम्रता की गहराइयों की प्रतीक, और गुम्बदों की ऊँचाई चढ़ती कलाओं की ऊँचाई है। इस हरिमंदिर के चार दरवाज़े चारों दिशाओं के बीच, और हरिमंदिर के चारों कोने चारों दिशाओं की सीध पर हैं। ईश्वर दिशाओं में ही नहीं, सभी ओर है, यह उपदेश दरबार साहिब के चार दरवाज़े दे रहे हैं। व्यापक वाहिगुरू को व्यापक समझने के भाव और चुप्पी की आवाज़ में उपदेश दाता सतगुरू का शरीर–सचमुच शरीर–यह हरिमंदिर है। इस प्रत्यक्ष सतगुरू के शरीर में ईश्वरीय ज्ञान का विकास, अविचलित रंग में और कीर्तन रूप में आठ पहर जारी। आहार के लिए कहाड़ प्रशाद, सूँघने के लिए फूल, सुनने के लिए संगीत, देखने के लिए भक्तों के दर्शन और श्रद्धा से झुकते शीश, स्पर्श के लिए ठंडी पवन, सारे शरीर के लिए भी आवश्यक सामान यहाँ सदा प्राप्त हैं। हरिमंदिर के गुम्बद का शिखर सारी धरती का मानों केन्द्र है। ज्योतिषियों ने गलती से पहले समय में बनारस और अब ग्रीनिच धरती के केन्द्र बनाये हैं, असल में और हिसाब के साथ ठीक केन्द्र यह दरबार साहिब के गुम्बद की चोटी के नीचे का स्थान है, जहाँ मालिक का यश हर क्षण जारी है। हरिमंदिर दैवी मंदिर है, बल्कि स्वर्ग से भी सुन्दर है क्योंकि स्वर्ग छुपा हुआ है पर यह प्रगट है जो उपदेश और कीर्तन करता है। हरिमंदिर के अंदर सतगुरू जी के ज्ञान का प्रकाश है, यही प्रकाश सारे जामे में फैल रहा है। सुनहरी गुम्बदों से प्रकाश की किरणें सारे सरोवर और

---

*१. यह प्रसंग ट्रैक्ट की शक्ल में स॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४४६ (१९१५ ई॰) के गुरुपूर्व सप्तमी के समय प्रकाशित हुआ था।

२. अरश=अर्श=राज्यसिंहासन, खुदा का तख़्त, स्वर्ग, देवलोक। अर्श से अर्शी नहीं बनाया क्योंकि अर्शी का अर्थ है–बवासीर का रोगी। 'अरबी' शब्द को ज्यों का त्यों अपना लिया है।

परिक्रमा में प्रतिबिम्बित होती हैं। हरिमंदिर का पुल वाहिगुरू की देह तक पहुँचने का बिचौलिया अपनी छवि में अद्वितीय ऐसे चमकता है जैसे किसी आसमान के राजहंस ने अपनी अत्यधिक लम्बी गर्दन प्यार के साथ माथा टेकने में लम्बी डाल दी है (लिटा दी है)। ठीक है, यह पुल है–पुल संगत के भय को तोड़ने वाला परमहंस उपदेशक जो बताता है कि राई के दसवें भाग जितना तंग मुक्ति का दरवाज़ा कैसे खुला हो जाता है–

कबीर–**ऐसा सतिगुरु जे मिलै तुठा करें पसाउ॥**
मुकति दुआरा मोकला सहजे आवड जाउ॥ (श्लोक कबीर)

जैसे भवजल संसार में गुरमुख का शरीर अविचलित टिकाव में खड़ा रहता है, वैसे ही यह पुल और मंदिर अमृत जल पर ऐसे खड़ा प्रतीत होता है, जैसे किसी ने धीरे से टिका दिया है। हरिमंदिर, सच्चखण्ड का आदर्श है, पहुँचने के लिए पुल यह बता रहा है कि सतगुरू ने दरगाह पहुँचने के लिए 'गुरमुख गाडी राह' बनाकर भवजल पर पुल बना दिया है, अब तैरकर या नौकाओं में चढ़कर जाने की ज़रूरत नहीं। हाँ, 'गुरू नानक मार्ग' पुल समान सुखदायक है, इस पर चलो। सूरज रोज़ दर्शन करता चारों पहर हरिमंदिर को नज़रों से परे नहीं होने देता और रात इसी कशिश में घूमता सुबह वापिस आ जाता है। चाँद की शर्मीली ठंडी प्यारी नज़र इस पवित्र सतगुरू देही पर से लोट पोट होती घूमती है। हाँ चाँद की टिकिया रातों को अमृत सरोवर में डुबकियाँ लगाती दिखती है। तारा मंडल सारे का सारा इतना ऊँचा होकर सरोवर की तलहटी तक उतर जाता है, हाँ सरोवर की ढलान में ऊँचा आसमान आ समाता है, जैसे वाहिगुरू अति ऊँचा, ऊँचों का ऊँचा है:-

"वडा साहिबु ऊचा थाउ॥
ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ॥"

पर इस नम्र मातृलोक में, भक्त के हृदय में प्रतिबिम्बित होता है। जैसे सरोवर में ऊँचा तारामण्डल प्रतिबिम्बित देखते हो, इसी तरह हरिमंदिर के अंदर ऊँचा वाहिगुरू प्रतिबिम्बित है। हरिमंदिर में वाहिगुरू प्रतिबिम्बित होने के कारण ही यह मंदिर नहीं, सतगुरू की देह है। इस मंदिर का अंदर का नूर दिलों को खींचता है, हाँ, इस वाहिगुरू की छवि की कशिश मनों को मोहित करती है; इस आत्म और भौगोलिक केन्द्र में कोई आकर्षण है, कोई खींच है और उस खींच में कोई रस है कि हर मत का रसिया फकीर यहाँ आया नहीं, दर्शन पाया नहीं कि दामनिक गतियों से थर्राया नहीं, थर्राया नहीं कि दिल की गर्दन झुकी नहीं कि रस से भरा नहीं। यह हरिमंदिर वाहिगुरू प्रकाशक है। भवजल से पार करता है, शब्ददाता, ज्ञान का प्रकाशक है, और हरि रस को देने वाला है, हाँ, यहाँ ही:-

फरीदा– **रब खजूरी पकीआं माखिअ नई वहंन॥**
जो जो वंञै डीहडा सु उमर हथ पवंनि॥ (श्लोक फरीद)

पकी ईश्वरीय खजूरें यहाँ हैं, आत्म मधु रूहानी शहद से मीठी रस भरी हुई के फव्वारे यहाँ ही छूट रहे हैं, जो जो प्रेमी आया उसने उत्साहित हो-होकर हाथ डाले कि अधिक से अधिक खाऊँ और रस पाऊँ।

यह हरिमंदिर अमन का घर है, जाल इसके सरोवर में नहीं पड़ सकता और बंदूक इसके वायुमंडल में नहीं चल सकती यहाँ खेलते पक्षी अमन में हैं। यह मानसरोवर है जहाँ संत मराल कौतूहल करते हैं। यह स्वर्ग का गगन है। गगन दमामा यहाँ बजता है। कुर्बानी का नक्शा, न्योछावर होने का नमूना 'परिक्रमा' यहाँ विद्यमान है। रोज़ पतंगे की तरह प्रेमी आकर परिक्रमा करते यह बताते हैं कि हम सदके न्योछावर होते हैं, परन्तु पतंगों की तरह मरते नहीं हैं, बल्कि फरिश्तों की तरह अमर जीवन के कम्पनों में जी उठते हैं।' यह शहर के अंदर 'ज़ीव दान' का टिकना है, जहाँ मैला मन कंचन की तरह और मरा दिल बिजली की तरह जी उठते हैं। यह जीवदान दाता सतगुरू का शरीर है।

शबद की गूँज, इलाही इच्छा की कम्मन, आत्मिक शक्ति के लहराव, रूहानी दामनिक धारा यहाँ पूरे यौवन में हैं, जिनसे रसिये रस प्राप्त करते हैं।

एक दिन अमृत समय इस मंदिर में बैठे इस सुहावने मंदिर के सुन्दर रस को अंदर लेते लेते एक निमग्नता सी छा गयी। इस मग्नता में सुरत चली, हाँ चली अब सैंकड़ों मील नीचे दक्षिण देश को. क्या देखते हैं, दीवान सज रहा है, सिंह गुरू कलग़ीधर के बिछोड़े में बैठे हैं, कीर्तन का भोग पड़ा तो एक सिंह जी बोले:-

'जनम मरन दुहहू महि नाही ज़न पर उपकारी आए।।
जीअ दान दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।।२।।

इस पर एक सुखमयी कम्पन छिड़ गयी, और सिदक वाले तथा रसिये योद्धाओं के मुँह लाल हो गए। धन्य सतगुरू।। की गूँज उठी और जैकारे गूँज पड़े।

फिर भाई संतोख सिंह जी जत्थेदार बोले:-

खालसा जी! सतगुरू जी ने गुरू खालसा स्थापित किया है गुरू ग्रंथ जी के अधीन और आप सदा विचरेंगे खालसे में और फ़रमाया था कि मुझे चोला (शरीर) छोड़ जाने पर चला गया न समझना, मैं आपके बीच हूँ, आपके साथ हूँ, हाँ 'सभ थांई होहि सहाय' यह गुरू का बिरद है। जहाँ कोई आराधना करेगा, गुरू सहायता करेगा, सदा अंग संग रहकर रक्षा करेगा।

खालसा जी! सतगुरू के घर 'गुरपर्व सदा दसाहिरा' है। 'अवतार धारण करना' कि 'अन्तर्ध्यान होना' सतगुरू का सदा गुरुपर्व है। हमारा सतगुरू जीवन का सूरज है, सूरज सदा चमकता है। सूर्य का उदय अस्त सूर्य का जन्म मरण नहीं होता, वैसे ही सतगुरू का प्रगट होना या अन्तर्ध्यान होना आवागमन नहीं है न 'भाव' 'अभाव' है। सतगुरू जागती ज्योति सदा प्रकाशवान है। हमारे अंग संग है, हमारे बीच है जैसे:-

बाबा मड़ी न गोर गुर अंगद के हीए मे।

वैसे:- **कलगीआं वाला नाथ, दुर नहीं गिआ,**
पंथ हीए विचकार जोत जगा रिहा है।

एक सिंह बोला—पर तत्त्व तत्त्वों में मिल गए, ज्योति में ज्योति मिल गई। सतगुरू सम्पूर्ण था, सम्पूर्ण हो गया। बाकी क्या?

एक और आवाज़ आयी—१७२३ संवत् में सतगुरू प्रगट हुए १७६५ में ज्योति जोत समाये, यह घटना ऐसे हो तो ऐसे ठीक है।

संतोख सिंह जी बोले—दर्शन और इतिहास अपने रास्ते चलें, चलते रहें, परन्तु आत्मिक दुनिया का सच और प्रत्यक्ष सच ऐसे है कि—

सतगुरू जी ज्योति अज़ली (आरम्भिक) ज्योति है, अज़ली चीज़ का आदि अंत नहीं; उसका जन्म मरण कथन करना गलती करना है। वह अज़ली ज्योति देशकाल की कैद से परे है। हम सभी मन वाले, विचार वाले, हद वाले लोग हैं, 'देशकाल' आदि के बिना हम कुछ सोच ही नहीं सकते। हम अज़ली ज्योति को देशकाल के जामे पहनाकर कैसे सच्ची दलीलें कर सकते हैं।

सतगुरू की अज़ली (अबचली-अविचलित, स्थिर) ज्योति अपने ज्योति स्वरूप में 'आनन्द' है, अगर चाहे तो संसार का काम करती है—अरूप रूप रहकर करती है, रूप धारण कर करती है। गुरू कहता है कि मैं सदा जीता हूँ। मैं अवधूत भी हूँ, रसाल भी हूँ। 'पुरुष रसिक' भी हूँ, 'वैरागी' भी हूँ। मैं 'अरूप' भी हूँ, 'रूप' भी हूँ; 'अरूप रूप' भी हूँ। मैं 'खेल भी हूँ, 'अखेल' भी हूँ, 'अखेल खेलन' भी हूँ। मित्रो! सिक्ख हूँ, सिक्ख पद में गुरू पद की संभावना है। जो आपका गुरू है, वह गुरू सदा जीता है, उस 'सदा जीवन' ने सदा संसार के जीवों को 'जीवदान' देना है। हमने तो देह के दर्शन पाये, हज़ारों लाखों हमारे बाद आयेंगे सिक्ख कहलायेंगे, सिक्खी सिदक पालेंगे, सतगुरू को मिलेंगे। कैसे? विचार करो .... अगर आपने सतगुरू को केवल दर्शन और इतिहास के काले चश्मों से देखा और ये चश्मे बाद में अपनी औलाद को दे दिए तो सतगुरू से लाभ कौन उठायेगा? वह दिन हाय हाय का होगा, शोक का होगा; जिस दिन खालसा सतगुरू को 'जागता देव' नहीं समझेगा, जिस दिन सतगुरू जी के अस्तित्व का ध्यान पंथ में नहीं रहेगा, जिस दिन सतगुरू सिक्खी का आदर्श नहीं रहेगा। पछतावों वाला होगा वह दिन, जिस दिन सिक्ख सेवा, उपकार, पंथ का काम करेंगे; पर हृदय में सतगुरू का चाव और सब कुछ उसको समर्पित करने का उत्साह नहीं धारण करेंगे। उस दिन सिक्ख मनमुख हो जायेंगे, जिस दिन सतगुरू को भुला देंगे। हाँ, जब तक सिक्ख सतगुरू को आदर्श बनायी रखेंगे, सतगुरू को (ख्याली नहीं बल्कि) सच्ची अज़ली ज्योति जानेंगे, जो काम करेंगे उसका आदेश जानकर करेंगे, जो सेवा शुभ बातें कमायेंगे उसके चरणों में भेंट करेंगे, तब तक सिक्ख सिक्ख रहेंगे। इसलिए मिले रहो मिले रहो सदा सतगुरू को।

खालसा जी। हम शोक में पड़ रहे हैं, निराशाजनक स्थिति में चले गए हैं, बेअदब हो चले हैं। अज़ली ज्योति के 'उदय अस्त' के वहम में पड़ गए हैं, जैसे मूर्ख सूर्य के उदय अस्त को उसका सचमुच चढ़ना और डूबना समझते हैं, सूर्य सदा चढ़ा है। उदय होने से पहले और अस्त होने के बाद सूर्य सदा है, कभी 'नहीं है' नहीं होता। हाँ, हम आज सतगुरू के जन्म प्रस्थान के हर्ष शोक में हैं, छोड़ो यह अज्ञान, आत्म सत्य की ओर देखो। सतगुरू का अवतार और अन्तर्ध्यान होना दो कौतुक हैं, वे सदा एक रस दीप्त हैं। हमारे

लिए दोनों कौतुक के दिन गुरुपर्व हैं, दोनों खुशियों के दिन हैं, दोनों ईश्वरीय भेद हैं, दोनों प्रत्यक्ष सच हैं। सतगुरू की ज्योति अविचल है, एक रस है। सिक्ख और सतगुरू का शरीर तक का नाता नहीं, यह नाता आत्मनाता है। आत्मा नित्य है, नाता नित्य है। वीरो! उद्यम करो, ऊँची अटारी पर सुरत कर के देखो। आप रंडियों, त्यक्ताओं, कुँआरियों की तरह नहीं, आप सुहागिनों की तरह हो जिनके सिर पर स्थिर सुहाग है, ऐसा सुहाग है जो:-

'ना ओहु मरै न होवै सोगु' है।

हाँ, आज शोक का दिन नहीं, आज भी खुशी का दिन है। पर तो, अगर हम श्रद्धा और विश्वास की ऐनक से सतगुरू के वास्तविक स्वरूप को देखें। तगड़े हो और कहो:-

"सतिगुर मड़ी न गोर, गुरू पंथ के हृदय में, लिव (लगन) की लगी डोर, हाज़िर दिसे ज़ाहिरा।"

इतिहासकार के पीछे लगकर 'आत्म सच' को न गँवाओ। इतिहासकार अंधेरे में है, केवल छिलका देखता है, उसको मग़ज़ और मग़ज़ की शक्तियों का पता नहीं है। दर्शन वाला गिनती में है; उसको असंख्य पद का पता नहीं, उसको अमूल्य की पहचान अभी नहीं हुई। हाँ भाइयो! टिंडे (मिट्टी के बर्तन) बैठकर कुम्हार का पारावार लेती हैं। सिक्ख बनो, अँधेरे में से निकलो, होश वाले होकर चाव में देखो, सतगुरू सदा जागृत ज्योति है। वह जैसे हमारे में हमारे जैसे कागज़ी तख्ते पर मूर्ति दिखा गए हैं, वह अमूर्त तख्ते पर उसी तरह मूर्तिमान हैं। हाँ हाँ सतगुरू हमारा–

लोक परलोक सँवारेगा, हमारे बंधन काटेगा।

सतगुरू का बिरद है:-

"जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै॥१॥
सेवक कउ निकटी होए दिखावै॥" (आसा म॰ ५)

जैसे बर्फ जो आप सघन देख रहे हो पानी है। पानी भाप बनकर पवन रूप हो जाता है। वैसे ही शरीर, मन, बुद्धि सभी एक ही आत्मा के अपने कई कौतुक हैं। जीव की आत्मा जब स्वतंत्र और निर्भय पद पर जाये फिर उस के आगे वह कुछ संभव है जो हमारे आगे नहीं। आप सतगुरू की ज्योति पर ईमान रखो जो अज़ली है। मेरा मन यह करता है कि सार सहित ज्ञान को भी दूर रखो, सतगुरू को वैसे ही अपने में सहायक सिर पर अंग संग जानो। 'सतगुरू है' है, इस केवल सोच में न पड़ो, सदा लौ में रहो। फिर गुर सिक्ख की संधि सदा गुरू के साथ मिली है। आओ शोक दूर करें। हमें शोक किस बात का?

"ना ओहु मरै न होवै सोगु॥"

एक आवाज़ आई:-

"हीए नूं लग्गे विरहों दे तीर।
किवें निकलण ते किवें मिलण।"

यह सुनकर सतगुरू के प्यारे संतोख सिंह का मन भर आया, जिसको कलग़ियों वाले ने हुक्म दिया था कि 'अपने सदा यहीं रहना और देग़ चलानी' उस प्यारे का मन भर आया,

श्रद्धा ने उछाल खाया, उस सच ने (जो दुनिया की प्रशंसा को प्रशंसा नहीं समझता, पर जहाँ वह होता है वहाँ प्रबल शक्ति होती है) उछाला खाया, आँखें चढ़ गयीं, लाली भर आयी, माथा चमक पड़ा, चमक मारी, शरीर थर्रा गया, नेत्रों में से एक तेज निकला, और सिंह जी ने आकाश में एक हाथ घुमाकर गूँजती, पर कड़कती आवाज़ में कहा–

ओहु अउहाणी* कदे नाहि ना आवै ना जाप॥

यह कहते ही एक चमक कौंधी, सभी नेत्र मुँद गए। सारे खालसे स्थिर, अंचचल, अविचल हो गए। सभी ने नेत्रों के आगे से मातृलोक लुप्त हो गया, अंतर की नज़र आसमानों पर जा टिकी। क्या देखते हैं–

(पहला आत्म लहराव)

एक प्रकाश की धरती है, बिना चाँद, सूर्य तारों के प्रकाश, पर वैसे चाँद जैसे मीठा मीठा प्रकाश है, प्रकाश का एक महल हवेली की शक्ल का है। वहाँ एक अति तेजोमय देवियों में देवी एक नूर के तख्ते पर बैठी है। चार और नूर के पुतले नूरी घोड़े सरपट दौड़ाते आ रहे हैं और जल्दी से तख्त के पास जाकर माथा टेकते हैं और कहते हैं, माता जी! आज दाता जी का आगमन है।

समाधि स्थित देवी ने नेत्र खोले, बच्चो! क्या संदेशा लाये हो?

बच्चे–माता जी! पिता जी आ रहे हैं, मातृलोक से चल पड़े हैं।

देवी–नयन मूँद लिए, मुँदे नेत्रों में से मानो कुछ बूँदें जल की गिरीं। बाद में स्वाभाविक रूप में धीमी मीठी आवाज़ आई 'शुक्र है'। फिर नेत्र खुले।

बच्चे–माता जी! पिता जी आ रहे हैं।

माता–शुक्र है।

बच्चे–आज्ञा हो तो और नीचे जाकर आगे से ले आयें?

माता–ऊपर से नीचे उतरकर यहाँ तक ही आना ठीक हैं, आगे इससे नीचे जाने की मनाही तो नहीं, परन्तु आज मर्जी ऐसे ही है। यह कहते नेत्र फिर मुँद गए और शबद हुआ:–

सतिगुर अपुने सुनी अरदासि॥ कारजु आइआ सगला रासि॥
मन तन अंतरि प्रभू धिआइआ। गुर पूरे डर सगल चुकाइआ॥१॥
सभ ते वड समरथ गुरदेव॥ सभि सुख पायी तिस की सेव।रहाउ॥
जाका कीआ सभु किछु होए॥ तिसका अमरु न मेटै कोए॥
पारब्रहमु परमेसरु अनूपु॥ सफल मूरति गुर तिस का रूपु॥२॥
जाकै अंतरि बसै हरि नामु॥ जो जो पेखै सु ब्रहम गिआनु॥
बीस बिसुए जाकै मनि परगासु॥ तिसु जन कै पारब्रह्म का निबास॥३॥
तिसु गुर कउ सद करी नमसकार॥ तिसु गुर कउ सद जाउ बलिहार॥
सतिगुर के चरन धोए धोए पीवा॥ गुर नानक जपि जपि सद जीवा॥४॥

(भैरउ म॰ ५)

* विनाश होने वाला।

यह शबद ऐसी मीठी सुर में गाया गया और इतने साज साथ बज रहे प्रतीत होते थे कि जिनके मिलाप ने आश्चर्यजनक कोमलता पैदा कर दी थी, परन्तु कोई गवैया और वादक दिखाई नहीं देता था। एक और बड़ा आश्चर्य यह था, इस स्थान पर कोई फूल, कोई फुलेल, कोई सुगन्धि वाली वस्तु, कोई इत्र नहीं था पड़ा, परन्तु ऐसी खूशबू थी और ऐसी लपटदार महक थी कि दिमाग़ तर बतर होता जा रहा था, पता नहीं पवन ही सुगन्धित थी, पता नहीं इन नूर वालों के शरीरों में से लपटें निकल रही थीं। एक और कौतुक था, दिल की रंगत यहाँ अत्यधिक प्यार भरी थी, सारे ऐसे प्रतीत होते थे कि प्यार के बने हैं। अपने आप दिल को प्यार का उत्साह (उमंग) चढ़ता था और वह उत्साह ऐसे प्रसन्न करता था, कि उस मंडल से प्रभावित होकर, पश्चिम की मंद मंद बहती पवन के झुकाव से झूमते श्री वृक्ष की तरह सिर झूमने लग पड़ता था। सामान, घर बार सभी प्रकाश के थे, पाँचों शरीर प्रकाश के थे, पर फिर प्रकाश की आभाएँ अलग-अलग थीं, जिससे सब कुछ न्यारा न्यारा होकर प्रत्यक्ष शरीर की तरह दिख रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि यह देश प्रकाश का है और जैसे हमारे देश में प्रत्येक वस्तु मादा (स्थूल प्रकृत्ति) से बनी है वैसे यहाँ प्रत्येक वस्तु प्रकाश से बनी है। पता नहीं वही तत्त्व जो हमारे देश में मोटा मोटा स्थूल स्थूल रूप रखते हैं, यहाँ इतने सूक्ष्म सूक्ष्म हो गए हैं कि उनका रूप प्रकाश प्रकाश हो गया है। अथवा ऐसे है कि वास्तविक वस्तु असली वस्तु यह प्रकाश है, इसी प्रकाश के सूक्ष्म अवयवों की और न्यारी न्यारी थरथराहट, न्यारी न्यारी झनझनाहट, न्यारा न्यारा लचकाव, न्यारी न्यारी कम्पन कोई स्थूलता का रूप बनती है जो अलग अलग तरह अथवा भूतों के स्थूल रूप धारण कर के मातृलोक का सामान बन जाती है जहाँ हर वस्तु शरीर धारी होती है। जैसे नाना तरह के सांसारिक पदार्थों का मूल सौ शठ तत्त्व हैं और सभी तत्त्वों का मूल कोई एक सूक्ष्म लय मात्र है और ये सभी उसकी अलग-अलग झनझनाहटें और थरथराहटें हैं। इसी तरह सारी नाना प्रकार की थरथराहटों का वास्तविक तत्त्व और तत्त्वों का वास्तविक तत्त्व 'परम तत्त्व' यह प्रकाश है, जिस प्रकाश में कोई थरथराहट की किस्म का ऐसा चेप है जो रूप प्रगट कर रहा है और हर रूप को न्यारा दिखा रहा है तथा इस परमतत्त्व के इन अवयवी झनझनाहटों के पीछे इसका भी एक और मूल तत्त्व है।

यहाँ से एकता का देश आरम्भ होता है और जो कुछ यहाँ दिखाई देता है एक इसी परम तत्त्व का बना हुआ है, रूपधारी अनेकता के कारण नहीं बना, केवल 'एक थरथराहट' इस एक ही तत्त्व में से नाना तरह के रूप दिखा रही है और जो कुछ दिखा रही है, वह स्थूल नहीं, क्योंकि अगर दीवारों को हाथ लगाओ तो हाथ में कुछ नहीं आता, जैसे प्रकाश दिखाई देता है, परन्तु हाथ से छूने पर स्पर्श कुछ नहीं होता। फिर यह जो कुछ दिखाई दे रहा है वह नज़र पर सुहावना, अति प्यारा, अत्यधिक अच्छा लगने वाला प्रभाव डालता है। ऊबना, थकना, पेट भरना इसके किसी पदार्थ में नहीं। ठंड, सुन्दरता, मग्नता, स्वाद, रस अपने आप शरीरों के अंदर बाहर घूम रहा है। मालूम होता है कि अशरीरी छवि और रूप रहित रस यहाँ का असली भोजन है, जो बिना यत्न, बिना चिन्ता, बिना मेहनत अपने आप

स्वभाव की तरह यहाँ मौजूद है और वासियों के अंदर बाहर आप ही घूम रही है, जैसे हमारे लोक में पवन अपने श्वास से अंदर बाहर आती जाती रहती है। ऐसे यह अरूप और अशरीरी छवि इन नूरी (प्रकाशवान) रूपों से चलती फिरती और इनकी अकाल मूर्तियों की परवरिश करती है। इसीलिए यहाँ हमारे जैसी रुद्ध 'मेरी' है नहीं। सारे स्वतंत्र अपने आप में पूर्ण और बेमोहताज हैं। यहाँ जरूरत नहीं यहाँ 'मेरी' का दिखावे वाला संकल्प हो ही नहीं सकता। सारे आनन्द रस में मग्न, प्यार की लपट में, सदा उल्लास भरी बेपरवाही में, पर शांत, भक्ति, प्रेम के रंग में किसी ऊँचे के इश्क में उसके 'ध्यान तार में पिरोये' घूम रहे हैं।

ऐसे प्यारे सुन्दर देश के उस नूरी स्थान में देखने पर, हाँ जी, टकटकी लगाकर देखने पर, कलेजे पर हाथ रखकर देखने पर, प्यार भरे भय के साथ, श्रद्धा भरे अदब के साथ, प्रेम भरे सत्कार के साथ देखने पर, एक बिजली की चमक की तरह जब वह धूप में चमक मारे वैसा उस चमक में एक प्रकाश हुआ, आँखें चकाचौंध हो गयी। दूसरे क्षण क्या देखते हैं कि तख्त की छवि और बढ़ गयी है, उसपर वे विराजमान हैं, जो हमारे देश में कलग़ियों वाले कहलाते थे। वे गरीबों के सहायक, अनाथों के सम्बन्धी, दुखियों के दर्दी, मनुष्यों के मनुष्य, गरीबी फकीरी, उपकार, अमीरी में अपना आप न्योछावर करते मनुष्य नाट करते घूमते थे, अब आकर विराजमान हो गए हैं। देखो वह शरीर जिसको तीरों की नोकें कई बार चुभ गयी थीं, आज केवल नूर (प्रकाश) का नज़र आ रहा है, जिसको शस्त्र घाव नहीं कर सकते। वह जामा जो गरीब मेषों की ऊन और निराभिमानी लालसा भरी देवियाँ तैयार करके आपको पहनाया करती थीं, आज केवल प्रकाश का है। वह कलग़ी जो हमें सोने की हीरों जड़े और नगीनों से सजे गहने के ऊपर पंखों की होकर दिखा करती थी, आज अनगिनत तारों की है*, और हर तार एक चमकने का भाव लिए है, और हर चमक में वह रंग है, जिसको हम गुण अथवा शक्ति कहते हैं। सारी कला सम्पूर्ण फलने की शक्ति का पुञ्ज यह महापुरुष है, जिसकी इन शक्तियों से सजी छवि की रूपक कलग़ी थी और हम कलग़ी का निशान देखकर पातशाह जानते और कलग़ी निशानी समझते रहे। आज दिखाई दिया कि यह कलग़ी तो सच की है, और वह सच अनन्त शक्तियों का समुदाय है, और यह कलग़ी सच की निशानी थी, और सच शक्तियों का समुदाय था, तभी हम इसको पातशाह जानते हुए सच्चा पातशाह कहा करते थे। आ मेरे सच की कलग़ियों वाले सच्चे पातशाह! आ सच्चे कौतुक करने वाले! कौतुकी! नाटककार। हमें तो शरीर की छवि, उपकार की सुन्दरता, प्यार की सुन्दरता से ठगता रहा, आज तेरा भेद मिला, तू नूर था, नूरों का भी नूर, प्रकाशों का प्रकाश, तेजों का तेज रूप था। तेरा स्वरूप तेज था, तेरी कलग़ी शक्ति रूप सच था, तेरा अस्तित्व प्रकाश था। आहा! हम कहाँ भूले रहे? हम वियोगों द्वारा मारे गये! हे सदा संयोगी! कभी न बिछुड़ने वाले! सदके तेरी आज की आभा पर, तेरी आज की द्युति पर, तेरी आज की क्रांति पर, तेरी आज की

---

* सोलह कला संपूरन फलिआ।। अनत कला होए ठाकुर चड़िआ।। (मारू सोलहे म॰ ५)

खूबसूरती और रूपवती सजावट पर। वाह वाह, अद्वितीय ब्रह्म के महरम। नूर का तख्त, नूर का तू, नूर का सब कुछ, वह प्रीतम वाह! इतने ऊँचे और हम नीचों में आ चुके साहिबा! धन्य तू! धन्य तू!!

मोही देखि दरसु नानक बलिहारीआ।

वहाँ घटित कौतुक अगर अपनी बोली में वर्णित करें तो कुछ ऐसा वर्णन हो सकता है:-

आप साहिब अपने तेज में चमक रहे थे कि माता गुजरी जी आये। साहिब जी ने उठकर सीस झुकाया जो माता ने गले के साथ लगाकर ऐसा दबाया कि जैसे यहाँ कोई माता अपने बिछुड़े पुत्र को गले लगाकर पुत्र प्रेम में मग्न ही हो जाये। फिर नेत्र खुले। साहिब बोले! माता जी, बहुत कष्ट झेले, बड़े दुख सहे, पर देखो जगत सुखी हुआ है। आपके द्वारा दुख झेल लेने ने जगत सुखी किया है। अब तक लो वह सब कुछ काल में था, काल-दुख का काल-बीत गया। अब हम सभी मिले हैं, सुखी हैं। लाडले पौत्र देख लो कैसे सही सलामत जगमग कर रहे हैं। माता जी ठंडी साँस, हाँ आराम वाली साँस लेकर मुसकराये और बोले! अरशी पुत्र तेरी बातें तू ही जानता है।

माता जी को प्रसन्न करके अरशी प्रीतम जी मन ही मन में चमक दमक में शोभायमान हो रहे हैं, चरणों पर श्री जीतो जी का शीश है, चारों साहिबज़ादे किस तरह दण्डवत कर रहे हैं किस तरह पाँचों नूरी शरीरों में से नम्रता, प्यार, श्रद्धा, अपना आप न्योछावर करने की अति सूक्ष्म किरणों जैसी किरणें निकलकर सतगुरू के चरणों पर पड़ रही हैं, और सतगुरू के चेहरे, आँखों में से कैसे 'निहाल निहाल' की तेजोमय किरणें अपने आप निकल निकल कर पाँचों के शरीर पर पड़ रही है? कैसे पाँचों 'मिटि गए गवन पाए बिसराम' के रंग में हैं?

पता नहीं इस सफल ध्यान, इस व्यवहार दर्शन, इस अलौकिक दीदार में कितनी देर गुज़री, मग्नता ने समय का कोई माप नहीं रहने दिया, तब पता लगा जब तेजमय मूर्ति हिली और पाँचों मूर्तियाँ घुटनों के बल हो तख्त की ओर झुककर नूरी दाता के हस्तकमलों के स्पर्श तले सिर रखे अदब का नक्शा हो गयीं, कि अब और कौतुक घटा जिसको हम अपनी बोली में ऐसे कहेंगे:-

अरशी नूरी पातशाह 'देवियों की सिरताज' की ओर मुँह करके बोले-

जीत जी! लाल जी मरे नहीं न, जिये हैं न?

जीत जी-हे पारदर्शी, त्रिकालदर्शी।, दिव्यदर्शी। दाता जी! मैं तुम्हारे कौतुकों को क्या जानूँ? लाल सदा जिये हैं, जो मैं मौत जानती थी, वह आत्म जन्म था, तुम्हारी बख्शी वह अविनाशी जिन्दगी थी, वह आरम्भिक जीवन था, वह अमर पदवी थी। लाल चमकौर की धरती में शहीद नहीं हो गए, स्वर्ग के तख्तों पर आ खेले हैं। लाल सरहिन्द में समाप्त नहीं हुए। लाल स्वर्ग के राजे हो गए। दाता! मैं निर्बल बेल की तरह बेआसरा थी, तुम्हारे सहारे से बची और तुम्हारे ऊँचे चरणों के प्रताप से 'जीत' हुई, सुखी हुई, जीवितों की माँ बनी।

कुदरत ने मुझे आशीष दी, दिव्य ज्योतियों ने बधाइयाँ मेरी झोली में डाली। हे नेत्रों वाले! नाम दान बख्श कर मौत में जीवन, शहीदी में ज़िन्दगी, कुर्बानी में जान, अपना आप न्योछावर करने में अमर पद सब को दिखाई दिए, हाँ यह तुमने ही रंगों में उलट रंग बसाया है, तुम्हें ही ठीक दिखता है, तुम धन्य हो! तुम धन्य हो!!

अब दो छोटे दुलारे गोदी में आ गए। कौतुकी पिता प्यार दे रहा है, माथे पर हाथ फिरा रहा है: पूछता है, बच्चो! दीवार में दम बहुत घुटा था? हवा के न मिलने ने बहुत तड़प लगायी थी? जिस समय संसार के प्रकाश और हवा से रहित तुमको उस तंग घोपे* में चुनकर बंद कर दिया गया था, पर देखो (छाती के साथ लगाकर) तुम खेत में कृषक के दबाये दाने की तरह ज़ोर से दबाये नहीं जा सके, पर लहलहाते नौनिहाल होकर खुली हवाओं और खुली रोशनी में आ लहराये हो। हाँ, फिर तुमको हवा लगवाकर, डरा कर शमशेर का पानी चखाया गया था? वह कष्ट था? देखो तुम्हारे उस बीत जाने वाले और बीत चुके कष्ट झेलने ने दुखियों को कितना सुख दिया है। मुर्दे दिल जी उठे हैं, मर चुकी सृष्टि झूम उठी है, जुल्म का अँधेरा तुम्हारे दीवार के बीच के अँधेरे ने काट दिया है। तुम्हारे गले पर चली चमकती तलवार ने जगत के बँधन काटे हैं। सफल बच्चो! तुम्हारी 'सफल सफल भई सफल जाता'। एक जाँघ पर दोनों छोटे लाल बैठे हैं, दूसरी पर बड़े लाल दिखाई दे रहे हैं। पिता पगड़ी सँवारते, छाती के साथ लगाते, माथा चूमते कहते हैं: मेरे दुलारो, वाह वाह! हाँ, वह जुल्म का मुकाबला, वह घमासान युद्ध, वह अनेक के साथ एक-एक का मुकाबला, वह अजेय संग्राम, वह तप्त, वह कड़क, वह मारोमार, वह हल्ला, वह मारकर खत्म करो, पर और और चलता बढ़ता आता युद्ध! हाँ लाल, खूब लड़े, खूब घाव खाये, चप्पे चप्पे शरीर पर नोकें चुभीं। घायल हो हो और आशिक हो होकर लड़ने वाले सुपुत्रों कुर्बान, (माथा सूँघकर) तुम्हारे उस चमकौर के गुबार में रक्त बहा देने ने संसार का गुबार काटा। तुम्हारी वीरता ने मुर्दा सृष्टि में जान डाली, जीवदान बख्शा, देखो नीचे कैसे लाशें चौंक चौंक कर उठ रही हैं। तुम ज़ालिमों की तलवार से काटे गए, तुम द्रोह की कटार से टुकड़े टुकड़े किए गए, तुम निर्दयी लोगों के तीरों के आगे छलनी बनाये गये, तुम कहर से मार दिए गए पर देखो तुम मारे जाकर भी मारे नहीं गए, हाँ, तुम कटी हुई डाल की तरह मरे नहीं पर कटी डाल उपरोपित होकर उच्च जीवन में जाग उठे की तरह अमर जीवन पा आये निभर्य रंग में खेले हो। सदा जीने वाले लाल। काल ने तुमको नहीं खाया, अकाल ने तुमको अपनी गोदी में लिया है। मुझे तुम संसार से पुत्रहीन करके नहीं थे आ गए, तुम्हारे रक्त की एक-एक बूँद से वहाँ मेरे घर लाख लाख पुत्र जन्मा है, मेरी गोद तुम ऐसी हरी कर आए कि 'जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की' वाली सच्ची औलाद हो गयी है, मैं संसार से लाखों का बाबुल बनकर वापिस आया हूँ। वाह पुत्रो! वाह तुम और वाह तुम्हारी माता!

जीत जी! धन्य आपके प्यारे, अटूट प्यार और आपकी कुर्बानी के। मुझसे यह नहीं माँगा कि पुत्र न मरें, पर यह माँगा कि मैं पहले जाऊँ। आपके इस अपना आप न्योछावर

---

* वह स्थान जिसमें दम रुके।

करने के जगत सुखी कर दिया, मैं अत्यधिक नाजुक काम लेकर अपने बाबुल जी के घर से चला था, शाबाश! आपने मुझे उसमें मदद दी। आपने मोह माया के संसार में बस कर अपना आप न्योछावर किया, मेरे आदेश माने। मुझे मेरे रंगी बाबुल जी के पास निश्चिंतता से, उज्ज्वल मुख से, निर्मल रंग से मैं त्याग आने में अत्यधिक मदद की; रंग लगा रहे, आनन्द मग्न हुए, आप अमर हुए; हाँ, आप मेरे आत्म स्वरूप की डालियाँ हो गए।

दुलारों ने शीश झुकाया और उनके शरीरों से मानों यह आवाज़ आयी:- "आप की प्यारी मूर्ति के ध्यान के स्वाद में हमें कोई कष्ट, कठिनाई नहीं लगी, ध्यान मग्न रंग भरे कष्टों के समय निकल गए।"

फिर चमक हुई, क्या देखते हैं कि कलगियों वाले कह रहे थे:-

बेटा जी! हमारे शुरू से आज तक के मित्र जो हमारे मनुष्य स्वांग में हर जामें में शहीद होते रहे हैं, प्यार और श्रद्धा, अपना आप न्योछावर करने और इश्क में रत, सिर तली जो हमारी गली खेलते आए हैं, पाँच प्यारे, आनन्दपुरी शहीद, चमकौर के मुक्ते, मुक्तसर के मुक्ते, हाँ, वे प्यारे आज बापू जी के हुक्म अनुसार मातृलोक में हमें लेने गए थे, वे प्रीतम के विनय वाले विनय सँवारे इस दालान के बाहर खड़े हैं, लालो (पुत्रो)। वे मेरे हैं, मैं उनका हूँ। लाल जी! उनको अंदर ले आओ। मैंने वे अपने किए हैं (बनाये हैं), पर वे प्रेमरत विनय से सँवारे विनय में बाहर खड़े हैं।

दूसरे क्षण में नूरी पोशाकों वाले सच्चे शहीद! मैं करके मरे नहीं, पर प्यार के कारण स्वीकार हो चुके परवाने अंदर आ गए। आगे-आगे बाबा संत सिंह है जिसकी सारी शक्ल कलगीधर जी की अपनी है, सिर पर सतगुरू की सजाई कलगी जिगा चमक रही है, गले में सतगुरू वाली पोशाक है, कमर में वही गुरू तलवार है, परन्तु आँखें विनय से शर्मसार हैं। 'हाय! मैं वह सिक्ख हूँ, जिसने सिक्ख होकर गुरू पोशाक पहनने की बेअदबी की है।' वाह विनयधारी सिक्ख! तेरी सिक्खी ने गुरू को विह्वल कर दिया है, वह तख्त से छलाँग लगायी, संत सिंह को आलिंगन में लिया, ओए, मित्र! 'तू मैं', 'मैं तू' 'मैं तू' 'तू मैं' मित्र! वाह विरक्त (त्यागी), वाह मेरे सन्यासी। वाह मेरे वैरागी। वाह मेरे बलिदानी! वाह मेरे यज्ञवेदी के सच्चे कुर्बानी देने वाले। वाह मेरे सच्चे हवन करने वाले! वाह मेरे अपना आप न्योछावर करने वाले! मेरी ख़तिर, केवल मेरी ख़ातिर-वाह तू जिस के अंदर उपकार, पराया भला, सृष्टि रक्षा का ख्याल भी नीचा रह गया, अनन्य एकदम मेरी देह रक्षा के प्रेम में-टुकड़े होकर कटते गए, मेरे! और कुचवा कर (कोंचना) विनय में शर्मिन्दा मेरे अपने! मेरी पोशाक, मेरी कलगी जिगा, मेरे शस्त्र लगाने की बेअदबी का भय धारण करने वाले! परन्तु मेरे लिए की कुर्बानी को याद भी न रखने वाले सिक्ख! 'तू मैं' 'मैं तू'! 'तू मैं' 'मैं तू'

ज़रा ध्यान देना, वे सिर तली पर रखने वाले पाँच प्यारे गुरू के आलिंगन में। गुरू सिरों को सूँघता है और कहता है-वीरो! सिर सिर लगा बाज़ी खेलने वालो! जीत निकले मेरो! आप मेरे, मैं आपका, आपने रक्षा कर दिखायी, आप बापू जी के आदेश पूरे करने में मेरी भुजाएँ बने। आप आत्म तत्ववेत्ता पूर्ण साधु थे, मेरे साथ गए थे और मेरे प्यार में

आपने दुखों भरी सृष्टि का बोझ हरने का काम उठाया और अपने माँस के टुकड़े आहूति करके सच्चा होम और यज्ञ रचा। गुरू तो ऐसे कह रहा है, और पाँचों 'गुरू के आलिंगन' में से खिसकते चरणों पर गिरते जाते हैं, और उनके रोमों से एक मद्धम गूँज उठ रही है:-

"बैखरीदु किआ करे चतुराई एहु जीउ पिंडु सभु थरे।"

हाँ, और सतगुरू कहता है "मेरे मेरे, मेरे मेरे"।

दूसरे क्षण मुक्ते, हाँ जी चमकौर के मुक्ते और चमकौर से पहली रात सिरसा और रोपड़ में शहीद होने वाले करीब सतगुरू की प्यार कलाई में आ गए, सतगुरू प्यार देता और कहता है:-

"मेरे श्रद्धा से सँवारे, अविचलित मेरो! वाह वाह! तुम्हारा रक्त, जिससे तुमने मुझे खरीद लिया, तुम्हारी कुर्बानी ने मुझे खरीद लिया, तुम धन्य; तुम धन्य! धन्य सिक्खी! धन्य सिक्खी! तुमने धारण की, तुमने पालन की, तुमने निबाही। तुम अमर हुए, सदा मेरे हुए। जब मैं संसार में फिर जाऊँगा, तुम मेरे साथ, जब मैं यहाँ तुम अंग संग।' यह सुनते ही मुक्तों की मानों आँखों से नीर छूटा और उस नीर में से प्यार पर कुर्बान हो जाने की सुगन्धि आई कि कलगियों वाले आप नेत्र जलपूरित हो स्थिर हो गए, सारे मुक्ते दाता के साथ इस तरह लिपट गए कि जैसे भँवरे क़मल के साथ लिपट जाते हैं–

हाँ, दूसरा क्षण आया तो मुक्तसर के मुक्ते आ रहे हैं। महां सिंह शुक्र के साथ भरा, खुशी से रोता आ रहा है, विह्वल हो चरणों पर गिरता है और उसके शरीर से मानों आवाज़ आती है:-

'गयी बहोड़ु बंदी छोड़ु निरंकारु दुखदारी।'

पर उस कभी न अलग करने वाले बख्शिंद बिरद ने, उस संयोगी जोड़ने वाले गुरू ने महां सिंह को सीने से लगाया, छाती से लगाया और कहा: ओए अपना आप न्योछावर करने वाले वीतरागी! निर्वाण पद तूने पाया, जिन वीरों के प्यार में अपना आप कुर्बान कर दिया, तू जी, तेरे वीर जियें। यह कहते सारे मुक्ते जो बख्शिंद बख्शिंद! वाह बख्शिंद का गीत गा रहे थे, सतगुरू ने गले से लगा लिये, "मेरे पाँच हज़ारी, ओए मेरे सात हज़ारी, ओए मेरे दस हज़ारी", ऐसे नाम ले लेकर सारे गले से लगाये और कहा कि "आपको मैंने अपनाया है, आप वे ब्रह्मज्ञानी हो जो माया का जाल तोड़कर पार हुए हो, आप वे हो जिन्होंने भूल का पर्दा चिथड़े चिथड़े करके अपने को न्योछावर करने का नाच नाचा। आप सदा जिओ आप मेरे, मैं आपका। सिक्ख गुरू के गुरू सिक्खों का। 'भागो' बड़े भाग्यों वाली खालसे की सच्ची वीतराग बहन, तर गयी (कल्याण हो गया)।"

बात क्या, बचित्र सिंह, उदय सिंह आदि सभी शहीद, सारे प्यारे एक एक करके हुज़ूरी में आए। एक एक की मेहनत सफल हुई। जिस जिस ने इस अँधेरे संसार में–इस भ्रम की हमारी धरती में–सतगुरू को 'सतगुरू' पहचाना था और सतगुरू में अमर जीवन पर निश्चय किया था और यह निश्चित करके सेवा ली और की थी, या सतगुरू के हुक्म में शहीदी प्राप्त की थी, आए और सब की मेहनत सार्थक हुई। वे आज देख रहे थे कि

अगर सतगुरू हमें सिदक न देता तो आज हम इस सदा रहने वाले देश में कब सतगुरू के चरणों के पास आते। अगर उस नाशवान जीवन को प्यार करते तो सदा के लिए प्रीतम, इस 'अरशी प्रीतम' से बिछुड़ जाते। धन्य है सतगुरू जिस ने हमारा कल्याण क्रिया।

अब एक गोल चक्राकार किरणों की झलक पड़ी, और सतगुरू जी तख्त पर विराजमान हुए, साहिबज़ादे चरणों में सजे हुए और सारे नामरसिये और सारे मन को जीते शहीदों का, हाँ, गुरू प्रेम में शहीद हुए प्यारों का दीवान सज गया और एक लहराव छा गया। मीठी प्यारी ध्वनि उठी, नयन मुँद गए, रोमों से रस की फुहारें छूट पड़ीं और 'राग रतन परवार परीआ' का अरूप संगीत हमारे वैराग्य की ध्वनि की तरह, पर बहुत ही मधुर सुनाई दिया:-

तू ठाकुरो बैरागरो मै जेही घण चेरी राम॥
तूँ सागरो रतनागरो हउ सार न जाणा तेरी राम॥
सार न जाणा तू वड दाणा करि मिहरंमत सांई॥
किरपा कीजै सा मति दीजै आठ पहर तुधु धिआई॥
गरबु न कीजै रेण होवीजै ता गति जीअरे तेरी॥
सभ उपरि नानक का ठाकुरु मै जेही घण चेरी राम॥१॥

....

हउ वारी वंञा तू परबतु मेरा ओला राम॥
हउ बलि जाई लख लख बरीआ जिनि भ्रमु परदा खोला राम॥
मिटे अंधारे तजे विकारे ठाकुर सिउ मनु माना॥
प्रभ जी भाणी भई निकाणी सफल जनमु परवाना॥
भई अमोली भारा तोली मुकति जुगति दरु खोल्हा॥
कहु नानक हउ निरभउ होई सो प्रभु मेरा ओला॥४॥१॥४॥*

(दूसरा आत्म लहराव)

अब एक और वेग आया, कैसा अद्‌भुत हिलोरा पड़ा। अगर हम अपने लोकवासियों को समझाना चाहें तो ऐसे है कि आँख झपकने में असंख्य मील रास्ता तय हो गया। बहुत खूब। दूधिया प्रकाश आ गया, ठंडा ठंडा, मन ऐसे इकट्ठा और शांत हो रहा है, जैसे कोई टिकाव और रसलीनता का देश है, सुहावनी शीतलता की सीमा है।

यहाँ एक सुन्दर बड़ा सा एक ही कमरा है। दूधिया प्रकाश का बना है। इसके अंदर अंतिम छोर की ओर एक सफेद रंग का अत्यधिक दमकता तख़्त है, जो ऐसे प्रतीत होता है जैसे कि किसी हीरे जैसी चट्टान में से काटकर उकेर कर बनाया है इस पर ऐसी पहिलें काढ़ी हैं कि रोशनी ऊपर पड़ती का पैर टिकता नहीं लगता, फिसल फिसल पड़ती है और ज्यों ज्यों फिसलती है, त्यों त्यों आँखों में चकाचौंध छाती है। पर इस चकाचौंध से घबराहट

---

* यह शबद सूही छंत म० ५ घ० ३ का है।

नहीं होती, नशा आता है। तख़्त खाली है, पर इसके पीछे कुछ अत्यधिक दमकती, पर स्थिर रूपवाली मूर्तियाँ खड़ी हैं। जब कमरे में आगे पीछे देखो तो सारा भरपूर है, अत्यधिक प्यारे, प्रेम वाले, लालसाओं वाले, अभिलाषाओं वाले, चाह वाले, कामनाओं वाले सज्जन एकत्र होकर बैठे हैं। सभी के शरीर अति सूक्ष्म पर दूधिया झलक वाले प्रकाश के बने हैं। चेहरे प्रेम का अग्निकण हैं, परन्तु अग्निकण सर्द चाँदनी के चाँद की तरह अविचलित और शीतल है। तख़्त के आगे कुछ स्थान खाली है, जहाँ एक निर्मल आसमानी रंग की चौंकी पर आरती का सामान रखा है। यहाँ से लेकर बाहर वाले दरवाज़े तक सारे दिव्य रूपों के बीच से रास्ता है, अब सारे प्रेमी अदब के साथ खड़े दिखाई देने लगे। दरवाज़े से बाहर सड़क पर दूर तक दोनों ओर प्रकाश स्वरूपों, संसार के प्रसिद्ध मुखियों और आत्म आरूढ़ों की पंक्ति खड़ी है और फूलों की वर्षा करने के लिए तैयार खड़ी है, मालूम होता है कि किसी की इंतज़ार हो रही है।

अब एक तीखी झलक पड़ी, उसी हीरे जैसे पर केवल प्रकाश के बने तख़्त पर एक मोहिनी मूर्ति विराजमान है। कमरे, तख़्त, दिव्य स्वरूपों सभी का रूप प्रकाशित था, परन्तु इस 'मन हरण मनोहर' मूर्ति की यह अकाल मूर्ति और ही सूक्ष्म तथा और ही चमकीले रूप की बनी हुई थी। आप तख़्त पर विराजमान ध्यान मग्न हैं, नेत्र बंद हैं, पद्मासन विराज रहे हैं, बायीं ओर कमर के साथ तलवार है जो म्यान में सुशोभित है जिस पर लिखा है 'भक्त रक्षक'। दायें हाथ में पन्नों जैसे, पर अत्यधिक ऊँची आब और अत्यधिक मजबूत पानी वाले किसी अत्यधिक पवित्र रंग वाले तंत्र से साफ पारदर्शी पदार्थ की सिमरनी (माला) है, जिसके मनके कारीगर ने ऐसे बनाये हैं कि सघन गोलाई की छिद्र वाली गोलियों की तरह नहीं पर 'वाहिगुरू' इन अक्षरों को उकेर कर गोलाई दे दी है और फिर प्रीत तार में पिरो दिया है। मेरू के मनके में ध्यान मूर्ति का नक्शा दिखाई देता है। यह सिमरनी दायें हाथ में दमकती रसभरी किरणें छोड़ रही है। पीछे की ओर खड़े कोई अत्यधिक प्यारे चँवर कर रहे हैं और बाकी के खड़े सभी गर्दनें झुकायी हाथ जोड़े, जज़्ब खुशी, 'भरी उमंग' पूरी हो गयी आशा, पूरी हो गयी लालसा, पूरी हो गयी चाह और कामयाब हुई प्रीति के रस भरे रंग में अदब और ऊँचे करने वाले चमकते भय में खड़े हैं, कि इससे ऊँचे मंडलों में से एक शोला आया और पड़ी पड़ी आरती अपने आप जल उठी, ऐसी जली और चमकी कि स्वाद आ गया। अब एक हवा का झोंका आया मलय गिरि से मीठी, चंदन की खुशबू से प्यारी, चमेली की सुगन्ध से सुहावनी सुगन्ध भर गयी और इलाही नाद शुरू हो गया। आरती एक वृद्ध, पर नूर की अंजुलि सज्जन के हाथों में है, बूढ़ा है, हाँ, यह बचपन से ही बूढ़ा कहलाता था, पर प्यार के रंग जवान है, गुरमुख जो हुआ, नाम का बूढा है वैसे बूढ़ा कभी नहीं, आरती इसकी प्रीत तार पिरोये हाथों में लहरा रही है और सारे सज्जनों के रोमों में से, रोम रोम में से जी हाँ, गुरुमुखों के रोम रोम में से नाद उठा, और यह संगीत अतिमधुर, अति प्यारी, अत्यधिक रसभीगी सुर में हुआ:-

ततु तेलु नामु कीआ बाती दीपकु देह उज्हारा॥
जोति लाए जगदीस जगाइआ बूझै बूझन हारा॥२॥

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंग पानी।।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी।।

आरती के बाद सभी सज्जन विराजमान हो गए, पर बाहर खड़े सभी दिव्य रूपी सिर झुकाए खड़े हैं और कीर्तन कर रहे हैं, जिसकी मधुर ध्वनि तंबूरे की गूँज की तरह अंदर जा रही है।

तख़्त पर वही मातृलोक में विचरण करने वाले प्रीतम, पर वास्तव में सारे स्वर्गों के मालिक 'अरशी प्रीतम' कलग़ियों वाले, शक्तियों वाले, नयन खोलकर नज़र द्वारा, कृपा की नज़र से, तार लेने वाली (कल्याण करने वाली) नज़र के साथ देख रहे हैं। आपके बायीं ओर के हाथ की अँगूठी में लिखा है 'कुल अदेव शक्तियों पर हुक्म'। दायें हाथ की अँगूठी में लिखा है 'कुल देव शक्तियों पर हुक्म'।

अब इस तारनहार और उच्च मण्डलों के प्रीतम जी का मन–बख्शिंद और प्रतिपालक मन–लहर में आया, आवाज़ आई। "धन्य भाई बुड्ढ़ा (बूढ़ा) छः जामों (जीवनों) का मित्र! सच्चा मित्र! तेरी प्रीत, तेरी मेहनत सफल। वाह भाई गुरदास। ज़िन्दगी के कवि ईश्वरीय रचना वाले, गुरू घर का कीर्तन करने वाला। भाई जी! भाई जी सदा थिर जी! और हमारा हँसमुख और रूठ रूठ कर प्रीत करने वाला पवित्र मर्दों का मर्द मरदाना, जंगलों में साथ देने वाले! भई मित्र! इस देश में जिओ, जहाँ कभी भूख नहीं। देखा है मैं किस भोजन के सहारे जीता था? तुम भी अब खाओ 'खावहि खरचहि रलि मिलि भाई।। तोटि न आवै वंधदो जाई।।' भाई नंदलाल जी ज़िन्दगी नामे आएं, हमारे मातृलोक के कविराज आये, जिओ! भाई जी! सदा जिओ।

इस तरह से दसों ही जामों के (दसों रूपों के) एक एक प्यारे, अपने लक्ष्य तक पहुँचे, भक्ति निभाये, वैरागी पर रसिये पूर्ण हुए सिक्खों के जो केवल इस दरबार में जगमग कर रहे थे, सतगुरू ने नाम लिए और वरदान दिए। मेहनतें जब की तब ही सफल हो गयी थीं; पर एक और कौतुक है कि आज सफल हुईं, जब अरशी प्रीतम ने स्वीकार कीं। परवान भी पहले कहीं थीं, परन्तु आज कोई उमंग का अलग कौतुक हैं। आज स्वीकृत हो गए, पंच हो गए, प्रधान हो गए, आज स्वरूप दर में स्वीकृत होकर सज गए, सुभग गए, सुन्दर हो गए। हाँ, गुरू ध्यान लौ में लीन न सुन्दर हों तो और कौन हो? देखो सभी के परिधान बदल गए, दमकती तिल्ले की तारों जैसे प्रकाशवान परिधान ऊँचे प्रकाश वाले हो गए, चढ़ती कलाओं के तुर्रे सब की पगड़ियों में दमक पड़े, मस्तकों पर 'गुह्य प्राप्त किया लाल' की मणियाँ लटक पड़ीं, चेहरों के भाव प्रतापशील हो गए। राजान अर्थात राजाओं की तरह प्रतापी तेजस्वी और शक्तिमान हो गए, पर स्वीकृत होकर, प्यारे की प्रीत तार में, प्रीतम के ध्यान में मग्न और आप निवारण किए रंग में ऊँचे से ऊँचे लहरें ले रहे और प्रशंसा श्लाघा से भर रहे हैं। स्वीकृत हो गए, प्यारे भाइयो! आप धन्य हो, बधाइयों के योग्य हो, नाम में रत गुरुमुखो! क्यों न सुख पाओ, जब सुखदाता यह कह आया है:-

धन्नु धनु भाग तिना भगत जना जो हरि नामा हरि मुखि कहतिआ।।
धनु धनु भाग तिना संत जना जो हरि जसु स्रवणी सुणतिआ।।

धनु धनु भाग तिना साध जना हरि कीरतनु गाए गुणी जन बणतिआ॥
धनु धनु भाग तिना गुरमुखा जो गुर सिख लै मनु जिणतिआ॥
सभदू वडे भाग गुर सिखा के जो गुर चरणी सिख पड़तिआ॥८॥*

वरदान लेकर सारे सिक्खी मंडल में कीर्तन की ध्वनि उठी–

धनासरी महला ५

तुम दाते ठाकुर प्रतिपालक नाइक खसम हमारे॥
निमख निमख तुम ही प्रतिपालहु हम बारिक तुमरे धारे॥१॥
जिहवा एक कवन गुण कहीऐ॥
बेसुमार बेअंत सुआमी तेरो अंतु न किनही लहीऐ॥१॥रहाउ॥
कोटि पराध हमारे खंडहु अनिक बिधी समझावहु॥
हम अगिआन अलप मति थोरी तुम आपन बिरदु रखावहु॥२॥
तुमरी सरणि तुमारी आसा तुम ही सजन सुहेले॥
राखहु राखनहार दइआला नानक घर के गोले॥३॥१२॥

(तीसरा आत्म लहराव)

धुँधली धुँधली लहर, धुँधली नहीं अत्यधिक प्रकाश के कारण आँखों से न देख सकने के कारण धुँधली धुँधली लगने वाली चाँदनी की एक लहर आई, वेग आया, क्षण में मानों असंख्य असंख्य कोस का चक्कर लाँघ गया। वैसे रास्ते की तरह नहीं, हुआ तो और तरह, परन्तु मनुष्य को समझाने के लिए ऐसे ही कहा जा सकता है।

अब तो होश के पंख जलते हैं, फिक्र के पैर भुनते हैं, सोच की टाँगें टूटती हैं; ध्यान चक्कर खाते हैं, ख्याल का कुछ वश नहीं चलता, कुछ पता नहीं लगता कि क्या हो रहा है। बेहोशी है, आग जलती है, जलने की लपट आती है, हमारे सांसारिक वस्त्रों, शरीर मन समझ तक सब को फूँक देती है। एक पटाखा बजता है, नये जन्मे चिड़िया के बच्चे की तरह हम अपने अब तक के सारे पंखों से हीन, पर किसी अति अकथनीय नूर के अनजान बाल बनकर स्वतः ज्ञान मे मग्न, स्वतः रंग में, स्वतः नज़र में, स्वतः के देखने देखते हैं। एक तख़्त है पर कुछ नहीं कह सकते। ऐसे प्रतीत होता है दमक दर दमक है, चमक दर चमक है, उस पर नौ पातशाह विराजमान हैं, तेज ही तेज है, महा पावन, महा ऊँचा, महा तरल, महा सूक्ष्म पर महाबली तेज को। एक ही तेज है, पर फिर नौ आभाएँ मारता है, नौ अलग अलग आभाएँ दिखाता है, पर फिर है एक ही। नौ आसन लगे हैं, ऊपर नौ ज्योतियाँ दमक दे रही हैं, एक आसन खाली पड़ा है। जब गौर करके देखो तो आँखें मुँद मुँद जाती हैं, अगर स्वतः सिद्ध देखो तो केवल एक ज्योति ही ज्योति दिखती हे। पता नहीं यहाँ दस आसन हैं कि हम दस आसनों का ध्यान लेकर आये हैं। और ग़ौर करते हैं तो क्या देखते हैं कि प्रतापशाली राजा, वह सच्चा पातशाह, वह कलग़ियों वाला, वह महिमा वाला, फौज़ों

* यह महला ४ सोरठ की वार में है।

वाला, मनुष्यों में मनुष्य दिखाई देता पर वास्तव में इन मण्डलों का प्रतापी तेजस्वी प्रीतम, इस तख्त के सामने आकर आदि मूर्ति के चरणों पर गिरकर कहता है:-

"सभे ते वडा सतिगुरु नानकु
जिनि कल राखी मेरी।"

जो कभी किसी के आगे नहीं झुकता था, आज बारी-बारी से नौ ही अकाल मूर्तियों के आगे झुक रहा है। क्या आश्चर्य है। हाँ पर हमारे लोक में भी तो झुक गया है, नानक होकर, हाँ जी, मालिक होकर अंगद के आगे झुका था, अंगद होकर अमर के आगे झुका था, अमर होकर रामदास के आगे झुका, अपने आप राम आप ही रामदास होकर अर्जन के आगे झुका, अर्जन होकर हरिगोबिन्द के आगे झुका और हरिगोबिन्द आप होकर हरिराय आगे झुका और आप कर्त्ता हरिराय होकर हरिकृष्ण के आगे झुका और आप कृष्ण, हाँ, हरि रूप कृष्ण होकर तेग के धनी तेग बहादर के आगे झुका और तेग बहादर तेग आगे सिर अर्पण करने से पहले गोबिन्द गुर गोबिन्द के आगे झुका। जब हमने मातृलोक में आँखों से नौ बार झुकता देखा था अगर आज अपने आप के आगे आप झुक रहा है तो क्या आश्चर्य है?

अब दसवीं गद्दी खाली न रही, हमारे ऊँचे (शिरोमणि) प्रीतम, हमारे प्यारे प्रीतम, हमारे कलगियों वाले प्रीतम, हमारे अरशी। प्रीतम यहाँ सुशोभित हो गए।

वह देखो! उस तेज में हिलोर आई, दसों रूप एक हो गए, अब कितनी भी दृष्टि गड़ाओ, एक ही रूप दिखता है। सत्ते बलवंड ने सत्य कहा था:-

जोति समाणी जोति माहि आपु
आपै सेती मिकिओनु॥

लो भई यह दस रंगों से एक प्रकाशरंगी बनी ज्योति, यह अकेली ज्योति अब यहाँ से चल पड़ी।

अब इससे आगे यही ज्योति जा सकती है, इसलिए हम तो यहाँ ही खड़े रह गए। यह ज्योति चल पड़ी, दूर दूर चली गयी, दूर क्या नजदीक से नजदीक चली गयी, कहाँ चली गयी जहाँ दूर समीप कहना गलती समान है। जहाँ पर ज्योति गयी, वहाँ आगे एक ज्योति थी, यह ज्योति उस ज्योति में घुल मिल गयी। जैसे दो दीपकों का प्रकाश घुल मिल जाता है और पता नहीं लगता; वैसे ही ये दोनों प्रकाश, नहीं नहीं, ये दोनों ज्योतियाँ मिल गयीं। इस ज्योति का तेज अकथनीय है, सब वर्णनों से परे है, इसका तेज अखण्ड और झेला न जाने वाला है। यहाँ होता एक दूर से देखा कौतुक जो हमारी समझ में आने के लिए कहा जा सकता है ऐसे हैं:-

परम ज्योति एक महान दिव्य मूल तत्त्व, परम तत्त्वों के परम तत्त्व, मूलतः, अंत का वास्तविक स्वरूप, अरूप, अरंग, तेजमय, तेजपुञ्ज तेज, आप सारे तेजों का तेज, प्रकाशों का प्रकाश ब्रह्माण्ड का स्वामी है, 'वाहिगुरू' उसका नाम हमारे बीच प्रसिद्ध है, वह समझो महान ही, अत्यधिक बढ़े अपने प्रकाश स्वरूप में स्थित है, कि उस परम ज्योति की हुजूरी

ये ज्योति स्वरूप पहुँचते हैं। पितावत कृपालु होकर परम ज्योति जी इस चरण चूमती ज्योति को गोदी में लेकर प्यार देते और शाबाश कहते ओर सफल परिश्रम, सफल कमाई (काम), सफल रज़ा मानें कह कहकर प्यार देते हैं। फिर कहते हैं "बेटा! 'अकाली दस्ता' बनाओ, ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध अब तुम्हारे हाथ है। अरूप रूप में बसो, ऊँचे मण्डलों में बसो, मेरी गोद में खेलो, मुझमें बसो, मेरी गोद से ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कोने तक तुम्हें स्वतंत्र छूट है, सारे के स्वामी हो, सभी ताकतें गुप्त प्रगट तुम्हारे हुक्म में हैं। जाओ सारे संसार का प्रबन्ध सँभालो। तुमने निज का निवारण करके केवल और निष्काम रहकर मेरा प्रेम दृढ़ करवाया। जगत को यह सच्चा ठिकाना, सत्य का स्थान, असली आत्म विश्राम का पद दृढ़ करवाया, जो वे प्रेम कर के अपने आप में से चढ़ चढ़कर खोज खोजकर प्राप्त करते हैं। तू 'मैं मेरी' के देश जाकर यह 'मैं मेरी' क़ी काई नहीं खायी, तू ही एक है जो इस पद क़े योग्य है। जाओ जैसे धरा पर धर्म चलाया, अब अकाल मूर्ति रंग में रहकर 'अकाली दस्ता' बनाकर अकाल में टिककर 'काल अकाल' सारे देशों का प्रबन्ध करो।

इस प्यार लाड, सम्मान, आदर, दरगाह स्वीकृति से आपको उस सच्चे दर में पहनाया गया:-

'ढ़ाढ़ी सचै महलि खसमि बुलाइआ॥
सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ॥'

हाँ इस इलाही बख्शिश के बाद परम ज्योति अपने ज्योति रंग में और स्वत: प्रकाश मग्नता और प्रेम रंग में हो गए, जिसको हमारी बोली में ऐसे कहेंगे कि तख़्त बैठे पातशाह अपने प्यारे को बख्शिश करके अपने रंग में मग्न हो गये और उनके प्यारे जी हुक्म पूरा करने के लिए चल पड़े। अब स्वर्गों के प्रीतम जी फिर चल पड़े।

४. अकाली दस्ता

कभी वह दिन था कि श्री अकाल पुरुष जी ने सतगुरू जी को कहा था:-

'मैं अपना सुत तोहि निवाजा॥
पंथ प्रचुर करबे कहु साजा॥
जाहि तहां तै धरम चलाए॥
कबुध करन ते लोक हटाए॥ (बचित्र नाटक)

और श्री गुरू जी केवल मातृलोक में यहाँ का गर्द गुबार दूर करने, सत्य दृढ़ करवाने और जीवदान देने आये थे। आज वह दिन है कि वह महान कार्य करके आप ने अपने मालिक के हुजूर मुक्ति प्राप्त की। संसार में अहम् से रहित होकर इस सतगुरू की ज्योति ने शुद्ध अकाल पुरुष का प्रेम दृढ़ करवाया है, जिस कारण वाहिगुरू स्वरूप तक प्राप्ति है, या स्वरूप में तदाकार होने के कारण और स्वरूप में से आने के कारण सतगुरू ने संसार में मैं की कमज़ोरी नहीं खायी। आज अब देखो इसी ज्योति को ब्रह्माण्ड का काम, और रंग में सुपुर्द हुआ है। चाहें तो वाहिगुरू के रूप में अकाल पुरुष जी चरण शरण प्राप्त

रहें, चाहें तो सृष्टि के दूर से दूर हिस्से पर अथवा यही कहो कि सृष्टि दर सृष्टि के अन्तर्गत चले जायें, चाहे कुछ करें और कैसे विचरें, परन्तु सारे ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध करें। इस तरह का बड़ा और भारी काम लेकर और फिर वाहिगुरू में लीन रहकर आप अरूप स्वरूपी देशों में आये। अब देखो:-

एक बहुत भारी मंदिर है, जिसके अंदर आप एक सिंहासन पर विराजमान हैं, सारे सिक्ख जो पहले जामे* से दसवें जामें तक संसार में साथ गए थे, हाज़िर हैं, जो अभी संसार में काम कर रहे थे, उनके शरीर तो मातृलोक में नींद में आ गए और देवगण उनकी आत्माओं को इस दरबार में ले आये। इसके साथ ही कई स्वीकृत प्यारे जो पहले युगों से भक्ति कर रहे थे, पर निष्काम पद का अंतिम काम जिन का बाकी था, उनको भी बुलाया गया और पहले अवतारों, पीरों, पैगम्बरों, संतों को भी बुलाया गया। हर लोक, हर ब्रह्माण्ड, हर ऐसे लोक के लोग जहाँ कि बुद्धि के दर्जे की सृष्टि थी और वहाँ से जो लोग पूर्ण होकर अरूप स्वरूपी नगर के दूर नज़दीक ठिकानों पर आ बसे थे, सभी बुलाये गये। इस समय का दर्शन अपने नानात्व में अर्थात् अपने रंगारंग में आश्चर्यजनक था। नाना तरह की मूर्तियाँ, नाना तरह के लिबास, नाना तरह के रूप और रंग और फिर जमघट इतना कि नज़र काम नहीं करती कि कहाँ जाकर खत्म होता है, परन्तु धन्य हमारा 'अरशी प्रीतम' कि जिसको एक-एक की सुधि है, सतगुरू ने एक एक की संभाल की, एक एक के कार्यों का ब्यौरा सुना और एक एक की मेहनत स्वीकार की।

इस समय एक और आश्चर्यजनक बात दृष्टि में आई कि सतगुरू के कानों के समीप और आँखों के आगे एक छोटे हीरे जैसे गोल गोल मनके (दाने) आप ही लटक रहे थे, कानों के नीचे लटक रहे गोलों के नीचे एक तेज की तार थी जो नीचे जाकर संसार के प्राणधारी दिलों के साथ लगी थी, इसी तरह आँखों के आगे गोलों के नीचे तेज की तार थी जो नीचे ब्रह्माण्ड में जाकर हर प्राणधारी दिल के साथ लगी थी। पहले से हर प्राणी के दिल की प्रार्थना और हर प्राणी की इच्छा भाव सतगुरू के श्रवणों तक पहुँचती थी और दूसरे से सतगुरू के नेत्रों से हर परमेश्वर का प्यारा जब अपने अपने लोक में टिकता था, तो इसी गोले में उसकी सुरत आ पहुँचती थी और दिखती थी, सतगुरू के दर्शन पाती थी और सतगुरू उसको देख लेता था, यहाँ तक कि जो लोग अपने अपने नवीन पुरातन मतों अनुसार या अपने अपने पीरों, पैगम्बरों, अवतारों अथवा ऊँचों का ध्यान धारण करते अरूप स्वरूप भेटों के दर्शन के दर्जे पर आते थे, तो सब को यहाँ आकर यही कलग़ियों वाले का दर्शन होता था, जो गुरू नानक से दस रूप धारण कर फिर एक ही ज्योति, एक ही रूप था, जिनका वे ध्यान करते थे। पर अब वे सारे अवतार आदि इसके हुक्म में इसके साथ अभेद संसार के प्रबन्ध में उन कामों के लिए तैयार थे जो इस 'सतगुरू ज्योति' ने सुपुर्द करने हैं।

फिर क्या दिखाई दिया कि 'अरशी प्रीतम जी' आदेश दे रहे हैं और सब प्रीत के पुतले और विनय के नूरी लोग सत्य वचन कहकर चल रहे हैं। सारे ब्रह्माण्ड के प्रत्येक

* देह, शरीर।

प्राणधारी वर्ग में खंडों, मण्डलों, ब्रह्मांडों, अनंत लोकों, ग्रह, धरती की ओर को अलग अलग लोग तय किये जाकर भेजे जा रहे हैं। वह आनन्दपुर के क़िले में बैठकर हम जैसे राख से बने लोगों के आगे सुझाव फेंकने वाले कौतुकी–जो तीन दिन समझाते रहे कि एक आठ दिन और दुख भूख झेलो, आठ दिन कहा मानो; तुम्हारी जीत होगी, आठ दिन और कष्ट पाओ–हमें क्या पता था कि आप स्वामी हैं? हाँ, हमें क्या पता था कि यह स्वर्गों का मालिक, देव अदेव गुप्त प्रगट लोगों का हाकिम है, इसके पलक झपकने में हरण भरण है, यह आँख की प्रभा से फनाह भी कर सकता है, यह हमें कोई सबक पढ़ा रहा है जो अति कठिनाई में ही लोग (ख़ाकी बंदे-ख़ाक के बने लोग) सीख सकते हैं। हमने समझा था यह मनुष्य है, विवश है, विपत्ति अधीन है, और हमें गलती से मरवा रहा है। आज देखो उस समय के समझदारों, बुद्धि वालों, उपायों, योजनाओं, युक्तियों, दूरन्देशियों पर विश्वास करने वालो! आज देखो कि जिसको आप भूल पर मानकर अपने जैसा मनुष्य समझते थे, वह तब ख़ाक की गोदी में बैठा किस ऊँची खान का लाल था।

आज देखो पटना के प्रेमियों। तुम्हारा प्रीतम-बाल बनकर तुम्हारे बीच खेलता प्रीतम-वास्तव में किस तेज का धनी है, और किस ऊँचे से ऊँचे दर्जे का हीरा है।

हे सृष्टि! आजतक, आज प्रेमियों, शत्रुओं सब को बुलाओ जो प्यारे का असली भेद देखें और पहचानें। ओ मूर्ख भीमचंद! देख तू किसको मारने की चिन्ता में था? ओ वज़ीर खाँ। आ देख जिसके लालों को यातनाएँ देता था, वह कौन है? हाँ आ औरंगज़ेब। देख जिसका दलन करने के लिए तू दलों के दल भेजता था, आज अपने नीचे ठिकाने से देख कि जिसके साथ तू युद्ध करता था असल में कौन था? बलिहारी इस ऊँचे दर्शन के! देखो, इस समय सतगुरू के कलेजे को देखो जो नूरी चोले में से मीठी थाप से धड़क रहा है, वहाँ किसी के साथ वैर नहीं बसता, सबके साथ एक नज़र प्यार है। बलिहारी इस प्रेममूर्ति के, तभी पुकार पुकार कर हमारे बीच बसता हमें कहता होता था–

साच कहौं सुन लेहु सभै जिन
प्रेम कीओ तिनही प्रभु पाइओ॥

अब तक सारे ब्रह्माण्ड की सँभाल हो चुकी थी, प्रत्येक स्थान पर शरीर धारण कर काम करने के लिए लोग चल चुके थे। हमारी धरती से जो लोग बुलाये गए थे उनको आदेश हुआ कि आपने शहीदी प्राप्त करनी है, मुझे अंग संग जानकर मेरे चलाये काम करने हैं, संसार की पीड़ाएँ दूर करने के लिए ढाल रूपी धर्म के युद्ध करने हैं। मेरे सच, नेकी, प्यार, दम बदम सिमरन वाले नियमों को धारण करके धरा का बोझ दूर करना है ओर हर काम, हर सेवा, हर कुर्बानी, हर उपकार, हर अपना आप न्योछावर करने के काम मुझे देखकर मुझे रिझाने के लिए मुझे समर्पित करने हैं। जब तक मुझे आदर्श रखोगे, गुरूमुख रहोगे, मैं तुम्हारे बीच हूँ, बीच में होऊँगा।

यह आदेश देकर ये लोग अब वापिस लौटाए गए, आप ये लोग इस देश में आने जाने के पूरे वाकिफ नहीं थे, इसलिए देवगणों ने जाकर इनको शरीरों में पहुँचा दिया।

अब कई शहीद बुलाये गए जो कामना कर शहीद हुए थे, उनको आदेश हुआ कि मेहनत स्वीकार है, पर फिर जाओ, इस बार निष्काम सेवा करो और वाहिगुरू प्यार में शरीर लगाओ, फिर निष्काम होकर आओ, तो अकाली दस्ते में वास दूँगा। इनको तारीखें आदि भी बताई गयीं कि अमुक समय तुमने अमुक गृह में जन्म पाकर मेरे शुरू किए काम को जाकर करना है, तब तक इनके बसने के लिए सुन्दर ठिकाने और ऊँचे सुख दिए गए।

जब यह सँभाल हो चुकी तो अब अपने साथ रहने वाले अकाली दस्ते का हिस्सा भर्ती किया। इसकी योजना यह थी:- सच्चे पातशाह सतगुरू की ज्योति सबसे ऊँची थी, इनके अधीन चार दिशाएँ और चार महाबली स्थापित किए गए। उनके अधीन हर लोक का एक एक जिम्मेदार अधिपति स्थापित किया गया। उनके अधीन हर लोक हर देश का जिम्मेदार स्थापित किया गया। इस देश के जिम्मेदार के अधीन और छोटे हिस्से किए गए, कई लोगों के लिए दस दस पाँच पाँच प्यारों का टोला इसके अधीन स्थापित हुआ। यह टोला धरती पर शरीरों में बसते लोगों का ध्यान रखता। पुराने पैगम्बर अवतार आदि की सलाह मण्डली बनायी गयी जो हर देश, हर कौम के लिए सलाहें दें।

बात क्या स्वर्ग में मानों एक ऐसी फौज़ बन गयी जिसमें ऊपर से नीचे तक काम करने वाले निष्काम लोग कामों पर लगाये गये, जिनकी सारे ब्रह्माण्ड पर निगरानी हो गयी पर सारे सतगुरू की ज्योति और हुक्म अधीन काम करने वाले हुए। मातृलोकों के देशों के वासी माया लिप्त अपने अपने कामों में हैं। अपने लोभ लालचों, तृष्णा में दृष्टमान में मस्त हैं, बुद्धि वाले बुद्धि की खोज कर रहे हैं, पर किसी को परलोकों का पता नहीं, किसी की दृष्टि पारदर्शक नहीं। किसी की समझ, सुरत गुप्त और अदृष्ट संसार की ओर नहीं, परन्तु अदृश्य संसार में आत्म प्रबन्ध का पूरा नक्शा 'शक्ति और सच' की कलगियों वाले के अधीन अपना काम कर रहा है।

कलगियों वाले क्यों कलगियों वाले हैं? क्योंकि लोक में प्रतापशील थे, परलोक में अत्यंत प्रतापशील हैं। महाराज क्यों फौजों वाले हैं? लोक में फौजों के मालिक थे, अब अरशी अकाली दस्ते में अत्यंत और अनन्त फौजों के मालिक हैं।

अकाली दस्ता कहाँ है? सतगुरू के आदेश में वे नेक लोग, वे ईश्वर के प्यारे जो सिमरन करते गए, परवान हुए और जिनके लिए सतगुरू ज्योति ने उचित समझा कि ये सृष्टि के उद्धार, सुधार और परिपक्वता में यहाँ बढ़कर काम करें, उनको लौ में लीन रहते हुए कोई भलाई का काम सुपुर्द हुआ। वहाँ काम हमारे जैसे नहीं है, वहाँ काम अकाम की तरह है। इन लोगों, सतगुरू के प्यारों को हरि यश, हरि रंग का मुख्य काम है, इसी आनन्द में मग्न हैं। पर देखो संसार में एक आदमी (अमृत द्वारा गुरु दीक्षित होकर आप ही या) किसी सिमरन वाले व्यक्ति के सत्संग में आकर सिमरन कर रहा है, हाँ जी! 'गुरमुख नाम' जप रहा है, वाहिगुरू जी की आराधना करता है, प्यार में भरता है, सत्संग ने उसको स्वीकार कर लिया है, कलगियों वाले स्वर्ग में इसके सिर पर अपने अकाली दस्ते की छाया डालेंगे। उस प्यारे को अब भजन सिमरन में अरशी मदद मिला करेगी, उसका किया कर्म

सफल होगा, निशानी यह होगी कि उसको रस प्राप्त होगा, उसका चित्त वैराग्य में रहेगा, उसकी जीभ शक्तिवान हो जायेगी, उसको वाहिगुरू ध्यान और नाम तुल्य कुछ मीठा नहीं लगेगा। उसका अपना आप हल्का फूल जैसा हो जायेगा। चढ़ती कलाओं का उमंग भरा रंग रहेगा।*

इस प्रकार अकाली दस्ता स्वर्ग की एक ताकत, एक न दिखाई देने वाली शक्ति है, जो मनुष्य की बोली में कही ही नहीं जा सकती। हमारे ख्याल देशकाल वाले हैं, हमारा देश (दूरी) भी तीन आरम्भ वाला है, हम समझ ही नहीं सकते, इसलिए हमारी समझ अनुसार ऐसे ही हुआ कि सतगुरू ज्योति ने सारे ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध किया और स्वीकृत आत्मारूढ़ लोगों को स्वर्ग में स्वर्गीय कामों में सारी सृष्टि को तारने के कामों में लगाया। अब सारे ब्रह्माण्ड के प्रबन्धकर्ता अरशी प्रीतम जी हैं। पिछले अवतार नबी आदि इनकी योजना में लगे हुए सारे काम करते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि पहले ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध कोई नहीं था। पहले भी था और अब भी हुआ 'जो था जो हुआ' वह अकथनीय है। यह वर्णन हमारी देशकाल की बोली और देशकाल वाले मन का अपने तरीके का है। सतगुरू के दर पर जो कुछ वास्तव में घटित होता है अकथनीय है और समझ से परे है। इसका अर्थ केवल यह है कि हमारा सतगुरू जीता जागता 'सिर ऊपरि ठाढ़ा गुरु सूरा' है और इसलिए जो उसकी चरण शरण है 'नानक ताके कारज पूरा' है।

इतने में एक झटका आया, जैसे भूचाल आता है। ऐसा लगे जैसे गिरने लगे हैं, फिर अँधेरी छूटी और अंधकार छा गया आँख खुल गयी। सतगुरू के प्यारे संतोख सिंह जी अधीन बैठे हैं, संगत आश्चर्यजनक विस्मय भाव में आँखें फाड़ फाड़कर देख रही है, संतोख सिंह जी ने हाथ स्वर्ग, आसमान की ओर उठाया था, अब धरती की ओर लटक रहा है, चेहरा अब मुसकरा रहा है और गरज कर बोल रहे हैं:-

"क्यो भाइयो! कलगियों वाला जीवित है कि नहीं?" तो सारे दल में से आवाज़ आई! "सिंह जी! कच्चा बोल न बोलो"। मृदुल स्वभाव संतोख सिंह ने हँसकर कहा, 'सतिगुर जागता है देउ'? ....

जनम मरन दुहहू महि नाही जन पर उपकारी आए॥
जीअदानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥२॥ (सूही महला ५)

"अच्छा! अब हमारे आगे केवल यह विचार है कि सतगुरू जैसे 'दिखाई देता' हमारे में था, वैसे 'न दिखाई देता', हमारे में है। सतगुरू ने जो कौतुक किए हैं सच हैं, हमें

---

* ऐसे सारे काम समझ लो–जब सुबेग सिंह का पुत्र शाहबाज़ सिंह चर्खी पर चढ़कर घबरा जाता है, वह जानता है मैं अकेला हूँ, मैं मर चला हूँ, वह धर्म हारने का खोटा वाक्य कर देता है। पिता देखता है कि पुत्र सिमरन तो करता है, परन्तु अभी दर पर स्वीकृत नहीं, वह पुत्र से तुरन्त मिलाप कर लेता है, तत्क्षण उसके चारों ओर अरशी शक्ति आ खड़ी होती है। फिर वही बच्चा टुकड़े टुकड़े हो मरता है और आत्मरस–वह रस जो स्वर्ग से आया–उसको गिरने नहीं देता। पर खबरदार! 'हठु करि मरै न लेखै पावै॥' केवल मैं, हठ के साथ निभाना इससे अलग खेल है।

विश्वास, सच्चाई देनें के लिए हैं कि रूप धारण करना, अरूप होना, शरीर छोड़ना, शरीर लेना, मनुष्य होकर विचरण करना, या दिव्य होकर विचरण करना, या स्वरूपलीन होना, ये सतगुरू के अपने कौतुक हैं। सतगुरू हर हाल में जीता है और हम कभी विधवा औरत की तरह 'गुरू रहित' या 'गुरू हीन' 'निखसम (खसम, पति रहित)' नहीं हैं। अगर सतगुरू दिखाई देता था, तब भी उसके साथ हमारे सिक्खी नाते का सम्बन्ध हमारे 'हृदय के विश्वास' में था और अब भी 'हृदय के विश्वास' में नाता है।

प्यारो! अगर एक दरिया बहता हो, दरिया के दोनों ओर आबादी हो, दोनों ओर का राजा एक ही हो और राजा ऐसा तैराक हो कि दोनों ओर आ जा सकता हो, तो जब वह पार होगा क्या आप उसको बीत गया समझ बैठोगे? वैसे ही समझ लो कि रूप अरूप दो किनारे इस 'समय' की नदी के हैं, सतगुरू दोनों का मालिक है, 'समय' रूपी नदी का भी मालिक है, 'काल' पर विजयी है, उसका नदी के इधर होना या उधर होना प्रजा के लिए सदा श्रद्धा का कारण है, सदा उसकी जागती ज्योति का निश्चय है। ......

"फिर जब हमारा मालिक जीता है, तब हमारे लिए 'गुरुपर्व सदा दसाहरा (दृष्टि आना)' है। हमारे पंथ में सतगुरू के अवतार और ज्योति ज्योत के दिन पर्व के दिन हों। आपने आज देखा है कि स्वर्ग पर सतगुरू के जाने पर खुशियाँ और पर्व मनाये गये हैं। जिसको हमने प्रयाण, चले जाना, समझा था, स्वर्ग पर वही आगमन और मंगल था। फिर हम क्यों वियोग करें? हम सदा संयोगी हैं, हमारा स्वामी सदा जीवित है, जीवित नहीं सदा होता है, होता ही नहीं हममें बसता है और हमारे साथ है, हमारा और उसका रिश्ता स्थिर रिश्ता है। जब तक रिश्ता कायम है, सतगुरू का मिलाप प्राप्त है। इसलिए दूसरा गुरुमता यह बनाओ कि 'आज सतगुरू जी का अरशी जन्म है, सतगुरू गया नहीं, आया है, सारे ब्रह्माण्ड का सतगुरू होकर फिर आया है।'

"तीसरा गुरुमता* यह तय हो कि यह आप बीती सारे पंथ में और आगे हर सिक्ख कुल दर कुल अपनी औलाद में सुनाये और पीढ़ी दर पीढ़ी सिक्ख घरों में, सिक्ख दिलों में सतगुरू में विश्वास का सम्बन्ध चले। हर सिक्ख सतगुरू को अपने अंग संग जाने, उनकी शिक्षा पर चलता उनकी ज्योति से प्यार करे और अपने सिर पर उनके होने का भरोसा रखकर हर काम उनके चरणों में भेंट करे। हर सिक्ख नेकी की ख़ातिर नेकी करके मैं न पाले, नेकी (भलाई) सतगुरू के चरणों में अर्पित करे 'कि मैं अपने मालिक की सेवा करता हूँ, कि मैं अपने पिता की सेवा करता हूँ, कि मैं अपने गुरू की सेवा करता हूँ, कि मैं कोई नेकी नहीं कर रहा केवल हुक्म का पालन कर रहा हूँ।"

"चौथा यह कि अंधकार में टटोलने वाले, सिर्फ दर्शन छाँटने वाले के विकल्प, जिनकी सुरति लिव के दर्जे पर नहीं जाती, तथा केवल मनुष्य नृत्य की तारीख़े लिखने वाले यादगारी के लिए लकीरें डालने वाले इतिहासकार की खोखली नुक्ताचीनी सिक्खी के सिदक मण्डल में और 'आदि सच्च' के दायरे में मूल्य नहीं रखती। हर सिक्ख का

* गुरू सिद्धान्त अनुसार किया गया मंत्र।

विश्वास यह हो कि मेरे सतगुरू जी जन्म मरण में नहीं हैं, उनकी ज्योति सदा जागृत ज्योति है, आरम्भ से स्वर्ग में काम करती है, और सदा काम करेगी। गुप्त होना अथवा प्रगट होना उनके कौतुक हैं। हाँ उनके मनुष्य नृत्य के दिन वार, तिथियाँ महीने एक समय में खोज लेने के लिए याददाश्तें हैं, ज़रूरी हैं, रखो और सँभालो पर आत्मदृष्टि में वे उनकी आरम्भिक ज्योति के, अस्तित्व के जन्म प्रमाण की तिथियाँ और वार नहीं हैं क्योंकि आरम्भ में सतगुरू जन्म मरण रहित है। हमारे विश्वास की नींव सतगुरू के प्रेम में, सतगुरू के स्वरूप गुरू ग्रंथ साहिब में, सतगुरू की देह दरबार साहिब में और सतगुरू के विदित रूप पंथ खालसे में है; नाम रसिये, नाम प्रेमी, गुरूमुखों के सत्संग, श्रद्धा और प्यार में है; जिनमें सतगुरू की ज्योति व्यापक है। सिक्खों के काम करवाने के लिए सतगुरू का अकाली दस्ता स्वर्ग के कार्य सम्पन्न करता हुआ आपने आज प्रत्यक्ष देखा है, और हर कठिनाई के समय श्रद्धा वाले, नाम वाले, ध्यान वाले सिक्ख सदा अरदास किया करेंगे कि गुरू 'सभ थाईं होहि सहाए' है। हाँ, आज का एकत्रित पंथ अपनी आने वाली पीढ़ियों को आशीष देता है कि नाम रंग और सिदक सुरंग में बसकर गुरू को सदा अंगसंग पाओगे। गुरू आपका, आप गुरू के होओगे, समय निर्बल है कि दूरी डाल सके। जैसे दिखाई देता सतगुरू हमारा था, जैसे आज न दिखाई देता सतगुरू हमारा है, वैसे न देखा सतगुरू आपका होगा, आप गुरू के, गुरू आपका, पर 'नाम के विश्वास' में बसना। 'नाम रस' में आए आप ब्रह्माण्ड की 'प्रीत तार' में पिरोये जाते हो। नाम को कभी न बिसारना और 'नाम रसिये' के सत्संग को मुख्य धर्म समझना। गुरू मुख या संत, हरिजन या जन; साधु या भक्त, प्रीत तार पिरोया; नाम रसिया आप जपता है और जगत को जपाने का सहायक है। यह सत्संग सदा सुखदायी है। दर्शन* हमारे में भक्ति (प्राप्ति) के अधीन होगा, और इतिहास बड़ों के मानवी प्रसंग बताने में गुरूवाणी के कीर्तन के अधीन रखा जायेगा।+ ज्ञान और इतिहास हमने वाहिगुरू प्रेम के सहायक रखने हैं। इनको छोड़ना नहीं। इन पर वाहिगुरू प्रेम@ हावी रहेगा। ये प्रेम पर हावी होकर हमें निष्प्रेम ना करें। ....

"पाँचवा गुरुमता यह था कि पंथ सतगुरू जी के अवतार और ज्योति ज्योत के गुरुपर्व एक तरीके से एक ही मंगल से मनाये। सतगुरू का प्रकाश और अन्तर्ध्यान हमारे लिए दोनों प्रीतम प्यारे की यादगारें, आनन्द की निशानियाँ, उत्साह और उमंग भरी चढ़ती कंलाओं की देने वाली हैं।"

इन वाक्यों पर जयकारे गूँजे, सुहागिन, सदा सुहागिन पंथ में से शोक भाग गया, खुशी के बाजे बजे, जो खुशी के बाजे पटना में लगभग ४२ वर्ष हुए बजे थे, जो बाजे स्वर्ग में बजते सुने थे, वे बाजे आज अविचल# में बजे।

* दर्शन या ज्ञान नाम है जानने का, भक्ति नाम है प्राप्त कर लेने का, प्राप्ति जानने से ऊँची है।

\+ कीर्तन रूप अरूप गुरू के दोनों रंगों में गुरू के साथ मिलाता है, इतिहास केवल रूपधारी गुरू की याद और उसके कामों की याद की ओर रुख़ करवाता है।

@ नाम-लिव-प्राप्ति।

\# नांदेड़ शहर के पास गोदावरी नदी के किनारे दशमेश का पवित्र धाम है, जहाँ पर संवत् १७६५ में सतगुरू जी ज्योति ज्योत समाये थे। इस स्थान को 'अबचल नगर' (अविचलनगर) करके जाना जाता है, इसका दूसरा नाम 'हजूर साहिब' है।

कड़ाह प्रशाद की देगें तैयार हुईं। संतोख सिंह गुरू प्यारा संतोख सिंह, हमें वरदान दिलवाने वाला संतोख सिंह, सतगुरू के आदेशानुसार अविचल नगर में पहला लंगर चलाने वाला सिंह हुआ। यह सज्जन-गुरू नहीं पर–पंथ का पहला जत्थेदार हुआ जो उसी पंथ ने स्थापित किया। इसका सम्मान अत्यधिक था, यह अमृत छकाता, नाम सिमरन का सहायक होता, सत्संग का रंग लगाता था। इसको गुरूमुख और महापुरुष और संत समझा जाता था। पर यह रहा गुरू का सिक्ख और अविचल नगर में पहला जत्थेदार। लंगर का आरम्भ आपने पहली इस खुशी में कड़ाह प्रशाद की देग़ चढ़ाकर किया:- कि सतगुरू हमारा सतगुरू है, धरती आकाश, सीमित असीमित, देश अदेश, काल अकाल सब का सदा गुरू है।

'सतिगुर जागता है देउ।।'

और जैसे १७२३ से १७६५ तक पंथ को प्यार करने वाला, गरीबों को सम्मान देने वाला अपना आप न्योछावर करके कल्याण करने वाला, वाहिगुरू दिखाने वाला, पल्ले लगाने वाला और अंत तक पहुँचाने वाला सतगुरू था, इसी तरह ही अब भी हमारा सतगुरू है; सदा था, सदा है, सदा सतगुरू होगा। सदा:-

जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै॥१॥
सेवक कउ निकटी होए दिखावै॥ (आसा म॰ ५)
अपने दास कउ देए वडाई॥
अपने सेवक कउ नामु जपाई॥ (सुखमनी साहिब)
अपने जन का परदा ढाकै॥
अपने सेवक की सर पर राखै॥ (सुखमनी साहिब)

हम सदा ऐसे विश्वास श्रद्धा रखेंगे और सिमरन करेंगे:-

गुरु मेरे संगि सदा है नाले॥
सिमरि सिमरि तिसु सदा समाले॥ (आसा म॰ ५)

अब यह अविचल नगर की झांकी लुप्त हो गयी। पर ज्ञान दे गयी कि जन्म मरण गुरू के लिए कोई वस्तु नहीं। जैसे सूर्य को सुबह शाम कोई वस्तु नहीं, उदय अस्त कोई चीज़ नहीं, वह सदा एकरस आकाश में चमकता है और फिर पृथ्वी में प्राणी मात्र के साथ अंग संग है, वैसे सतगुरू स्वर्ग का असली सूरज सदा चमकता है, फिर हमारे साथ सदा अंग संग है। धन्य अरशी प्रीतम, जो हर समय प्रतिपालन करता, शरण लगाता और तारता (कल्याण करता) है।

"सभि थाई होहि सहाए।"

गुरू ज्योति–कलग़ीधर महाराज–कहाँ गए*!

सूचना– 'गुरू नानक देव गोबिन्द रूप' से 'वहु प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप' के गुरूवाक्य में भक्त वाक्यों के अनुसार सतगुरू जी का अवतार लेना और ज्योति ज्योत समाना एक ही करिश्मे हैं, इलाही प्रेम के। जैसे 'अवतार' पर हम खुशी करते हैं, वैसे 'ज्योति ज्योत' भी उसी तरह की खुशी देने वाला एक कौतुक समझना चाहिए+। इस नियम अनुसार साहिब के 'ज्योति ज्योत' समय का इस दृश्यमान चुँधिआने वाले पर्दे के पीछे जो कौतुक घटा, उसको मनुष्य बोली और काव्य रस में अंकित करने की मूर्ति यह है:-

'जगत जातरा' कलग़ीधर दी जद मुक्की सी प्यारी
कुदरत ने तत्तां तों पुच्छिआ–"है वजूद एह भारी,
"कौण तुसां, चों करो सँभालन पैगम्बर ते जोधा,
"कवी शिरोमणि, रसिक रसां दा, गुण सम्पन्न उपकारी?"
हत्थ धरे कन्नां ने धरती:- **"मैं भारी ते मैली,**
"ए 'नापा वलवलियां वाला' मैं ना सकां सँभारी"।
अग्ग कहे:- **"मैं धुँए वाली, तत्ती साड़नहारी**
"झरनाटां दे 'ज्योत-मंडल', नूँ छुह ना सकां निकारी।"
नीर कहे: **"मैं ठंडा तत्ता, छिन सुथरा, छिन भरिआ@,**
"नूर इलाही दा ए बुक्का# मैं सांभण तों आरी।"
पौण कहे– **"मैं खेडां घट्टे, टिकण न किधरे वाली,**
"रस-किरनां दा एह अलांबा' कित्थे धरां लुका री?"
कहे अकाश:- **"शून मैं सारा इक है होंद इलाही,**
"रूप, अरूप रसाल, विरागी, मैं ना सकां समा री!"
तदों ब्रह्म तों नाद उतरिआ, उसने सिर ते चाया:-
"ब्रह्म रूप है हसती तेरी, चल अपणे घर वारी।"



* यह गीत २७ पौष सं॰ गु॰ ना॰ ४६० (१० जनवरी १९२९) के गुरुपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ मितु पैझे मितु बिगसै जिसु मित की पैज भावए।।
तसी वीचारि देखहु पुत भाई हरि सतिगुरू पैनावए।।

@ मैला।

घर।

सूचना: श्री गुरू जी के कई एक भँवरे जो गुरू जी के समय हुए और कैसे कैसे उन्होंने उनके द्वारे आ गुञ्जार की उनकी जीवन झाँकियाँ, पिछले वर्षों में भिन्न भिन्न समय पर अंकित होती, छपती और प्रचार पाती रही हैं, वे लगभग सभी इस संचय में पीछे आ गई हैं। अब इस स्थान पर श्री गुरू जी के स्वत्व, स्वतेज और स्वत: प्रकाश प्रभाव, शुभ गुण, यश करामात, कमाल और विशेषताओं सम्बन्धी जो ख्याल कभी कभी लिखे जाते रहे हैं, आगे आने वाले पृष्ठों में आयेंगे:-

(अ)

प्रभावशाली श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी।

कीरति करनीआं, कमाल अते आदर्श।

(कीर्ति क्रियाएँ, कमाल और आदर्श)

एक ओंकार श्री वाहिगुरू जी की फतह॥

९६ कलग़ियों वाले के कमाल*

"वह प्रगटिओ मरद अगम्मड़ा वरियाम अकेला॥"

जी हाँ साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के कमाल पर एक विद्वान, पंडित और कवि कहता है:-

"वह प्रगटिओ मरद अगम्मड़ा वरियाम अकेला+॥"

वह प्रगट हुआ है जो पूरा मर्द है, जिसकी गति को समझना कठिन है, जो ऐसे स्तर का वरियाम@ है कि जहाँ एक वही पहुँचा है, वह आप अकेला उस स्तर का वरियाम है।

एक दूसरे फारसी और अरबी ज़ुबान के विद्वान और कवि आँखों से देखते और उस 'वरियाम अकेला' की शान में कहते हैं:-

तवक्कल उल मतवक्कलून।
कमाल उल मुकलमून#।

अर्थात्–परमेश्वर पर भरोसे वालों का सहारा कलग़ियों वाला है और सिद्ध पुरुषों को कमाल आप से प्राप्त हुआ है।

और उस दाता में कमालों का कमाल देखकर दुआ करते हैं:-

लाल रा सर बपाए शां बादा।
सर खुश अंदर सनाए शां बादा$।

अर्थ–नंदलाल का सिर उस (कमाल) के पैरों में रहे और सिर उसके गुणगान में प्रसन्न रहे। फिर कहते हैं:-

बरतर अज़ हर कदर गुर गोबिन्द सिंह।
जाविदानी सदर गुर गोबिन्द सिंह।
शामल उशफाक गुर गोबिन्द सिंह।
कामले इख़लाक गुर गोबिन्द सिंह।%

---

* यह लेख २३ पौष सं॰ गु॰ ना॰ स॰ ४४७ (६ जनवरी १९१६) गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ भाई गुरदास जी दूसरे।

@ वीर, बहादुर।

\# भाई नंदलाल 'सिफतोसना' में।

$ भाई नंदलाल 'गंजनामे' में

% भाई नंदलाल 'सिफतो सना' में।

अर्थ–बहुत ऊँचा हर अंदाज़े से गुरू गोबिन्द सिंह, सदा से प्रधान गुरू गोबिन्द सिंह, निहायत प्यार वाला गुरू गोबिन्द सिंह। पूरा इख़लाक (सदाचारी) वाला गुरू गोबिन्द सिंह।

बर दो आलम दसति गुर गोबिन्द सिंह।
जुम्ला उलवी पस्त गुर गोबिन्द सिंह*।

अर्थात–ऊपर दो जहानों के हाथ गुरू गोबिन्द सिंह जी का, समूह ऊँचे नीचे हैं गुरू गोबिन्द सिंह जी के आगे।

पुनः–कमाल-उल-कमाला तो फ़रुख़शयम तमीमुल फज़ालातो वाफ़र निअम्म+।

अर्थ–गुरू गोबिन्द सिंह कमालों का कमाल है और मुबारक स्वभाव वाला है, सारी बुज़ुर्गी की पूर्णता है और बेहद भलाइयों वाला है। पुनः–

चि अरजन चि भीमो चि रुस्तम चि शाम।
चि असफंद यारो चि लछमन चि राम।+

अर्थ–क्या चीज़ हैं अर्जुन, भीम, रुस्तम, शाम, असफंद यार, लक्ष्मण और राम (जैसे बहादुर) गुरू गोबिन्द सिंह जी के आगे।

हज़ारां महेशो हज़ारां गनेश।
बपायश निहादह सरे इजज़ खश।
हज़ारां अली ओ हज़ारां वली।
बपायश निहादह सरे सरवरी।+

अर्थ–हज़ारों शिवों और गणेशों ने नम्रता सहित उनके चरणों पर सिर रखा है। (इसी तरह) हज़ारों औलियों (भाव पैगम्बरों) और वलियों (फकीरों) ने शरण ली हुई है।

(कमाल जीवित रहते ही माने गए)

विद्वानों ने खोज वाली आँखों से देखकर जिसके कमालों का इकरार किया और अपनी सीधी गर्दनें जिसके आगे झुकायीं, उस प्यारे प्रीतम साहिब कमाल कलगियों वाले का अस्तित्व उन्होंने सबसे ऊँचा पाया और इस उच्चता का इकरार किया। उनका यह इकरार एक ऐतिहासिक सबूत है कि अपने जीवन में गुरू गोबिन्द सिंह जी कामिलों के कामिल माने गए हैं। ऐसे नहीं कि समय के बीत बीत कर उनकी कीर्ति बढ़ाई, पर ऐसे कि अपने समय में ही उनके कमाल शिखर (चोटी) के कमाल माने गये और कमालों ने आकर उनके दर पर सिजदे किये।

गुरू नानक और दसों गुरू जी
एक ज्योति, एक कमाल

अगर हम गुरू नानक जी की ओर देखें जिन्होंने कुछ संसार के बड़ों से ऊँचे कमाल किये@ तो हम गुरू नानक में इंसानी ईश्वरीय कमाल उनके अपने 'इख़लाकी और रूहानी

* भाई नंदलाल 'गंजनामे' में।
\+ भाई नंदलाल 'ज्योति विकास' फारसी में से।
@ देखो 'सभ ते वडा सतिगुरू नानकु' गुरू नानक चमत्कार का लेख।

जीवन में' और 'यह जीवन औरों में पैदा करने में' सबसे ऊँचे देख चुके हैं। हाँ उनके पवित्र जीवन में, उनके अपने अंतर के हर क्षण–लगातार–अनन्त में लगे रहने में और दूसरों के दिलों को इस प्रकार लगा देने में प्रत्यक्ष चोटी का कमाल हमने देखा। उनका कमाल दसों पातशाहियों में विद्यमान है। हर पातशाही ने इस 'लगातार अनन्ती लगाव' या श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की बोली में 'लिव' को उसी तरह कमाया उसी तरह दूसरों में लगाकर प्रत्यक्ष दिखाया, गोया दसों स्वरूप इस कमालों के कमाल की दस मूर्तियाँ हैं, जिनमें स्वभाव (प्रकृति) एक है, सूरत अलग अलग है; ज्योति एक है, रूप अलग अलग हैं।

दस बाजे बजते हैं, बीन, मद्धम, सारंगी, रबाब, सरंदा, सरोद, ताऊस, दिलरुबा, असराज, दोतारा, सारे आसा राग की एक तरज़ (प्रकार) गा रहे हैं। अब दसों में आप एक एकरंगता देखोगे और फिर आपको बताये बाजे अपना अलग अलग स्वरूप भी दिखायेंगे। जैसे इनमें एक चीज़ के बजने की एक ही सुर ताल लय में एकरंगता है और फिर स्वरूपों की बहुरंगता है, इस तरह दसों सतगुरूओं के अस्तित्व बताये हैं, पर कमाल एक है, ज्योति एक है, ताल, सुर, लय, राग, धारणा एक ही है। हाँ, इस ख़ूबी को, इस असलियत को, अर्थात इस लगातार लगन को, इस 'लिव' को दूसरों के अंदर लगा देने के काम में, समय अनुसार मुश्किलें हल करने में और-और कमालों की जरूरत पड़ती रही, जिसमें दसो सतगुरू कमाल दिखाते रहे। दसों का कमाल यह है कि 'नानक कमाल' में 'नानक' जैसे गुरू होकर रहे, कोई अन्तर नहीं आया। फिर समय समय की ज़रूरत और मुश्किलों में इस कमाल को कायम रखने और प्रचार करने में इन ज़रूरतों और मुश्किलों के हल करने में अपना अपना कमाल करते रहे।

अरशी विद्या, अरशी उनर*, अरशी कारीगरी

१. दर्शन के नुक्ते से इस 'लिव' की सारी समझ को, इसके 'अरूप, अदेश, अकाल, अकारण' उस किनारे के अनुभव से लेकर हमारे दिलों तक इस किनारे की ओर इसके स्वरूप 'देश, काल, कारण वाले मन' की सारी समझ को, जो पूर्ण रूप में दसों ही सतगुरूओं में थी, लिव (लगन, लौ) की विद्या कहना चाहिए। हम इसको 'अरशी विद्या' कहेंगे। यह विद्या कर्त्ता की ('साक्षी' की, 'अंतर' की या 'जानने वाले' 'दृष्टा' 'देखने वाले' की) तथा 'अनंत' जी की विद्या है। यह दृश्यमान दिखने वाले पदार्थों की विद्या नहीं, पर दृश्यमान को देखने वाले 'दृष्टा' की और उससे आगे अनन्त की।

२. इस विद्या की अपनी हर बारीकी और विस्तार में, कमाल के दर्जे का सतगुरू के अंदर होना, अर्थात इस लगातारी लगाव का 'इस अंतर के हरदम झुकाव और लगन' का 'अनंत' की ओर सचमुच प्राप्त और प्रयोग में आया 'रुख़ और मेल' का या ऐसे कहें कि

---
* उबरना-बढ़ना, फैलना।

'वाहिगुरू' के साथ 'लिव' का सतगुरू जी के अंदर कमाल रूप में होना यह दृष्टा पक्ष का सूक्ष्म उनर है, हम इसको 'अरशी उनर' कहेंगे।

३. इस 'अनन्त' में एक रस अखण्ड लगाव को दूसरों के अन्दर लगा देना अर्थात 'लिव' को लिव हीनों के मन में लगा देना। तृष्णा से मैले दिलों के तख्ते धो देने और उन पर ईश्वरीय मूर्ति खींच देनी और उस ईश्वरीय मूर्ति में अन्तर की मग्नता करवा देनी, दृष्टा के पक्ष की कारीगरी है। हम इसको 'अरशी कारीगरी' कहेंगे। दसों ही सतगुरूओं ने इस ऊपर कही गयी १. अरशी विद्या, २. अरशी उनर और ३. अरशी कारीगरी में कमाल किया है, अर्थात वे जानते थे, वे इस विद्या का प्रयोग या व्यवहार में कमाल पर टिके हुए थे और औरों को यह विद्या दान करते और व्यवहार में ला देते और इस पर टिका देते थे। विद्या, उनर, कारीगरी, ये तीनों लिव के कमाल उनके रूहानी कमाल थे–ईश्वरीय कमाल थे।

रूहानी जीवन से नीचे इख़लाकी जीवन है। यह मानों नींव है रूहानियत की। इसकी जानकारी सतगुरूओं में कमाल की थी, इसपर अपना व्यवहार कमाल का था, और दूसरों में इसकी जानकारी और व्यवहार का ढंग डाल देना यह भी कमाल का गुण आप में था। अर्थात १. इख़लाकी* विद्या, २. आप इख़लाक में आदर्श जीवन व्यतीत करना और ३. दूसरों के इख़लाक को सुधारना, तीनों इख़लाकी कमाल भी उनमें कमाल पर थे।

तीनों इख़लाकी कमाल और तीनों रूहानी कमाल उन्होंने अपने अस्तित्व में इकट्ठे कर दिखाये और दूसरों में डाले, यह उनमें चोटी का कमाल, सिर कमालों के कमाल था।

(रूहानी ज़िन्दगी)

इख़लाक का कमाल इंसान के लिए काफी नहीं, इससे केवल इंसानी हिस्सा उन्नत होता है–बुद्धि का हिस्सा ऊँचा होता है; पर भाव का हिस्सा, ऊँचे और सूक्ष्म भावों वाली अंदर की असलियत अपूर्ण रह जाती है, उसको उन्नत करने के लिए रूहानी कमाल की ज़रूरत है। आत्मा का (निज का) वाहिगुरू के साथ मिलन इस पक्ष का काम है, इसलिए श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की पंक्ति में 'नाम सिमरन' और 'याद' के उपदेश हैं, 'एकाग्रता' और 'प्रसन्नता' साथ में 'रज़ा' 'अरदास' 'कीर्तन' और वाणी के उपदेश हैं।

दुनिया में बुद्धि का हिस्सा अर्थात् दिमागी़ हिस्सा तरक्की करके अकसर इख़लाक की उधेड़बुन में अटक जाता है और ईश्वर की ओर (रूहानियत की ओर) नहीं उठता। कई बार फिर इस दिमागी़ हिस्से ने ईश्वर और ईश्वरीय रूहानियत को बेइज्जती से मज़ाक किए हैं और मज़हब में से इस हिस्से को दूर करने का यत्न भी किया है, इसलिए सतगुरू ने वाणी में 'नाम' और 'लिव' की कोयल कूकें (पुकारें) दी हैं, तथा खोल खोलकर बताया है:-

करम धरम पाखण्ड जो दीसहि तिन जमु जागाती लूटै॥
निरबाण कीरतनु गावहु करते का निमख सिमरत जितु छूटै॥ (सूही म॰ ५)

---

* इख़लाक़–अख़लाक़–शिष्टता, सदाचार, सौजन्य आदि।

इस प्रकार श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी में यह भ्रम कभी नहीं पड़ सकता कि सतगुरू जी की तालीम 'लिव' की नहीं है, या 'लिव' कभी इख़लाक पर सदके की जा सकती है। अर्थात केवल इख़लाक लिव की आवश्यकता को दूर नहीं कर सकता। इख़लाक की काठी बेरी पर लिव की सेवबेरी प्योंद* करनी श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की तालीम है।

साची लिवै बिनु देह निमाणी॥
देह निमाणी लिवै बाझहु किआ करे वेचारीआ॥ (म॰ ३)

बात क्या, जब सतगुरूओं ने यह बात की कि अपनी 'पवित्रता' और 'लिव' के उनर को कारीगरी में ले आए और मनुष्यों के दिलों पर ये दैवी (वाहिगुरू की) मूर्तियाँ खींच दीं तो ये मनुष्य जी उठे:-

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोए॥
नानकु अवरु न जीवै कोए॥

(पंथक जीवन ज़रूरतें और मुश्किलें)

गुरू जी के जीवदान देने से ये जी उठे ज्यादा हो गए और 'एक' के प्रेमी होने के कारण आपस में मिल बैठे:-

तुरदे कउ तुरदा मिलै उडते कउ उडता॥
जीवते कउ जीवता मिलै मूए कउ मूआ॥

इस स्वत: सिद्ध प्रेम मण्डल में इकट्ठे हो गए सज्जनों में एक निर्मल सिक्खी भाईचारा पैदा हो गया, इस भाईचारे में जो जो आवश्यकताएँ मुश्किलें आईं, हर पातशाही ने दूर कीं। वही गुरू नानक कमाल प्रत्येक गुरू के लिए आदर्श जीवन था, प्रत्येक गुरू नानक ही दूसरे रूप में था, परन्तु प्रत्येक गुरू को अपनी अरशी कारीगरी के प्रयोग में कई तरह की आवश्यकताएँ और मुश्किलें आईं। उनको दूर करने में ही प्रत्येक सतगुरू का अपना अपना कमाल था। नमूने के लिए देखें:-

(गुरू अंगद देव जी)

दूसरी पातशाही ने गुरू जी की 'अरशी विद्या' ज्यों की त्यों कायम रखी। इसके लिए अब साहित्य की आवश्यकता थी, उसकी नींव रखी। साहित्य की पहली आवश्यकता अक्षर और दूसरी ज़ुबान थी; इसलिए उन्होंने आदि गुरू के समय ही गुरूमुखी वर्तनी रची, बनायी अथवा संकलित की। जिस रूप में गुरूमुखी वर्तनी है, यह रूप या क्रम या अक्षरों का बढ़ना घटना या रूप परिवर्तन या अलग-अलग लिपियों से अक्षरों का चुनाव कैसे भी हो, गुरूमुखी वर्तनी जिस रूप में अब है, यह उनका काम है। चाहे इस काम को बनाना कहो, रचना कहो, संकलित करना कहो+। इस प्रकार एक वर्णमाला (३५ अक्षरों वाली)

---

* किसी घटिया किस्म के पौधे के साथ बढ़िया किस्म के पौधे की टहनी जोड़ने का भाव।

+ गुरूमुखी अक्षर गुरू नानक देव जी के समय गुरू अंगद देव जी ने रचे और सबसे पहले एक शबद गुरूमुखी अक्षरों में लिखकर श्री गुरू नानक देव जी के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह बात गोइंदवाल वाली पोथी के २१५ पृष्ठ के हाशिये पर ऐसे लिखी हुई है-"गुरू अंगदु गुरमुखी अखरु बानाये बाबे दे अगे सबद भेट कीता।"

बनाकर 'ज़ुबान' वह ली जिसमें उनके 'अरशी कारीगर' गुरू नानक देव जी बोलते थे; अर्थात पंजाबी, अपने प्रीतम जी की मातृ बोली। इसमें गुरू नानक देव जी के शबद उनके जीवित रहते हुए लिखे और बाद में उनके सचखंड प्रयाण के बाद भी यह बात जारी रही और गुरू नानक साहिब की जन्मसाखी लिखवायी। चाहे हमें यह असली साखी अभी तक नहीं मिली और जो मिली हैं उनपर किन्तु भी हैं, परन्तु अगर वह असली जो श्री सतगुरू अंगद देव जी ने बनवायी, न बनवायी होती तो उससे हुए और बदले या समान रंग में जो कुछ भी हमारे तक गुरू नानक जीवन का पहुँचा है, पहुँचना कठिन था। इस प्रकार गुरू अंगद देव जी ने उस 'अरशी विद्या उनर और कारीगरी' के मालिक का प्रचार करने में ये दो भारी काम किए। आप 'लगन' में रहना और दूसरों को लगाना, यह उसी तरह रहा, जिस तरह आदि ज्योति में था।

(गुरू अमरदास जी)

तीसरे सतगुरू जी ने गुरूवाणी की पोथियाँ लिखवायी और वाणी का बहुत प्रचार किया। फिर आपने देखा कि हमारे इस अरशी उनर के रास्ते में 'नफ़रत' भारी रुकावट है; जो नए लोग लगाते हैं, वे जब आपस में मिल बैठते हैं तो जाति भेद के कारण (जो पहले से दिलों में है) एक दूसरे से नफ़रत करते हैं। 'नफ़रत' 'प्रेम' से एकदम उलट है, पर 'लिव' जो हम सिखलाते हैं, 'शुद्ध और पवित्र और लगातार 'प्रेम' है। इसलिए यह नफ़रत काट दी जाये तो ही ठीक है। इसलिए हुक्म दिया कि एक लंगरिये हो जाओ। लंगर* तो आदि पातशाही से एक था, पर यह कैद नहीं थी कि सारे वहाँ से खायें। 'जाती दै किआ हथि सचु परखीऐ।। महुरा होवै हथि मरीऐ चखीऐ।।' यह उपदेश था और माना भी जाता था, परन्तु नए आये और नये लगे जिज्ञासु के अंदर ईश्वरीय मूर्ति लिखते लिखते उसके अंदर बसती 'जाति-भेद' के ख़्याल से पैदा हुई दूरी बहुत नुकसान करती थी। संगतों की गिनती अब बेअंत थी और किसी आलमगीर व्यावहारिक बदलाव की आवश्यकता रखती थी जिससे जाति की पैदा की गई घृणा दिलों में से पूरी पूरी मिट जाये, इसलिए लंगर अटूट किया गया। आदेश हुआ कि जो हमें मिले लंगर से प्रशाद छक कर आये। पंजाबी अब इस बात को कम समझते हैं, परन्तु पूर्व में जाओ तो अब तक अलग अलग चूल्हे हैं, यही हाल पंजाब का तब था। इस प्रकार यह दिल की घृणा दूर करके सतगुरू ने फिर 'अनंद' रचा और 'ईश्वरीय आधार' का विवाह ज़ारी किया और अपने सामने कई विवाह करवाये और जातपात तोड़कर भी विवाह करवा दिये। यह लेनदेन की मित्रता और प्यार, उस 'अरशी कारीगरी' के कारखाने की कामयाबी में अत्यधिक सहायक हुए। फिर मैदान बढ़ा और दायरा खुला हो जाने के कारण सतगुरू ने अपने अधीन २२ एक और ५२ एक और ७२ एक, इतने कारीगर बनाकर देश देशांतरों में भेज दिए कि मुर्दा दिलों में 'पवित्रता' लाकर 'लिव' (लगन) लगा दो। 'जाति' को व्यावहारिक तौर पर तोड़कर 'नफ़रत' के

---

* पाकशाला, पके खाने का सत्र।

विकार को काट देना और बहुलता से देश देशांतरों में 'लिव' का सोहिला* सुना और रूहानी ताकत द्वारा बीमारों को बेगिनती में राज़ी करना (ठीक करना) यह कमाल उस 'नानक कमाल' के प्रचार में तीसरे सतगुरू जी ने दिखाये।

(गुरू राम दास जी)

चौथे सतगुरू जी ने इतने खुले प्रचार और इतनी बेअंत ईश्वरीय मूर्तियों को बिखरने से बचाने के लिए एक नुक्ते के चारों ओर घुमाने के लिए, एक देश रूप वाला केन्द्र बनाना चाहा। चुनाँचे आपने 'जी उठों' के लिए एक केन्द्रीय मंदिर बनाया, यह मंदिर आपको या किसी देवता को या इंसान को अर्पित नहीं किया, पर हरि को। इसमें पूजा प्रतिष्ठा ईश्वर की ही ज़ारी की जो कीर्तन द्वारा होती है और यह योजना बना दी कि यहाँ आठ पहर हरि कीर्तन हो, जिसको सुनकर सुरत 'लिव' में लीन हो। उस मंदिर की योजना जल के अंदर बहुत खूबसूरत की कि जिसके दर्शन मात्र से आश्चर्य और विस्माद का रस पैदा हो। जहाँ गर्द गुबार न पहुँच सके, हवा रोशनी को कोई न रोक सके, शीतलता चारों ओर हो, आसमान का चोला खुला दिखे, सारा सामान सुन्दरता और शांति का पैदा किया कि जो हमारी 'ज्ञानेन्द्रियों' 'मन' और इन्द्रियों पर अपनी चमक मारे और विस्मय की रव पैदा कर दे+। जब हम इस तरह प्रभावित होकर सुन्दरता की चमक में विस्मय में आकर मंदिर के अंदर जायें, आगे वाहिगुरू का गुणगान संगीत में हमारे कानों में पड़े, आँखें और कान दोनों विस्मय भाव को लेकर स्वत: ही अन्तर्मुख सुरत को ले जायें, मन 'सोच' से निकलकर 'लिव' की ओर चल पड़े। फिर इस मंदिर में आपने अपने दैवी कमाल से 'आत्मरव' और 'शबद निवास' कर दिया। यह 'रामदास कमाल' प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है। चौथी पातशाही ने लंगर का वही दस्तूर रखा, ईश्वरीय आधार के विवाह भी करवाये और दूसरे सतगुरू की तरह अपनी और चारों सतगुरूओं की वाणी भी लिखवायी। तीसरी पातशाही के ज़ारी किये धर्म प्रचार के काम को भी बढ़ाया। संगतों में प्रचार करने के लिए वही मंजियें@ आदि बख़्शीं, पर अब उनका नाम मसंद पड़ा#।

(गुरू अर्जन देव जी)

पाँचवें सतगुरू ने हरि मंदिर को पूर्ण किया और गुरूवाणी को जो पाँचों सतगुरूओं ने उच्चारण की थी, जो भक्तों भाटों आदि ने कही थी संकलित किया। भक्त वाणी कुछ मिश्रित हो गयी थी और गुरू नानक के नाम अधीन मनुष्य सम्बन्धी वाणी रची गयी थी

* आनंद का गीत; श्री गुरू ग्रंथ साहिब में 'सोहिला' शीर्षक अधीन एक खास वाणी।

\+ देखे 'मेरा अरशी प्रीतम' लेख के आरम्भिक पृष्ठ।

@ छोटा मंच, चबूतरा आदि।

\# मसंद अथवा मसनद वाला—इस समय बहुत ईश्वरीय कमाल वाले सिक्खों का दर्जा था, जो आप जपते और औरों को जपाते थे, निर्लोभी और अचाह थे, यहाँ तक कि संगतों के अर्पित किए दसवंध सतगुरू जी के चरणों में पहुँचाते और जिज्ञासुओं को आप तैयार करके सतगुरू के चरणों में ला डालते थे और आप लोभ लालच से विरक्त होते थे।

और फिक्र पड़ गया था कि अरशी विद्या मिश्रित न हो जाये। उन्होंने 'गुरूवाणी' जो भक्तों को आयी थी, इंसानी खोज द्वारा शुद्ध शुद्ध ढूँढ़ी, अशुद्ध त्यागी और रूहानी कसौटी द्वारा परखी। इसी तरह जो बनावटी वाणी जो गुरू नानक नाम अधीन रची गयी थी (जो अभी भी जन्मसाखियों में और अन्य जगह भी कहीं कहीं मिलती है) दूर की और शुद्ध वाणी संकलित की। ऐसे कितनी देर मेहनत करके श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी को ब्रह्म विद्या अथवा अरशीविद्या* की 'पोथी परमेश्वर का स्थान' का दर्जा देकर पूर्ण किया और केन्द्रीय मंदिर में 'वाहिगुरू ज्ञान' को जो केन्द्रीय नुक्ता है ईश्वरत्व का, स्थापित कर दिया, जिससे कभी किसी समय कोई 'अक्ल वाले या गर्ज़ वाले' गुरू नानक की निर्मलता में मिलावट न कर सकें। 'श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी को पूर्ण करना'' पंचम गुरू का कमाल का काम है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी को गुरुआई+ पंथ के ऊपर स्थापित कर बख़्शने का काम दसवें पातशाह के देने के लिए रहा।

गुरू अर्जन देव जी ने माया का प्रबन्ध ईश्वरीय रोशनी में किया। दुख हरने और सुख देने में संगत की सुरत लगायी। हुक्म दिया: "किरत कमाई (मेहनत से काम करके कमायी पूँजी) में से दसवंध गुरू को अर्पित करने के लिए निकालो@, जिससे व्यावहारिक त्याग आये और वह त्याग व्यर्थ न हो, पर सेवा में लगे। उन्होंने उस भाईचारे में, जो एक गुरू जी के आसपास आकर बन गया था, जत्थेबंदी के नियम कायम किये कि ये एक होकर सारे ईश्वरीय विद्या के सिक्ख और सिखाने वाले बन जायें। श्री गुरू जी अपने पिता की तरह गाते रहे 'जनु नानकु धूड़ि मंगे तिसु गुर सिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै।।' बाकी अरशी विद्या, अरशी उनर, अरशी कारीगरी का कमाल उनमें वही नानक कमाल की 'एक ज्योति' थी।

इस समय इस जीवितों के भाईचारे के साथ ईर्ष्या हो गयी हुई थी, केन्द्रीय मंदिर और केन्द्रीय धर्म पुस्तक ने रूहानी जीवन से खाली लोगों में अपने रोज़ी रोटी के फिक्र पैदा कर दिए, इस फिक्र ने ईर्ष्या पैदा की। भाई नंदलाल जी लिखते हैं:-

चि गंगा मुकाबल ब अंम्रत सरश।।
कि हर शसतो हशत आमदह चाकरश।।

सिक्खों के ये भरोसे इस किस्म के हो गए थे कि उनका विश्वास अपने सतगुरू पर उनकी दी 'पवित्रता और लगन' में था। 'सिख बातल# परस्ती' झूठ की पूजा से पार हो चुके थे। विस्तार का समय यहाँ नहीं, काफी है यह जानना कि सत्य की यज्ञवेदी पर सतगुरू को शरीर देना पड़ा। इस प्रकार अब 'अर्जन कमाल देखो जो सिखाते थे संसार झूठा है, देह अस्थिर है, 'लगन जीवनी है', और उन्होंने यातनाएँ भोगकर मौत को मज़ाक करके

---

* Subjective Science.
+ गुरू का कार्य या पदवी।
@ इसका आरम्भ चौथे सतगुरू जी के समय से हुआ था।
असत्य।

दिखा दिया कि चबूतरे पर खड़े होकर यह कहना और बात है, पर गर्म तवे पर बैठकर मियाँ मीर जैसे फकीर को यह कहना कि यह प्यारे की मर्जी है और प्यारे की होने के कारण मीठी है, एक कमाल है, हाँ 'अर्जन कमाल' है।

सिक्ख गुरू साहिबान का बड़ा कमाल रहा है:-

'अमल' अर्थात–जो कहना करके दिखाना। और श्री गुरू अर्जन देव जी ने कमाल कर दिया, त्याग, वैराग्य, सन्यास का। जब मियाँ मीर ने गर्म तवे पर बैठे देखकर कहा, हुक्म करो जिससे वैरियों का नाश करूँ, तो बोले जो हो रहा है, प्रीतम वाहिगुरू के हुक्म और खुशी से है इसलिए सुन्दर है।

(गुरू हरि गोबिन्द जी)

अब छठे सतगुरू की बारी आई। सतगुरू की 'त्याग वैराग्य' की घाटी और 'लगन' की चोटी को समझना कठिन काम है। आगे भी और अब भी लोग मज़हब किसी गिरती दशा को समझते थे और हैं।

वाहिगुरू जी के साथ लिव या नाम के सम्बन्ध से अनजान लोग नहीं समझते कि अपने सत्य पर टिके रहकर दुख झेलना और जान तक दे देनी चढ़ती कलाओं वाली बात है। पाँचवें पातशाह का निर्देश होते हुए चुप शांति के साथ कठोर कष्ट सहने, सी तक न करना, लिव धारण करने वाले की सबसे ऊँची मिसाल है इस प्रकार की चढ़ती कला।

जैसे भाई गुरदास जी फ़रमाते हैं:-

'सबद सुरत लिव मिरग ज्यों भीड़ पई चितर अवर न आणी।।
चरन कवल मिलि भवर ज्यों सुख संपट विच रैण विहाणी।।

कमाल यह था कि शारीरिक कष्टों के समय लिव नहीं टूटी, सुरत नहीं गिरी। सबसे बड़ी वीरता यह है कि शरीर के कष्ट अभय पद से नीचे न ले आयें, यह वास्तविक चढ़ती कला है। इसलिए अति कष्टों वाली रात आपकी 'सुख संपट विच रैण विहाणी'। छठे सतगुरू जी को उस 'अरशी विद्या, अरशी उनर, अरशी कारीगरी' के प्रचार में यह बात स्पष्ट करनी पड़ी कि सिक्खी मुर्दा हो जाने का और गिरावट का नाम नहीं। अगर हमारे सतगुरू जी ने अत्याचार झेले हैं तो यह हमारे 'सब्र, सहनशीलता, हिम्मत, ईश्वरीय आदेश और खुशी' के कमाल हैं, ना कि निर्बलता के निशान हैं? यह बात ज़ुबानी कह देना नहीं इसको व्यवहार में लाना है। हम बता आये हैं कि सिक्ख गुरू साहिबान का एक कमाल 'कर्म' (करना) है। छठे सतगुरू ने बताया–करके बताया–कि जो दैवी मूर्तियाँ हमने दिलों पर बनायी हैं वे:-

'करम खंड की बाणी जोरु'

के रूहानी मूल वाली हैं, वे खरगोश की तरह भाग जाना नहीं, पर वे जीवन शक्ति का उत्साह है। इसलिए उन्होंने तलवार पकड़ी, यह तलवार नफरत से, दुश्मनी से, शत्रुता से नहीं पकड़ी। सिक्खों में तलवार 'नफरत' का हथियार नहीं, यह रक्षा की ढ़ाल है और

चढ़ती कला का असली चिह्न* है। जब सुरत चढ़ती कला में हो, मन लिव में हो, कारण पवित्रता के, इख़लाक के, दीन रक्षा के हों, तब तलवार खींचनी अत्याचार के आगे ढ़ाल प्रस्तुत करनी है और प्रस्तुत करने वाले के रूहानी जीवन की निशानी है।

श्री गुरू अर्जन देव जी के अपने आप को न्योछावर करने के साके ने बता दिया कि अब 'जी उठे' लोगों की रक्षा ईर्ष्या वालों से होनी चाहिए थी। नहीं तो मूर्खों ने यह 'अरशी चित्रमाला' उड़ा देने की ठानी हुई थी। गुरू अर्जन जी के हौंसले ने अत्याचारियों में पश्चाताप पैदा नहीं किया, बल्कि लिव धारण करने वाले की उस बहादुरी और चढ़ती कला को गिरावट समझा गया। तब छठे सतगुरू खड़ग पकड़ते और चढ़ती कलाओं का व्यावहारिक प्रयोग करते हैं, पर देखो तलवार पकड़कर अत्याचार नहीं करते, अत्याचार रोकते हैं और बताते हैं कि तलवार लिव वाले के हाथ में अत्याचार का शस्त्र नहीं, पर रक्षा की ढ़ाल है। आपका दूसरा कमाल यह है कि तलवार खिंची हुई में भी फकीरी कमाल, अरशी कमाल कायम रखा। भाई नंद लाल जी साक्षी भरते हैं:-

१. 'गुरू हरिगोबिन्द आं सरापा करम,
कि मकबूल शुद ज़ो शकीओ दयम्म।।
२. फज़ालो करामश फ़ज़ूँ अज़ हिसा,
शकोहश हमा फर्रराहे किबरिया।।
३. वजूदश सरापा करम हाए हक,
ज़ि खासां रबाइंदह गोए सबक।।
४. हम अज़ फ़कर हम सल्तनत नामवर,
बफुरमाने ओ जुमला ज़ेरो ज़बर।।
५. दुआलम मुनव्वर ज़ि अनवारे ऊ,
हमा तिश्नाए फैज़े दीदारे ऊ।।

अर्थ–(१) गुरू हरिगोबिन्द सिर से पैरों तक बख़्शिशों वाले, उनके ज़रिये बड़े-बड़े पापी और शोकातुर (दरगाह ईश्वर की में) कबूल हो गए।

(२) बुजुर्गी और करामात उसकी अनगिनत है, उसका दबदबा सारा ईश्वरीय दबदबा है।

(३) उसका अस्तित्व सिर से पैरों तक ईश्वरीय बख़्शिशों का, सब खास लोगों (ईश्वरीय लोगों) से बढ़ जाने वाला (बड़ा) है।

(४) बादशाही और फकीरी दोनों में प्रसिद्ध, नीचे और ऊपर वाले सब उसके हुक्म में।

(५) उसके नूर से दो जहान प्रकाशमान हैं और सब उसके दर्शन की कृपा के प्यासे हैं।

---

* Symbol.

इस प्रकार छठे सतगुरू ने चढ़ती कलाओं में रहकर पंथ को सत्य के लिए मरने का ढंग सिखाया। क्योंकि सारे सत्संगी एक दर्जे के ऊँचे नहीं थे, इसलिए ऊँचों को दूसरों की रक्षा का ढंग सिखाया, जगत पर हो रहे जुल्म को अगर और उपायों से न हटे तो तलवार हाथ में लेकर अपनी जान मारकर हटाने का ढंग सिखाया, बात क्या अपनी अरशी चित्रशाला को तलवार की ढाल बनाकर, उसकी रक्षा का प्रबन्ध करके, फकीरी नुक्ते से कहीं न उखड़कर छठे सतगुरू जी ने 'गुरू हरिगोबिन्द कमाल' दिखाया।

(गुरू हरिराय जी)

अब सातवें सतगुरू जी की बारी आयी।

सिक्खी नियम गृहस्थ का था, गृहस्थ में सारे तबके होते हैं, छठे सतगुरू जी ने सिक्खी तबके में तलवार वाले सिक्ख पैदा किए, पर गृहस्थ आश्रम के भाईचारे के लिए कुछ पक्के राज घरों की आवश्यकता थी, जो कौम में सरदारी से लेकर मज़दूरी तक सारे गृहस्थ के लोग व्यावहारिक तौर पर हों और बतायें कि हर पेशे और काम, हर तबके और रंग में गृहस्थी 'पवित्र और लिव' वाला हो सकता है। अगर अंदर तृष्णा नहीं, पवित्रता है, अगर आठ पहर लगाव 'अनंत' की ओर रहता है तो गुदड़ी पर बैठना और तख़्त पर बैठना एक अर्थ रखता है, इसलिए सिक्खों में राजघरानों की नींव रख दी। आपके ही वरदान से फूलके राजे, बाहिये सरदार और अनेक जागीरदार पैदा हुए और प्रजा पालन वाले नमूने के सिक्ख बने। जत्थेदार जस्सा सिंह, महाराजा आला सिंह, महाराजा कर्म सिंह आदि कई राजे फकीरी और अमीरी के व्यावहारिक सिख जीवन व्यतीत करके दिखा गए हैं।

सातवें सतगुरू ने वही 'नानक कमाल' लिव का दिखाया और किया। २२०० सवार फौज रखी, पर युद्ध एक नहीं किया। सिक्खों में हौंसला हिम्मत और वीरता बढ़ाई, पर तलवार खींचने की जरूरत नहीं पड़ी, बिना आवश्यकता तलवार म्यान से नहीं निकाली। सारी आयु तीसरी पातशाही की तरह बहुत ऊँचे दर्जे का प्रचार किया, वाहिगुरू के सचखण्ड के लिए ईश्वरीय मूर्तियाँ दिलों पर चित्रित कीं।

(गुरू हरि कृष्ण जी)

आठवें सतगुरू जी को बहुत कम समय मिला, पर इन्होंने इतने समय में अपने रूहानी कमाल को संक्रामक रोगों को दूर करने में खर्च किया, इसलिए उनका बिरद मशहूर हो गया 'जिस डिठिआं सभ दुखु जाए'। लिव (लगन) का प्रचार किया और व्यावहारिक सबूत रूहानी शक्ति के तीसरी पातशाही की तरह रोगी ठीक कराने के दिखाये। वचन पालना और औरंगज़ेब के आगे अभय रहना, अत्याचार के आगे न झुकना, करके बताया कि लिव धारण करने वाले लोग सुखी हैं। 'भै काहू कउ देत नहि' दर्जे खुशी हैं, पर 'नहि भै मानत आनि' के रूहानी ओज वाले दृढ़ और ठोस* भी हैं।

---

* Solid.

(गुरू तेग़ बहादर जी)

नौवीं पातशाही ने 'साधो एह तन मिथिआ जानो' का सबक देकर सिक्खों में आ रही सरदारी में वास्तविकता के गुम हो जाने से बचाये रखने के लिए उपदेश दिया। वह 'नानक कमाल' आप में था, परन्तु जैसे पाँचवीं पातशाही के साके को झेलकर चुपकर रहने से सिक्खों में निराशा के आवेश का डर था, वैसे छठी और आठवीं पातशाही के चढ़ती कलाओं के व्यावहारिक जीवन से अब यह ख्याल था कि शायद सिख 'राजमस्त' हो जायें और वैर में चले जायें और कहें सतगुरू का ठाठ एकदम अमीरी है, इसलिए आपने कमाल दर्जे का वैराग्य सिखाया। जगत की निःसारता की ओर अधिक ध्यान करवाया, ताकि सिक्खों के मन का तख़्ता 'ईश्वरीय पदचिह्नों' के लिए साफ रहे। राज में योगी रहें, ईश्वर के साथ जुड़े योगी, लिव के लिए जिये पुरुष रहें। जैसे ईसा जी के शिष्य राज्य की ओर झुके 'वाहिगुरू प्रीत' को भूल गए और कितने ख़ून ख़राबे जगत में कर रहे हैं, जगत को गुलाम बना रहे और आपस में मारकाट कर रहे हैं और कई स्थानों पर ईसा के ही गिरजे और पुस्तकालय जला रहे हैं*।

प्राकृतिक जीवन में आकर सिख इख़लाकी और रूहानी जीवन को भूल न जायें नौवें सतगुरू का प्रयोजन यह था। फ़ौज सतगुरू के पास थी, आनन्दपुर शहर पहाड़ी पनाह में भी बना लिया था, क़िला भी था, पर फिर पाँचवें सतगुरू की तरह 'ईश्वरीय आदेश और सहनशीलता' का नमूना दिखाया, तन मिथ्या सिखाया था और सिर देकर कमाल कर दिया। फ़ौज और तलवार थी, पर इस्तेमाल नहीं की। यह पाँचवी से दसवीं तक 'राज-योग' के कमाल सतगुरू जी ने अपने 'नानक कमाल' की कामयाबी के लिए, पंथ में व्यावहारिक जीवन कायम करने के लिए किये। नौवें सतगुरू जी की वाणी, प्रचार, सफर, पहली पातशाही की तरह हैं। नौवें सतगुरू की वाणी वैराग्यमयी समझकर उदासी की मानी जाती है, पर उनकी वाणी निर्भयता का मूल है, जो सच्ची खुशी और उत्साह उमंग की जान प्राण है। सतगुरू फ़रमाते हैं 'भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।।' फिर यह नियम कहकर आप औरंगज़ेब जैसे ज़ालिम का 'भय नहीं मानते' मौत का भय नहीं मानते, बदनामी का भय नहीं मानते, तलवार की धार का भय नहीं मानते, मर्दों के मर्दान तेग़ के आगे खड़े होकर बताते हैं 'साधो एह तनु मिथिआ जानउ'। किसी पर्वत की कोख में छिपकर उदास बैठे और हाय हाय करते तन को मिथ्या नहीं कहते। हाँ, अपने उसूल, अपने लिव के जीवन पर से तन वार देते हैं। एक बात और समझने वाली है। अपने ईमान और उसूल पर या अपने मज़हब पर तो शहीदियाँ पाने वाले आपको भले पुरुष इतिहास में मिलेंगे पर दूसरे के धर्म की ख़ातिर कि उसको अपने धर्म में स्वतन्त्रता कायम रहे, किसी ने शीश दिया हो यह मिसाल मुझे तो नहीं कभी मिली सिवाय गुरू तेग़ बहादर जी के जीवन के। यह नुक्ता दसवें पातशाह ने गुरू तेग़ बहादर जी के सम्बन्ध में आप वर्णन किया है–

---

* पिछले (१९१४-१९) के युद्ध में कई गिरजे पुस्तकालय जलाये गये थे। बाद के (१९३९ के) युद्ध में तो अत्याचारों की इंतहा हो गयी है।

तिलक जंञू राखा प्रभ ताका।
कीनो कलू बिखे बड साका।

उनका, अर्थात् हिन्दुओं का तिलक जनेऊ वाला धर्म बचा दिया, कलियुग में यह बहुत भारी साका कर दिखाया। यह है गुरू तेग़ बहादर जी के उपकारी कमालों में से एक अद्वितीय कमाल।

(श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी)

अब आई श्री गुरू कलग़ीधर जी की बारी।

आपका अस्तित्व दसों पातशाहियों के शरीर अस्तित्व में से 'नानक कमाल' का गुरू रूप अस्तित्व अंतिम था। इस समय जी उठे लिवधारी लोगों के चारों ओर जगत के पूर्ण तबाही का सामान कर रखा था।

'भगता तै सैसारीआ जोडु कदे न आइआ॥'

सतिनामी शाखा को औरंगज़ेब मिटा चुका था, कई बेनवा* फकीर डुबाये जा चुके थे, कई सूफी फकीर कत्ल हो चुके थे। काश्मीरी ब्राह्मण और कौमों की कौमें जबरन मुसलमान बनायी जा रही थीं, राजपूत बेटियाँ देकर अधीन हो चुके थे। औरंगज़ेब की शरअ और ज़ुल्म इस समय ज़ोरों पर थी। हिन्दू बरतरफ किए गये, मंदिर गिराये गये, तीर्थ यात्रा करीब करीब बंद और ऊपर से तेग़ ज़ारी कि मुसलमान करो। इस समय सिक्ख समुदाय उसको एक भारी कंटक दिखाई देता था। यह समुदाय एक फकीरी समुदाय था, ये फकीर खुदी और ख़ुदा (आत्मा से ईश्वर) के गहरे भेदों से वाकिफ थे। ये जंगलों में बसने वाले वैरागी नहीं थे। ये इख़लाक़ी सीढ़ी से नपुंसकता की ओर झुक गए कायर नहीं थे। ये परमेश्वर से उतरे, पर माया से अभय और अनावश्यक थे। ये मर्द थे, मर्द के चेले थे और मर्दानगी में जी उठे थे। इनकी शूरवीरता रूहानियत के शिखर पर जा चढ़ी थी, इनके रंग पातशाह को पता थे। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उसने पहले तो पहाड़ी राजे इनके गले डाले कि हिन्दू आपस में कट मरें और मुझे कुछ न करना पड़े। पातशाह को पता था कि सिक्खों का तौर तरीका अलग है और हिन्दू अकबर के समय से दाँत पीस रहे हैं, इनको इशारा देकर सिक्खों के गले डाल देना राजनीति है। दूसरी ओर सिक्खों का इन पहाड़ी राजाओं के आगे सहनशीलता के साथ पिस जाना इस समय रूहानी हिम्मत नहीं पर रूहानी मौत थी।

गुरू गोबिन्द सिंह जी में 'अरशी विद्या, उनर, कारीगरी' 'नानक कमाल' पर थे। जिस प्रकार इस आदर्श के प्रचार के लिए पहले नौ सतगुरूओं ने समय-समय की आवश्कताएँ पूरी कीं और मुश्किलें हल कीं, वैसे अब वक्त आ गया कि कलग़ीधर को और कमाल दिखाने पड़ें। ये मामले बहुत कठिन हैं, इसलिए श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के जीवन को समझना कठिन है और मूर्ख गलती खाते हैं।

---

* मुसलमान फकीरों का एक समुदाय, जो शरअ का पूरा पाबन्द नहीं।

गुरू नानक कमाल था–'पवित्र रहना' और 'अंतर को लगातार अंनत के लगाव में रखना' और इस तरह रहते हुए विशेष तौर पर 'जीवन गृहस्थी' रखना। गृहस्थ के सारे पहलुओं में सारे सतगुरू यह 'अनन्त में निरन्तर लगाव' सिखाते रहे और लगाते रहे। दसों पातशाहियों के मनोरथ 'मन के और ज़िन्दगी के एक तौलवें तोल के और स्थिर एक स्वरता' के अभ्यासी आदमी पैदा करने के थे। अब वक्त आया संसार में सबसे कठिन और भयानक काम–युद्ध–का। इन गृहस्थियों को युद्ध करने ही पड़ गये। चाहे वे आप न चाहने वाले थे; परन्तु समय के अन्याय और सीनाज़ोरी ने उनके गले युद्ध डाल दिए और उनको स्वरक्षा के लिए या दीनों की रक्षा के लिए युद्ध करने पड़ गए। युद्ध कलग़ीधर जी ने आमन्त्रित नहीं किए, परन्त समय के अत्याचार से मज़लूमों की रक्षा के लिए घर आ गए युद्ध का अतिथि सत्कार किया है। युद्ध के 'हलचल प्रयत्न और परिवर्तन' के समय भी अन्तर का लगाव अनन्त की ओर लगा रहे, यह 'कलग़ीधर कमाल' है।

शांति के साथ राज्य करते हुए जिस तरह जनक था, कार्य व्यवहार करते हुए जैसे नरसी, काम धन्धा करते जैसे कबीर और नामा था, खेती करते जैसे धन्ना था, वैसे दिल का झुकाव साईं की ओर रखने के ऊँचे ऊँचे नमूने सिक्खों में हर पेशे के आदमियों के आम थे। युद्ध में धर्म निभाया जाये, इस बात की नींव छठे सतगुरू जी ने रखी और यह बात अटल मुश्किल की शक्ल में कलग़ियों वाले के सामने आई। उन्होंने कौम को श्री गुरू अर्जन और श्री गुरू तेग़ बहादर वाला आदर्श–मौत को मज़ाक करने वाला प्रस्तुत किया, पाँच नितरे*, पाँचों की कौम बनायी, जिनमें तीसरे चौथे सतगुरूओं का जी उठने वालों का अलग भाईचारा होने का आदर्श डालकर वहमी मतों से बिलकुल तोड़ लिया। किसी बड़प्पन के वहम या घृणा से नहीं, पर जत्थेबंद करने के लिए अब बताया कि अनन्त के लगाव में जो सुरत साईं की ओर रहती है वह एक खुशी है, 'अनंद भइया मेरी माए सतिगुरू मैं पाइआ।।' वह चढ़ती अवस्था है, वह रूह की प्रसन्नता है, वह रस है, उसके लिए भय और भ्रम कुछ चीज़ नहीं। जिसके अंदर मौला है, उसकी गर्दन झूठे के आगे नहीं झुकेगी। जिसके अंदर 'नानक का सच और सच्चा ईश्वर है, वह ज़ालिम कमीने के आगे नहीं झुकेगा। रूहानी उन्नति जिसकी हो चुकी है, वह एक शक्ति है, एक उच्च आचरण है, एक ताकत है, वह 'जोध महाबल सूर' है, वह आत्मबल है निज का केन्द्रीय साहस है। ऐसे सतगुरू ने फकीरों को फकीरी नुक्ते से बताया कि घमासान युद्ध में भी लिव न टूटे, पर ना टूटे।

एक से अधिक बार राजाओं को समझाया, देश की दुर्गति बतायी। जब वे नहीं टले और अकारण लड़ने आ गऐ तो फकीर खड़े हो गए। उनके दिल सतगुरू ने वैर नहीं डाला, घृणा नहीं सिखाई क्योंकि उनका अपना सीना वैर से रहित है। भाई नंद लाल जी गवाही भरते हैं:-

खालिसो बे कीना गुर गोबिन्द सिंह।
हक हक आईना गुर गोबिन्द सिंह। (गंजनामा)

* बहुत सारे आदमियों में से किसी काम को करने के लिए आगे आना।

पाप भरी और दूसरे के देश को जीतने की तृष्णा नहीं सिखायी। पर मज़लूमों से ज़ुल्म दूर करने की और प्राकृतिक ताकतों के आगे अपनी रूहानियत को न झुकाने की वीरता सिखाई, नमनू के लिए देखें–

(रूहानी कमाल)

१. आनन्दपुर से सख़्त घेराबन्दी के बावजूद निकलते हैं, दुश्मन दल में से निकल चलते हैं, कई मील जाकर तीसरे पहर का समय आ जाता है वह रूहानी कमाल वाला बोलता है, 'रुक़ो' और आसा की वार का दीवान सज जाता है। यह काम कोई सेनापति नहीं कर सकता, परन्तु रूहानी बुलन्दी वाला, वैर रहित, अनन्त में लीन हुई सुरत वाला क़ामल (पूर्ण ज्ञाता) गुरू गोबिन्द सिंह ही कर सकता है। उनके युद्ध नफरत पर निर्भर नहीं, पर उत्साह पर निर्भर थे। इससे साफ है कि उन्होंने सिपाही जीवन और लोगों पर से रूहानी जीवन को नहीं न्योछावर किया और रूहानी जीवन को कामयाब रखने में किसी सेनानायक़ की आवश्यकता की प्रौढ़ता नहीं दी और कभी ख़तरे में पड़ जाने पर खेद नहीं किया।

२. औरंगज़ेब की ओर से राज, पदवी, जागीरों, इज्जतों के लालच आते हैं कि रजवाड़ों की तरह राजा होकर सुख भोगो, पर वह इख़लाकी और रूहानी कमाल वाला स्वीकार नहीं करता। दूसरों की आज़ादी छीननी अपना राज्य और सुख चाहने प्रयोजन नहीं, अर्थात तृष्णा कारण नहीं जो तलवार पकड़वा रही है, पर सुरत को झुकने नहीं देना, लिव को भय और लोभ के अधीन नहीं होने देना, यह है निर्भयता और स्वतंत्रता का ऊँचा ख्याल जो तलवार पकड़वा रहा है। यह अहंकार भी नहीं है, अंहकार उस आदमी की मस्ती है जिसके अंदर लिव नहीं है, अंदर से खाली है और बाहूबल, पदार्थ या हर नाशवान ताकतों पर अकड़ता है, पर यह शुद्ध चढ़ती कला का बल है जो अहंकार रहित है, वैराग्य में है, संसार को नाशवान देखता है, तन मिथ्या जानता है, सृष्टि रचना में खंडा* (मौत) सबसे पहले बनाया जाता देखता है और इसलिए अभय है कि उसको इस नाशवान में एक अविनाश कण, एक नाश रहित आधार का केन्द्र–'अनंत में निरन्तर अंतर का लगाव' अर्थात लिव का यथार्थ आसरा मिल गया है। वह तलवार चलाता है कि हाँ, मैं इस कण को, हे ज़ालिम। तेरे भय के आगे नहीं दे दूँगा, भय आया लिव गयी, तृष्णा आई लिव गयी।

३. हाँ जी, कई इख़लाकी महात्मा युद्ध को पाप बताते हैं। हाँ, जो केवल अहंकार करके, लड़ते मरते हैं वे पुण्य नहीं कर रहे, पर जिसके अंदर की 'लिव' की असलियत है और उसके अंदर न झुकने वाली ताकत है, वह अगर दीन रक्षा के लिए या लिव लगा रहे साधुओं के लिए झुकता, और ज़ालिम के आगे अपनी न लौटने वाली तलवार की ढाल प्रस्तुत करता है, तो वह आत्मिक नुक्ते से 'जोध महाबल सूर+' का काम कर रहा है,

---

* दोधारी खडग।

+ जा कउ हरि रंगु लागो इस जग महि सो कहीअत है सूरा।

उसके अंदर मैं नहीं, पर 'राम रहिआ भरपूर' है। उसका युद्ध पुण्यकर्म है, और भारी कुर्बानी है।

सेलियों* वाले नानक ने आज कलग़ियाँ लगाकर तलवार पकड़ी है, कहता है जैसे मैंने हर संसार के फकीर को जीता है, जैसे बाबर के आगे नहीं झुका था, वैसे राजाओं और ज़ालिम औरंगज़ेब की तलवार के आगे नहीं झुकना, अब रक्षा करूँगा, पर देखो मेरा कमाल, खड़कते खंडे में मेरा निरंतर लगाव उसी तरह रहेगा, लीन रहेगी मेरी सुरत छिड़े युद्धों में भी उस मित्र प्यारे 'अनन्त' में।

हाँ जी! एक बंगाली ने कहा था कि गुरू नानक जी की रूहानियत आपने तबाह कर दी। पर इस सज्जन का अपना आदर्श कमज़ोर है, यह इख़लाकी मुर्दादिली को, दिमाग़ी अक्ल शून्यता को रूहानियत समझता है। इसको रूहानी जीवन का पता नहीं है। पर हाँ अगर कोई सिक्ख 'लिव हीन' हो और अहंकार अकड़ में खड़ा अत्याचार करे और दूसरे के माल असबाब को छीने और कहे: 'मैं गुरू का सिक्ख हूँ' तो भूल है, भूल है, भूल है; वह रूहानी आदमी नहीं है। कलग़ियों वाले के युद्धों में रूहानी कमाल साथ है कि ऐसे भयानक रंगों में साईं याद है, और धर्म मुख्य है, वस्तु कारण वैर नहीं, लालच नहीं, केवल साधु रक्षा है, रूहानी रक्षा है। सूफी फकीर, हिन्दू साधु, ईश्वरीय लोग कत्ल हो रहे हैं, यह देखना और मुर्दे की तरह बैठे रहना और कहना यह रूहानी कमाल है, भूल है। अगर एक उपकारी रक्षक ज़ालिम के आगे आ खड़ा हो और कहे, भई साधु को न मार, सृष्टि को कष्ट न दे, जबर्दस्ती धर्म न क्षीण कर। ज़ालिम समझने की जगह अगर इस पर वार कर देता है तो अब अगर यह रक्षक आप नम्रता कर के कत्ल हो जाये तो इसने क्या सँवारा? जिनकी रक्षा की उनको क्या लाभ दिया? आप झुंगे@ (मुफ्त में) में मर गया, परन्तु अगर जिद्दी ज़ालिम के आगे बकरी की तरह शरीर प्रस्तुत करने के स्थान पर तलवार प्रस्तुत करे और कहे अच्छा भई मैं रक्षक हूँ रक्षा करूँगा, तेरे जुल्म की तलवार तोड़ूँगा तो नतीजा क्या होगा? युद्ध! पर यह युद्ध रक्षा है, रूहानी कुर्बानी है, व्यावहारिक सन्यास है। साधुओं पर प्रजा पर, दुखियों पर अपना आप न्योछावर कर देना, जी हाँ, आग में घी बलि होने की तरह केवल आहूति न हो जाना, पर ज़ालिम के जुल्म की ताकत घटाते जाना और अपने सुख न्योछावर करते जाना और करते जाना, जब निज और अपना न्योछावर हो जाये तब ज़ालिम का जुल्म भी अंत पर आ जाये। यह ऊँचा सन्यास है, केवल कलग़ीधर के संसार में सबसे ऊँचे हुए रूहानी मर्द का काम है।

(रूहानी प्रचार का कमाल)

एक मुसलमान सेनापति अपने दलों में खड़ा कहता है कि गुरू गोबिन्द सिंह साहिब कशफ (करामाती बुजुर्ग) है फिर युद्ध शुरू करता है? देखो लिव धारण करने वाला गुरू

---

* काली ऊन अथवा रेशम की गूँथी हुई एक रस्सी, जिसको फकीर सिर पर साफे अथवा टोपी पर बाँधते हैं, अथवा जनेऊ की तरह गले में पहनते हैं। गुरू नानक देव जी के सम्प्रदाय में इसके पहनने की शैली (रीति) गुरू अर्जन देव जी तक रही।

@ वस्तु ख़रीदने के बाद मुफ्त दिया जाने वाला पदार्थ।

गोबिन्द सिंह उसके मन के ख्याल को समझ लेता है, घोड़ा दौड़ा कर शत्रु दल में उसके सामने जा खड़ा होता और कहता है, मुर्दे मर रहे हैं, मैं किसी को नहीं मार रहा, मैंने यह सबक सिखाना है कि लिवधारी होना, 'कायर होना' नहीं। वह सेनापति पैरों पर गिरता है, उसको उस घमासान युद्ध में वैरी के दल में आ खड़े हुए गुरू जी लिव दान देते हैं, वह मैदान जंग छोड़कर चला जाता है, सारी उम्र भजन में गुजारता है, चोटी का कामिल फ़कीर बनता है, यह है कमाल*।

(इख़लाकी कमाल)

१. दुश्मनों के सरदार का एक डोला@ सिक्खों की क़ैद में आता है, गुरू गोबिन्द सिंह जी का आदेश होता है, महलों से दासियाँ बुलाओ! आकर ख़ातिर करें, धैर्य दें। पहले पूरा पूर आदर किया, फिर सिक्ख सवारों का दस्ता साथ देकर आदेश होता है, जाओ इनके देश घर पहुँचा कर आओ। है न इख़लाकी कमाल? दुश्मन की स्त्री अपनी क़ैद में आई, उसकी ख़ातिर आदर किया, मान प्रतिष्ठा कायम रखी और घर पहुँचाया, है न वैर रहित गुरू गोबिन्द सिंह।

२. किसी फकीर को मिलने गए सतगुरू एक बहुत अमीर सुन्दर जवान स्त्री के घेरे में घिर जाते हैं, इसके रूप जाल के आगे सतगुरू का झुकना तो असंभव था ही, इस भय के आगे भी न झुके कि आप और मैं अकेले खड़े हैं, चीखें मारकर शोर मचाऊँगी और झूठी तोहमत लगाऊँगी जिससे आपकी इज्जत मिट जायेगी। इख़लाकी पवित्रता पर इज्जत को भी न्योछावर कर देने वाले सच्चे और पवित्र सतगुरू बेख़ौफ निकल चले और सिक्खों को बता दिया कि इख़लाकी कमाल यह दृढ़ता है।

(समदर्शिता का कमाल)

१. हाँ जी युद्ध हो रहा है, पानी है नहीं प्यासे मर रहे हैं, कलगियों वाले कामिल का अति प्यार सिक्ख भाई कन्हैया+ सिक्ख और मुसलमान दोनों को मैदाने जंग में पानी पिला रहा है, इस सिक्ख को शाबाशी देकर साथ में मलहम+ की डिब्बी देते हैं, कि भई ज़ख्मों पर मलहम भी लगाया कर। है ना सीना वैर से खाली? सच कूक (पुकार) रहा है भाई नंदलाल:-

ख़ालसो बेकीना गुर गोबिन्द सिंह।

२. दीवान सजा है, ५२ हिन्दुस्तान के विद्वान बैठे हैं। शैव, शौर, शाक्त, वैष्णव, सिक्ख, सूफी, हर सम्प्रदाय के पंडित औरंगज़ेब के सताये हुए, सब को पनाह दे रहा है कलगियों वाला कामिलों का कामिल। है कोई पक्षपात? शरण पालन का कमाल है?

---

* देखें नसीरां का प्रसंग।

@ डोली में सवार होने वाली बहू।

\+ ये अड्डणशहियों के बड़े हुए हैं। इन लोगों के डेरे मलहम अब तक मिलती है। साथ में रोटी भी देते हैं।

(विद्या का कमाल—देखें गुरू गोबिन्द सिंह जी का विद्या दरबार, जो आगे आयेगा)

(बख़्शिश का कमाल)

शाम है, ज़ख़्मियों, मुर्दों से मैदान भरपूर है, कलग़ियों वाले एक सिसकते का सिर गोद में लिए मुँह पौंछ रहे और प्यार कर रहे हैं, कहते हैं: कुछ माँग? वह कहता है: हे पिता! मेरे भाई आपको बेदावा लिखकर दे गए हैं, वह फाड़ दे और टूटी जोड़ ले? बख़्शिंद पिता पुत्रों की न वफादारी का, अपुत्रपन का पाप भी तुरन्त बख़्श देता है, कागज़ फाड़ता है और न केवल बख़्श देता बल्कि सब को वर देता है, सब को सात हज़ारी और दस हज़ारी कहता ओर 'बहुड़ि पिता गलि लावै' कर दिखाता है। है न बख़्शिश का कमाल*।

(कोमल उनरों के कमाल)

सतगुरू की रचना हम तक पहुँची है, उसका एक हिस्सा बिलकुल गुरू नानक देव जी की वाणी जैसा 'अरशी कमाल' है दूसरा हिस्सा 'वीर रस' का और 'पाखंड निषेध' का है। वीर रस की कविता भी अपने कमाल पर है, उत्साह और उमंग की खान है, पढ़ते पढ़ते भावों में ले ज़ाती है। बाणी के अतिरिक्त ५२ कवि पंडित थे, इन्होंने सब विद्या के ग्रन्थों के टीके कर दिए और नौ मन बोझा कागज़ों का था जो गुरू के द्वारे ग्रंथ रचे और टीके किए गए। रचनाओं के अलावा चित्रकार और गवैये दूर दूर से आए एक तो कद्र के कारण, एक जो ज़ुल्म वाले राज्य ने सताये सब यहाँ शरण आए। आप बाग़वानी, किले बनाने, इमारतें बनाने में कमाल के रसिये और गुणियों के शरण पालक़ थे।

(तीरंदाजी का कमाल और कशफ का कमाल)

आनन्दपुर घेरे में है, डेढ़ मील पर अपने ठिकाने दुश्मन पलंग पर बैठे शतरंज खेल रहे हैं कि उनके एक पाये में तीर आ लगता है। दुश्मन तीर देखते हैं तो साथ में सोना है, पक्की निशानी है कि यह तीर गुरू गोबिन्द सिंह के अपने हाथों आया है। आपस में बहस छिड़ती है कि आया इतनी दूर निशाने पर तीर मारना इंसानी कमाल है कि आत्मिक बल है? अभी बहस ज़ारी है कि दूसरे पाये में एक और तीर आ लगता है, उसके साथ कागज़ का टुकड़ा बँधा है, जिस पर लिखा है कि यह रूहानी कमाल नहीं, यह इंसानी कमाल है। तब वे कहते हैं कि मान लिया कि तीर मारना तीरन्दाज़ी के कौशल का कमाल है, पर हमारी बहस को डेढ़ मील से अनुभव कर लेना नि:संदेह कशफ (अन्तरात्मा) का कमाल है।

भाई नंदलाल जी साक्षी भरते हैं:-

---

* पिछले ऋषि अवतार श्राप देकर वर माफ नहीं कर सकते थे, सतगुरू ने अपने तो क्या लोगों के दिए श्राप बख्शे, कौडा राक्षस सज्जन ठग बख़्शे। दसवें जामे में रेवा जैसे पापी स्वभाव वालों के श्राप बख़्शे।

ख़दंगश चुनां संग खारा दरद, कि शमशेर हिन्दी कबार आवुरद।
अज़ा बरगज़ीं तर किह आयद कमां, अज़ां बरतरीं तर किह गोयद ज़ुबां।
चुनां नावकस हलका दर कोह करद, कि अरजन न करदह बरोज़े नबरद।
(ज्योति विकास फारसी)

भाव–अर्जन के तीर गुरू जी के आगे मात हैं, कोई ऐसा कमानकश पहले नहीं हुआ।

(फर्ज़ का कमाल)

आनन्दपुर छूट गया, ऐश्वर्य नहीं रहा, प्यारे और पुत्र शहीद हो गए, वन वन वैरी है, ८० घंटे अन्न पानी नहीं मिला, नंगे पैर हैं, कटक का पैदल सफर किया है, साथी साथ में एक नहीं। जिनके लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया, वे लोग मानों कहते हैं, तुम्हारा मगरूर सिर छिपाने के लिए हमारे पास कोई छत नहीं, तुम्हारे निश्चिन्त बैठने के लिए दो फुट ज़मीन नहीं, कौन तुम्हारी ख़ातिर तुम्हारी तरह ख़ानाबदोश हो और पातशाह के कहर तले आये?'

हे गुरू गोबिन्द सिंह। आ दिल तोड़, अब तो उदास और निराश हो, कह पड़ें बरबाद हों दुखिये, मैंने क्या लेना है। आ तृष्णा के अधीन, अभी भी राजभोग जागीर मिल जायेगी, क्यों ख़ाना बदोश, घूमते हो? पर हाँ, यह आवाज़ कलग़ीधर के कानों को कायर की आवाज़ है, उसकी अटल, अचंचल, अमिट, अन्नत् सुरत बेपरवाह है। दो तीन मुसलमान आते हैं, सेवा अर्पित करते हैं और पूछते हैं, हे कुर्बान हो चुके घायल पर पूरे मर्द! अब क्या काम करोगे? तब वह मनुष्य जाति का सिरताज, हो चुके और होने वाले मर्दो का मर्द 'वरियाम अकेला' कहता है–'सिक्खों को लिव दान दूँगा, सिक्खों को अटल क़ौम बनाऊँगा। संसार में एक रूहानी इख़लाकी सीढ़ी छोडूँगा, जो कुछ मेरा बाकी है यह भी सिक्खों पर न्योछावर करूँगा, पर वह अटल बीज, वह जीवन कण जो गुरू नानक लेकर आए, वह अमर अभिलाषा, वह अविचल ज्योति जो गुरू नानक ने जगायी, वह संसार में कायम रखूँगा, इंसान को अलूह़ियत में रंगकर जाऊँगा, मनुष्य को ईश्वरीय मनुष्य बनाऊँगा, कोई ज़ालिम, कोई प्राकृतिक ताकत वाला जाबर, कोई औरंगज़ेब जैसा पाखंडी, बनावटी इख़लाकी मूल्यों उस 'निरन्तर ईश्वरीय लिव' को अब संसार से दूर नहीं कर सकेगा, जिसका कमाल गुरू नानक में हुआ और जो उसने संसार को दान की।

हाँ जी, गुरू गोबिन्द सिंह अभी अपने निश्चित प्रण से, अपने आदर्श से, अपने ऊँचे फ़र्ज़ से नहीं टला है, यह फ़र्ज़ का कमाल है, यह रूहानियत है, जिस रूहानियत को समझना कठिन है।

(प्यार का कमाल)

दुनिया के महापुरुष दुनिया को प्यार करते आये, कलग़ीधर ने भी प्यार किया, पर किसी ने यह कमाल नहीं किया–गोदी लिए पुत्रों पर से कोख जाए वार दिए, प्यार की अटारी पर कलग़ी वाला पहुँचा।

देखो–बुद्ध जी संसार के 'बुद्धिदाता' त्यागी महात्मा एक चबूतरे पर खड़े नेक आचरण और निर्वाण की शुभ मति दे रहे हैं।

शंकर जी दार्शनिक सन्यास धारण करके खड़े एक ब्रह्म की शिक्षा दे रहे हैं।

ईसा आप गृहस्थ से उपराम, पहाड़ी पर खड़े हमें आपस में भाई होने का उपदेश दे रहे हैं। उनके शिष्य पौलूस जी उनकी मज़ार पर खड़े कह रहे हैं इस महात्मा की मौत पर यकीन करो कि जो मरे हुओं में से जी उठा, आप जी उठोगे।

मुहम्मद जी अल्लाह के रसूल कहे गए कभी पर्वत से कभी जंग के मैदान से नेक कर्मों की सुमति देते और ईश्वर की पुकार सुनाते कुछ दूरी पर सिफारिश करते दिखाई देते हैं।

कृष्ण जी गीता की वीणा अलापते आकाश में खड़े हैं, इंसान को निर्मोहता, बेपरवाही, द्वन्द्वों से छुटकारा पाकर उनके पीछे-पीछे गगन परवाज़ की दिलखींच बाँसुरी सुना रहे हैं।

पर गुरू गोबिन्द सिंह दूरी पर नहीं रहा इंसानों में आ खड़ा हुआ है, हाँ, हमारे में बैठ गया है, इंसान को गोदी में डाल लिया है, पिता बनकर हमें प्यार दे रहा है, हमारी मैल धो रहा है। हम रोते हैं तो छाती के साथ लगाता है, कहता है 'पुत्र! मैं पिता तुम्हारे सिर पर हूँ।' लोरियाँ देने के लिए हमें साहिब देवां माता देता है। जब अमृत छकाते हैं हमारा बुद्धि दाता, हमारा दर्शन दाता, हमें मुक्ति दाता, हमें सिफारिश दाता, हमें निर्मोह की भेंट दान करने वाला दाता दूरी पर खड़ा होने वाला ईश्वर नहीं दिखाता। हम में हमारे जैसे होकर हमें 'पुत्र' बनाते हैं, हमें दिलासा देते हैं, हमारे दुखों पर रोते हैं, हमारे जले दिलों और मरे मनों को अमृत से ज़िन्दा करते हैं। हमें केवल 'मति सुमति' ही नहीं देते, हमारे दुखों का दारू हमारे छोड़ जाने में ही बताकर, हमें आकाश में नहीं बुलाते। हाँ, हमारे छोटे-छोटे दुखों को सच्चे पिता की तरह दूर करते हैं। हम कमज़ोर इंसान हैं, इंसानी मंडल में भी हमारी इंसानी पीड़ाएँ हरते हैं, पिता जो बन गये। खिलौने भी ले देते हैं, डरावनी बला को भी मारते हैं, हौवा का भय भी दूर करते हैं, सख्त उस्तादों से भी रक्षा करते हैं, गुलामी और परतंत्रता के दुख दूर करते हैं। ज़ालिम के साथ हमारी ख़ातिर लड़ते हैं, सुख की रोटी, सुख का वास, सुख के साथ रूहानी जीवन पालने के लिए चारों अपने जन्मे पुत्र मरवा देते हैं। पर 'इंसान' को हाँ जी (Humanity) को तथा गोदी डाले पुत्र को इंसानी ईश्वर बनाकर प्यार करते हैं। इंसान गुरू गोबिन्द सिंह के प्यार को ईसा, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध, शंकर सब के प्यार की तुलना में जल्दी समझ सकते हैं। हर इंसान माता पिता के प्यार को (वात्सल्य प्यार को) जल्दी समझ सकता है; तभी तो गुरू गोबिन्द सिंह दिलों के अत्यधिक नज़दीक है, हमारी उस तक पहुँच औरों से आसान है। बताओ कौन है जिसने हमारे बीच आकर, हमारे घर घुसकर, हमें गोद में लेकर पिता बनकर प्यार किया? गुरू नानक गुरू गोबिन्द सिंह का इंसान के साथ यह प्यार का रिश्ता अनोखा है, यह इंसान के साथ प्यार का कमाल गुरू गोबिन्द सिंह का सबसे ऊँचा शिखर का कमाल है, हम पुत्र हैं वह पिता है।

पहले शरीर में शिवनाभ लंका वाले की जाति, जन्म, कुल, देश से अत्यधिक दूरी पर पड़ी शहज़ादी को गुरू नानक कहता है:-

'गाछहु पुत्री राज कुआरि।।'

दशम शरीर में अमृत छकाकर-

नाई, छींबे (दर्ज़ी), जट्ट (जाट), खत्री (क्षत्रिय), ब्राह्मण सब को कहता है 'मेरे पुत्रो' नहीं नहीं रंगरेटे को कहता है–

'मेरे बेटे, गुरू के बेटे' बस इंसानी प्यार का कमाल हो गया। पहले शरीर (जामे) में फ़रमाया--

'बलिहारी कुदरति वसिआ।।' फिर दूसरे जामें में कहा, 'एहु जगु सचै की है कोठड़ी।।' दसवें जामें में आ बताया कि, पुत्रो! पूर्ण इंसान बनो, भागो न, डरो न, बहो न, उदास न होओ, भय न खाओ, मर्द बनो, मेरे पुत्र बनो, मैं पिता होकर लाड कराऊँगा और सिखाऊँगा, देखो वह ईश्वर दूर नहीं; देखो: वह 'जत्र तत्र दिसा विसा होए फैलिओ अनुराग।।' हाँ वह कुदरत में, दिशा बिशा* में प्रेम होकर फैल रहा है।

१. आप दूर खड़ा गुरू नहीं, गोदी लेकर छाती से लगाने वाला पिता बना।

२. अपना ईश्वर हमें आकाशों में, अमोहों में केवल बताकर दिल तोड़ने की जगह हमें, जहाँ तहाँ देश वेश हर स्थान में प्रेम रूप' बताया। अपने नज़दीक होने की तरह ईश्वर भी नज़दीक कर दिया।

३. पिता बनकर हमें आपस में भाई बनाया। 'कौमी प्यार' से आपस में इकट्ठा होने से एक पिता के पुत्र होकर 'भ्रातृ प्यार' के साथ इकट्ठे होना और बात है, यह और निकटता का प्यार है।

'ईश्वर के ज़हूर+ वाले सारे बड़े' इंसान के साथ प्यार करते रहे हैं। ईश्वर का यह ज़हूर कलगियों वाला अरशो से उतर कर 'इंसान' के जितना नज़दीक से नज़दीक आया है, और कोई ज़हूर इतना नज़दीक नहीं आया। यह ज़हूर कामिलों का कामिल है। इसलिए सज्जनों। आज:-

लिव में जागो और जी उठो, कण मात्र जीव में बसाओ, फिर इस ईश्वरीय कणं को जलाओ, इसको बुझने न दो, कोई वैर, कोई भय, कोई मोह, कोई तृष्णा इसको न मिटायें। आपने वैर में नहीं जाना, आपने नफरत में नहीं जाना, ऊँची सुरत में रहकर अपनी लिव की रक्षा करो, चढ़ती कलाओं में रहो। संसार के प्रत्येक काम में जाओ, करो, पर ऐसे करो, जैसे कलग़ीधर ने कर दिखाया हे। कलगियों वाले का सिर कमालों के कमाल यह है। 'गोबिन्द सिंह जी गुरू' है, गुरू का काम मुर्दे ज़िन्दा करना है, जीव दान देना है, इनकी लौ अनन्त में लगानी है, जो उन्होंने कर दिखायी। सतगुरू का जीवन बताता है कि वह:- 'अवतार थे, पैग़म्बर थे, सुधारक थे, योद्धा थे, नीतिवेता थे, राजा थे, कवि थे, कला कौशल–कोमल उनरों@–में प्रवीण थे, कौम रचने वाले थे, गुरूमुख फकीर थे और हमारे प्यारे पिता थे और हैं, जी युगो युग हैं।#

---

* पंद्रह निमेष का समय।

\+ प्रकट होना।

@ Fine arts.

\# सतगुरू जी के इन सारे कमालों पर इसी संचय के 'कीर्ति मूर्ति' के शीर्षक अधीन सविस्तार हाल दिए गए हैं।

आप जगत में वाहिगुरू का हुक्म व्यवहार में ले आये, मर्दों के नमूने जो तैयार थे, जिसको सिक्ख कहते थे, उनको शस्त्रों के सामने शस्त्र पकड़कर भी 'इंसान और मर्द' रहना सिखा दिया, 'तृष्णा न रहे अंदर' और अंदर हो जाये चढ़ती कला। चढ़ती कला अन्दर का वह रंग है जो लगता अहम् है, पर अहम् नहीं होता, वह सच्ची ऊँचाई होती है। इस ऊँचाई पर अंतर टिक कर काम करता है, यह ऊँचाई नाम से प्राप्त होती है, नाम बिना जो ऊँचाई है अहम् है। इस ऊँचाई वाला जगत को नीचे देखता है, यह आप ऊँचा पवित्र अलग होता है, अलग घृणा से नहीं, पर ऊँची सूरत वाला होकर। इसके अंदर सफाई, प्रकाश, सच्ची प्रसन्नता होती है, पूर्ण इंसानियत इसमें होती है, पूर्ण प्रेम बाँटता है, साथ में पूर्ण बहादुर होता है। गुरू गोबिन्द सिंह जी का अपना कथन है–

जागत जोति जपै निस बासुर एक बिना मन नैक न आनै॥
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गोर मड़ी मट भूल न मानै॥
तीरथ दान दइआ तप संजम एक बिना नहि एक पछानै॥
पूरन जोत जगै घट मैं तब खालिसा ताहि निखालस जानै॥१॥

इस नमूने के आदमी को गुरू जी ने अमर किया और इसको कहा, सिक्ख। इसको कहा कि यह 'सवा लाख' से बढ़िया है। जो इस नमूने का मर्द है, वह लाखों पर भारी है। लाखों उस पर भारी नहीं है, उसके मन से जन्म जन्म का झूठा धर्म, थोथा कर्म और दिखावे के इख़लाकों का मोहिनी मंत्र वैराग्य की बूटी से टूट चुका होता है और नाम से उसमें एक सच्ची ऊँचाई आ जाती है। इस ऊँचाई पर खड़ा वह सारे काम करता है। इस ऊँचाई पर उसकी ऊँची दृष्टि है, और उसके अंदर जल रही ज्योति से उसकी मर्यादा और उसकी इंसानियत दिखाई देती है। वास्तव में वह मन के उस ठिकाने पर होता है जहाँ जाकर दुनिया को देखने की दृष्टि का नुक्ता ही बदल जाता है। उस नुक्ते को कुछ नाम रख दो– पहुँचना मर्द के जीवन का प्रयोजन है। जो इस नुक्ते पर पहुँचा है, मौत से नहीं डरता, मोह माया उसको बाँधती नहीं, सच उसके अंदर बाहर है, भय देता नहीं, भय मानता नहीं, दुख को समझता है पर सुखी और रस में रहता है, मस्त है और प्रसन्न रहता है। वह प्रेम की सुगन्ध देता है, फिर ऊँचा ऊँचा रहता है और बसता है। अहम वाला सचमुच अंदर से ऊँचा नहीं होता, पर वहम बाँध लेता है कि मैं ऊँचा हूँ। चढ़ती कला वाला अंदर से ऊँचा होता है, क्योंकि वह ऊँचे–अनन्त–के आकर्षण में होता है। इसके धर्म, कर्म और इख़लाक इस ऊँचाई से उपजते और अपने ऊँचे नियमों में चलते हैं। मुर्दा दिलों, सड़ रहे और सड़ांध छोड़ रहे शवों की बदबू इनके लिए धर्म कर्म नहीं बाँधती, कैदियों की खींची लकीरें इनके लिए रास्ता नहीं बाँधती। ये पक्षियों की तरह सीधे रास्ते उड़ते हैं और जिस लकीर पर उड़ते हैं, वही रास्ता होता है, और ये हर चक्कर में उड़ान की लकीर नई डालते हैं, इसलिए कलगियों वाले गुरू गोबिन्द सिंह जी ने इनका नाम 'विहंगम' भी रखा था। विहंगम–पक्षी, जिसकी गति हवा में हो।

विहंगम के तीन सम्बन्ध इस प्रकार कहे जा सकते हैं:-

१. **अपने आप से:** तृष्णा जीती हुई, अन्दर से ऊँचाई प्राप्त, नये मज़बूत अरोग्य, सावधान, स्वतंत्र, अभय।

२. **अनंत से:** अंतर से पर को अनंत की ओर खिंचे हुए, लिव में लगे हुए।

३. **'अंत ओर' (बाहर को):** शुद्ध सत्य की ओर नज़र और दुख सुख लालच लोभ तो अलिप्त, न कमज़ोर, न बलवान, आवश्यकता पड़ जाये तो जान देने को हाज़िर, सभी के भले में।

हाँ जी, इनका हर दिखाई देती वस्तु–जीव, मनुष्य के साथ झुकाव फ़ाइली (=साक्षी) होता है जैसे फणियर साँप का जब फन फैला और खड़ा हो तो उसके शरीर का रुख़ दवने वाला, झुकने वाला, नीचे लगने वाला–मफऊली नहीं होता, उसका रुख़ शरीर का आनबान साक्षी रूप (फ़ाइली सूरत) का होता है, या कहो कि दृष्टा पद में टिके हुए वाला रुख़। इस तरह इस मर्द के अन्तर का रुख़ फ़ाइली होता है, इसलिए सवा लाख मामूली इंसान उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता, सवा लाख पर वह भारी होता है, इस फाइली रुख़ के कारण सतगुरू ने अपने 'नमूने के मर्द' को 'सिक्ख' 'विहंगम' जहाँ कहा है वहाँ भुजंग (फणियर साँप) भी कहा है। भुजंगी कहने में साँप के दृष्टापन के रुख का दृष्टांत दिया है, साँप के स्वभाव का नहीं। साँप के अंदर ज़हर है, उसका इरादा कष्ट देना होता है। सिक्ख के अंदर अमृत है उसका इरादा सुख देने का होता है। केवल रुख़ उस किस्म का होता है कि जिसने दूसरे की चोट खानी नहीं, कायर नहीं होना।

शेर जैसे अभय है, उसके शरीर की बनावट, उसका देखना, खड़े होने का ढंग, हर पदार्थ की ओर उसके चेहरे और आँखों का रूख़ फ़ाइली है, सिक्ख का रूख़ भी इसी तरह फाइली (दृष्टापन) वाला होता है। इसलिए कलग़ियों वाले ने अपने इस 'नमूने' के मर्द को 'सिंह' कहा है। शेर का फाड़ खाना अथवा जंगलीपन नहीं ग्रहण किया, पर उसका अभय रूख जो हर दिखाई देती वस्तु के साथ वह रखता है। शेर की तरह फाड़ खाना नहीं, पर अभय होना। सच्ची वीरता, सुखदायी वीरता, इसी रुख़ से उपजती है। जीवित इख़लाक इसी से जन्म लेता है। रूह वाला धर्म इसी से प्रकाशित होता है। शानदार कर्म, सज़ा फल से खाली कर्म इसी रुख़ के पैदा किए हैं। सात आठ वर्ष का बच्चा दीवार में चुना जा रहा है, कष्ट हो रहा है और मौत सामने खड़ी है, पर इस रुख़ का कारीगर होने के कारण हज़ारों फौज़ों, तोपों, बंदूकों, दबावों, धमकियों के आगे नहीं दबता। हाँ जी, इस रुख़ (झुकाव) वाला व्यक्ति प्राण देते समय अपने ईश्वर की याद में होता है। देखो इसी नमूने का एक मर्द उठता है*, और गुरू गोबिन्द सिंह जी को कहता है, देखो गुरू जी। मेरी और आपकी शक्ल एक है, कलग़ी ज़िगा मुझे दो, आप जाओ, अभी आपका काम बाकी है। हाँ जी मौत के ख़तरे वाली जगह से सतगुरू जी को मान, दावे के प्यार के साथ ज़ोर दे कर भेज देता है, आप पातशाही पोशाक पहन कलग़ी ज़िगा लगाकर उनकी जगह बैठ जाता है, पर उसी सारे रंग में बैठा दुश्मनों के हाथों चिंदी चिंदी करके उड़ाया जाता है, माथे बल नहीं पड़ता, चेहरे शिकन नहीं आती, अंतर जो किसी ऊँचाई पर है, अभय है, अंतर का रुख़ बाहर के व्यवहार से–चाहे वह राज्य है, चाहे दुख और क्लेश–फ़ाइली रुख़ का है। अब फिर क्या? शेर की तरह फ़ाइली डौल है, फणियर की तरह वह फ़ाइली अकड़ी हुई गर्दन का चढ़ाव और रुख़ है, चाहे चिंदी चिंदी करकें उड़ाया जा रहा है।

* चमकौर में से निकलते समय भाई संत सिंह या संगत सिंह ने यह कुर्बानी की थी।

गुरू जी का जंग जानदार शरीरों का फ़ाइली रुख़ का एक करिश्मा था, कोई तृष्णा में डूबे हुओं का चक्करदार गोरखधंधे का सुलझाव तो नहीं था कि औरंगज़ेब की तरह पिता और पिता की औलाद के दूध पीते बच्चे से भी भय आ रहा है और सलामती उनकी क़ैद या कत्ल में दिखती है और कत्ल करने के लिए भी हज़ार मनसूबे की आवश्यकता है, पिता पर भी भरोसा नहीं, और माँ पर भी यकीन नहीं, पुत्री पर भी शक़ है, और पुत्र पर भी संदेह है।

कलग़ियों वाले का 'मर्द का नमूना' हाँ जी, वह किस्म जो उसने आदमी की बनायी यह थी कि एक सिर माँगते हैं, पाँच सिर देने भागे आते हैं। एक को कहते हैं कि बंदूक का निशाना बनने के लिए आओ, जितने सुन पाते हैं सिर देने को भागे आते हैं। फिर सारे युद्धों में इंसानियत है:- सिक्ख पानी पिलाता है, वैरी और मित्र सबको पिलाता जाता है। इंसानियत के आदर्श का व्यक्ति है। एक मलहम लगाता है अपनों को भी शत्रुओं को भी। दुश्मन कहता है: मैं शरण हूँ, सिक्ख की खिची तलवार उधर ही झिझकती है। खिंची तलवार कभी किसी योद्धे से नहीं रोकी गयी, पर सिक्ख रोक लेते रहे हैं। औरतें, बीमार, बच्चे, बूढ़े, निर्बल शत्रु होने पर भी दुखी नहीं किये जाते, वैरियों के साथ नफरत, वैर, वैर के नुक्ते से जंग नहीं होता। बात क्या कलग़ीधर ने जो कुछ हुक्म लेकर आये थे, कर दिखाया। उन्होंने मर्द पैदा करना था, वह कर दिखाया, और उस नमूने का मर्द एक आध नहीं, हज़ारों बनाकर, परख करवाकर, मौत की यज्ञवेदी पर चढ़ाकर, दिखाकर साबित कर दिया कि:-

यह चढ़ती कलाओं वाला
तृष्णा रहित
मर्दानगी में कामिल
इंसानियत में सम्पूर्ण,
सिक्ख है अगर,
भुजंगी है अगर,
सिंह है अगर,
विहंगम है अगर,
पर

यह मर्द तो बनता है, अगर खोखले धर्म का जादू टूटे। वह टूटता है।

नाम और अभ्यास द्वारा।

फिर प्राप्त होती है अन्दर ऊँचाई, अनंत के साथ निरन्तर लिव और बाहर जगत के साथ फ़ाइली रुख और व्यवहार प्यार उपकार का, ऐसे बन जाता है कलग़ियों वाले का

'नमूने का मर्द'
'सिंह'
चढ़ती कलाओं वाला गुरू का लाल।

१७ प्रीत-तार पिरोये गुरू-सिख*

('गुरू'! सदके! इस नाम के)

बताओ जी 'गुरू' किस को कहते हैं?

पूछो भाई, पूछो, बार-बार पूछो, पूछने पर सभी लोग यह कहते हैं, भई 'गुरू' का-

१. एक अर्थ है अँधेरे को दूर करने वाला।

२. दूसरा अर्थ है बड़ा।

३. तीसरा अर्थ है शब्द का दाता+।

४. चौथा अर्थ है 'उस्ताद' शिक्षा दाता।

५. पाँचवां अर्थ है 'मुरशिद' (सन्मार्ग दिखाने वाला)

६. छठा अर्थ है पैगम्बर।

७. सातवाँ अर्थ है अवतार।

८. आठवाँ अर्थ है, 'खुदा', 'ईश्वर'। पर भाई जो सिक्ख है, उसके अन्दर गुरू का अर्थ क्या है?

जीवात्मा जी! उसके अंदर अर्थ है:-

एक सबसे प्यारा, प्यारी चीज़ों और प्यारों से अधिक प्यारा@ एक समझ की गहराइयों से भी गहरे स्थान पर बसता सबसे ऊँचा, सच्चा पवित्र

प्यारा, मीठा लगने वाला,

सचमुच अंदर बसता अस्तित्व@,

अंतर 'बसता' मीठा अस्तित्व।

जीवात्मा जी! फिर नेत्रों में बसता मीठा अस्तित्व।

जीवात्मा जी! फिर जिधर जिधर नज़र जाये उधर उधर बसता अस्तित्व।

आहो नी#, रहिंदा नी
हरदम रहिंदा
अक्खीआं दे साहमणे$

---

* यह प्रसंग १४ पौष संवत् गु॰ ना॰ सा॰ ४४८ (२८ दिसम्बर १९१७) पर गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ 'ग्री = शबद' धातु से।

@ मापे हेत न पुजनी सतिगुरू हेत सचेत सहायी। शाह विसाह न पुज्जनी सतिगुरू शाह अथाह सुनायी। साहिब तुल न साहिबी सतगुरू साहिब सचा साईं। दाते दात न पुज्जनी सतिगुर दाता सच्च दिड़ायी। वैद न पुज्जण वैदगी सतिगुर हउमै रोग मिटायी। देवी देव न सेव तुल सतिगुर सेव सदा सुखदायी।
(भाई गुरदास जी)

\# हाँ री।

$ भैरवी या योग।

जिस को 'सिख' ने मनुष्य शरीर में देखा या सुना था* और जिसके जागृत ज्योति सदा सलामत अस्तित्व के होने का शंका रहित निश्चय उसकी आत्मा में इस प्रकार का है कि वह अस्तित्व उसके अंदर–

आहो नी रहिंदा नी
हरदम रहिंदा
मेरे नी अंदरे।

झड़ी लगाये रखता है और वह इस 'संगीत लय' में रहता है:-

गुरू गुरू गुरू करि मन मोर॥
गुरू बिना मै नाही होर॥

अच्छा जी! सिक्ख किसको कहते हैं?

जीओ+! पूछो! हाँ जी, पूछने पर कहते हैं–

१. शिक्षा लेने की इच्छा वाला, सीखने वाला।

२. शिक्षा ले रहा, विद्यार्थी।

३. शिक्षा ले चुका और सीखकर शिक्षित हो गया शिष्य।

४. मुरीद, चेला।

५. पैग़म्बर की पैग़म्बरी और अवतार के अवतारीपन का कायल, मोमिन, व्यक्ति, जन।

६. पंजाब में बसती एक सिक्ख कहलाने वाली कौम का आदमी।

परन्तु भाई। जैसे 'सुहागिन' कहो तो दिल में ख़्याल आता है कि इसका कोई पति होगा, प्रजा कहो तो उसका कोई राजा होगा, इस तरह सिक्ख कहो तो उसका कोई गुरू होगा। आओ इस गुरू से पूछें, गुरू जी! आपके अंदर सिक्ख का क्या अर्थ है? तो देखो गुरू के अंदर#:-

१. सारे मनुष्यों से प्यारा।

२. अपने कुटुम्ब से प्यारा।

३. अपने (आत्मज =) पुत्रों से भी प्यारा।

एक इंसान जो, जो अदृश्य में विश्वास रखता है, परन्तु 'दिखाई देते' 'बसते' संसार में सुन्दर तरीके से विचरण करता अस्तित्व है।

हाँ जी, ऐसे इंसानों को गुरू कहता है:-

मो ग्रिह मै मन ते तन ते
सिर लौ धन है सभ ही इनही को।

जीवात्मा जी! जिसने स्वर्ग में भी जाकर अपने सिक्खों को भुलाया नहीं, ऐसे गोदी लिए कि फिर निकाले ही नहीं, उसके अंदर सिक्ख यह स्थान रखता है।

---

* गुरू नानकु जिन सुणिआ पेखिआ से फिरि गरभासि न परिआ रे॥ (सोरठ म॰ ५)

\+ आदरसूचक सम्बोधन।

\# नानक सतिगुर सिख कउ जीअ नालि समारै॥ (गउड़ी म॰ ५)

अब आपने देखा 'गुरू' और फिर देखा 'सिक्ख' दोनों में नज़र जमाकर देखो, आपको दिखाई देगा कि 'प्रीत-तार' लग रही है।

हम वाहिगुरू की 'सुरत-तार' से टूटे पड़े थे अर्थात हम 'प्रीतकेन्द्र'* की प्रीत-तार से अलग हुए-हुए थे। आज मीठे प्यारे ईश्वर सँवारे ने आकर हमें फिर प्रीततार में पिरो लिया तो देखो क्या हुआ कि हम मरे जी उठे, प्राणदान पाकर जी पड़े।

जनम मरन दुहहू महि नाही जन पर उपकारी आए॥
जीअदानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैणि मिलाए॥२॥ (सु॰ म॰ ५)

इस प्रकार हे सज्जन! 'गुरू-सिक्ख' का नाता व्यक्तिगत, अपना, या निज का नाता है। जैसे गुरू शिष्य का एक नाता है जो केवल शिक्षा मात्र दे देने और ले लेने का एक दूरी वाला नाता है, पर पिता पुत्र का नाता इस तरह की दूरी वाला नहीं, वह निज का निजी नाता है। इसी तरह 'गुरू शिष्य' का नाता है। हम उसके गोदी पड़े बच्चे हैं, नहीं नहीं उसने अपने उत्पन्न किए हमारे ऊपर से न्योछावर कर दिए, तब तो हम उसको पुत्रों से अधिक प्यारे हैं।

सज्जनों! दुहाई है वह केवल अवतार नहीं, जो कहता है:-

ऐ माया में भूले लोगो! अज्ञान से बचो और आत्मा को सँभालो और कैवल्य (अलग) हो जाओ।

वह केवल रसूल नहीं जो कहे:- ईमान लाओ मुझ पर और मेरे खुदा पर, तब तुम दोज़ख की आग से बचोगे।

वह केवल शिक्षा दाता नहीं जो कहे:-अपनी करनी करतूत ठीक करो, नेक बनो, नेकी ही तुम्हारी रहबर और निर्वाणकर्त्ता है।

केवल ऐसे ही वह दाता हमारे बीच नहीं था आया, उसने तो हमें गोद ले लिया था। उसको हम पैदा नहीं हुए थे, पर उसने अमृत तैयार करके हमें आप छकाकर अपने साथ हमें जोड़ लिया, नहीं नहीं, एक कर लिया, पुत्र बना लिया, नहीं जीवात्मा जी। उस रिश्ते का हमारी ज़मीनी किसी बोली में कोई नाम नहीं कि जिस 'रिश्ते' पर से सगे पुत्र भी न्योछावर कर दिए जाते हैं। हमारा उसके साथ वह रिश्ता है जो पिता पुत्र से भी नज़दीक का है, जिस रिश्ते पर से पुत्र भी बलिहारी जाते हैं। वह रिश्ता ऊँचा है और इतना गहरा है कि दिलों की तार के साथ तार खड़कती है और बाहर जुबान के लिए वह इतना बारीक हो जाता है कि उसको अदा नहीं कर सकती। इसलिए भाई। हमारा रिश्ता केवल 'अध्यापक और शिष्य' वाला शिक्षा मात्र का रिश्ता नहीं, हमारा रिश्ता 'प्रीत-तार पिरोया' कोई अकथनीय निज का रिश्ता है। हम गुरू के हैं गुरू हमारा है। समय हमारे सम्बन्ध में कोई दूरी नहीं, शरीर अशरीर हालतों की हम में कोई जुदाई नहीं हम उसके हैं, वह हमारा है:-

गुरू मेरै संगि सदा है नाले॥
सिमरि सिमरि तिसु सदा समाले॥

---

* वाहिगुरू।

हम रोते थे, उसने आकर हमारे नेत्र पोंछे। हम जुल्मों तले चूर हो गये थे, उसने आकर निकाला और मलहमें लगायीं। हमारी सुरत की पराजय हो चुकी थी, उसने फिर से जीतकर स्वतंत्र बनायी, वह अपनी आत्म मौज़ का आनन्दी हमारा साझेदार हुआ, उसने हमारे सदियों के दुख दूर किए। वह दुनिया में हमारा उस समय सहायक हुआ, जिस समय राजा कि साधु, संत कि वीर, शास्त्रवेता कि शस्त्रवेता, संयासी, योगी, जपी, तपी कि बाहूबल वाला कोई हमारा न बना। वह उस समय हमारे दुखों का मरहम बना, जिस समय रिवायत है कि शिव जी छिप गए और मंदिरों से आवाज़ आये कि—आनंदपुर जाओ।

ओय! हमारी आँखों के सामने बहू बेटियाँ छीनकर कै़द में डालकर काबुल भेज दी गयीं। हम रो रहे हैं, बच्चे हमारे बिलख रहे है, बहू बेटियाँ विलाप करती ले जायी जा रही हैं। देखो सज्जनों। ज़रा आँखों के आगे यह नज़ारा लाओ। एक ओर माता और पिता दहाड़ें मार रहे हैं, आगे खड़े बच्चे गुहारें लगा रहे हैं, दूसरी ओर माताओं और बेटियों को भेड़ों की तरह तलवार के कोड़े से हाँक कर ले जा रहे हैं और वे कुररी की तरह विलाप कर रही हैं। पास एक छोटे टीले पर एक ब्रह्मज्ञानी, महात्मा अपरस बैठे वीणा बजा रहे हैं और देखकर आँखें फेर लेते हैं कि अगर मैं नीचे गया तो मेरी अवस्था बह जायेगी और मैं जंगली लड़ाकू पशु हो जाऊँगा।

एक और टीले पर एक योगी समाधि स्थित बैठे हैं, रोने की आवाज़ से समाधि उचटती है, पूछते हैं 'मातृ लोक में क्या घट रहा है?' तो कोई ग़ैबी आवाज़ कहती है, आप पर्वतों पर बैठो हो और मातृलोक तबाह हो रहा है, पर वे सिद्ध पुरूष कहते हैं 'बाबा रे हम ज़ख्म खायें, लड़ें तमोगुणी हो जायें, हमको आदमी से बू आती है। हा! हा रे!'

एक और पहाड़ी सी है, वहाँ एक चित्रकार बैठा है, विलाप से अपनी मग्नता से उखड़ता है, कहता है, क्या हो रहा है? देखता है तो आँख घुमा लेता है, कहता है जाने दो, कुछ तो कर सकते नहीं। अपना सुख कौन गँवाये।

वाह-वाह हिन्दुस्तान तुम्हारा रूहानी ओज! ज़ुल्म होता है, अधर्म होता है, पाप होता है और तुम्हारे रूहानी लोग उस पाप को दूर करना धर्म नहीं समझते।

देखो, एक और खुदा के 'प्रेम रसों' में बँधा उसका बंदा (व्यक्ति) आनन्द से आंनदपुर, एक ऊँची ऊँचाई पर बैठा वीणा, कविता, समाधि, स्वर्ग की और कोमल सारी कलाओं का कलावान भी यह दुख देता है, उसकी रूहानी कला कहती है—देश की आज़ादी गयी, धर्म की आज़ादी* छीनी गयी थी, अब गृहस्थ की पवित्रता भी साथ गयी, बहू बेटी की लाज भी नहीं रही। वह उठता है सिमरनी गले में डाल देता है, सिमरन अंतर में पिरो लेता है और पेशक़ब्ज़ (कटार) पर हाथ डाल लेता है, डाँटकर, ललक कर शेर की तरह भभककर बिजली की फुर्ती से तलवार चमकाता आ खड़ा होता है और कहता है: 'खड़े हो जाओ ज़ालिमो। तुम्हारा कोई हक़ नहीं परायी औरतों पर।'

---

* राजा का प्रजा के धर्म में दख़ल देना धार्मिक आज़ादी को छीन लेना है, धर्म धारण करने में प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है।

देखो उसकी तलवार आसमान में चमकती है और उसके ज़िन्दा किए जवान जा पड़ते हैं और सारी रोती कुरलाती कुररियों को लौटा लाते हैं। एक एक कुररी (यहाँ कुररी शब्द दुखी औरत के लिए प्रयुक्त हुआ है) का आँसू पोंछते हैं, दिलासा देते हैं, फिर पते पूछकर हर एक माँ को विलाप करते बच्चे के आ गले मिलाते हैं; हर एक रोते पति को स्त्री ला देते हैं, हर भाई की आँखों के आगे बहन ला खड़ी करते हैं। हर बेटी को माँ के गले से लगाते हैं। वे विलाप करते मज़लूम उस समय एक गुलाब का खिला चमन बन जाते हैं। वह तलवारधारी–संयासी कहता है:-

हे दुनिया! यह भी मेरी एक रूहानियत है। यह जंग नहीं, पर जंग मिटाने का शस्त्र है।

ऊपर स्वर्ग पर ईश्वर जी खुश हो रहे हैं और देवगण फूलों की वर्षा कर रहे हैं और कहते हैं–

ख़लक ख़ालक की जानके ख़लक दुखावै नाहि।
खलक दुखे नंदलाल जी खालक कोपै तांहि॥

पुनः–

पा दुख, खलकत रक्खीआ, मेरे पुतर! आप।
सदके बचड़ा तुद्ध तों, तूं पुत्तर मैं बाप।

देखो अपने छोटे टीले, टीले और पहाड़ पर तीनों रूहानी आदमी काँप रहे हैं कि हैं इस आदमी ने, जो हमने देखा था, अवतार होकर आया है, रक्त में हाथ सान लिए हैं, यह तो पता नहीं कौन है? और उधर स्वर्ग से अज्ञात आवाज़ बोल रही है:-

'यह भी रूहानियत है, यह भी समाधि है, यह भी कमाल है।' 'दिल तो मेरे साथ अटूट लगा रहे, हाथ सृष्टि का बोझ हरण करें, यह रूहानियत का कमाल है।'

सज्जनों! परख की ये ऊपर वाली तसवीर किसकी थी? साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की, देखा आपने?

रिखी, गुनी, तपी हठी,
जती, सती, सिद्ध साध
जोगी ते जंगम कोई
सानूँ ना सी अहुड़िआ।
फड़े जाईए चिड़ीआं वांगू,
बद्धे जाईए बिनां पाप,
मारे जाईए बिनां दोस,
घर घाट चउड़िआ।
ओस वेले धरा नाथ
बडे लोग चुप्प भए
मंदर नाथ मंदरां तों
कोई नाहीं दउड़िआ।

इक्को श्री गुबिन्द सिंह
सच्चा आलम वेता गुर
दुखी दीन प्रजा ताईं
इक्को एहो बहुड़िआ।

गुरू गोबिन्द सिंह जी वैरागी थे, संसार में आना नहीं चाहते थे, आकर यहाँ पकड़ नहीं खाई।

चित न भयो हमरो आवन कहि॥
चुभी रही स्त्रुति प्रभ चरनन महि॥

ये उनके अपने वाक्य हैं, देखो उनकी सुरत प्रभु चरणें में चुभी रही, गड़ी रही। यह रंग अंदर रखकर उन्होंने दुनिया की पीड़ा का हरण किया और गुरू नानक का जीवन सिपाही जीवन में भी पूरा करके बताया:

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगायी नैसाणे॥
सुरति सबदि भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥

सज्जनो! जिस सतगुरू ने इतना प्यार किया उसका हमारा सम्बन्ध हम ही जानते हैं, वह रिश्ता निज का रिश्ता है।

दुनिया हमारी आज कल की गिरावट में भी परमार्थ का झुकाव देख रही है। हमारा यह झुकाव—सारा परमार्थ—इस 'गुरू प्रेम' का फल है। हम गुरू जी की 'गुरूकला' से प्रीततार के साथ जुड़े हुए ऊपर को खींचे जाते हैं, पर खींच हमें ऊँचा रखती है।

आपको पता है कि एक पुरातन ऋषि कितना महात्मा था, एक परीक्षा आने पर उस सत्कार योग्य महात्मा को कमज़ोरी ने दबा लिया। हँसो न, उसका मज़ाक न करो, हम उससे भी कमज़ोर हो सकते हैं, परन्तु वाहिगुरू के भय प्यार में अभ्यास करो। क्यों वह गिरा, वह तो योग अभ्यासी था? वह तो संयासी था, उसका आदर्श क्या था? सुना उसका ख़्याल यह था:-

'संसार मिथ्या है, किसी भ्रम में आत्मा माया के जाल में फँस गयी है, इससे कैसे छूटे?' मोटे अक्षरों में यह बात है कि 'यह संसार की रचना किसी ग़लती से हो गयी है और रचना सारी दुखी है, दुख पा रही है, यह दुख कैसे हटे? इसलिए उपाय यह है कि रचना ही न रहे। वह कैसे हटे? इस तरह कि त्याग करके अभ्यास करो, जो आत्मा इस मादा (अनात्म) से अथवा चेतन जड़ से अलग हो जाये, अलग होकर चेतन या आत्मा या पुरुष निर्लिप्त हो जाये, किसी के साथ लाग लपेट न रहे।'

दूसरी ओर देखो, कलियुग में एक और महाऋषि हुआ, उसका नाम जोगा सिंह था, उसने भी संसार में दुख देखा था और सुख चाहता था, पर वह 'गुरू के व्यक्तित्व' को 'गुरू मूर्ति' को मिल पड़ा। गुरू ने कहा, बच्चा! एक इंसान की समझ से परे 'अकाल मूर्ति' अस्तित्व है, जिसने अपने किसी रंग में संसार बनाया है। उसको भुलाकर तू दुखी है, उसको हरदम याद रख, कभी उसकी याद अन्तर से न छोड़। उसकी याद में रहकर

उसके हुक्म की पहचान करता जा। दुख से डर मत, दुख दारू है, तेरी तरक्की करेगा। ज्यों ज्यों तू हुक्म पहचानेगा त्यों त्यों दुख घटता जायेगा। तू बीच में ही रह, पर उस प्यारे की याद से न अलग हो। उससे बिछुड़ना दुखों का मूल है। उसके साथ लगे रहो, परन्तु जगत के बीच रहो, तुम ऊँचे हो जाओगे, अंत इसी दुनिया में तेरी आत्मा सुखी हो जायेगी, तुम परम पद पा लोगे।

उसको इन बातों पर निश्चय हो गया। उसने भी अभ्यास किया। अलग होकर काल्पनिक ऊँचाइयों पर जाने का नहीं, पर बीच में ही रहकर, बीच में ही विचरकर, प्यार के स्त्रोत के साथ लगे रहने का। वह क्या कि जबर्दस्ती उस गुरू कलग़ियों वाले के साथ वह प्रीत-तार में पिरोया गया। इस प्यार की एक कशिश लग गयी, वह नाम जपे, साईं को याद रखे, हुक्म भी पहचाने, परन्तु जब कभी भूल होने लगे 'गुरू मूर्ति' आँखों के आगे आ खड़ी हो। इसी समय वह 'प्रीत-तार' जो गुरू में थी, मन को खींच ले और वह ग़लती से बच जाये। ऋषि वाला समय जोगा सिंह को भी आया, पर देखो उसका मन 'प्रीततार' द्वारा गुरू में पिरोया हुआ था, गुरू की मोहिनी मूर्ति आँखों के आगे आ खड़ी हुई। जोगा सिंह को डर आ गया कि गुरू क्या कहेगा और मैं क्या मुँह लेकर प्यारे के पास जाऊँगा? जोगा सिंह की आँखों के आगे 'पवित्रता का आदर्श' जिसको उसने गुरू रूप में देखा और प्यार के नाते से अपना किया था, आ गया। उधर से दास रक्षक बिरदपालक गुरू जी को क़शिश हुई और दास का पतन रोकने के लिए प्रत्यक्ष हो दिखाई दिए। इस कृपा द्वारा उसने तुरन्तु अपनी उस रुचि पर जीत प्राप्त कर ली, जिस पर ऋषि नहीं पा सका था। ऋषि की आँखों के आगे कोई 'आदर्श ज्योति' कोई 'पवित्रता का कमाल' नहीं था, जिससे वह 'प्रीततार' में पिरोया हुआ होता और जो कठिनाई के समय दिली प्रीत के कारण उसके सामने आ खड़ा होता और उसको रोक लेता।

कबीर निगुसाएं बह गए थांघी नाही कोइ।।' (कबीर जी)

जीवात्मा जी! गुरू सिक्ख 'प्रीततार' से पिरोये हुए हैं, गुरू सिक्ख खसम वाले हैं। वे जगत को किसी उपाधि से, किसी ग़लती से, किसी इतफ़ाक से बना समझकर इसको तोड़ने के अभ्यास में नहीं, पर वे अपने सिर पर करतार रचने वाले को देखते हैं वे 'कर्त्तापुरुष' को जानते हैं और उसकी याद में बसते हैं, उनकी आँखों के आगे अनस्तित्व के अर्थों वाली शून्य नहीं बसती। वे किसी अपने मन के वहमी ख़ुदा के 'ख़्याल परस्त' व्यक्ति नहीं। उनकी आँखों के आगे हुक्म मानने, रज़ा पर चलने, साईं को याद रखने और हर तरह पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ-संयासी गुरू गोबिन्द सिंह का आदर्श (Ideal) और सच्चा नमूना मौजूद है। खोखले और दूरी पर खड़े उस्ताद की शक्ल में नहीं, पर पिता से प्यारे, 'प्रीततार' में पिरोये, निजी रिश्ते वाले निकट खड़े* गुरू का आदर्श मौजूद है। सिक्ख के दिल में अगर गुरू के साथ प्रीत न हो, अगर उसका और गुरू का आपसी सम्बन्ध न हो तो ज़रूरत के समय आदर्श उसके नयनों के सम्मुख कैसे आयेगा? ऋषि

---

* सरब कला दीन्हे गुरि पूरै नानक गुरि निसतारिया।। (सारंग म॰ ५)

को मुसीबत के समय अपनी नेकी का ही आसरा था, अपने ख़्यालों की बुलन्दी तक उसका बल था, जब परीक्षा बल से भारी और बड़ी आ गयी, हार गये। जोगा सिंह का भी यही हाल हुआ। इम्तिहान उसकी ताकत से भारी था, पर उसका मन अपने आदर्श से पिरोया हुआ था। यह एक आध्यात्मिक नियम है कि जिससे दिली प्रीत होगी, वह कठिनाई के समय या किसी ग़ैर मामूली भावों के पैदा होने पर अवश्य याद आयेगा। यह भी वैसा ही नियम है कि जिसके साथ आपकी लगातार प्रीत है उसको आपकी खींच जरूर पड़ेगी।

'आख गुआल!
असां मनों ना विसारिआ,
तुसीं किवें न याद करेसो।'

इसलिए अगर यह 'प्रीततार' जोगा सिंह के अंदर न होती तो न उस अँधेरी आने पर 'गुरूमूर्ति' आँखों के आगे आती, न गुरू को उसकी कशिश होती और न उसकी अंदर की रोकने की शक्ति दुगुनी हो जाती और न उसका बचाव होता।

यह सिद्धान्त गुरू सिक्खी का गहरा दिल देकर समझने वाला है। हममें पश्चिमी विद्या की अँधेरी चलने लगी है जैसे पश्चिम इसी अँधेरी अधीन नास्तिकता की ओर चल पड़ा था, उसी तरह हम चल पड़े हैं। जैसे वे सौ डेढ़ सौ साल से टक्करें खाकर किसी और तरीके से कुछ लौटे थे, इसी तरह हम लौटेंगे, पर क्या अच्छा हो कि ठोकरें न खायें और अब ही ठिकाने पर रहें, नकलें न करें, गुण खरीदें और अपने गुण न गँवायें। गुरू के साथ हमारा नेह केवल शिक्षा सुनने का नहीं जैसे हमें पश्चिमी रोशनी में चुँधिआए 'ख़्याल परस्त' लोग बताते हैं, बल्कि हमारा रिश्ता गुरू गोबिन्द सिंह के साथ निज का रिश्ता है, रिश्तेदारी है, और वह पिता पुत्र से ऊँची और बड़ी और मेरी और प्यारी रिश्तेदारी है, जिसका नाम रखने को ज़ुबान कासर* और बोली आरी+ है। प्रीत तार का मज़हब हमारा तीन वर्णों वाला है–

१. हमने जगत को करतार का जानकर करतार को प्यार करना है। प्यार का विदित स्वरूप है प्रीतम को याद रखना। इसलिए जगत में रहकर हमने करतार को नहीं भूलना। यह ही हमारा राग (प्रेम) है और यही हमारा वैराग है। हाँ, करतार को याद रखने में हम उसके साथ 'राग' रखते हैं और जगत के साथ हमारा स्वत: वैराग्य होता जाता है। हाँ, हमने उसको निज का सज्जन और अपने अंग संग समझना है@।

२. 'करतार को याद रखते हुए जगत के लेन देन में दुखों, सुखों, लड़ाई-झगड़ों में हमने 'हुक्म पहचानना' है, हमने कुढ़ना नहीं, घबराना नहीं, हमने खुश शांत हुक्म में खेलना है। यही हमारा तप है, यही हमारी सहनशीलता है।'

---

* शस्त्र तेज करने वाला औज़ार।

\+ लकड़ी चीरने का एक औज़ार।

@ साजनड़ा मेरा साजनड़ा निकटि खलोइअड़ा मेरा साजनड़ा।। (रामकली म॰ ५)

३. हमने 'प्रीततार' बिना अपने मानवी व्यावहारिक लेनदेन के लिए किसी शून्यता का, किसी ख़्याली मनफ़ियत का आश्रय नहीं लेना। हमने अपने गुरू को, जिसने मनुष्य होकर मनुष्यों में विचर कर ऊँचे पवित्र नमूने हमें दिखाये और सिखाये, 'प्रीततार' में अपने साथ पिरोये रखना है। अगर हमारा आदर्श गुरू होगा तो हम नीच ख्यालों वाले नहीं होंगे; अगर हमारी गुरू के साथ प्रीत होगी तो वह अंग संग रहेगा; अगर हमारे अंदर प्रीत-तार लगी होगी तो गुरू को भी हमारी खींच पड़ेगी और ऐसी निभी के समय आदर्श की याद और गुरू की ओर से हमारी लगातार खींच से आई अधिक ताकत की मदद हमें विजयी रखा करेगी।

गुरू–कलगियो वाले गुरू नानक–की प्रीततार और आदर्श को सामने रखकर उनके बताये हुक्म अनुसार हमने अंक एक वाले अभ्यास में चलते रहना है। हाँ जी हमें गुरू ने एक बात बतायी है जो हमने कभी नहीं भूलनी। वह है:-

गुरां इक देह बुझाई॥ सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई॥

हमने ऋषि को बुरा नहीं कहना, पर उनके अनुभव से शिक्षा लेनी है, अगर उनका हृदय 'प्रीततार' द्वारा गुरू गोबिन्द सिंह के साथ बँधा होता, वे जोगा सिंह हो जाते। और जोगा सिंह जी अगर आदर्शहीन होते, अपने आदर्श से 'प्रीततार' में पिरोये हुए न होते, निश्चय था कि कभी न बचते, वे ऋषि की तरह हो जाते। इसलिए सज्जनों! देखना खोखले और वहमी उपदेशकों के वाक्य न सुनना। गुरू गोबिन्द सिंह के साथ सिक्ख का रिश्ता निज का निजी रिश्ता है, अपना रिश्ता है। हम 'प्रीततार' द्वारा उसके साथ पिरोये हुए हैं, वह हमारा आदर्श है। ईश्वरीय हुक्म, ईश्वरीय रज़ा, ईश्वरीय प्यार, ईश्वरीय पवित्रता, ईश्वरीय प्रसन्नता, जमाल, जलाल का आदर्श हमने उनसे सीखना है, उनमें देखना और उनके साथ 'प्रीततार' पिरोये रहना है और ऐसे साझीदार रहना है–

पिता हमारे प्रगटे माझ॥
पिता पूत रलि कीनी सांझ॥
कहु नानक जउ पिता पतीने॥
पिता पूत एकै रंगि लीने॥

हम फिर एक बार ऊपर वाले आदर्शों को दोहराते हैं:-

१. इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥

पुनः- **'आपि सति कीआ सभु सति॥'**

रचने वाला सच है और उसकी रचना दुरुस्त है। ग़लत नहीं, कोई भूल इस जगत का कारण नहीं, बल्कि:-

'तिसु प्रभ ते सगली उतपति' है और जगत दुख रूप नहीं, सच्चे का घर है, दुख है–सच्चे को भूल जाना, झूठ में पड़ जाना। झूठ दुख है, झूठ दुख का मूल है।

२. हमने दुख की निवृत्ति संसार से भाग जाने में नहीं देखनी, उदासी, ग़मी, निराश मन की दशा में देखनी, दुख की निवृत्ति करतार को याद रखने में है।

'सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ॥
कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥'

३. साईं याद रखकर हमने हुक्म में चलना है:-

'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥'
कहु नानक जिनि हुकमु पछाता॥
प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाता॥

४. और हुक्म मानने में कठिनाइयों के समय आदर्श अपने कलग़ीधर जी का रखना है और उनके साथ 'प्रीत-तार' से पिरोये निज का रिश्ता कामय रखना है-

फुनि गुरू जल बिमल अथाह मजन करहु॥

हाँ जी, गुरू नानक गोबिन्द सिंह हमारा सदा जागता गुरू चला नहीं गया, सदा हमारे साथ है, गहरा विचार करके पढ़ो-

'सिर ऊपरि ठाढा गुरु सूरा॥
नानक ताकै कारज पूरा॥'

५. यह कुछ करते हुए हमने भाईचारे में रहना है, पर सत्संग में बसना है और सदा माँगना है:-

'साध संगि प्रभ देहु निवास॥
सरब सूख नानक परगास॥'



सूचना: आगे लिखी बातचीत श्री कलग़ीधर जी के आदर्शों को कुछ समझने के यत्न में लिखी गयी थी।

१८ कलग़ियों वाले के आदर्श!

प्रीतम आदर्श*!!

एक सूफी फकीर रेल में सफर कर रहे थे। एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो एक सफेद वस्त्रों वाले गंभीर सज्जन, जो सिंह मालूम होते हैं, उस कमरे में आ चढ़े। शक्ल सूरती नूरानी देखकर सूफी जी ने सिंह जी को बहुत आदर के साथ अपने सामने खिड़की के पास बिठा लिया, कुशल मंगल पूछी और अच्छा आदर किया। इतने में एक दो और मुसाफिर आ बैठे और रेल चल पड़ी। इससे आगे जो स्टेशन आया वह जंक्शन था और रेल ने यहाँ लगभग एक घंटा खड़े होना था, क्योंकि सामने से आ रही गाड़ी देरी से आ रही थी, इसलिए इसको और भी अटकना पड़ गया।

इस समय तक सूफी और सिंह जी की कुछ कुछ बातचीत होने लग पड़ी थी। दोनों पक्ष विद्वान थे और महापुरुषों का आदर करने वाले थे, इसलिए आपस में अच्छे प्यार से ख़्यालों का आदान प्रदान होने लग पड़ा यहाँ तक कि केशों के बारे बात चल पड़ी। तब सूफी जी ने कहा कि हम लोग आपके सिर के केश देखकर खुश होते हैं, हमारे मज़हब में केश अच्छे माने गये हैं, केश रखना 'सुन्नत' है, अर्थात केश रखना भलाई का काम है। हमारे हज़रत मुहम्मद साहिब आप केशों वाले थे और सारे ईश्वरीय पहुँच वाले फकीर लगभग केशों वाले होते हैं, और दुनिया के प्रत्येक रूहानी ताकत वाले ने केश रखे हैं।

सिंह जी ने बताया कि ये दिमाग़ के ऊपर आत्मिक शक्ति और शारीरिक अंदर की दामनिक शक्तियों की रक्षा करते हैं। सिर इन ताकतों का जनक है। रसिये और अभ्यासी इन भेदों को जानते हैं। यहाँ से बात चलती चलती श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के ज़िक्र शुरू हो गए। सूफी जी बोलेः- सिंह जी! श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी 'साहिब कशफ' थे, इसमें संदेह नहीं। हम लोग बुज़ुर्गों की इज्जत करने वाले हैं, निंदा करने वाले नहीं, पर मैं बहुत अदब के साथ पूछता हूँ कि उन्होंने ईश्वर प्यारे और ईश्वर द्वारा भेजे होने के बावजूद शस्त्र क्यों पकड़े?

सिंह—साईं वालो! आप यह संदेह करते अच्छे नहीं लगते क्योंकि आपके बुज़ुर्ग मुहम्मद साहिब जी ने शस्त्र पकड़े, युद्ध किए। उनको जैसे आप शस्त्रधारी देखकर 'रसूल अल्लाह' मानने में शंका में नहीं पड़ते, इसी तरह श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की ईश्वरीय सत्ता को भी शस्त्रों के साथ ज्यों की त्यों देखो।

---

* यह प्रसंग ट्रैक्ट की शक्ल में सं॰ गु॰ ना॰ शा॰ ४४७ (१९१६ ई॰) के गुरूपर्व सप्तमी समय प्रकाशित हुआ था।

इसी प्रकार अगर आप हिन्दू सज्जनों की ओर आओ तो उनके दोनों महान अवतार 'राम' और 'कृष्ण' जी शस्त्रधारी थे, तथा गीता में कृष्ण देव ने अर्जुन को–जो धर्म भाव में आकर शस्त्रों से कायर हो रहा था–शस्त्र पकड़ने 'धर्म विरुद्ध नहीं हैं' सिद्ध कर दिया था। इसी तरह उनके देवता विष्णु जी 'गदा और चक्रधारी' हैं, शिव जी 'त्रिशूलधारी' हैं और वैदिक ऋषियों के समय कुल का बड़ा शस्त्रधारी ही मुखिया और पुरोहित हुआ करता था।

अगर ईसा जी की ओर आओ तो जब सिपाही उनको पकड़ने चले हैं और उनको पता लगा है तो उन्होंने अपने चेलों से पूछा है कि किसी के पास तलवार है? और उस समय इस प्रकार कुछ कहा है–

'जिस के पास न हो अपने कपड़े बेचकर तलवार खरीदे*।।' बुद्ध जी कहते हैं–न्याय के लिए, जुल्म रोकने के लिए दंड देना पाप नहीं। इसलिए सज्जन जी! हिन्दू, मुसलमान और ईसाई तो अपने बड़ों की ओर देखकर ही श्री गुरू जी के शस्त्रधारी होने पर किन्तु नहीं कर सकते।

बातचीत अब रुचिकर होती जा रही थी। एक नये पढ़े बाबू जी पास बैठे थे, सुनकर कहने लगे कि मैं इन मज़हबों की क़ैद से बाहर होकर पूछता हूँ कि उन्होंने दया वृत्ति के साथ शस्त्र क्यों पकड़े?

सिंह–सज्जन जी! मैं विद्या में अभिमान रहित हूँ और चर्चा का मुझे ढंग नहीं, अगर आपको हार जीत का संकल्प है तो मैं हारा, अगर आप असलियत-सच-को अपनी आत्मा के सुख के लिए मालूम करना चाहते हो तो जो मेरी आत्मा में 'सुख' है उसका कुछ विस्तार कर सुनाता हूँ।

बाबू–सिंह जी! मैं कलग़ीधर जी का मद्दाह (महिमा करने वाला) हूँ, परन्तु किसी ओर दृष्टिकोण से। उन्होंने हमारे देश की, धर्म की, हमारी बहू बेटियों की रक्षा की, उन्होंने अपना पूरा वंश न्योछावर कर दिया, अपना आप न्योछावर कर दिया, हमें सुख दिया, उनकी मिसाल जगत में वे आप हैं, पर मेरा नुक्ता ख्याल और है। मैं अपना निर्णय करने के लिए और सत्य की प्राप्ति के लिए पूछता हूँ कि 'पैग़म्बरों, अवतारों' से अधिक धर्म वाला होकर उन्होंने धर्म के साथ तलवार कैसे ठीक समझी?

सिंह–आप को पता है कि हिन्दुस्तान के सारे धर्मों का यह निष्कर्ष है कि धर्म की प्राप्ति के लिए घर बार छोड़कर जंगल में एकांत में जाकर अभ्यास करना ही रास्ता है। चाहे जब वैराग्य हो जाये चल पड़े और चाहे आयु के पिछले पहर। बुद्ध, जैन, सन्यास, वैष्णव, शैव, हर मत का थोड़ा-थोड़ा अंतर है, परन्तु लगभग हर एक में त्याग का उपदेश है।

परन्तु गुरू जी ने गृहस्थ में रहना और फिर मुक्ति को प्राप्त कर लेना सिखाया। अब गृहस्थी एक कमाम+ तो नहीं न करता, ज़मींदार, व्यापारी, कारीगर, नौकर सभी गृहस्थी हैं।

* लुका, बाब २२ आयत ३६।

\+ धंधा, व्यवसाय।

ये सारे तो गृहस्थ में मुक्त हो सकते हैं, पर सिपाही भी तो गृहस्थी है, अगर सिपाही गुरू नानक के तरीके में ईश्वर को नहीं पा सकता तो धर्म का तरीका अधूरा रह गया। इसलिए गुरू जी ने सिपाही होकर भी ईश्वरीय रंग में रहना बता दिया। आप देख लो सिक्खों में छीपे जुलाहे, मोची, बढ़ई, लोहार, राज मिस्त्री, मज़दूर, कारीगर, व्यापारी, नौकर, सिपाही, राज, हर तबके, हर पेशे और कमाम के लोग हैं, और दो ढ़ाई सौ बरस कुल गुरू गोबिन्द सिंह जी को बीता है, और उनके सम्प्रदाय (क़ौम) में सारे धंधों के लोग हैं, जिस लिए इस छोटी सी गिनती को लोग क़ौम स्वीकार करते हैं, और ये सारे काम करते हैं, गृहस्थी हैं और फिर मुक्ति का मार्ग इनका मुख्य प्रयोजन है।

बाबू–पर अगर वे शस्त्र न पकड़ते तो क्या हर्ज़ था?

सिंह–यह आप मानते हो, कि समय की ज़रूरत थी, देश विपदा में था, औरंगज़ेब और उसके हाकिमों ने धर्म की आज़ादी में दख़्ल दिया था, मंदिर तोड़ने, जबर्दस्ती धर्म बदलने, यह व्यवहार राज्य ने धारण कर लिया था। धर्म की आज़ादी इंसान का अधिकार है। इसको बचाने के लिए, तथा मज़लूमों की रक्षा के लिए शस्त्र पकड़े। प्रजा दुखी थी, छोटे हाकिम और ठेकेदार प्रजा को दुख देते थे, उनकी रक्षा करनी थी, इसलिए धर्म युद्ध किया, अपने लोभ लालच, राज्य भाग्य के पीछे नहीं। इसलिए उनका शस्त्र पकड़ना इख़लाकी और धार्मिक आज़ादी को कायम रखने और प्रजा को सुखी करने के लिए था, न कि अपने लिए कुछ प्राप्त करने के लिए था।

एक नुक्कर में एक और पतले से, दो हिस्से में बँटे शीशे की ऐनक वाले पश्चिमी विद्या के अध्येता, सज्जन बैठे थे। कहने लगे–'चुप कर रहते, सभी लोग झेलते रहते, ज़ालिम अपने आप चुप कर जाता अंत जुल्म आप डूबता है, सहने वाला सिद्धान्त पर अटल रहे, जान दे दे, पर आगे से हाथ न उठाये।'

सिंह–आपका मतलब है कि उसूल पर कुर्बान होता जाये, कायर होकर तन रक्षा की खातिर उसूल न छोड़े परन्तु मुकाबला भी न करे।

ऐनक वाला–जी हाँ।

सिंह जी–ठीक है और बहुत ठीक है, यह तरीका नकारने वाला नहीं, आदर योग्य है। पर क्या आप मानते हो कि हमें दर्दमंदों की दुखियों की रक्षा करनी चाहिए?

ऐनक वाला–जी हाँ।

सिंह जी–एक ग़रीब आदमी को तलवार वाला सता रहा है कि मेरा दीन कबूल कर, वह कहता है मर जाऊँगा, पर मानूँगा नहीं। एक और शेरदिल पास से निकलता है, वह तलवार वाले को कहता है भई तुम्हारा कोई अधिकार नहीं कि जबरन दीन मनवाओ, यह ईश्वरीय स्वतंत्रता है, तुम जुल्म न करो। आगे से वह कहता है, मैं करूँगा। फिर शेरदिल कहता है, मैं यह अन्याय नहीं होने दूँगा। इस समय अगर शेरदिल चुप हो रहे तो ज़ालिम दोनों को मारेगा, अगर ज़ालिम के उस हाथ को जो ग़रीबों को मारने लगा है–शेरदिल पकड़ ले तो ज़ालिम इसको मारेगा। अब शेरदिल आगे से मुकाबला न करे तो आप भी

मरेगा और जिस की रक्षा करने लगा था वह भी मरेगा, तो उसकी रक्षा करने की नेकी का उद्यम किसी काम नहीं आया और अगर आगे से मुकाबला करता है तो वह ज़ालिम के ज़ुल्म को रोक भी सकेगा और दीन रक्षा भी कर सकेगा। इस प्रकार शेरदिल का यह यत्न स्वतः सिद्ध हो जाता है और यह आवश्यक यत्न है, जो युद्ध की शक्ल ले लेता है।

मोटी मिसाल ले लो—अगर भेड़िया भेड़ों के झुण्ड में आ घुसे तो क्या चरवाहे की चुप सहनशीलता उस समय काम आयेगी। क्या चरवाहे का धर्म झुण्ड की रक्षा करना और भेड़िये से लड़ना नहीं है?

इस प्रकार का युद्ध था जो गुरू जी को करना पड़ा। स्पष्ट है कि वे किसी की दौलत, पत्नी, ज़मीन के लोभ के कारण युद्ध करने नहीं गए, उनके बड़े गुरू अर्जन देव जी ने शांति से सीस दिया, उनके पिता जी ने 'सी' न करके सीस दिया, पर ज़ालिम ने देश में मज़हबी आज़ादी न दी, बल्कि जबर्दस्ती दीन बढ़ाना शुरू कर दिया। उधर देश से संगतों और क़ौमों के मुखिया और कवि और विद्वान शरण आने लगे कि रक्षा करो। आप रक्षा के लिए उठे, उसी रक्षा में यह युद्ध हुआ। इसलिए गुरू गोबिन्द सिंह जी की तलवार को ढाल कहना चाहिए, क्योंकि यह युद्ध ज़रूरी नतीज़ा था उसके उस पैग़म्बरी फर्ज़ का, जिसका नाम है—'दीन रक्षा'। 'मज़लूमों की मदद'। इस समय इस रूहानी फर्ज़ का पहलू इस सूरत में आ रहा था कि उसका दास सतगुरू के तेज का प्रकाश था। युद्ध हो जाना तो समय की ज़रूरत की एक बात है। वास्तव में इस देश के लोगों में भय न मानने की निर्भयता दृढ़ करवाकर इंसान को स्वसम्मान और स्वरक्षा की शक्ति वाला बना देना यह गुरू जी का यत्न था, ताकि इंसान रूहानी, इख़लाकी और शारीरिक ताकतों के साथ हर पहलू से पूर्ण हो।

सूफी—बहुत ख़ूब।

बाबू—सिंह जी! मुझे समझ नहीं आती कि दया, उपकार, पराया भला करने वाले और कृपा के स्रोत अवतारों में तलवार पकड़कर मारना, काटना नृंशसता (कुदया) के गुण कैसे आ जाते हैं?

सिंह जी—सज्जन जी! हम मूर्ति का एक पक्ष (Side) देख रहे हैं। मेरी समझ में आपको बुलबुल की आवाज़ अच्छी लगती है, परन्तु गरुड़ की पुकार बदसूरत दिखाई देती है। तोते की मूर्ति आपको खूबसूरत लगती है, परन्तु चीते की मूर्ति बदसूरत। माफ करना आपका ख़्याल यथार्थ नहीं। जैसे गवैये की सुर सुन्दर है, ऐसे ही बिजली की कड़क सुन्दर है, पर हम अभी उतने ऊँचे नहीं हुए कि उस सुन्दरता का रस ले सकें। गवैये का गान सुनते समय हमें डर नहीं लगता, इसलिए इसके स्वाद को हम भोग सकते हैं, परन्तु बिजली की कड़क के समय हमें स्वाद नहीं आता क्योंकि पहले हमें भय हो जाता है कि 'कहीं हमें मार न दे', वह भय बिजली की सुन्दरता का स्वाद नहीं लेने देता। अगर बिजली की कड़क के समय मन निर्भय हो, तब आपको उसकी चमक और कड़क में भी स्वाद आये। चंन्द्रमा सुन्दर है सब कहते हैं, सूर्य उससे अधिक सुन्दर है पर कोई कहता नहीं। चन्द्र की

शोभा मीठी है, सूर्य की शोभा तेज वाली है। हम अपने भाईचारे, शहरों गाँवों में बंद रहते हैं, डर, भय, लोगों के दबाव के कारण बलहीन हो रहे हैं, हमारे मन केवल मीठी शोभा को बलहीन सी हालत में प्यार करते हैं, तेज वाली शोभा से डरते हैं, डर के कारण उसको बदसूरत कहते हैं। यह नहीं कहते कि हम भय में हैं। हाँ, हमारे मन तेज वाली सुन्दरता की कद्र नहीं कर सकते, बल्कि इस सुन्दर वस्तु को कहते हैं बदसूरत है।

आप समझदार हो विचार करो:–खूबसूरती (सुन्दरता) दो प्रकार की है–एक मीठी, दूसरी तेज वाली। इन दोनों को 'जमाल' और 'जलाल' भी कह सकते हैं। ईश्वर के भेजे महापुरुषों में जमाल (मीठी सुन्दरता) अत्यधिक मात्रा में बसता है, पर उनकी अन्तरात्मा वाहिगुरू के साथ लगातार ज़ुड़ी होने के कारण उनमें ईश्वरीय तेज (जलाल) भी अपार होता है। मीठी सुन्दरता तो उनके प्यार, तरस, मीठापन, कुर्बानी, सुरत स्वभाव, मेल जोल, मेहर, कृपा से सदा दिखती है, परन्तु तेज हर समय नहीं दिखता। उनका अपने अंदर का टिकाव सदा उन्नत तेज वाला होता है। कभी बात में कभी चर्चा में, कभी दूसरों के पाप दग्ध करने में यह तेज प्रकाश पाता है। कभी 'बदी के उसूल' को जो संसार में फैल गया होता है और नेकी को दबा लेने में प्रबल हो जाता है, तब यह तेज़ शस्त्रों की दमक में आ दिखाई देता है, मिठास और तेज दोनों अल्लाह वालों को 'जमाली' और 'जलाली' खूबसरती हैं।

सूफी–सुब्हान अल्लाह। जैसी सूरत नूरानी वैसी आदत रूहानी, तुम्हारा इशारा पहचानने का भाव खूब जलाल वाला है।

सिंह–मैं अनुगामी हूँ! ये तो ईश्वरीय सच हैं, मेरा इसमें क्या है?

ऐनक वाला–सिंह जी! आपकी बातचीत क़द्र करने के काबिल है, और मेरा संशय ढेर सा दूर हो गया है, पर क्या आप अच्छा समझते हो कि संसार में युद्ध सदा रहने चाहिएँ?

सिंह जी–नहीं, मेरा मज़हब तो यह है कि इस जगत में मनुष्य मनुष्य के बीच प्रेम का राज्य चाहिए। हमारा तो दीन ही प्रेम है, पर मनुष्य 'हुक्म' से बेपरवाही करके खुदी में पड़ता है। सुलह, शांति, आराम के समय ढीला, सुस्त, ऐयाश हो जाता है, दूसरों के अधिकार चालाकियों द्वारा मारता और भोगों में डूबता सुस्त हो जाता है। इन पापों और जुल्मों और सुस्तियों का फिर कोई कुदरती इलाज होता है जो कभी युद्ध की शक्ल में उठता है। फिर मुसीबत आने पर कई बार ऐयाश और सुस्त आदमी बहादुर, उद्यमी, मर्दानगी वाला सच्चा और नेक हो जाता है। अगर आदमी सुख के समय 'मर्द' और 'नेक' रहे और 'संसार के केन्द्र' के साथ जुड़ा रहे तो जंग की ज़रूरत न पड़े। हाँ, आदमी न्याय और सच पर खड़ा हो जाये, अपने अधिकार के साथ अपने कर्त्तव्य अर्थात् दूसरे के अधिकार को भी पहचाने तो जंग की कभी ज़रूरत न पड़े। परन्तु जब इंसान यह उसूल छोड़े तो हठ और अकड़, ख़ुदगर्ज़ी और लालच बढ़ते हैं जिनसे युद्ध पैदा हो जाता है, ये युद्ध पाप रूप हैं। पर कभी एक पक्ष युद्ध करता दूसरा बर्दाशत करता है। यह बर्दाशत करता–करता निर्बल

होकर इंसानियत से गिरने लग जाता है। अगर कोई अपने सुख न्योछावर करके इसको जीवित करे और स्वसम्मान और स्वरक्षा के योग्य बना दे तो ज़ालिम के साथ युद्ध हो पड़ता है, यह युद्ध विवशता में गले पड़ जाता है। यह युद्ध जगत सुधार के लिए होता है। हम संसार में सुख चाहते हैं, बल्कि हम तो अपने सारे सुख दूसरों पर से न्योछावर कर देते हैं, परन्तु हमारा नियम है कि पहले आप वाहिगुरू के साथ लगातार जुड़े रहना है अंदर का झुकाव बाँधकर। यही अपना आप न्योछावर करने का उसूल ही हमें यहाँ तक ले जाता है कि हम दूसरों को सुख देने के लिए, दुख देने वालों के साथ प्यार, शिक्षा से जब बात पार हो जाये तो मज़बूर होकर तलवार तक पहुँच अपनी जानों पर खेल जाते हैं। आपको पता है होशियारपुर के जाबर खान पठान सरदार ने एक ब्राह्मण की नई ब्याही दुलहिन छीन ली थी। जो गुरू जी के बड़े पुत्र ने सिक्ख दस्ता साथ ले जाकर छुड़ायी और ब्राह्मण को वापिस दिलवायी थी। फिर बहुत प्रसिद्ध घटना और है कि जब पठान पातशाह इक्कीस सौ ग़रीब हिन्दू स्त्रियाँ पकड़कर काबुल को लिये जा रहा था, तब पंजाब के किसी मज़हब ने, किसी क़ौम ने, किसी इख़लाकी सम्प्रदाय ने कुछ नहीं किया था। आप बताओ किसी धर्म की आन वाले आदमी के लिए, किसी ईश्वर के प्यारे के लिए, किसी ऐसे आदमी के लिए जिसकी शिराओं में इलाही प्रेम था, यह मुमकिन था कि वह इक्कीस सौ ईश्वर के निर्बल जीव उनके घर घाट पतियों और पिता भाइयों से बिछोड़े जाकर कै़द में डाले जाकर, पशुओं की तरह परदेश में ले जाते हुए देखता और चुप करके बैठा रहता, और कहता कि तलवार पकड़ना राक्षसों का काम है और युद्ध करना भक्तों का काम नहीं, और लड़ना इख़लाक विरुद्ध और दुख किसी को न देने के नियम को कलंकित करता है? सज्जनो! बताओ इस समय क्या यह धर्म 'धर्म' था? कि जुल्म को देखो और अपनी सारंगी की सुर में मस्त पड़े रहो और कह दो कि धर्म मंदिर में बैठे लोगों का काम तलवार पकड़ना नहीं? सज्जनो! मेरा धर्म यह सिखाता है कि इस जुल्म को देखना और कहना कि 'जाने दो झेलना ही अच्छा है, हम अहिंसा के धर्म में रहें, वे तो ज़ालिम हैं हम भी रक्त में हाथ रंगें? ठीक नहीं। मेरा धर्म बताता है कि यह कुछ कहना धार्मिक कायरता है, धर्म भाव की मौत है। इसलिए सज्जनो! मेरे उस समय के भाइयों ने गुरमता किया और शस्त्रों वाले फकीर चल पड़े, दूर पीछे पीछे रहते अटक पहुँचे। जब अत्याचारी पार हो रहे थे और ये कैदी पीछे थे, तब जा हमला किया और छोटी सी लड़ाई और मारकाट में २१०० ग़रीब औरतें छुड़वाकर अपने साथ लेकर बार (इलाका विशेष) में आ गए। अब अगर ये ज़ालिम होते, ज़ोरावर अथवा लोभी होते तो ये औरतों को अपने घरों में रख लेते, पर नहीं, इन्होंने हर एक का घर पूछकर आप साथ हो होकर सबको उनके अपने अपने घर अमन अमान के साथ पहुँचाया।

इस समय सब की आँखों में पानी उतर आया था। सूफी जी भी रो रहे थे, परन्तु सिंह जी ने उनको कहा: साईं जी! नाराज़ न होना, मैंने ऐतिहासिक उल्लेख किया है, चूँकि वे लोग मुसलमान थे, आप ने रंज नहीं करना।

सूफी–वाह सिंह जी! यह क्या कहा आपने? आप सिक्ख हो, सिक्ख फकीर होता है। मैंने सिक्ख के सीने को सदा वैर से साफ 'फकीर सीना' समझ रखा है, मेरी उन लोगों के साथ कोई हमदर्दी नहीं जिन्होंने ख़ुदा के जगत को सताया है, चाहे कोई हों।

ऐनक वाला–सिंह जी! आप उदास न होना अगर मैं आप से और पूछता चलूँ तो, मेरे बहुत सारे भ्रम निवृत हो रहे हैं। अगर आप की कौम को उस समय का राज्य विद्रोही सम्प्रदाय कहा जाये तो आपके पास क्या जवाब है?

सिंह जी–अगर उस समय के राजा का राज्य नष्ट करना हमारा धर्म था, या कोई राजनीतिक भूख के कारण था, जिसके लिए हम लड़े, तो बात अलग है, हमारी तो माँग वक्त के राजा से यह थी कि आप प्रजा को मज़हबी आज़ादी दो, और ज़ालिमों को हाकिम न बनाओ। जब काश्मीर में जबरन, मुसलमान किये जाने लगे हैं और वहाँ के लोग श्री गुरू तेग़ बहादुर जी के पास आये हैं, तब सतगुरू ने समझाया कि मज़हबी आजादी में दख़ल न दो। उधर से हाकिम काश्मीर ने उसको लिखा कि ये लोग कहते हैं कि अगर हमारा गुरू मुसलमान हो जाये तो हम भी हो जाते हैं, तो उधर से आप दिल्ली को बुलाये गये*। बात क्या दिल्ली जाकर नौवें गुरू ने यही बात समझायी है, और उसने उनके ही मुसलमान होने के लिए ज़ोर दिया है, और इसी नाफ़रमानी (बात न मानने के कारण) में ज़ालिमों ने उनको कत्ल कर दिया है। कोई इतिहासकार जी लिखते हैं कि जिस दिन नौवें गुरू जी कत्ल हुए दिल्ली में सख्त भूचाल आया, अँधेरा दिन में इतना छाया कि तारे नज़र आ गये।

नौवे गुरू जी राजनीतिक मिशन लेकर नहीं गये थे, उनका काम था ज़ालिम को जुल्म से रोकना। दसवें सतगुरू जी ने जब यह देखा कि शिक्षा का फल रक्षा करने वाले की शहादत हुआ है, दीन रक्षा का दूसरा पहलू सिरे चढ़ा है, जो मैं पहले विनय कर आया हूँ। आप बताओ कि अटक से जाकर हिन्दू क़ैदी स्त्रियों को लौटा लाना यह बिना उस ताकत के हो सकता था जो फकीर सिक्खों में गुरू जी ने भरी? गुरू साहिबान के वक्त से हम अरदास करते हैं 'राजा राज्य करे प्रजा सुखी बसे' हर सिक्ख हर रोज़ अपनी अरदास में यह वाक्य बोलता है, और गुरूओं के समय से आज तक बोलता है। बताओ कोई राज्य विद्रोही यह कर सकता है? इस अरदास का आदर्श यह है कि हमने सबका भला करना है। राजा धर्म का राज्य करे जिससे प्रजा सुखी रहे, हमें फिर किसी धर्म पर चलने वाले राज्य के साथ द्रोह करने का कोई प्रयोजन नहीं, हम तो प्रजा को सुखी देखना चाहते हैं और राजा को निष्पक्ष धर्म वाला देखना चाहते हैं। देश और कौम की स्वतंत्रता, अधिकार और न्याय में वास ये बातें हम चाहते हैं।

एक कथा मैं गुरू जी के अपने समय की सुनाता हूँ। एक युद्ध में एक मुसलमान अमीर की डोली घेरे में आ गयी, एक दस्ता फौज का इस डोली को गुरू जी के पास ले आया। पहली बात जो सतगुरू जी ने की, वह यह पूछना था कि डोली में बैठी अबला

* गुरू जी के आनन्दपुर से आप दिल्ली को जाने के इरादे से चल पड़ने के बाद दिल्ली से आपको बुला भेजा गया था।

को किसी ने सताया तो नहीं? जवाब मिला कि किसी ने पर्दा उठाकर देखने की भी परवाह नहीं की। उस समय सतगुरू जी ने अपनी दासी भेजकर घर बार का पता लेकर बाइज़्ज़त उस डोली को उनके घर पहुँचा दिया। आप बताओ अगर गुरू जी में पूर्ण धर्म न होता तो यह व्यवहार करते? अगर वैर वाले होते तो बदला लेने का समय था। पर दूसरे पक्ष की ओर देखो, गुरू जी के मासूम बच्चे जब उनके हाथ आये तो कई दुख देकर मारे गये। उनकी ओर से वह व्यवहार नहीं हुआ जो गुरू जी की ओर से उनके साथ हुआ था। फिर देखो उस समय अम्बाला ज़िले में बुद्धूशाह फकीर हुआ है, उसके हज़ारों चेले थे। अगर गुरू जी के युद्ध धर्म स्वतंत्रता और गरीब रक्षा के लिए न होते तो यह मुसलमान फकीर कभी उनका सहायक होता?

फिर मैं आपको सुनाता हूँ कि एक मुसलमान इतिहासकार 'काज़ी नूर मुहम्मद बलोच' अपने जंगनामे में सिक्खों के चाल चलन के सम्बन्ध में क्या कहता है:-

"सिक्ख नामर्द (कायर) को कभी नहीं मारते और न ही भागे जाते को घेरते हैं। स्त्री चाहे विवाहिता हो और चाहे दासी, उसके धन और गहने को भी नहीं लूटते। ये ..... पर नारी गामी नहीं होते और न ही चोरी करना इनका काम है। ये चोर और व्यभिचारी को मित्र ही नहीं बनाते*।

ये सारी बातें काफी हैं यह बात बताने के लिए कि गुरू जी ने 'तृष्णा की भूख' के लिए शस्त्र नहीं पकड़े कि दूसरों पर अपनी मनोकामनाओं के लिए जबर्दस्ती करें, पर ग़रीबों अनाथों दुखियों के सुख के लिए, प्रजा के धर्म की स्वतंत्रता कायम रखने के लिए, उन्होंने उन मज़लूमों के लिए जो धर्म न छोड़ने की हालत में कत्ल होते थे-तलवार पकड़ी।

सतगुरू जी को सुख, आराम, शाही ठाठ की तरह प्राप्त था, दीनों की रक्षा के धार्मिक फर्ज़ ने उनको दिनरात दुखों और कष्टों के मुँह में डाला, दो पुत्र दीवारों में चुन दिए और मार दिए गए; उनके देखते देखते दो आँखों के आगे बोटी-बोटी+ हो गये। माता कैद में शहीद हुई, वतन से बेवतन घर से बाहर दर बदर खानाबदोशी, मित्र प्यारे आँखों के सामने लड़ लड़ कर मरे। वे-वे समय आये कि आक की कोंपलें खाकर रक्त के चक्र को सहारे देने पड़े। यह सारा कुछ कुर्बानी थी। उस मर्द की रगों में सच्चा इलाही प्रेम था,

---

* कि ना कुसंद नामरद रा हेच गाह।
गुरेज़ंदह रा हम न गीरंद राह।
ज़रे ज़ेवरे ज़न बताराज नीज़।
न गीरंद गर हुरह हसत वर कनीज़।
ज़नाह हम न बाशद मियाने सगां।
न दुज़दी बवंद कारे आं बदरकां।
कि ज़ानी ओ सारक न दारंद दोस्त।

\+ टुकड़े-टुकड़े (माँस के)।

वह उस ख़ुदा के प्राणियों के दुख दूर करने को दुखों के मुँह में आया और भरी ज़वानी में आप शहीद हो गया। आप बताओ, इंसाफ करो कि उसकी कुर्बानी सच्चा धर्म नहीं तो क्या है? अगर यह रूहानियत नहीं तो क्या रूहानियत वृक्ष होकर धरती पर गाड़े जाने का नाम है? अथवा शिला होकर किसी दरिया के किनारे युगों की अचलता हासिल करने का नाम है?

मैं कह सकता हूँ कि पहाड़ी राजे खास तौर पर भीमचंद, गुरू जी को 'आनंदपुर का राणा' अपनी अधीनगी में स्वीकार करने को तैयार था। हाँजी, औरंगज़ेब का एक शहज़ादा गया था लड़ने गुरू जी के साथ, पर उसने गुरू द्रोहियों को मारा था और सतगुरू का पक्ष लिया था, इलाके के राजसी अख्तियार बाज गुज़ार रईस की शक्ल में उससे उस समय मिलते थे। अगर राज्य की भूख होती तो मान लेते, पैर ज़मा लेते, धीरे-धीरे बढ़ते जाते।

इस समय सभी मूर्तियों की तरह स्थिर सुन रहे थे और सभी के अंदर ख़ून जोश मार रहा था कि गुरू गोबिन्द सिंह न केवल सिक्खों का गुरू है, बल्कि हमारे सारे पंजाबियों का गर्व और ऊँचे मंडलों का चमकता सितारा है, और प्रत्येक पंजाबी को उनको अपना सिरताज समझना चाहिए। इस समय ऐनक वाले ने पूछा, सिंह जी क्या ऐसी घटनाएँ भी हैं जिनसे मालूम हो कि ऐसे युद्धों के सामानों में गुरू जी को अपने पैगम्बरी काम का ख्याल रहता था?

सिंह जी—मैं केवल एक घटना जो मैंने सुनी है, आप को सुना देता हूँ। नतीजा आप निकाल लेना:—

एक बार क़िले को घेरा पड़ा हुआ था, अनेक कष्ट बीत रहे थे, बात लम्बी है, ख़ैर! एक रात आई, कि गुरू जी प्यारे और पुत्रों और परिवार सहित क़िले से निकल पड़े। आप कई मील उनसे दूर चले गये।

'आसा की वार' का समय़ था। सतगुरू ने कहा: 'भजन पहले है, भई खालसा ज़ी! दीवान लगा दो, जान जाये पर बंदगी का समय न चला जाये।' वहाँ ही दीवान लग गया। दुश्मन वादा तोड़कर पीछे आ रहे थे, आ पड़े। इस समय के कष्ट का अंदाजा लगा लो, कितनी मारकाट और मुश्किल का सामना करना पड़ा होगा। अब आप अपने (राजनीतिक) पुलिटिकल अर्थों की ओर न जाना कि यहाँ कीर्तन का कौन सा समय था, भाग क्यों नहीं गए, दूसरे दिन बंदगी कर लेते? मैं कहूँगा कि यह घटना पूरे तौर पर साबित करती है कि गुरू जी को अपना वाहिगुरू और बंदगी का काम मुख्य काम था, वे पैग़म्बर थे पूरे, ईश्वरीय प्यार मुख्य काम था, और उनके युद्ध, उनके फर्ज़ पैग़म्बरी का एक हिस्सा थे, और 'बंदगी' का एक नागा (रुकावट, प्रतिबंध), वे जानों पर खेलते थे, पर नहीं थे डालते। साफ है कि उनका उपदेश अपने लिए राज्य की भूख और तृष्णा नहीं थी, बाकी अगर उनका सारा जीवन पढ़ो तो देखोगे कि हर रोज़ मुख्य काम ही मुर्दे लोगों में रूहानी जीवन फूँकने का था। वे करते ही अपना इलाही प्रेम का काम थे, युद्ध तो कभी कभी के काम थे जो गले आ पड़ते थे, आप तो सतगुरू चढ़ाई करके किसी पर कभी नहीं गए। आप

गुरू जीवन को जानने का कष्ट करो, उन्होंने आप पहल कभी नहीं की, अपने पर हुए हमलों के बचाव किए हैं। युद्ध जीतने पर अगर सिक्खों ने हारे शत्रु का पीछा किया है तो उनको रोक लिया है।

ऐनक वाला—बहुत ख़ूब, सिंह जी! यह घटना तो पूरे तौर पर फैसला करती है कि धार्मिक पहलू गुरू गोबिन्द सिंह जी में मुख्य पहलू उनके जीवन का था। परन्तु क्या आप कृपा करके मुझे यह समझायेंगे कि युद्ध करने वाले की वृत्ति तामसी वृत्ति नहीं हो जाती? जिसका मन रोष, क्रोध, तामस में रहे उसका मन धर्म विचार में अथवा जिस तरह आपने कहा है अंतर के सुख में अथवा शांति में कैसे रह सकता है?

सूफी—बहुत अच्छा प्रश्न है, समस्या का हल ही यहाँ है।

सिंह—यह बात थोड़ी नीरस सी हो जायेगी, पर जिस तरह मुझे आता है, विनती कर देता हूँ:—

लोभ, गुस्सा, नफरत, प्यार ऐसे सारे भाव आदमी के अंदर उठते हैं, इनके दो हिस्से होते हैं—एक तो अंदर मूल अंश होती है, एक उससे भाव पैदा हो जाते हैं। अंदर की मूल अंश को 'स्थायी' और उससे पैदा हुए भावों को संचारी करते हैं। जैसे कि जब कोई ग़ज़ब की हालत होती है तो पहले उसके अंदर क्रोध का अंश उठता है, यह क्रोध स्थायी भाव है और फिर आँखें लाल, शरीर का काँपना, जोश आदि प्रभाव होते हैं, ये संचारी भाव हैं। हमारे विद्वानों ने इन सारे भावों को रस कहा है और नौ रस गिने हैं जो ये हैं:— १. शृंगार (इश्क), २. हास्य, ३. करुणा (शोक), ४. वीर (बहादुरी), ५. रौद्र (क्रोध), ६. भयानक (भय), ७. वीभत्स (नफरत), ८. अद्‌भुत, ९. शांत*।

इनमें से श्री गुरू ज़ी ने शांत रस की रक्षा के लिए सिक्खों को वीर रस सिखाया है, रौद्र रस नहीं सिखाया।

वीर रस तब चढ़ता है, जब अंदर स्थायी 'उत्साह' होता है। वीर रस का स्थायी गुस्सा नहीं हुआ करता। जब अंदर का भाव उत्साह का होगा तो वृत्ति तमोगुणी नहीं होती। उत्साह या तो रजोगुण में होता है या सतोगुण में। भज़न बंदगी करने वाले एक 'खुश हालत' में होते हैं। खुशी एक बंदगी का फल है। 'नानक भगतां सदा विगास', इसी तरह वीर मर्द के अंदर उत्साह रहता है। इसलिए आप देख सकते हो कि वीरता का स्थायी भाव और बंदगी वाले का सतोगुणी उत्साह दोनों खुशी हैं। अगर गुरू जी बदला लेना, ईष्या, वैर, तृष्णा सिखाते तो सिक्खों के दिल तामसी हो जाते, क्योंकि वैर, ईर्ष्या, तृष्णा से अंदर तमोगुण हो जाता है, पर उन्होंने सिखाया है वीर रस। वीर रस से सुरत 'उत्साह' में रहती है, इसलिए बंदगी करने वाले मन वीर रस में जा सकते हैं। उत्साह के समय भजन सिमरन बहुत आनन्ददायी होता है, और भजन है ही उस सिमरन का नाम, जिस द्वारा मन कमल पुष्प की तरह खिला रहे+।

* कुछ विद्वान 'वात्सल्य' को भी एक रस और गिनते हैं।

+ सेज सुखाली बिगसै जीउ।। सो सिमरनु तू अनदिनु पीउ।। (राम॰ बा॰ कबीर)।

मुझे पता नहीं कि मैं अपना अर्थ साफ बता सका हूँ कि नहीं?

सूफी–बहुत खूब। 'ईश्वर प्रेम में बेसुध अथवा लीन' होने से पहली हालत ऐसी होनी चाहिए।

ऐनक वाला–मैं फकीरी ख़्यालात से अनजान हूँ, ज़रा कुछ अधिक समझना चाहता हूँ।

बाबू (ऐनक वाले को)–सिंह साहब इस समय आपको साइक्लोजिकल (मानसिक) तरीके से अपना भाव समझा रहे हैं, और अपने जाने हुए तरीके से बात को बयान कर रहे हैं। दिल में जो भाव (emotions) पैदा होते हैं उनके भाव दो तरह के होते हैं–एक तो मूल कारण होते हैं और दूसरे उस समय उससे पैदा हो जाते हैं।

दिल पर जो प्रबल किस्म के भाव होते हैं, जिन के आवेश में आदमी तरह तरह के काम करता है, उनको रस कहते हैं, और हिन्दी विद्वानों ने ऐसे रस नौ गिने हैं, उनमें से एक शृंगार रस है। इसका स्थायी (मूल कारण) प्रीत (प्रेम) है, और संचारी भाव अनेक हैं, मसलन–हँस पड़ना आदि।

सिंह जी–इन रसों में एक वीर रस है, इसका स्थायी 'उत्साह' है। क्रोध इसका स्थायी नहीं है*।

वीर वह आदमी है, जो दान करता है, दया पालता है और दोनों ज़रूरतों के लिए आवश्यक ज़रूरत पड़ने पर युद्ध भी करता है। उसके अंदर मूल कारण वैर, ईर्ष्या, जलन, कुढ़ना, नफरत करना, ये नहीं होते, पर उसको दिखाई देता है कि मैं नेकी का काम करता हूँ, मेरे अंदर चाव है नेकी के लिए। इसलिए वह तो चाव में दया, दान और युद्ध करता है। युद्ध करने में वह दूसरे के भले के लिए अपना आप न्योछावर करता है। अपना आप न्योछावर करने का चाव उसके अंदर होता है। वह चाव में जान को कुछ चीज़ नहीं समझता, न दूसरे की जान को वह वैर से मारता है, पर धर्म की पूर्णता में चाव में जो होता है वह होता है। जो केवल पर स्वार्थ के लिए युद्ध करता है उसका युद्ध तृष्णा (Assertion) नहीं, पर कुर्बानी (denial) है। वह दूसरे के सुख के लिए जान तक न्योछावर करने के लिए चल पड़ता है तब उसके अंदर कुर्बानी वाला उत्साह होता है। गुरू के सिक्ख शांति रस वाले थे, जिसका मूल कारण अंदर बसता वैराग्य था। वैराग्य का अर्थ सिक्ख यह करते हैं कि रहना जगत में, पर इसमें लिप्त नहीं होना। इसलिए शांत रस वाले सिक्ख तृष्णा की ओर से अंदर वैराग्य रखते हैं और वाहिगुरू के साथ राग (गीत) रखते हैं। वाहिगुरू की प्रीत के कारण अंदर एक उत्साह रहता है जो सतोगुणी होता है, यह अच्छी तरह समझ लेना। हर समय उदास, रोनी सूरत और निराश मन वाले को सिक्ख शांत रसिया नहीं मानते। जिनके अंदर जगत से पकड़ नहीं, पकड़ ईश्वर के साथ है और ईश्वर के प्यार में खिले रहते हैं, वे शांत रसिये हैं। अब आप समझ लो ऐसों का वीर रस में आ

* वीर रस में अगर क्रोध कभी आ जाता है वह संचारी होता है, 'स्थायी' नहीं होता। हाँ रौद्र रस का स्थायी क्रोध है।

जाना उनके अंदर कोई बुरा परिवर्तन नहीं कर सकता। दूसरे वे हुक्म के कायल हैं। जब वे ही शांत रस में होते दीन रक्षा के लिए वीर रस के उत्साह में जाते हैं तो ईश्वर का हुक्म समझते हैं। मरना, दुख पाना उनको हैरान नहीं करता, अंदर से उत्साह से नहीं गिरता। ये बातें आप भाई मनी सिंह, भाई तारू सिंह आदि सिक्ख शहीदों के हालात से समझ सकते हो। मेरे ख्याल में अब मैंने स्पष्ट कर दिया है कि कैसे शांत रस वाले 'केवल उपकार के लिए वीर रस में आकर' अपने बंदगी की प्रसन्नता में से गिरकर तामसी या तमोगुण के अधीन नहीं हो जाते। अगर हो जायें तो गुरू आदर्श से दूर जा पड़ें।

अपने मुँह से अपनी महिमा नहीं शोभा देती, परन्तु अभी भी सिक्खों में नमूने हैं। मेरे देखते एक भजन वाले सिंह जी के हाथ पर नीम का वृक्ष आ गिरा। हाथ नीचे दबा पड़ा है माँस हड्डियाँ चिथड़ गयी हैं और आप खिले माथे कह रहे हैं, 'सिंह जी! ज़रा यह तना उठा देना, मेरा हाथ नीचे आनंद खेल रहा है।' और जब आपका ज़ख्म डॉक्टर जबर्दस्ती आकर बाँधने सीने लगा तो क्लोरोफार्म सूँघने से या लेटने से आप ने इंकार की, उसी तरह खुशी खुशी सब कुछ करवा लिया।

सूफी–ठीक है! मैंने एक नाम वाले फौजी सिंह की रान की हड्डी का आप्रेशन देखा था, आप भी खुशी खुशी करवा गये थे।

इस समय एक बुक्कल* मारकर लेटा हुआ आदमी उठ खड़ा हुआ, इसके कपड़े भगवे थे, रंग एकदम पीला था और आँखें कुछ नीचे उतरी हुई थी, कहने लगा:-

सिंह जी! आनंद तो बहुत आया और मेरे भी कुछ भ्रम निवृत हो गए, पर यह तो बताओ, मन एक क्षण में ब्रह्माकार और संसाराकार कैसे रह सकता है?

सिंह जी– 'कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमान।।
कहिबे कउ सोभा नहीं देखा ही परवानु।।'

सभी हँस पड़े और

सूफी जी–बहुत ठीक।

साधु–मैं नहीं समझा। मैं तर्क नहीं कर रहा। सिंह जी! है तो शर्म की बात कि मेरे कपड़े भगवे हैं और मैं गृहस्थियों से पूछ रहा हूँ, परन्तु मैंने उम्र का ढेर हिस्सा बरबाद किया है और मैं सुखी नहीं, आपके वचन बहुत सुखदायी लगे हैं, इसलिए चाहता हूँ कि अगर शंका सारी हट जाये तो जन्म बेकार न जाये।

सिंह जी–पराक्रमी सतगुरू की शरण लो, लगे (उसके ध्यान में) हुए लोगों की संगत करो, अनलगों का साथ छोड़ो।..... (सोचकर)

बात संत जी यह है कि आपके हमारे ख़्यालों में एक मौलिक अंतर है। आपकी विद्या यह सिखाती है कि चेतन और जड़ या रूह और मादा (प्रकृति) किसी इतफ़ाक के कारण या स्वतः ही इकट्ठे हो गए हैं। इनके मेल से संसार है, और संसार दुख रूप है। इस दुख से छुटकारा तब है अगर ये जड़ और चेतन अलग-अलग हो जायें। चाहे ये दोनों सत्य हैं,

* चादर ओढ़ने का एक विशेष ढंग।

चाहे जड़ भ्रम मात्र है, बात वहीं रहती है। इसलिए जगत से उपरामता, दूर रहना आदि भाव आप धारण करते हो, जो बहुत बार गहरी उदासी बनकर बँध जाते हैं। इसलिए आप हठ तप करते उदास और दिलगीरी में फँस जाते हो।

हम समझते हैं कि संसार किसी बनाने वाले ने बनाया है और वह प्यार करने वाला है। संसार में दुख ज़रूर है, यहाँ हम आपके साथ सम्मति रखते हैं, पर दुख परमात्मा (रचना करने वाला) ने नहीं बनाया, दुख इसलिए है कि हम अपने करतार से बिछुड़ रहे और भूल में पड़ गए की तरह हैं*। जैसे मेले में माता के साथ गया बालक माँ से बिछुड़ कर दुख पाता है। माँ और मेला दुख रूप नहीं थे, दुख माँ से बिछुड़ना था। संसार दुखी इसलिए है कि करतार से बिछुड़ गया है। अगर हम वाहिगुरू के साथ लगे रहें, अंदर की लग्न कर्त्तापुरुष की ओर रहे और दिखाई देता जगत उसका अखाड़ा, मेला, खेल देखें, फिर दुख नहीं। हम समझते हैं कि मेले में घूमना, पर माँ की अँगुली न छोड़नी इसमें मेला सुख रूप है, पर माँ की अँगुल छोड़कर भूलकर मेले में व्यस्त हो जाना और धक्के खाना यह दुख रूप है और सारे दुखों का मूल कारण है। इसलिए हम दुखों की निवृत्ति इसमें समझते हैं कि कैसे माँ की अँगुल फिर मिल जाये और वह हमें अपने सत्संग में से मिल जाती है, क्योंकि जिन्होंने माँ की अँगुल पकड़ी हुई है वे हमें भी पकड़ा देते हैं और कहते हैं अंतर की लगन हरदम उसकी याद में रखो। मन का झुकाव (मन का रूख़, मन की लगन, मन का लगाव) वाहिगुरू के साथ रखो। यह माँ की अँगुल पकड़नी है, बाहर का जगत मेला है, जिसकी सैर तमाशे के लिए और जिससे कुछ सीखने कुछ फायदा उठाने के लिए हम आये हैं। मेले में अपना रहना हम अटल नहीं समझते। बाहर जो हमारा व्यवहार है वह है प्रेम, इस प्रकार हम रहते हैं 'याद' में 'ध्यान' में 'कशिश' में और इसलिए रहते हैं खिले कमल पुष्प की तरह खिले और खुश पर शांति, ठंड, रस में टिके हुए। बाहर लोगों के साथ हम प्रयोग करते हैं 'सरबत का भला'। जब आवश्यकता आ पड़ती है कि हम औरंगज़ेब को मज़हबी आज़ादी के लिए समझायें, तो माँ की अँगुल पकड़े हुए की तरह जाकर बुद्धि देते हैं। वह हमारा सीस उतारता है, उस समय भी माँ की अँगुल पकड़े हुए माँ के प्यार में हँसते हैं और जल्लाद को मज़ाक करते हैं। सीस उड़ जाता है, पर सिद्धान्त कायम रहता है। अगर हमें हुक्म आता है कि ज़ालिम का पीछा करो, तो हम अटक पर जाकर कई शीश भेंट कर इक्कीस सौ अबलाओं को छुड़वा लाते हैं, घर घर पहुँचाते हैं, पर खुश इस बात में हैं कि हम अपनी माँ की अँगुल पकड़ी होने के रंग में हैं। ये सब काम करने और सेवा उपकार करने, हमारी खेलें हैं। हम शीश देना, मर जाना, युद्ध करना, या भला करना–जमाल में कि जलाल में–सदा यह समझते हैं कि हुक्म पूरा कर रहे हैं। यह न दिलगीरी का स्थान है न दिल की खुशी का। न हँसने का स्थान है न रोने का। हमारे हाथ माँ की अँगुल पकड़ी हुई है, इसलिए हम पक्के और सच्चे ठिकाने हैं, यह ठिकाना खुशी का है। अँगुल पकड़े हुए मेले में चलते हैं तो सब रंग माँ की अँगुल पकड़ी के नाज़, गर्व और भरोसे में, हुक्म जानकर मानते हैं।

* दुख के विषय पर और विस्तार से समझने के लिए देखो चौधरी समीर वाला प्रसंग इसी पुस्तक का।

आप दिलगीर (शोकातुर) हो, आपने आप जड़ चेतन को तोड़ना, अलग-अलग करना है। ईश्वर आपका या तो है नहीं, अगर है तो करतार नहीं, अगर किसी सूरत में कर्त्ता है तो वह आपके लिए कर्त्तापुरुष नहीं। अगर आप किसी शक्ल में उसका होना कहते हो तो फिर कह देते हो हम आप ही वही हैं। आप कभी प्रेम और उमंग में आकर नहीं गाये:-

तूँ मेरा पिता तूँ है मेरा माता॥
तूँ मेरा बंधपु तूँ मेरा भ्राता॥
तूँ मेरा राखा सभनी थाई॥
ता भउ केहा काड़ा जीउ॥१॥
तुमरी क्रिपा ते तुधु पछाणा॥
तूँ मेरी ओट तूँ है मेरा माणा॥
तुझ बिनु दूजा अवरु न कोई॥
सभु तेरा खेलु अखाड़ा जीउ॥२॥

इस प्रकार आपके लिए यह समझना कठिन है कि एक ही समय 'ईश्वर याद' और 'खड्ग हाथ' कैसे निभ सकते हैं? माफ करना मैं थोड़ी पंचम सुर में बातें करता रहा हूँ। यह अहंकार में नहीं, पर 'माँ की अँगुल' पकड़ी की बात करते समय मेरे अंदर माँ के प्यार का नख़रा बढ़ गया था कि धन्य गुरू नानक कलग़ियों वाला गुरू गोबिन्द सिंह, जिसने हमें शोकातुरता से निकाल कर खुशियों में ला दिया। इसलिए संत जी मैं कहे बिना रह नहीं सकता कि अगर आप अपने नुक्ता ख्याल को बदलो और मेरे नुक्ता ख़्याल में आओ तो आप खुश रह सकते हो और माँ की अँगुल पकड़ी रखकर माँ के साथ साथ मेले के सारे रंग देख और भोग सकते हो, और माँ की छाया तले अलिप्त रहकर माँ के साथ आये, माँ के साथ रहे और माँ के साथ ही घरों को इस मेले से चले गये की सच्ची अलिप्तता प्राप्त कर सकते हो, और इस प्रकार अपरस भी रह सकते हो।

ऐनक वाला-सिंह जी! मेरा रोम रोम आप पर सदके है। मैं आज 'शापन-हयूर' की सन्यास की थ्योरी कल्याण की प्राप्ति के लिए पढ़कर बड़ा शोकातुर था। आपने बहुत आसान तरीके के साथ गुरू गोबिन्द सिंह का आदर्श समझाया है मैं गुरू के नाम पर सदके होने वाला था, पर मुझे पता नहीं था लगता कि गुरू गोबिन्द सिंह जी का आदर्श (Ideal) क्या था? मैं उनको सांख्य, योग वेदान्त के नुक्ते से, फिर कैंट के दृष्टिकोण से, फिर दुनिया के योद्धाओं सिकन्दर नैपोलियन के नुक्ते से देखता था और समझने में असफल होता था, पर आज मुझे इस आदर्श (Ideal) की समझ आ गयी है कि जो गुरू गोबिन्द सिंह जी का है।

सिंह जी-बात लम्बी और नीरसता की ओर चली जाती है। आपने कैंट आदि पढ़े हैं। आपको एस्थैटिक (रस) की समझ आई होगी, आपने ट्रैंसडैंटल हालत कुछ समझी होगी और साथ में सन्यास की आवश्यकता पढ़ी होगी पर आप सुखी नहीं हुए।

पर सतगुरू की इस सादगी को समझो और ईमान लाओ अकाल पुरुष पर, ईमान लाओ कि वह कर्त्तापुरुष है; ईमान लाओ कि वह प्रेम है, ईमान लाओ कि अंतर के अंदर है और बाहर के हर रग रेशे में है; ईमान लाओ कि अंदर से उसकी ठौर, आधार हमने नहीं छोड़ना। हरदम, हर क्षण अंदर से उसको याद से, ध्यान से, प्यार से पकड़े रखना है। बात क्या, मन का लगाव* हर समय वाहिगुरू रुख़ी किये रखो। हाँ, मन का लगाव सदा ब्रह्माण्ड के केन्द्र की ओर झुकाए रखो। इस तरह अंतर का रंग जमाकर संसार में घूमो फिर देखो कि आप ज़िन्दा रहते ही रस में, विस्माद में, प्रसन्नता में आते हो कि नहीं। पर बाबा! यह रंग दमबदम साईं को याद करने पर ही जमता है। तथा यह 'याद' याद करने वालों का सत्संग करने पर पकती (परिपक्व) है। भूले हुए लोगों का संग कुसंग है, भूले हुए लोग 'लगातार अंतर के अनंत की ओर लगाव को' तोड़ते हैं, पर हाँ, इनका कुसंग असर नहीं करेगा, अगर आपने माँ की अँगुल पकड़े रखी तो।

साधु–बहुत ठीक है, परन्तु मुझे शंकाएँ हो रही हैं, जो कर्त्तापुरुष होगा वह करतार होने में विकारी हो जायेगा। इस प्रकार के दलीली संशय सारे जानते ही हो और इशारे में उत्तर कह चुके हो।

सिंह–एक ही उत्तर है, बाबा! ईश्वर है बेहद, सीमा किनारे से पार, कोई देश स्थान दूरी उसको नहीं बाँधती है, 'वह पूर्ण ब्रह्म है'। न वह समय वक्त काल की क़ैद में है, 'वह पारब्रह्म है'। न वह किसी कारण की क़ैद में है, वह 'परंब्रह्म' है। जो दलीलें जो अक्षर आप कहते हो ये सब देश काल में किए हुए अक्षर हैं, जिसने ये अक्षर लिखे हैं, ये अक्षर उसके सिर पर हावी नहीं हो सकते। आप उस आप स्वतंत्र के सिर ये अक्षर हावी करते हो, आपकी भूल (माफ करना) यही है कि आप तो 'देशकाल निमित्त' के बिना सोच कुछ नहीं सकते और इस कैदी बुद्धि के साथ पैमाने परब्रह्म के मापने के बनाते हो? हद में पड़े बेहद की माप करते हो। ईमान लाओ कि वह जो बेअंत है, जिसको आप सभी बेअंत मानते हो, उसके रचने के तरीके, उसके प्यार करने के तरीके, उसके सारे काम बेअंतताई के काम हैं, जहाँ हमारी समझ की पहुँच नहीं+। अनन्त जिसका अस्तित्व है, उसके कारनामे भी अनंत हैं@, उसकी शरण लो तो सुख है।

सूफी–वाह सिंह जी! कैसा ईमान है। यकीनी यकीन आपका देखा है।

ऐनक वाला– मैं खुदगर्ज़ हूँ, सिंह जी! मुझे गुरू गोबिन्द सिंह के आदर्श ने नयी ज़ान डाल दी है। आज मुझे फिलासफी की भी समझ आ गयी है। हमारी बुद्धि सांख्य# और केंट दोनों आदि अंत फिलासफरों के कहे अनुसार देशकाल निमित्त वाली है।o और वह देश काल निमित्त से बाहर है, पहुँच ही कहाँ? हाँ, विस्माद के समय हम शरण का सुख भोगते

* Attitude of mind.

\+ अपने करतब जानै आपि।। (सुखमनी)

@ सचे तेरे करणे सरब बीचार।। (आसा म॰ १)

\# बुद्धि प्रधान की वस्तु है, पुरुष की वस्तु नहीं।

o हमारे मन की apriory (मूल उपाधि) देशकाल निमित्त है, अर्थात मन दृश्यमान के हिस्से की चीज़ है।

हैं। इसलिए यह विस्माद का रंग देखकर फिर ईमान लायें, और यह ईमान लायें कि उसके काम या अकाम, उसके रंग या अरंग, उसका बनाना कि मिटाना, उसका पालन कि प्रेम, हमारे जैसे नहीं जो उसको विकार आदि कह सकें। वहाँ तो हमारी पहुँच ही नहीं, वह अगम्य है। यही है ना आपका भाव?

सिंह– जी हाँ, देखो गुरू जी का फ़रमान है–

सचखंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जो को कथै त अंत न अंत॥
तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै करि वीचारु॥ नानक क़थना करड़ा सारु॥

(जपुजी साहिब)

'उसका' और उसके कामों का कथन अकथनीय है। जिसको हम समझ नहीं सकते, जो बेअंत और अमित है, उसके कार्यों को अपने कार्यों के साथ क्यों टीका करते हैं? और अगर उसके कार्यों की माप हम करते हैं तो हम भूल करते हैं।

'हरि बिअंत हउ मिति करि वरनउ
किआ जाना होइ कैसो रे॥

इसलिए मापों के वर्णन न करो, यह सब भूल होगी। अपने आप को 'चिन्ता के मंडल' से ऊँचा करके 'रस और विस्माद' के मण्डल में उठो, जहाँ आपका मन करे, साथ में माया मरे, और आत्मा आपकी उस अनन्त के साथ स्पर्श कर पाये और ऐसे करते समय आ जाये कि वह अनन्त आपको अपने अनंत में खींच ले। देश काल निमित्त के साथ जो वर्णन होता है, वह भी पूरा नहीं होता। काल कोई वस्तु नहीं फिर काल है, ऐसे है और नहीं के अजब नक्शे हैं। देश (दूरी)* है, परन्तु अनेक रंग हैं इसके, खंड मंडल ब्रह्माण्ड लोक और आकाश अनेक दर्ज़ों के एक दूसरे के अन्तर्गत, पर हमारे इस ज्ञान से परे, पर हमारे समीप ही हैं। बेअंत है आप; बेअंत है रचना और कुदरत। इसलिए बेअंत के गुणगान में बसो। अगम्य विस्माद है, विस्माद का साधन प्रशंसा है, प्रशंसा का साधन कीर्तन और उसका सिमरन है।

ऐनक वाला–मेरी तसल्ली आपने खूब की है।

बाबू– सिंह जी! परन्तु मैंने अभी कुछ मोटी मोटी बातें करनी हैं। आप कृपा करके यह बताओ कि क्या गुरू गोबिन्द सिंह जी का उद्देश्य यह था कि मुसलमान मार दिये जायें?

सिंह जी– नहीं, वैर तो उनका काम ही नहीं था, वे तो प्रेममूर्ति थे। उन्होंने 'धर्म की स्वतंत्रता' के लिए उसके साथ युद्ध किया जो इसका वैरी था और प्रजा पर जबर्दस्ती करता था, यह इतफ़ाक की बात है कि वह मुसलमान था। महान पुरुष हमेशा बुराई के साथ लड़ा

---

* Space.

करते हैं, बुराई करने वालों के साथ उनके अंदर वैर नहीं होता, इसलिए जहाँ बुराई होती है, वहाँ उनके तीर बजते हैं। मैं एक दो वृतांत सुनाता हूँ, जिससे साफ हो जायेगा कि उनके युद्ध 'धर्म' के लिए थे, जहाद की तरह किसी कौम के खिलाफ बहैसियत कौमी युद्ध नहीं थे। एक बार युद्ध होते समय गुरू जी के पास शिकायत आयी कि भाई कन्हैया युद्ध के मैदान में मुसलमानों को भी पानी पिलाता घूम रहा है, उसको रोकना चाहिए। गुरू जी हँस पड़े, बुलाया और पूछा। भाई कन्हैये ने जवाब दिया कि हुज़ूर! आपकी आज्ञा है कि 'मानस की जात सभै एकै पहिचानबो।।' अर्थात मैं जख़्मियों की, दुखियों की युद्ध के मैदान में सेवा करुँ। इसलिए जो दुखी मेरी सेवा का ज़रूरतमंद होता है, मैं सेवा करता हूँ। मैं, सच्चे पातशाह! केवल आपको पानी पिला रहा हूँ, आपके बख्शे नेत्रों से न हिन्दू दिखाई देता है न मुसलमान, आप ही सारी ओर खेलते दिखाई देते हो।

सूफी–सुब्हान अल्लाह, कमाल है।

सिंह जी–गुरू जी ने कन्हैये को गले से लगाया, भाई की पदवी दी और कहा शाबाश! इसी तरह करो। यह भाई कन्हैया युद्ध में जख़्मियों की सेवा करने के काम का जत्थेदार था*। इस प्रकार इसकी सम्प्रदाय चल पड़ी, घायलों की ये सेवा करते रहे, तबसे उनमें सेवा करनी, ज़ख्म बाँधने, मलहमें तैयार करनी, ताप के लिए गोलियाँ रखनी और सात गिलो+ निकालने, सेवा के काम शुरू हुए और चल पड़े। यह सब सेवा प्रेम सेवा थी, ये सिक्ख साधु अपना पेट भरने के लिए मूँज कूटकर निर्वाह कर लेते थे। आज तक यह सम्प्रदाय चल रहा है; जिसको "सेवापंथी" कहते हैं। इनमें ऐसे-ऐसे सेवक हुए हैं कि आपको दुनिया के सभी बड़े-बड़े सेवक भूल जायें।

फिर मैं आपको बता आया हूँ कि बुद्धूशाह सदैव गुरू जी की सेवा करता रहा है, यह प्रतिष्ठित मुसलमान था। एक और घटना है, जिससे पहले मैं एक प्रश्न करता हूँ कि आप मानते हो कि कोई आदमी दूसरे के दिलों के ख़्याल पढ़ सकता है?

बाबू–नहीं।

ऐनक वाला–क्यों नहीं, क्या आपने थाट रीडिंग (दूसरे के ख़्याल पढ़ लेने) और टैली पेथी (दिल से दिल की बातों की) साइंस (विद्या) पढ़ी नहीं? आजकल यूरोप अमरीका में यह बात सिद्ध हो गयी है और सभी पंडित मानते हैं।

सिंह जी–ध्यान करना जी! जो बात हमारे देश में अनोखी हो, वह हमारे सज्जन इस तरह से देखते हैं जैसे झूठ है, परन्तु जब विलायत वाले वही बात मान लें तो हमारे देश के भी कहते हैं अब ठीक है। अब तो आप मानते हो कि ख़्याल पढ़े जा सकते हैं? (सारे हँस पड़े)।

सिंह जी–श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी अगम्य पढ़ लिया करते थे। एक दिन मैदान-ए-जंग में एक मुसलमान सेनापति अपनी फौज में खड़ा सोच रहा था कि गुरू जी हैं तो फकीर,

* जैसे आजकल रैड क्रॉस (Red Cross) सोसाइटी है।

+ अब तक अड्डणशाहियों या सेवा पंथियों की धर्मशाला में मलहम और सात गिलो अभी भी बनता है।

फिर लड़ क्यों रहे हैं? यह ख़्याल पढ़कर गुरू जी घोड़े को एड़ी लगाकर उसके समीप जा पहुँचे और कहने लगे 'आँखे बंद कर और देख'। उसने क्या देखा कि दोनों ओर कई लोग मरे पड़े हैं। जब आँख खुली तो गुरू जी ने कहा, "मैं मारने में नहीं।

'जीआ मारि जीवाले सोई
अवरु न कोई रखै॥'

मुझे हुक्म है कि दुखियों की रक्षा करूँ। बस किसी के साथ मेरी शत्रुता नहीं है। मैं किसी को मार नहीं रहा।"

यह देखकर वह सेनापति माथा टेककर कहने लगा "मेरा चित्त उदास है, बताओ मैं क्या करूँ?" सतगुरू ने कहा: "तुम्हारा अंतर अभी साधना चाहता है, जाओ नाम जपो, कहो वाहिगुरू।" वह सेनापति उसी समय भजन करने के लिए मैदान छोड़कर चला गया*। इससे भी गुरू जी की निष्पक्षता साफ सिद्ध होती है।

यह बताते हुए कि एक आवश्यकता के समय ग़नी ख़ाँ, नबी ख़ाँ नाम के दो पठानों ने गुरू जी की आज्ञा में सेवा की थी। फिर देखो गुरू जी के पास कई मुसलमान विद्वान शरण में रहते थे। अनेक मुसलमान शिष्य थे। युद्ध उनके अन्याय करने वाले मुसलमानों के साथ थे। संगतों को लूटने वाले और फकीरों को सताने वाले हिन्दुओं के साथ भी थे।

बाबू–बहुत ख़ूब। मेरी यह शंका निवृत्त हो गयी कि गुरू साहिब समदर्शी थे? कृपा करके यह बताओ कि गुरू जी ने तीन विवाह क्यों करवाये थे?

सिंह जी–लम्बी कहानियाँ छुली हैं, पर ख़ैर! मैं संक्षिप्त कर बताता हूँ:–

पहली बात तो यह है कि जिसको आप इतिहास कहते हो वह तो गुरू साहिब का पूरा-पूरा उस समय किसी पूर्वी पश्चिमी ने लिखा नहीं। कोई टूटे फूटे वाक्य किसी किसी मुसलमान इतिहासकार ने लिखे हैं, जिनमें वैर का अंश मौजूद है, उनमें से किसी ने तीन विवाह नहीं लिखे, और जहाँ तीन विवाह लिखे हैं, उसको अपने ख़्याल में इतिहास का दर्ज़ा नहीं देते, फिर आप 'तीन विवाहों की बात' अमर घटना या ऐतिहासिक सच की शक्ल में किस तरह प्रस्तुत करते हो?

बाबू–यह इतिहास बिल्कुल ठीक है, पर मेरी प्रार्थना यह है कि मेरे अंदर संशय है, यह दूर कर दो।

सिंह जी–गुरू जी के विवाहों के सम्बन्ध में जो रिवायतों के हाल हैं, मैं सुना देता हूँ, नतीजा आप निकाल लेना।

गुरू जी का पहला विवाह जीतो जी के साथ हुआ, पर एक रिवायत है कि 'जीतो' पीहर का नाम था और ससुराल का नाम 'सुन्दरी' था। अगर यह रिवायत सच्ची हो तो दूसरा विवाह ग़लत हुआ। मैकालिफ भी लिखता है कि उसको यह ख़बर मिली कि सुन्दरी जी गुरू जी की दूसरी पत्नी नहीं थी बल्कि जीतो जी की ही ससुराल का उपनाम 'सुन्दरी'

---

* सैद खान इसका नाम था, इसके हाल के लिए देखो इसी पुस्तक का प्रसंग 'सैदाबेग शरणागत'।

था। एक और रिवायत यह है कि जीतो जी आनंदपुर में चढ़ाई कर गये थे (स्वर्ग सिधार गए थे)। तब दूसरी शादी सुन्दरी जी के साथ हुई। इस माई ने जीतो जी के चारों बेटे पाले, जिनमें से अजीत सिंह के साथ इनका अत्यधिक मोह हुआ। अगर यह रिवायत ठीक है तो आप के ख़्याल अनुसार इतराज़ न रहा। हर हाल में यह तो स्पष्ट है कि यह मामला अभी खोज चाहता है। इस हालत में रायज़नी की आवश्यकता नहीं। अब आओ तीसरे विवाह की ओर, जब गुरू जी दिन रात प्रचार और युद्ध के सामानों में व्यस्त हो गए तब कहते हैं कि जैसे ब्रह्मचारी होते हैं, हो गए। तब एक सिक्ख अपनी बेटी की डोली ले आया* कि हमने इसके बचपन से ही इसकी सतगुरू के साथ सगाई कर रखी है, अब विवाह हो जाये। सतगुरू ने इनकार किया, सिक्ख ने कहा, मैं प्रण कर चुका हूँ, लोग इसको माता बुलाते हैं, आपके दर पर ही इसकी ओट है, सारी कौम में से किसी ने इसके साथ विवाह नहीं करना। गुरू जी कहने लगे, भई। अगर इसी तरह कुँआरी रहना चाहे, और परमेश्वर का भजन करके परम पद पाना चाहे तो छोड़ जाओ। इस प्रकार जिस ग्रंथ के आधार पर आप कहो, कि यह गुरू जी का विवाह है, वहाँ ही लिखा है कि यह बीबी भजन बंदगी करने वाली योगिनी हुई, और सतगुरू जी के साथ केवल उनका पवित्र आत्मिक सुख लेने का सम्बन्ध रहा, शारीरिक भावना कभी नहीं हुई। साथ में यह बात सुन लो कि सिख लोग उनको क़ौमी माता समझते हैं, क़ौम खालसा गुरू गोबिन्द सिंह जी की नादी औलाद कही जाती है और वे आत्म पिता और साहिब देवां आत्ममाता कही जाती हैं। इससे साबित हो गया कि वे सारी उम्र कुँआरी, देवी रूप भजन की मूर्ति, ऊँची फकीर और सच्चे ईश्वर के साथ जुड़ी योगिनी रहीं। दिल्ली में जहाँ समाधियाँ हैं, सुन्दरी और साहिब देवां की दो ही समाधियाँ हैं।

बाबू–मुझे इन हालतों का पता नहीं था, अब तो मेरी समझ में तीन विवाहों का इतराज़ करना अपने आपको मूर्ख बनाना है।

सिंह–यह तो मैंने आपको बताया है सच, जो मुझे पता है, पर ये इख़लाकी बातें, जिनके द्वारा तुच्छ लोग बड़ों की आलोचना करते हैं, पैमाने हैं नापने के, जैसे कोई पर्वतों को टोपियों से मापे। आत्म जीवन बहुत ऊँची वस्तु है। जीवन और वस्तु है, हिसाब किताब और मुर्दा हिसाब किताब और बाते हैं। आप मुझे जन्म से हिन्दू, मज़हब के ब्रह्मू और झुकाव के ईसा की ओर झुके प्रतीत होते हो, ठीक है?

बाबू–जी हाँ।

सिंह–मैं निंदक नहीं, मैं आपको सलाह दूँगा कि महापुरुषों और हमारे बीच सदियों के फासले हैं, उनके हालात सुनकर एकदम फैसले और इतराज़ करने ठीक नहीं।

आज कोई माजरा हो जाता है, कल मुकद्दमा शुरू हो जाता है और अदालत को सच झूठ का निर्णय करने के लिए हजारों मेहनतें करनी पड़ती हैं, तो कहीं सच मिलता है, कई

* भाई मनी सिंह के गुर बिलास अनुसार यह घटना आप जी के दक्षिण जाते समय आगरे से विदा हो जाने के बाद की है। यही पता 'गुर सोमा' से लगता है। परन्तु सूरज प्रताप आदि ने पहले की लिखा है।

बार नहीं मिलता, शक रह जाता है और कई बार अदालत झूठ को सच मानकर बेगुनाहों को दण्ड दे बैठती है। जब अब के घटित हालात की छान बीन इतनी कठिन है, तब सदियों गुज़रे समय के हालात विचारने के समय हमें कितनी एहतियात की ज़रूरत है? आजकल की अदालतें शक् पड़ जाये तो फैसला बरखिलाफ नहीं करतीं, तब पुराने हालात पर जो संदेह वाले हों, कतई फैसले देकर आप महापुरुषों के साथ अन्याय कर बैठोगे। मसलन लो ब्रह्म समाज के बड़े राजा राम मोहन राय आपके चार विवाह थे। अब बताओ क्यों हुए? किस तरह हुए? क्या आप निर्णय कर सकते हो? (मेरी जीभ जले) मैं नहीं कहता कि राजा साहिब कितने विषयी थे कि उन्होंने काम अधीन होकर विवाह किये थे। अगर यह निर्णय न हो सके तो आप उनको कामी होने का दोष कैसे दे सकोगे? इसी तरह लो ईसा जी सन्यासी थे, परन्तु 'मेरी मेरडलिनी' नामक एक सुन्दर स्त्री ने उनके पैर चूमे, इत्र से धोये, अत्यधिक प्यार किया और ईसा जी ने कृपा की, और यह भी कहते हैं कि 'मेरी' पहले बुर चाल-चलन की औरत थी। ईसा जी सन्यासी थे, जैसे गृहस्थी के लिए आप दो विवाह बुरे समझते हो, इसी तरह सन्यासी का किसी स्त्री के साथ बात करना भी ठीक नहीं, ईसा ने उस स्त्री पर आत्म कृपा 'की' कहते हैं। पर क्या आज आप इस घटना को पढ़कर ईसा जी पर संदेह करके कह सकोगे कि आप निश्चयपूर्वक सच्चा फैसला कर रहे हो? कम से कम मैं इस घटना को पवित्रता की नज़र से देखता हूँ और उसको ईसा जी की आत्मकृपा की पात्र समझता हूँ। इसी तरह कृष्ण जी पर सोलह हज़ार गोपियों के पति होने का माजरा कहा जाता है, और ऐसे ही राम जी के भीलनी पर आत्मकृपा करने को बुरे अर्थों में बयान करने की मुँहफटता अख्तियार की जा सकती है। ऐसे ही मुहम्मद साहिब पर चार शादियाँ करने का दोष दिया जा सकता है और इसी तरह और। मेरा मतलब है कि सदियों के फासलों पर हो चुके महापुरुषों के गुणग्राही होना ठीक है, वितण्डावाद छेड़कर जो रस्म ईसाई लाये, ब्रह्म समाजियों ने सीखी और आर्य समाजियों ने बहुत भारी हलचल मचायी अपनानी नहीं चाहिए। केवल निंदा निंदा ही ढूँढने से हम इंसाफ नहीं करते, अन्याय करते हैं, और मेरी समझ में जो अन्याय करता है वह आदमी नहीं, आदमी की जानवरों पर सरदारी न्याय कर सकने में है। साथ में निंदा का भाव अंदर घुसाकर अपना मन भी निर्मल नहीं रहता।

दूसरी बात असली भेद की यह है कि महापुरुषों में एक शक्ति (अनख) होती है। वे सोच के दायरे से ऊपर रस और विस्माद में उठते हैं, आपकी पश्चिमी बोली में शायद ऐसे कहा जाये कि वे एस्थेटिक और 'ट्रैंसडैंटल' हालतों में जाते हैं। इसलिए उनकी तबीयत असली सच-निरपेक्ष सच-(Absolute truth) में लगी होती है, हम बसते हैं सापेक्ष (Comparative truth) में।

हम केवल सोचों और अनन्त चतुराई में हैं, जो फैसले हम करते हैं वे सापेक्ष सत्य (Comparative truth) तक जा सकते हैं, इससे आगे हम फैसला नहीं कर सकते। जब तक हम प्रशंसा द्वारा आश्चर्य और उससे उठकर 'विस्माद' के रंग में आप नहीं जाते,

आत्म रसियों की अवस्था को अनुभव नहीं कर सकते, इसलिए अपने फैसले करने में गलती करते हैं। आपके बड़े श्री केशव चन्द्र सेन पहले हमारी तरह ही इख़लाकी माप तौल करते थे। वे ठीक थे, पर साक्षेप सत्य तक, जहाँ तक सच के मुकाबले और झूठ और झूठ के मुकाबले और सत्य प्रकाशित होते हैं। एक दिन वे साधु रामाकृष्ण को मिलने के लिए गए, जाकर एतराज़ किया कि आप पत्थर पूजते हो। रामाकृष्ण पत्थर पूजक नहीं थे, चाहे उठे देवी उपासना से ही थे, रामाकृष्ण असल में अगम्य का ध्यानी हो चुका था। पर उस भक्त के नेत्रों में नीर आ गया, काँपा और किसी विस्माद में जाकर बोल उठा, क्या मेरा ध्यान इष्ट पत्थर है? हैं? पत्थर है? हैं?

कहते हैं कि केशव जी को इस समय आप विस्माद का झोंका आया। फिर आप उस दिन के बाद चुप हो गए। मेरी समझ में उनको उस समय ऊर्ध्व विस्माद (ट्रैन्सडैंटल) हालत का प्रकाश लगा, इसने सारा सापेक्ष मंडल भुलाकर अर्थात उससे ऊँचा करके अगम्य के ध्यान मग्न कर दिया, और पता चला कि पूरी महापुरुषता तो इस आश्चर्य और इससे आगे विस्माद और उससे आगे जाकर आती है। इस गहरी और अदब वाली विचार पर जो इंसानी ज़िन्दगी का असली भेद और असली आदर्श है, मैं आपको अर्ज़ करता हूँ कि महापुरुषों के लिए सीने में सत्कार (सम्मान) चाहिए, और उनके फैसले करने के लिए जज (न्यायकर्त्ता) बनने से पहले रस और विस्माद का इम्तिहान आप पास करना चाहिए। हाँ, मन के इलाही रंग, ईश्वरीय झुकाव, विस्माद के प्रकाश और अनन्त में लपता के हुलारे की कसौटी अपने पास चाहिए।

ऐनक वाला–बहुत खूब, सिंह जी! मेरी भी यही राय है। हिन्दुस्तान में और खासतौर पर पंजाब में यह बेअदबी चल पड़ी है कि अनजान से अनजान लोग उठकर कृष्ण और राम का मज़ाक करते हैं। और सभी बड़े-बड़े महापुरुषों पर दोषारोपण करते हैं*, यह देश का अभाग्य है, क़ौमी तबाही के निशान हैं। मेरी समझ में अंग्रेज़ी पढ़े हुए को 'कारलाइल की हीरोवरशिप' पढ़नी चाहिए। यही अवगुण यूरोप में निंदा करने का पड़ गया है, पर उस महात्मा ने लैक्चर देकर (जो उस किताब में हैं) बता दिया कि महापुरुषों के जीवन के आकाश को अपने बालिश्तों और चार अँगुलों से मापना अपनी न्यूनता प्रगट करना है।

बाबू–सिंह जी! माफ करना, मैं हरगिज़ निंदक नहीं, मेरा मत सबकी इज्जत करना है, मैं चाहता हूँ कि गुरू गोबिन्द सिंह मेरा आदर्श हो, पर जब मैं प्यार करने लगता हूँ तो संशय पड़ते हैं, इसलिए मेरा झुकाव ईसा की ओर है, पर वहाँ भी मुझे फिर शंका आ जाती है। आप उपकार कर रहे हो कि मुझे गुरू गोबिन्द सिंह जी के नज़दीक नज़दीक ला रहे हो।

सिंह जी–मैं जानता हूँ कि आप निंदक नहीं, परन्तु आप में एक कसर है, माफ रखना, सत्संग हो रहा है और यहाँ सच न कहना पाप है, चाहे वह सच कड़वा ही हो।

---

* यह समय पंजाब में बीत चुका है जब आर्य समाज के मंदिरों में उपदेशकों द्वारा निंदा ही निंदा का प्रचार होता था और ईसाई उपदेशक भी यही कुछ करते थे और आगे से उत्तर भी ऐसे ही मिलते थे।

ग़ाप में यह एक कमी बाकी है कि आप इख़लाक का एक पैमाना अपने मन में बनाते हो, मन से महापुरुषों को छोटा बड़ा करते हो। वाहिगुरू की रचना शक्ति, गुण, स्वभाव, आप केवल अपने मन के पैमाने से मापते हो, जहाँ यह मन न माना वहाँ झूठ। मैं कहता हूँ सारे धर्मों की गहरी खोज और उपनिषदों के पहले ऋषि से लेकर कपिल, शंकर से होते कैंट तक सारे फिलासफरों ने फैसला किया है कि हमारा मन निरपेक्ष (Absolute) सत्य को अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि यह मन अंत वाला (finite) है और वह निरपेक्ष सत्य (Infinite) अनंत है। फिलासफरों की बोली में ऐसे क़हते हैं कि वह पारब्रह्म 'देशकाल निमित्त से पार है (दूर है) और हमारा मन 'देश, काल निमित्त के बिना कुछ विचार ही नहीं सकता। जो कुछ हमारी समझ या अक्ल में आता है वह ज़रूर 'देश, काल, निमित्त' वाला होता है। इसी बात को भक्त लोग ऐसे कहते हैं कि–

'करते की मिति न जानै कीआ॥'

मोटी बोली में ऐसे कहेंगे कि टिंडों* को कुम्हार की क्या खबरदारी हो सकती है? अगर टिंडें सोचने बैठ जायें तो क्या सोचेंगी कि कुम्हार एक बड़ा सा मटका है। कई कहेंगी हमें उसने नहीं बनाया। वह अगर बनायेगा तो बर्तन नहीं रहेगा, आप टूट जायेगा। पर उनको क्या पता कि कुम्हार के शरीर की बनावट और तरह की है, तथा अस्तित्व और तरह का और दिमाग़ और तरह का है।

इसी तरह आप अपने मन के साथ–जो अनन्त का ज्ञान पा नहीं सकता–'अनंत' की गिनती करते हो। सारी सूरत, मूर्ति अपने मन से बनाते हो, जहाँ मन मान गया, वहाँ आप मान गए। इससे आगे उठते नहीं। परन्तु भक्तों की बोली में इस कर्म को मनमुखता कहते हैं, अर्थात अपने मन को अपना गुरू बना लेना। इस प्रकार इस तरह के बनाये ईश्वर रसूल महापुरुष असली रब रसूल महापुरुष नहीं, पर जीवों के अपने ख़्याली पुतले हैं।

बाबू (हैरान होकर)–फिर करें क्या?

सिंह–भय, अदब में इस मन को रखो और वह साधन करो, वह संयम करो, जिससे आपको एक बार रस, आश्चर्य और विस्माद का प्रकाश लगे, फिर आप स्वयं कायल हो जाओगे कि मन वाणी से परे कोई और हालत भी आने वाली होती है वह हालत अनंत (Infinity) का करिश्मा है।

फिर आप अपनी आत्मा को ऊँचा करो, मन की विचार का मंडल खुलेगा और बड़ा करो, ज्यों ज्यों मन एकाग्र करोगे त्यों त्यों आत्मा को अधिक से अधिक रस मिलेगा। अंत में आपको अनुभव (Realization) हो जायेगा कि 'निरपेक्ष सत्य' (Absolute truth) 'द्वन्द्वों से परे के सच' की शरण प्राप्त होना क्या है?

बाबू–अगर मन और अक्ल का प्रयोग न करें तो मूर्ख हो जाते हैं?

सिंह जी–मेरा यह मतलब नहीं, कि मूर्ख हो जाओ। मन बिना हम मर जायेंगे, और बुद्धि बिना धक्के खायेंगे। मेरा मतलब तो यह है कि यह न समझो कि मन बुद्धि आख़िरी

* मिट्टी के बर्तन।

पैमाना और सम्पूर्ण पैमाना है, जिनसे हमनें ज़िन्दगी के मर्मों और गहराइयों को मापना है, ये पैमाने कीमती हैं, जो हमें जंगलीपन से ऊपर ले आये और हमने इंसाफ, रहम और भलाई सीख ली। यह पैमाना कीमती है, जिसने सभी विद्याएँ ख़ोज ली हैं पर अब आप मानो कि आगे कुछ और है, उसके खोजने वाले बनो और महापुरुषों ने जो ज्ञान दिया है, उसको रहबर बनाओ। जब उनकी दी रोशनी में चलते आप अनुभव (Realization) में आओगे तब राय देना कि अमुक बात इस तरह है। महापुरुषों ने अनुभव पाया था, वे अनंत में गए थे, उनको अनन्त की लिव प्राप्त हुई थी। इसलिए जो ज्ञान वे देते हैं, वह उस ज्ञान से ऊँचा है जो केवल मन के ख्यालों से इख़लाकी पैमाने तैयार करने वाले देते हैं। हमारी बोली में उन आदमियों को–जो गुरू नानक देव जी के अनुभवी ज्ञान की रोशनी में अपने मन बुद्धि का मंडल ऊँचा करते हैं और आपको अनुभव तक ले जाने का यत्न करते हैं–'गुरुमुख' कहते हैं। अर्थात वे जो महापुरुषों की रोशनी में अनुभव नगर का सफर कर रहे हैं, जिन्होंने अपने मन को मुख्यता अर्थात रहबरी, अगुवाई नहीं दी, पर गुरू के ज्ञान को अपना रहबर बनाया है, और मन को उस रोशनी में चलाकर सत्य की खोज आरम्भ की हुई है या पा ली है। कारण वही जो मैंने बताया है कि अकेला हमारा मन 'अंत' में है, इसको उनकी शिक्षा, बुद्धि, ज्ञान, मदद और आशीष की ज़रूरत है, जिन्होंने 'अनन्त' में डुबकी लगाई है और उसकी 'रस अनुभवता' प्राप्त की है ताकि हम आप अनुभव तक उठ सकें।

बाबू–यह तो आपने मेरा वह संशय दूर कर दिया है जो मुझे सिक्खों से सदा दूर रखा करता था। मैं सिक्खों को 'आदम परस्त' समझकर फासले पर रहता था। आपके गुणों की क़द्र तो मुझे थी, पर मैं जानता था (माफ करना) कि आप अनपढ़ मूर्ख हो, जो आदमी गुरुओं की पूजा में गिरे पड़े हो। मुझे नहीं था पता कि आपकी खद्दर की पगड़ियों तले इस तरह की रोशन दिमाग़ी है। अब तो साफ हो गया कि आप आदमपरस्त नहीं, आप तो अनंत (Infinite) और (Absolute) पारब्रह्म के उपासक हो।

यह सुनते ही सिंह जी का रंग बदला, चेहरा लाली में आ गया और इलाही नाद में ये शबद गाये कि सारे मूर्ति की तरह अचल हो गए और विनती की तसवीर बन गए:-

हे गोबिन्द हे गोपाल हे दइआल लाल॥१॥ रहाउ॥
प्राण नाथ अनाथ सखे दीन दरद निवार॥१॥
हे समरथ अगम पूरन मोहि मइआ धारि॥२॥
अंध कूप महां भइआन नानक पारि उतार॥३॥ (मैलार म॰ ५)

सभी को नशा आ गया, कुछ देर झूम के आँखें खोलीं, वाह वाह की गुंजार हुई, सब के बाद सिंह जी के लाल हुए नेत्र खुले और बोले:–

'आदमपरस्त' सज्जन! हम 'आदमपरस्त' ज़रूर हैं, पर हम शुक्र है 'मनसुख' नहीं।

बाबू जी, ऐनक वाले जी! संत जी! आप सभी ईश्वर को खोजने वाले दिखाई देते हो, सच सच बताना कभी वह ईश्वर देखा है, कभी उसकी चमक लगी है, जिसके आप

खोजी हो? आपके हृदय एक शून्य के ख्याल को ईश्वर कहकर उपासना के वहम में रहते हैं, आपके अंदर वह 'अकालमूर्ति मन' नहीं है, जो 'अकालमूर्ति' की शरण का आधार लेता है। आप अनंत के ख़्याल को 'शून्य' के वहम में ख़ुदा कह रहे हो। वह 'अयोनि' आपके अंदर 'अकाल मूर्ति' होकर नहीं आया। शर्म न करना, सत्य का इकरार करना सत्य है।

सारे–सच यही है।

सिंह–हम मूर्ख हैं, सीधे हैं, अनपढ़ हैं, आदमपरस्त हैं, पर हमारे अंदर भय है कि हम (finite) अंत वाले हैं, हम इकरार करते हैं कि (Infinite) 'अनंत' को अपने मन का विषय हम नहीं बना सकते, हम इकरार करते हैं कि हमारा ईश्वर हमारे मन वाणी से अविषय (परे) है। हम इकरार करते हैं कि हमें ऐसे आदमी की आवश्यकता है जो मन बुद्धि से ऊँचा होकर 'सुधि'* में गया है और उससे ऊँचा भी। जिसका अपना आप रस और विस्माद की हालत में गया है, जिसने मन वाणी से उठकर अनंत (Infinite) में लिव लगाकर लीनता पायी है, जिसने अनंत (Infinite) को आत्मा की शरण में जाकर अनुभव किया है, उस अगम्य मर्द के ज्ञान की–उसके हृदय की–हमें ज़रूरत है। उसके हृदय में से अपने हृदय पर ईश्वरीय अक्स (प्रभाव) लेने की 'मनुष्य पूजा' की हमें ज़रूरत है। 'चितहि चितु समाइ त होवै रंगु घना।।'

उसकी अनुभवी रोशनी की हमें ज़रूरत है कि हमारा मन और बुद्धि अपनी (Infinite) की तलाश के सफर में रुकावटें न झेले और उस रोशनी की मदद से अनंत की 'अनुभवता' प्राप्त करे।

हम मानते हैं कि अनुभव वाला आदमी, अक्लमंद पंडित सयाने आदमी से कोई भिन्नता और कोई न्यारी विशेषता रखता है। उसको अनंत की 'रस गम्यता' है, समझदार को केवल 'अंत' की बातों की समझ है। पहले हम संसार के सभी महापुरुषों का सम्मान करते हैं, पर अपने सतगुरू जी को उनसे ऊँचा इलाही दर्जा देकर बहुत गहरा (Profound) सम्मान प्रस्तुत करते हैं, हाँ जी, यह हमारी–मैं फिर कहता हूँ–'आदमपरस्ती' है। इस 'आदमपरस्ती' का प्रकाश हमें अनंत में ले जायेगा, पंडित का प्रकाश हमें नेकी और विद्या की ओर ले जा सकता है, पर (finite) सीमारेखा की क़ैद में ही रहेगा। इसलिए हम 'पहले मर्द' के लिए अपने दिल में अनन्त सम्मान की नज़र रखते हैं, उसको गुरू, गुरू+ नानक, गुरू गोबिन्द सिंह कहते हैं और प्यार करते हैं, उसके अस्तित्व के साथ और व्यक्तिगत ताल्लुक (personal connection) के साथ अपना प्यारा पिता समझकर उसकी रोशनी में उठते हैं। यह हमारी 'आदमपरस्ती' है।

हम अपने मन के शिष्य नहीं, पर उस गुरू के शिष्य हैं, जिसने हमें वाहिगुरू का सच्चा ज्ञान बताया और विस्माद और अनंत के अनुभवी जीवन की समझ डाली है। उस

* तिथै घड़ीअै सुरा सिधा की 'सुधि'। Intution के फलसफे का ख़्याल 'सुधि' के नज़दीक पहुँचता प्रतीत होता है।

\+ गुरू हमारे में केवल उस्ताद का नाम नहीं, पर आदमी से देवता बना देने वाले को जो हमें अनंत में ले जाता है। देखो आसा दी वार।

गुरू का आदर प्यार, निजी रिश्ते का प्यार हमारी 'आदमपरस्ती' है, और हम फ़ख़ के साथ इसके इकरारी हैं। मन हमारे पास है और इस पर हम बुद्धि का साँकल रखते हैं, मति को साईं की रक्षा में रखते 'सुधि' के दर्जे तक ले जाते हैं। ऐसे हम प्रबुद्ध होकर 'आदमपरस्त' हैं।

सूफी–मरहबा! इस आदमपरस्ती के, यह सच्ची ख़ुदा परस्ती है। मैं हैरान हूँ कि कालेजों में सांसारिक विद्या पाने के लिए हमारे नौजवानों को हो चुके विद्वानों के ज्ञान की आवश्यकता तो है पर सच्ची विद्या वाले के पास गुरू नानक जैसे महापुरुषों के अनुभव की ज़रूरत हमें नहीं और उनके अस्तित्व के लिए किसी सम्मान और प्यार की ज़रूरत नहीं। संसार की यह समझ आश्चर्य है। आश्चर्य है।

साधु–सत्य कहा है, मैं सांख्य योग, वेदान्त का पंडित हूँ, सनातन और आर्य सभी मत देखे हैं, हमारे योगदर्शन में 'वीतराग को विषय करने वाला चित बनाओ लिखा है*। वहाँ हमें आदमपरस्ती याद नहीं, यहाँ व्यावहारिक जीवन वाले फकीर सिक्खों को हम समझते नहीं रहे। पर आज हमें साफ हो गया है कि सिख असल प्रतिज्ञा वाले, ख़ुदा परस्त और व्यावहारिक ख़ुदापरस्त हैं। इनका गुरू साहिबान की इज्जत करना, प्यार करना, बौद्धिक, व्यावहारिक, दलीली और मंत्र से सिद्ध अभ्यास है, बल्कि रूह की कुदरती भूख का यही एक दारू है।

सूफी–मैंने एक प्रार्थना करनी है, नाराज़ नहीं होना। मैं सिक्खों को अहिले-किताब समझता हूँ और गुरू साहिबान को अल्लाह के रसूल मानता हूँ, 'कौम के रसूल से प्यार' का मैं ज्ञाता हूँ। भक्तों के राम कृष्ण के प्यार का मैं वाकिफ हूँ और ईसाइयों की ईसा भक्ति को भी जानता हूँ। पर जिस नेक तरीके के साथ सिंह जी ने अपनी अपने पैग़म्बरों के साथ प्रीत के मर्म बयान किये हैं वे अक्ल औद दलील के साथ भी साबित कर दिए हैं। क्या आप सब साहिब मेरे साथ सहमत हो?

सारे–बेशक़।

सूफी–मैंने आपका ध्यान एक चौकी तले लाठी फिराने वाली पंजाबी मिसाल अनुसार दिलाना है कि बिल्ली तो वहाँ छिपी बैठी है, आप आँगन में डंडे ऐसे ही मारते रहे हो।

वह यह है कि कौन आदमपरस्त नहीं, कोई है इंसान जिसके दिल का सहारा कोई दूसरा इंसान नहीं है? शर्म की बात नहीं, मन सहारे के बिना कभी रह ही नहीं सकता, किसी के मन का सहारा पत्नी है, किसी का पुत्र है, किसी का मित्र है, किसी की कोई सहेली है और किसी का कोई है। बात क्या, मनुष्य के अन्दर मनुष्य का आधार है। इससे जो अपने आप को खाली करता है अकसर पागल हो जाता है। यह बात चोट डालने वाली नहीं, गहरी सोच वाली है।

अब विचार करो जिन्होंने दिलों का आधार स्त्रियों से, पुत्रों से, दोस्तों से उठाकर उस आदमी पर लगाया है जिसको हम रसूल अल्लाह कहते हैं और मेरी समझ में सिक्ख 'गुरू'

* बीतराग विखयं वा चितू।१।३७।। अर्थात–या वीतराग पुरुष को विषय करने वाला चित (मन को स्थित कर लेता है)।

कहते हैं, उन्होंने मन ऊँचा किया है कि नीचा? जो लोग माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, स्त्री का आधार लेकर विचर रहे हैं उनको क्या अधिकार है कि पहले अपने अंदर बसती 'आदम परस्ती' को दूर न करें और उन लोगों पर एतराज़ करें जिन्होंने संसार से नज़र ऊँची करके परमेश्वर की ओर लगायी है और वाहिगुरू के हुक्म वाले जीवन पर चलने के लिए एक पूर्ण स्वर्ग से आए रसूल के ऊँचे जीवन को अपना आदर्श बनाया है, और दिल का आधार, अन्तर का सहारा, प्यार का केन्द्र उसको बनाया है? हाँ उसको, जिसको 'सभ तों वडा सतिगुर नानक' वे मानने का फ़ख्र रखते हैं।

ऐनक वाला—बहुत खूब! यह तो एक दिमागी नियम है कि हर इंसान का आधार (टेक) दूसरे इंसान पर है। मेरी समझ में तो जिनकी प्रीत का केन्द्र मित्रों, रिश्तों, विकारी सम्बन्धों से उठकर रसूल, अवतार या गुरू हो गया है, उन्होंने हमारे शास्त्रों के अनुसार मोह माया को जीत लिया है, और ऊँचे इंसान हैं। उनके दिल दुनिया से ऊँचे हैं, वाहिगुरू के नज़दीक जा रहे हैं। उनका उसूल वह ज्ञान है जो वाहिगुरू से अनुभव करके गुरू साहिबान ने दिया। उस ज्ञान के व्यावहारिक जीवन बिताने के लिए उनका आदर्श गुरू जीवन है और मन का आधार गुरू है और भावनाओं का प्यार केन्द्र और मदद दाता 'गुरू' है।

सिंह जी—इंसान में गुरू साहिबान ने 'अनंत के लिए' 'ज़िन्दगी के गुह्य मर्मों के लिए', 'महापुरुषों के लिए', 'सुन्दरता के लिए' और 'अच्छाई' के लिए, इकरार और सत्कार (worship) प्रवृति डाली थी, पर बदकिस्मती से ईसाई साहिबान ने आकर अपने 'अस्मतुल अंबिया' याने "पैग़म्बर बेगुनाह चाहिए" का मसला ऐसे ईर्ष्या वाले रंग में सुनाया और इसके सिलसिले में कृष्ण आदि अवतारों के जीवन पर हमले किये जिससे हिन्दुओं (आर्यों) ने सलामती इस बात में समझी कि हम भी राम कृष्ण की तो निंदा करें और अपना आधार अन्य ओर ले जायें, इसलिए इनकार की प्रवृत्ति पंजाब में चली। सिक्खों ने भी इनकार उनके पीछे लगकर सीख लिया। यह तो मैं भी जानता हूँ कि इतने इंनकार की ज़रूरत थी, कि जो बातें बुद्धि से नीची और बुरी वहमी लग गयी थीं, काट दी जाती; परन्तु यह इनकार इतना बढ़ा है कि पंजाब में सिवाय परस्पर खानाजंगियों के और हर अच्छी बात से जो बुद्धि से थोड़ी भी ऊँची हो, या जिसकी हमें आप ही समझ न हो—हम इनकार में सलामती देखते हैं। इस सुख में रहने के ढंग ने खोज, तलाश, अध्ययन, साधन के दरवाज़े बंद कर दिए हैं। ऊपर से साइंस के अध्ययन ने दिख रहे पदार्थों की खोज और सिद्धान्त बताकर नौजवानों को इस भ्रम में डाला है कि बस कुदरत यहाँ बस है। यह पता नहीं लेते कि जैसे दृश्यमान है इस तरह दृष्टा भी है। जैसे उसकी विद्या है, इसकी भी है। हमने मादा (matter) के भेदों को तो कुछ खोजा है, पर रूह और ज़िन्दगी की साइंस हमने नहीं खोजी। हाँ जी, यह जो अंदर हमारा अंतर बैठा है, इसके भी कोई मर्म हैं, इसकी भी कोई विद्या होनी चाहिए, उस प्रकृति की भी खोज चाहिए जो सारे पदार्थों की गहराइयाँ खोज कर ला रही है। जिन्दगी के गहरे और गुह्य (deep और profound) भेदों की ओर कोई अध्ययन और खोज नहीं है, इसलिए पंजाब का आजकल का मज़हब इनकार की ओर

झुकाव वाला है, या इसके हर मज़हब में 'इनकार' प्रधान है, इकरार नहीं रहा या उड़ रहा है। जैसे इकरार के चारों ओर वहम और भ्रम लगकर इसकी चमक मैली किया करते हैं, वैसे ही 'इनकार' अंत नास्तिकता पर जाकर ख़त्म हुआ करता है, और नास्तिकता या पूर्ण इनकार जिन्दगी की खूबसूरती को कत्ल करता है, ऊँचे भाव और ऊँचे अहसास इंसान के कम हो जाते हैं। जैसे हिरण्यकश्यप पंडित था, पर इनकार का पंडित था, उसकी नास्तिकता उसका अंत और उस समय की सभ्यता (civilization) की तबाही थी। अब इस समय पश्चिम में जो ज़िन्दगी के मर्मों से मुँह मोड़कर केवल मादी (material) तरक्की की गयी है, उसका फल यूरोप की परस्पर ईर्ष्या, बेचैनी और भयानक युद्ध हो रहा है*।

ऐनक वाला–ठीक है पंजाब में 'इनकार' की प्रवृत्ति ने बहुत भयानक शक्ल अपना ली है।

सिंह जी! आपसे आज जीवन मर्मों के आदरयोग्य इशारे सुनकर मुझे अपना फिलासफी का अध्ययन (study) सारा लाभदायक हो गया है। मेरी समझ में गुरू साहिबों के जीवन का अध्ययन फिलासफी में जो कुछ सुन्दर है उसका व्यावहारिक दर्शन है और ख़्याल मण्डल में उससे भी ऊँचा रंग है।

साधु–ठीक है, मेरे ख़्याल ऊँचे हो रहे हैं, पर मैं सन्यासी हूँ। बताओ, माया फिर से धारण करुँ तो प्रण से गया, अगर इस तरह रहूँ तो कैसे रहूँ?

सिंह जी–एक बार सन्यासियों ने श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी को कहा कि आप अवतार हो, वर्णाश्रम की मर्यादा कायम रखो, आपने गृहस्थियों को सभी अधिकार दे दिए हैं, सन्यास मिटा दिया है। रोडा जलाली एक फकीर भी यही बात कर रहा था। सतगुरू ने उस समय सन्यासियों की चिप्पियों+ पर से लाख उतरवायी तो मोहरें निकलीं और रोडे जलाली की टोपी में से मोहरें निकलवायीं और कहा: सन्यासियों फकीरों के पास यह माया क्यों है? वे बोले निर्वाह के लिए। सतगुरू बोले: मेरे बनाये 'अनंत' में लगन रखने वाले गृहस्थियों के पास माया भी निर्वाह के लिए है, फर्क इतना है कि किसी ने चिप्पियों पर चिपका ली, किसी ने टोपी में टाँक ली और किसी ने जेब में रख ली। सन्यास दिल का है। वास्तविक संयाय यह है कि वाहिगुरू के साथ प्यार हो। अगर दुनिया से विरक्त हो गया और कर्त्तापुरुष अकाल मूर्ति 'अनंत' के साथ जुड़ा न, तब सन्यास नहीं, दिलगीरी है। अगर अंदर लगातार लगन कर्त्तापुरुष के साथ है, तो फिर गृहस्थ ऊँचे से ऊँचा सन्यास है।

एक और आदमी इसी कमरे में था, जो अब तक चुपचाप पूरे ध्यान के साथ सुनता रहा था। आपका लिबास सारा बिलायती था, केवल पगड़ी देशी थी। आप बोल पड़े:-

सिंह जी! मैंने आपके जवाब और विचार सुने हैं और खुश हुआ हूँ। गुरू गोबिन्द सिंह जी का मैं बहुत ही सम्मान करता हूँ, परन्तु मेरा ख़्याल और है, मैं समझता हूँ कि

---

* पहला युद्ध जो १९१९ के लगभग खत्म हुआ था। बाद में फिर (१९४२) में उससे महाभयानक युद्ध हुआ।

\+ दरियाई नारियल के छिलके का पात्र, जो फकीर पानी और भिक्षा के लिए रखते हैं।

हिन्दुस्तान को मज़हब ने डुबोया है। हमारे बुज़ुर्गों को ज़रूरतें कम थीं, गेहूँ और दूध शक्कर यहाँ आम हो जाती है। कपड़े की, ऋतुएँ गर्म होने के कारण आवश्यकता ही कम है। ज़िन्दगी की ज़रूरतें कम होने के कारण हमारे बड़ों को उद्यम और प्रयत्न की कम आवश्यकता पड़ती रही है, ऊपर से अत्यधिक गर्मी ने उनके स्नायु ढीले कर दिए और माँसपेशियाँ नरम पड़ गयी, इसलिए सुख में रहने के आदी हो गए और अपने ख़्यालों को 'ज़िन्दगी क्या है?' के पिटारों में डालकर उम्रें और सदियाँ निकाल गये। वैराग्य और त्याग के उपदेशों को कमज़ोर कर दिया। सारी बातों का फल कायरता और कमज़ोरी होकर देश, क़ौम अपाहिज हो गए।

इस तरह की मृतक दशा से उठाकर ज़िन्दगी की सामने आई मुश्किलों में मर्द बनाकर खड़ा करने और यत्न करके जीतने की आशा के मज़बूत कमरबंद हमें बँधवाने वाला शेर मर्द गुरू गोबिन्द सिंह है। मेरे अंदर उनकी ऐडमीरेशन (महिमा) यह है कि उन्होंने हमें मज़हब के गोरखधंधे में से निकाला, स्वप्नावस्था से बाहर लाये। जो क्लेश हमारे चारों ओर थे, उनके लिए बल भरा, जो मुर्दापन हमारे अंदर था, उसको दूर किया। हमें जवान, तगड़े, शरीफ (भले पुरुष), पर मेहनत करने वाले, मुश्किलों के आगे जवाँमर्दी के साथ उनको हल कर लेने वाले जीते जागते मर्द और पंडित बना दिखाया। पहले स्वर्गों के नशे में कामचोर होने की जगह अब अपने चारों ओर स्वर्ग बना लेने का ढंग सिखाया। उन्होंने जो सिंह पैदा किए यह कोई रावलों का टोला नहीं, पर जो उनकी आवाज़ से मर्दानगी और इंसानियत* के जज़्बों में आकर सचमुच के आदमी बनकर खड़े हो गए कि इन हाथों से हमने सुख पाना और सुख देना है, उनका नाम सिंह था। पश्चिम के लोग दिखने वाले संसार में उन्नति करके अनेक साइंसों के ज्ञाता और सांइस के जरिये रेल, तार, जहाज़, डाक, हर तरह के सुखों वाले पंडित हो गए ओर हम स्वर्ग स्वर्ग करते सब विद्या भुलाकर वहम और भ्रम के नरक में पड़ गए थे। गुरू गोबिन्द सिंह मर्द ने हमें नरक से निकाला और व्यावहारिक स्वर्ग का रास्ता बताया। मैं ऐसे गुरू जी को मुक्तिदाता समझकर उनकी महिमा करता (admirer) हूँ, आपने अब और और आदर्श बताए हैं, जिनको मैंने बहुत आदर के साथ सुना है, पर मुझे डर लगता है कि क्या आपके ख़्यालात में कुछ गंध उसी पुरानी 'स्वप्न-धरती' की तो नहीं है?

सिंह जी—अगर आप आज्ञा दो तो आप का ख़्याल मैं अपने शब्दों में बताऊँ और फिर गुरू आदर्श सुनाऊँ?

नये बोले सज्जन—बहुत अच्छा।

सिंह जी—आपका मतलब यह है कि 'हिन्द को मज़हब ने डुबोया' पर मैं कहता हूँ कि मज़हब ने नहीं पर इसके ग़लत प्रयोग ने, जैसे कि साइंस के ग़लत प्रयोग ने दुनिया में दुख और पीड़ा बढ़ाई है। अगर आपके मतलब को मैं और स्पष्ट करके बताऊँ तो यह

---

* Manliness और Humantarian.

है कि आप चाहते हो कि हम केवल और केवल 'मादी* तरक्की' करें पर अंतर की खोज परख और उन्नति न करें। ठीक है?

नये बोले सज्जन—जी हाँ।

सिंह जी—आपको भय यह पड़ रहा है कि अंतर की ओर रुख़ करने पर इंसान अपनी बाहर की हालत बिगाड़ लेता है और मुर्दा हो जाता है।

नये बोले सज्जन—ठीक है।

सिंह जी—गुरू गोबिन्द सिंह जी का आपके इस ख्याल के साथ मेल नहीं। उनका आदर्श यह है कि आदमी की फितरत (Nature) के दो पहलू हैं एक 'दृष्टा' और दूसरा 'दृश्यमान'। अगर दोनों में निपणता है तो तरक्की है, नहीं तो टेढ़ी बात है। आओ देखो:—

हिन्द ने अन्तरात्मा की ओर ख़्याल किया तो बाहर वाली हालत अच्छी नहीं रही, और पश्चिम ने बाहर वाली हालत पर सारा ज़ोर लगाया तो अंदर की हालत बिगड़ रही है। मेरे कहने की आवश्यकता नहीं, आप जानते हो कि 'सुख' जिसको कहते हैं वह पश्चिम में भी नहीं वहाँ भी अशांति और घबराहट प्रधान है। मुझे अमरीका और यूरोप के कई विद्वान प्रोफैसरों को मिलने का समय मिला है और वे भी यही बात कहते हैं। और यूरोपीय युद्धों को आप देख लो।

इस प्रकार अनुभव ने बताया है कि दोनों परिस्थितियाँ टेढ़ी हैं। उन्नति इस बात का नाम है कि आपको दृश्यमान के पदार्थों (Objects) की विद्या भी आती हो और आपको दृष्टा की विद्या भी आती हो। जीवन के हद से हद सौ वर्ष हमने दृश्यमान में निकालने हैं और बाद में हमारे दृश्यमान के हिस्से ने मिट्टी राख हो जाना है और दृष्टा के हिस्से ने मरकर बाकी रहना है। यह बात भी अब पश्चिम की कई रूहानी सोसाइटियों के बड़े-बड़े साइंसवेता (जैसे आलीवर लाज) तसलीम करते हैं। इसलिए अगर हम दृश्यमान के सौ वर्षों के लिए विधा की खोज करते हैं तो (चाहे आप आस्तिक हो चाहे नास्तिक) यह ज़रूरी है कि अंदर बसते उस अपने हिस्से की—जो सारी विद्याएँ खोजता है, जो दलील करता और चेतन है—खोज करें और इसके भी मर्म ढूँढे कि आया यह हमारा अपना आप क्या है? अगर आकाश की गहराइयों में, तारों और नक्षत्रों, स्वर्ग पथों+ और धुंध तारों की खोजें कर रहे हो, तब क्या तुम्हारी अपनी अंदर की फितरत का तुम पर कोई अधिकार नहीं कि तुम इसको भी जानो कि यह क्या भेद वाली ताकत अंदर काम कर रही है, जिसने सारी विद्याएँ (साइंसें) खोज ली हैं?

दूसरा इस विद्या की एक गूढ़ बात जो गुरू जी ने खोली है, वह अगर आप समझ लो तो आपको तसल्ली हो जायेगी। वे बताते हैं कि अंदर उदासी, ग़म, गिरावट, निराश रहना, यह अन्तरात्मा की उन्नति नहीं। यह आलस और दारिद्रय है, यह तमोगुण है, यानि मन की दशाओं में से सबसे नीची दशा है। वे बताते हैं कि अगर अन्तरात्मा में जागृति पैदा

* Material.

\+ Milky way.

होगी, तो वह ऊँची उठेगी, उसमें बल भरेगा, और ऊँची होकर वह दृश्यमान से अपने आप को ऊँची और अलग अनुभव करेगी और उसकी दशा हर समय खुशी की होगी, उत्साह की होगी, ताकत की होगी, अर्थात वह चढ़ती कलाओं में रहेगी। मैं आप को बताता हूँ कि उन्नत हृदय की यह दशा बताने के लिए उन्होंने शब्द 'चढ़ती कला' आप बनाया था, जिसका अर्थ कुछ समय से आम सिक्ख भी भूल रहे हैं। जिस आदमी के दृष्टा हिस्से (Subjective Nature) की नींद खुली है, वह अधिक विद्वान और अधिक तगड़ा हो जाता है, अधिक मज़बूत और आनन्दित रहता है। इसलिए गुरू साहिब के बताए मज़हब ने हमें एक मजबूत अस्तित्व वाले बनाना है, अचंचल आचरण (Character) वाले बनाना है तथा एक व्यक्तित्व बनाना है जो प्रत्येक पहलू से उन्नत हो, तब वे बाहर के जीवन में हमें मुर्दा किस तरह करेगा? बाहर का जीवन हमारा अंदर के रुख़, झुकाव (Attitude) से बनता है। यह पक्का सिद्धान्त है जिसका दिल डर वाला है वह खटका होने पर उठ भागेगा, जिसके अंदर प्यार है उसका व्यवहार हमदर्दी का होगा। जिसका दिल ऊँचा है वह दरिद्र नहीं होगा।

इसलिए जो भ्रम आपने खाया है यह है कि हमारे अंतर का जागरण हमारे अंदर ग़म, उदासी, दारिद्रय और कुढ़न पैदा करेगा। हमारे आदर्श के अनुसार वह धर्म धर्म ही नहीं, वह दृष्टा जी की विद्या, विद्या नहीं है जिसके आने पर अन्तरात्मा में अभय, ताकत, उत्साह, प्यार, खुशी, प्रफुल्लता और कमल पुष्प जैसी प्रसन्नता नहीं आयेगी। आप स्वयं ही सोच लें कि जब अन्तर में उत्साह, बल, अभय, एकाग्रता, प्यार होगा, तब उस आदमी का जीवन और व्यवहार दारिद्रय, मुर्दापन, कायरता और ढीलेपन के होंगे, या साहस वाल, उद्यम वाले, होश वाले और सुखदायी?

नये बोले सज्जन–ठीक है, यह तो स्पष्ट है।

सिंह जी–फिर आप ही बताओ कि जब गुरू जी ने मज़हब का आदर्श यह बताया है कि यह एक प्रसन्नता है, खुशी* है, रस है, ताकत है, बल है, हावी आचरण है, फिर शांतिमय और स्वादिष्ट है, तब आपका एतराज़ आप ही हल हो गया। दूसरे ये बातें सतगुरू ने जुबानी ही नहीं कीं, करके बताई हैं।

गुरू नानक किसी कंदरा में लेट कर, मैले फटे कपड़ों में सोकर दिन नहीं गुज़ार गए। कुल उस समय के जाने संसार में घूमे और घर-घर यह नाद सुनाया कि इंसाफ पर विश्वास करके, अपने असल को पहचानकर, अंतर को वाहिगुरू प्रेम में डालकर एक ईमानदारी का ऊँचा, पवित्र सुन्दर और बलवान जीवन व्यतीत करो और सभी को प्यार करो। आप जिस जिस को मिले सब पर जीत प्राप्त की। सफर तब के कितने कठिन थे, पर उन्होंने कितने लम्बे लम्बे सफर किये?

---

* नानक भगता सदा विगासु।। जपुजी।

दूसरे गुरू जी उसी तरह रस निमग्न और साहस वाले थे, तीसरे सतगुरू ७० वर्ष की आयु से १०५* वर्ष की बड़ी उम्र में कितना साहस उद्यम और ऊँचे पर–स्वार्थ का जीवन व्यतीत करते रहे हैं। इसी तरह सभी सतगुरू हुए हैं।

दसवें शरीर में व्यावहरिक आवश्यकता के लिए आपने, आपको पता है, जो कुछ किया। व्यावहारिक तौर पर जो सिक्ख बने उनके जीवन पढ़ लो, बचित्र सिंह, उदय सिंह, संत सिंह, संगत सिंह, चालीस मुक्ते, पाँच प्यारे, चार अपने पुत्र, मनी सिंह, तारू सिंह और मैं कितने गिनूँ? किस आत्म आरूढ़ता के लोग पैदा किए जो दृष्टा में भी उन्नत थे और दृश्यमान में भी अपने समय का उत्तम से उत्तम काम कर गये हैं।

इसलिए सज्जन जी! अन्तरात्मा की विद्या को भुला देना ठीक नहीं, अन्तरात्मा को रसदेश ले जाना, प्रसन्नता में रखना, जो वाहिगुरू की ओर झुकाव रखने पर होता है, ज़रूरी है, और अन्तरात्मा जब सुखी और निज ठिकाने, अपने आधार पर होगी तो उसकी दृष्टि दुरुस्त होगी, और उसी की रोशनी में बाहर वाला जीवन ठीक सुखदायी बना सकेंगे।

नये आये–(थैंक्स) धन्यवाद है! पर मज़हबों वाले परस्पर लड़ते क्यों हैं?

सिंह जी–यह उनकी भूल और तंगदिली है। गुरू जी तो सिखाते हैं कि नाम जपो, भाव अंदर से दृष्टा वाहिगुरू के साथ लगे रहो और मन को चढ़ती कलाओं में रखो और सभी का भला करो, यह हमारी रोज़ की अरदास है–नानक नाम चढ़ती कला, तेरे भाणे सरबत का भला।

नये आये–ठीक है, जिस मज़हब के ये आदर्श और नियम हैं, वह बेशक सुखदायी वस्तु है।

ऐनक वाला–जो कुछ आपने बताया है, यह असल सन्यास है जो दीन दुनी के सुख देता है। मेरा आदर्श अब गुरू जी हों।

सिंह जी–मैंने एक बात और कहनी है:- महापुरुष बिना संसार सूना है, महापुरुष में एक बहुत ऊँची अगम्य की कला होती है जो आम इंसानों में नहीं होती। आप पश्चिमी विद्या पढ़े हो, ऐसे आदमियों को, जो अलौकिक कविता, या अजीब चित्र संगीत बना लेते हैं या दिल बेधने वाले या साइंस के मर्म खोज निकालते हैं, या देश राज्य आदि प्रबन्धों में ग़ैर मामूली काबलियत दिखाते हैं, उनको जीनियस (Genius) कहते हैं। बताओ हरेक आदमी 'जीनियस' होता है?

सभी ने कहा–नहीं, कोई विरला, कभी।

सिंह जी–फिर महापुरुषों के कलावान होने से इनकार करना क्या अर्थ रखता है?

महापुरुष एक अगम्य की कला से कलाधारी होता है। उसमें कोई अकथनीय ताकत है। हमारे सामान लकड़ी काठ हैं, पर कलावान एक जलती बिजली है। हम में एक मुर्दापन

* लगभग ७१ वर्ष की आयु में सेवा में आये, १२ वर्ष सेवा और २२ वर्ष गुरिआई की (गुरू पदवी धारण की)।

है, उसमें एक अमर जीवन है। वह मामूली इंसान नहीं, वह कोई ताकत है, बल है, सामर्थ्य है, खूबसूरती है, तेज है, प्रताप है, न झुकना है, निर्भयता है।

वह कभी कभी आता है, संसार में जब कोई बुराई बहुत फैल जाती है तब चक्कर मारता है और अपनी अग्नि से उस बुराई को दग्ध करके इंसानी ख़्याल को पलटा दे जाता है। मेरी अक्ल, अनुभव, विश्वास में यह आया है कि गुरू नानक देव, गुरू गोबिन्द सिंह कलावानों, कलाधारियों, महापुरुषों सब बड़ों से ऊँचे दर्जे पर हैं। मैं महापुरुषों का उनको सरदार मानता और प्यार करता हूँ, बल्कि मैं तो उनका ऐसे ज़िक्र करना–जिस तरह करता हूँ–अपने लिए गुस्ताखी समझता हूँ। वे बहुत ऊँचे और बड़े 'गुरू नानक देव गोबिन्द रूप' हैं। जैसे एक लोहे का गोला आग में पड़ा आग रूप होता है, ऐसे अमर, अनंत, वाहिगुरू की अलूहियत से वे ईश्वरीय जलाल* से सरशार, जमाल+ और जलाल रूप इलाही जल्वा@ हैं। मेरा ईमान यह है। सारे–बेशक़ आज हमें भी उनके आदर्श ऐसे ही प्यारे लगे हैं और हमारे दिलों में श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी का आदर्श निवास पा गया है और हमें भी आप की तरह प्यारे और मीठे लगे हैं। वे आप के ही नहीं, सर्वकालीन, सर्वदेशीय, हमारे सभी के अपने हैं।



* तेज।

\+ सुन्दरता।

@ प्रकाश, शोभा।

९९ आँखों से देखने वाले प्रेमियों के प्रेम भरे संदेशे*

कलग़ीधर श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की मोहिनी मूर्ति संसार में हर आँख को भायी। पुरातन नवीन जिस इतिहासकार ने उनका ज़िक्र किया, किसी न किसी ख़ूबी की महिमा की। जिस दृष्टिकोण से जिसने देखा मज़बूर हुआ कि महिमा करे। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, अंग्रेज़ सारे इतिहासकारों ने यश गाया। सिक्खों के लिखने को अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण के रूख़ेपन से अधिक श्रद्धा और प्रेम भी कारण समझा जाये तो लाला दौलत राय जैसे आर्यों का 'श्री गुरू जी को राम, कृष्ण, पैग़म्बरों से बड़ा कहना और यह लिखना "सारी कौमें अपने बहादुरों और शहीदों पर जिस क़द्र फ़ख्र करें ज़ेबा, लेकिन जो फ़ख्र हिन्दुओं को गुरू गोबिन्द सिंह का है उसका मुकाबला रूए आलम में, शशदर जहान में और कोई क़ौम नहीं कर सकती।" और फिर कहना कि 'संसार को फ़ख्र हो सकता है तो गुरू दसवें पातशाह जी का' बताता है कि कैसा जबर्दस्त अस्तित्व गुरू जी का है जो अन-उपासकों से भी महिमा करवाता है। लाला शिवब्रत लाल राधास्वामी गीत गाता है। ग्रिफिन लिखता है कि:-

"गुरू गोबिन्द सिंह जी ने तैयार बर तैयार सजा सजाया खालसा अपने दिमाग़ से इस तरह पैदा करके रख दिया जिस तरह बृहस्पति ने देवी मैनिरवा पैदा की थी।" कनिंघम का उनके काम की श्लाघा, और ज़िन्दगी के बाद काम पूर्ण होने में उनकी अक्लमंदी और काम करने की सुन्दरता की श्लाघा करना बताता है कि इतिहास सारा उनकी महिमा करता है। पर आज हम बाद में हुए इतिहासकारों की गवाही नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि कोई ऐसा प्रेमी मिले जिसने गुरू जी को देखा हो, प्यार किया हो, पास रहा हो, फिर विद्वान हो, विवेक वाला हो, सांसारिक विभूति वाला हो तथा जिसने गुरू जी के गुणों पर आशिक होकर कोई कुर्बानी की हो, वह अपनी जुबान से हमें गुरू जी की आत्मिक सुन्दरता सुनाये। वह कहे: यह मैंने आँखों से देखा है, मेरे साथ ऐसे हुआ है, मैंने यह असर आज़माया है। जब हम यह अभिलाषा करते हैं तो हमारे सामने एक सुन्दर मूर्ति आ खड़ी होती है। गज़नी का जन्म है, लम्बी सुन्दर डील है, आँखों में नम्रता और समझदारी भरी है, दोनों नयन प्याले पवित्र मद से सराबोर हैं, विद्या और प्रताप पीछे-पीछे आ रहे हैं। अगर तो आप की कलम का कोई जीवन चरित्र मिल जाता तो और भी सुख का काम था, पर जो कुछ प्रेम संदेशा वे देते हैं हमें वही बहुत सुखदायी है।

---

* यह लेख ११ पौष सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४४५ (२५ दिसम्बर १९१३) के गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

१. भाई नंद लाल जी!

आप कहोगे इतिहास की गवाही हमारे पास काफी है कि श्री गुरू जी के आत्मगुण हम में निवास करें और हमारा आदर जबर्दस्ती उनके लिए उछाले ले, पर जिस सज्जन से सतगुरू की बातें आज हम सुनना चाहते हैं, उसकी गवाही सारे इतिहासों से जबर्दस्त है, क्योंकि वह आँखों देखी और आप बीती बताता है। वह प्यारा नाम भाई नंद लाल जी का है। आप फारसी ज़ुबान के पंडित, अरबी के विद्वान थे, अक्लमंदी और दूरन्देशी, मामले के समझने और विवेक करने में इतने प्रवीण थे कि बहादुरशाह शहज़ादे के मीर मुंशी (Secretary) बने, और इस ओहदे (पदवी) पर होना बताता है कि उनका ऐश्वर्य भी कितना था। ऐश्वर्य और अक्लमंदी, योग्यता, प्रवीणता वाले होकर हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े फकीरों, कामिलों (पूर्ण ज्ञाताओं) और साधुओं के ज्ञाता होकर उन्होंने श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी को गुरू माना। बालपन की अल्हड़ उम्र में नहीं, जवानी के जोश में नहीं, पर पक्की उम्र में अनुभव और विद्या में प्रवीण होते हुए। इस तरह के योग्य, खोजी, विद्वान, कवि, ग्रंथकार शाही पलटन वाले, इज्जत आबरू वाले का उनको कामिल (पूर्ण ज्ञाता, सिद्ध पुरुष) मानना, गुरू चुनना और संसार से नाता तोड़कर लगभग सारी उम्र उनके चरणों में बिताना बताता है कि गुरू जी फौजी सेनापति, राजसी महापुरुष, योद्धा, कवि, विद्वान, पंडित होते हुए कामिल फकीर, पूरे गुरू–गुरू अवतार थे। भाई नंद लाल का सिक्ख होना एक आम आदमी का सिक्ख होना नहीं, भाई नंद लाल की कुर्बानी एक आम दान नहीं, भाई नंद लाल का प्रेम आम मोह नहीं, उनकी सिक्खी एक कामिल गवाही है जो ऐतिहासिक तरीके और पत्थर लकीर की तरह दिलों पर सिक्का बैठाती है कि गुरू साहिब जी कमाल दर्जे के महापुरुष थे। देखो भाई नंद लाल जी उनके सन्मार्ग दिखाने वाले कमाल पर क्या कहते हैं:–

ज़हे साहिब दिले, रोशन ज़मीरे, आरफ़े कामिल, कि बर दरगाहि हक़ पेशानिए ओ सूदह मे बाशद॥

अर्थात–धन्य है वह दिल का मालिक* दिव्य दृष्टि वाला पूर्ण ज्ञानी कि जिसका माथा परमेश्वर की दरगाह पर सदा टिका रहता है।

यह प्रीतम जी को आँखों से देखने वाले प्रेमी जी का आज हमें प्रेम संदेशा है कि जिस सतगुरू गोबिन्द सिंह जी के नाम पर से आप आज न्योछावर होते हो मैं आँखों देखी साक्षी भरता हूँ कि वे पूर्ण ब्रह्मवेता हैं, वे पूर्ण दिव्यदृष्टि हैं और वाहिगुरू प्रेम में निरंतर मग्न हैं। मैं उनके साथ कैसे व्यवहार करता हूँ कि:–

बकुर्बाने सरे कूयश बगिरदो दम मज़न गोया।
इशारत हाय चश्मे ओ मरा फरमूदह में बाशद॥

उस सतगुरू के कूचे के चारों ओर मैं कुर्बान होता हूँ तो दम नहीं मारता, (प्रेमी होकर देखता हूँ तो) सतगुरू के नयनों के इशारों से (तारनहार) उपदेश प्राप्त होता है।

---

* नाम में रत को भाई जी ने 'साहिब दिल' कहा है।

तथा— **ज़ि फैज़े मुर्शिदे कामिल मरा मालूम शुद आख़र, कि दायम मरदमे दुनिया बग़म आलूदहा में बाशद॥**

मुझे पूर्ण सतगुरू की कृपा से अंत में यह पता लग गया कि दुनियादार आदमी का दिल सदा ग़म से गंदा रहता है और मुझे सतगुरू से यह अवस्था मिली है:—

बहर सूए कि मे बीनम बचश्मम मासिबा नायद,
हमेशह नकशे ओ दर दीदहे या बूदह में बाशद!

मेरी आँखों में जिधर देखूँ सिवाय उसके नक्श के और कोई दीदार नहीं बसता।

२. **अद्वितीय गुरूः** भाई जी गुरू जी को कामिल मुरशिद, ब्रह्मवेता, दिव्यदृष्टि मानते हुए आम मुरशिदों की बराबरी पर नहीं देखते, उनके अनुभव ने उनको बता दिया था कि आप सबसे ऊँचे हैं, इनकी कीमत शक्ति का और कोई ब्रह्मवेता ओर मुरशिद नहीं है। यथा:—

दीन दुनिया दर कमंदे आं परी रुख़सारि मा।
हर दो आलम कीमते यक तारे मूए यारि मा।

दीन और दुनिया दोनों मेरे सुन्दर प्रीतम (सतगुरू गोबिन्द सिंह) जी के चरणों में हैं, मेरे सतगुरू के एक रोम की कीमत दो जहान नहीं तोल सकते।

फिर कहते हैं कि परमेश्वर प्राप्ति के लिए उपदेश, शिक्षा, साधन आदि यत्नों से पूरा करने की इस मुरशिद को औरों की तरह ज़रूरत नहीं है, यह अद्वितीय मुरशिद है। यहाँ तो:—

आईनहए ख़ुदानुमा हसत रूए तो।
दीदारे हक ज़ि आईनहे रूए तो मे कुनंद।

हे कलग़ियों वाले। तेरा चेहरा ईश्वर को प्रत्यक्ष प्रगट करने वाला है। हाँ, तेरे चेहरे के शीशे से (आत्मज्ञानी) ईश्वर का दर्शन (स्वतः सिद्ध) प्राप्त करते हैं। चेहरा ही ख़ुदा दिखाने वाला है।

अपने गुरू को 'शाह' कहकर बुलाते हैं, जिसका भाव है कि और सब पीर मुरशिद उसकी प्रजा हैं:—

मा बपाए शाह सर अफगंदह एम।
अज़ दुआलम दसत रा अफशांदह एम।

हमने 'शाह' (गुरू) के चरणों में शीश झुकाया है, (तबसे) दो जहानों से हाथ धोया है।

३. **गुरू जी की प्रेरणा शक्तिः** सतगुरू जी के प्रभाव और प्रेरणा शक्ति के पुर असर जज़्बे के सम्बन्ध में भाई जी गुरू गोबिन्द सिंह के साथ अपनी आप बीती बताते हैं—

मारा बयक इशारहए अबरू शहीद करद।
अकनूँ इलाज नेसत कि तीर अज़ कमाँ गुज़श्त।

कलग़ियों वाले ने आँख के एक इशारे से मुझे शहीद कर लिया, अब जो तीर कमान से छूट चुका उसका क्या दारू है?

४ **गुरू जी का उपदेश:** भाई नंद लाल जी बताते हैं कि श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी क्या शिक्षा देते हैं और वह शिक्षा मन को क्या पलटा देती है:–

मुरशिदे कामले मा बंदगीअत फुरमायद।
अै ज़हे काल मुबारक कि कुनद साहबेहाल।

मेरे पूर्ण सतगुरू जी भजन करने का हुक्म देते हैं, (वह हुक्म ऐसा) मुबारक महावाक्य है कि सुनते ही उन्मनी अवस्था में ले जाता है।

५. गुरू गोबिन्द सिंह जी चढ़ती कलाओं वाले सतगुरू हैं–

नमे गुंजद बचश्मे ग़ैर शाहे ख़ुद पसंदे मन।
बचश्मम खुश निशस्त आं क़ामते बख़ते बुलंदे मन।

ग़ैर की आँखों में मेरे पूर्ण चढ़ती कलाओं वाले पातशाह नहीं समाते, वे ऊँची डील और ऊँचे भाग्य वाले (मेरे पातशाह) मेरी खुश आँखों में आ विराजे हैं। किसी ग़ैर की आँखों में न समा सकने के अर्थ हैं कोई उनको अपना निशाना नहीं बना सकता, कोई उनको झुका नहीं सकता। जिसको कवि जी ने यहाँ 'ख़ुद प़संदी' कहा है, वह एकाग्रता का सबसे ऊँचा स्तर है, जहाँ अपने आप में निज साक्षी हो खड़ा होता है। खुशी, रस और ऊँचापन कमाल दर्जे का होता है। इस दर्जे का महापुरुष केवल प्रेम के वश होता है।

६. प्रेमी को प्रेम करने वाला:

आशुफतहए आंनेम कि ओ शैफतह ए मासृत।
मा शाह न दानेम गदा रा न शनासेम।

हम जिस प्रीतम के प्रेमी हैं, वह हमारा भी आशिक है, और हम (पदार्थों वाले) पातशाहों को (और सिद्धियों वाले) फकीरों को नहीं पहचानते कि कौन हैं? भाव यह है कि हम जिस गुरू को प्रेम करते हैं, वह ऐसा प्रेम पुञ्ज है कि हमें भी प्रेम करता है।

अगर वाहिगुरू गुरू प्रेम न करें तो कोई भक्त प्रेम कर ही क्या सकता है।

७. **सतगुरू का मार्ग आसान मार्ग है:** ईरान के 'हाफिज़' ज़ी अपने परमेश्वर प्राप्ति के रास्ते को अत्यधिक कठिन बताते हैं, जिसका अर्थ यह है:-

मंज़िल यार प्यारे अंदर,
सुख आराम न कायी।
इस घड़ियाल तैयारी वाले
हरदम टन टन लायी।

भाई जी उनके ही शब्दों में और उसी तरह की गज़ल में बताते हैं कि मेरे सतगुरू का रास्ता बहुत आसान है:–

मरा दर मंज़ले जाना
हमह ऐशो हमह शादी।

जरस बेहूदह मे नालद
कुजा बंदेम महिमलहा।

अर्थात–

मंज़िल यार प्यारे अंदर,
खुशियाँ ते शदियाने हन।
किउं पिट्टण घड़िआल,
असाढे प्रीतम गोद टिकाणे हन।

८. गुरू जी का रास्ता बताते हैं:

रह रसाने राहि हक आमद अदब।
हम बदिल यादे ख़ुदा ओ हम बलब।

ईश्वर के रास्ते पहुँचाने वाले का आदर दिल में ईश्वर की याद और जीभ पर सिमरन (स्मरण), यह कलगियों वाले का सत्य मार्ग है। आजकल कई लोग पहले से ही अन्तर्मुख जापों से दुखी हुए देखे हैं, क्योंकि वे मन की मैल उतरे बिना ही जीभ का सिमरन छोड़ देते हैं, श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी फ़रमाते हैं:–

"बरन सहित जो जापै नाम।।
सो जोगी केवल निहकामु।।"

९. गुरू जी का रूप बहुत सुन्दर और तेजवान था:

बा दीदह ख्वाबनाक चूँ बेरूँ बरामदी।
शर्मिन्दह गश्त अज़ रुखे तो आफताबे सुबह।

नींद से अलसाये हुए नेत्रों से (हे सतगुरू!) जब आप बाहर निकले तो आपके चेहरे को देखकर सुबह का सूर्य शर्मिन्दा हो गया।

होले महल्ले* के बयान में गुरू जी का कौतुक और मनमोहन असर (प्रभाव) बयान करते हैं–

गुलाल अफ़शानिए दसते मुबारक,
ज़मीनो आसमां रा सुरख़रू+ करद।
दुआलम गश्त रंगीं अज़ तुफैलश,
चुशाहम जामाहए रंगीं दरगुलूकरद।
कसे को दीद दीदारे मुकद्दस,
मुरादे उमर रा हासल निको करद।

---

* गुरू गोबिन्द सिंह जी ने खालसे को शस्त्र और युद्ध विद्या में निपुण करने के लिए रीति चलायी थी कि दो दल बनाकर प्रधान सिंहों के अधीन एक खास स्थान पर कब्जा करने के लिए हमला करना, गुरू साहिब ये करतब देखते और सिंहों को शुभ सलाह देते।

\+ लाल गुलाल और दूसरे अर्थ हैं–मुँह उजले।

शवद कुर्बान ख़ाके साध संगत,
दिले गोया हमीं रा आरज़ू करद।

(श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के) मुबारक हस्त कमलों से गुलाब के छिड़काव ने ज़मीन आसमान को लाल गुलाल कर दिया। जब मेरे सच्चे पातशाह ने रंग छिड़के कपड़े पहने तो उसके ज़रिये दो जहानों को रंग चढ़ गया, इस पवित्र दीदार को जिसने देखा उसने उम्रों की मुराद पा ली। मेरा दिल तरसता है कि ऐसी साध-संगत की धूल पर कुर्बान हो जाऊँ।

१०. गुरू गोबिन्द सिंह जी को भाई जी ने परखकर गुरू बनाया था:

मा कि दीदेम सरे कूए तो ऐ महिरमे राज़।
अज़ हमह रूए फिगंदह एम सरे ख़ुद बनियाज़।

हे भेद के महरम! जब हमने तेरे कूचे का रास्ता ढूँढ लिया तब और सारे रास्तों से मुँह मोड़कर नम्रता और श्रद्धा से अपने सिर को तेरे दरवाज़े पर फेंका। चाहे कि सभी को देखा, तब से और सारे दर छोड़कर तेरा देर सँभाल लिया है (कब्ज़ा कर लिया है)।

११. गुरू जी के दर्शन वैराग्य और प्रेम पैदा करते हैं:–

हर गह नज़र बजानबे दिलदार मे कुनम।
दरियाए हर दुचश्म गहुर बार मे कुनम।

जब भी हम प्रीतम जी की ओर नज़र भर कर देखते हैं, हमारी दोनों आँखों के दरिया मोतियों की तरह बरस पड़ते हैं।

१२. गुरू गोबिन्द सिंह जी की तकरीर का असर (प्रभाव):

तमामी मुरदहहा रा अज़ तबस्सम ज़िंदह मे साज़द।
चु रेज़द आबे हैवां अज़ दहां आं गुंचा खंदे मन।

फूल कली जैसे हँसमुख चेहरे वाला मेरा प्रीतम जब मुसकराकर अपने मुख से अमृत वर्षा करता है, सारे मुर्दों को जीवित कर देता है।

१३. गुरू जी का ध्यान:

मनम यक मुशति गिल गोया दरूनम नूरि ओ लामअ।
बगिर्दम दायमा गर्दद दिले पुर होशमंदे मन।

मैं एक मिट्टी की मुट्ठी हूँ, मेरे अंदर उसका नूर जगमग कर रहा है, उस नूर के चारों ओर मेरा होश वाला दिल परिक्रमा कर रहा है। शरीर तो मिट्टी है, अंदर एक केन्द्र है, जहाँ कलगियों वाला बैठा है और मेरा दिल पागल होकर नहीं, पर समझदार फकीरों में बसता उस केन्द्र की परिक्रमा कर रहा है। यह भाई जी सतगुरू के ध्यान और अपने प्रेम का नक्शा बताते हैं।

१४. गुरू गोबिन्द सिंह जी ने मस्ती नहीं सिखायी: सिक्ख धर्म की धारणा का स्वरूप भाई जी बताते हैं:–

दर मज़हबे मा ग़ैर परस्ती न कुनंद।
सर ता बकदम बहोश मस्ती न कुनंद।
गाफल न शवंद यकदम अज़ यादे ख़ुदा।
दीगर सखुन अज़ बुलंदु परस्ती न कुनंद।

हमारे मज़हब (मत में सिवाय साईं के) ग़ैर की पूजा नहीं करते, सिर से लेकर पैरों तक होश में रहते हैं, मस्ती नहीं करते, परमेश्वर के सिमरन से एकदम ग़ाफ़िल नहीं होते, और बातें ऊँचाई निचाई की नहीं मारते।

१५. गुरू जी के सत्संग में जो वक्त गुज़रा उसको आप सफल समझते हैं:–

मन अज़ जुवां कि पीर शुदम दर किनारि उम्र।
ऐ बा तो खुद गुज़श्त मरा दर किनारि उम्र।
दमहाए मांदह रा तु चुनीं मुग्तनिम शुमार,
आखर खिज़ां बिआवुरद ईं नौ बहारि उम्र।
हाँ मुग्तनम शुमार दमे रा बज़िक्र हक़,
चूँ बाद मेरवद ज़ि नज़र दर शुमार उम्र।
बाशद रवां चु काफलाए मौज पै बपै,
आबे बनोश यक नफस अज़ जूएबारि उम्र।
सद कार करद हई कि निआयद बकारि तो,
गोया बकुन कि बाज़ बिआइअद बकार उम्र। (ग़ज़ल ३७)

इसका पंजाबी अनुवाद:–

कुच्छड़ उमरा दे मैं चढ़िआं,
बुड्ढ़ा होया भोग जुवानी।
ऐपर उमर जु तैं संग बीती,
खुश गुज़री उह रस रंग वानी।
बाकी तो दम रहिंदे तेरे,
जान ग़नीमत लै सफला,
आन खिज़ां पकड़ेगी आख़र,
उमर बहार जु खिड़ी खिड़ानी।
याद प्रभू विच दम सफला लै,
हरदम जाण ग़नीमत तूँ,
उमरा दी गिणती, तूँ तक्क लै,
वांग हवा दे जाए उडानी।
वांग काफले विच दरिया दे
लहिरां चलदीआं पै दरपै,

तिवें उमर दी वगदी नदीओं
दम दम घुट्ट भर भी लै पानी।
गोया कीते कई कम्म तूँ
किसे कम्म जो हुण ना आण,
हुण कर कम्म, कम्म जो आवण
बाकी उमर होए सफलानी।

१६. और उच्चारित गुरू जी की रूहानियत के सम्बन्ध में भाई नंदलाल जी के लिए देखो इस पुस्तक का पीछे आ चुका प्रसंग 'भाई नंदलाल निस्तारा'।

२. चाँद कवि*

चाँद नामक एक कवि सतगुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबार में हुए हैं। आप लाहौर के निवासी थे और इससे अधिक जानकारी अभी नहीं मिलती कि आपका जीवन क्या था? परन्तु आपकी दो अमूल्य सौगातें हम तक पहुँची हैं, जिनसे वह गवाही दृढ़ होती है जो भाई नंदलाल जी ने भरी है कि सारे गुरू साहिब एक रूप हैं। आप की सौगात दो छंद ये हैं:–

१. कल मै भइयो एक मर्द नानक है नाम जांको
तांते भए नौ एक ज्योति सुहाइयो है।
फेर गुरू गोबिन्द सिंह कलगी अवतार होए
खड़गधारी होइ महल दसवां कहाइयो है।
तेईअन मैं आए बीच पैंठे समाये गुर
दुनिया बसाइ जाइ पाउंटा बसाइयो है।
सतगुरु बचन सार मर्द गुरु का विचार
गोबिन्द सिंह कृपा ते दास चंद कहि सुनाइयो है।

२. छप्पय॥
गुर नानक (गुरु) अंगद (गुरु) अमरदास
रामदास गुरु अर्जन धारिओ।
गुरु हरिगोबिन्द हरिराय गुरु हरि
कृष्ण बिचारिओ। गुर तेग बहादर
भइओ नाम जिन इक मन लीनो।
शबद गुरु उपदेश दान संगत कउ दीनो।
कलाधार गुर गोबिन्द सिंह भए प्रगट

---

* यह लेख १४ पौष सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४४८ (२८ दिसम्बर १९१६) के गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

भई कल मै सिक्खी।
जैकार भयो त्रिलोक मैं
जो बिरद पैज सतगुरू रक्खी*।

३. भाई नूनआं जी+

लाहौर में सतगुरू के घर के प्रेम में लगे एक गदा नारायणी जी फकीर हुए हैं। नौवें सतगुरू की कृपा इन पर थी। ये जन्म के मुसलमान थे और इन्हीं दिनों में ननूआं जी एक सिख नौवें गुरू के द्वारे सेवा करते थे। एक दिन सतगुरू जी ने इनको कहा कि लाहौर जाओ और कुछ दिन मस्ताने साईं लोक हमारे प्रेमी गदा नारायणी के पास रहो। हुक्म मानकर ननूआं जी चले गये। गदा नारायणी जी ने ननूआं जी को आते ही कहा, आ भई व्यापारी। हमारे शाहों की हुंडी गुमाश्तों के पास लेकर आया है? अच्छा, सतगुरू की कृपा से सतगुरू आप ही हुंडी सकारेंगे। ननूआं जी इनके सत्संग में लग गये। अंत इनके सत्संग में से भेंट लेकर ननूआं जी अपने देश चले गये। इनकी जब कीर्ति फैली तो भाई कन्हैया@ नामक एक ईश्वर के खोजी इनके पास पहुँचे। आपने ननूआं जी की बहुत सेवा की और आपका आपके साथ प्यार अत्यधिक पड़ गया। एक दिन कन्हैया जी ने विनती की कि कोई वाणी रचो। उन्होंने कहा, हमें हुक्म नहीं है, पर हुक्म आ जाये तो रचें। विनती की, हुक्म पूछ आऊँ? आपने कहा, 'अच्छा! यह सुनकर कन्हैया जी गदा नारायणी जी के पास लाहौर गए, पर पूछने का हौंसला न पड़ा कि कहीं इनकार न कर दें। इसलिए अपने प्रेम में रत वापिस आये और आकर कह दिया "आज्ञा है"। तबसे भाई ननूआं जी ने सतगुरू के प्रेम, आम उपदेश और सुख तरंगों में ज्ञान के कई एक छंद रचे। एक दिन कुएँ पर नहा रहे थे कि कोई 'घड़ीअै सबदु सची टकसाल' पांठ कर रहा था। आप का ध्यान अर्थ की ओर जो लगा, अनोखा विचार आया कि शब्द की टकसाल अर्थात वाहिगुरू सम्बन्धी वाणी रचने का हृदय ऐसा हो जैसा 'जतपहारा' की पौड़ी# में कहा है। और मेरा हृदय ऐसा नहीं, ऐसा हृदय केवल सतगुरू जी का है और सतगुरू जी ने आप वाणी रची है, तब तो मैंने वाणी रचने में बेअदबी की है। यह सोचकर बहुत वैराग्य लगा, विराग में डूबे लाहौर पहुँचे और जा गदा नारायणी जी को बताया कि मैंने चाहे आप की आज्ञा मँगवा ली थी, पर फिर भी मैंने जपुजी की इस पउड़ी अनुसार भूल की है, मुझे बख़्श दो। वे हँस पड़े और कहने लगे, भई हमने तो वाणी रचने की आज्ञा नहीं भेजी, वाणी तो धुर की वाणी का ज्ञाता हमारा साहिब रचता है, पर तुम कन्हैया जी पर नाराज़ मत होना, उसका तुम्हारे साथ अधिक प्रेम था, इसलिए उसने 'आज्ञा है' का वाक्य जा कहा। उस पर रंज न करना, उससे जो कुछ

* ये दो छंद कई भाटों को याद हैं और अभी तक सेहराबंदी के समय पढ़ते हैं।

\+ यह प्रसंग ३ पौष सं० गु० ना० सा० ४४६ (१७ दिसंम्बर १९१४) के गुरुपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

@ सेवापंथी सम्प्रदाय के बुजुर्ग जी।

\# एक छंद, पउड़ी।

हुआ है मोह की प्रबलता में हुआ है। वह बहुत अच्छा फकीर होगा, अनेक को तारेगा। आपने अब आगे से रचना नहीं करनी, पिछली का शोक नहीं करना। भाई ननूआं जी की वाणी विशेष तौर पर कलग़ीधर जी के प्रेमवाली या ज्ञानमयी है, और कहीं कहीं से कोई कोई अब तक मिलती भी है। सतगुरू के दर्शनों को करने वाले भाई जी के मुख से उच्चरित सतगुरू महिमा का नमूना मात्र ननूआं जी की रचना साध संगत के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। ऐसी वस्तुएँ अमूल्य खज़ाने हैं और गुरू घर के ऐतिहासिक गौरव की सच्ची साक्षी हैं।

राग किदारा (केदारा)

असां साहिब दरस दिखाइआ।
खुल्ल्हीं बंदीं डुल्ल्हदे नैणीं
हस्सदा हस्सदा आइआ।
प्यार आपणा भर भर बुक्कीं
मन तन साडे पाइआ।
ननूए नूँ होर चित्त न कायी
धा सिर चरनां ते लाइआ॥१॥
लोइन निपट लालची मेरे।
भुक्खे धावें तिपत न पावें
सदा रहें गुर मूरत घेरे।
जोड़े हाथ अनाथ नाथ पहि
अपने ठाकुर केरे चेरे।
हेर हेर ननूआ हैराना
गुर मूरत विच हरि जी हेरे॥२॥



सूचना: बाकी आँखों से देखने वाले (प्रत्यक्ष देखने वाले) समकालीन विद्वानों के प्रसंग अगले अध्याय में हैं। पीछे उन कवियों की रचना आ चुकी है जो ल़क्खी जंगल में आ इकट्ठे हुए थे, उनके नाम थे:- बिहारी, अडडा, लाल, नंद लाल तथा तीन चार और।

१०० विद्या दरबार*

: १ :

जब किसी पढ़े लिखे से श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के गुणों के सम्बन्ध में कुछ पूछें तो वह सबसे विशेष गुण उनके वीर रसी कमाल का बताता है तथा उनको एक प्रवीण और पूर्ण सेनापति या आजकल की बोली में शिरोमणि सेनापति वर्णित करता है। इसमें शक भी कोई नहीं। हिंद देश की प्रजा अर्थात इस देश की अपनी हिन्दी प्रजा सात आठ सदियों के ज़ुल्म से पीड़ित हो होकर निर्बल हो चुकी थी और उसके मन में वीरता की जगह स्वहीनता ने ले ली थी। पश्चिमोत्तरी हमलावरों का रौब ऐसा छा चुका था कि उनके लिए इनके जूले+ के नीचे से निकलकर कभी स्वतंत्र हो सकना असंभव की पदवी ले चुका था। जब गुरू जी ने इस, अन्यायी हाकिमों के प्रबन्ध अधीन, दुखी प्रजा को स्वतंत्रता का ख़्याल देना तो उन्होंने काँपकर कहना महाराज! हम दाल सब्जी खाने वाले कभी मुकाबला कर सकते हैं उन मेष (मेढ़ा) खाने वालों का, जिन में बल पराक्रम अत्यधिक है और डील डौल ही जिनका भयावना है। उस दर्द से दुखी, स्वसम्मान, स्वभरोसा गँवाकर स्वहीनता के निश्चय में पक्की हो चुकी प्रजा में श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने मानो मंत्र फूँक कर एक नई जान ला दी। हाँ उस समय औरंगज़ेब जैसे कामयाब और बली पातशाह के मुकाबले का ख़्याल किया और दूसरों को दिया, जो जादू की तरह अपना प्रभाव कर गया। पश्चिमोत्तरी आक्रमणकारियों का नाम सुनकर काँपने वालों ने साहस धारण किया और कहा: हाँ, आपके बल के सहारे इनके मुकाबले पर कामयाब होंगे। अमृत से जी उठे इन नये जागे हिन्दुस्तानियों ने थोड़े ही वर्षों में पहाड़ी राजाओं और सरहिन्द की फौजों की ओर से हुए हमलों के जवाब में कई मुकाबले करके कामयाबियाँ लीं। यहाँ तक कि गुरू जी ने ये लोग शरीर के बली और मन के अजेय बहादुर बना दिए कि सारे राजाओं, लाहौर सरहिन्द की फौजों और दिल्ली की सहायता ने सात आठ महीने युद्ध करके इन पर सफलता प्राप्त न की और अंत फरेब और छल से अपनी कसमें सौगन्धें तोड़कर—मानों अपनी इख़लाकी हार खाकर—गुरू जी से आनन्दपुर छुड़वाया और चमकौर के ठिकाने गुरू जी को—जो उस समय लगभग चालीस सिक्खों के साथ थे—घेर लिया। पर गुरू गोबिन्द सिंह जी के जागृति में लाए गए इन चालीस थके टूटे भूखे पर अजेय शूरवीरों ने अनगिनत योद्धाओं के घेरे में आकर भी शस्त्र न फेंके, एक-एक दो-दो कर लड़े और इतना बढ़ाया

---

* यह प्रसंग सं॰ गु॰ ना॰ ४७२ पौष की २१ संवत् १९७७ वि॰ (४ जनवरी १९४१) के गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार अमृतसर में प्रकाशित हुआ था।

\+ बैलगाड़ी और रथ आदि का वह डंडा, जिसके साथ बैल घोड़े आदि बाँधे जाते हैं।

अपना युद्ध करने का प्रवाह कि चार पहर कसम तोड़ हमलावरों को परेशान किये रखा। शाम हो आयी तो अभी चार पाँच जीवित थे, पर गढ़ी विद्रोही थी और बेशुमार दल से टूट नहीं पाई थी। ये पैंतीस छत्तीस शूरवीर चाहे शहीद हो गए, पर आक्रमणकारियों के बड़े-बड़े सरदार और अगणित बहादुर मारे गये। फिर भी गुरू जी और दो तीन सिख रात पड़ने पर सही सलामत निकल गए। अनेक लड़ाई झगड़े झेलते गुरू जी अंत में मालवे जा पहुँचे। चाहे पहुँचते ही आपने जंग का सामान किया, पर यह शाही सेना के मुकाबले पर बहुत थोड़ा था। इस हो चुकी बरबादी में सूबा सरहिन्द फिर मुक्तसर वाले ठिकाने गुरू जी पर जा पड़ा। फिर भी नई वीररसी जागृति में आए ये गिनती में मुट्ठी भर बहादुर सिंह, बिना क़िले कोट के, खुले मैदान में युद्ध करते सारा दिन लड़ते और अत्याचारी के प्रहारों को रोकते अच्छे से अच्छे बहादुरों को मारते रहे, पर अंत में शहीद हो गए और सूबे को अपना सा मुँह लेकर सरहिंद वापिस होना पड़ा। ऐसी अजेय शूरवीरता न केवल शरीरों में, बल्कि मन में और मन के निश्चय में भर देनी एक वह कमाल है, जिस की मिसाल नहीं मिलती। आज हम पूरा अंदाज़ा नहीं लगा सकते, क्योंकि वे लोग, जिनमें से यह वीर रसी ठाठ बनाया गया था, अब जीवित नहीं, जिनको देखकर राय बनायी जा सकती कि हैं इन हीन, दबे हुए और मर मिटे लोगों में से गर्व से तने और अजेय शूरवीर पैदा कर दिये गये थे।

परन्तु गुरू साहिब जी केवल इस महान गुण के–परतंत्र प्रजा को दिलेर और स्वतंत्र बना देने के ही–मालिक नहीं थे, इसके अतिरिक्त आप रूहानियत के मालिक थे, पूरे गुरू थे, धर्म के मुखिया थे, आपका अपना फ़रमान है:–

हम इहु काज जगत मो आए॥
धरम हेत गुरूदेव पठाए॥

यह आपका मुख्य काम था जिसको आपने पूरी तरह पूरा किया। हाँ, वीर रसी सामान के साथ शांत रसी सामान–जिसके आप महान आचार्य थे पूरी तरह निभाया। वास्तव में शांत रस की स्थापना और स्वतंत्रता के लिए ही तो गुरू जी ने वीर रस का कमाल सिखाया था कि केवल शांतिमय लोगों को हीन समझकर मूर्ख और ज़ालिम तबाह करते हैं और जगत की आत्मोन्नति को रोकते हैं, उनकी मुँह ज़ोर तअद्दी को उनके तरीके से रोक डाली जाये। इसलिए आपने इस रक्षा के काम को करते हुए अपने असली–गुरिआई के–कर्त्तव्यों को पहले गुरू साहिबान की तरह पूरी तरह निभाया। आप में और भी अनेक गुण थे, जिनमें से विद्या का गुण विशेष था। आप की तबाही से बच रही कुछ रचनाएँ जो हैं उनको पढ़ पढ़कर तसल्ली हो जाती है कि आप महान कवि थे। विद्या में पूरी गम्यता थी। शौक इतना था विद्या का कि उस समय के प्रसिद्ध ग्रंथों के संस्कृत आदि भाषा से अनुवाद करवाये, नवीन ग्रंथ रचे और रचवाये। गुणियों, विद्वानों, कवियों की क़द्र की, इतनी कि आजकल उसकी मिसाल नहीं मिलती। महाभारत के एक एक पर्व के टीके के लिए साठ साठ हज़ार रुपया अनुवादकों को दिया। इस प्रकार न केवल आप कवि और दृष्टा और दृश्यमान दोनों विद्याओं में प्रवीण थे, बल्कि आप विद्या और विद्वानों के भी भारी सरपरस्त थे। हिन्दुस्तान

भर से, ज़ुल्म से पीड़ित हुए गुणी आकर आपकी शरण लेते थे। अपने दान, मान, सम्मान की प्राप्ति के लिए भी कई विद्वान आपके पास पहुँचते थे। फिर कई विद्या पाकर, पर अशांत रहे विद्वान कल्याण दान की ख़ातिर भी चरणों को प्राप्त होते थे। सभी की ज़रूरत आप पूरी करते थे। इस तरह आप के पास गुणियों और विद्वानों का एक भारी संघटन हो गया था। इसलिए न केवल आपके द्वारे कथा कीर्तन, धर्म उपदेश और प्राणदान का प्रवाह चलता था, न केवल फौजी कवायदें, वीर रसी अभ्यासों के कारनामे हो रहे थे, न केवल शस्त्रों का निर्माण और ठकाठक झंकार लगी रहती थी पर विद्या की रौनक भी पूरे यौवन पर होती थी। आप प्रजा को न केवल धार्मिक और शूरवीर बना रहे थे, पर इन गुणों को विद्या से भी भूषित कर रहे थे। नई रचनाएँ नए काव्य लिखे जाते थे, संस्कृत फारसी आदि से अच्छी अच्छी पुस्तकों के अनुवाद करवाये जाते थे। विद्या के दीवान लगते और कवियों के सम्मेलन होते थे। इन समारोहों में विद्वान अपने जौहर दिखाते थे तथा इन दरबारों में गुरू के बहादुर, आई संगतों और वहाँ रहने वाले सिख सभी शमिल होकर विद्या के गुणों का लाभ लेते थे, ताकि सिपाही और साधारण सिक्ख भी नाम के साथ विद्या के गुण प्राप्त करके और ऊँचे होकर सुख पायें और सुख दें। इस विद्या दरबार का आनंदपुर में होना कवि सेनापति, जो इस माला का एक मोती था, एक पद–सभा–में पता देता है:–

गुरू गोबिन्द की 'सभा' महि लेखक परम सुजान।

वास्तव में संस्कृत विद्या में छिपे दबे पड़े इलमी ख़ज़ाने आप हिन्दी में अनुवाद करवाकर सर्वसाधारण की पहुँच तक ला रहे थे, आपका आशय यह था कि विद्या आम हो जाये तो लोग ऊँचे ख़्याल वाले हो जायें। न केवल संस्कृत बल्कि अरबी फारसी की विद्या भी हिन्दी में करवाने के आपने यत्न किये थे। हिंद के विद्या के इतिहास में एक आपका चलाया नवीन दौर था। शोक है कि आपके तैयार करवाये और किये सारे ग्रंथ नहीं मिलते, वे अंतिम युद्ध में ज्यादातर तबाह हो गए, इसलिए इस विषय पर पूरा प्रकाश डाला जा सकना इस समय कठिन है, पर जो कुछ सामान मिलते हैं उनके आधार पर हम अंदाज़ा लगा सकते हैं कि गुरू के दरबार में विद्वानों की कितनी क़द्र होती थी और वे विद्वान आप गुरू जी की उस विद्या की सरपरस्ती के सम्बन्ध में क्या कुछ कहते लिखते थे, जिस का कोई कोई पुर्ज़ा मात्र कहीं कहीं से मिल जाता है। आनंदपुर में रहते हुए जो विद्या सम्बन्धी सामान तैयार हुए वे अच्छे बारीक लिखे जाने पर भी तौल में नौ मन थे। इस रचना को 'विद्या सागर' 'विद्या धर' आदि नामों से पुकारा जाता–

नाम ग्रंथ को विद्यासागर।
राखन कीनो श्री प्रभु नागर। (रुत ३, अंसु ५१)

जब आनन्दपुर के युद्ध के बाद आक्रमणकारियों की कसमों सौगन्धों अनुसार गुरू जी आनन्दपुर से निकले तो उन्होंने किए वादे तोड़कर गुरू जी पर हमला कर दिया। गुरू जी उस समय इस हमले के लिए आगे से हमला करने को तैयार नहीं थे, पर फिर भी अपने बचाव में वह शूरवीरता दिखाई कि हद कर दी। इस घमासान में परिवार किसी ओर, आप

किसी ओर और सिक्ख किसी ओर चले गये। माल असबाब जो कुछ साथ था तबाह हो गया। आनंदपुर में जो कुछ था वह वचन हारे वैरियों ने तबाह किया। इस घमासान में इन्होंने अपनी मुँहज़ोरी में विद्या का भी लिहाज़ न किया। आनन्दपुर के अंदर बाहर जो कुछ हाथ में आया ग्रंथों सहित विसर्जन कर दिया। ऐसे गुरू जी ने जो पुस्तकों का संचय भी दूर दूर से खोजकर इकट्ठा किया था, कुछ तबाह और कुछ बिखर गया। आजकल यूरोप के सभ्य कहलाने वाले आक्रमणकारी भी पुस्तकालय, धर्म मंदिर और साइंस शाला तबाह करने में ज़रा संकोच नहीं करते*। उस समय के ज़ोरावर और अनपढ़ सिपाहियों को तो ग्रंथों की क़द्र ही क्या थी। उन लोगों के हाथों यह नौ मन वाला संचय भी जिसको 'विद्यासागर' या 'विद्याधर'+ कहा जाता था, वह जुल्म जबर की रात विसर्जन हो गया; देखो सूरज प्रताप।

तिन कवियन बाणी रची लिख कागद तुलवाए।
नौ मण होए तोल महिं सूखम लिखत लिखाइ॥
'विद्याघर'+ तिस ग्रंथ को नाम धरयो करि प्रीत।
नाना विधि कविता रची रखि नौ रस रीत॥
मचयो जंग गुर संग बड रहयो ग्रंथ मो बीच।
निकसे आनन्दपुर तज्यो लूटयो पुन मिल नीच॥
पृथक पृथक पत्रे हुते लुटयो सु ग्रंथ बिखेर।
इक थल रहयो न इम गयो जिस ते मिलयो न फेर॥

(रुत ५, अंसु ५२)

यह संचय कुछ तो फाड़ा, रौंदा, मलियामेट हुआ, कुछ के पृष्ठ उड़ उड़कर किसी के हाथ आये, कोई हिस्सा सलामत कहीं जा पड़ा और फौजों के चले जाने के बाद हाथ आया। किसी वस्तु की पहली पाण्डुलिपि प्रतिलिपि किसी रचनाकार के घर से मिली। इस तरह सिक्खों ने समय बाद कुछ-कुछ ढूँढकर और इकट्ठा करके उस समय के विचार अनुसार एक जगह कर लिया। पर फिर भी कई चीजें बाहर थीं। किसी किसी कवि की कोई चीज़ पटियाला पुस्तकालय में है। कुछ कागज़ कवि संतोख सिंह जी को आनन्दपुर से मिले थे जो उन्होंने अपने गु० प्र० सू० ग्रंथ में दिए हैं। कुछ किसी के लिखे बाबा सुमेर सिंह जी को मिले थे। कोई कोई वस्तु अभी पता नहीं और जगह भी हो। मसलन हमें एक आप का विषम पद मिला है, जिस पर लिखा है-

---

* महाराजा रणजीत सिंह की यह तारीफ है कि उसने पेशावर पर हमला करते समय सेनापति को कह दिया था कि 'चमकणी' में पुस्तकालय हैं, आपने पूरी एहतियात करनी होगी कि कोई पुस्तक जाया न होने पाये। यह विद्या परस्ती का गुण हमले के समय याद रखना और प्रयुक्त करना इस सिक्ख महाराजा का गुण था और बताता था कि विद्या की कितनी क़द्र सिक्खों में थी। (म० रणजीत सिंह, कृति सीताराम कोहली, पृष्ठ ३२७)।

\+ लेखक की कलम चूकी प्रतीत होती है, पाठ 'विद्यासर' चाहिए था।

'विखम (विषम) पद पातशाही १०' इसका पाठ इस प्रकार है—

हरि के नैना जल ठए। दिपत जोत दिन मन दुति मुख ते कबू न मूँद भए।।१।।रहाउ।।
तिन को देख जनन द्रिग पुतरी लाली रंग रंगए।
जनु पराग कवलिन की ऊपर भ्रमर कोट भरमए।।

इस तरह खोज की आवश्यकता है, जो कुछ मिले, तब निश्चय करने की ज़रूरत है कि ठीक उसी संचय का कोई हिस्सा है? गुरू का है कि उनके दरबारी कवियों का है। अगले संचय में से है कि और किसी का है तथा किसी ने नाम लिख दिया है?

: २ :

आप जी की विद्या की विशाल कद्रदानी केवल उनके उस दान सम्मान से ही नहीं अंदाज़ा होती जो उनके दरबार में आए विद्वानों को प्राप्त होता था, बल्कि इस बात से भी कि उनकी जान की वे कितनी भलाई चाहते थे। यह बात एक ही घटना से पता चल जाती है, जब आनन्दपुर का बड़ा युद्ध छिड़ने वाला था उससे पहले गुरू जी ने अपने दरबार के सारे कवि कोविद* इकट्ठे करके उनको खुले दान देकर निहाल किया, रुपये, वस्त्र, घोड़े, बात क्या हाथियों तक दिये और आज्ञा की कि आप अब जहाँ जहाँ सुख हो जा टिको (ठहरो), यहाँ भयानक युद्ध छिड़ने वाला है, आप की ज़िन्दगियाँ कीमती हैं; उस भयानक समय से पहले सुख शांति के समय ही आप यहाँ से चले जाओ तो ठीक है। इस तरह प्यार करके विदा कर दिए+। हंसराम का एक छंद है जिससे प्रतीत होता है कि उस समय विदा होकर जा रहे कवि समाज की ओर से उसमें गुरू के दान का यश वर्णन है:—

दुंदभी धुंकारे बाजे मानो जलधर गाजे,
राजत निशान भय भानु छिपे जात हैं।
हाथिनि के हलका हज़ारनि, गने को हय,
जटति जवाहर जे जगमग गात है।
कोर साजे जोर करनालन को शोर सुने,
संकति सुरेश औ नरेश बिलखात हैं।
'हंसराम' कहित बिराजो जिन भाजो
गुर गोबिन्द को मांगे कविराज चले जात हैं।

इस घटना से थाह मिल गयी कि विद्वानों के जीवनों को आप कितना कीमती समझते थे और उसको सुरक्षित करते थे। आगे हम अब कवियों के छंद तथा उन पर टीका-टिप्पणियाँ देते हैं। जिनकी बाँट इस प्रकार है:

पहले वे छंद हैं जिनमें कवियों ने अपनी छाप (कविता का नाम) दी है, या उनके द्वारा रचित पुस्तकों में से लिए गये हैं। दूसरे वे छंद होंगे जो हैं तो गुरू जी के हुजूरी

* विद्वान, पंडित
+ गुर बिलास बाबा सुक्खा सिंह।

कवियों के, पर उनमें उन्होंने अपनी छाप नहीं दी, वैसे वे आए हुजूरी कवियों के छंदों के बीच बीच या साथ साथ हैं।

वे छंद जो आनंदपुर के युद्ध, चमकौर के घेरे, मुक्तसर के हमले के बाद लक्खी युद्ध में उच्चारित हुए, यहाँ पहुँचकर फिर विद्या दरबार लगा है और वहाँ कोई कोई कवि कोबिद पहुँचे हैं और काव्य शारदा ने तलवार के बाद यहाँ कोमलता की वीणा बजायी है, पीछे प्रसंग 'इब्राहिम–अजमेर सिंह' में आ चुके हैं।

४. कवि सैनापत*

आपका नाम ५२ कवियों में है। आप गुरू जी के सम्मानित दरबारी कवि थे। आप खुद लिखते हैं:–

गुर गोबिन्द की सभा महि लेखक परम सुजान।
चाणाकै भाषा करी कवि 'सैनापति' नाम।

इस दोहे से ख़्याल किया जाता है कि इसका नाम सैनापति था और यह सहजधारी था, पर सैनापत नाम आपका 'कविनाम' अर्थात छाप थी आप की, नाम नहीं था। गुर शोभा ग्रंथ पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसका लेखक सैनापति गुरू साहिब पर पूर्ण विश्वास रखनेवाला, श्रद्धावान और रहत मर्यादा खालसे के आदर्श का पूर्ण प्रेमी था, और सिंह था, इसलिए आपका सिंह नाम ढूँढने के लिए छानबीन की ज़रूरत है। आपके इस प्रकार के लेखों से जिसका नमूना एक कवित्त आगे देते हैं, बता रहा है कि आप खालसा आदर्श की कमायी वाले थे:- कवित

बचन कीओ करनहार, संतन कीओ बिचार,
सुपनो संसार जान काहे लपटाइऐ।
बिखयन सों तजि सनेह, सतिगुर की सिक्ख लेहि,
बिनसै छिन माहि देहि, जमपुरि न जाइऐ।
सीस न मुंडाव मीत, हुक्का तजि भली रीति,
मन मैं कर प्रेम प्रीत संगत में जाइऐ।
जीवन दिन चारि समझ देख बूझि मन बिचार,
वाहिगुरू गुरू जी का खालसा कमाइऐ॥१॥

इनकी रचना का एक ग्रंथ मिलता है जिसका नाम है 'गुर शोभा'। इसमें आपने गुरू गोबिन्द सिंह जी के कुछ जीवन समाचार लिखे हैं, जिनमें बहुत सारा लाभदायक और कीमती ऐतिहासिक मसाला मिलता है। आपने बताया है कि दक्षिण के हालात मैंने सज्जनों से सुनकर लिखे हैं। इसी ग्रंथ में अकस्मात आपने अपनी स्व जीवनी सम्बन्धी भी कुछ छंद दिए हैं, जिनसे पता चलता है कि आप गुरू साहिब जी पर पूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखने वाले थे, परमार्थ की लगन भी प्रतीत होती है और खालसे की रहत मर्यादा आदि के धारण करने वाले भी प्रतीत होते हैं। यथा–

* यह लेख इसी संचय के लिए दूसरा संस्करण प्रकाशित होते समय लिखा गया था।

चौपाई।। त्वप्रसादि गुरू उपदेसे
जनम जनम के मिटे अंदेसे।
तब इह कीट पतित* मन आयो।
भई कृपा गुर मारग पायो+।।८।।

दोहरा– ओट तिहारी धरत हौं जानत अवर न कोइ।
मन बच क्रम कर भावनी सिम्रत हैं इम तोइ।

सवैया– काहूँ के मात पिता सुत हैं@ अर,
काहूँ के भ्रात महां बलकारी।
काहूँ के मीत, सखा, हितु, साजन,
काहूँ के ग्रेह बिराजत नारी।
काहूँ के धाम महां निध# राजत,
आपस मों कर हैं हित भारी।
होहु दिआल दया करकै प्रभु,
गोबिन्द जी मुहि टेक तुहारी$।।४।।

गुरू गोबिन्द सिंह जी को आप अवतार मानते थे, यथा–दोहरा–
निरंकार आकार कर मनसा मनि बीचार।
मुकत करन संसार को प्रगट भयो करतार।
करन करावन हार प्रभ समरथ सिंह गोबिन्द।
कला धार परगट भयो चहु दिश भयो अनंद।

सवैया– जुगति कै जोग कै भावनी भोग लै
भेख अलेख नहिं हाथ अहुरे।
जाइ करवत लै है वरे गरत जैहै
मीच अमीच कै लेत भहुरे।
मोन गहि जीव मैं बसत्र तजि
सीव मैं दिश्ट अकाश करु नांहि लहुरे।
टेर है संत बेअंत महिमां
महां नाम गोबिन्द गोबिन्द कहु रे।
कोटि उपाव बीचार केहू करो

---

* नीच कीड़ा भाव कवि अपने सम्बन्ध में लिख रहा है।
\+ भाव है कि सिखी मार्ग में गुरू जी ने मुझे चलाया।
@ किसी के माता, पिता और पुत्र हैं (और उसको उनका आसरा है)
\# भाव बहुत धन दौलत।
$ कवि कहता है कि मुझे केवल तुम्हारा ही आधार है।

पार जिह ते परो बात अहुरे।
अनिक तीरथ करो जाइ काशी
मरउ चढ़ो केदार नहिं पाप पहुरे।
अनिक तप साध अगाध जानिओ नही
हेत है और की और अहुरे।
टेर है संत बेअंत महिमां
महां नाम गोबिन्द गोबिन्द कहु रे।

इनकी कविता में से खालसा सजने का हाल, खालसे के गुण तथा केश कृपाण आदि रहत मर्यादा का गुरू साहिब का आप कायम करना और चलाना आँखों देखा बताया है। आप की कविता के नमूने ये हैं:–

(खालसा प्रगट किया)

छप्पय– निरमल करि संसार, जगत मैं बचन सुनाए।
कीओ खालसा प्रगटि, सुनत दुरजन डरपाये।
मुनि जन करत विचार, चार अचरज सुनि भाई।
गुपत बात भई प्रगटि अंत गुरदेव बताई।
मानहि सु संत इह मंतु* को जनम जीत मुकता भयो।
कवि तास रेन तिह सिख की, जु सतिगुर की शरनी अयो।

दोहरा– सो समरथ कारन करन तिह समान नहीं कोइ।
तांकी सेवा सो करे जिसहि परापति होइ।
सरब आनंद गोबिंद के जाप ते,
जपो नित नित कै प्रीति+ मीता!
सरब को तंत@ यहि मंत गुरदेव का–
एक मन जीत संसार जीता।
सरब जंजार बेकार# छिन मैं तजे,
सरब गुरदेव सन ज्ञान गीता।
भयो जैकार त्रैलोक चौदै भवन,
सतिगुरु खालसा खास कीता।

(अमृत मर्यादा कायम की)

दोहरा– खांडे की पाहुल दई करनहार प्रभ सोइ।
कीओ दसोदिश खालसा ता बिन अवर न कोइ।

---

* मंत्र, सलाह।
+ प्रीत करके नित नित जपे।
@ तत्वरूप, साररूप।
जंजाल तथा विकार।

पउड़ी॥ दे खांडे की पाहुल तेज बढ़ाइआ।
ज़ोरावर कर सिंह हुक्म वरताइआ।

(खालसे की रहत)

कीए जदि बचन सतिगुरु कारन करन–
'सरब संगति आदि अंत मेरा खालसा।
'मानेगा हुकमु सो तो होवैगा सिक्ख सही,
न मानैगा हुकम सो तो होवैगा बिहालसा।
'पांच की कुसंगत तजि, संगति सों प्रीत करे,
दया और धरम धार त्यागे सभ लालसा।
हुक्का नहीं पीवे, सीस दाड़ी न मुंडावै, सो तो
वाहिगुरु वाहिगुरु गुरु जी का खालसा॥३०॥

पउड़ी॥

बचन कीओ करतार खुर* नहीं लाईऐ।
मन अंतर करि प्रीति बचन कमाईऐ।
मात पिता मर जाइ न भदर+ कराईऐ।

(खालसा वह जो नाम जपे)

दोहरा– जिन जन उपजत नाम धुनि तिन जन निरमल रीति।
भजि गोबिन्द भए खालसा जिन अंतरि परतीति।

पउड़ी– जहिं दूतन को त्रास परत जम जारसा।
साचा नाम पुनीत ओट भई ढ़ालसा।
बिनसे सकल कलेश गयो जंजालसा।
चूकिओ आवन जान मिटी सभ लालसा।
खालस जपि गोबिन्द भयो है खालसा।

(खालसे के और लक्षण)

जाके हिरदे भरम न होई।
भरम भेख ते रहे निआरा।
सो खालस सतिगुरु हमारा।
(गुरू जी आप केशधारी थे)
आनंद रूप। सुन्दर सरूप।
ऐसे निहार। गुरू केस धार।

---

* . उस्तरा।

+ भदर = भद्दण = सिर के बाल दूर करने। खासतौर पर माता पिता के मरने पर जो हिन्दू सिर मुँह मुँड़ाते हैं।

पुनः:— बचन गुरदेव के ज्ञान ऐसो कीओ,
मुकति की युक्ति ऐसे बिचारी।
रचे करतार यौं रची आकार ते
जपैगी जाप सभ स्रिशटि सारी।
तत्व को धारिकै जीत बोली फते
मारि दूतन कीओ भसम छारी।
भयो जैकार त्रैलोक चौदै भवन
अचल परताप गुर केस धारी।

(आनंदपुर के युद्ध में आँखों देखे हाल)

लगे मोरचे तुरक के ऊपरि चढ़ी कमान।
इत सनमुख भयो खालसा होत बीर संग्राम।

सवैया— तोप छुटै गरजै घन* ज्यों,
लरज़ै+ हीअरा, सु महां भय मांही।
ऐसे मनोज@ चले भुवचाल,
हलै बसुधा# सम तास की आही।
दामनि$ जिउं चमके तिह ठउर
सु लागत जा मग ही सु तहां ही।
सेत% मनो बरखैं घन ते,
तहां गोला चलैं समता सु असाही^।

(आनंदपुर से तोप का चलना)

तोप छुटै गरजै घन ज्यों
लरज़ै हियरा मानो बिज्ज कड़क्कै।
ठउर रहे जिहके उर लागत
होत है छाती कै पाट पड़क्कै।
या बिधि सों तहिं गोला चलै
टिक है नहीं सूरा ताही के धक्कै।
राजन के अवसान& गए जब
आनंद कोट ते तोप छुड़क्कै।

---

* बादल।

+ काँपता है।

@ सुन्दर।

पृथ्वी।

$ बिजली।

% ओले

^ उसकी उपमा ऐसी है।

& होश।

(बाबा अजीत सिंह जी का युद्ध)

तां दिन गडयो रण खंभ सिंह रणजीत* धरत पर।
धरत लरज़, उठी धूर, भान छिप गयो आप घर।
पवन मंद हुइ रही रैण भई दिवस छुपानो।
लरज़े सकल अकाश तोप छूटी परमान्नो।
बजयो निशान तिहुं लोक मैं सुन देवन मन यौं भयो।
चड़ि चड़ि बिबान देखन चले सु शंकर+ समेत, नही को रहयो@।

(गुरू जी ने जगत का उद्धार करने के लिए सब कुछ किया था)

सवैया– कल मैं कलि धारि अकार कीओ
कर आपन दूत संघारन#
चमकी दिश चार हूँ जोत महां
जग पाप समूह बिडारन को$
करि खालस% जाप दए हरि ने
हथियार अपार जुझारन को।
गुर गोबिन्द सिंह कीओ इतना
भव सागर पार उतारन को

(सतगुरू जी के घोड़े की उपमा)

तुरकी असु अच्छ सुपच्छि बडो^,
तिह ऊपरि पाखर& आन धरी।
छबि सोहत ज़ीन जराइन&& की,
सभ साज़ समेत अनूप खरी।
गज मोतिन के गुलबंदन के!
कलग़ी सिर शोभ जराव जरी।

---

* अर्थात, बाबा अजीत सिंह जी। गालबान यह जमतुला भाव वाले जंग का हाल है जिसमें साहिब अजीत सिंह (=रणजीत सिंह जी) लड़े थे।

\+ शिव जी सहित।

@ भाव सारे देवता देखने आये सुरपुर में कोई न रहा।

\# कलियुग में दुष्टों का नाश करने के लिए आपने सुन्दर रूप धारण किया।

$ दूर करने को।

% खालसा सजाकर।

^ तुर्की घोड़ा जो श्रेष्ठ बड़े पक्षी जैसा दिखायी देता है।

& लोहे कीशृंखलाओं की पोशाक जो संसार में रक्षा के लिए घोड़े पर डाली जाती है।

&& जड़ाऊ से जड़ी काठी।

! गज मोतियों के गुलूबंद बने हैं।

बरनो छबि, यौ जल चाल चलै,
छिप है तिह देखत हूर परी।
(दूसरे कवियों की ख्याल पूर्ति में गुरू जी का रौब)
सवैया– डंकन घोर सु घोर भई,
सुनिकै पुरीआं सभ ही लरज़ी*।
लरज़े सभ भान भिआन भए,
किह कारन काज चड़्यो हरि जी+।
लोक अलोक सभै लरज़े,
शिवजी कैलाश पति यौ डर जी@।
सुन शेष महेश सुरेश बडे,
लरज़े सिंह गोबिन्द के डर जी।

(सैनापति जी पंजाबी थे, जैसा कि उनकी पंजाबी कविता से अनुमान होता है। नमूना यह है)

पउड़ी– सभ तेरी तूँ सभ सदा को किद्धर जावै।
पुत कपुत्ती जे करे पिउ मुखहुं न पावै।
भावैं केता भरमणा जे शरणी आवै।
अउगण मेरे गुण करे भी मांहि समावै।
जी, गोबिन्द सिंह दिआल है सतिसंग मिलावै।

५. आसा सिंह (मुतसद्दी)#

श्री गुरू जी के दरबार का एक पेशकार होता था, इसका नाम था आसा सिंह। बहुत गुरू का प्रेमी और नेक चलन, ईमानदार आदमी था। विद्वान और कवि भी था। परायी पीड़ा से पीड़ित होकर द्रव जाने का गुण विशेष रखता था। एक दिन एक दुखी लाचार आदमी, जिसकी बेटी का विवाह था, आपके पास आया और दुख रोकर मदद माँगी। केवल मदद ही न माँगी गुरू का वास्ता भी डाल दिया। आप पसीज गए पाँच सौ का परचा (हुण्डी) लिख दिया, जिस जगह का वह दुखी पुरुष रहने वाला था वहाँ के एक सिख व्यापारी के नाम पर। गुरू का परचा लेकर उस सिक्ख ने रुपये दिए, गरीब का काम हो गया। कुछ समय बाद यह व्यापारी सिक्ख आनन्दपुर साहिब आया और साहिब जी की हुजूरी में गुण गाने लगा कि पातशाह। आपने जो अमुक ज़रूरतमंद को पाँच सौ दान किया और मेरी ओर परचा भेजा था, उसका काम ठीक हो गया और आपका बहुत सुयश हुआ कि आप 'इंसानी पीड़ा हरने' में गुरू नानक देव ही हो।

* काँप गयीं।
+ गुरू गोबिन्द सिंह जी।
@ कैलाशपति शिव जी ऐसे डरे।
अरबी शब्द, तख़ुदीअ = आगे आना, पेश होना। मुतसुद्दी = पेशकार।

गुरू जी सुनकर मुसकराये और कहने लगे: भाई हमने तो किसी को परचा नहीं दिया। सिक्ख ने कहा आपकी मुहर परचे पर लगी हुई थी। दाता जी फ़रमाने लगे: हमारी मुहर आसा सिंह परम विश्वासी के हाथ है, हो नहीं सकता कि बिना पूछे वह परचा लिखे और मुहर लगाये। कैसे उसने आप ही परचा लिखकर दे दिया और खोट (दोष) किया। यह बात किसी ने आसा सिंह को पहुँचा दी। आसा सिंह जानता था कि चाहे मैंने भलाई की है, पर मेरी कर्त्तव्यपरायणता में यह ईमानदारी का काम नहीं। मैं केवल पेशकार हूँ मुझे पूछ लेना चाहिए था। अब मेरे पास कोई बहाना अपनी सफाई का नहीं, मैं क्या करूँ? सोचने के बाद भय ने भागना ही ठीक रास्ता बताया। इसलिए काम सारा अपने अधीन पेशकार के हाथ छोड़कर घर जा छुपा और मुंशीखाने आना बंद कर दिया। घर बैठा सोचे, परोपकार अच्छा है पर बुरा भी कितना है। मैं अगर न द्रवित होता तो क्यों ईमानदार होते हुए दोषी हो जाता। यह द्रवित होना गुरू की सिक्खी का गुण है, पर मेरे साथ क्या घट गया। ... द्रवित होना दो प्रकार का होगा–एक तो वाहिगुरू जी के प्रेम में द्रवित होना, दूसरे पर पीड़ा पर द्रवित होना, पर परायी पीड़ा पर द्रवित होना फिर दो प्रकार का सही (ठीक) होता है, एक तो अक्लमंदी से तथा एक मन और शरीर की कमज़ोरी के साथ बह जाने से। मैंने जिसको अपना गुण समझा था, वह मेरे मन की कमज़ोरी का बहाव था, जिसको लोकोक्ति ऐसे बताती है–'जिस लायी गल्लीं, ओसे नाल उठ चली।' (अर्थात जिसने बातों में लगाया उसी के साथ उठ चली)। ऐसे आदमियों को लाई लग्ग (बिना सोचे समझे दूसरे के कहने में आ जाने वाला) कहते होंगे, क्योंकि अगर मुझ में द्रवणता वह होती जो गुरू जी ने फ़रमायी है।

अनिक जतन करि आतम नहीं द्रवै॥
हरि दरगह कहु कैसे गवै॥ (सुखमनी)

तब मुझे दुख न होता। मुझे दुख हुआ है तब तो मेरी द्रवणता मेरे मन की कमज़ोरी थी, जिसने ईमानदारी के इख़लाकी गुण को गँवा लिया। पर हाय ये बातें मुझे तब क्यों नही सूझीं। मेरी मन कमज़ोरी ने मेरी अक्ल के तेल को उस समय झिलमिला कर दिया था। फिर सोचो, मैं कोई आप तो नहीं खा गया, मैंने चाहे भूलकर कुछ दिया परन्तु दिया तो परोपकार में है। इस हिसाब से मैं अपराधी नहीं, पर दूसरे हिसाब से अन आज्ञाकारी और दोषी हूँ। इस तरह के उतार चढ़ाव लगे रहे। अंत कुछ दिन सोच समझकर हौंसला लौटा और विचार की कि यही बात गुरू जी को लिखकर क्यों न भेजूँ और भेजूँ कविता में। एक तो आप बख्शिंद हैं, दूसरे मेरी कमज़ोरी देख लेंगे और मेरे बेईमानी वाले पक्ष में निरापराधी होना जान लेंगे। तीसरे विद्या और विद्वानों के दाता हैं हो सकता है मेरी टूटी फूटी कविता पर रीझ पड़ें। ऐसे विचार कर उसने यह कविता लिखकर श्री हुज़ूर के चरणों में भेजी–

कलमो बाच ॥ दोहरा॥

मुख कारा मेरो करै करत न पर उपकार॥
ताहू को मन करत निजकारो बदन निहार॥६७॥

फट छाती दो टूक भई रुदन करत लिख जात॥
परस्वारथ उपकार बिन मुझे न सुपने शांत॥६८॥

चौपाई॥ **यौ लिखनी बच है बर ररा॥**
सो पकरायी गुर मुर करा॥
यौ उपकार नाथ ना करों॥
तद्दपि तुम ते बहु बिधि डरों॥६९॥
यौ सिख तुमरी दई दुहायी॥
तौ मम टोंबू दयो करायी॥
भूलन मद्ध सदा इह जंतु॥
सतिगुर है बखशंद बिअंत॥७०॥
मेरी खता ओर नहीं जानहु॥
अपनो लीजै बिरद पछानहु॥
सरब लच्छ जग मैं इह तोरी॥
खावत भुंच जीव करि जोरी*॥७१॥ (गु॰ बि॰ सु॰ सिं॰)

यह कविता पढ़कर सतगुरू जी हँस पड़े और बोले: सिक्ख ने बदनीयत से पहेमानगी नहीं की, गुरू की आन सुनकर द्रव गया है। ... विद्वान है, कवि है, गुणी है, जाओ ले जाओ। इस प्रकार आसा सिंह ने आ चरण पकड़े और आँसुओं के मानों गुलाब छिड़काव से ओस पड़े कमल की तरह मोती मोती कर दिए। तब 'विद्या अधिपति' जी ने सिर पर हाथ रखकर उठाया और फ़रमाया—आसा सिंह को पगड़ी बँधाओ, सिरोपा के निमित्त। ले भई परोपकार के लिए चलने वाली कलम के कलमकश! पर न सोचने वाले। .... दो भई वही कलम इसके हाथ, पर कलम दिमाग़ के साथ एक स्वर होकर चले, केवल हाथों से चलायी कलम मात्र लकीरें खींचती है। आसा सिंह! परोपकार के चरण अक्लमंदी के हैं।

चिड़ीआ पर उपकार दी, 'दरद' 'उदारता' खंभ।
दानाई के पैर पर, प्रभू टेक अविलम्ब+।

---

* इस कविता का एक पाठांतर है जो भाई संतोख सिंह जी ने ऐसे लिखा है—कलमो वाच॥

दोहरा— मुख कारा मेरो करैं, करत न पर उपकार॥
तिसके मैं फिर करउंरी, पलटा इहु दरबारि॥
फ़ट छाती दो टूक भई, रुदन करत लिख जाति॥
परस्वारथ उपकार बिन, मोहि न उपजत शांति॥

चौपाई— ऐसो कलम कहति सभि साच। सो पकरायी गुर मुहि हाथि।
गुर की आन जबहि सिख कीनी। सही न मैं, चिठी लिख दीनी।
सरब लच्छमी जगत तुमारी। भुंचत है इह सिशटी सारी।
छिमहु गुरू अपराध हमारा। सद बख़शिंद है बिरद तुम्हारा।

\+ परोपकार के पक्षी के पंख हमदर्दी और उदारता हैं, परन्तु पैर इस पक्षी के चतुराई के हैं और हृदय के भाव—वाहिगुरू जी का आधार है।

६. हंसराम

यह कवि गुरू के दरबार का एक प्रबल कवि हुआ है। इसकी एक रचना–महाभारत के कर्ण पर्व, का भाषा में अनुवाद है*। इसमें लिखे कवि के अपने लेख से अंदाज़ा लगता है कि श्री गुरू जी विद्या की सरपरस्ती कितनी उदारता से किया करते थे। और नित्य दान के अतिरिक्त हंसराम को गुरू जी ने साठ हज़ार रुपया दिया था। देखो एक एक पर्व के अनुवाद के लिए इतनी इतनी भारी रकम दान देकर विद्वान रख लेने कितनी भारी विद्या की क़द्रदानी है। जिसकी गवाही कवि आप ऐसे भरता है–

प्रिथम क्रिपा करि राख करि गुर गोबिन्द उदार।
टका+ करे बख्शीश तब मोको साठ हज़ार।
तां को आयसु@ पाइके करण परब मैं कीन।
भाखा अरथ वचित्र कर सुने सुकवि परबीन।

(कर्ण पर्व का अनुवाद आरम्भ)

संवत सत्रां सै बरस बावन बीतनहार#।
मारग वदि तिथि दूज को तां दिन मंगलवार$।
हंसराम तां दिन करयो 'करन परब'% आरंभ।

(गुरू जी के आनन्दपुर का वर्णन)

कौन बडो या जगत मैं को दाता को सूर?
कांके रण अरु दान में मुख पर बरसंत नूर?
रचयो ब्रह्म कर आपने दीनो भू को भार,
सो तो गुरु गोबिन्द है नानक को औतार।
ऐसे काहूं के नहीं सुर सुरपति के भौन,
ईश मुनीश दिलीश ए नर नरेश के कौन?
चार बरन चारों जहां आश्रम करत अनंद^,
तां को नाम अनंद पुर है अनंद को कंद।

---

* यह कर्ण पर्व का अनुवाद हंसराम का किया हुआ अब पटियाला की लाइब्रेरी में है। नंबर १–१० है।

\+ रुपये।

@ आज्ञा।

\# १७५२।

$ मार्गशीर्ष वदी दूज मंगलवार।

% महाभारत का एक अध्याय।

^ आनंदपुर चारों वर्णों और चारों ही आश्रमों के लोग गुरू जी के बसाये, ये 'मानस की जात सभै एको पहिचानबो' के व्यावहारिक प्रयोग की आँखों देखी गवाही है।

(असीस)

कवित्त– कायम कुबेर सात सायर* सुमेर जौ लौ,
कीरति करन की करन अवगाह-बी+।
जौ लौ पौण पंनग प्रबल पुहमी के भार@।
पारथ को जौ लौ पुरखारथ सराहवी#।
जौ लौ शिव सलिता$ सु कवि 'हंसराम' कहै
जौ लौ राम रावन को रामायन चाह बी।
जौ लौ ध्रुव धरनि तरुन% तेज राजै जग
तौ लौ श्री गुबिन्द सिंह तेरे सीस साहिबी।

(मुक्तिदाता)

कवि हंसराम जी गुरू 'गोबिन्द सिंह' जी के 'मक्तिदाता' होने के सम्बन्ध में अपने कवित्तों में सुन्दर वर्णन करते हैं, जिनसे पता लगता है कि उस महाबली ने अपने वीर रसी ठाठ में शांत रस के काम को इस खूबी से किया था कि हंसराम जैसे विद्वान ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए 'अवतार शिरोमणि' और 'मुक्तिदाता' माना,

यथा– अवध अनाए कहां, तिलक बनाए कहां,
द्वारका छपाए कहां तन ताईयति है।
कोविद कहाए कहां, बेनी के मुंडाए कहां
कासी के बसाए कहां लाहा लखीयत है।
मोहन मनाए कहां, भूपति रिझाए कहां
कहां 'हंसराम' जो धरा मैं धाईयत है।
चार हूँ बरन तांके हरन कलेश गुर
गोबिन्द के चरन मुकति पाईयत है^।

अर्थ– १ अयोध्या जाकर (सरयू नदी में) नहाने की क्या ज़रूरत है, माथे (वर्णाश्रमी) पर तिलक लगाने की क्या ज़रूरत है, द्वारका जाकर (गर्म) छापे लगवाने की क्या ज़रूरत है: और क्यों ऐसे ही तन तपाते हैं (भाव पाँच अग्नियों का सेवन करते हैं)।

---

* सात समुद्र।
+ जब तक (दानी) कर्ण की कीर्ति को कान ग्रहण करते रहेंगे।
@ भाव, जब तक धरती के बोझ को शेषनाग उठाने को प्रबल है और वायु उठाने को धरती प्रबल है।
अर्जुन के पुरुषार्थ की महिमा की सराहना जब तक रहेगी।
$ गंगा जब तक बहेगी।
% सूर्य।
^ इसी तरह का छंद इसी ख़्याल पूर्ति का एक और है जिसके लिए देखो बेछाप अध्याय–छंद की पहली पंक्ति ये है–कौन बनारसी बास करैं जहिं बासक नाग हीए मै लसै।

२ पंडित कहलाने का क्या लाभ, बोदी मुनवाने (सन्यासी बनने) का क्या लाभ, काशी जाकर बसने का क्या लाभ पाते हैं। ३ मोहन (कृष्ण) को मनाने का, राजे को खुश करने का, धरती पर भटकते फिरने का हे हंसराम क्या लाभ है? ४ जब कि चारों वर्णों के क्लेश को दूर करने वाले गुरू गोबिन्द जी के चरण मौजूद हैं, जिनसे कि मुक्ति प्राप्त होती है।

(महादानी और परपीड़ा हरने वाले करतार)

चारों चक्क सेवैं गुरू गोबिन्द तिहारे पाइ,
मेरे जानै आज तूही दूजो करतार हैं।
प्रबल प्रचंड खंड खंड महि मंडल मैं,
साचो पातशाह जांको साचो सिर भार है।
कामना के दान बान जांकी 'हंसराम' कहै,
परम धरम देखे बिबिध बिचार है।
परम उदार पर पीर को हरनहार,
कौन जाने कौणै भांत लीनो अवतार है।

१. चारों दिशाओं में हे गुरू गोबिन्द सिंह जी आप के चरण पूजे जा रहे हैं, मेरी समझ में तो तू आज का दूसरा करतार है। २ धरती के खंडों में (दुष्टों का दलन करने का आपका) तेज महा प्रज्वलित है। सच्चा पातशाह और जिसने सच्चा बिरद सिर पर लिया हुआ है। ३. (ज़रूरतमंदों की) मुरादें पूरी कर देना जिनका स्वभाव ही है, (जिनके देखे =) दर्शन करने से पूर्ण धर्म और दैवी विचार प्राप्त होता है। ४ बहुत बड़े दाता हैं, परायी पीड़ा हरने वाले हैं, कैसे जाने क्यों (इस धरती पर आपने) अवतार लिया है।

(गुरू दल की चढ़ाई)

छप्पय— **डुल्लति अपर नरेश पति हत्थहि जिम हल्लै।**
सूखत साइर सलल, संक धूअ धाम न चल्लै।
खलक खैल खलभलति भैल भरहि तिलोक महि।
पलक पेल गढ़ लेत हेत हुंकति सु जंग महिं।
कहि हंसराम सति सिमरकै सकुच रहित दिगपाल तबि।
धसमसत धरन दल भार ते सो बिरचराइं गोबिन्द जबि।

१. डोलते हैं (मन से अस्थिर होते हैं) और राजा लोग जैसे हाथ में पकड़ा पत्ता (हवा से) हिलता है। २. समुद्र का पानी सूखता है और ध्रुव शंकित हो जाता है कि कहीं मेरा धाम चलायमान न हो जाये। ३. समूह ख़लकत में हड़बड़ाहट पड़ती है (और वह उठ भागती है और तीनों लोकों पर भय छा जाता है। (भैल-भय संयुक्त होना)। ४. क़िला लेने के लिए युद्ध में जब हुँकार मारते हैं तब पल में क़िला जीत लेते हैं। ५. हंसराम कहता

है तब (गुरू जी की) सत्यता को याद करके* ही दिकपाल डरे रहते हैं। ६. जब गुरू जी दलों को साथ लेकर घूमते हैं तब बोझ से धरती धसकती है।

दुंदभी धुंकारे बाजे मानो जलधर गाजे,
राजत निशान भय भानु छिपे जात हैं।
हाथिनि के हलका हज़ारनि, गने को हय,
जटति जवाहर जे जगमग गात हैं।
कोर साजे जोर कर नालन+ को शोर सुने,
संकति सुरेश औ नरेश बिलखात हैं।
हंसराम कहित, बिराजो जिन भाजो
गुर गोबिन्द को मांगे कविराज चले जात हैं।

१. दुंदभी धुंकार करती और बजती है (ऐसी कि) मानो बादल गरजते हैं, झण्डों के फहराने से डर खाकर सूर्य महाराज छिपे जा रहे हैं। २. हाथियों के नग हज़ारों हैं और घोड़ों को गिने ही कौन? जिनके शरीर जड़ाऊ गहनों से जगमग जगमग कर रहे हैं। ३. (इनकी) कतारें (पंक्तियाँ) जुड़कर (जब चलती हैं तो उनकी) चिंघाड़ का शोर सुनकर (पृथ्वी के) राजा घबराते हैं और (स्वर्ग का) इन्द्र डरता है। ४. हंसराम कहता है कि (हे सुरेशो नरेशो) खड़े रहो भागो न (यह फौज नहीं चढ़कर आई यह तो) गुरू गोबिन्द सिंह जी से दान लेकर कविराज (घोड़ों और हाथियों पर चढ़े) जा रहे हैं@।

(गुरू दरबार का जलाल)

जिन को प्रताप परि पूरन पुहमि परि,
सोऊ तेरे चरन को करत बखान हैं।
जिन्है चाह चक्र वै चकित होत 'हंसराम'
तेऊ तेरे चाहिबे को धारत धिआन हैं।
जिन कौ बिजय पारावार पार देखीयति,
प्रबल प्रचण्ड सुने ज़ाहर जहान हैं।
जिन कौ न दरबार पायत महीनिक लौ
तेऊ तेरे दरबार देखे दरबान हैं।

१. जिनका प्रताप पृथ्वी पर (भरपूर है =) फैल रहा है, वे तेरे चरणों (का यश) वर्णन करते हैं। २. जिन (ऋषियों, मुनियों, सिद्धों) को चक्रवर्ती राजा देखकर चकित होते

---

* सति = सत्या! (अ) हंसराम सच कहता है। (आ) सति – सतिगुरू का संक्षिप्त।

+ 'करनालन' पाठ के कारण बंदूक अर्थ भी लगता है, पर आगे वाली पंक्ति उसको खंडित करती है। करनाइ – नरसिंघा अर्थ भी लगाते हैं।

@ प्रतीत होता है कि जब श्री गुरू जी ने युद्ध शुरू होने से पहले कवियों और विद्वानों को दान सम्मान घोड़े हाथी देकर भेजा है तब की कवि सम्मान में दी फौजी विदायगी का इस छंद में आलंकारिक नक्शा है।

हैं, वे आप के दर्शनों के लिए ध्यान लगाते हैं। ३. जिन (राजाओं) की जीत समुद्र* से पार देखते हैं और जिनका प्रबल तेज जगत में प्रगट होता सुनते हैं, ४. (तथा) जिन (राजाओं) के दरबार में महीनों तक (जाना नहीं) हो सकता वे राजा तेरे दरवाजे पर दरबान बने दिखाई देते हैं, (अथवा दरवाज़े पर इंतज़ार करते देखते हैं)।

(सर्वगुण सम्पन्नता)

करन से दाता हो, विधाता मही मंडल के,
बैरी को बिहंडनि प्रचण्ड भूअ भार को।
पुरख पुरान से पुरानन में गाईयति
साचे गुर गोबिन्द अधार निराधार को।
जौन तेरी कीरति जगातो जम्बू दीप कै कै,
पसरे उजारो परसंत पारावार को।
गुरन के बंस चलि आई 'हंसराम' सदा
गुनी सों उदार, तोरादार तरवार को।

१. 'कर्ण' जैसे दाता हो, पृथ्वी मंडल के रचने वाले हो, वैरी के नाश करने को (तथा) धरती के बोझ उतारने को महातेजस्वी हो, (अ) पृथ्वी पर बोझ रूप जो शुत्र हैं उनके नाशकर्त्ता हो। २. पुराणों में आप पुरातन पुरुष+ कहकर गायन किये गये हो, हे सच्चे गुरू गोबिन्द सिंह जी आप निराश्रितों के आश्रय हो। ३. जम्बू (दीप) में आप की जिस कीर्ति को हम दीपक बना बनाकर रोशन कर रहे हैं, (वह आपकी कीर्ति) चाँदनी होकर सात समुद्रों से पार अपना उजाला फैला रही है। ४. गुरू साहिब के वंश में (यह बात) चली आयी है कि गुणियों के साथ सदा उदार रहे हैं और तलवार (खींचने वाले को) तोड़ेदार (बंदूक) होकर मिलते रहे हैं, (भाव प्रबल होकर अधीन करते रहे हैं)।

छप्पय– कमठ पीठ कसमसत, असत रज भान छाइ भुअ।
कोल कच्छ कलमलत, हलत पंनग पतंग हुअ।
तुटत पब्ब जर पग चलत हुटत दिग्गज बित तानयो।
लुट्टि कुट्टि परिपूर छुट्ट बन बन बिलखानयो।
कहि 'हंसराम' हरखंत हरि, धरधर ध्रूव लंकेश सब।
घर घरन दुक्ख दंबयो धरनि सु चढ़ति सिंह गोबिन्द जब।

१. कछुए की पीठ मसली गयी है, धूल के छा जाने से सूर्य डूब गया मानो। २. सूअर, कछुए घबराते हैं, शेषनाग पतंग की तरह काँप रहा है@। ३. पहाड़ों की जड़ें टूटती हैं जब (फौज) के पैर (कवायद) बँधे चलते हैं और दिशापाल हाथी (इस यत्न से कि

* पारावार = समुद्र।

\+ पुरातन पुरुष या पुराण पुरुष – अनादि परमात्मा।

@ सूअर, कछुआ, शेषनाग, तीनों धरती के नीचे इसका बोझ लिए बैठे माने जाते हैं।

न हिलें) सारा ज़ोर लगाकर भी थक रहे हैं। ४. (ज़मीन के लोगों के) समूह के समूह (डरकर कि कहीं लूटमार पड़ जाये) घबराकर वनों वनों में दौड़ते हैं। ५. ध्रुव और (लंकेश =) विभीषण भी थर थर करते हैं (कि कहीं हमारे अटल राज्य न छिन जायें पर) विष्णु जी प्रसन्न होते हैं (कि गुरू जी ने तो केवल दुष्टों, प्रजा दोषियों और ज़ालिमों को ठीक करना है ये ऐसे ही डर रहे हैं, क्योंकि) गुरू गोबिन्द सिंह जब चढ़ाई करते हैं तो धरती पर घर घर में जो दुख है वह दबता है (भाव नाश होता है)।

करांचोली को कवित्त–

सूरन की पति अति जानति जहान जांको
तांको फल देत सदा अरि पर जीत है।
पूर जे हरी के हिए कामन थमत जांते
'हंसराम' कहै सदा पानिप* सों प्रीत है।
जोगिन की जीवन सजीवन है भूतन की
मूतन+ सु हीन नित बाढ़त पुनीत है।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरू गोबिन्द सिंह
तेरी कराचोली@ कामतरु की सी रीत है। १३

४. हे गुरू गोबिन्द सिंह जी! (आप) बहुत प्रतापी पातशाह हो, आपकी तलवार (कातिल वस्तु नहीं यह) कल्पवृक्ष की रीति रखती है। (कैसे? उत्तर है:–) १. सारा जहान इसको जानता है कि यह शूरवीरों की अति की आबरू है, उनको यह दुष्टों पर जीत का फल देती है। २. (पराये सुख को) छीन लेने वालों के हृदयों की जो (लूट, मार, कुटाई, जुल्म की) कामनाएँ भर रही हैं वे (इस तेरी तलवार के भय से) थम जाती है और शरणागतों के साथ इसकी सदा प्रीत है (भाव उनका प्रतिपालन करती है)। ३. योगिनियों का यह जीवन है और जीवों का भी सुन्दर जीवन भाव भोजन दात्री है (पर) पवित्रता रहित (मनुष्यों को) हीनता देने वाली तथा पुनीत लोगों को वृद्धि देने वाली है।

७. चंदन

एक दिन श्री कलगीधर जी विद्वानों की सभा लगाये बैठे थे, बड़े-बड़े विद्वान और कवि चारों ओर घेर कर बैठे थे, सुन्दर सुन्दर विद्या के दार्शनिक और काव्य के कटाक्ष चल रहे थे कि एक कवि का आगमन हुआ। इसका नाम चंदन था। यह जाति का ब्राह्मण था। जब इसकी भंट हो चुकी तो श्री गुरू जी ने पूछा कवि जी कैसे आना हुआ? कहने लगा आपका यश बहुत सुना है, आपके गुणों की देश में घर घर कीर्ति हो रही है। आपने हिन्दू धर्म की लाज रख दिखायी है। आपने प्रजा का पालन और रक्षा की है, धन्य हो। फिर आप

---

* शोभा। (अ) शरणागत = प्रणतिपाल।

\+ पवित्रता रहित भाव अपवित्र।

@ तलवार।

की कीर्ति विद्या की क़द्रदानी की हो रही है। आपके दरबार के कवियों और विद्वानों की भी अत्यधिक महिमा हो रही है। मैं भी आया हूँ कि देखूँ आपके कवि कोविद मेरे एक सवैये को समझते हैं कि नहीं। अगर मेरी योग्यता की भी श्री जी को योग्यता दिख जाये तो मैं भी सेवा में टिक (ठहर) जाऊँ। तब गुरू जी उसकी गुण गर्वित अवस्था पर मुसकराये, पर बोले, सुनाओ कवि जी अपनी रचना। फिर उसने सवैया पढ़ा–

नव सात तिये, नव सात किये,
नव साति पिये नव सात पियाए।
नव सात रचे, नव सात बदे,
नव सात पिया पहि दायक पाए।
जीत कला नवसातन की,
नवसातन के मुख अंचर छाए।
मानहुं मेघ के मंडल मैं कवि
'चंदन' चंद कलेवर छाए॥१॥

सुनकर गुरू जी फिर मुसकराये और बोले–

इस जैसनि के अरथ बिचारन।
हमरे घाही करैं उचारनि।

चंदन कवि हैरान रह गया कि मेरा इतना प्रगल्भ सवैया और ऐसे सवैये यहाँ के घसियारे समझ सकते हैं। फिर बोला, पातशाह! कोई घसियारा बुलाओ जो इसके अर्थ करे। तब चोबदार को हुक्म हुआ–धन्ना सिंह को बुला लाओ। थोड़ी देर बाद हाथ में खुरपी और कंधे पर जाली फेंके धन्ना सिंह आ गया। सतगुरू ने आज्ञा की, भाई धन्ना सिंह। इस कवीश्वर जी का सवैया सुनो और इसका अर्थ जो समझो सुना दो। तब कवि ने सवैया पढ़ा। धन्ना सिंह ने एक दो बार सुना और कहा, पातशाह इसमें कोई ऊँचा भाव, कोई काव्य का गहरा ख़्याल तो नहीं है यह तो सोलह पद की गिनती है उसके कई प्रकार में कई चीज़ों पर घटित होने की। जो इस प्रकार है–

नव सात, नौ और सात हुए सोलह, १६ बरसों की एक स्त्री ने सोलह शृंगार किए, पति उसका भी सोलह वर्षों का था जो परदेश था वह १६ महीनों के बाद घर आया था*। सोलह खानों वाली खेल (= चौपड़) की बाज़ी लगायी गयी, (नव सात बदे =) १६ दाँव डालने की शर्त लगायी गयी। सोलहवाँ दाँव पति का (जीतवाला) पड़ गया (फिर) चौपड़ की बाज़ी (पति ने) जीत ली। सोलह कला वाले चाँद के मुख वाली स्त्री ने हार खाकर मुँह छुपा लिया, (उसके पल्ले में मुँह ढाँपा गया पर फिर दिखता भी रहा, जैसे बादल के मण्डल में 'चन्द्र' छाया में आ जाता है।

* ऐसे भी लगाते हैं – १६ तरह के खाने खुलाए।

८. धन्ना सिंह

यह अर्थ सुनकर चंदन शर्मिन्दा हो गया पर अपना आप संभालकर बोला, साहिब जी, आप केवल पंडित, केवल विद्याधर, केवल कवि नहीं हो न, आप अवतार और साहिब करामात हो, जो चाहो सो कर सकते हो। सुना था आप के पूर्वज गुरू हरकृष्ण जी ने झीवर द्वारा पंडित को शास्त्रार्थ में हरा दिया था, आज घसियारे ने मेरा सवैया समझ लिया तो आप की बरकत है। तब गुरू जी बोले, धन्ना सिंह तू कोई अपनी शाब्दिक सुन्दरता की रचना सुना जो कवि जी को समझ आये कि आप भी कविता कर सकते हो तो धन्ना सिंह बोला–

मीन मरे जल के परसे कबहूँ न मरे पर पावक पाए।
हाथी मरे मद के परसे कबहूँ न मरे तन ताप के आए।
तीय मरे पिय के परसे कबहूँ न मरे परदेस सिधाए।
गूढ़ मैं बात कही दिजराज*। बिचार सके न बिना चित लाए।
कउल मरे रवि के+ परसे कबहूँ न मरे ससि की छवि@ पाए।
मित्र मरे मित के मिलबे कबहूँ न मरे जब दूर सिधाए।
सिंह मरे जब मास मिले कबहूँ न मरे जब हाथ न आए#।
गूढ़ मैं बात कही दिजराज! बिचार सके न बिना चित लाए।

यह सुनकर चंदन जी को अर्थ की सुगन्धि न आई, तब बोला, पातशाह विद्या के जल पर अभिमान की काई भी छा जाती है। मेरे तो विद्या अभिमान के साथ जाति अभिमान भी मिल गया, क्षमा करो और यह दूर करो। गुरू जी उसकी 'स्व अवगुण लक्षता' पर प्रसन्न हो गए और उसका रोज़ीना (रोज़ का ख़र्च) लगाकर कवि समुदाय में रख लिया।

अर्थ–ऊपर वाले दोनों सवैयों के अर्थ की कुञ्जी यह है, प्रत्येक तुक का पाठ ऐसे करना है–

मीन मरे जल के परसे कबहूँ न,
मरे पर पावक पाए

मछली कभी नहीं मरती जल के स्पर्श से, परन्तु अग्नि के स्पर्श से मर जाती है$। इसी तरह सारी तुकों के अर्थ लग जाते हैं।

९. अमृत राय

यह कवि पंजाबी था, लाहौर का रहने वाला था, पर इसकी ब्रजभाषा की रचना कमाल की है। इसके पिता का नाम छैल राय था। इसने महाभारत के सभा पर्व का अनुवाद

* हे चंदन कवि।
\+ सूर्य की धूप।
@ चाँद की चाँदनी।
\# माँस हाथ न आये।
$ इस रचना में अलंकार है विरोधाभास।

भाषा में गुरू जी के हुक्म से किया और दान मान से सम्मानित किया गया था*। यह पर्व पटियाला लाइब्रेरी में है+। इसकी रचना के एक छंद की एक पंक्ति टप्पा बनकर आजतक ज़ुबानों पर चढ़ी हुई है, 'पाईए करोर तउ न जाईए लाहौर ते'@। जैसे ज़ौक कवि ने कहा था, 'आजकल गरचिह दक्कन में है बड़ी कदरे सखुन, कौन जाए ज़ौक पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर'। वैसा ही यह अहसास अमृतराय का है पर है उससे आगे का। अमृतराय जी आम कवियों की तरह अमीरों के दरवाजे नहीं जाया करते थे। आपकी स्वसम्मान की 'मनप्रतीति' कमाल की थी। पर गुरू जी की 'दीन रक्षा' और 'आत्म तत्वदर्शन' की खूबियों के कमाल सुन सुनकर आपको दर्शन प्रेम उमड़ने लगा और जा हाज़िर हुए। देखे सुने का

* गु॰ प्र॰ सू॰ में लिखा है कि अमृतराय ने 'कर्ण' पर्व भाषा में किया, पर इसने 'सभा पर्व' का अनुवाद किया था। यह बात इसकी पुस्तक से तथा गु॰ वि॰ बा॰ सु॰ सिंह से सही हो जाती है। यथा–

सभा परब तांते बनवायो। श्रवण जोग कविता मन भायो।
साठ सहस्त्रं रपैया दीना। सिरोपाउ पशमम्बर भीना। (पृष्ठ १११)

यह भी वहाँ ही लिखा है कि पहले इसने 'नौ रस' के विषय पर एक चमत्कारी ग्रंथ लिखा था।

\+ पटियाला लाइब्रेरी के नं॰ १-५ में है।

@ अमृतराय ने चित्र बिलास नाम का ग्रंथ लिखा था, उसमें यह छंद लिखा है–

बाचत पुरान कहूँ नाचत निरतकारी
गावत हैं गीत कहूँ मीठी धुनि मोर ते।
कौतक कहानी केल जहाँ तहाँ हासी खेल
साधन सों मेल, डर है न ठग चोर ते।
लौने लौने रूप सभ भप भेख देखीअत
'अमृत' सहज सुख सांझ और भौर ते।
रतिपति भोग तहां रोग ना वियोग सोग,
पाईए करोर तौ न जाईए लहौर ते।१३।

(ऐरावती नदी वर्णन। कवित्त)

गंगा जु के सग की तुरगनी तरंग अंग,
कटै पाप भग वासै नैक जु अनाईए।
मच्छ कछ ततकाल भौरन मैं भमै ब्याल,
मंगल कराल हेत कहां लौ सुनाईए।
तीर तरु ललित बलित बेल फूल फल,
चक्रवाक सारस मराल मन भाईए।
पापी जात तर अर तुरत ही जात तर,
ऐसी ऐरावती लोक लोकन में गाईए।१४।

लिखित नुस्खा 'चित्र बिलास'। संचय श्रीमान डॉ॰ चरन सिंह जी।

जिस विद्वान को लाहौर इतना प्यारा था कि किसी राजा का दान सम्मान उसको लाहौर से नहीं था निकाल सकता, उसपर गुरू गोबिन्द सिंह जी का अद्वितीय व्यक्तित्व वह प्रभाव डालता है कि लाहौर छोड़कर वह आनंदपुर जाता है और गुरू जी के यश गाता तृप्त नहीं होता।

फर्क होता है, जो कुछ इसने जाकर वहाँ देखा उसने और मोहित कर लिया और इसने गुरू यश गाये। इसके बेपरवाह और कमाल के स्वसम्मान के होते हुए इसके रचे गुरू गीत गायन के छंद ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी बहुत कीमती हैं। इसकी कविता के नमूने ये हैं*–

(उदारता)

जाहीं ओर जाऊँ, अति आदर तहाँ ते पाऊँ,
तेरे गुन गन कउ, अगाऊ गनै शेष जू।
हीर चीर मुकता जे देति दिनप्रति दान,
तिनै देख देख अभिलाखत धनेश जू।
गुनन मैं गुनी कवि अमृत पढैया मेरो+,
जब इनै हेरो प्यार कीजै अमरेश जू।
श्री गुरू गोबिन्द सिंह छीरनिध पार भई,
कीरत तिहारी तुमैं कहि के संदेश जू।

१. जिस तरफ मैं जाता हूँ, वहाँ से ही आदर पाता हूँ, तेरे सारे गुण को तो शेषनाग पहले से ही गिन रहा है, (उसकी हज़ार जीभ है और मेरी एक है, वह आदि से आपकी कीर्ति कर रहा है और मैं आज करने लगा हूँ।

२. हीरे, वस्त्र, मोती जो आप हर रोज़ दान देते हो उनको देख देख कुबेर भी चाहता है (कि मुझे भी ऐसा दान मिले)।

३. हे अमरों (देवताओं) के ईश्वर जी! आप गुणियों से बड़े गुणी हो और अमृत कवि को (जब यह देखोगे कि) मेरे (गुणों का) पढ़ने वाला (= उच्चारण वाला) है तो प्यार करोगे।

४. हे श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी! आप की कीर्ति क्षीर समुद्र से भी पार निकल गयी है (केवल इतना) संदेशा कहकर आप जी को सुनाने के लिए मैं आया हूँ। (भाव–मैं आदर पाए बिना कहीं नहीं जाता, तेरे गुण गायन करने के लिए यहाँ आप आया हूँ। मेरे गुण गायन की आपको ज़रूरत नहीं जिनके गुण कि शेषनाग आप गा रहा है। मैं तो इतना संदेशा देने आया हूँ कि आप की कीर्ति सात समुद्र से भी पार निकल गयी है।)

(गुरू जी के अनेक गुणों का वर्णन)

प्रिया प्रेम से शिंगारी, हास्य सों विनोद भारी,
दीनन पै करुणा अनुसारी सुख दीनो है।

---

* सूरज प्रताप में लिखा है कि दरबार में पहली हाज़िरी समय यह अगला छंद सुनाया था। परंतु इसका भाव ऐसे भी प्रतीत होता है कि आनंदपुर में आकर अपना आदर, गुरू के दान सम्मान आदि को देखकर कवि कह रहा है।

\+ पुरातन लिखित और संशोधित हुए गु० प्र० में पाठ 'मेरो' है।

कीनो अरि रुंड मुंड, रुद्र रस भरयो, झुण्ड,
फौजन सुधारन में बीर रस कीनो है।
डंक सुन लंक भयभीत, शत्रु बाम निंदा,
विक्रम प्रबल अद्भुत रस लीनो है।
ब्रह्म ज्ञान सम रस 'अमृत' विराजै सदा,
श्री गुरू गोबिन्द राय नवो रस भीनो है।

अर्थ– काव्य ग्रंथों में कवियों ने नौ रस माने हैं।

यथा

प्रिथम शिंगार, सुहास्यरस, करना, रौद्र, सुवीर।
भय बीभत्स, बखानिये अदभुत, शांत सुधीर।

नवों रसों के वर्णन में प्रगल्भ लेखक होने के कारण इसने गुरू जी में नौ ही रसों की पूर्णता दिखलायी है:– १ प्यारे (वाहिगुरू जी) के प्रेम का जो श्रृंगार (धारण किया है, यही श्रृंगार रस है), जो भारी कौतुक करते हो (जो कौतुक शिक्षाप्रद होते हुए भी हँसाते हैं) वह हास्य रस है*। गरीबों पर कृपा करके जो सुख दे रहे हो, यह करुणा रस है। २. वैरियों के झुण्डों को (मैदाने जंग में) जो तलवार तले किया है यही रौद्र रस (आप जी में) भर रहा है और फौजों के तैयार बर तैयार करने में आप वीर रसिये हो। ३. (आप के रणजीत नगारे की) चोटों को सुनकर लंका वाले भयभीत हो रहे हैं यह आप जी में भयानक रस है। (शत्रुओं की) स्त्रियाँ (जो अपने प्यारों के वियोग में व्याकुल हो) अनुचित बोल रही हैं (यह वीभत्स रस है), (महाकायरों और निर्बलों को) बहुत बलवान बना रहे हो, (यह) अद्भुत रस है। ४. अमृत कवि जी कहते हैं, आप जी के अंदर जो सदा ब्रह्म का ज्ञान सुशोभित हो रहा है यही शांत रस है, इस प्रकार श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी में नौ ही रस भरपूर हैं+।

गुरू जी के दान से हैरान होकर अमृत राय ने इस विषय में भी आपको शिरोमणि दानी और यश के योग्य वर्णन किया है:–

प्रिथमै है जायो प्रिथु, बेन नृप लै खिलायो,
चूम चूम मुख दै दधीचि सुख दीनो है।
बलिराज मन भायो, हरिचंद लै लडायो,
चलन सिखायो कल करण प्रबीनो है।
विक्रम पढ़ायो, भोज भोजन करायो, जगदेव
पहिरायो जग अभिलाख लीनो है।

---

* एक गधे पर शेर की खाल पहनाकर जो कौतुक किया था वह शिक्षा के साथ हास्य रस का था, देखो सूरज प्रकाश फिर रवालसर पर पगड़ियों का कौतुक।

\+ रस पद का अर्थ जल भी है, इसलिए 'भीनो' पद प्रयुक्त किया है। भीने –भीगे हुए। 'भीने' का दूसरा अर्थ है 'समाजाना' भरपूर होना।

श्री गुरू गोबिन्दराय 'अमृत' सुदृष्टि ही ते,
तैं तो प्रतिपाल छितिपाल जस कीनो है।

कवि जी यश को एक बालक के अलंकार में वर्णित करते हैं:– १ पहले पृथु राजा ने यश को जन्म दिया, बेनूँ राजा ने (इसको) खिलाया; दधीचि जी ने (इसका) मुखड़ा चूम चूमकर इसको सुख दिया। २. बली राजा ने इसको प्यार किया, हरी चंद (राजा ने इसको) लाड कराये, प्रवीण (महाराजा) कर्ण जी ने इसको सुन्दर चाल सिखायी। ३. (महाराजा) विक्रमादित्य जी ने इसको पढ़ाया, (महाराजा) भोज जी ने इसको भोजन छकाकर (पुष्ट किया), जगदेव जी ने वस्त्र पहनाकर इससे जगत की इच्छाएँ पूर्ण की*। ४. अमृत कवि कहता है, श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी! आप जी ने तो (अमृत) दृष्टि देखकर यश का ऐसा पालन किया है कि जगत का पातशाह ही बना दिया है। (भाव सबसे अधिक यश आपके हिस्से आया है)।

१०. मंगल

इस कवि को गुरू जी ने आप बुलाया था और महाभारत का एक पर्व अनुवाद करने के लिए दिया था, जिसका नाम है 'शल्यपर्व'। जिसके सम्बन्ध में वह आप ऐसे लिखता है:–

गुर गोबिन्द मन हरख ह्वै मंगल लियो बुलाए।
सल्य परब आज्ञा करी लीजै तुरत बनाए।
संबत सत्रह सै बररख त्रेपन बीतन हार।
माधव रितु थिति त्रौदसी तां दिन मंगलवार।
सल्य परब भाषा भयो गुर गोबिन्द के राज।
अरब खरब बहु दरब दै करि कवि जन को काज।
जौ लौ धरन अकाश गिरि चंद सूर सुर इंद।
तौ लौ चिरजीवै जगत साहिब गुर गोबिन्द।

इससे पता चला कि इसको भी एक पर्व के अनुवाद के लिए कोई भारी रकम मिली है। हंसराम ने ६० हज़ार रुपया मिला लिखा है। इसके अरब खरब कहने से अनुमान होता है कि इतनी या इससे अधिक रकम मंगल को भी मिली है और या इतनी मिली है कि जितनी की उसको आस नहीं थी। लेकर गदगद हो गया है और अरब खरब कहकर चित्त का आह्लाद प्रगट कर रहा है। यह शल्य पर्व का अनुवाद भी पटियाला लाइब्रेरी में है (देखो लाइब्रेरी का नं॰ १ का अंक ११, सं॰ १९८६)।

इस कवि जी की कविता के और नमूने ये हैं–

---

* या जब वस्तुओं से यशरूपी बालक सज गया तो जिसको इच्छा हुई उसी ने जगत में इसको ले लिया।

(पामरी)

पामरी से भाव काश्मीरी दुशाले का है। एक कवित्त में ये कवि जी गुरू जी के अधिकारी कवि कोविदों को दुशाले बख़्शने का उल्लेख ऐसे करते हैं, मानों शीत ऋतु की शीत में मिल रहे दुशालों का नज़ारा आँखों के आगे आ जाता है।

ऊपर नरेश हूँ की, होहिं शुभ बेश हूँ की,
काश्मीर देश हूँ की भरी आन धामरी।
बुनी कारीगर भारी, करी खूब गुलकारी,
पहिरें भिखारी मोल पावै लाख दामरी।
सीत हूँ को जीत लेत, ऐसी शोभा देहि देति,
मंगल सुकवि ज्यों कन्हैया जी को कामरी।
श्याम, सेत, पीरी, लाल, ज़रद, सबज़ रंग
गुरू जी गुबिन्द ऐसी देति मौज पामरी*।

१. काश्मीर देश की (बनी हुई) राजाओं के ऊपर लेने वाली जो पहनी हुईं (उन पर भी) अच्छी लगती हैं, (वे पामरियाँ) घर में (मँगाकर) भर रखी हैं।

२. भारी कारीगरों की बुनी हुईं, (ऊपर) अच्छे फूलों की कढ़ाई काढ़ी हुई, लाखों रुपये जिनका मूल्य पड़े, (मेरे जैसे) भिखारी पहन रहे हैं।

३. ठंड को जीत लेती हैं और देह को ऐसी शोभा देती हैं जैसे कन्हैया जी की कम्बली।

४. काली, सफेद, पीली, लाल, खट्टी, हरे रंग की, गुरू जी ऐसी पामरियाँ बख्शते हैं।

(गुरू जी के दान का वर्णन)

जाचे ध्रू पायो है अमर पद सुरलोक,
नामा जूके जाचे दीओ देहुरा फिराए जी।
बिपदा मैं लंका दीनी जाचे ते बिभीखन को,
'मंगल' सुकवि जाचौं मंगल सुनाए जी।
द्रोपदी नगन होत जाचयो सभा मांहि ठाढ़े
अम्बर लौ अम्बर मही पै रहे छाए जी।
ऐसो दान दैबो कौन कोऊ सतिगुर बिना
और कउ न जाचीए बिना गुबिन्द राय जी।

---

* हिन्दी, पामरी = दुपट्टा। संस्कृत प्रावर = ऊपर का कपड़ा या चोगा। इस कवित्त में जो व्याख्या आई है, उससे स्पष्ट है कि ये काश्मीरी दुशाले थे, काश्मीर के जामेवार बुनी हुई गुलकारी के बहुत कीमती होते हैं। फिर इस छंद में पामरी को उपमा कम्बली से दी है, इसलिए 'ऊपर लेने का कपड़ा' = दुशाला ही ठीक अर्थ भाव है।

१. (आपसे) ध्रुव ने माँगकर सुरलोक में अमर पदवी पायी और नामदेव के जाँचने से (उसका) देहुरा घुमा दिया। ३. द्रौपदी ने सभा में खड़े नंगे होते हुए कपड़ा माँगा तो आकाश तक (आप के बख़्शे) कपड़े पृथ्वी पर छा गए। २. विभीषण विपदा में फँसे को माँगने पर (आपने) लंका दी, पर मंगल कवि यह माँगता है कि मैं सदा आपको मंगल सुनाता रहूँ। ४. सतगुरू जी के अतिरिक्त ऐसा दान कौन कोई दे सकता है इसलिए बिना गुरू गोबिन्द सिंह जी के और से न माँगें।

भावैं जाए तीरथ भ्रमति सेतुबंद हूँ लौ*,
भावैं जाए कंदरा मैं कंद मूल खाईए।
भावैं देहिं द्वारका दगध करे छापे लाए+,
भावैं कांशी माहिं जाए जुग्ग लौ वसाईए।
भावैं पूजौ देहुरे दिवाले सभ जग्ग हूँ के,
भावैं खट दरशन के भेख मैं फिराईए।
जौ तूँ चाहे मनसा को 'मंगल' तुरत फल,
गोबिन्द गुरु की एक मौज हूँ मैं पाईए@। १७

(मंगल कवि किसी और मित्र कवि को आनन्दपुर बुलाता है)

पूरन पुरख अवतार आन लीन आप,
जांके दरबार मन चितवे सो पाईए।
घटि घटि बासी, अबिनासीनाम जां को जग,
करता करनहार सोई दिखराईए#।
नौमो गुर नंद, जग बंद, तेग त्यागे पूरे$,
मंगल सु कबि कहि मंगल सुथाईए%।
आनंद को दाता गुर साहिब गोबिन्द राय,
चाहै जो आनंद तौ अनंदपुर आईए^।१४।

---

* तीर्थों पर घूमते सेतुबंध तक चाहे चले जाओ (हिंद के दक्षिण के अंत पर सेतुबंध रामेश्वर चौथा धाम है।

\+ छापे लगवाकर शरीर को जलाये।

@ हे मंगल कवि। अगर तूँ इच्छा का तुरन्त फल चाहता है तो वह गुरू गोबिन्द सिंह जी की एक बख्शिश में से मिल सकता है, (और कहीं से नहीं)।

\# ब्रह्मा का रचनेवाला भाव परमात्मा उसी को देखते हैं।

$ जो नौवें गुरू का सुपुत्र है और जगत के वंदन करने योग्य तेग (चलाने और माया) त्यागने में पूरा है।

% मंगल कवि कहता है कि मंगल तो इसी स्थान पर है।

^ वह है आनंद का दाता साहिब गुरू गोबिन्द सिंह, अगर तूँ आनंद चाहता है तो आनंद पुर आ जा।

(तौखला (अंदेशा) बताकर दान की उपमा)

मंगल कवि पंजाबी में भी सन्दर कविता किया करता था। उसका एक कवित्त अनोखा है। इसमें गुरू जी के दान की बहुलता को इस अंदेशे में दर्शाता है कि बलि राजा के पास एक भिखारी आया था और वह छला गया था। तेरे पास अमुक लेने वाले आते हैं देखना कोई उस तरह का छल न कर जाये:–

समुंदर दे वार पार, विच यही मंडल दे
जैंदा* जस देश देश सब्भे लोग गावदे।
सेंवदे भिखारी सेई होंदे नी हज़ारी+ हुण,
वारी वारी पढिके कबित्त नी सुनांवदे।
चारों ही बरन खट दरशन जैंदे द्वार
'मंगल सुकबि' मन इच्छा फल पांवदे।
वेखीं बल वांगू कोई छली गुरू गोबिन्द जी
इक लै लै जांदे इक लेवणे नूँ आंवदे@।

११. सुन्दर

इसका नाम गुरु के कवियों में आया है, पर यह शाहजहाँ के दरबारी कवि सुन्दर से जो 'सुन्दर शृंगार' नाम के ग्रंथ का कर्त्ता है अलग है। इसकी छाप के दो छंद मिलते हैं, जो ये हैं:–

साधन को सिद्ध शरणागत समर सिंधु,
सुधाधर 'सुंदर' सरस पद पायो है।
कुल को कलस, कवि कामना को कामतरु,
कोप कीए काल, कवियन गुन गायो है।
देवन मैं, दानव मैं, मानव, मुनिनि हूँ मैं,
जांको जस ज़ाहर जहान चलि आयो है।
तेग़ साचो, देग साचो, सूरमा शरन साचो,
साचो पातिसाहु गुरु गोबिन्द कहायो है।३०।

१ शरणागत साधकों की आप सिद्धि हो (सिद्धि दाता हो), युद्ध के समुद्र हो, सुन्दर (कहता है आपने) चंद्रमा से ऊँची पदवी पायी है, भाव आपकी सुन्दरता निष्कलंक है। २. ३. कुल के शिरोमणि, कवियों की इच्छा पूर्ण करने के लिए कल्पवृक्ष हो, कोप करने पर

---

* जिस (गुरु गोबिन्द सिंह जी) का।

\+ भिखारी हज़ारों वाले हो जाते हैं।

@ हे गुरु गोबिन्द सिंह! देखना कहीं कोई (दान के बहाने) बलि की तरह आपको छल न जाये, (क्योंकि वहाँ तो याचक एक आया था और यहाँ) एक ले लेकर जाते हैं एक लेने को और आ रहे हैं।

कालरूप हो, ऐसे कवियों ने (आप के) गुण गाये हैं। देवताओं में, दानवों में, मानवों मुनियों में जिनका यश (भाव आपका यश) जहान में ज़ाहिर चला आ रहा है। ४. (आपकी) तेग सच्ची है, देग सच्ची है, शूरवीरों के सच्चे शरण पाल हो (इसलिए) हे गुरू गोबिन्द सिंह जी आप सच्चे पातशाह पुकारे जाते हो।

बेदन महिं शाम सुने, सिंधु मिरजादा मेरु
मंडल महीं मैं, गुरिआई गुन गाये हो।
शरम के सागर, सपूतन के सिरमौर,
सुंदर सुधासर से 'सुंदर' गनाये हो।
रचन में दान बानि बानी हरीचंद की सी,
बिदत बिनय बडे बंस चलि आए हो।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरनि महिं ऐसे गुरू गोबिन्द कहाए हो।31।

१. वेदों में श्याम, मर्यादा में समुद्र, पृथ्वी के मण्डल में सुमेरु (हमने शिरोमणि सुने हैं, पर आप इन) गुणों में (इन से भी) अधिक गुणों वाले गाये गये हो। (भाव ज्ञान, मर्यादा, पुरुषोत्तमता और अचल उच्चता में आप इनसे भी अधिक हो)। (अ) वेदों में से श्याम (बड़ा) सुना है, उसने आप की गुरुता के ज्ञान के गुण गाये हैं, समुद्र ने आपकी गुरुता में मर्यादा की सीमा देखकर गुण गाये हैं। २. शर्म के समुद्र हो, सपूतों में से शिरोमणि हो और (सुन्दर कहता है) सुंदर चाँद से भी सुन्दर गिने गये हो। (सुन्दर श्लेष है, कवि की छाप भी और सुन्दर भी)। ३. वाणी रचने में (वाणी =) शारदा हो और दान हरी चंद की तरह (देते हो), बड़े वंश (भाव गुरू प्रणाली) में से चले आये हो (फिर आपकी) नम्रता विदित है। (अ) रचना (रचने में वाणी =) शारदा तुल्य हो, बानों (में राम हो), दान में हरीचंद हो। ४. तेज के सूर्य हो, परशुराम (जैसे कुठार पकड़ने में वैसे आप) तलवार (पकड़ने में सिद्ध हो), गुरू साहिबान में से ऐसे (सर्वगुण सम्पन्न) गुरू गोबिन्द सिंह कहलाते हैं।

१२. आलम

हिन्दी कोश की प्रस्तावना वाले लिखते हैं कि यह ब्राह्मण* था और फिर एक कपड़े रंगने वाली रंगरेजन 'शेख' के प्रेम में मुसलमान हो गया था। इसने जोध कवि की संस्कृत पुस्तक का (जो ९९१ हिजरी में जोध कवि ने लिखी थी) हिन्दी में अनुवाद किया, जिसका नाम 'माधवानल काम कंदला' है। 'शिव सिंह सरोज' में लिखा है कि ये शहज़ादे मुअज्जम के पास बहुत दिनों तक रहे। बाद में लगता है कि यह गुरू जी के पास रहा। काम कंदला के अनुवाद का संवत् हिन्दी लिपि में लिखे कामकंदला के नुस्ख़े में वि० १७७४ दिया है सूरज प्रताप में कवियों के कवित्तों में एक कवित्त इनका आया है, बाबा सुमेर सिंह जी ने भी यही कवित्त दिया है और आलम कवि का रचित बताया है:-

---

* 'शिव सिंह सरोज' वाले इनको सनाढ्य ब्राह्मण लिखते हैं।

शोभा हूँ के सागर, नवल नेह नागर हैं,
बल भीम सम, शील कहां लौ गिनाईए।
भूम के बिभूखन, जु दूखन के दूखन
समूह सुख हूँके मुख देखे ते अघाईए।
हिम्मत निधान, आन दान को बखाने? जाने
'आलम' तमाम जाम आठों गुन गाईए।
प्रबल प्रतापी पातिशाह गुरु गोबिन्द जी।
भोज की सी मौज तेरे रोज़ रोज़ पाईए।

१. शोभा के समुद्र हो, नित नए प्रेम वाले ज्ञानी या छबीले हो (भाव भक्तों के साथ आपका प्रेम बूढ़ा नहीं होता), भीम जैसा बल है और शील स्वभाव की श्रेष्ठता की गिनती ही नहीं है। २. पृथ्वी का श्रृंगार हो, दोषियों को नष्ट करते हो, सारे सुखों के दाता हो, देखकर तृप्ति मिलती है। (सूचना–लगता है कि ठीक पाठ ऐसे था: समूह सुख हूँ के सुख देखे ते अघाईए'। लेखक की कलम चूक ने पाठ सुख का मुख कर दिया है)। ३ हिम्मत के खज़ाने हो आप के दान का कौन वर्णन करे? उसको तो सारा जहान ही जानता है, (आलम कहता है) आठों पहर हम आपके गुण गाते रहते हैं। ('आलम' पद श्लेष है– जहान अर्थ भी है और कवि की छाप* भी है)। ४. महाबलवान प्रतापी पातशाह श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी! (राजा) भोज जैसी बख़्शिश (जो भोज से तो कभी कभी आती थी) आप से हर रोज़ पाते हैं।

सूचना–इस छंद में आलम जो शहज़ादे के पास रह चुका था गुरू जी की बख़्शिश को उससे अधिक देखकर उनको पातशाह और उनकी बख़्शिश को राजा भोज से बड़ी बता रहा है।

१३. सारदा

इस नाम का कोई कवि या कवि स्त्री का नाम अब तक के मिले गुरुद्वार आए कवियों की किसी गिनती में नहीं आया पर दो छंद गु॰ प्र॰ सू॰ में ऐसे मिलते हैं जिनमें पाठ आता है, 'शारदा कहित है'। वैसे दोनों में इसका अर्थ सरस्वती ऐसे कहती है – भी लग जाता है, पर विशेष संभावना होती है कि 'शारदा' कवि छाप है। दूसरे छंद से ऐसे लगता है कि मंगल कवि के ख़्याल की ही पूर्ति शारदा की ओर से हो रही है। छंद ये हैं:–

दिश दिश देश देश एश दिगपाल केत,
आज करे काल केते गुनह गहति हैं।
प्रबल प्रतापी पातशाह साचे सुनीअति,
तेरे सिर भार भू को शारदा कहित है।

---

* छाप – चिह्न, उपनाम।

ओजन के सूर महां मौजन सों घेर मार,
और न बिचार कीजै दारिद दहित हैं।
हर मांगे बर देति मांग गुर गोबिन्द को,
करतार मांगे करतार दे रहत हैं।

१. दिशा दिशा के स्वामी दिगपाल और देश देश के राजा (आज =) के समय कितने ही (आप के गुणों को ग्रहण करते हैं, कितने (कल =) आगे को ग्रहण करेंगे। २. आप प्रबल प्रताप वाले और सच्चे पातशाह सुनने में आते हो, शारदा कहता है कि आप के सिर पर ही पृथ्वी का भार (भाव आपके आश्रय है)। ३. (उमंग और उत्साह के) महा शूरवीर हो, बख़्शिशों से घेरकर मार देते हो, (मेरे मन) और विचारों में न पड़, (वह तो ऐसा करने में) दरिद्रता (ग़रीबी) का नाश कर रहे हैं। (ओज = उत्साह, उमंग, जोश, बल)। भाव दान देते समय किसी के अधिकार आदि का विचार नहीं करते, उसकी दरिद्रता दूर कर देते हैं)। ४. हरि से कुछ माँगे तो वे वर दे देते हैं (पर मेरे मन तू) गुरु गोबिन्द (सिंह) जी से माँग (जो) माँगने पर हाथों (के दान) से तार देते (कल्याण करना) हैं (और साथ में) करतार* भी दे देते हैं, (भाव वाहिगुरू प्राप्त भी करवा देते हैं)।

(गुरु जी की छड़ी)

इस छंद में मंगल के छड़ी पर कहे छंद के ख्याल को दूसरे ख्याल में अदा किया गया है। मंगल ने गुरू जी को विष्णु और छड़ी को विष्णु की गदा से रूप धारण करने वाली बताया है और शारदा ने गुरू जी को कृष्ण और छड़ी को बाँसुरी से रूप धारण करने वाली बताया है। छंद ऐसे है–

कुंज कुंज गलिनि बजायी बन बांसरी जी,
उनही के संग सोई, 'शारदा' कहति है।
जमना के तट बंसी बट के निकट सोई,
तट सतुद्रव आन साहिबी करत है।
देखो भूप भूपनि के भूम के भगत लोगो।
भाग या छरी के मो सों कहिबे बनत हैं।
कान्ह ह्वै कै औतरयो तौ मुक्ख ही रहत लागी,
गोबिन्द ह्वै औतरयो तो हाथ ही रहत है।

१. वृन्दावन की कुंज कुंज और गली गली में बाँसुरी बजायी थी। शारदा कवि कहता है कि वही (बांसुरी) ही अब उनके साथ है (छड़ी के रूप में)। २. यमुना के किनारे जो बंसीवट के समीप (बंसी बजाता था+) वही सतलुज के किनारे आकर साहिबी कर रहा है। ३. हे (सिंहासन पर बिराजे) राजाओं के राजा (गुरू जी!) और हे पृथ्वी (पर बैठे)

* करतार = हाथों से तारना (कल्याण करना)। करतार = ईश्वर। करतार पद से यहाँ और भी दो तीन अर्थ लगते हैं, देखो संपादित सूरज प्रकाश, पृष्ठ ५७१६।

\+ बंसीवट, वह बरगद जिसके नीचे कृष्ण जी बाँसुरी बजाते थे।

भक्त जनो (साध संगत जी) देखो इस छड़ी के भाग्य मुझे कहने ही पड़े हैं। ४. कि जब कान्ह होकर अवतरित हुए थे तो मुख के साथ ही लगी रहती थी, गुरू गोबिन्द सिंह जी होकर जब अवतरित हुए हैं तो हाथ में ही रहती है।

१४. सुदामा

इस नाम का एक ब्राह्मण श्री कृष्ण जी के समय हुआ है जो उनके साथ इकट्ठा पढ़ता रहा था। यह अत्यधिक निर्धन था। एक बार यह थोड़े चावल भेंट लेकर कृष्ण जी को द्वारिका जा मिला। श्री जी उसको अत्यधिक प्यार और आदर से मिले और उसकी दरिद्रता दूर की। इसकी यह आप बीती भाई गुरदास जी ने भी लिखी है। श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के समय भी इस नाम का एक ब्राह्मण हुआ है जो बुंदेलखंड का रहने वाला था। यह अच्छा कवि भी था, परन्तु गरीब था, यह सुनकर कि गुरू गोबिन्द सिंह जी कवियों को सम्मानित करते हैं यह अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए आंनदपुर गया और गुरू के हुजूर द्वापर के सुदामा की अपने साथ समानता लेकर गुरू जी को मिला और दान पाकर सुखी हुआ, उसकी रचना का एक कवित्त है–

एक संग पढ़े अवंतका संदीपन के,
सोई सुध आई तो बुलाए बूझी बामां मैं:-
पुंगी फल होत तौ असीस देतो नाथ जी को,
तंदुल ले, दीजै, बांध लीजै फटे जामा मैं।
दीन दुआर सुनिकै दयाल दरबार मिले
ऐतो कुछ दीनो पाई अगनत सामां मैं।
प्रीति करि जाने गुर गोबिन्द कै माने,
तांते वहै तूँ गोबिन्द वहै बामन सुदामां मैं।

१. अवन्तिका पुरी में संदीपन (उस्ताद के पास) इकट्ठे पढ़े थे (कृष्ण और सुदामा), यह बात याद आयी तो मैंने (अपनी) स्त्री को बुलाकर पूछा। २. अगर (घर में) सुपारी होती तो मैं जाकर नाथ (भाव गुरू गोबिन्द सिंह जी) को (भेंट रखकर) आशीष देता। (स्त्री ने कहा) चावल ही ले जाकर (भेंट) दे दो और बाँध ले जाओ फटे पल्ले में*। ३. (नाथ जी मेरे जैसा) गरीब द्वारे आया सुनकर दरबार में दयालु होकर मिले और इतना कुछ दिया कि मैंने अनगिनत सामग्री पा ली। (सामां = सामान, सामग्री)। ४. प्रीत करके (मैंने आपको) जान लिया है और (परख) कर (= निश्चय कर) लिया है कि तू हे गुरू गोबिन्द सिंह जी वही गोबिन्द है और (मैं) वही सुदामा (ब्राह्मण हूँ)+।

---

* (अ) (स्त्री ने कहा:–) तंतुल ले। (मैंने कहा–) दीजे बांध। (स्त्री बोली:–) लीजे फटे जामा मैं (भाव और कपड़ा नहीं घर में)।

\+ (अ) हे गुरू गोबिन्द सिंह जी! (आपने जो) प्रीत करके (मुझे) सम्मान दिया है, उससे (मैंने) जान लिया है कि (वही) तू गोबिन्द (कृष्ण) है और वही मैं सुदामा हूँ।

१५. सैणा

यह गुरू के दरबार का एक लेखक था। इससे कुछ गलती हो गयी, माफी माँग लेने के स्थान पर भाग गया और घर जाकर खेती बाड़ी में लग गया। अक्षर यह बहुत सुन्दर लिखा करता था जिससे गुरू जी इसको याद किया करते थे। इसकी गुरू जी क़द्र भी करते थे, कभी कभी यह कुछ कविता भी कर लेता था। कुछ देर घर रहकर 'गुरू कृपा' को याद कर इसने कुछ कविता लिख भेजी जिसका यह रूप मिलता है–

जब के प्रभु ते बीछुरे, कीयो क्रिख़ि* को ठाट।
ब्रिखमन+ संगति हम करी भए जाट के जाट।
अब का मुख प्रभु कउ दिखराऊँ।
सिमर नाम नित आनंद पाऊँ।
गुर गति अगम जाण नहिं जाई।
नारदादि की मति भरमाई@।

यह पढ़कर सतगुरू ने माफ कर दिया और बुला लिया और फिर उसको लिखने की सेवा पर लगा लिया।

१६. कुवरेश

ओड़छा के राजा इंद्रजीत के पास एक ब्राह्मण कवि था, जिसका नाम केशवदास था। इस राजा ने कवि को २१ गाँव इनाम दिए थे। इस शिरोमणि कवि ने 'कवि प्रिया, 'रसिक प्रिया' दो ग्रंथ लिखे हैं जो ब्रजभाषा में काव्य विद्या के ऊँचे स्तर के ग्रंथ माने, पढ़े पढ़ाए और सम्मानित किए जाते हैं। 'रामचन्द्र चन्द्रिका' भी एक अलंकृत रचना इसी महान कवि की है। और छोटे ग्रंथ भी कुछ हैं जैसे–बीर सिंह देंव चरित, विज्ञान गीता। इसके जन्म का संवत् 'शिव सिंह सरोज' ने १६२४ और हिन्दी कोश ने १६१२ दिया है, मृत्यु १६७४ में बुंदेलखंड में हुई#। कवि संतोख सिंह जी इस महान कवि के पुत्र का नाम कुवरेश लिखते हैं$। यह भी कवि और संस्कृत का महान पंडित था। औरंगज़ेब ने इसको मुसलमान बनाना चाहा। जब कुवरेश को पता लगा तो चुप चाप चल पड़ा। भेष बदलकर लुकछिप कर आनंदपुर पहुँचा और गुरू चरणों में हाज़िर होकर ऐसे विनय की:–

'सुना निथांवन को तुम थान। सदा निमानन के बड मान।
अहो नितानन के तुम त्रान। अस सोभा को कथै जहान।

---

* खेती।

\+ बैलों की।

@ यह चौपाई दोहरे के साथ बाबा सुमेर सिंह जी ने दी है, पृष्ठ २६७।

अकबर ने राजा इंद्रजीत पर किसी कारण एक करोड़ रुपया जुर्माना किया, केशवदास ने चोरी चोरी जाकर बीरबल को अपनी कविता से रिझाया और उसकी सिफारिश से कर्ज़ का जुर्माना माफ करवाया (शिव सिंह सरोज)।

$ ख़बर ऐसी भी मिली थी कि कुवरेश पोता था।

तुरक तेज ते बिन बल हिंदू। धरम बिनासत मेलत ब्रिंदू।
महां त्रास ते मैं चलि आयो। चहित आपनो धरम बचायो।'

श्री सतगुरू जी ब्राह्मण विद्वान की दुखी दशा पर पसीजे और पाँच रुपये रोज़ का खर्चा लगाकर अपने कवि समाज में रख लिया।* इसने गुरू आज्ञा से महाभारत के 'द्रोण पर्व' का हिन्दी अनुवाद किया+ जिसके सम्बन्ध में वह आप ऐसे लिखता है:–

संबत सत्रह सै अधिक बावन बीते और@,
तामै कवि कुवरेश यह कियो ग्रंथ को डौर१।
वाहुज२ बेदी कुल भयो नानक गुरु अनूप,
जिन में पूरो पाईए पारब्रहम को रूप।
नानक सिक्ख कीए तिहुनकुल अंगद शुभनाम,
भकित सरोरुह को भये जे रवि आठो जाम३।
अंगद निज गुरुता दई भल्ले भले विचार,
अमरदास को निज सकल दीनो जगत उधार।
अमरदास अपणे सकल गुरता प्रभुता ज्ञान४
रामदास को सभ दिया जो सोढी सुलतान।
अरजुन विक्रम नाम हूँ अरजुन जग पुरहूत,
जिन जग जसअरजुन कियो रामदास के पूत५
अरजुन शूनु६ उदार मति हरि गोबिन्द नरिंद
जिन हरि लौ मारे निखिल बेरी प्रबल करिंद७।
छोडयो जब गुरुदित्त जू जग माया विसतार८,
तिन के सुत हरिराय को दीनो गुरुता भार।
भए शूनु हरिराय के गुरअत्रिसन९ हरिकृष्ण
तज्यो जबै तिनहूँ जगत तबहि करी यह प्रश्न।

---

* बाबा सुमेर सिंह जी ५०० रुपये महीना लिखते हैं।

\+ यह ग्रंथ पटियाला लाइब्रेरी में है, नंबर १-९।

@ १७५२ संवत् वि०।

१ डौल रूप।

२ खत्री (क्षत्रिय)।

३ भक्ति रूपी कमल को जो आठों पहर सूर्य बत हो (सरोरुह = कमल)।

४ गुरिआई, प्रभुता और ज्ञान।

५ गुरू रामदास के पुत्र जिनका बल वाला नाम है 'अरजन' (अर्जुन) (सुरलोक के) इंद्र की तरह जो जगत के इंद्र हैं, जिन्होंने उज्ज्वल यश जगत में लिया।

६ गुरू अर्जनदेव जी के सुपुत्र।

७ जिसने ज्यादती करने वाले (इंसान के इंसानी) वैरियों से लेकर (पशु वैरी) प्रबल शेरों तक सबको मारा।

८ भाव शरीर त्याग गए।

९ तृष्णा से रहित।

गुरुता प्रभुता को उचित[९]? तेग बहादर एक।
नारायन जां पर कियो भकति सुधा को सेक[१०],
निज जन कैरव[११] सुख करन तेग बहादर चंद।
जिन भाव पारावार[१२] के दूर कियो दुख द्वन्द,
गुर गोबिन्द नरिंद है तेग बहादुर नंद[१३]।
जिन ते जीवत हैं सकल भूतलं कवि बुध ब्रिन्द,
नदी सतदद्रू नीर तहिं शुभ अनंदपुर नाम।
गुर गोबिन्द नरिंद के राजत सुभग सुधाम,
गंगा जमना बीच में बरी ग्राम को नाम।
तहां सु कवि कुवरेश को बास करै को धाम,[१४]

१७. रौशन सिंह

कवि कविता करते हैं। कविता भी धन की तरह एक धन है और इसकी भी चोरी होती है। कविता की चोरी वाले को चोर कवि कहते हैं। कई तो ख़्याल चुराते हैं, दूसरे कवि के ख्याल लेकर कुछ छंद बदलकर कुछ तोड़ मरोड़ कर अपने बताते हैं, कई रची रचायी में अपने नाम की छाप देकर पूरा डाका मारते हैं, कई अदला बदली करके दो तरह छापा मार लेते हैं। जहाँ इतने कवि इकट्ठे हुए, वहाँ किसी ऐसे कवि का होना भी आश्चर्य की बात नहीं थी। ऐसे एक सज्जन का नाम गुर विलास (बा॰ सुमेर सिंह) में आया है। पर इसकी इस आदत को दूर करने के लिए 'हास बिलास के पातशाह' और फिर 'पर्दे ढ़क*' गुरू जी ने एक कौतुक किया।

गुरू जी के पास ३६ लेखक थे। उनमें से चार बहुत समझदार और विद्वान थे। उनमें से एक रौशन सिंह था। एक दिन गुरू जी ने कुछ सवैयों की रचना की और रौशन सिंह को प्रतिलिपि तैयार करने के लिए दी और आप उस दफ्तर में से जहाँ लेखक आप की उच्चारित होती रचना लिखा करते थे बाहर चले गए। रौशन सिंह अकेला था उसने कुछ सवैये अपनी जाँघ पर लिख लिए कि घर जाकर उतार कर अपनी छाप में डालकर लिख लूँगा। इसने समझा गुरू जी भूल जायेंगे, याद नहीं रहने लगा। गुरू जी इस समय बाहर समागम में जा बैठे थे। थोड़ी देर में ही आपने खज़ानची को बुलाया और कहा कि जाओ रौशन सिंह को साबुन, दही देकर आप साथ होकर केशों सहित स्नान करवा दो और नये

९ योग्य, लायक।
१० भक्ति रूपी अमृत (जिन्होंने) सिंचित किया है।
११ कुमुदनियाँ।
१२ संसार सागर के।
१३ गुरू तेग़ बहादुर जी के सुपुत्र।
१४ भाव कवि का घर बरी गाँव में है।
* कमियों पर पर्दा डालने वाले।

कपड़े पहनाकर घर जाने की छुट्टी दे दो। जब ऐसा किया गया तो सारे अक्षर जाँघ पर लिखे हुए मिट गए। रौशन सिंह सिर धुनता और पछताता नहा, धोकर, चोरी के निशानों से धोया जाकर घर गया। कुछ दिन डालकर गुरू जी ने एक दिन अकेले को हँस कर कहा 'सुना भई रौशन सिंह! रौशनी कि रुशनाई*? प्रकाश कि शाही?' शर्मिन्दा होकर चरणों में गिर पड़ा, 'पातशाह! तेरी अन्तर्यामता के सदके और बहुत अधिक सदके तेरी पर्दे ढकने वाली ग़रीब निवाज़ता के, मैंने तो चाँदनी से स्याही बनने की करतूत की थी पर हे दाता तूने धो दी स्याही, उज्ज्वल कर दिया शरीर भी और मन भी। साथ में मेरा भी पर्दा बना रहा, जिस आपके 'पर्दे ढ़क' बिरद के सदके मेरा जन्म सँवर गया। कृपा कर अब कभी ग़लती न हो। तीसरी यह कृपा कितनी है कि पर्दे भी ढ़के और फिर हुज़री में से धक्के भी नहीं दिए, मेरे काम पर लगाये रखा मुझे। लाज रख ली।'

इस लेखक ने कविता भी की थी, लेखक और कवि दोनों था, पर शौक है कि इसकी कविता अभी मिली नहीं।

१८. हीर कवि

यह अच्छा चमत्कारी कवि हुआ है। इसकी रचना से पता चलता है कि यह खालसा सजने के बाद आनंदपुर हाज़िर था और इसने कई युद्ध गुंरू साहिब के देखे थे और अपने देखे समय को अलंकारी रचना में रचता रहा है। गुरू चरणों में हाज़िर होने की इसकी कथा मनोहर है। गुरू का दरबार लग रहा था, सारे कवि हाज़िर थे और वीर रसी कविता और छंद कहे जा रहे थे तब हीर कवि भी आ हाज़िर हुआ। उसको पता लग गया था कि वीर रसी कविता पर आप बहुत प्रसन्न होते हैं। इसलिए वह उठकर हाथों बाँहों आँखों आदि से ऐसे स्वांग करने लग पड़ा जैसे किसी शत्रु के साथ हाथापाई कर रहा है और उसको पराजित करने के यत्न में है। सारी सभा हँस पड़ी और गुरू जी ने कहा कविराज जी क्या कर रहे हो? हीर महाराज की ओर हाथ जोड़कर

बोलिओ– **एक वीर बलवान।**
देत पढन नहि कृपानिधान।
ता सन लर लर कबित सुझै हौं।
महाराज सुख खान रिझै हौं।

तब हुक्म हुआ वह कवित्त सुनाओ, तब हीर ने उसी तरह स्वांग कर-कर के दो कवित्त सुनाए, वे कवित्त ये हैं–

हीर गुरू जी की ओर मुखातिब होकर फरियादी की तरह बोला–

पास ठाढो झगरत, झुकत दरैरै मोहि,
बात न करन पाऊँ महां बली बीर सों।
ऐसो अरि बिकट निकट बसै निस दिन,
निपट निसंक सठ घेरै फेर भीर सों।

---
* रुशनाई नाम स्याही का भी है।

अपने काल्पनिक शत्रु की ओर रुख़ करके–

'दारिद कपूत' तेरो मरन बनयो है आज,
करकै सलाम विदा दूजै कवि 'हीर' सों।
नातुर गोबिन्द सिंह विकल करैंगे तोहि,
टूक टूक ह्वै हैं गाढ़े दानन के तीर सों।

१. (हे गुरू जी! इस समय भी दारिद्रय*) मेरे पास खड़ा है, झगड़ता है, झुक झुक कर दबाव देता है मुझे, इतना कि महाबली वीर (श्री हुज़ूर से) बात भी नहीं करने देता। २. (वैसे) ऐसा कठोर दुश्मन रात दिन मेरे पास बसता है, यह दुष्ट बहुत बेशर्म है, (देखो अब) फिर (मुझे) डरा डरा कर घेर रहा है। ३. हे कुपुत्र दारिद्रय! आज तेरा मरण आ बना है, (अच्छी बात है कि) सलाम करके हीर कवि के पास से विदा हो जा। ४. नहीं तो गुरू गोबिन्द सिंह जी (अभी) तुझे व्याकुल कर देंगे, (ख़बरदार रह) तू उनके भारी दान के तीरों से टुकड़े टुकड़े हो जायेगा। फिर गुरू जी की ओर विनय के रंग में–

जैसे प्रह्लाद सुरपति कीनो पति दै कै,
याहू पतिकाजै नैक चित दै समारीए।
जैसे बल बाध्यो धर बावन सरूप 'हीर',
टूक टूक करो चाढ़ आखिन पछारीए।
छाडत न संग जुरयो रहै आठो जाम मेरे,
तेरे दान नाम ते परेत मेरे झारीए।
एकै गुरू गोबिन्द, गरुर जांको बाहन है+,
जैसे मुर मारयो तैसे मेरो अरि मारीए।

१. जिस तरह आपने (जो कभी नरसिंहावतार थे) प्रहलाद को इज्ज़त देकर देवताओं का राजा बना दिया था, इस इज्ज़त (देने) के काम को अच्छी तरह चित्त देकर याद करो। २. जिस तरह आपने बावन रूप धारण करके बलि दैत्य को बाँध लिया था उस तरह (इस मेरे दैत्य दारिद्रय को) आँखें चढ़ाकर ही पछाड़कर टुकड़े टुकड़े कर फेंको। (इस पंक्ति में लक्षणों द्वारा बावन स्वरूप से भाव यह है कि जैसे बलि का दमन करते समय विराट रूप धारण करके दो कदमों में धरती और आकाश माप लिया और तीसरा कदम उठाकर बलि का शरीर ले लिया था, वहाँ तो ब्राह्मण के दलन समय टाँग उठानी पड़ी थी, यहाँ आँखें ही चढ़ाकर दैत्य को मार दो)। ३. मेरा यह साथ नहीं छोड़ता, आठों पहर मेरे साथ जुड़ा रहता है, अपने दान रूपी मंत्र (झाड़ फूँक) के साथ मेरे (पीछे पड़े इस) प्रेत को झाड़ दो। ४. गुरू गोबिन्द सिंह और विष्णु एक ही हो जिस तरह (विष्णु रूप में) मुर नामक राक्षस को मारा था, उस तरह मेरे शत्रु दारिद्रय को भी मार दो।

---

* दरिद्रता।

\+ गरुर जाको बाहन है, इस सारे वाक्य का अर्थ है : विष्णु। 'गरुड़गामी' विष्णु का नाम है।

इन कवित्तों को सुनकर गुरू जी सहित सारी सभा अति प्रसन्न हुई। गुरू जी की ओर से उस समय उसको बहुत दान और सम्मान मिला और कवियों में रोज़ का ख़र्चा निश्चित करके रख लिया गया।

यथा– **सुन साचे सतिगुर अबिनाशी।**
दीनो धन अनगन गुन रासी।
कवि जन मद्ध रोज़ कर दीओ।
दारिद दुरद दमन सुखकीओ। (बा॰ सु॰ सि॰)

हीर की कविता जितनी मिल चुकी है उससे अनुमान होता है कि यह युद्धों के घोर संग्राम के समय आया है। इसने अपने देखे संग्रामों के अपने काव्य में कई अलंकार प्रयुक्त कर वीर और रौद्र रस के नक्शे बाँधे हैं। ढंग कुछ उसी तरह का है जैसे कवि भूषण की 'शिवाबावनी' में है। इसके इन छंदों का शीर्षक है 'अतंक समर बीर के कवित्त' अर्थात भयानक युद्धों की वीरता के कवित्त। यह कवि आप अच्छी वीर रसी तबीयत का लगता है और अपने वर्णन में कमाल कर जाता है। हो सकता है यह सिंह हो और इसने आनंदपुर ठहरकर अंतिम युद्ध के भी कई नज़ारे देखे हों। कविता के नमूने ये हैं–

(नगारों की चोट)

कल नहिं परत विकल देस बंगस को,
पलक न लागै पल रूप साम* सामनी।
गोलकंड कंपति नगारनि की धुनि सुनि,
बीजापुर बंदर बसत बन जामनी।
आसमान दहल, हहल, गिरयोलंक 'हीर'।
दरी मैं दबत फिरै दसन जिउं दामनी।
तेरे डर गोबिन्द म्रिगिंद गुरु अरिनि की,
टोला टोल जाइ सौ खटोला मांगै भामिनी।

१.२. (हे गुरू जी! तेरे) नगारों की धुनि सुनकर (बंगस =) कुरम और कोहाट (के पठान लोग) व्याकुल हैं, चैन नहीं पड़ता? रूम शाम के शामियों (लोगों) की पलभर आँख नहीं लगती। गोलकुंडा+ काँपता है और बीजापुर तथा बंदरगाहें (बम्बई, रत्नागिरि आदि के निवासी) लोग ऐसे रहते हैं जैसे रात को वन में रहते हैं (भाव डरते रहते हैं)। ३. आसमान दहलता है, लंका डर खाकर गिरती है, हे हीर! बिजली ऐसे दबकती घूमती है जैसे दाँतों की द्युति मुँह रूपी कंदरा में छिपती है। ४. हे गुरू गोबिन्द सिंह जी तेरा दबदबा ऐसा छाया

---

* शाम देश – सीरिया, जिसका प्रसिद्ध नगर 'दमिश्क' है। नूह के पुत्र 'शाम' के नाम पर देश का नाम है।

\+ गोलकुंडा, दक्षिण में मुस्लिम सल्तनत की राजधानी थी, अब निज़ाम हैदराबाद के राज्य में है। मुसलमानी राज्य बहमनी के टूटने पर तीन मुस्लिम राजधानियाँ बनी थीं–गोलकुंडा, बीजापुर और अहमदनगर।

है (कि दूर दूर देश के तेरे वैरियों की) स्त्रियों की टोलियाँ (भागती थक टूट कर अब) चारपाइयाँ माँगती घूमती हैं।

(फौजों की तैयारी से भय)

भमरयो भभीखन भवन तजि भटकत
ढहे पौर लंक की निशानन के बाजे ते।
पापर से फूटत धराधर सु चूर होत,
सिंधु अकुलात गजराजन के गाज ते।
बरनत 'हीर' गुरू गोबिन्द तिहारे त्रास
दबत फिरति अरि कंदरांन भाजे ते।
चूर होत कमठ, दरारे दाढ अटकत,
फटे फन सहस प्रबल दल साजे ते।

१. (गुरू जी के) नगारों के बज पड़ने पर विभीषण भय खाकर घर छोड़कर दौड़ता भागता लंका के दरवाजे पर गिर पड़ता है। २. (गुरू जी के) हाथियों के गरजने से पहाड़ पापड़ की तरह टूटते और चूर होते हैं और समुद्र तूफान में आ जाते हैं। ३. वर्णन करता है हीर हे गुरू गोबिन्द सिंह। आप के भय के कारण शत्रु दौड़े हुए कंदराओं में छिपते घूमते हैं। ४. जब आप बली फौजों को तैयार बर तैयार करते हो तो (धरती के नीचे का) कछुआ (भय के साथ) चूर होता है, (काँपते सूअर की) थूथन दरारों में फँसती है और शेषनाग के फन फटते हैं।

(रणभूमि)

तेरे मारे खल दल घूंमत घुसति महि,
छाती छोर ज़ोर सो सहें बन की चभकैं*।
कहूँ लोथ चोंच से समेट डारे गीध गन,
खेलत धिङानो धिंगज मुख की हमकै+।
श्री गोबिन्द सिंह रन भूम को मचय्या 'हीर'
लोहू की ललक घाट घाटन@ की डमकैं।
भोरै# फिरैभूत लै, भभीख नाचै द्वारपार$,
भभक भभक बोलैं घाइन की भभकैं।

---

* चुभन या डंक सहना भाव दुख बर्दाशत करना।

\+ मुँह खोलकर खाने के लिए पड़ना।

@ घाट = तलवार की धार की अणी। घाटन = घाटिका = गर्दन का पिछला भाग। यह पद श्लेष है। दूसरा अर्थ है नदी का घाट।

\# भोरानाथ = शिव। शिव जी का प्रसिद्ध नाम भूतनाथ है।

$ द्वारपाल = तंत्र शास्त्र अनुसार काली दुर्गा के चार द्वारपाल हैं–गणेश, क्षेत्रपाल, चटक और योगिनी।

३. हे 'हीर' श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी युद्ध छिड़ी रणभूमि में (जब) आते हैं भाव जब युद्ध में व्यस्त होते हैं तो तलवारों की धाराएँ लहू के लालच में गर्दनों पर ऐसे पड़ती हैं जैसे (लोग) नदी के घाटों पर डुबकियाँ लगाते हैं। १. तेरे (डर के) मारे हुए दुष्टों के दल छाती का ज़ोर छोड़कर (भाग जाते) जंगलों में घूमते धरती में धँसते, बन (के काँटों) की चुभन सहारते (बर्दाश्त करते हैं) हैं। २. (पड़ी) लाशों को गिद्धों के समूह चोचों से समेट लेते हैं (भाव खा जाते हैं और) फिर मुँह को ऐसे खोल खोलकर (खाने की) इच्छा करती ज़ोर जबर्दस्ती करती खेलती हैं। ३. भूतों को साथ लेकर शिव घूम रहा है, द्वारपाल भयानक नाच नाच रहे हैं और घायलों के घावों से लहू निगलने की आवाज़ें भभक भभक कर आ रही हैं।

(दुष्ट मारकर निकली तलवार का रूपक)

नाहर समान झुकि झरि परे गुबिन्द सिंह
खग गहि खंड कीनी खलन की खप्परी।
हने घने घेर घमसान को घमंड कीनो
घाइन घुमति, घाइलन की धराधरी।
रुध्र के कुंड ते निकस काली कुल ठाढ़ी
उपमा बढी है 'हीर' अभिमति ते खरी।
दल दसमाथ रघुनाथ को मनाइ मन
मानो सीअ सौंह दै हुतासन ते निस्सरी।११।

१. (अपने ऊपर आ पड़े हमलावर) दुष्टों पर शेर की तरह झुककर और झपटकर पड़े गुरू गोबिन्द सिंह जी ने हाथ पकड़ी तलवार से उनकी खोपड़ियाँ फोड़ीं। २. पूर्ण स्व भरोसे से घोर युद्ध करके घेर घेर के बहुत (दुष्ट तो) मार दिए (और धराधरी =) ढेरों के ढेर घायलों के लग गए, (फिर भी तलवार थककर) चोट करने से पीछे नहीं मुड़ती। ३. अब (मानों) लहू के कुंड से तलवार निकलकर खड़ी हो गयी है, जिसकी खरी खरी उपमा हीर (कवि) की सभी ओर से विचार करने वाली मति से ऐसे बनी है, ४. (कि मानो) सीता राम को मन में याद कर रावण को मारकर, कसम देकर आग से निकली है।

इस छंद में कविता की नफासत का कमाल तीन पदों के सम्मेलन में है, गुरू गोबिन्द सिंह जी को (घमंड =) पूर्ण विश्वास है अपनी तलवार के कमाल पर, कवि को 'सरब ओर से विचारी मति' से शुद्ध उपमा लाने की पूरी तसल्ली है, और उधर सीता को अपने पातिवत्य का स्वविश्वास इतना है कि आग की परीक्षा में से जीवित निकलती है, कवि ने तीन स्वविश्वास एकत्र किए हैं।

(गुरू दल, गुरू कृपाण, गुरू गांसी = तीर की मुखी)

पारथ के बान कै क्रिपान सिंह गोबिन्द को
सिंह न बचत बन, मारे झार झार कै।

केते भट सुभट भजाए 'हीर' कई ओर
कई बेर काली श्रोण पीवत अहार कै।
तेरे दल चलत दलत दल अरिनि के।
केहूँ न संभारे तन हांकत पहार कै।
गांसी के लगे ते पीलवान गिरयो पील हूँ ते
मानो गिरयो बादर पहार फांध मार के। २०

१. अर्जुन के तीर से या गुरू गोबिन्द सिंह जी की कृपाण से (कोई) शेर नहीं बचा, झाड़ झाड़ कर वन के (सारे शेर) मार दिए। २. कितने ही (वैरी के) वीर और महावीर कई ओर भगा दिए और कई बार काली ने लहू पीने का भोजन किया। ३. तेरे दल जब चलते हैं तब वैरियों के दल को ऐसे दलते हैं कि मानों पहाड़ धकेले जा रहे हैं और किसी से भी अपने तन की सँभाल नहीं हो सकती। ४. तेरे चलाए तीर की मुखी लगने से हाथी से महावत ऐसे गिरता है मानो बादल पहाड़ से छलाँग लगाकर गिरता है।

(गुरू जी की तीरन्दाज़ी का कमाल)

कस तरकस* धरकस+ बरकस@ धर,
ऐसो सर# कस हित चित बित गाढो है।
कीने घमसान रंग भूम के मैदान 'हीर',
बाजत निशान लै हथयार हथ बाढो है।
श्री गुबिन्द सिंह की कमान ते चलैहैं तीर,
उरवार होत पारावार पार ठाढो है।
बखतर$ बेह, बखतरी बेह, बांक% बेह,
बानन सो बेह कै बरा सो बेह काढो है।

१. (एक ओर^) तरकश लगाकर, उसके उलटी ओर& लगाकर (गुरू जी आप चढ़ते हैं और) ऐसे तीर कस कसकर चित और शरीर के हित से चढ़ाते हैं कि २. जब नगारे बज रहे होते हैं और हाथ में हथियार लेकर फौजें बढ़कर रंगभूमि के मैदान में घोर युद्ध कर रही होती हैं तब ३. श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की कमान से जो तीर चलते हैं (वे) इस ओर और उनसे परे वालों में से पार होकर जा गड़ते हैं (धरती में)। ४. (ये तीर)

---

* तरकश।
+ 'धनुर कस' का संक्षिप्त है – धनुष कस कर।
@ बर अक्स।
तीर
$ कवच।
% घोड़ा।
^ दायें।
& बायें।

कवच को बींधते हैं, फिर कवच पहनने वाले को बींधते हैं फिर घोड़े को जा बींधते हैं (जैसे कढ़ाई में से वड़े तलने वाला तकुल्ले द्वारा एक दो तीन) वड़े (एक ही बार में आसानी के साथ बेंध बेंधकर) निकाल लेता है वैसे (गुरू जी बाणों से बख्तर, बख्तरी और घोड़ा (आसानी से ही) बींध देते हैं।

(गुरू जी का अनोखा (दिलेर) व्यक्तित्व)

कमठ सों सेस मुरै, बैल सों महेश मुरै,
शंभु सो गनेश मुरै, मुरै ती अनंग तै।
मुर चल्लै सरिता, मतंगन कै मद मुरै
भीम मुरै भारथ, पारथ मुरै संग तै।
गोबिन्द मुरै न*, परसराम सों समत्थ मुरै,
सीअ सत मुरै, रूप मुरत अनंग तै।
भूप मुरै लंक को, अतेक हनुमान 'हीर'
मेरु मुरै, मसक मुरै, मुरै न गुरू जंग तै।

१. शेषनाग कछुए से दूर हटे तो हट सकता है, शिव जी (अपने वाहन) बैल की सवारी छोड़ सकता है, गणेश शिव जी को छोड़ सकता है, कामदेव को (उसकी) स्त्री (= रति) छोड़ सकती है। २. नदी (पीछे) मुड़कर (जिधर से आई थी उधर को) जा सकती है, हाथियों का मद उतर सकता है, भीम महाभारत के युद्ध से टल सकता है, अर्जुन (श्री कृष्ण के) संग को छोड़ सकता है। ३. कृष्ण मुर (राक्षस) को न मारे तो न मारे, परशुराम जैसा समर्थ (बलवान क्षत्रिय कुल नाश करने से) मुड़ सकता है, सीता (अपने पातिव्रत्य से) मुड़ सकती है, रूप काम से मुड़ सकता है। ४. लंका का राजा (विभीषण अपने अटल राज्य से) टल सकता है और हनुमान भय खा सकता है, सुमेर टल सकता है, मच्छर (डंक मारने से) हट सकता है, पर गुरू गोबिन्द सिंह जी (जीत प्राप्त किए बिना) युद्ध से नहीं मुड़ सकते।

(दलों के प्रस्थान करने का डर मात)

अचल, चलत चाल पाल से, हलत हाल,
धर रन मसत मल गयो देश हरि को।
अहि फन फटत, घटत सिंध पलक मैं,
द्वार भयो गरद बभीखन के घर को।
ऐल परी बलख, फिरंग देश खैल भैल,
गैल कोऊ पावै नाहि बल छूटयो कर को।
श्री गुबिन्द सिंह गुर दल के चलत 'हीर',
पतिन संभारे नारि ऐसे हाल डर को। २७

---

* मुरै न = मुर को ना (मारे तो न मारे)।

१. जब (गुरू का दल) पंक्तियाँ बाँधकर चल पड़ता है तो पहाड़ हिल पड़ते हैं, रण की धरती (पैरों तले) मली दली जा (मल =) धूल (बनकर) हरि के देश (आकाश) जा पहुँचती है। २. शेषनाग के फन फटते हैं, समुद्र पल में घट जाता है (मिट्टी पड़ जाने से) और विभीषण के घर का दरवाजा गर्द हो जाता है (भाव मिट्टी से भर जाता है या मिट्टी होकर गिर पड़ता है)। ३. बलख में शोर पड़ जाता है फिरंग देश में खलबली मच जाती है, (घबराये हुए लोगों को) रास्ता कोई नहीं मिलता और हाथों का बल नाश हो जाता है (भाव घबराहट में हाथ पैर सुन्न होते जाते हैं)। ४. हे हीर श्री गुरू गोबिन्द सिंह के दल के चल पड़ने पर ऐसा हाल डर (मात्र) से ही हो जाता है कि स्त्रियाँ पतियों को सँभालती भाव छिपाती घूमती हैं। (क्योंकि मर्द तो डर के मारे बेसुध हो जाते हैं तब नारियाँ फिर उनको सँभालती हैं, क्योंकि नारियों को पता है कि गुरू दल नारियों को नहीं छेड़ता इसलिए वे होश में रहती हैं) (गुरू दल के ऊँचे इख़लाक की कैसी अच्छी गवाही है।)

(हाथियों को मार)

फोरत पहारन चुवत मद धारन जे
गढन उदारन लखे ते बड़ी गत के*।
धूहि भरे धूसरे धरनि धसकति पग,
कज्जल से कारे वे दतारे^ महागति के@।
गाजे रन साजे# गज ऐसे पीलवान बने+
बरनत 'हीर' महाबीर रतिपत के।
महां अंग मारे ते बिदारे श्री गुबिन्द सिंह
डीलन डरारे हने हिंदवान पति के।

१. (ऐसे हाथी जो टक्कर मारकर) पहाड़ों को फोड़ देते थे (जिनके माथे से) मद धाराएँ बनकर बहता था, देखने को क़िलों जैसे और बड़ी चाल वाले थे। २. (जिनके) पैर (चलते समय) धरती में धँसते जाते थे, और मिट्टी के भरे हुए जो धूसरित दिखाई पड़ते थे, वे बड़े हाथी जो काजल जैसे काले रूप के थे। ३. हीर वर्णन करता है कि (ऐसे) रण में गरजने वाले, महावीर कामदेव रूपी महावत ने जो सजाए बनाए हुए थे। ४. (हाँ, पहाड़ी) हिन्दू राजाओं के वे हाथी जिनके अंग बहुत ही भारी थे, जिनके डील डौल भयानक थे, वे गुरू गोबिन्द सिंह जी ने पराजित कर दिए हैं।

---

* शरीर के।

^ हाथी।

@ रूप वाले।

सजाए।

\+ बनाए।

(दल की चढ़ाई)

छप्पय– उडत गरद, डर भान मान, सुरपत न गहत मन।
नीर छीर भए इक्क, करक टुट्टत उपबन बन।
मथन कहत फिर सिंध बिंध दहलत चलत डर।
सिमिट सकुच रहयो नाम कमठ को चभक बिकटभर।
भन 'हीर' चढ़त हिंदवान हद
दिगपाल कंप धरनी हलत।
गोबिन्द सिंह दल चढ़त जब
अतल बितल सूतल तलत।

१. धूल उड़ती है, सूर्य डरता है, इन्द्र का मन भी नहीं ठहरता। २. दूध पानी एक हो जाते हैं (भाव सातों समुद्रों में हलचल मचती है और पानी तथा दूध के समुद्र आपस में मिल जाते हैं) बाग़ और वन कड़क कड़क कर टूटते हैं। ३ विंध्याचल पहाड़ कहता है कि चाहे फिर समुद्र मथने लगे हैं (इसलिए) डरता है कि मुझे (ही कहीं मथानी बनाकर) न चला दें। ४. (शेषनाग डर से) गुच्छा मुच्छा हो रहा है और कच्छप को विकट चीसें पड़ रही हैं (कि अगर समुद्र फिर मथा तो शेषनाग की फिर रस्सी बनेगी और मैं कच्छप मथानी का जुट्ट (मथनी का फूल) बनूँगा। ५. कहता है हीर हिन्दुओं की अवधि (गुरू जी) जब चढ़ते हैं तो धरती हिलती है और दिशापाल (दिग्गज) काँपते हैं। ६. गुरू गोबिन्द सिंह का दल जब चढ़ता है तब अतल बितल और सुतल (नामक पाताल तलत =) नीचे ऊपर हो जाते हैं।

(प्रबल शत्रु पर गुरू जी की प्रबलता)

एती अनी बनी जो गनी न जात काहूँ बिधि,
मनी न रहत 'हीर' तीर बूँदै झरी हैं।
तहाँ गुरू गोबिन्द तमक* मारे अरी तब,
तूट तूट जात बख्तरन+ की करी हैं।
गीध चोचैं लोथन कराल, उडैं खोपरी लै,
लाल जोगनी जमात बिख@ साथ भरी हैं।
ऐसी लागी बरछी गइंदन के सीस पर,
मानो काहूँ भूधर# मसालैं बाल धरी हैं।

---

* क्रोध से।
+ कवच।
@ ज़हर । (अ) पानी। (आ) विख़ा नामक वृक्ष का रस जो लाल होता है और लाल रंग चढ़ा देता है।
पहाड़ों पर।

१. (शत्रुओं की) फौज इतनी (इकट्ठी होकर) डट रही थी जो किसी तरह गिनी नहीं थी जाती, हे हीर! मानने में नहीं आता, (पर सचमुच उनके) तीरों की बौछार (ऐसे आती थी जैसे बारिश की) बूँदें। २. तब वहाँ गुरू गोबिन्द सिंह जी ने क्रोध में आकर वैरियों पर (ऐसे तीर) मारे कि (वैरियों के) कवचों की कड़ियाँ टूट टूट गईं। ३. (ऐसी मार हुई कि) भयानक गिद्धें उडीं, आकर लाशों को चोचों के साथ (खाने लगीं, तथा) योगिनियों की जमात ने खोपड़ियाँ ले ले लाल ज़हर (लहू) से भर लीं। (अथवा लाल पानी से बिख का अर्थ पानी भी है) ४. हाथियों के सिरों पर बर्छियाँ लगीं ऐसे (दिखती) हैं कि मानो किसी ने पहाड़ों पर मशालें जलाकर रखी हैं।

(गुरू जी का हाथी की सूँड काटने का कमाल)

श्री गुर गोबिन्द सिंह बली
कर खग्ग गहे अरि के पर धायो।
रंभक* सुंड अनेक गिरे रण,
धूम करी धर धींग नचायो।
ऐसो दयो धर कुम्भ+ के छोर,
सु बीर लखे जस 'हीर' जु गायो।
सुंड बिना गजराज चलयो भजि,
सुंड मनो घर ही धरि आयो।

१. महाबली श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी हाथ में तलवार पकड़कर वैरी पर जा चढ़े। २. (उनकी तलवार की मार से) अनेक (हाथियों के) सूँड भारी शब्द करके (कटकर) गिर पड़े, (जिनके कटने के कारण) हाथियों ने धूम मचा दी और धरती पर ज़ोर ज़ोर से नाच पड़े। ३ (सूंड काटते समय) शूरवीरों ने (तलवार का कमाल) देखा (कि गुरू जी ने हाथी के माथे के) कुंभ के पास (तलवार का वार) ऐसा मारा कि (उसको) काट दिया, (इस शूरवीरता का) यश हीर ने गाया है कि ४. बड़ा हाथी सूँड कटवाकर ऐसे भाग चला कि मानो सूँड घर रख कर ही आया था।

१९. टहिकण

इस कवि का नाम ५२ कवियों की सूंची में है, पर अभी तक इसकी गुरू दरबार आकर की रचना का कोई नमूना नहीं मिला। जब गुरू दरबार आया तो बड़ी उम्र का लगता है। यह पहली उम्र में सिपाही रहा है। तब इसने 'अश्वमेध' भाषा ग्रंथ लिखा है। जिसके सम्बन्ध में वह लिखता है–

---

* रम्भाना, भारी शब्द करना।

+ हाथी के माथे पर बढ़ा हुआ घड़े जैसा स्थान।

कछुक उकति बलबुधि कछुक पर क्रित[1] लीनी।
बीन बीन अच्छर प्रबीन[2] पोथी शुभ कीनी।

इस ग्रंथ के आदि अंत इसने अपना नाम ठाम का पता दिया है जो उसकी कविता के नमूने के लिए उसके अपने छंदों में नीचे देते हैं–

बरनो कथा सुधा रस सानी[३]।
कहों जथामत[४] उकत कहानी।
प्रथमे सुर भाखा[५] सुनि लीनी।
दोहा सरस चउपई कीन।
कहूँ कबित सोरठा की गति।
टहकन बरनन कीओ अलपमति[६]।

दोहरा– **संबत सर दस सपत शत, अधिक बरख खट बीस[७]।**
थित त्रयौदशी अखाढ़ि बदि बुधि बासुर शुभदीस[८]।
'टहिकण' कवी 'जलालपुर' बासी।
छत्रि धरम 'नंदलाल' उपासी।
पिता 'रंगीलदास' जिह नामा।
ज्ञात[९] 'चोपरा' कुल अभिरामा।
सभै पाए करि गयो सिपाही।
'है क्रित भाख'[१०], करी तहां ही।
प्रथम सहसक्रित स्रुति[११] सुनि लीनी।
तां पाछे भाखा बर कीनी। (अध्याय ७३)

: ३ :

यह दरबार अपने पूरे रंग रूप में नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि जिस विद्या के सरपरस्त के ग्रंथ रचना करवाये, अनुवाद करवाये, खुद लिखे और लिखवाये ग्रंथों का तौल

1 परायी रचना।
२ चतुराई से।
३ अमृत रस से मिली।
४ (अपनी) बुद्धि अनुसार।
५ संस्कृत।
६ तुच्छ बुद्धि अनुसार।
७ विक्रम संवत १७२६।
८ तिथि आषाढ़ की त्रयोदशी, बुधवार का शुभ दिन।
९ पता लगना, जानना।
१० अश्वमेध भाषा।
११ कानों से।

९ मन था, जिसको लिखने के लिए ३६ के करीब लेखक मुलाज़िम थे, जिसकी तैयारी में कम से कम ५२ तो कवि समझे जाते हैं, और आलिम फाज़िल पंडित विद्वान आते जाते काम करते रहते थे, वह सारा तबाह हो गया, जो कुछ बिखरा हुआ हाथ आया और हमारे बुज़ुर्गों ने सँभाला वह इतना थोड़ा है कि जैसे खोये खज़ाने में से कुछ सैंकड़े मिल जायें। फिर भी वह ऐसा है जिससे थोड़ा सा अंदाज़ा लग सकता है कि कैसे कैसे गुणी और प्रवीण पुरुष वहाँ इकट्ठे हुए थे, और उनको कितना अमित धन देकर गुरू जी विद्या के सामान बनवा और अनुवाद करवा रहे थे। इसी मेहनत को मुख्य रखकर पीछे अंक २ में दरबारी विद्वानों के मिले हालात, विद्वानों की सरपरस्ती और क़द्र-दान के सम्बन्ध में दी गवाहियाँ आदि सामान ढूँढ खोज एकत्र करके दे दिए हैं। उसमें वे छंद भी दे दिए गए हैं जो कि कवियों की अपनी रचना के हैं और बीच में उनकी छाप है, या उनकी रची पुस्तकों में से हैं, या उन छंदों के सम्बन्ध में इतिहास में उनके अपने रचे होने की गवाही मिली है। अब अंक ३ में वे छंद देते हैं, कि जो हैं तो दरबारी कवियों के, जो हुज़ूरी में हाज़िर हुए थे, पर उनमें छाप (कवि का नाम) नहीं है। किन्तु साथ साथ तुकों में जहाँ बन पड़ा हम बताते जायेंगे कि ये छंद अमुक के हैं या होने की संभावना हो सकती है। तो जो पाठकों को जितना सामान प्राप्त हो चुका है उस सारे के दर्शन हो जायें।

हंसराम

(शिव, राम, प्रजापति से गुरू जी की विशेषता)

कौन बनारसी बास करै जहिं बासक नाग हीए मैं लसै।
औध को औसर नाथ भइओ रघुनाथ के पाइन पाप नसै।
कर मुंडन कौन सितासित में जहिं देखिकै लोकरु देव हसैं।
इम तेग बहादर नंद जगे, किन गोबिन्द राय गुरू दरसैं*।

१. बनारस जाकर कौन बसे जहाँ कि शिव जी (हुए बताते हैं)। जिनकी छाती पर वासुकि नाग लस लस करता था २. (अपने) समय अवध के नाथ (राम जी) हुए, (पर अब) रघुनाथ (की मूर्ति) के पैर पड़ने पर पाप नहीं दूर होते। ३. प्रयाग+ में जाकर सिर मुँडवाने (का क्या लाभ है) जिस (मुंडे सिर) को देखकर लोग और देवता मज़ाक करते हैं। ४. यहाँ (आनंदपुर में कि जहाँ) गुरू तेग़ बहादुर जी के सुपुत्र श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी विराज रहे हैं, (आकर) क्यों नहीं उनके दर्शन करता, (भाव यह कि उनसे विशेष प्रत्यक्ष मुक्ति दाता का दर्शन कर)।

---

* सू॰ प्र॰ में यह छंद हंसराम के कवित्तों के बीच में आया है, परन्तु बेछाप होने के कारण यह भी संभावना हो सकती है कि हंसराम के पीछे आए छंद– 'अवध अनाए कहां' वाले ख़्याल पर किसी दूसरे ने अपना छंद अपनी समस्या पूर्ति की तरह का लिखा हो। परन्तु बाबा सुमेर सिंह जी ने इसको और अगले को हंसराम की रचना तले ही लिखा है, इसलिए उसी का समझना ठीक है।

+ मत्स्य पुराण अनुसार– प्रयाग, प्रजापति अर्थात ब्रह्मा जी का क्षेत्र है।

(गुरू कीर्ति का विस्तार)

जहां दिनकर को प्रताप दिन मान नाही,
जहां न दिलेश को प्रताप छाईयत है।
जहां न कलानिध की कला की किरन एक,
जहां मृगराजन के थर धाईयत हैं।
जहां सुरपति की न गति, रतिपति की नमति,
कहां पौलपति हूँ मैं पाईयत है।
जहां श्रुत सिम्म्रत सुनी न म्रेन सुपने हूँ,
तहां गुरु गोबिन्द को जस गाईयत है।

१. जहाँ सूर्य के प्रताप के कारण दिन वार का हिसाब नहीं है, जहाँ दिल्ली के ईश (औरंगज़ेब) का राज्य नहीं है। २. जहाँ चन्द्रमा की कला की एक किरण भी नहीं पहुँचती, जहाँ शेरों के झुण्ड ही दौड़ते घूमते हैं। ३. जहाँ इन्द्र की पहुँच नहीं, कामदेव की बुद्धि जहाँ नहीं पहुँचती, शिव जी (की मति भी जहाँ) नहीं पहुँचती, ४. जहाँ कभी वेद और स्मृतियों की आवाज़ सपने में सुनी नहीं गयी वहाँ गुरू गोबिन्द सिंह जी का यश गाया जा रहा है। (भाव– शून्य मण्डल में, लोक और परलोक में, धरती और हिन्दुस्तान से दूर-दूर, गुरू गोबिन्द सिंह जी का यश हो रहा है)।

(नगारा बजने का डर)

कवित्त– **बाजति निशान के दिशान भूप भहिरति,**
हाला डौल परति कुबेर हूँ के घर मैं।
होत है अतंक शंक लंक हूँ मैं मानी यति,
रंक ह्वै बिभीखन सो डोलत डहर मैं।
भू मैं गुर गोबिन्द सों भूपति कहति ठांढे,
भू मैं हमैं राख जो तुम्हारे आवै धर मैं।
अरिनिकी रानी बिललानी चहैं पानीते वै,
मोतिनि की माल लै निचोवती अधर मैं*।

१. नगारे के बजते ही दिशा के राजा डरते हैं और कुबेर के घर में तो हलचल मच जाती है। २. (ऐसा) होता है डर कि लंका में भी भय माना जाता है और विभीषण कायर होकर जंगलों में घूमता फिरता है। ३. पृथ्वी पर खड़े राजा लोग गुरू गोबिन्द सिंह जी को कह रहे हैं–धरती पर हमें रख लो (क्योंकि) आपकी (शरण जो) आये (उसको रखना आपका) धर्म है। (अ) जो हम आपकी (धर में) शरण में आए हैं। ४. शत्रुओं की रानियों

* यह छंद सूरज प्रताप में हंसराम के छंदों के बीच में है। बाबा सुमेर सिंह जी ने यह हंसराम छाप वाले के बाद अंतिम छंद दिया है। इसके अनुसार यह भी हंसराम का ही मानना चाहिए। चाल ढाल भी उसी जैसी है।

(भय के साथ) के विलाप करते हुए (ओंठ सूखते हैं तो) पानी माँगती हैं (पानी घबराहट में मिलता नहीं तो) मोतियों की माला ओठों पर निचोड़ती हैं।

(चाँद और गुरू जी का मुकाबला और गुरू विशेषता)

पुन्याई हूँ सरसात दूज जात अवदात,
कलाकार नाम भ्रांत अमृत बनाए हैं।
गृह गृह बासी तम नासी श्री प्रकासी,
अबिनासी पदपाए लोकालोकन में गाए हैं।
दोऊ परमानंद सों कीरत के उजियारे,
पूजि पूजि उमापति भले लै चढ़ाए हैं।
ससि बेखी भयो इंद सुनिअै गुरू गोबिन्द,
कुहू के अनिंद ससि निंदित कहाए हैं*।

(इस छंद के अर्थ अधिक दुष्कर हैं पर श्लेष की सहायता से सारे पद पदार्थ लग जाते हैं)। १. (चाँद) पूर्णिमा तक ही बढ़ता है (फिर घट घट कर) दूज तक जाता है, (पर गुरू गोबिन्द सिंह जी) पूर्ण होकर भी दूज के चाँद की तरह बढ़ते जाते हैं (यह बात) प्रगट है+। (चाँद का नाम है) कला वाला (पर वे कला सोलह हैं और गुरू जी का नाम भी) कलाकर है, (पर वह है कला + आकर = कला की खान, अनंत कला हैं जिसमें)। (चाँद) अमृत बनाता है (पर वह औषधियों में पड़कर शरीर को सुख देता है, मन की) भ्रांति (दूर नहीं होती, गुरू जी भी) अमृत बनाते हैं (पर वे मन की अज्ञान) भ्रांति को (दूर करते हैं)। २. (चाँद) घर घर में छाए अँधेरे मात्र को सुन्दर प्रकाश से दूर करता है और लोकालोक पर्वत के चारों ओर घूमता बताया जाता है (पर गुरू जी) हृदय हृदय में बस रहे अँधेरे को सुन्दर प्रकाश द्वारा दूर करते हैं जिस कारण अविनाशी पद पाकर (पाने वाले) लोक अलोक (लोक परलोक) में गुण गाते हैं। ३. दोनों परम आनन्द के देने वाले हैं, एक (भाव चाँद) प्रकाश देकर (तथा दूसरे भाव) गुरू जी (अपनी) कीर्ति के प्रकाश के कारण, (फिर देखो पूज=) लोगों से पूजा गया (चाँद) शिव ने (माथे पर) चढ़ा लिया है (पर पूज्य भाव) गुरू जी का पूजन करता है शिव (भाव, शिव जब गुरू जी का पूजन करता माथा टेकता है तो उनके माथे विरजमान चाँद भी नमस्कार में पड़ जाता है। ४. सुनो हे लोगो चाँद और गुरू गोबिन्द सिंह दोनों चन्द्रमा स्वरूप हैं (पर चन्द्रमा तो कुहू =) अमावस को (लुप्त होता है और गुरू जी दरबार में दर्शन खुले देते हैं। वह उस दिन प्रकाश न देने के कारण प्रकाश के ज़रुरतमंदों से) निंदा पाता है, (पर ये) दर्शन करने वालों से (अनिंद =) प्रशंसा पाते हैं।

---

* यह और अगला छंद सूरज प्रकाश में नहीं है। इनमें छाप नहीं है, पर बा० सु० सिंह जी ने इनको हंसराम के छंदों में लिखा है इसलिए उसी के मानने ठीक हैं।

\+ (अ) (यह बात) प्रगट है (कि चाँद) दूज को (जात =) जन्म लेकर पूर्णिमा तक ही बढ़ता है, (पर गुरू गोबिन्द सिंह जी) पूर्ण होकर भी दूज के चाँद की तरह बढ़ते हैं।

गुनन मैं गुनी* कहैं, ज्ञान निधि मुनी+ कहैं,
दाता सभ दुनी कहै दाहिद नसाईए।
एक कहैं दच्छन@ के लच्छन प्रतच्छ या मैं,
एक कहैं छबि के बितान छित छाईए।
एक बीर भारी कहैं, एक उपकारी कहैं,
एक धरमधारी कहैं, लोकालोक# गाईए।
लाज के जहाज गुरू गोबिन्द बिराजैं आज,
जग के समाज$ सब राउरे मैं पाईए।

यह छंद उल्लेख अलंकार का उत्तम नमूना है। एक वस्तु का देखने वालों के भावना भेद करके अनेक प्रकार का वर्णन करना उल्लेख अलंकार कहलाता है। अर्थ ऐसे है– १. गुणियों (की दृष्टि) में (गुरू गोबिन्द सिंह जी को) गुणों में प्रवीण कहा जाता है, मुनि (उसको) ज्ञान का ख़ज़ाना समझते हैं, साधारण दुनिया के लोग (उसको) दाता समझते हैं (क्योंकि वह हर किसी का) दारिद्रय दूर करते हैं। २. एक कहते हैं इनमें निपुण वाले पूरे लक्षण प्रत्यक्ष हैं, एक कहते हैं ये सुन्दरता का (मानो) चँदोवा धरती पर तना (खड़ा) है। ३. एक कहते हैं बहुत बहादुर हैं, एक उपकारी कहते हैं, एक (आपको) धर्मधारी कहते हैं, लोक परलोक में (हर कोई अपनी भावनानुसार उनका यश) गा रहा है। (जिनकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी)। ४. (पर कवि कहता है कि हे) गुरू गोबिन्द सिंह जी (मुझे) आप जी का (व्यक्तित्व) जो जगत के समूह गुणों से सम्पन्न है, बिरद पालक जहाज़ की तरह शोभा पाता नज़र आ रहा है।

* * *

इससे आगे वाले तीन छंद सूरज प्रकाश में कवि संतोख सिंह जी के छाप वाले के बाद आने के कारण संभावना हो सकती है कि उनके हों, पर ये उनके नहीं। बा॰ सुमेर सिंह जी ने हुज़ूरी कवियों के माने हैं। पहले को तो कवि का नाम दिए बिना 'दान कवित्त' के शीर्षक अधीन दिया है और आगे वाले दो हंसराम के छंदों के बीच दिए हैं और दोनों को 'अतंक समर बीर के कवित्त' के शीर्षक अधीन लिखा है–

(घोड़ों का दान)

अरब अराकवै द्वै नाब द्वै रकाब वारे,
बारे बडे डील पील सैनक हैं कूत के।

---

* कला कौशल वाला, कोमल उनरों का प्रवीण।

\+ वह महात्मा जो धर्म और ईश्वर ज्ञान में संपूर्ण हो और हर तरह सम्मान योग्य हो।

@ दच्छन = दक्ष = निपुणता के कमाल वाला। जो थोड़ी देर में स्वत: ही बारीक से बारीक वृतांत हल करता हुआ अपने कार्य या उत्तर को पूर्ण कर ले Genius।

\# लोक परलोक

$ समाज = समूह, भाव गुणों के समूह।

चपला से चपल, चलाक चहूँ पाइ पूरे,
पौन गौन, पल कौ सके न दिन दूत के।
मन को हरन, मन मीन के दरन, जिन्है
चाहन की चाह पातशाहन के पूति के।
बखशे तिहारे गुरू गोबिन्द जी ऐसे हय
बिरथ हैं, न जाइ पाइ गए पुरहूत के।

१. (हे नाथ) इराक अरब* दो दो सवारी वाले घोड़े, दोनों नायाब, (बारे = उम्र के कुमार भाव) चढ़ती जवानी वाले, बड़ी डील वाले (ऐसे कि) मानों हाथियों के सरदार हैं बल में। २. बिजली की तरह चंचल हैं, चारों पैरों से पूरे चालाक हैं, चाल में पवन (जैसे हैं;) सूर्य+ के घोड़े इनकी बराबरी नहीं कर सकते। ३. मन को हरने वाले (भाव सुन्दर) हैं, मछली के मन को दलने वाले (भाव चंचलता से है), जिनके देखने की चाह पातशाहों के पुत्रों को भी है। ४. हे गुरू गोबिन्द सिंह जी आपके बख़्शे हुए घोड़े ऐसे सवारी के घोड़े हैं कि इन्द्र के पास जाने पर भी नहीं मिल सकते@।

(गुरू जी के एक युद्ध का दर्शन)

पारथ समान महांभारथ मचायो तहां,
खायो मासहारनी अहार जेतो खाइगो।
मंदर से मोकल गइंदन की गरजनि,
धौंसा की धुंकार धराधीश अकुलाइगो।
ऐसो कीनो समर अमर लोक सुनियत,
तेरो ही बखान खान पान सो भुलाइगो।
मारकै मदान अरि डारे गुरू गोबिन्द के,
काल कला फेर कोऊ कालहि सुहाइगो।

१. वहाँ (गुरू जी ने) अर्जुन की तरह ऐसा युद्ध किया कि माँसाहारी पक्षियों चील आदि ने पेट भरभर कर माँस खाया मुर्दों का। २. मन्द्राचल जैसे खुले छूटे हुए हाथियों की गरज और धौसों की धुंकार सुनकर राजा घबरा गए। (अ) मंदिरों से निकलकर हाथियों की गरज ....। ३. ऐसा युद्ध किया कि जब स्वर्ग लोक में सुना गया तो देवता आपके ही ज़िक्र में लग गए, खाना पीना तक भूल गए। ४. श्री गुरू गोबिन्द जी के मैदान में मारकर फेंके हुए शत्रु (ऐसे अब मरे हैं कि) काल ही अपना चक्र (चलाकर) कोई समय बीतने पर फिर जीवित कर सके तो कर सके।

---

* अरब इराक। घोड़ों के लिए प्रसिद्ध देश, नाब = नायाब। (अ) सुन्दर, स्वच्छ। रकाब = सवारी का घोड़ा।

\+ दिन दूत = दिन का दूत भाव सूर्य। (अ) दिन दूत = अरुण, सूर्य का रथवाहक।

@ हय विरत्थ = वे घोड़े जो रथ में न लगे हों, खास सवारी के घोड़े। (अ) हे गुरू जी आपके बख़्शे घोड़े ऐसे हैं कि जिन्होंने, पा लिए, वृथा नहीं गए, इन्द्र हो गए।

महां बाहु बीर गुर गोबिन्द तिहारे त्रास,
बैरनि की सैना बन बन बिचरति है।
गहि करवार काढ़ि काटि कै दुर्जन दल,
जोगि* जुरे जोगन जमात बिहरति है।
सैहथिनि हने रिपु हाथन के धाइन ते,
रुध्र धार ऐसी बही आस न धरति है।
आग लगे धूम भाए घरनि अकार सम,
मानहु झरोखनि झरप्पनि करत हैं।

१. हे महाबाहु+ श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी वैरियों की सेना आप के डर से वन-वन में घूम रही है (भाव छिपी घूमती है)। २. (म्यान से) तलवार पकड़कर निकाली और दुर्जनों के दलों को काट लिया (जिनके सिरों को लिए) शिव और योगिनियों की जमात जुड़कर मैदान में घूम रही है। ३. (आपके शूरवीरों के) हाथों से बरछी द्वारा मारे गए दुश्मनों के घावों से ऐसी रक्त की धार बही कि बचने की आशा ख़त्म हो गयी। ४. (जैसे कि) आग लगने पर धुआँ घरों के आकार का हो जाता (घरों में भर जाता है) तो झरोखों में से झड़प झड़प कर (आग की) लपट निकलती है (ऐसे रक्त की धारा चल रही है, तब फिर क्या आस बचने की हो सकती है)।

(अवतारी)

स्वमति अनुसार कवि इस छंद में श्री गुरू जी को हरि का अवतार मानता और गुणों से युक्त वर्णन करता है–

सतिजुग प्रबल प्रगट परसराम ह्वै कै,
छेक छाडे छत्री कर काहूँ अत्र ना धरयो@।
त्रेते रघुनाथ ह्वै के रावन सनाथ कीनो,
गीधन खुवायो मास लंकपति जौ लरयो#।
द्वापर कन्हायी बनि$ बांसरी बजायी सुनि,
सुर नर मुनि काहूँ धीर न तबै करयो%।
कलियुग तारिबे को, साधन के पारबे को,
सुन्दर सरूप गुरू गोबिन्द ह्वै अवतरयो^।

---

* भाव शिव।
\+ लम्बी बाहों वाला, अजानुबाहु।
@ मुकाबले पर कोई हाथ में शस्त्र पकड़कर न आया।
\# लंकापति (रावण) जब लड़ा तो उसके (लश्कर का) माँस गिद्धों को खिलाया।
$ कृष्ण बनकर।
% किसी ने भी धैर्य नहीं किया, भाव सभी मोहित हो गए।
^ यह छंद हंसराम के छाप वाले छंदों के बाद लिखा मिलता है, हो सकता है उसी का हो, परन्तु अगर आख़िरी पंक्ति के पद 'सुंदर' को श्लेष समझें तो यह सुन्दर कवि का भी सही होता है, जिसके दो छंद पीछे दे आए हैं।

(अद्वितीय दाता)

जौनै देश जय्यति नरेशनि के पास तहां,
ठौर ठौर तुमरो ही जस गाईयति है।
पाइ गए तेरे पाइगहे पाईयति, कहूँ
और जाइ गरजाए गरो पाईयति है।
ऐसे गुर गोबिन्द की सुकबि शरन तांको,
पूरन प्रताप जांको जग्ग छाईयति है।
राजी हूजीयति गाजीयत जांके दरबार,
घर बाजी बांध बाजी लैन आईयत है*।

१. जिस जिस देश के राजाओं के पास जाते हैं वहाँ हर स्थान पर आप का यश ही गाया जाता है। २. (जब) तेरे चरण पकड़ लेते हैं, तो रुतबा पा लेते हैं, कहीं और जगह जाकर ज़रूरतमंद हों तो गिरावट मिलती है+। ३. हे कवि। ऐसे गुरू गोबिन्द सिंह जी की शक्ल देखो जिसका पूर्ण प्रताप जगत पर छा रहा है। ४. जिसके दरबार में जब बोलते हैं (भाव कविता करते हैं तो दान सम्मान इतना मिलता है कि) राज़ी हो जाते हैं, (एक) घोड़ा (दान मिला) घर बाँधकर (एक और) घोड़ा लेने फिर आ जाते हैं।

(जसवारियों के हाथी का दर्शन)

सवैया— **श्री गुर गोबिन्द खग्ग गह्यो, अरि**
फौजन के इभ सैल बिभैलहि।
सांग संभारि दई गज सीस,
असीस दई हरि घूमति गैलहि।
घाइन ते भभकै निज श्रोण
फुहारन लौ उपमा छबि फैलहि।
दो भुज हेल मनो हनुमान
हिलावति, जानि संजीवनि सैलहि।

१. बचित्र (विचित्र) सिंह के बींधे हाथी का रूपक है (श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने जब तलवार पकड़ी तो शत्रु पहाड़ियों ने फौजों (के आगे) हाथी भेजा@। २. (जब

---

* अगर शारदा को कवि छाप मानें तो यह छंद सूरज प्रताप अनुसार उसके छाप वाले के बाद का होने के कारण संभावित हो सकता है। पर बा॰ सु॰ सिंह अनुसार ये हंसराम के छाप वाले छंदों के बाद आए बेछाप में से है, इसलिए अभी संभावना इसके हंसराम का ही होने की है। इससे आगे वाले दो छंद सूरज प्रताप में इसके साथ ही आए हैं, इसलिए अभी उनको भी हंसराम वालों में ही जगह देते हैं।

\+ फा॰ पायगाह = दर्ज़ा, मुरातबा। गरज़ाए = गरज़मंद होना; गरज़ – ज़रूरत।

@ (अ) इभसैल = पहाड़ियों ने हाथी भेजा, (संस्कृत, इभ = हाथी)।

बचित्र सिंह ने) सांग सँभाली और हाथी के सिर में घुसेड़ दी तो हाथी ने (सिर झुकाया मानो) आशीष दी और पीछे की ओर लौट पड़ा*। ३. (हाथी के) अपने घावों से लहू ऐसे फूटा कि फव्वारों की उपमा की सुन्दरता फैली। ४. (सांग निकालने के समय की उपमा) मानों हनुमान अपनी दो बाँहों से घुमाकर संजीवनी बूटी के पर्वत को हिला रहा है (भाव बचित्र सिंह हनुमान है, हाथी पर्वत है, लहू का फव्वारा संजीवनी बूटी है)।

(युद्ध के बाद का दृश्य)

महांबाहु बिरच बनैति गुरू गोबिन्द जी,
अरि गज मारि डारे मानो दरखत है।
भैरों औ बिताल भूत करत बिहार तहां
हार करिबे को मुखीपंच परखति है।
लहू कीच भरे गज मोती लै गगन गीध,
गरज़ अगन देखे हर हरखत है।
धोखे न भखति, छूट धरन लखति मनो,
बिथरो ह्वै बादर नखत बरखत है।

१. आजानबाहु गुरू गोबिन्द सिंह जी सनद्धबद्ध होकर जब (युद्ध में घूमे हैं तो) दुश्मन ऐसे मारे गए जैसे हाथी ने वृक्ष तोड़े हों+। २. भैरव और भूत बेताल वहाँ घूमते हैं, शिव जी हार पिरोने के लिए (कटे पड़े सिरों को परखते हैं। ३. रक्त के कीचड़ से भरे गज मोती गिद्धें लेकर आकाश में जब उड़ती (उन मोतियों को) अग्नि रूप देखकर चीखती हैं तो शिव जी (यह देखकर) खुश होते हैं। ४. (गिद्धें गज मोतियों को आग के भ्रम में) खाती नहीं, (इसलिए वे) छूट कर धरती की ओर गिरते हैं, फैले हुए (गिरते) मोती ऐसे दिखाई देते हैं कि मानों बादलों से तारे बरस रहे हैं@।

मंगल

अनंद का वाजा नित वजदा अनंदपुर,
सुणि सुणि सुध भुल्लदी ए नर नाह दी#।

---

* हरि = हाथी। घूमति गैलहि = रास्ता मुड़ गया।

+ (अ) वैरी के हाथी वृक्षों की तरह कटे।

@ दूसरे अर्थ–रक्त कीचड़ भरे गज मोती अनगिनत गिद्धें लेकर घुर घुर करती आकाश चढ़ती हैं। शिव जी देखकर हँसते हैं, तृप्त हुई (गिद्धें) मोतियों को खाती नहीं, धरती पर फेंक देती हैं, (गिद्धें) आकाश पर उड़ती ऐसे दिखायी देती हैं कि मानों बिखरे हुए बादल हैं (और मोती उनसे गिरकर ऐसे लगते हैं कि मानो) तारे बरस रहे हैं। (गजमोती = वह मोती जो हाथी के माथे में से निकलता माना जाता है। अगन – आग में से, अथवा अनगिनत। हर = शिव। धोखे – भ्रम, अथवा तृप्त हुई।)

राजाओं को होश भूल जाती है।

भौ भया भभीषणे नूँ लंका गढ़ वसणे दा,
फेर असवारी आंबदी ए महांबाहु दी*।
बलछड बल+ जाइ छपिआ पताल विच,
फते दी निशानी जैंदेद्वार दरगाह दी@।
सवण न देंदी सुख दुज्जना नूँ रातदिन,
नौबत^ गोबिन्द सिंह गुरू पातशाह की$।

(अद्वितीय दाता)

दिज्जन के दल, जोगी जंगम जमात द्वार,
बंदीजन कित्त कहैं, जगत में जाहिं की।
शोभा शुभ लेति देति लच्छन को लच्छ रोज,
देखि देखि सुधि भुल जाति सुर नाह की।
गोबिन्द गुरू को दान मालम जहान भयो,
भिच्छक कीए हैं भूप, परवाह न काहि की।
बलि, बैन, बिक्रम न भोज हूँ मैं मौज ऐसी,
जांकी एक मौज नवरोज पातशाह की%।

१. २. (जिसके) द्वार पर ब्राह्मणों के दल, योगी जंगमों की जमातें और कितने ही यश गाने वाले हैं। जगत में जिसकी शुभ शोभा (हो रही है कि) खुशी के साथ देते हैं (गुरू जी से) लेते हैं (याचक) लाखों के लाख कि देख देखकर इन्द्र की होश भूल जाती है। ३. गुरू गोबिन्द सिंह जी का दान जहान को मालूम हो गया है जिसने माँगने वाले जो थे वे राजा कर दिए हैं और किसी चीज़ की परवाह नहीं रहने दी। ४. (पिछले समय) बलि, बैन विक्रम और भोज आदि राजाओं में वह बख़्शिश नहीं थी (जो गुरू जी में है

---

* विभीषण को लंका गढ़ बसने का भय पड़ रहा है कि महाबाहु भी की सवारी फिर आ रही है, भाव कि पहले रावण को निकालकर मुझे दे गए थे, अब कहीं मुझे निकाल कर किसी और को देने न आ रहे हों। (महाबाहु = लम्बी बाहों वाले भाव अज़ानुबाहु)।

\+ बलि राजा बल छोड़कर।

@ दरगाह की मिली जीत की निशानी जिस (गुरूजी के) दर पर है।

^ शायद कवि का भाव रणजीत नगारे से है (अरबी नौबत = नगारा)।

$ सूरज प्रकाश में इस छंद से अगले छंद में मंगल का नाम आया है। यह भी छंद मंगल का ही है। मंगल पंजाबी का अच्छा कवि हुआ है, यह चाल और बंदिश उसी की सही पड़ी होती है।

% यह छंद सू॰ प्र॰ और बा॰ सु॰ सिंह जी दोनों में मंगल के छाप वाले के साथ दिया है। इसमें पहले छंद का विषय ही ज़ारी है। जिसकी पहली पंक्ति है–'पुरबा पुरख अवतार आन लीन–आप'। उसमें किसी मित्र को आनंदपुर बुलाया है और इस छंद में बताया है कि यहाँ पातशाहों के नौरोज़ की बख़्शिश रोज़ होती है, इसलिए यह मंगल का ही समझना ठीक है। चाल बंदिश भी उसी की सही होती है। ऊपर वाले पंजाबी के छंद के तुकांत 'नाह दी' के मिलते तुकांत इसमें भी आए हैं, 'नाह की' 'जाहि की'।

और आजकल के) पातशाहों के नौ रोज़ जैसी बख़्शिश (गुरू जी की एक रोज़ की) बख़्शिश के समान होती है*।

(गुरू जी की पातशाही सच्ची पातशाही है भाव अवतार हैं)

रावण ते छीन दई बख़्श बिभीखण को,
बावन ह्वै बांध्यो बलि+ जबि तुम चाही है।
कबि चारमुक्ख रच्यो थंभ बीच नरसिंह
प्रह्लाद जू की पैज पूरन निबाही है@।
गुरू जी गोबिन्द राय चाहे तुम सोई करो,
बूझि देखो बेद इस बात को उगाही है#।
और पातशाही सभ लोगनि के पातशाह,
पातशाहों पर साची तेरी पातशाही है$।

(गुरू जी की छड़ी)

असुर बिदारिबे को, सुरपति पारबे को,
भगत उधारिबे को मुकति की जरी है।
अरि दल भंजिबे को, गाढ़े गड़ गंजबे को,
सभि सुख संजिबे को महां सुख भरी है।
करत कलोल गुर गोबिन्द के कर मांहि,
चक्र साथ हूँ ते मारिबे की बिधि परी है।
फते की निशानी यह पूरब जनम हूँ की,
तब हुती गदा अब स्याम रंग छरी है%।

---

* नौरोज़–साल का नया दिन, जो ईरानी हिसाब के अनुसार २२ मार्च को आता है। पातशाह का नौरोज़ = पातशाह की वर्षगाँठ या गद्दी नशीनी के जश्न का दिन। भाव यह है कि पातशाह की बख़्शिश वर्ष के बाद नौरोज़ को जितनी होती है उतनी यहाँ रोज होती है। (अ) नयी से नयी और रोज़ रोज़ बख़्शिश मिलती है। यह अर्थ भी करते हैं।

\+ बावन अवतार होकर बाँधा बलि राजा को।

@ ब्रह्मा ने खम्भे में नरसिंह कब रचा था? (पर आपने नरसिंह रूप धारण करके) प्रह्लाद की पूर्ण प्रतिष्ठा निभायी थी, (प्रह्लाद के पिता ने वर लिया हुआ था कि ब्रह्मा के रचे हुओं में से मैं किसी के हाथों न मरूँ, इसलिए नरसिंह उसकी रचना से बाहर था।)

बेद इस बात की गवाही है कि जो आप चाहो कर सकते हो।

$ यह छंद, भी मंगल के छाप वाले छंदों के साथ ही दोनों स्थानों पर आया है, चाल भी वही है, तब तो उसी का समझना ठीक होगा, पिछले छंद में भी पातशाहों के साथ मुकाबला है, इसमें भी वह ख़्याल पातशाही की विशेषता दिखाने का ख़्याल, सच्ची पातशाही सिद्ध करके बीच में आया है, यह भी निशानी उसी के होने की है।

% सू॰ प्र॰ में यह छंद मंगल के अंत में है, जिस पर संभावना होती है कि यह मंगल का है और इसी 'छंड़ी' पर दूसरा छंद सारदा का है जो पीछे आ चुका है। अगर शारदा का अर्थ सरस्वती लिया जाये तो दोनों फिर मंगल के संभावित होंगे।

१. दैत्यों को मारने को, इन्द्र को पालने को, भक्तों के तारने को यह मुक्ति की जड़ी (बूटी) है। २. वैरी दल के भंजन को, पक्के क़िले तोड़ने को, सारे सुख इकट्ठे करने को यह महान सुखों की गठरी है। ३. श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के हाथ में कलोल कर रही (यह छड़ी) चक्र के साथ रही होने के कारण (द्रोहियों को) मारने की रीति में (भी) पड़ गयी हुई है, (चक्र में इशारा सुदर्शन चक्र की ओर है कि उस चक्र के साथ गदा की शक्ल में यह छड़ी विष्णु के हाथों में रही है, गुरू जी को कवि यहाँ विष्णु रूप वर्णन कर रहा है। ४. पहले जन्म में यह (विष्णु की) गदा होती थी और अब काले रंग की छड़ी है, इसलिए यह अपने पहले जन्म (गदा होने) से (ही) जीत की निशानी है।

हीर

(गुरू गोबिन्द सिंह जी का सिंह)

प्रतीत होता है कि हीर कवि अमृत छकने के बाद और खालसे के मूर्तिमान हो जाने के पश्चात आनंदपुर में ही था। एक कवित्त में यह सिंह का रूप बाँधता है, जिसमें सिंह की वीरता और तैयार बर तैयार दर्शन तथा अपनी आँखों देखा दर्शन करवाता है।

चढ़त ही बाजी चढ़यो गाढ़े गढ़ चाहिबे* कउ,
दाहिबे कउ दुक्ख रीझै बर ज्यों भवानी को।
आवत ही दाढ़ी छाती दाढ़ी छितपालन की,
रज के करय्या उन ही की रजधानी को।
महांबाहू गुरू जी गोबिन्द सिंह पारथ ज्यों,
भारथ को जीत लेत बसुधा बिरानी को।
पाग हूँ को बांधिबो कछुक दिन पीछे सीख्य,
पहिले ही सु सीख्यो सिंह बांधबे क्रिपानी को+।

१. घोड़े पर चढ़ते ही (सिंह) मज़बूत क़िले को (फतह) करने की चाह करता है, (जगत के) दुखों को जलाने के लिए वह ऐसे रीझता है जैसे शिव, भाव दुनिया के दुख दूर करने को, वह कल्याण स्वरूप है। (भवानी को वर = पार्वती का पति = शिव जी। शिव = कल्याण स्वरूप। २. दाढ़ी आते ही राजाओं की छाती जलाता है और उनकी राजधानी को (रज =) धूल करता है। ३. लम्बी भुजाओं वाले गुरू गोबिन्द सिंह जी (के सिंह) वैरियों की धरती ऐसे जीत लेते हैं जैसे अर्जुन ने भारत जीता था। ४. पगड़ी बाँधनी तो सिक्ख (बच्चा) कुछ दिन बाद सीखता है पर कृपाण बाँधनी पहले सीखता है।

---

* पाठांतर – ढ़ाहिबे।

\+ सू० प्र० ने हीर का नाम देकर कोई छंद नहीं दिया, पर यह छंद दिया है जो मंगल के दो छंदों के बाद वाले छंद के बाद आया है। बा० सु० सिंह जी ने 'हीर' का शीर्षक देकर जो छंद हीर छाप वाले दिए हैं, उनमें यह छंद भी दिया है, इसलिए यह हीर कवि का ही समझना चाहिए। चाल बंदिश भी उसी की सही प्रतीत होती है।

(शत्रुओं पर गुरू गोबिन्द सिंह जी का रौब)

इन कवित्तों* में गुरू जी के रौब का जो प्रभाव उन शत्रुओं पर पड़ा है, उसका नक्शा बाँधा है–

तो सों बैर बांध बैरी धीर न धरति कहूँ,
धौंसा की धुंकार धराधर धसकत्त हैं।
दल के चलत, महि हलत, हलत कोल,
कूरम कहल्ल, फनी फन न सकत है।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरू गोबिन्द जी,
तेरे भयभीत भारी भूप ससकत्त हैं।
होत भूमचाल दिगपाल पाइमाल होति,
हलके हहल्ल हाथी माथे मसकत्त हैं।
महांबाहु बीर गुरू गोबिन्द! तिहारे रोस
बैरिनि को बधू बन बन बिलखानी हैं।
करै न गवन भूल भवन के भीतर ते,
चढ़ती पहार निराधार अकुलानी हैं।
सुन्दर सरोज मुखी दुखी भई भुक्ख प्यास,
पतिनि सों खीझैं कहैं मोतन मैं पानी है।
चंद सी चकोर जानैं, बिम्ब से सूआके मानै,
कोकल सी काक नाग मोरन की मानी है।

१. तेरे साथ वैर बाँधकर वैरी धैर्य छोड़ बैठते हैं और धौंसे की धुंकार से पहाड़ काँपते हैं। २. फौज के चलने पर पृथ्वी हिलती है, हिलता है सूअर और कछुए को घबराहट पड़ती जाती है, शेषनाग के फनों में शक्ति नहीं रहती। (कहल्ल = जल्दी, घबराहट)। सूअर, कछुए से मुराद धरती के नीचे वाले सूअर और कछुए की है)। ३. हे गुरू गोबिन्द सिंह जी। आपके डर से बड़े-बड़े भारी राजा लोग काँपते हैं। ४. भूचाल आता है, दिग्पाल (हाथी) दुखी होते हैं, (अपने अपने मण्डलों में भाव) दिशा में वे (दिग्पाल) हाथी डरे हुए (आपके आगे) माथे रगड़ते हैं। (अ) हाथियों के घेरे (समुदाय) डरकर माथे धरती पर रगड़ते हैं। (फारसी, पामाल = दुखी, मुसीबत में फँसे)। ५. हे आजानबाहु गुरू गोबिन्द सिंह जी! आपके रोष से वैरियों की स्त्रियाँ वन-वन में दुखी हैं। ६. (जिन्होंने कभी) भूलकर घर अंदर से बाहर नहीं जाना किया था वे अब अकेली पहाड़ पर चढ़ती व्याकुल

* गु॰ प्र॰ सू॰ में आगे वाले चार छंदों में से पहले दो छंद मंगल के बाद हैं और आगे वाले दो सुन्दर के बाद हैं, पर शीर्षक नहीं दिया हुआ। बा॰ सु॰ सिंह जी ने ये चारों 'हीर' शीर्षक के अधीन दिए हुए हैं, रंग ढंग भी हीर का ही है। ये छंद किसी ख्याल या तर्ज़ = समस्या – पर कहा हुआ प्रतीत होता है।

हो रही हैं। कमल (जैसे) मुख (वाली स्त्रियाँ) भूख और प्यार से दुखी हुई (अपने) पतियों के साथ खीझती और मोतियों की आब को पानी समझती हैं। (जौहरी रत्नों की आब को पानी भी कहते हैं)। ८. चकोर (उनक मुखड़े को) चाँद समझता है और तोता होठों को कुंदरू फल और कौआ (उनकी आवाज़ से उनको) कोयल और मोर (उनकी चोटी) को नागिन समझ रहे हैं।

(गुरू जी का तलवार पकड़ना)

सवैया– **गौरि दुरावत गोद गनेशहि**
अंग बिभूत महेश मलै बित।
शोर परे दिगपालन के,
भुवपालन के मन मांहि नहीं थित।
द्वारि मुंदे पुर शत्रुन के, गुर
गोबिन्द ख्याल ही खग्ग गहे इत।
हाथी न साथी संभार सकै कोऊ
चाल परे चतुरंग चमूँ चित।

१. पार्वती गोद में गणेश को छिपाती है और शिव सदा अंगों को राख मलता है। २. शोर पड़ गया है दिशापालों में और पृथ्वीपति राजाओं के तो मन ही डोल रहे हैं। ३. शत्रु शहरों के दरवाजे बंद कर लेते हैं जब इधर गुरू गोबिन्द सिंह जी तलवार पकड़ने का ख्याल ही करते हैं। ४. शत्रुओं की चतुरंगिनी सेना के चितों में हलचल पड़ जाती है, फिर हाथी (रथ घोड़े और) साथी किसी को कोई सँभाल नहीं सकता। (अ) (हाथियों के साथी भाव) महावत हाथी नहीं सँभाल सकते, कोई (कोई भी, भाव सवार घोड़ों को, रथवान रथों को, बात क्या सब) चतुरंगिनी सेना चल पड़ती है (भाव उठ भागती है)। (इ) (फिर जब गुरू जी) हाथी (पर सवार हो जायें तब तो देखते ही) चतुरंगिनी सेना ही वैरी की उठ भागती है, कोई अपने साथी को भी नहीं संभाल सकता।

(गुरू जी के सनद्धबद्ध होने पर)

छप्पय– **बन टुटति, गिर फटति, छुटति धीरज सुधरन तन।**
दिग्गज दिग कलमलत हलत तल शेष नाग मन।
उडिय रेन हय खुरनि सूर बर कहूँ लुक्क गिय।
बिभीछन भहरति मूँदि गड़ द्वार दुरति भय।
कर गहि क्रिपाण गोबिन्द गुर
जबि सलोह पक्खर सजति।
कलमलत हरति पुर चक्रवै
सुघरन छाड घर ते भजति।

१. जंगलों के वृक्ष टूटते हैं, पहाड़ फटते हैं और धरती के देहधारियों के धैर्य छूट जाते हैं। २. दिगपाल हाथी व्याकुल हो कर शोर मचाते हैं, (पृथ्वी के) नीचे (पाताल में) शेषनाग का मन हिल जाता है। ३. घोड़ों के खुरों से ऐसी मिट्टी उड़ती है कि श्रेष्ठ सूर्य भी (मानो) कहीं छिप गए (प्रतीत होते हैं)। ४. विभीषण भयभीत होकर (लंका) गढ़ का द्वार बंद कर लेता है और भय से छिप जाता है। ५. हाथ में तलवार पकड़कर जब गुरू गोबिन्द सिंह जी शस्त्रधारी होकर (घोड़े की) काठी पर (आकर) सजते हैं। ६. चक्रवर्ती (यह समझकर कि हमारे) शहर अभी छीनते हैं, घबरा कर वधुओं को भी छोड़कर घरों से उठ भागते हैं। (अ) कलमलत हलत = घबराकर और हरे पीले होकर।

(तलवार पकड़ते खुशी और ग़मी)

हूरन को नर सूर मिले बर,
चौसठ जोगन सैन अघायी।
देति असीस सभै मिलि जंबुक,
गीधन ते रण भूमि सुहायी।
छाडि सुहाग लीए बिधवा इक
बैरन की तिय को दुखतायी।
खग्ग गहे गुर गोबिन्द के कर,
नारद के घर होत बधाई*।

४. (ज़ोरावरों के मुकाबले पर) श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के हाथ तलवार पकड़ते ही नारद के घर बधाई होती है। (नारद की पत्नी का नाम कलह है और वह लड़ाई सुनकर खुश होती है)।

१. हूरों को बहादुर वर मिलेंगे चौंसठ योगिनियों की सेना तृप्त हो जायेगी। २. (दूसरी ओर) सारे गीदड़ मिलकर आशीषें देते हैं, गिद्धों के साथ रणभूमि शोभित हो जाती है। ३. (हाँ, बलवान) वैरियों की स्त्रियों को दुख होता है कि जितना है सुहाग छोड़कर विधवापन लेना पड़ता है।

आवत न तीर तीर, मान न कमान करे,
गोलन की गूँद दूँद बूँद मनो बार है।
छीन बरछीन लेय, सैहथी है को टिक,
कटारन को बीर अति बैठी बरदार है।
छुरी न छुहित, गुरजन हूँ कि गुरज न
बर तबरनि को निवारति निहार है।
सैना अरि घा कीए, कहां कहूँ सूहा की,
गुरू गोबिन्द के कर ऐसी बाकी तरवार है।

* सू० प्र० में यह और इससे आगे वाला छंद दोनों सुन्दर के बाद में है और फिर कवि संतोख सिंह जी अपना छंद देकर अंसू पूरा करते हैं, पर बा० सुमेर सिंह दोनों छंदों को हीर का लिखते हैं और चाल दोनों की हीर वाली है।

१. (तलवार ऐसी है कि) तीर (इसके) नज़दीक नहीं आते, कमान मान नहीं करती युद्ध में गोलियों की बौछार मानों पानी की बूँदें हैं। (गूँद = इकट्ठ, भाव बौछार। (अ) गूँज। दूँद = द्वन्द्व = जंग)। २. बरछियों को क्षीण कर देती है, अथवा छीन लेती है बरछी को क्या टिकाव (हो सकता है)? बड़े वीरों की कटारों को दूर फेंकने के लिए (तैयार) बैठी है (बरदार = दूर फेंकने वाली)। ३. छुरी (नज़दीक) नहीं छूती, गुरजों (गदा जैसा हथियार) की भी (गुरज्ज + न) महिमा नहीं रहती, अच्छे कुठार को दूर फेंकती देखते हैं। ४. गुरू गोबिन्द सिंह जी के हाथ में ऐसी बाँकी तलवार है कि जिसने वैरी की सेना मारकर सफाई कर दी (उसकी उपमा मैं क्या करूँ) (सूहा = झाड़ू दे दिया, सफाई कर दी)।

(गुरू जी के आगे अहंकार का वश नहीं चलता)

शाहन के सोच शाहज़ादन के रोज होत,
खेलिबे के खोज गो शिकारन* सजत हैं।
बयाकुल बिहंग बिललात फिरैं अंगभंग
अंगभंग कै कै जल थल ते भजत हैं।
बेश बाहु बेसरा+ सुने ते गुरू गोबिन्द सिंह
जाके गुन उर गुनिबे@ को उपजत हैं।
काहे मगरूर खग# पूछत शहूर$ गयो,
गरुर% गरूर गयो काहे न तजत हैं^।

१. पातशाहों के शहजादों में रोज़ सोच (विचार) होती थी, (कि शिकार) खेला जाये, (पर शिकार मिलता नहीं था, आखिर उन्होंने सोचा कि) शिकरा शिकार खोज लेगा (इसलिए उसको तैयार करके छोड़ा)। २. ३. (शिकार की खोज में उड़े और अहंकार भरे शिकरे को कवि कहता है) गुरू गोबिन्द सिंह जी के गुण (तो भाई) अहंकार रहित हृदय में उपजते हैं, (तुझे पता नहीं? कि उस गुरू के) बढ़िया बाजुओं वाले बेसरे (शिकारी पक्षी विशेष) का (नाम) सुनने पर ही पक्षी अंग भंग हो व्याकुल हो-होकर रोते और अंग भंग हुए भी जलों थलों में भागे जाते हैं। ४. हे अहंकारे हुए (शिकरे) पक्षी (तू शिकार की) पूछ (खोज क्या कर रहा है, क्या तेरी) मति मारी गयी है? (जहाँ पक्षियों के राजा) गरुड़ ने अहंकार छोड़ दिया है, वहाँ तू क्यों नहीं अहंकार छोड़ देता।

' शिकारन = शिकरान = शिकरे को। शिकरा एक शिकारी पक्षी का नाम है।

\+ एक और शिकारी पक्षी का नाम है। बेश-बढ़िया। बाहु-बाजू। पक्षी के पंखों के प्रबन्ध को बाजू कह लेते हैं।

@ उर = हृदय। गुनबे = बेगुण। तीनों गुणों से रहित भाव अहंकार रहित।

मगरूर खग = हे अहंकारी पक्षी, हे अहंकारी शिकरे।

$ शहूर = अः, शउर = अक्ल, होश।

% गरुड, हिन्दू आख्यानकों ने गुरुड सारे पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन माना है।

^ ये और आगे वाला छंद गु० प्र० सू० में नहीं है पर बाबा जी ने 'हीर के' शीर्षक अधीन दिए हैं इसलिए हीर के हैं।

(गुरू जी का शत्रु पर कोप, धौंसे की चोट पर कवायद-दान फौज का हल्ला)

महां बाहू* बीर गुरू गोबिन्द तिहारे रोस,
शेष सुर पुरि हूँ धरा मै धीर को धरै।
लंकपति संकै, औ पलंक+ हूँ मैं खैलभैल,
झंक@ झार खंड हैं# अतंक नाग ही धरै।
धौंसा की धुंकार ते पुकार परै अलका$ मैं,
दल के दलेल% हेला पारावार धाहरै
ससकै सुमेर भार, मसकै कमठ पीठ,
कसकै करेजा अर रात दिन जी डरै।

१. हे महाबाहु बहादुर गुरू गोबिन्द सिंह जी आप को गुस्सा आने पर शेषनाग (पाताल में और इन्द्र आदि देवता) इन्द्रपुरी में (धीरज छोड़ बैठते हैं इसलिए) धरती पर धीरज किसका रह जाये। २. लंका का पति भय खाता है और पलकश द्वीप में खलबली मच जाती है, सारे खंड अपने दुख रोते हैं, शेषनाग हृदय में डरता है। ३. (आपके) धौंसे की आवाज़ से कुबेर की पुरी में पुकार पड़ जाती है, (आपकी) फौज की कवायद से हमले करने पर समुद्र दहाड़ें मारता है। ४. (फौजी धावे के) बोझ से सुमेरु पर्वत सिसकता है, (धरती के नीचे वाले) कच्छुए की पीठ मसली जाती है, कलेजा पीड़ा करता है और दिन रात जी डरता रहता है।

मिले जुल

अब वे छंद देते हैं जो हैं दरबारी कवियों के, पर हैं बेछाप और अबतक की की गई खोज से कोई संभावना उनके कर्त्ताओं के सम्बन्ध में नहीं हो सकी।

आगे आने वाले दोनों छंद बेछाप हैं। दोनों को बाबा सुमेर सिंह हीर के छंदों के बाद पर 'शिकार' के अलग शीर्षक अधीन लिखते हैं।

बेसरे की तारीफ में एक छंद हीर वालों में पीछे आ चुका है-'साहन के सोच' वाला और एक छंद यह आगे आता है, दोनों छंद अच्छे हैं, पर बहुत बढ़िया नहीं। हाँ, तीसरा छंद गरुर गरुर तज्यो-इन दोनों छंदों से बढ़िया है।

---

* बड़ी बाहों वाला, आजान बाहु से भी मुराद होती है। विष्णु का एक नाम। (अ) बलवान आदि।

\+ पलंक = जम्बूदीप से आगे वाला द्वीप। (अ) पलंक = फलक = आसमान। भाव आसमान में खलबली मच जाती है।

@ दुख रोना।

\# झार = सारे, भाव है सातों द्वीपों के सारे खण्ड (७ × ९ = ६३)। खंड = हर एक दीप के हिस्से नौ नौ हैं।

$ कुबेर की पुरी।

% दलेल = कवायद करना, खास तरीके से चलना, आगे पीछे होना। दल + एल = जो काम कि फौज करे भाव कवायद। इस पद को अंग्रजी पद ड्रिल से बना भी ख़्याल किया जाता है। आजकल इसके अर्थ 'एक फौजी दंड' के हैं, जैसे अमुक की दलेल बोली है।

बेश बेसरा है गुरू गोबिन्द की सरकार,
जांकी दहशत गिरे कोहन के घर हैं।
जांकी दहशत बर बाजन बर न धरैं,
जांकी दहशत छुटे बहरी के बर हैं।
जांकी दहशत चारा चुगत न चक्रवाक,
जांकी दहशत शार्दूल सुरत रहैं।
सगरे जहान के बिहंग जिन भंग कीने,
कोप सुनि आवत कुलंग पाइ तर हैं।

१. गुरू गोबिन्द सिंह जी की सरकार का बेसरा* बहुत बढ़िया है, जिसके भय से कुहियों° के घर गिर पड़े हैं। २. जिस के डर के कारण श्रेष्ठ बाज़ भी बल नहीं धारण करते और बहिरियों के बल छूट गए हैं। ३. जिसके भय से चकवे दाना नहीं चुगते और शेरों की होश मारी गयी है+। ४. सारे जहान के पक्षी जिसने नष्ट कर दिए हैं, (जिसका) गुस्सा सुनकर कुलंग# (पक्षी) अपने आप पैरों तले आ जाते हैं।

(बेसेर की प्रगल्भता, शिकार ब्यौरा और घोड़ों का दान)

गरुर गरूर तज्यो बाज़ सभ बाज़ आए,
ज़ोरावर जुररा जान ज़ेर आन हैं भए।
हाथ गुरु गोबिन्द के बेसरा सिधायो नानों,
छूटयो लख लाखन बिहंग लीन ह्वै गए।
चरन चपेट, चिंच चोभते चिमिटि चपि,
मारयो कुलमुरग, कलोल जीअ मैं भए।
ताही खिन तीखे तेज़ तरल तुरंग केते,
मौज सों मंगाइ मोल महांबाहु तैं दए।

१. गरुड़ ने अहंकार छोड़ दिया है, बाज़ पीछे हट गए हैं, जुररे (बेसरे को) ज़ोरावर जानकर ताबेदार हो गए हैं। २. गुरू गोबिन्द सिंह जी के हाथों से छोटा बेसरा उड़ा जिसको छूटा हुआ देखकर लाखों ही पक्षी गुम हो गए। ३. (इसने कुलमुरग# पर पहले पड़कर) पैरों की चपेट मारी (फिर) चोंच की चुभन दी, (फिर) गुस्से में आकर चिपक कर मार लिया, देखकर (गुरू जी) मन में प्रसन्न हुए। ४. उसी समय जल्दी से कितने ही चंचल और तीखे घोड़े मूल्य देकर मँगवाये और हे महाबाहु (गुरू गोबिन्द सिंह! तूने) खुशी से भेंट किए।

---

* बाज़ की तरह का एक शिकारी पक्षी। बाशीन के शिकरे पर जमा दोगला पक्षी 'बेसरा' या 'गुलचश्म' कहते हैं। बेस – बढ़िया।

° कुही – एक शिकरी पक्षी।

\+ (अ) शार्दूल सुर तर हैं = शेरों की गरज (तर =) नीची पड़ जाती है।

@ कुलंग = सारस जैसा जंल किनारे रहने वाला पक्षी जिसका सिर लाल होता है।

\# कुल मुरग = गिद्ध की एक किस्म, जिसका सिर लाल और गंजा सा होता है, घोगड़।

(गुरू जी कवियों को अत्यधिक कीमती घोड़े दान देते हैं)

सुन्दर अनंग, किधों चपल कुरंग सम,
गरुर के संग चलि आगे ही को चेत हैं।
पवन को पाछे करि, मन को गवन हरि,
दौर मैं पलक मांहि वांध जांहि सेत हैं।
रवि रथ चढ़त उतर जात याही लीए,
मेरे एक ए अनेक साज़न समेत हैं।
ऐसे बाजी देखीऐ न कहूँ तीन भवन मैं,
जैसे गुरू गोबिन्द जी कविनि को देत हैं।

१. काम जैसे सुन्दर, हिरण जैसे चंचल (आपके घोड़े हैं), गरुड़ (अगर आप जी के घोड़ों) के साथ चले (तो घोड़ों को) आगे जाते ही देखेगा। २. (ये घोड़े) पवन को पीछे फेंककर मन की गति को हराते हैं, दौड़ में पुल को पल में कूद जाते हैं। ३. सूर्य (अपने घोड़ों के) रथ पर (दिन को) चढ़कर (रात को) उतर जाता है कि मेरे पास तो (ऐसे घोड़ों वाला रथ) एक ही है, पर गुरू जी पास ऐसे (रथ) साज़ों सहित अनेक हैं। ४. तीनो लोकों में ऐसे घोड़े कहीं नहीं देखने में आते जैसे घोड़े कि गुरू जी कवियों को देते हैं।

(शिकार चढ़ने का दबदबा)

सैलहिं दबत, ऐल परति अलंक पर,
खैलभैल खलक खलन घरबार हैं।
कानन कुरंक, बाचे मद के मतंग कहूँ
बाघन, बिहंग, ब्रिक बानर कहां रहैं।
झांख, रोझ, रीछ, घर झाखर, बराहन के,
दाहन दरन देवि बाहन सु मार हैं।
परन पुकार अरि छोडे घर बार भाज,
सो तो गुरु गोबिन्द की सहज शिकार है*।

१. (जब शिकार चढ़ते हैं तो) पहाड़ दबते हैं, शोर आकाश में पड़ता है, खलकतों (में) और खलों (दुष्टों के) घर बारों में हलचल मच जाती है। २. जंगल में हिरण और मदमस्त हाथी, शेर, पक्षी, भेड़िये और बंदर बचकर कहाँ रहें। ३. झांख, रोझ, रीछ, बारहसिंगे और सूअरों को (उनके) घर (घुरों में = जंगली पशु का घर) में और शेरों को

* यह और अगला छंद दोनों शिकर के शीर्षक अधीन आए हैं और प्राप्त साधनों से संभावित नहीं होते कि किसके हैं।

कंदराओं में दाहन करते और मारते हैं*। ४. शिकार की ऐसे पुकार पड़ने पर वैरी घर बार छोड़कर भाग उठते हैं, यह गुरू जी के सहज स्वभाव के शिकार (का) रौब है। (अ) पुकार पड़ जाने से मतलब 'दुहाई है रख लो' की आवाज़ देने लग पड़ते हैं।

(चतुरंगिणी सेना की चढ़ाई)

सवैया— **साज शिंगार चढ़े गुर गोबिन्द,**
पबयन श्रृंग पिसान भए नित।
लंक अतंक पुकार परी, पुरि
शंक बिभीखन रंक भयो तित।
टूटि फनी फन, छूटिगे दिग्गज,
धीरज धौल की जाइ रही कित।
कच्छप कोल बिहाल भए सभ,
चाल परे चतुरंग चमूँचित।

१. शृंगार सजा कर गुरू गोबिन्द सिंह जी चढ़ते हैं तो पहाड़ों की चोटियाँ नित पिसती हैं। २. भय की पुकार लंका में पड़ गयी, (लंका) पुर और विभीषण शंकित होकर (दिल से) रंक हो गया, (भाव कायर हो गया) ३. शेषनाग के फन टूट गए, दिग्पाल+ थक गए और धौल@ का धैर्य कहीं चला गया। ४. (धरती के नीचे का) कच्छुआ और सूअरं घबरा गए (गुरू जी की) चतुरंगिणी सेना को प्रस्थान किए देखकर।

(खड़ग का रौब और खड़गधारी होने का यश)

शील रस साइर, रजीलो रण रंगधीर,
जंग जुरे जैतवार करनी कुबेर की।
कहै कबि कौन, तेज तरन लौ तपे तुअंग,
पारावार लगि फैली जीत शमशेर की।
कर रण रोस, खल खंडनि कटक कूट,
दुज्जन दरेर जग जीत ज़िमी ज़ेर की।
तेग़ त्रास साचो गुर गोबिन्द जू तेरो जस,
जगर मगर भए, शोभा गई मेरु की#।

---

* 'दाहन' से मुराद बंदूक से मारने और 'मार' से मुराद तीर तलवार से मारने की है। (अ) दाहन दरन = (सूअरों की) दाढ़ें दलते हैं। देवि वाहन = देवी की सवारी, भाव = शेर। झाख-चीतल मृग। रोझ नीलगाय। झाखर-बारह सिंगा।

+ दिग्पाल = हाथी।

@ धौल = सफेद बैल।

यह छंद सू॰ प्र॰ में आलम के बाद है और हंसराम के छंद के पहले है। पर बा॰ सुमेर सिंह ने मंगल के बाद दिया है। इसलिए निर्णय योग्य बात है कि मंगल का है, आलम का है या किसी और का है, जिसका कि नाम नहीं आया।

१. शांतिरस के आप समुद्र हो, वीर रस* में रण के (सारे) रंगों में धीर हो (इतने कि) जंग आ पड़ने पर (सदा) जीतने वाले हो और कुबेर तुल्य आपकी करनी है (भाव दानवीर भी हो और युद्धवीर भी)। २. कौन कवि (आपके तेज का वर्णन करे जो ऊपर+ को सूर्य तक तप रहा है (और नीचे) समुद्र तक (आपकी) श्री साहिब की फतेह (की कीर्ति) फैल रही है। ३. युद्ध छिड़े में गुस्से में आकर खलों और कूटों (भाव छलिये पहाड़ियों) के लश्करों को तोड़ फेंका, दुर्जनों (भाव तुर्कों को) दलकर जगत को जीत जमीन अधीन की है। ४. हे सच्चे गुरू गोबिन्द सिंह तेरी तेग़ का डर और तेरा यश (दोनों इतने जगमगा@ उठे हैं कि अब सुमेर की शोभा कोई नहीं रही।

(शिकार के लिए चढ़ने का रौब)

उदधि सिमटि जाइ ऊचे न लहिर उठै,
भै ते बिभीखन देत लंका के किवार के।
मेरु सुकचानो देखि, मघवा भुलानो गज,
बल छाड बल जाइ दुरयो है पहार को।
मही पर जेते सु महीपत बसत नाथ,
परत भागनो न सँभार नर नारि को।
गुरू ही गुबिन्द सिंह बांधि करवार हूँ को,
पाइरै दै पाइ जब चढ़त शिकार को#।

४. जब गुरू गोबिन्द सिंह जी तलवार बाँधकर (तैयार बर तैयार होकर) रकाब में पैर देकर शिकार को चढ़ते हैं तब १. समुद्र सिमट जाता है, इसकी (फिर कोई) लहर ऊँची नहीं उठती, भय खाकर विभीषण लंका के तख़्ते बंद कर लेता है। २. देखकर सुमेर सकुच जाता है, इन्द्र (अपने स्वर्ग के ऐरावत) हाथी को भूल जाता है, बलि अपनी शक्ति छोड़कर पाताल में जा छिपता है। ३. धरती पर जितने पृथ्वीपति और इसके मालिक हैं सब को भागने की पड़ जाती है (आम) आदमियों और स्त्रियों को तो होश ही नहीं रहती।

और छंद

कवि संतोख सिंह जी ने कवियों के जो छंद गु॰ प्र॰ सू॰ में दिए हैं, उनमें अपने भी कुछ दिए हैं, जिनमें छाप है वे तो साफ उनके हुए, पर बेछाप के समय बात चिन्तनीय हो जाती है। जैसा कि यह छंद सू॰ प्र॰ में हुजूरी कवियों के छंदों में आया है:–

राम छत्रबंध पर, राम दसकंध पर,
राम जरासिंध पर त्रै ज्यों नर सिंह हैं।

---

* अ:, रजील = मर्दानगी, मुराद है वीर रस से।

\+ तुअंग = तुंग = ऊँचा (अ) तुअंग = तव। तूँ = तुम्हारा।

@ जगर मगर = जगमग, रौशन।

\# यह छंद सूरज प्रताप में नहीं, बा॰ सु॰ सिंह ने शिकार वर्णन के शीर्षक में दिया है, नाम नहीं दिया।

रुद्र जिम मार पर, बैनतेय मार पर,
पौन दीपमार परि मार पर सिंह है।
सूर तम वृंद पर, सूर रण दंद पर,
सूर दिती नंद पर, दूजे नरसिंह है।
काल सरबंस पर, दावा बनबंस पर,
त्यों मलेछ वंश पर श्री गुबिन्द सिंह है।

१. (जैसे) परशुराम क्षत्रियों के बाँधने (या मारने) पर, राम जैसे रावण पर, बलराम जैसे जरासंध पर, जैसे तीनों नरों में सिंह है (भाव नर शिरोमणि हैं)। २. जैसे शिव जी काम पर, गरुड़ साँपों पर, हवा जैसे दीपमाला पर* और शेर जैसे शिकार पर। ३. सूर्य सारे अँधेरे पर, शूरवीर द्वन्द्व+ युद्ध पर, सूअर (= वराह अवतार) हिरण्यकश्यप पर, दूसरे (अर्थात हिरण्यकश्यप के दूसरे भाई अर्थात हरनाक्ष पर जैसे) नरसिंह था। ४. काल जैसे सभी पर, दावाग्नि बांसों के वन पर, वैसे म्लेच्छों के वंश पर श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी (हावी) हैं।

बाबा सुमेर सिंह जी ने इस छंद को हरि का समझा है, पर कवि संतोख सिंह जी ने यही छंद अपनी अनुवाद की वाल्मीकि रामायण के मंगलों में दो स्थानों (सुंदर कांड सर्ग। अंक ६ और उत्तरकांड सर्ग १२१ अंक ४९ में) दिया है, जिससे निश्चित हो गया कि यह छंद कवि जी का अपना है और हुजूरी कवियों में से किसी का नहीं। वैसे यह छंद 'सेवा जी' के दरबारी कवि 'भूषण' के छंद की एक प्रकार की समस्या पूर्ति है जो इस प्रकार है—

इन्द्र जिमि जम्भ पर, दाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर, राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
भूखन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेछ वंश पर शेर शिवराज है।

: २ :

पीछे हम कवि अमृतराय के वे छंद जो उसने श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबार प्राप्त होकर कहे थे दे आए हैं और उनकी एक प्रसिद्ध पंक्ति—'पाईए करोर तौ न जाईए

* (अ) दीपक की लौ पर।

\+ द्वन्द्व – दो पुरुषों का परस्पर युद्ध। (अ) एक से अधिक वैरियों के मुकाबले पर अकेले जुट जाना (इ) भयानक युद्ध।

लहौर ते' जो लोकोक्ति बन चुकी है–भी पूरे छंद सहित दे आए हैं। यहाँ हम आपके द्वारा रचित 'चित्र बिलास'* ग्रंथ में से तिथि संवत आदि के छंद देते हैं जिनसे उनका अपना लिखा पता उनका समय और लाहौर से उनका प्रेम प्रगट हो जाता है:–

बैठे हैं बहु मित्र मिल कवि अमृत के धाम।
तिन सभहिन मिल यौं कहयो रचहु ग्रंथ अभिराम।५।

कुण्डलियाँ– **पंडत बडे लहौर महिं अंत गुनन को नांहि।**
कछु ऐसी बिधि कीजीए ज्यों सभ मोहे जांहि।
ज्यों सभ मोहे जांहि ग्रंथ रचीऐ अति रुचिकर।
आगे भयो न होइ और भाखा मैं सरबर।
हो तुम चतुर सुजान सकल बिदया गुन मंडत।
कीजै वहै उपाय जांहि रीझैं सुन पंडत।६।

दोहरा– **तिनकी आज्ञा ते भयो कवि के चित्त हुलास।**
चतुरदास छत्री बहल बरनयो चित्र बिलास।७।
संमत सत्रह सै अधिक बीते अधिक छतीस।
कातिक सुदि नवमी सतिथ बार चारु दिन ईश।८।

सोरठा– **चौगता को राज राजत देसन देश मैं।**
हैं तिनके सिरताज अवरंग शाह महांबली।

दोहरा– **तिनके शहिर बडे बडे अपनी अपनी ठौर।**
तिन सभ मैं सभ बिध अधिक नागर नगर लहौर।१०।

लाहौर स्तुति ।कवित्त।

अति ही उतंग दुरग जाहिं देख लाजै सुरग,
राजैं राज मंदर जो मंदर समान हैं।
छज्जा छात छातरी कनक के कलस लसैं,
जगमग जगमग मानो भूर भान हैं।
मनिनि के चौकन की चमक न कही परत,
बैरागिर नागर हैं महाँ दान दान है।
सातों दीप नउखंड शुभ मंड मंडन है,
लवपुर नगर से नगर न आन है।

---

* 'चित्र बिलास' के लिखित नुस्खे में से जो नुस्खा कि श्री मान सचखण्ड वासी डॉ॰ चरण सिंह जी के संचय में है।

पुनः– कवित्त

ऊची ऊची अटा मिल घटा संग बातैं करैं,
तिन मैं पताका रंग रंग अवरोहीए।
उड न पहूचै पच्छ, जतन करत लच्छ,
लच्छ लच्छ भाव उमरा न आन टोहीए।
चौपखा अटारी बंक द्वारी औ तिवारी भारी,
देख चित्र सारी चित कौन को न मोहीए।
लवपुर नगर में बगर बजार ऐसे,
जैसे लोकालोकन के पुंन फल जोहीए।



१०१ कीर्ति मूर्ति*

दर्शन नयनों से होते हैं और मन की ध्यान शक्ति में टिकते हैं। पर कानों द्वारा सुन-सुनकर हृदय में गुणों की तस्वीर खिंचती है। श्री गुरू जी के शरीर के दर्शन आज नहीं हो रहे पर उनके गुणों की मूर्ति ऐसे हम मन के नेत्रों से देख सकते हैं। गुरू (Guru) – संसार को रचने वाला ही गुरू है। संसार का रचने वाला, उस रचना में बुद्धि का सृजन करने वाला और बुद्धि में स्वतः शिक्षा और उस बुद्धि में विशेष शिक्षा सीखने की सामर्थ्य पैदा करने वाला है। अगर परमेश्वर बुद्धि न दे अथवा बुद्धि में सीखने की सामर्थ्य ही न डाले, या डालकर कुछ विघ्न कर दे तब शिक्षा देने वाले कुछ नहीं सिखा सकते। इसलिए आदि गुरू अकाल पुरुष है जो बुद्धि प्रदान करता है।

वाहिगुरू अचंचल (टिके हुए) मनों को अनुभव द्वारा शिक्षा देता है, वाहिगुरू जिज्ञासुओं को अपने सुशिक्षित प्यारों के रास्ते शिक्षा देता है, वाहिगुरू दुनिया को अवतारों अर्थात पैगम्बरों तथा सुधार कर्त्ताओं द्वारा शिक्षा देता है। सुधारकर्त्ताओं और अवतारों की शिक्षा वहाँ तक ले जाती है कि जहाँ जाकर अन्तःकरण शुद्ध होकर वाहिगुरू के अनुभव से सीधी शिक्षा लेने का अधिकारी हो जाता है। तब तो गुरू अवस्था आदि रूप करके अकाल पुरुष में ही पूर्ण है। फिर वाहिगुरू की बख़्शी अवतारों और सुधारकर्त्ताओं को शक्ति होती है जिससे वे जीवों को शिक्षा देकर उन्नत करते हैं। पर अवतार और सुधारकर्त्ता आप भी 'गुरू' के मुहताज हुए और उन्होंने गुरू से शिक्षा पाकर उपदेश किया। किंतु 'गुरू' पद जो सतगुरू नानक को मिला, यह अवतार-शिरोमणि इसलिए है कि इनको गुरू की ज़रूरत नहीं पड़ी, अकाल पुरुष ने आप गुरू होकर सीधे अनुभव द्वारा इनको सुशिक्षित करके भेजा, इसीलिए गुरू नानक जी ने कहा–

अपरम्पर पारब्रह्म परमेसरु नानक
गुर मिलिआ सोई जीउ॥ (सोरठ म॰ १)

पुनः **'बीजउ सूझै को नहीं बहै दुलीचा पाइ॥'**

वेईं में प्रवेश, सोदर और आरती का उच्चारण बताते हैं कि वाहिगुरू आपका गुरू है। आप वाहिगुरू जी की कीमत शक्ति दर्शन और मज़हब के हिसाबों से गुज़रकर अमूल्यता में देखते थे, इसलिए आश्चर्य, अद्‌भूत, विस्माद के रंग में रंगे रहते थे और उसके (ईश्वर) गुणों की प्रशंसा को रास्ता बताते थे। इसलिए अपने ईश्वर का नाम वाहिगुरू बताते थे 'वाहि नाम अचरज को होई॥ अचरज ते पर उकति न कोई'॥ इसीलिए उन्होंने अकाल पुरुष का नाम 'वाहिगुरू' रखा। इसी तरह दसवें जामे (शरीर में) गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपने गुरू का पता आप बताया–

* यह लेख १६ पौष सं॰ ना॰ सा॰ ४४० (२३ दिसम्बर १९०८) के गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

"आदि अंत एकै अवतारा।।
सोई गुरू समझीअहु हमारा।।"

फिर गुरू पद में वाहिगुरू की अत्यंत समीपता या अभेदता पर वाहिगुरू का वाक्य आप फ़रमाते हैं–

"मैं अपना सुत तोहि निवाजा,
पंथ प्रचुर करबे कहु साजा।।"

इन तथा और वाक्यों से स्पष्ट है कि श्री गुरू साहिबान जी सीधे अकाल पुरुष के सिक्ख थे और उसके बनाये हुए संसार के गुरू थे, इसलिए अवतार शिरोमणि थे। अब उनके गुरू पद का कर्त्तव्य देखिए। गुरू वह है जो जीव को सुधारकर, साधकर, वाहिगुरू का शब्द प्रदान करके सृजनकर्त्ता के साथ मिला दे। यह कर्त्तव्य नौ गुरू साहिबान जी करते आये और दसवें गुरू जी ने भी किए। बालपन में ही गद्दी पर विराजकर उपदेश शुरू किया। भाई नंदलाल जैसे अरबी फारसी के विद्वान, अभ्यासी सूफी मत के ज्ञाता, सारे जहान के सुधारकर्त्ताओं को देखकर, अवतारों के मतों को खोजकर, पैगम्बरों की पुस्तकों की छानबीन करके शांत न हुए, ठंडक अगर पड़ी तो पूरे सतगुरू श्री कलग़ीधर जी ने डाली। वह साईं के अगम्य का दरवाज़ा इन्होंने खोला। साहिब रामकौर जैसे पंडित इस दर पर आकर शीतल हुए। भाई ननूआ, भाई कन्हैया आदि ब्रह्म ज्ञानी यहाँ आकर अंतर्ज्ञान पाकर शीतल हुए।

भाई चाँद जैसे शायर ने आँखों से देखकर महिमा की। कवि सेनापति तथा अनेक विद्वानों, कवियों और गुणियों ने आँखों से देखकर यश गाए। गुरू जी ऐसे प्रिय गुरू थे कि जानें देते और शीश भेंट करते थे। एक बार डल्ले ने अपनी फौज के प्यार की महिमा कही। गुरू ने कहा: जा कोई आदमी ला, जिसको हम अपनी नयी बंदूक का निशाना बनायें। डल्ले की सारी फौज खिसक गयी, पर गुरू जी के दो सिक्ख सुनते ही दौड़े आए। दोनों कहें कि मुझे मारो। इससे साफ प्रगट है कि 'गुरू शक्ति' ने सिक्खों को कहाँ तक खींच लिया हुआ था। यह कोई मामूली बात नहीं थी। गुरू के शब्द की भेंट ने सिक्खों को शब्द में पिरोकर गुरू के चरणों में लीन कर रखा हुआ था। श्री गुरू जी ने सिक्खों को अमृत छकाया, मंत्र दिया, गोया गुरुता का अधिकार जो वाहिगुरू की ओर से आपको प्राप्त था, पूरा प्रयुक्त किया। फिर संगत में जो वाहिगुरू का वास्तविक रूप आप बसाया था उस रूप को देखते थे, उसको बड़ा समझते थे, इसलिए पाँचों की संगत बनाकर आप अमृत छककर व्यावहारिक तौर पर संगत की विशेषता दिखा दी। आप अकेले अमृत छकाकर दिखा दिया कि मैं अकेला पूर्ण गुरू हूँ। फिर आप छककर दिखा दिया है–

एक सिक्ख दूसरा साध संग, पंच परमेश्वर का नियम परिपक्व नियम है। हाँ, पाँचों में परमेश्वर का रूप देखकर गुरू सिक्खी वाला नाता करता है। गुरू जी ने गुरू पद में नाम का छींटा दिया जो पहले गुरू जी देते रहे थे। वाणी कई प्रकार की रची पर वह शांतमयी भी रची, जैसे कि पहले गुरू साहिबान की वाणी में मिली पहचानी नहीं जा

सकती। उस वाणी में केवल एक वाहिगुरू का प्यार दृढ़ करवाया। अवतारों में भी लेश अविद्या रह जाती है, पर श्री गुरू जी गुरू थे, उन्होंने मैं मैं नहीं की, डंके की चोट लोगों को सच्चा साधन बताया।

'साच कहउं सुन लेहु सभै जिन प्रेम कीओ
तिनही प्रभ पाइओ।'

अपनी विरक्ति कहकर दिखा दी–

'जो हम को परमेसवर उचर है। ते नर नरक कुंड मैं पर है॥'
'मैं हूँ परम पुरख को दासा॥ देखन आइओ जगत तमासा॥'

पुनः 'इनहीं की कृपा से सजे हम हैं'। ऐसे वाक्य उनके अहम् विरक्ति (त्याग) के सूचक हैं।

इस प्रकार पहला दर्शन है उनका 'गुरू'। पूर्ण गुरू! गुरू मुरशिद और उस्ताद के केवल अर्थों में नहीं, पर पैगम्बरों अवतारों से शिरोमणि पूर्ण गुरुत्व की पदवी के भाव वाला पद 'गुरू'। याद रहे कि जितने अवतार और पैगम्बर आये वे गुरू ज्योति के अधीन आए। अंत कलियुग में ज्योति अवतरित हुई उसका नाम गुरू नानक हुआ, जो दस शरीरों (रूपों में) में प्रकाश देती रही। (विशेष के लिए देखो जपुजी के टीके की भूमिका कृत शंकर दयाल जी फैज़ाबादी।)

अवतार (Prophet) दूसरा दर्शन सतगुरू के अवतार होने का है। अगर तो यह कहा जाये कि परमेश्वर मनुष्य योनि में पड़कर गुरू गोबिन्द सिंह बन गया, तब उनके वाक्य के विरुद्ध है पर:– "गुरू नानक देव गोबिन्द रूप"

के वाक्य अनुसार गुरू साहिब अवतार थे। भाई गुरदास दूसरा अमृत छककर सिंह सज गया, बड़ा कवि और पंडित था, उसने गुरू गोबिन्द सिंह के सम्बन्ध में कहा है–

"वह प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप गुर गोबिन्द (सिंह) सूरा॥"

अवतार का अर्थ यह है कि अगर वाहिगुरू का प्यारा सचखंड से मातृलोक में अवतरित हो। ऐसे आने वाले का प्रयोजन संसार का कल्याण होता है। या खास विपदाएँ जगत में होती हैं, या खास धर्म की ग्लानि पैदा हो जाती है, उसके दूर करने के लिए कोई पूर्ण पुरुष प्रगट होता है, उसका प्रयोजन उस समय के दुख को दूर करना खासतौर पर होता है। यह ज्योति जो गुरू कहलायी अवतारों से अधिक विशेषता यह रखती थी कि यह संसार का परम अँधेरा दूर करने के लिए आयी थी। केवल उस समय की खास मुश्किल दूर करना ही प्रयोजन नहीं था, पर मनुष्य मात्र को सदा के लिए विशेष ज्ञान के गहरे भेद बताने थे। इसलिए इस विशेष कार्य के कारण गुरू थे, पर जो साधारण अवतार या रसूल का धर्म है कि समय की खास कठिनाई को दूर करो, अधर्म का विध्वंस करो, यह उनके अवतार के अधिकार का काम था। इस समय विदेशी ज़ालिमों ने राज्य पाकर प्रजा पर अत्याचार मचाया हुआ था, और दुखी प्रजा उसासें भर रही थी। धर्म के मुखिया अविद्या, लालच और ज़ोर जबर्दस्ती से ज़ालिम हो रहे थे। इनसे प्रजा की रक्षा करवाने के लिए अवतार की

आवश्यकता थी। इसलिए श्री गुरू जी ने अवतार धारण किया और इसी ख़्याल पर उनको आमतौर पर अवतार कहा जाता है। श्री गुरू जी ने अपने समय में वह सामान पैदा किया कि जिससे समय का क्लेश पूरी तरह निवृत हो। ज़ुल्म, पाप, अँधेर का नाश किया। इस कार्य के करने में श्री गुरू जी ने दो तरह के कार्य करना था, इसलिए उनके दो और पद पैदा हुए, एक 'सुधारकर्त्ता', दूसरे 'योद्धा'।

सुधाकरकर्त्ता (Reformer)–जैसे पूर्ण गुरू थे, वैसे ही श्री गुरू जी पूर्ण सुधारकर्त्ता थे। सुधारकर्त्ता उसको कहते हैं, जो अपने समय अपने इर्द गिर्द के लोगों में से प्रचलित कुरीतियाँ दूर करे और सुरीतियों को फैला दे क्योंकि श्री गुरू जी गुरू थे, अवतार थे, ऐसा होने के कारण एकदम प्रेमदाता थे। इसलिए आप ऐसा तरीका अपनाकर सुधारकर्त्ता बने कि ज़ोर ज़बर्दस्ती से किसी को नहीं सुधारा। आपने प्रेम उपदेश से जगत के अँधेरे को साफ किया है। जैसेकि, बुत परस्ती (मूर्तिपूजा) के हटाने वाले जबर्दस्ती बुत तोड़ते और धर्म क्षीण करते रहे, गुरू जी मूर्तिपूजा अच्छी नहीं थे कहते, परन्तु आपने हाथों से पत्थरों की मूर्तियाँ कभी नहीं तोड़ी; अपनी उपदेश शक्ति द्वारा आपने मूर्तिपूजकों के दिलों से मूर्तियाँ निकाल दी और उन्होंने फिर पत्थरों की मूर्तियाँ अपने आप ही छोड़ दीं। जिन्होंने मूर्तियाँ हथौड़े से तोड़ीं वे कामयाब न हुए, क्योंकि दिलों में बुतखाने (मूर्तियों का घर) रखने वालों ने फिर बुत बना लिए और बुतखाने भी बना लिए, पर गुरू जी के दिल मंदिरों से तोड़े बुत और उनके स्थान पर बसाये शब्द के रंग ऐसे जमे कि फिर वे दिल निरंकार के मंदिर बने। इस प्रकार आप बुतशिकन (मूर्तिपूजा का खंडन करने वाला) थे वे दिलों से अनीतियाँ, कुरीतियाँ निकालते थे, पर प्रेम, अपनी वाक्य सत्ता (शक्ति) और आत्मा की शक्ति से। उनके उपदेश में ऐसी शक्ति थी कि जीवन को पलटा देती थी, उनके दर्शन में वो कशिश थी कि जीव उनका प्रेमी होकर उनके वाक्यों से बाहर चलने का अप्रेम नहीं कर सकता था। सिक्खों में इतना प्रेम था कि उनमें शक्ति नहीं थी कि कहना न मानते। यह उनके प्रेम और उपदेश का प्रभाव था। इसीलिए उनका सुधार गहरे प्रभाव वाला और पक्की तासीर वाला होता था। अपने समय में सुधरे हुए लोगों की गिनती गुरू साहिब ने आधे करोड़ से अधिक कर दी थी। और आम लोग जो तासीर पा गए, अनेक थे। आज तक उनके सुधार का आम प्रभाव पंजाब में है। चौंके की छूत, जाति न होनी, जातियों के आपसी मेल जोल, विधवा के विवाह की आजादी, हिन्दू मुसलमान का एक ही परमेश्वर का नाम लेना, दया दान, साफ दिली पंजाब में गुरू साहिबों की मेहनत का फल हैं। अब तक विलायत हो आए बंगाली का बंगाली निषेध कर देते हैं, पर पंज़ाबी कुछ विचार नहीं करते। औरतों की अधोगति, विधवा के साथ अत्याचार, पंजाब में वे नहीं है, जो बंगाल में है। सती की प्रथा रोकना, बेटी मारना बंद करना, बेटी बेचना मना करना, ये सभी ख्याल पंजाब में गुरू साहिब ने फैलाए। इस प्रकार धार्मिक, भाईचारा और विद्या सम्बन्धी सुधार गुरू जी ने ऐसे ऊँचे किए कि जिसकी मिसाल नहीं मिल सकती।

योद्धा (General) – गुरू समुदाय पहले उपदेश द्वारा लोगों को पाप से निकालकर वाहिगुरू के साथ मिलाते रहे, पर दूसरा अधिकार अवतार होने की हैसियत में उस खास

समय के संकट निवृत करने का था, जिसके दो साधन थे, सुधार और जंग, वह भी गुरू जी करते रहे। पहले ज़ालिम मज़लूम दोनों को समझाया सिखाया, पर जब देखा कि–

'दुहूँ पंथ मैं कपट विद्या चलानी'

तब ज़रूर हुआ कि–

'बहुर तीसरा पंथ कीजै प्रधानी'।।

जो लोग सुधर चुके थे, उनको प्रधान बनाकर इंसाफ के पद पर लाने की आवश्यकता थी। इस कार्य के लिए पहले तो दोनों ओर उपदेश किए, पर ज़ब लालच ग्रस्तों को जुल्म से टलते नहीं देखा तब और रास्ता पकड़ा। हाँ, जब साफ दिख रहा था कि प्रजा की सदियों की क्षमा के हाकिमों में जुल्म को घटाया नहीं, तब केवल उपदेश के अतिरिक्त इस बात की भी ज़रूरत थी कि समस्या करवाने वाला मज़लूम की जगह अपनी जान पर खेल जाने तक की कुर्बानी के लिए तैयार हो। इसलिए सतगुरू को कुर्बानी करनी और सिखानी पड़ी। पहली तरह शांत रहकर कुर्बान होने वाला मंत्र प्रयुक्त किया जा चुका था,* पर वह लाभदायक नहीं हुआ था, और अपने राजपाट के लिए लड़ना कुर्बानी नहीं थी, इसलिए दुखी दीन की रक्षा करनी और उस परहित में जान दे देनी, इस कुर्बानी की ज़रूरत आन पड़ी थी। यही सतगुरू जी ने की और सिखायी। पर रक्षा में मुकाबले की ज़रूरत होती है, इसलिए सीस देने से पहले सामना करने का ढंग बताना ज़रूरी था, वह ढंग रणविधा या युद्ध का ढंग था, इसमें एक भारी योद्धे की जरुरत थी। वह योद्धा गुरू जी आप बने। वह जिसको आप गुरू देख आए हो, अवतार देख आए हो, सुधारकर्त्ता और उपदेशक देख आए हो, अब योद्धा के रूप में देखो। आपने तलवार धारण की, सिक्खों की काया पलटी, उनमें वीर रस भरा। युद्ध विद्या की वह प्रवीणता गुरू जी में थी कि सदियों की पैरों तलें लताड़ी जाती निराश्रित प्रजा आँख झपकने में वीर बाँकुरी और योद्धा कर दी। एक अंग्रेज जो सिक्खों का इतिहास ज़रा मज़ाक से लिखता है गुरू जी की महिमा करने से रूक नहीं सकता। वह लिखता है कि गुरू गोबिन्द सिंह जी की जरनैली (सेनापति के रूप में) या युद्ध विद्या में वह लियाकत थी कि आपने अपने दिमाग़ में से झटपट तैयार बर तैयार खालसा ऐसे उत्पन्न कर दिया कि जैसे जूपिटर देवता ने अपने सिर में से (नौजवान) देवी मिनर्वा पैदा की थी। भाव यह कि वीर रस की रूह फूँक कर एकदम एक योद्धा कौम बना ली। यह मंत्र कोई और नहीं था जानता। गुरू जी की युद्ध की समझ, योद्धा होने की प्रवीणता, कहीं छिपी हुई नहीं। जैसे गुरू होकर आत्माओं को वाहिगुरू में मिलाया, जैसे अवतार होकर संकट दूर किए, जैसे सुधारकर्त्ता होकर सदाचार और सुरीति फैलायी उसी तरह योद्धा होकर एक ऐसी कौम पैदा की कि जिसकी वीरता की कीर्ति इस समय तक सारे संसार में फैल रही है। गुरू जी का एक फकीरी की हालत में मुगलिया सल्तनत के मुकाबले की कौम और सामान पैदा करना और उनके राज्य में रहकर करना और उनको पराजय देकर उनके राज्य में निर्भय बसना बताता है कि ऐसा योद्धा संसार ने कभी पैदा

* पाँचवें नौवें सतगुरूओं के साके।

नहीं किया। आप जानते हो कि आर्य समाजी सिक्खों के प्रति मन में खिन्नता रखते हैं, पर एक दौलत राम आर्या ने गुरू जी का जीवन लिखा है, उसने रामचन्द्र, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा सबसे गुरू जी को बड़ा लिखा है, बल्कि यहाँ तक कहा है कि हिन्दू जाति इसलिए बुज़ुर्ग है कि उसमें गुरू गोबिन्द सिंह जी हुए, जिनकी मिसाल कोई कौम पेश नहीं कर सकती।

अब योद्धा होने में कई कहते हैं कि गुरू जी आप सफल क्यों नहीं हुए? एक अंग्रेज़ इतिहासकार* लिखता है कि यह एतराज गलत है। गुरू जी ने जो योजना सोची, जिसकी नींव लगायी, वह गलती से रहित थी, वह ठीक तरह से पूर्ण हुई और अपने ठीक समय पर फल लायी।

उनका मतलब शासन नहीं था, वे दीनों की रक्षा करना चाहते थे। इसलिए दीनों के चारों ओर अपनी प्यारी कौम की अटूट बाड़ देनी चाहते थे, वह दी गयी और अत्याचारी राज्य का पतन हो गया, और उनके कुर्बानी वाले वीरों के हाथों दुखी प्रजा को स्वतंत्रता नसीब हुई।

योद्धा होने का काम गुरू जी के लिए बहुत नाज़ुक था। आप गुरू थे, अवतार थे, सुधारकर्त्ता थे, आप की ओर से प्रेम के विरुद्ध, धर्म के विरुद्ध और सदाचार के विरुद्ध कोई काम होना चाहे सेनानायकत्व की हैसियत को बढ़ा देता, पर गुरू अवतार और सुधारक होने की पदवी को नीचा कर देता, इसलिए आपकी वीरता की नदी प्रेम, धर्म और सदाचार की सीमाओं के अंदर अंदर बहती रही। केवल लड़ना ही विशेषता नहीं बताया, पर दीनों की रक्षा में युद्ध करके मर जाना वीरता बतायी। युद्ध को युद्ध की ख़ातिर करना नहीं बताया पर जब और साधनों द्वारा कुछ न बने तब तलवार पकड़नी हलाल बतायी+। दीन, दुखियों, स्त्रियों, बच्चों, शरणगतों पर, चाहे शत्रु हों तलवार उठानी हराम की। पराजित शत्रु को कष्ट देना मना किया। कभी जर्बदस्ती नहीं की, कत्लेआम नहीं किया, कभी दुख नहीं दिया, पराजित शत्रु के पीछे पड़ने से सिक्खों को रोकते रहे। स्त्री, बच्चे वैरियों के अगर हाथ आए तो इज्ज़त से, प्यार से बचाये।

इस नाज़ुक काम को जिस खूबी के साथ निबाया है, कोई धार्मिक मुखिया कभी नहीं निभा सका। प्रेम, धर्म, सदाचार अपना और सिक्खों का कायम रहे और फिर तलवार अपने शत्रु के सामने मुकाबला करे, यह गुरू गोबिन्द सिंह जी की ही ताकत का काम था।

नीतिवेत्ता (Statesman) अगला दर्शन गुरू जी का हम नीतिवेत्ता की हैसियत में करते हैं। जो तलवार पकड़ता है उसको नीति की आवश्यकता पड़ती है। अगर गुरू जी नीतिवेत्ता न होते तो तलवार पकड़कर कामयाब न होते। नीति की कमी तलवार को वैरी के हाथ देकर अपना ही गला कटवा देती है, पर वे पूर्ण लोग जैसे और बातों में पूर्ण थे इसमें भी पूर्ण थे। पहली नीति तो यह थी कि युद्ध का काम प्रेम, धर्म, सदाचार के बीच

---

* कनिंघम।

+ चूँ कार अज हमह हीलते दर गुज़श्त।।
हलाल असत बुरदन शमशेर दसत।।

रखा, यह सबसे कठिन नीति थी। सिक्खों का पहर रात रहते उठना, भजन करना, उपकार करना, वैरागी और विवेकी रहना, आवश्यकता हो तो दीनों की ख़ातिर अपने भुजबल से रक्षा करनी, रक्षा में जंग की सारी अक्ल का इस्तेमाल करना, आ पड़े तो सम्मुख होकर शीश देना, और सीस देते समय रंचमात्र दुख न महसूस करना, यह धर्मनीति थी जो सतगुरू ने सिखायी। दूसरे शत्रुओं के साथ रक्षा का व्यवहार सिखाया, दाँव पेंच समझने बताए। आप खबर वैरी की पूरी रखते थे, नदी पहाड़ों का लाभ पूरा उठाते थे, आनन्दपुर की क़िलाबंदी ऐसी थी कि दुश्मन का यकबयक ग़ालिब आ जाना कठिन काम था। अपनी फौज को खास किस्म की अपनी बनायी कवायद सिखायी, जिस कारण उनका भुजबल बहुत ही लाभदायक हो गया। उस कबायद के वचन "हरण, छहि, कच्छ, अडंग" आदि आज तक सिक्खों को याद हैं। गुरू जी नीति, चतुराई और पूर्ण प्रवीणता को समझते थे। आजकल के समय की तरह कपट और फरेब का नाम नीति नहीं रखते थे, इसलिए उनके युद्ध सम्मुख वीरता और हठ के भरे हुए और सख्त ज़ोरदार होते थे। उनकी नीति सच पर थी और सच्ची अक्लमंदी पर थी। ऊँची बुद्धि, दूर की समझ, दिमाग का कमाल उनकी नीति थी। झूठ उनकी नीति में कभी नहीं था।

राजा (Ruler) नीति और युद्ध के प्रयोग वाले को राज्य करना ज़रूरी होता है। गुरू जी ने किसी इलाके पर कब्ज़ा नहीं किया, पर माखोवाल का इलाका जितना पिता जी की ज़रखरीद था, उसका प्रबन्ध न्याय के साथ करते थे। गुरू जी अपनी छोटी सी आनन्दपुरी और इर्दगिर्द की प्रजा का न्याय और पालन ऐसा करते थे कि कोई राजा नहीं कर सकता। यही कारण था कि दूसरे राजाओं की प्रजा इनके इलाके में आकर बसती थी। इसीलिए दूर दूर के दुखी, यहाँ पनाह लेते और सुख पाते। बड़े बड़े कवि पंडित सूफी फकीर सताये हुए यहाँ आकर ठहरे और रहे। आनंदपुर के चारों ओर ऐसा अच्छा प्रबन्ध होता था कि सोना उछालते ले जाओ कोई देख नहीं सकता था। खालसर के मेले में गुरू जी का अरोग्यता का प्रबन्ध ऐसा अच्छा था कि लाखों की भीड़ के होने पर भी बीमारी नहीं पड़ी, दंड भी सख़्त नहीं था, सफाई का इंतज़ाम पूरा था। जो आदमी इन सर्व सुखदायी कायदों को तोड़ता था, उसको वहाँ के जत्थेदार के आगे पेश होकर हल्का सा दंड मिलता था। इस प्रबन्ध ने लोगों को सुखी रखा और प्रेम की शिक्षा ने सुखी कर दिया। फिर एक बात आपकी खुलदिली की यह है कि आनंदपुर बसते प्रत्येक प्राणी को अपने धर्म की पूरी-पूरी आज़ादी दे रखी थी।

पंडित (Scholar)–राजा के लिए यह ज़रूरी होता है कि विद्या की क़द्र करे। विद्या की कद्र वही ठीक कर सकता है जो आप पंडित हो। गुरू जी आत्म तत्ववेत्ता होने के कारण स्वत: सिद्ध ब्रह्म ज्ञानी थे, और सर्वविद्या के मालिक थे। ब्रह्मविद्या तो गुरू अवतार में स्वाभाविक बात थी, सांसारिक विद्या में भी गुरू जी प्रवीण थे। फारसी, संस्कृत, अरबी आदि के पक्के ज्ञाता थे। इसी विद्या की क़द्रदानी के कारण इनके दरबार में बड़े-बड़े कवि और पंड़ित आ इकट्ठे हुए। कई तो तुर्कों से दुखी होकर पनाह लेने जा बैठे और कई वैसे

ही क़द्रदान जानकर पहुँचे। विद्या की चर्चा बहुत हो गयीं। बड़ी-बड़ी संस्कृत और अरबी की पुस्तकें देशी बोली में अनुवादित हो गयी, पुस्तकालय पुस्तकों से भर गए। गुरू जी हर रोज़ खास वक्त विद्वानों की सभा को दिया करते थे। विद्या के भण्डार जो संस्कृत में छिपे पड़े थे हिन्दी बोली में अनुवाद करवाकर आम लोगों के लाभ के लिए तैयार करवा दिए और लाखों रुपये इस काम पर खर्च कर दिए।

पंडित होने के अतिरिक्त गुरू जी–

कवि (Poet)–भी पूरे थे, आपकी कविता जो शांत रस की है, वह तो आदि श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की वाणी के तुल्य है। जो वीर रस की है वह किसी हिन्दी कवीश्वर से सिर निकालने से नहीं अटकती (बेहतर होने में)। वाणी पढ़ते पढ़ते जोश आ जाता और हाथ कब्जों पर (हत्थों पर) जा ठहरते हैं। ऐसी कड़ाकेदार रचना है कि मुर्दे में बल भर देती है। आप की रचना अलंकारों, रूपकों, व्यंजनों, ध्वनियों, लक्षणों के साथ ऐसी पूरित है कि अगर केवल रचना ही ली जाये तब भी अपने समय के बहुत बड़े महापुरुष हुए हैं। आप की रचना में लावण्यता, रस, मिठास, चटपटापन भरे पड़े हैं। कविता में भी गुरू जी के दर्शन सबसे शिरोमणि हैं। पदों पर ख़ास हुक्म है। बनाने में क्रम है। व्याख्या में खास ज़ोर और सफायी है। अगर आपका मन रुलाने पर आया है, तब करुणा रस से नेत्र भर ही लाते हैं। अगर वीरता की ओर कलम घूमी है, तब तलवार खींची गयी। अगर शांति की ओर आये हैं तब समाधि स्थित कर दिया है। अगर रूपक बाँधे हैं तब कालिदास भुला दिया है। अगर नीति कही है तब वास्तविक। अगर रति भाव के कटाक्ष कहे हैं तो प्यार की नहरें बहा दी हैं। अगर विरह कहा है तब विलाप की ऊँची ध्वनि निकलवा दी है। कैसा आश्चर्य है कि जो महापुरुष आठों पहर शब्द में लीन हो रहा है, जो संसार के संकट दूर कर रहा है, जो सदाचार सिखा रहा है, जो जबर्दस्त राजाओं और मुगल सल्तनत का मुकाबला कर रहा है, जो नीति के प्रबन्ध में मग्न है, जो पंडितों का क़द्रदान गुणियों की सभा को शोभा दे रहा है, वह आप कविता करता है, कविता के लिए समय निकालता है, और हर एक ही कविता संपूर्ण करता है तथा सैंकड़े नए छंदों का अपने को कर्त्ता साबित करता है।

कला कौशल (Artist)–गुरू जी के दरबार में चित्रकारी की बहुत इज्जत थी और चित्रकारी के शौकीन थे। रसों की मूर्तियाँ, स्थायी, संचारी भावों के दर्शन, समय, भाव, अनुभावों के नमूने खास बहस के साथ लिखे जाते*।

इसके अतिरिक्त वनस्पति विद्या की खास जानकारी, घोड़ों की पहचान, परख और अनेक हुनरों में ख़ास निपुणता थी। क़िले बनाने की महिमा, खंडहरों को देखने पर ही समझ पड़ जाती है। तोपें गुरू जी की ढ़ली हुई का नमूना, जो दो छोटी सी लाहौर अजायबघर में पड़ी हैं, उनसे पता लगता है। बड़ी तोपें, रहकले (छोटी तोप) सारा सामान आनंदपुर की लूट में सरहिंद और दिल्ली गया था। गुरू जी उस समय की बंदूकें तलवारें और तीर कमान आप भी बनवाते थे। राग विद्या में गुरू अर्जन देव जी की तरह आप प्रवीण

* आनंदपुर की लूट में लूटी मूर्तियाँ पहाड़ी राजाओं के घरों को गयीं और उनके खज़ाने सुन्दर बने।

थे। आदि सतगुरू जी ने रबाब बनाया था, पाँचवें सतगुरू ने सरंदा बनाया था। जो साज़ आजकल ताऊस कहलाता है; इसकी पहली बनावट जिसकी यह नकल है, दशम गुरू जी के समय से शुरू हुई प्रतीत होती है। आश्चर्य नहीं कि आप की योजना कुछ बीच में हो। सतगुरू जी प्रवीण बीनकार* थे और अपने पवित्र गले से ऐसा सुरीला गाते थे कि चलते दरिया ठहरने की कहावत सार्थक होती थी।

गृहस्थी (House-Holder)–इनसे अलग हम श्री गुरू जी को बनवासी साधु या बड़े सेनानायक या एक राजा मात्र नहीं पा रहे, बल्कि उनको एक गृहस्थी भी देख रहे हैं। आप पिता जी के आज्ञाकारी सुपुत्र थे। माता का सारी उम्र सम्मान रखा। जैसे लायक पुत्र थे वैसे ही लायक पति और अपनी औलाद के पिता थे। स्त्री के साथ व्यवहार प्रेम और कृपालुता का था, सत्संग और परमार्थ की सांझ उनके साथ पूरी थी और वे इनके चरण कमलों के भ्रमर थे। औलाद नेक आज्ञाकारी और पिता के जौहरों से चमत्कृत थी। आप का व्यवहार प्रेम, कृपा और शिक्षा देने वाला था। बच्चों का धर्म सदाचार ऐसा मज़बूत बनाया कि सात आठ और नौ दस बरस के बच्चों तक ने मौत चखी, पर धर्म नहीं दिया। पंद्रह और अठारह बरस के बच्चों ने टुकड़े टुकड़े कट कर जानें न्योछावर कीं, पर पीठ नहीं दी। गृहस्थ आश्रम के पूर्ण निर्वाह में गुरू जी ने गुरुता, अवतारता, सुधार कर्त्तव्यता, योद्धापन, नीति विद्वता, पंडिताई आदि को दाग़ नहीं आने दिया। परिवार में प्रेम और भक्ति रखी। जब वियोग हुआ, माता चल बसी, औलाद शहीद हो गयी, तब पूर्ण धैर्य और रज़ा मानने की अलौकिक दशा दिखायी। जब किसी ने कहा 'आप के लायक पुत्र मर गए', तब बोले "मेरे पुत्र मेरे सिक्ख हैं, जो चार देकर मैंने लाखों की गिनती में लिए हैं, ये सदा जीवित हैं"। गृहस्थी होना, पर गृहस्थ के बाणों की चुभन न खानी, यह 'परवान गृहस्थ उदास' सतगुरू ने जी कर दिखाया।

देश हितैषी (Patriot)–गुरू जी का देश ब्रह्माण्ड है, पर जब इस धरती पर आए तो भूमण्डल का सुधार प्रयोजन था। उनके लिए सारी जातियों का प्रेम और सारे देशों का हित था। पर तब हिन्द अत्यधिक कष्टातुर और परतंत्र था इसका भला विशेष आवश्यकता रखता था आपके हित की। गुरू जी जिस देश में हुए, उसके बड़े हितैषी हुए। किसी देश का अहित उनका मन्तव्य नहीं था। हर देश स्वदेश था, पर अपने दुखी देश का हित बहुत प्यारा था। दुख पीड़ित प्रजा को अपने आप पर भरोसा करना और अपने आचरण से बली होना, और स्वतंत्रता की आत्मा में जीना गुरू जी ने सिखलाया; देश के लिए उपकार करना और खेद झेलने सिखाये। विद्या के हित से देश सेवा सिखायी और करके दिखायी। वास्तव में गुरू जी से पहले 'देशहित' के ख्याल को ही लोग पूरी तरह नही समझते थे।

धनुषधारी (Archer)–गुरू जी के सेनानायक होने के दर्शन में, जहाँ खालसा जैसी योद्धा कौम का बनाना, एक गिरी हुई, अपने को नकारा जानने वाली कौम में स्वसम्मान, स्वविश्वास और बुज़ुर्गी की प्रकृति, कुर्बानी की रूह फूँककर भर देना; तोप, बंदूक, तलवार

* बीन–एक फूँक का बाजा।

के कारखाने खोलने, घुड़शालाएँ बनानी, क़िलेबंदियाँ करनी, प्यादे, सवार फौजों का बंधान, आप बंदूक तलवार के कर्त्तव्य में प्रवीण होना का, कथन हो चुका है, वहाँ तीरन्दाज़ी भी एक दर्शन था आपका। इसके अलग से वर्णन की क्या आवश्यकत थी? पर क्योंकि इस धनुष विद्या की समाप्ति गुरू साहिब पर हो गयी, इसलिए खास दर्शन की ज़रूरत है। तीरों की कारीगरी ने अर्जुन के नाम को कायम रखा है, पर गुरू जी की तीरन्दाज़ी उससे भी बढ़िया थी। आनंदपुर के क़िले पर बैठकर घेरा डालने वाले मुसलमान सेनानायक के पलंग में तीर मारना गुरू जी का ही भुजबल कर सकता था। गुरू जी के तीर की मुखी के सोने की पहचान कर तुर्क सेनानायक ने दंग होकर कहा कि इतनी दूर से तीर मार सकना करामात है। यह बहस अभी हो ही रही थी कि दूसरे पाये में एक और तीर लगा, जिसके साथ एक पत्र बंधा हुआ था। पत्र खोलकर पढ़ा तो लिखा हुआ था 'यह करामात नहीं, पर कमाल है', जिसने उनको और हैरान कर दिया। गुरू जी के तीर बहुत तीखे और निशाने पर बैठते थे। नादौन युद्ध में बंदूक से वैरी दल का एक सेनापति बींधकर आपने कमान पकड़ी। आप लिखते हैं कि चार तीर मैंने दायें हाथ से चलाये और तीन बायें हाथ से। पता नहीं किस किस को लगे, पर शत्रु दल में भगदड़ मच गयी। आनंदपुर के घेरे में इतना समय गुज़र जाना यह आपके तीरों की बरकत थी। चालीस प्यारों के साथ चमकौर की कच्ची गढ़ी में बैठकर हज़ारों फौजों के साथ मुकाबला करना और सारा दिन गढ़ी जीतने न देनी, इन तीरों की बरकत थी। मुक्तसर पर चालीस मुक्तों के द्वारा दलों के मुँह मोड़ देने, श्री गुरू जी के छोटे टीले पर बैठकर तीरों की बौछार का प्रताप था। भंगाणी का वह वृक्ष कि जिसके नीचे वीरासन होकर तीर बरसाये थे, एक यादगार खड़ी है। आप का कमाल धनुष विद्या में असीम था। सवा डेढ़ मन की मामूली कमान खींचनी कुछ बात नहीं समझते थे। इस विद्या की समाप्ति आप के बाद ऐसी हुई कि फिर कोई नामी तीरन्दाज़ पैदा नहीं हुआ जिसको धनुषधारी कहा जा सके। इसलिए सतगुरू को अंतिम धनुषधारी कहना कुछ गलत नहीं है*।

राष्ट्र निर्माता (Nation Builder)–गुरू जी इस फन में भी कमाल कर गये हैं, आपने टूटी फूटी मर मिटी प्रजा में राष्ट्रीयता की नींव रखी, और राष्ट्रीयता का भाव भरकर लोगों को राष्ट्र बनना सिखा दिया। सांझा प्यार, सांझा भुजबल, सांझे घाटे के आगे सांझा प्रयत्न, सांझे लाभ पर अपने अधिकार और दूसरे के फर्ज़ का सम्मान करना कूट-कूट कर भर दिया। पंचायती प्यार और प्रबन्ध, पंचायती राज्य और चलन, प्रबन्ध सिखा दिया, और अपने स्वर्गवास से पहले अपनी रची क़ौमियत की नींव बहुत ही पक्की कर दी। धार्मिक और पंथ का, व्यावहारिक और राजसी प्रबन्ध सब गुरमत अर्थात पंचायत के प्रबन्ध में करके, जत्थेबंदी की उत्तम नींव बाँध दी, और लोगों में सांझे कामों के लिए सांझा रस पैदा करके सांझे बल बुद्धि द्वारा पूर्ण करना सिखाकर आगे के लिए अपने अख्तियार सांझे

* आपके चलाए हुए तीर आनंदपुर के वृक्षों, दीवारों और दूर दूर स्थानों से मिलते हैं, हर तीर से कुछ सोना उतरता है।

भाईचारे अर्थात पंथ के संगठन में दे दिए और ग़लती से बचने के लिए गुरता की गद्दी श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी को देकर पंथ को श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी के अधीन गुरू कर दिया। उन्होंने जो जिस बात की नींव बाँधी, अंत समय तक बहुत उत्तम निभी, चाहे अब हम लोभ लालचों से आप उसको बिगाड़ें। जैसे कोई वाहिगुरू के बख्शे शरीर को आत्मघात से मार दे वैसे कौम आप चाहे स्वघात कर ले पर उनके क़ौम निर्माता होने में कोई कसर नहीं, कोई संशय नहीं।

गुरू जी के अनन्त स्वरूप का दर्शन बहुत बड़ा है, यहाँ अब जगह कम है इसलिए हम अब उनके स्वरूप का एक और नज़ारा लेकर समाप्त करके आपसे पूछते हैं कि अगर तो आपको आपकी कीर्ति मूर्ति का दर्शन हो गया है तब वाह वाह, नहीं तो दिल लगाकर इस लेख को एक बार फिर पढ़ लेना।

गुरमुख–गुरमुख का अर्थ क्या है? जो अपने सतगुरू के साथ सन्मुख रहे। श्री गुरू जी जब संसार में आए थे, वाहिगुरू के हुक्म से आये थे। पर उनका प्रेम वाहिगुरू के साथ ऐसा था कि उनकी सुरत प्रभु चरणों में प्रोत (गड़ी) रही, जैसा आप कहते हैं–

"चुभी रही स्त्रुत प्रभ चरनन महि।"

गुरमुख की निशानी यह है कि–

'जैसे जलमहि कमलु निरालमु मुरगायी नैसाणे॥
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥'

इसलिए भाई गुरदास जी ने सतगुरू जी को कई बार गुरमुख कहा है। अकाल पुरुष गुरू है, पर अपने निर्गुण स्वरूप में। पर गुरू नानक देव गुरू है सगुण स्वरूप में। श्री गुरू जी सगुण स्वरूप होकर जल महिं कमल निरालम रहते हैं। देखो श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के लिए कितने बोझ थे। संसार को वाहिगुरू के साथ मिलाना, संसार का उस समय का संकट हरण करना, प्रजा के आम इख़लाक को ठीक करना, वीर रस सिखाना; फौजों किलों के प्रबन्ध करने, हजारों संगतों को रोज मिलना और सबको आत्मिक मंडल में संतुष्ट करना, शहर का प्रबन्ध करना, दुश्मनों और पड़ोसियों के साथ निभाना, पुस्तक लिखनी और टीके करवाने, उपकार के चश्मे ज़ारी करने, गृहस्थ का प्रबन्ध करना और फिर अटंक रहना। जैसे अलिप्त आना, वैसे अलिप्त रहना और वैस अलिप्त चले जाना। उनकी चालीस बयालीस बरस की छोटी उम्र के किए कामों का आज तक संसार पर ज़ारी रहना, यह उनके गुरमुख जीवन का नज़ारा है।

'गुरमुख कलि विचि परगट होआ।'



१०२ उच्च जीवन*

कितने प्यारे भरे स्वरूप को हृदय की आँखों के आगे लाने वाला यह शब्द 'कलग़ियों वाला' हो रहा है। नाम लिया नहीं कि अंदर की प्यार, सम्मान और चाह की सारी तारें उत्साह खाकर हिलीं नहीं। इन छ: अक्षरों के बाद उस 'अ+क्षर' (नाश न होने वाली सच्चाई) की याद छिपी खड़ी है, जिसने कभी शरीर की कला में प्रकाश पाकर शरीरधारियों को बताया था कि अपना रुख़ उस ओर करो, कि जिधर देखने पर सारे अनुमान मिट जायें। जिसने संसार से रूठ जाने की सदियों की भूल दूर करके यह दिखाया था कि जगत से रूठ न जाओ क्योंकि रूठ जाने से आप संसार के बंधन से छूट नहीं सकते, पर इसमें से छुटकारा पाने के लिए आंतरिक दृष्टि पिछली ओर मारो और देखो कि आप स्वयं क्या हो, और क्या बन रहे हो। पानी के सरोवर में नज़र मारो, चाँद की परछाईं पानी में पड़ रही है, समूचा चाँद पानी में है, चाँद का सारा प्रकाश पानी में है। जिसने कभी ऊपर नहीं देखा, सदा ताल की ओर ही देखा है, उसको चाँद हमेशा हिलता, सदा काँपता और ऊपर नीचे होता तिलमिलाता दिखेगा, परन्तु अगर कोई उसकी गर्दन पकड़कर ऊपर की ओर करके थरथराते चाँद का पीछा दिखा दे तो आकाश में प्रकाश पुंज चाँद उसको दिखाई देगा, और सारी घबराहट, जो तालाब (सरोवर) के चाँद में थी, मिटा देगा।

उस कलग़ियों वाले ने शरीर सरोवर में थर-थर काँप रही और हिंलती रूह–दुख और उसाँसें भरती रूह–के प्रकाश को अहम् करके बताया और देखने वाले की नज़र लौटाकर पिछली ओर दृष्टि डलवाकर स्थिर रूह दिखाकर अभय कर दिया, दुख और क्लेश देखते ही विलीन हो गया। वह जो आप निर्भय था, जो आप संशय से पार था, भयग्रसित और संशय में फँसे हुओं को निर्भय और नि:शंक करने आया था, वह कर दिखाया।

इसे गर्दन से पकड़कर अस्थिर जीवन से स्थिर जीवन के जहाज़ चढ़ाने के सारे भाव का नाम उस मालिक ने 'प्रेम' रखा। हमारी नज़र दिखने वाले के साथ प्यार कर रही थी, दिखने वाला चलायमान था। चलायमान होने के कारण (बिछोड़े के समय दुख देना था और प्राप्ति के यत्न में क्लेश डालता था और ऐसे) दुखदाता था, इस प्रकार इस दिखने वाले से उठाकर हमें गुरू जी ने देखने वाले की ओर डाल दिया। कहा इसके प्यार में बह न जाओ, जो नहीं रहना, उसके साथ प्यार डालो जिसने रहना है। जब यह नुक्ता अंदर से पलटा खा गया तो देखो सारे जीवन का नज़ारा पलटा खा गया। वनों में जाकर वृक्षों जैसे जड़ता ग्रहण करने की ज़रूरत नहीं रही, पर चंचल रंगों में बैठे अपने अचंचल सत्य के

---

* यह लेख सं० गु० ना० सा० ४४२ (१९११ वि०) के गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में 'कलग़ियों वाला' के नाम अधीन प्रकाशित हुआ था।

ध्यान में (प्यार में) सदा टिके रहकर विचलित होने वाले को चलायमान देखने से अपना विचलित होना समझ में आ गया, तब विचलित होने वाले के साथ नाराज़गी नहीं पड़ी, बल्कि सचमुच उससे छुट्टी हो गयी। पर संसार में बैठे हजारों हमारे जैसे उस विचलित होने वाले के दर्शन में विचलित होकर दुखी हो रहे हैं। कलगियों वाले ने बताया कि जैसे मैंने तुम्हें डगमगाती नौका में से निकाला है तुम और फँसों को निकालो। इस काम में जो यत्न और कुर्बानी करने की ज़रूरत थी, वह अब हम आसानी से ही कर सकेंगे, क्योंकि जो कुछ विचलित होने वाला हमारे चारों ओर है, जिसके बीच में हम बैठे हैं वह हमारा नहीं है। हम उसके नाशवान होने को समझ चुके हैं, इसलिए उससे बिछुड़ते दुख नहीं होगा।

इस प्रकार उस कलगियों वाले ने संसार को भ्रम से निकालकर सत्य पर पक्का किया और आगे से श्रेणी चला दी कि यह काम सदा होता ही रहे। जो यह शिक्षा सीख ले वह सिक्ख कहलाये और आगे से यह शिक्षा सिखाता ही जाये। इस प्रकार कलगियों वाले की सिक्खी प्रेम के तरीके से सत्य को पहचानना तथा औरों को इस पहचान में मदद करनी है।

देखो यह सिक्खी का क्या नमूना निकला: खुश, आनंद, निर्भय, अपने आप में समझदार, धर्म से पार आदमी दिखने लग पड़े। वे आदमी फिर संसार में बैठे क्या कर रहे हैं? कोई अंदर से आप लगा हुआ होकर कीर्तन सुनाकर चित प्यारे की ओर लगा रहा है, कोई नाम में आप है और कथा करके ध्यान प्यारे की ओर डलवा रहा है, कोई दुखियों की मदद करके प्यारे के प्यार का नमूना दिखाता अंदर से नाम पर टिका दिख रहा है, कोई रोगी और कलेशातुर की मदद करके सत्य-नाम-का उपदेश कर रहा है। जहाँ ईर्ष्या, डाह, लड़ाई और धक्का था, वहाँ सिंह प्यार की फुहार देकर इन कष्ट में फँसों को छुड़ा रहा है। बात क्या कलियुग सतयुग बन रहा है।

'नाशवान को स्थिर समझकर सब कुछ करना' यह सतगुरू की शिक्षा नहीं थी। पर अगर हमारी बुद्धि अभी यही है तो हम उस शाही सड़क पर नहीं चल रहे, जो इस लोक से गुज़रती हुई परलोक तक ले जाती है, जहाँ पहुँचकर दुख नहीं मिलता और अगर आदेशानुसार वहाँ से लौटकर फिर यहाँ आना पड़ता है तो आकर दुख सुख के साथ संतप्त नहीं होते और भ्रमों में सत्य की ग़लती खाकर नहीं धूल में मिलते। उस महान सड़क (पंथ) के अगर हम राही नहीं बने, अथवा हमने उस सफर को अख्तियार नहीं किया जो धुर के नुक्ते पर पहुँचाता है, तो हमने गुरू की शिक्षा सिर माथे पर नहीं रखी और अगर उस महान आनंददाता गुरू की शिक्षा पर कान ही नहीं धरे तो किस बात की सिक्खी है?

"सिखी सिखिआ गुर वीचारि।"

गुरू की शिक्षा नहीं मानी तो क्या सिक्खी? अगर सिक्खी नहीं तो गुरू के आनंद में हमारा कैसा हिस्सा है? अगर हम हिस्सेदार नहीं, सांझीदार नहीं, तो फिर हमारा अपने आप को ऐसा प्रगट करना साधारण से अधिक विचलित होना नौका चढ़ाना है।

दर्शन और ज्ञान संसार में चिरकाल से हैं, क्या कलगियों वाले के आगमन समय हिन्दुस्तान में उपनिषद और छः दर्शन नहीं थे? क्या इनके पंडित संयासी और सिद्ध

कहलाने वाले योगी जंगम और संयासी नहीं थे? सब कुछ था पर जीवन नहीं था। बातों और कथ्यों पर दिमागी दौड़ रह गयी थी, करनी और व्यवहार चले गए थे। गुरू साहिब खोखली दिमाग़ी आतिशबाज़ी लेकर नहीं आये थे, पर 'जीवन' का अक्षय 'प्रकाश' लेकर आये थे। उन्होंने मसलेबाज़ी नहीं सिखायी पर मुर्दा शरीरों में 'आत्म जीवन' की इच्छा ला दी। जीवन से हमारा मतलब आरम्भिक (पहली पउड़ी का केवल) इख़लाकी जीवन नहीं, अर्थात केवल शुभ आचरण से मतलब नहीं, यह जीवन तो उस जीवन की पहली सीढ़ी है। यह तो पुण्यमय जीवन है, जिसने पापमय जीवन काट फेंकना है, और इस पुण्य और पापमय दोनों में 'मैं' का आसरा होता है। दोनों लोहा हैं, एक लोहे की नौका है, जो हमें बाँध रही है, दूसरी छैनी है, जिसने नौका काटने में सहायता करनी है। यह इख़लाकी जीवन उस महान जीवन का मूल है (जड़ है), यह उस जीवन के पैरों तले की नींव है। आगे उच्च जीवन है और। हमारा मतलब आत्मजीवन से है, जहाँ मैं आसरा नहीं, पर मैं से आत्मा छूट गयी है, स्वतंत्र हो गयी है, और स्वतंत्र होकर अपने आप में आनन्दित है और आनन्द स्वरूप वाहिगुरू के साथ संयोगी या उज्ज्वल प्रेम में प्रेमस्वरूप हो रही है। हाँ, जहाँ रसिया रस भरे हाल में रस रूप हो रहा है वह जीवन 'सच' में पहुँचना है, वह मुँह से बोले जाने वाले सच से (जो झूठ की उपेक्षा पर कहते हैं) बहुत ऊँचा सच है जिस का वर्णन ऐसे किया है:–

'नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़।'

जिस सच को यहाँ पद 'तुधु' प्रगट करता है, उसका नाम सच है, उस सच को प्राप्त करना ऐसे लिखा है:–

सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ॥
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ॥
सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु॥
नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआर॥
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ॥
धरति काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ॥
सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ॥
दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ॥
सच तां परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु॥
सतिगुर नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु॥
सचु सभना होई दारू पाप कढै धोइ॥
नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ॥२॥

यह वह जीवन है जो कलग़ियों वाले ने सिखाया, सिखाया नहीं जो लोगों में भर दिया और जिस के सदा भरे जाने के कारखाने को ज़ारी रखने के लिए पंथ बना दिया।

❐ ❐

१०३ इलाही दरबार*

कुर्बान, इस दर्शन पर कुर्बान। अत्यन्त तीखी पर मीठी और आँखों में समा जाने वाली चाँदनी है। चाँदनी नहीं यह तो महाप्रचण्ड का तेज है, पर इस तेज में नयन नहीं चुँधियाते, आँखें नहीं बंद होतीं। प्रकाश प्यारा है और स्वादिष्ट है, रस का कम्पन शरीर के रोमों के रास्ते छेड़ता है। प्रकाश है कि स्वाद है, स्वाद है कि प्रकाश है। कौन व्यतिरेक करे? देखो अपना आप कितना ऊँचा हो गया है, चौबारे में बैठकर जैसे गलियों की महक से ऊँचे हो जाते हैं। हाँ, अपना आप ऊँचा हो गया है, पर देखो मैं की (बाँधने वाली मैं की) महक भी नहीं। वाह दर्शन तेरे कुर्बान! खुशी के फर्राटे शरीर में भर गए। आनंद के हुलारों ने एक सहनशीलता पैदा कर दी है, अपना आप जामें में नहीं समाता। इतनी खुशी! पर देखो, फुत्कार वाले रजोगुण का कहीं नाम भी नहीं। यह प्रकाश किस तरह का है? प्रकाश तो केवल आँखों पर असर करता है और यह प्रकाश तो किसी इन्द्रिय का विषय नहीं, यह तो सारे अंदर बाहर की काया पलट रहा है – उज्ज्वलता है, उज्ज्वलता दे रहा है।

हैं! क्या यह प्रकाश है? ओह हो!! ओ मैं! ओ मेरी मैं! टकटकी लगाकर देख! वाहिगुरू! यह तो कुछ और तरह का लहराव है। प्रकाश की एक-एक किरण एक एक दिव्य रूप जीवन है, सदके इस प्रकाश के! मैंने समझा था सूर्य-चाँद जैसा प्राणहीन प्रकाशन है, पर इस प्रकाश की तो एक किरण इसकी छोटी से छोटी प्रभा दिव्य स्वरूप जीवन है। हैं! जहां पहले उजाड़, चुप्पी और केवल रस भरपूर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता था, वहाँ तो किरण किरण जीवन भरपूर है। हर किरण में प्यारा प्रकाश है, मस्त करने वाली सुगन्धि है, मग्न करने वाला मानों नाद है, मीठा लगने वाला स्वाद है, आलिंगन डालने जैसा रस है। यह प्रकाश है कि कोई रस भरी अवस्था है? कोई अपने में मग्न 'एकस्वरता' है।

वाहिगुरू जी! देखो तो सही, प्रकाश है कि कशिश है, कैसे खींचता है। ओहो! हैं। यह तो खींचे लिये जाता है। खींचता है, पर पीड़ा नहीं देता। खींचता है कि दबे खज़ाने उखाड़ने की तरह आनंद के खज़ाने खोलता जाता है। यह खींच कैसी है? किसी ने बाँह से नहीं पकड़ा हुआ, पल्ला पकड़कर नहीं खींचा हुआ, कोई रस्से डालकर नहीं घसीटा हुआ। हैं जी! नहीं। यह तो कोई अंदर ही अंदर, गहरे ही गहरे, नीचे ही नीचे, अन्दर की गहराइयों में कोई ऐसी कुंडी लगायी है कि घिसटते जाओ पर पता कुछ न लगे। वाह प्रकाश। तेरी अद्‌भुत किरणें। देखो तो सही, है खिंचना, पर पीड़ा नहीं, कसक नहीं पड़ती, टोट (नशा न मिलने पर शरीर के टूटने की अवस्था) नहीं बजती, घबराहट नहीं होती, बल्कि आंनद है, ठंडक है, शीतलता है, शांति है, टिकाव है, अडोलता है (अचंचलता है)।

---

* यह प्रसंग २७ पौष सं० गु० ना० सा० ४४४ (९ जनवरी १९१३) के गुरुपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

नहीं जी, कसक तो पड़ती है, घाव भी होता है, घाव रिसता भी है, पर आनंद ठंडक और शांति इसी में से निकली है। खींच किसकी है? यह तो मरुस्थल में जली धरती के अंदर गहरे से गहरे को कोई कला धसती जाती है और देखो ठंडी ठंडी, मीठी मीठी शांति का और जल का कुआँ लगा देती है। यह खींच कैसी है? वही प्रेम तो यही है, खींच क्या यह तो पूर्ण प्रेम है। प्रकाश है कि प्रेम है, प्रेम है कि प्रकाश। वाह प्रकाश तेरे रंग। अभी और टकटकी लगा, देख! यह प्रकाश है कि क्या है? देख क्या है? हैं। 'हुक्म' ही 'हुक्म' है। वाह हुक्म! कैसा प्रबन्ध है? कैसा क्रम है? कैसा प्रबन्ध है? कैसा अचंचल स्थिर, पर चुप है? प्रकाश है कि बाल बाल हुक्म पिरोया है। हुक्म है स्थिर और अमिट। पर वाह वाह! सख़्ती नहीं, ज़ुल्म नहीं, भ्रम नहीं, सारा ही प्यार है। प्यार है कि हुक्म है, हुक्म है कि प्यार है। तिल्ले की तार में रेशम और कमल का अन्तर तो कुछ होता है, पर यहाँ प्रेम और हुक्म की वाट* में कुछ फर्क नहीं दिखता। आह आह! हे तीखे स्वाद तरस कर! तेरी मिठास अटल है, पर तेरा रस असह्य है। उफ़!

हैं! जी, अब प्रकाश में क्या पड़ा दिखाई देता है? आदेश वेग में पड़ा आता है और प्रेम को कहता है, 'हाँ चल तू चल'।

प्रेम–तुझसे बिछुड़ने का जी नहीं करता।

आदेश–मैं तुझमें ऐसे अभेद रहूँगा जैसे यहाँ हूँ।

प्रेम–मैं अँधेरे में कैसे जिऊँगा?

आदेश–तू अँधेरे के मण्डल में जायेगा, पर आप प्रकाश रहेगा, तू नींद के खंड में बसेगा, पर सदा जागता रहेगा।

प्रेम–मैं तुझे, हे मुझ से कभी न बिछुड़ने वाले! क्या करके सम्भालूँगा?

आदेश–तू वहाँ, अँधेरे की बोली में मुझे पिता करके समझना और अबिछुड़ा रहना, मैं तुझे उस बोली में 'पुत्र' कहकर अंग संग रखूँगा।

प्रेम–हाय दाता! मेरा चित बिछुड़ने का नहीं करता।

आदेश–हाँ, मेरा भी नहीं करता, पर काम है, मेरा विरद+ है, अब अँधेरे लोक की प्रजा शिक्षाहीन होकर अशिष्य पद में व्याकुल हो गयी है। तू जा, प्रत्यक्ष सिखाने वाला होकर बिरद पूरा कर।

प्रेम–(खड़ा होकर और शीश झुकाकर)–आपके इस बिरद का पालन आपके बिना कौन करेगा?

आदेश–तू मेरा पुत्र होकर और मैं तेरे में तेरा पिता होकर। जा बेटा। कुबुद्धि से निकाल कर सुबुद्धि दे, बिछुड़े से निकाल कर मिला दे।

प्रेम–मेरा अभी बिछोड़े से जी डरता है।

आदेश–ना डर, तेरी सुरत मुझ में गड़ी रहेगी, सूरत में प्रेम आदेश के साथ अभेद रहेगा।

---

* दो तारों को इकट्ठा करके बटने की क्रिया।

\+ ईश्वर सृजनकर्त्ता है, सृजनकर्त्ता होने के कारण पालन करने वाला है, सृजन करके और पालकर फिर सिखाने वाला अर्थात गुरू भी है।

प्रेम ने शीश झुकाया और चले। चले क्या, वहाँ कोई चेष्टा है कि चाल है, कोई चलता है कि नहीं चलता है, एक ही प्रकाश है, दूसरे का नाम नहीं, पर प्रकाश चाँद सूर्य जैसा मुर्दा प्रकाश नहीं, हर किरण एक रूह चमक एक जीवन है; पर समूह भी एक ही जीवन है–

"इसु एके का जाणे भेउ॥ आपे करता आपे देउ॥"

हाँ जी, चले। आदेश, जिसको हम 'आयसु' कहते हैं, आयसु पाकर, 'प्रभु की आयसु' पाकर 'प्रेम' जी चले। लो लगे प्रकाश से नीचे नीचे आने। प्रकाश कम होता गया, अंत में अँधेरे मण्डल आ गया, प्रेम ने इसमें चरण डाले। सारे अँधेरा है, पर इसके अंदर वही प्रकाश है, वही इलाही नूर है। देखो अँधेरे में प्रविष्ट होते ही प्रेम की सूरत बन गयी, रूपधारी हो गया, शक्ल और शरीर सज गया, पर वह प्रकाश उसी चमक और गमक का अंदर है। इसके अब बने अस्तित्व के अंदर भरपूर है, यहाँ तक कि शीश के चारों ओर एक लहराते वेग का वही प्रकाश आठ पहर मानों घूमर डालता है। अब देखो प्रेम रूप धारण करते ही अँधेरे वालों को दिखाई दे गया है। जैसे अँधों को ठोस चीज़ टोहने पर दिखती है, पर रंग रूप सूक्ष्म चीज़ें टटोलने पर भी नहीं दिखायी देतीं। हैं जी; देखो न, ये कैसे लोग हैं? जब प्रेम शुद्ध प्रकाश मण्डल में प्रकाश था तो इनके नेत्र देख न सके, पर देखो आज अगर प्रेम अँधेरे मंडल में रूप धारी हो गया तो इन्होंने देख लिया। हाँ जी इनको अँधेरे में ही दिखाई देता है, प्रकाश से इनके नेत्र मुँद जाते हैं। लो प्रभु की आयसु में आया 'प्रेम' अब रूपधारी होकर, 'नामधारी' भी हो गया। लोग गोबिन्द सिंह कहते हैं। सच है आदेश का एक नाम गोबिन्द है, गोबिन्द का अर्थ है सृजनकर्त्ता और पालन करने वाला और अब सिखाने वाला होकर आया है, इसलिए कहो 'गुरू गोबिन्द'। गुरू कहते हैं सिखाने वाले को, और साथ में आदेश का भेजा हुआ आया है, आदेश इसके अंदर बैठा है, आदेश का इकरार था कि मैं तेरे साथ रहूँगा। हाँ, भाई! तो आप इसको 'गुरू गोबिन्द सिंह' कहो ना, क्योंकि सिंह का भाव है अमिट, अटल, आदेश के तेज वाला।

तब तो लो मातृलोक वालो। सुनो सुख संदेशा, वह जो हमारा स्वामी पालनकर्त्ता है, जो प्रकाश में रहता है, हम अज्ञानियों को दिखता नहीं है, उसने अपने बिरद की ख़ातिर अपने 'प्रेम' को हमारे जैसा रूप देकर हमारे जैसा अक्षरों वाला नाम देकर हममें भेज दिया है, और वह आप कहता है–

'जब आयस प्रभ को भइओ जनम धरा जग आए॥'

लो, चाहे आदेश को कठिनाई हो और चाहे प्रेम देहधारी होकर खेद पाये और चाहे हम घर आये को कठिनाइयाँ पड़े डालें, पर आया हमारे संकट दूर करने है, आया धर्म चलाने है, आया अपने चुनने है, आया पराये अपने करने है, आया टूटे गहनों को फिर से कुठाली में डालकर नए बनाने। हाँ जी, प्रेम आया हमारी विपत्ति हरने है, हमें बिछुड़े मिलाने है। हाँ जी, इसने हमें उस प्रकाश के सांझीवाल (साथी) बनाना है, हाँ जी यह तो अँधेरचियों को चन्द्रमा की किरणें बनाने आया है। हाँ, जैसे आप पुत्र बनकर आया है, हमें गोदी लेकर पुत्र बनाने आया है, हाँ जी, अच्छा जी, ठीक जी, हमें पुत्र बनाने आया है।

हमें!!! हमें अधम कीटों को अपने (शहंशाह के) शहज़ादे बनाने आया है। गुरू गोबिन्द सिंह शाह, शहंशाह और जिनको गोद लेता है, वे शहज़ादे!!

तब तो आओ मित्रो! आओ अँधेर मण्डल के सहचारियो। आओ मंगल गायें और कहें–

वडभाग भइआ इस धरती का
गुर गोबिन्द सिंह जी आए हैं।
सुख देवण नूँ हां आए हैं,
गुर कलगीआं वाले आए हैं।
सिर कलग़ी, लक तलवार लगी,
ए 'हुकम' निशान सजाए हैं।
मूँह अमृत बचन अलांदे हैं
ए 'प्रेम' प्रकाशां पाए हैं।
ए सद्दणगे मिठ बोले हो,
पा डोर प्रेम दी खिच्चणगे,
सिमरन दा संख वजावणगे,
इउं मुरदे लैण जिवाए हैं।
जो सड़ उट्ठे हन मुरदे जी,
ओह पकड़ कुठाली पावणगे,
फिर ढालणगे फिर साजणगे
दे नवां जनम जीउलाए हैं।
१. है दुखीए दा दुख हरना जो
ए इक प्रेम दी वनगी है,
२. मुरदे नूँ पकड़ जिवालण जो
ए रंग 'प्रेम' ने लाए हैं।
३. गए त्रक्क जु हन मुरदार पए
ते होइ असाध गए पापी,
मुड़ मार जिवाले इहनां नूँ
ते नवें रूप रंग लाए हैं
१. संतां नूँ आप उबारन नूँ,
२. भुल्लिआं नूँ रसते पावन नूँ
३. दुशटां नूँ मार पछाड़न नूँ
इउं मार जिवालण आए हैं।
इउं हो अनुराग सरूप गुरू
अज आए जी अज आए हैं,
खुशीआं ते मंगल गाउ सभे
वध जाओ, सभे, वधाए हैं।

❐ ❐

१०४ दिलेर व्यक्ति*

नीत्शे का आदर्श जो उसने अपने 'आदर्श आदमी' का बाँधा है, जिसको उसने 'ज़रतुश्त' लिखा है, कोई सुने तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस महान ज़ोरावर और निर्भय व्यक्ति के आगे सभी झुकेंगे और इसका भय सब पर छायेगा। इसकी 'शारीरिक चढ़ती कलाओं' तथा और सारे वर्णन किए गुणों के साथ यह असर उसका उन सभी पर पड़ेगा जो उसके इर्दगिर्द जगत में होंगे।

जिन दिलों पर भय किसी का छाए वे दिल कभी ऊँचे और प्रसन्नता वाले नहीं हो सकते, वे जो भय के प्रभाव अधीन होते हैं आदर्श इंसान नहीं बन सकते। वे महान पुरुष और ज़रतुश्त कहाँ से बन सकते हैं। इस तरह एक महान पुरुष का भय किसी और को महान पुरुष बनने से एक तरह से रुकावट डालने वाला हो गया।

जो वस्तु नेकी (भलाई) वाली है या जो वस्तु जगत में वांछित है, वह बढ़नी चाहिए। 'नेकी और नेकी वालों का बढ़ना एक ही सांझा सिद्धान्त है। या ऐसे कहो कि जो वस्तु अपने आप में भली है वह भलाई के विकास की या अपने विकास की प्रतिबंधक+ नहीं हो सकती। जो वस्तु अपने जैसों की उन्नति की आप रुकावट बने वह अपने आप में कोई कसर रखती है, पूर्ण नेकी होने से। इस विचार से हम यहाँ पहुँचे कि नीत्शे के महान पुरुष के आदर्श बाँधने में कसर है।

इस आदमी से सदियों पहले जो गुरू साहिबान ने महापुरुष का आदर्श माना है, वह यहाँ विचारणीय है। उनके महापुरुष के लक्षणों में भी उसका निर्भय होना एक बड़ा लक्षण है पर साथ ही उन्होंने उसका यह लक्षण बाँधा है कि वह भय दाता भी नहीं है।

भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।।

जो भय नहीं मानता, पर भय देता भी नहीं, वह दूसरे दिलों को खिलने से, ऊँचा होने से, आदर्श इंसान बनने से रुकावट नहीं डालता, अर्थात वह अपने जैसे और व्यक्तियों की वृद्धि का प्रतिबंधक नहीं है, इसलिए यह इंसान आदर्श है।

दसों सतगुरूओं का जीवन इस बात का इतिहास है कि उन्होंने कभी बुराई के साथ तबादला या मध्यस्थता नहीं की। कभी किसी के आगे झुके नहीं, पर कभी किसी के हृदय में आसुरी भाव अपने प्रभाव द्वारा उपजने नहीं दिए। भय देना और भय खाना दोनों आसुरी भाव हैं। दोनों को आपने दूर रखा। छठे और दसवें सतगुरूओं का अपने और अपने अनुयायियों के वीर रसी जीवन का कारण भी प्रजा के भय दाताओं से तथा उनके भय से

---

* यह लेख सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४६३ (१५ जनवरी १९३२ ई॰) के गुरूपर्व सप्तमी के खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

\+ विघ्न डालने वाली।

मुक्त करके उनकी सुरत को ऊँचा करने और प्रसन्न करने से था। इंसान का जन्मजात अधिकार है कि कोई दूसरा इंसान उसकी सुरत पर दबाव डालकर उसके शरीर और मन को मसल न दे, क्योंकि मन की प्रसन्नता और मन की निर्भयता ही मन को अपने व्यक्तित्व की उन्नति की सड़क पर आगे बढ़-बढ़कर कदम रखने का मौका देती है, कि जिसके लिए इंसान का अस्तित्व बना है। परन्तु यह खेल आसुरी सम्पदा पर आश्रित न हो।

किसी को भय के घर में ले जाकर उसके मन आत्मा को तबाह करके अपने लिए आसुरी सिद्धान्तों का राज्य स्थापित करना सतगुरूओं का उसूल नहीं था। बल्कि जो लोग प्रजा पर यह प्रभाव डालकर उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तबाही का कारण बन रहे थे उनको इस बुराई से रोकना प्रयोजन था उनके तलवार पकड़ने का। प्रेम से समझाने का तथा मानसिक और आत्मिक ऊँचे ख़्याल दिखाकर उनको प्रेरणा से दुरुस्ती पर लाने का काम दसों ही सतगुरूओं ने किया है और करते रहे हैं। पर जब गुरू जी ने ग़लत आदर्श के साथ बने हाकिमों को प्रेम के साथ बदलते न देखा तो उनका इलाज उन्होंने अपने तरीके से ही कर दिया। इस प्रकार यह कार्य ही जगत में महान पुरुषों के व्यक्तित्व के विकास के कारण बना। दिलों पर पड़ रहे भय को दूर करके दिलों को अपनी तरक्की करने का मौका पैदा कर दिया। भय दाताओं को उनके पैदा किए भय से निर्भय होकर भय देने से रोक दिया।

इस जद्दोजेहद (प्रयत्न) में श्री गुरू गोबिन्द जी को अपने जीवन में वे वे मौके आते रहे कि जहाँ जाकर वे आप भय खा जायें, पर वे सारे मौके बताते हैं कि भय खाना तो कहीं रहा वे कभी काँपे तक भी नहीं, हाँ उन्होंने कभी उदासी नहीं खायी। अपने रूहानी गुणों के साथ इंसानी नुक्ते (दृष्टिकोण) से भी वे आदर्श इंसान थे, अर्थात असली महान पुरुष थे।

यहाँ समय नहीं कि विस्तार से उनके सारे गुणों और लक्षणों पर विचार हो सके या ज़ालिमों के उनके भय देने से असमर्थ कर देने के पक्ष पर सविस्तार कुछ लिखा जाये, या उनके वे पहलू दिखाये जायें कि उन्होंने सिवाय भय दाताओं को दुरुस्त करने के कभी भय देकर दूसरे की सुरत नष्ट करने की ओर रुख नहीं किया, परन्तु यहाँ हमने आज उनके आप सदा दिलेर रहने की दुर्लभ खूबी का प्रकाश डालने का यत्न करना है, अर्थात 'नहि भै मानत आनि' का सिद्धान्त प्रयोग में आया दिखाना है।

बचपन में ही आप पर जिम्मेदारी का बोझ पड़ गया था और उस समय आपने वीर रस को शांत रस के साथ सम्मिलित करने की सोच ली थी, कि इसके बिना जालिमों का भय दाताओं को भय देने से असमर्थ करना कठिन होगा। अभी चढ़ती जवानी ही थी कि जिस रियासत में आपका ठिकाना था, वहाँ के राजा ने नाजायज़ रौब डालकर उनको अपने भय अधीन लाने का यत्न किया और धमकियाँ देकर नाजायज़ माँगें मांग ली। अपने पास जो सामान युद्ध का गुरू जी कर रहे थे, थोड़ा था। राजा के भयदायी संदेश के कारण अपने सलाहकारों और सज्जनों ने राजा के साथ दोस्ती करने की ओर प्रेरित किया पर इस न

झुकने वाले दिल ने उदासी नहीं खायी, राजा को संदेशा भेजा कि "आनंदपुर हमारे पिता ने कई बार उजड़ चुके गाँव के स्थान पर बसाया है, जिसको माखो राक्षस का समझकर माखोवाल कहते कोई नज़दीक नहीं जाता था। फिर वह धरती मूल्य देकर खरीदी और किसी प्रकार के कर देने की शर्त कोई उस समय स्वीकार नहीं की थी। इस नयी माँग को जो अयोग्य है हमारा हृदय स्वीकार नहीं करता"। सारे परिवार और परामर्शदाताओं की ढ़ीली मर्ज़ी ने भी भय की छुअन इस नौजवान दिल को नहीं लगायी और ज़रा सी भी उदासी नहीं खाने दी।

कुछ समय बाद नाहन का राजा आपको यमुना किनारे एक सुन्दर ठिकाने सिरमौर की घाटी में ले गया, जहाँ आपने पांवटा (पाउंटा) रचा और वहाँ अपने धर्म प्रचार तथा और उपकारी कार्यों के साथ वीर रसी सामान बहुत बढ़ाये। यहाँ से सढौरे के बुद्धूशाह फकीर ने पाँच सौ पठान जो बेरोज़गार हो चुके थे गुरू जी पास नौकर रखवाये, उनके कसमें वादे लेकर और योद्धा काम के आदमी होने के कारण उनके कसमों वादों पर एतबार (विश्वास) करके गुरू जी ने इनको अपने दल में शामिल किया। थोड़े ही दिनों के बाद आपको ख़बर आयी कि गढ़वाल का राजा फतेह शाह और पहाड़ी राजाओं की सेना साथ मिलाकर जो उसके घर बेटी के विवाह पर आये हुए थे, गुरूजी पर हमला करने आ रहा है। इस जंग का कारण क्या था, ढूँढने की अधिक आवश्यकता नहीं क्योंकि कलूहर का राजा जो गुरू जी को दबाने में असफल हुआ था वहाँ था और युद्ध में शामिल था, इसकी शरारत एक कारण था हमले का। गुरू जी ने कोई मौका जंग के हो जाने का नहीं दिया था? इस बात की खोज की बाहर से ज़रूरत नहीं क्योंकि युद्ध के हाल में जो गुरू जी ने आप लिखा है यह स्पष्ट बताया है कि फतेह शाह ने अकारण हमारे साथ युद्ध रचाया। यथा–

फते शाहि कोपा तबि राजा।।
लोह परा हम सों बिन काजा।।३।।

दूसरा कारण औरंगज़ेब का फतेहशाह को इशारा था जो जंगनामा गुरू गोबिन्द सिंह से विदित होता है। जब इस हमले की सूचना आयी और आपके दल में फैली तो पाँच सौ नया पठान सिपाही, सिवाय एक सरदार काले ख़ाँ के चलने को तैयार हो गए। सारे प्यार की प्रेरणा और इख़लाकी उपदेशों को सुन सुनाकर जब पठान अपने इरादे पर पक्के रहे तो गुरू जी ने उदासी नहीं खायी कि सिर पर जंग आ पड़ा है और ऐन वक्त पर पाँच सौ सिपाही बाग़ी होकर चल पड़ा है, आपने उनको जाने की आज्ञा दी स्वयं मुकाबले के लिए तैयारी करने लग पड़े। यमुना किनारे घूमकर और दुश्मन के दाँव पेच और चाल के रुख सही करके भंगाणी वाले ठिकाने जा मोर्चे लगाये। जिस स्थान को देखकर उनकी युद्ध विद्या की योग्यता पर सयाने फौजी भी अश अश कर उठते हैं। इस समय आपको पक्के तौर पर ख़बर आयी कि सारे पठान जो हमसे विदा हुए हैं दुश्मन दल के साथ जाकर मिल गए हैं। न केवल अपनी सेना पाँच सौ कम हुई है बल्कि दुश्मन की सेना पाँच सौ बढ़

गयी है, और घर के भेदी दुश्मनों के साथ जा मिले हैं। पर इस समय भी आपके दिल ने कमजोरी नहीं खायी और साहस छोड़कर उदास नहीं हो बैठे। आक्रमण के मुकाबले पर तुरन्त खड़े हो गए और मैदान जंग में आप गए, आप हुक्म हाथ में लिया और युद्ध के सारे ख़तरों में पीछे नहीं हटे। जब एक तीर आपको चुभकर निकल गया है तब भी भय के घर नहीं गया, दुश्मन दल की बहुलता चोटी के तीरन्दाज़ों के करतब देखते और आप तीर का लोहा चखकर लिखते हैं–

जबै बाण लागिओ॥ तबै रोस जागिओ॥

इस रोष के जागने पर फिर आपके तीर चले, उस ख़ूबी से कि एक भी निशाने से नहीं चूका। वह ठिकाना जहाँ वीरासन होकर, वह वृक्ष जिसके नीचे चरण टिकाकर, तीर छोड़े थे अभी मौजूद है। इस समय की तीरन्दाज़ी और बहादुरी के हमलावरों के वे-वे योद्धा मारे कि वे हार खाकर पीछे को दौड़ गए।

यह और इस जैसे कई समय इसके बाद आए कि अत्यधिक कठिन मौकों में आपके चित्त ने कँपकँपी नहीं खायी। चाहे युद्ध के सामान और फौज थोड़ी थी चाहे मुश्किलें अत्यधिक आईं पर किसी मौके पर आपने उदासी नहीं अपनायी। अंत में एक वह समय आया कि आनन्दपुर घेरे में आ गया और वर्ष तथा कुछ कम समय यह हाल रहा, बड़े-बड़े आक्रमण हुए जो पछाड़े और इन यत्नों में अपने चुनींदा वीर और अपना आप न्योछावर करने वाले प्यारे शहीद हो गए। अब अंदर रसद खत्म हो गयी, फिर भी दुश्मनों का दल चीर-चीर कर आपके जवान रसदें ले जाते रहे। जब सब नाके बंद हो गए और फाकाकशी पर नौबत पहुँची और सारे सज्जन घबरा गए तब भी इस दैवी शूरवीर के दिल ने निराशा और उदासी नहीं खायी। इस समय भी जब दुश्मनों ने गुरू जी को अजेय, स्थिर और अभय देखा तो समझ गए कि यह अपने आख़िरी आदमी तक कटवायेगा पर सामने जूझेगा और कभी चित्त गिराकर निराश नहीं होगा तो संदेशा भेजा कि आप अपना सब कुछ लेकर चले जाओ, क़िला खाली कर जाओ तो हम कुछ नहीं कहेंगे, और कोई शर्त हम नहीं रखते, कोई नियम नहीं मनवाते, केवल क़िला छोड़ जाओ। उस समय भी गुरू जी के हृदय ने न कमज़ोरी खायी न धोखा। अपने परामर्शदाताओं ने और परिवार ने दुश्मन के इस संदेशे को ग़नीमत समझा और मान लेने की सलाह दी। पर आपने बताया कि यह धोखा है, और झूठ है, भय न खाओ, फाके और कठिनाइयाँ देखकर उदास मत हो, डटे रहो और सुरत को अभय रखो; परन्तु सब घबरा रहे थे। अंत सबने माता जी को इस पक्ष में कर लिया और सारों ने सिवाय सतगुरू जी के खास प्यारों तथा उनके आदर्श के नज़दीक पहुँच चुके वीरों के गुरू जी को इस बात के मानने पर मजबूर किया। आपने कहा कि 'एक आठ दिन के और दुख सहो युद्ध का रंग और पहलू लेगा' पर किसी ने नहीं माना। आपने बताया कि 'क़िले से निकलते ही आपदा पड़ेगी और तबाही आ घेरेगी' पर किसी ने नहीं माना। तब आपन ने सारी जनता की सम्मति अनुसार पर आप अपने संकल्प में पक्के और अपने अनुमान किए दृढ़ निश्चय में पूरी तैयारी के साथ, जो उस समय के सामान की कमी में

हा सकती थी, आधी रात कूच की। दुश्मन दल अपने दिए इकरार, लिखे इकरारनामे, सेनापति, सूबेदार और काज़ी के कुरान पर हाथ रखकर की सौगन्धों के उलट गुरू जी पर टूट पड़े। आप डट गए और उस अँधेरे ठंडक और कष्ट के समय भी घबराये नहीं, उदास नहीं हुए, सारी शूरवीरता के नियमों के अनुसार अपने बचाव के लिए मुकाबला किया, आगे बढ़ते गए और रोपड़ के दुख झेलते हुए अंत चमकौर जा पहुँचे। यह रातभर का मुकाबला और घमासान इतना कठोर था कि लगभग चालीस शूरवीरों के अतिरिक्त सब कट मरे। अमृत छका कर नए पैदा किए आदर्श व्यक्ति और बड़े-बड़े घमासानों में जीत पाने वाले शूरवीर पुर्ज़ा पुर्ज़ा होकर कट गए, उदय सिंह जैसे अजेय शूरवीर भी टुकड़े होकर आपा न्योछावर कर गए।

चमकौर पहुँच कर आपने अपने साथ केवल चालीस वीर देखे, जिनमें दो अपने पुत्र थे, फिर देखा कि दो छोटे बच्चे साथ नहीं पहुँचे। परिवार का प्रबन्ध तो रोपड़ किया था पर माता जी और बच्चों का पता नहीं था। सब कुछ लुट गया, सारे कट गए, चालीस केवल रह गए हैं और पीछे से दुश्मन पीछा करता आ रहा है, इस समय हाँ इस समय ख़बर आती है कि जिधर को भागे जा रहे हो आगे से और दल सरहिन्द की ओर से आ रहा है। यह वक्त है जिसका अंदाज़ा वह लगा सकता है कि जिसने कभी ऐसी असमंजस ऐसी कठिनाई देखी हो। पर देखा इस महान कष्ट और मुश्किल के समय भी आपने उदासी नहीं खायी।

'सीज़र' जैसा योद्धा अपने कत्ल करने वालों के साथ कुछ देर यत्न करता है, पर जब उनमें अपने दिली सज्जन (करीबी दोस्त) ब्रूटस को देखता है तो अवसान भूल जाते हैं और दिल कुम्हला कर अपना आप छोड़कर कत्ल हो जाता है। यहाँ देखो दोहरे घेरे में से अर्थात दोनों ओर से डाले गए घेरे में से कोई राह निकल जाने का नहीं, ना हौंसला टूटता है न दिल हिम्मत छोड़ता है न शरण मानते हैं। उस समय आप एक हवेली में जो गढ़ी जैसी है जा घुसते हैं। आप जानते हैं कि यह पक्का क़िला कोट नहीं, यह बड़ा सहारा नहीं दे सकती। फिर उस हवेली के एक हिस्से के मालिक देने से इनकार करते हैं। वे हिन्दू हैं, मुगलों से दुखी हैं, ऐसों के बचाव के लिए गुरू जी लड़ रहे हैं, पर देखो कि जिनके लिए आप अपना आप न्योछावर कर रहे हैं, वे आपके आगे रुकावट बन खड़े हो जाते हैं, पर आप उस समय भी निराश नहीं होते न इख़लाकी कमज़ोरी खाते हैं। मालिकों को मूल्य देकर हवेली में प्रवेश कर जाते हैं और उसको क़िले के समान बनाकर रुकावट पर खड़े हो जाते हैं। आप जानते हैं कि मेरे साथ चालीस हैं, केवल चालीस और वे भी भूखे हैं, आप लिखते हैं–

गुरसना चिकारे कुनद चिहल नर।
कि दह लक बराइद बरो बे खबर।

यह जानकर भी डट गए, सारा दिन मुकाबला किया, युद्ध विद्या की प्रवीणता और अजेय बहादुरी आज खत्म हो गयी। चालीस आदमी चार पहर निकलवा देते हैं, दुश्मन दल

में से हमलावरों के बेशुमारों को मार लेते हैं, पर शत्रु को गढ़ी के नज़दीक नहीं फटकने देते। गुरू जी आप बैठे हैं, एक अटारी में और तीरन्दाज़ी का कमाल हो रहा है। आँखों के सामने अधिक से अधिक लड़ते प्यारे मरते पुर्ज़ा पुर्ज़ा होकर कटते जा रहे हैं। दो पुत्र भी आँखों के सामने लड़ते-लड़ते मरते मारते शहीदी पा चुके हैं, पर उसी तरह दिलेर दिल वाले तीरन्दाज़ी कर रहे हैं, थोड़ी सी भी कमज़ोरी नहीं ला रहे चित्त में। शूरवीर सुन्दर पुत्रों की आँखों के सामने जानें न्योछावर होती देखकर आप आशीषें दे रहे हैं, दाँत भींचकर आँसू नहीं बहा रहे। रात पड़ गयी, केवल पाँच साथी बचे हैं, युद्ध का सामान समाप्ति पर है पर अभी तक शत्रु के आगे हथियार फेंकने तो कहीं रहे उदासी तक आपने नहीं खायी। 'कुत्त' के मैदान में तुर्कों के घेरे में आए अंग्रेज़ सेनानायक के दिल ने जिस के पास सामान जंग अभी काफी था, कई हज़ार सिपाही भी थे अपनी हालत को पहचानकर कमज़ोरी खायी और अपने आप को सेना सामान सहित दुश्मन के हवाले कर दिया। मिश्र देश के सेनानायक ने नेपोलियन के हमले पर सेना और सामान के होते किसी चिन्ता में उदासी खायी और शस्त्र रख दिए।

बोअर सेनानायक करोंजी ने बहुत देर घेरे में रहकर आख़िर अपने आप को सेना और सामान सहित शत्रु के हवाले कर दिया। नेपोलियन जैसे कभी न हारने वाले सेनानायक ने वाटरलू के मैदान में जब अपने पक्ष का भविष्य समाप्त होता देखा तो शत्रु की दशा झेल ली और बाकी उम्र नज़रबंदी में गुज़ारी। पर यहाँ इस शूरवीर ने इस छोटी गढ़ी में बहुत कम सामान के होते हुए भी चार पहर मुकाबला किया और सब कुछ ख़त्म हो जाने पर भी अपने आपको शत्रु के हवाले नहीं किया, शरण नहीं माँगी, कारण यही है कि दिल ने दिशा और उच्चता कायम रखी और कमज़ोरी नहीं खायी।

रात पड़ने पर आपके बच रहे पाँच छ: सिक्खों की ओर से आपके निकलने के लिए ज़ोर दिया जाता है, पर आप अगले दिन साथियों सहित शहीद होने के लिए तैयार हैं और कमज़ोरी नहीं खाते। आख़िर पाँचों ने उस नियम अनुसार जो सीखा था कि पंथ का फैसला सब के लिए आज्ञा है, गुरू जी को अपने फैसले द्वारा निकलने पर मज़बूर किया। गुरू जी निकले, पर शत्रु दल में से निकलने के लिए युद्ध विद्या की प्रवीणता और दिलेर दिल की अजेय शूरवीरता का करतब फिर किया। एक ओर बढ़कर ललकार दी कि 'सिक्खों का गुरू निकल गया है' उस आवाज़ की दिशा में शत्रु दल की ओर से झुकाव हो गया और अँधेरे में उनमें हफड़ा दफड़ी मच गयी। दूसरी दिशा जो आपने स्वीकार की थी उधर से निकल चले। दो साथी साथ थे, वे भी इस फुर्ती में बिछुड़ गए। आप भागते गए, पर देखो कुछ कोस निकल जाने पर आगे से दो द्रोही मिल गए। उन्होंने रोका, शोर मचाया और आप न डरे, न काँपे, उनको अधीन किया, आगे बढ़े और निकल गए। पौ फूटने पर माछीवाड़े पहुँचे। साठ घंटे के आप भूखे हैं। एक रात और एक दिन के घोर संग्राम में रहे हैं और पाँच छ: घंटे से दौड़ रहे हैं। आख़िर शरीर ने आलस खाया और सड़क के समीप ही खड़े हो गए, बैठ गए और लेट गए। शरीर हार दे गया है पर मन अजेय है। इस समय भी आपने

* टिंड–मिट्टी का बर्तन, जिसकी गड़वे जैसी शक्ल होती है।

उदासी नहीं खायी, एक टिंड* सिरहाने रखी और एक हाथ नीचे की ओर रखकर लेट गए, दूसरा हाथ जो ऊपर को है धनुष हाथ में लेकर ठहर गया। यह हालत 'दिल की निर्भय तैयारी' बता रही है कि अगर कोई ज़रूरत पड़े तो देर न लगे और हुई भी ऐसे ही। जब आपके बिछुड़े साथी आ मिले हैं और उन्होंने आप जी को पहचाना है तो चरण दबाकर जगाया, जागते ही आपके हाथ ने धनुष बाण सँभाला और उठे, उठते देखा कि सज्जन जगा रहे हैं। दिल की मज़बूती इस कठोर दुख के समय अपनी तैयारी में आपको दिखा रही है। और शूरवीर इस समय कि जब इतने कष्टों के कारण शरीर भी हार दे चुका है दिल छोड़ बैठेंगे (हिम्मत छोड़ देना) और निराशा घेरा डाल लेगी पर नहीं, आप उसी निर्भयता में हैं।

आज का दिन माछीवाड़े बाग में निकलता है, रात गाँव में एक प्यारे के घर आसरा मिलता है, एक दो दिन यहाँ ठहरते हैं। पातशाह को परम निर्भय पत्र लिखते हैं जो पत्र कि बुलन्दी (न झुकने की) की जीवित तसवीर है*, फिर यहाँ से भी निकल जाते हैं। जब पहले सलामती का ठिकाना मिलता है तो अपना सज्जन एक महन्त प्यार के साथ मिलता है, सेवा करता है, पर कहता है "रात न रहो, आगे निकल जाओ, शत्रु आ गया तो मैं और मेरा डेरा तबाह हो जायेंगे।" शिबली मित्र द्वारा फूल मारने पर मंसूर रो पड़ा। हाँ, जिसने सारे शहर की पत्थरों की मार सहारी थी मित्र के फूल मारने पर रो पड़ा। पर यहाँ देखो दिल मज़बूती। कि अपने मित्र का डेरा है जिसको डेरे और संगतों लायक आपने किया था, एक रात के लिए सिर छुपाने नहीं देता। पर आपका दिल टूटता नहीं, मित्र की फूल मार खाकर दिल रोता नहीं, निराश नहीं होता। वहाँ से आप उसी रंग में उठ चलते हैं। रास्ते में एक स्थान पर एक सिक्ख मिलता है, उसको कहते हैं अपनी घोड़ी दे, पर वह भावना वाला, प्यार वाला सिक्ख सौ दो सौ की बढ़िया एक घोड़ी उस पातशाह को देने से न कर देता है। जिसके तबेले में कितने ही अरबी घोड़े होते थे अपनी यह बेकसी की हालत देखकर उस गुरू गोबिन्द सिंह का दिल पश्चाताप में नही जाता, मंसूर वाला उच्छ्वास नहीं लेता, अपने आपको बलरहित नीचा हो गया नहीं समझता, वही ऊँचा ठाठ, वही चढ़ती कलाओं में कायम रहता है।

चलते गए आगे और आखिर पहुँचे राय कल्ले के गाँव की सीमा में। आप गुर्जरों से दूध माँगते हैं, गुर्जर मज़ाक करते हैं, कहते हैं .... हमारे पशु दूध नहीं देते (क्योंकि अभी अभी उन्होंने नयी संतान को जन्म नहीं दिया है), पीछे वह आ रहा है जवान उसकी गाय दूध देती है।" अचंचल मन वाले ठहर गए, जब वह गाय भैंस चराने वाला आया तो आपने दूध माँगा। वह हाथ जोड़कर कहने लगा "दूध कुर्बान न करूँ, पर मेरी गाय तो दूध नहीं देती। आपको जो वे गुर्जर मेरी गाय दूध देती है बता गए हैं मज़ाक कर गये हैं।" आप हँसे और कहने लगे "मज़ाक भी करने के लिए बने हैं, तू ले लोटा और दुह गाय, साईं दूध देगा।" एक छिद्रों से भरा लोटा था, चरवाहा, निश्चय वाला चरवाहा, बैठ गया, दूध दुहे, कुछ तो लोटे में रहे कुछ छिद्रों के रास्ते टपके; आखिर भर गया लोटा। प्यार भरे और

---

* यह पत्र इसी पुस्तक में पीछे छपा है।

श्रद्धा भरे आँसुओं से लोटा लेकर नया चरवाहा आया। आपने दूध लिया, पिया और कहा "विश्म्भर हैं। सरब भर हैं। धन्य परवरदिगार!!! चरवाहे! ले यह लोटा तू ही रख तू तृप्त होकर खायेगा।*"

फिर रायकल्ले को सूचना मिली कि गुरू जी उसके करीब आ गये है।। आगे से लेने आया, बहुत प्यार किया, अपने पास रखा और सेवा की। यहाँ ही खबर आई छोटे साहिबज़ादों की जंगली तरीके से शहीद किंए जाने की और माता जी के परलोक गमन की। अब भी उदासी नहीं खायी। राय कल्ले ने पूछा! "साहिब जी! हद्द हो गयी, आप अब भी उसी रंग में हो, अब क्या करोगे?" कहने लगे "ज़ालिम राज्य को अक्ल देंगे। कसम तोड़कर ये साके करके मुगलों ने अपनी जड़ पर आप कुल्हाड़ी रख ली है। कल्ले! पहले सदाचारी मौत आती है, राजसी मौत पीछे पीछे चली आती है।" राय कल्ला काँपा। "पातशाह मैं भी उसी कौम मज़हब का हूँ, मेरी जड़ें बचा लो।" आपने तलवार दी और कहा, "इसको सँभाल लो जब तक आदर के साथ रखोगे आप की जड़ हरी रहेगी, राज्य रहेगा।" फिर कल्ले ने कहा– "पातशाह जिन की रक्षा का दम भर रहे हो, जिनके पीछे ये अकथनीय यातनाएँ भोगी हैं, हर मौके पर बेईमान और अकृतघ्न साबित हुए हैं, छोड़ो इनका पीछा।" तो कहने लगे "जो किया है ठीक है और वही करना है, जगत अज्ञानी है, दबा हुआ है, करे जो चाहे, हमने अपने मन की इच्छा हर हाल में पूरी करनी है" यह है तसवीर दिलेर दिल की।

जब गुरू जी की पत्नी की माता जी दमदमे पहुँचते हैं तो उस समय चारों साहिबज़ादों के शहीद हो जाने पर नेत्र भर भर बहाते हैं, तो गुरू जी सामने बैठे सिक्खों की ओर प्यार की नज़र मारकर एक वाक्य कहते हैं, जिसको किसी कवि ने ऐसे बताया है:–

इन पुत्रन के सीस पर वार दीए सुत चार।।
चार गए तो क्या भया एह जीवत लाख हज़ार।।

यह समय था जिसमें दिल ज़रूर कमज़ोर होता है। माँ के वैराग्य का वह नक्शा जो एक पुंत्र के वियोग से पड़ा हो किसी से नहीं देखा जा सकता। जो माँ चार वीर पुत्रों के वियोग की चोट खाकर विह्वल हो रही हो, उसको देखकर कौन आँसू रोक सकता है? फिर पिता कि जिसकी चारों के देहान्त से अपनी अँतड़ियाँ दुखी, उद्विग्न होनी चाहिए पर देखो दिलेर दिल वाले गुरू की दिल तसवीर कि इस वैराग्यों के शीर्ष वैराग्य वाले समय भी आप अपने सिक्खों को पुत्र देख रहे हैं, अपने आदर्श पर खड़े हैं और वियोगी माँ को उपदेश दे रहे हैं "इन पुत्रों में पुत्र भावना करके सुखी हो जाओ। पुत्र और सर्वस्व देकर यह पंथ बनाया है जो जगत का उद्धार करेगा, केवल 'पुत्र-मोह' कुछ नहीं। पुत्रों का सफल जीवन पिता और माता के लिए वास्तविक 'पुत्र-प्रेम' का आधार है।"

फिर एक और दिल तोड़ देने वाला समय आता है। माझे से एक जनसमुदाय सतगुरू

* यह लोटा अभी तक है। लोग देखने जाते हैं। छिद्रों से भरा है पर जब लोटा भर जाए तो पानी बीच में से नहीं टपकता।

जी के पास आता है, जिस समय कि सूबा सरहिन्द गुरू जी की सौगन्ध डालकर पाँच हज़ार फौज के साथ मालवे की ओर हमला करने जा रहा है। जन समुदाय सिक्खों का है, वे जाकर प्रार्थना करते हैं कि "आप युद्ध बंद कर दो। शांति में होकर गुरुता का काम करो। पातशाह के पास जाकर हम सुलह समस्या करवा देते हैं।" उनके विचार सुनकर आप कहते हैं "मैं गुरू हूँ तुम सिक्ख हो, मेरा काम शिक्षा देना है, शिक्षा लेना नहीं। अगर कहो पातशाह के पास तुम्हारा कुछ रौब है तो गुरू अर्जन देव जी के साके के समय तुम्हारा रौब कहाँ था? अगर कहो मैं अपने सिर पड़े कष्टों से घबराकर अब बहाना ढूँढता हूँ कि किसी कोने में बैठकर दिन काट सकूँ, तो तुम भूल पर हो, मैं जो कुछ कर रहा हूँ ठीक है, मैंने यही कुछ करना है। तुम अगर सिक्ख हो तो वज़ीर खाँ आ रहा है आओ मेरे साथ होकर उसके साथ लड़ो। घर से तुम युद्ध का सामान लेकर चले हो, योद्धे हो, आओ निथरो (आगे आओ)।" उन्होंने कहा "जंग की ज़रूरत ही खत्म कर देते हैं, सुलह करवा देते हैं।" फ़रमाने लगे "बदी (बुराई) से नेकी (भलाई) की सुलह क्या अर्थ रखती है, आओ अगर सिक्ख हो तो बदी के साथ जंग करो। अगर नहीं हो तो बेदावा (दावे (अधिकार) का त्याग) लिख दो।" उस समय सारे सिक्खों ने लिख दिया कि "हम आज से आपके सिक्ख नहीं।" अनुयायियों से टूटकर पैगम्बर, सेना से बेदावा लेकर सेनापति कौन है जो उदास नहीं होगा। पर देखो शूरवीर! नयन ऊँचे चढ़ाकर मुसकराता, घोड़े पर चढ़ता और अपनी छोटी-सी सेना जो अभी नयी बनायी थी, साथ लेकर आगे चल पड़ता है। यह स्थिर अभयता और दृढ़ता उन बेदावे लिखने वालों के दिल पर असर करती है, और एक उनमें से कहता है– "सज्जनों! इस गुरू जैसा महान चित कहाँ से मिलेगा? देखो किस ऊँचे दिल वाला है। कैसा अभय, कैसा अपना आप न्योछावर करने वाला है, हमारे पीछे चार पुत्र, धन, धाम, माता कुर्बान कर चुका है। धिक्कार है हमें। कि हम इससे टूटें।" हाँ यह मनुष्य 'महां सिंह' कूद कर दूर खड़ा हो गया, लकीर खींचकर कहने लगा, "आओ जिसने मरना है आज मेरे साथ इस गुरू के हुक्म पर, यह लकीर फाँदकर मेरे पास आ जाओ। शहीद होना है आज जिसने आ जाओ।" गुरू जी की अचल शूरवीरता अपनी छुअन लगा गयी थी, सभी के सभी लकीर के पार आ गए। हाँ, एक औरत थी भागो, वह भी हाथ में बरछी लेकर लकीर के पार आ गयी। इतने में आक्रमणकारियों के ढोल सुनाई पड़े। वहाँ ही, जहाँ उस समय खिदराणे का सूखा ताल था और मल्हों* का घना जंगल था, जहाँ आज मुक्तसर है, योद्धे डट गए, और आक्रमणकारियों के साथ सारा दिन लड़कर सारे शहीद हो गए। सायंकाल वज़ीर खाँ ने आकर देखा कि मुझ से कहीं कम सेना ने मेरी सेना की बहुत मार काट कर दी है और सारे कैसे शहीद हुए पड़े हैं। फिर उसने देखा कि मैंने तो खिदराणे के ताल पर कब्जा करने के लिए जंग किया था कि पानी मिल जायेगा और यह सूखी पड़ी है, आगे पता लगा कि पानी बीस पच्चीस कोस पर है और पीछे लौटूँ तो नज़दीक है, इसलिए सिर पर पैर रखकर बची सेना साथ लेकर लौट पड़ा पीछे को उसी समय।

* एक प्रकार की काँटेदार झाड़ी पर छोटे-छोटे बेर लगते हैं।

गुरू गोबिन्द सिंह जी वहाँ से आगे जाकर एक छोटे टीले पर डटे दुश्मन दल पर सारा दिन तीर बरसाते रहे थे, अब नीचे उतरे, हताहतों के मैदान में आए। सब मर चुके थे, एक जीवित था महां सिंह, आख़िरी साँसों पर था, उसका सिर अपनी जाँघ पर रखा, मुँह अपने रुमाल से पोंछा, पानी अपने हाथों से मुँह में टपकाया, उसके नेत्र खुले, प्यारे के नेत्र देखे 'शुक्र' 'शुक्र' काँपते ओठों ने कहा। साहिब बोले, हाँ, जो कभी नहीं थे कमज़ोर हुए अब चाव पर वैरागी चाव में आकर बोले: "महां सिंह! कुछ माँग?" सदा के लिए बंद हो जाने वाले ओठों ने कहा "साहिब टूटी गाँठ लो"। उसी समय जेब में से बेदावे का कागज़ निकालकर पैग़म्बर योद्धा ने उसके आखिरी बार के लिए खुले नयनों को दिखाकर फाड़ दिया और उसका सिर छाती के साथ लगाकर एक आँसू उसके माथे पर टपकाकर सदा के लिए उसको अनन्त प्यार की गोदी में निवास दे दिया; यह है गुरू गोबिन्द सिंह जी के दिलेर दिल की तसवीर जो भय नहीं देता पर कभी भय नहीं खाता।

माछीवाड़े से औरंगज़ेब की ओर लिखे पत्र में कैसी दिलेरी दिखायी है–

मन अकनू ब अफज़ाले पुरशे अकाल।
कुनम आबे आहन चुना बर शिकाल*।

फिर 'दीने' नगर पहुँचकर आप जी ने जो औरंगज़ेब को ज़फरनामा लिखा है उसमें कैसी दिलेरी दिखायी है। यथा–

तुरा गर नज़र हस्त लश्कर व ज़र।
कि मारा निगाहस्त यज़्दां शुकर।
कि ओ रा ग़रूरस्त बर मुल्को माल।
व मारा पनाहस्त यज़्दां अकाल।

कैसा कमाल है, कैसा सच पर विश्वास है। बादशाह को आपने बातें करने के लिए बुला भेजा है और साथ ही बताया है कि चिंगारियाँ आग की तूने बुझाकर भयानक आग की प्रचण्ड लपटें जला दी हैं+। दोनों आपके लिखे पत्र पढ़ने से आप जी के दिलेर दिल का नक्शा आप जी के ही श्री मुखवाक्यों से प्रगट हो जाता है, और साथ ही सत्य बात मान लेने पर दुश्मन के भी गुणों को गुण कहने की इंसाफ-दिली कमाल की है।

मालवे में तलवंडी साबो पहुँचने से पहले मालवे की नयी सेना तनख्वाह के लिए अड़ गयी (जिद्द कर बैठी)। इनसे आपने पूछा सिक्खी कि तनख्वाह? उन्होंने कहा तनख्वाह। अब मालवा वासियों की ओर से निराशा का समय आया है। आप स्थिर खड़े हैं। तनख्वाहें चुकाकर उनके जत्थेदार (दानां सिंह) को कहते हैं तुझे कितनी तनख्वाह दें। तो उसने कहा: सिक्खी। दो तीन बार पूछा यही उत्तर मिला। तब अचंचल सतगुरू हँसे और कहने लगे माझे की महां सिंह ने और मालवे की दानां सिंह ने रख ली। दोनों इलाके बख़्शे गए।

---

* इसी पुस्तक में पीछे देखें सारा पत्र और अनुवाद।

\+ चिंगारियों से भाव शहीद हो गए साहिबज़ादों का है और लपटों से मुराद प्रगट खालसा पुत्रों की है जो सर्वकाल जियेगा।

फिर आप दमदमे ठहरे, बैराड़ों का सरदार डल्ला सिख था, नौ महीने उसके पास रहे फिर अपना खानदानी सिख राम सिंह मिला। अब गुरू जी दक्षिण को चले, आपका संकल्प लगता है कि दक्षिण जाकर अगर सीधी तरह औरंगज़ेब इंसाफ पर आ जाये तो वाह वाह, नहीं तो अपने काम का ठिकाना स्थापित कर वहाँ से अपने आदर्श को पूरा करने के कामों को नए सिरे से छेड़ दें। अपने पहले बनाये सम्मानित किये सिखाये लायक किये शूरवीर योद्धे नीतिवेता और समझदार अधिकतर शहीद हो चुके थे। आप चाहते थे कि अच्छे अच्छे शूरवीर और अपने आप को न्योछावर करने वाले पुराने मित्र जो बचे बचाये फिर इकट्ठे आ हुए हैं, साथ ले चलें और दक्षिण से फिर जत्थे (गिरोह, टोले) स्थापित कर खास खास जत्थेदारों के अधीन खास खास काम आरम्भ करें। यह अनुमान आप के उस समय के कामों से होताहै। डल्ला और राम सिंह दक्षिण को साथ चले पर एक सुबह जब आपने डल्ले को आवाज़ दी तो एक बेनवा फकीर ने हँसकर एक तुक कही– "न डल्ला न मल्ला ते (और) गुरू इक इकल्ला (अकेला)"। गुरू जी ने और हँसकर जवाब दिया– "गुरू के साथ अल्लाह, गुरू कभी नहीं अकेला"।

यह है तसवीर कलगियों वाले के दिलेर दिल की। अत्यधिक प्यारा मित्र डल्ला जो नित्य कहा करता था "मेरी सेना और धन धाम आप का है जहाँ मर्जी है लो।" जो अपने लिए एक चौकी की जगह गुरू चरणों में माँगा करता था, जो नौ दस महीने की करनी करतूत से मित्र साबित हो चुका था, वह रात को चोरी छिपे भाग जाता है। है न मंसूर वाली उच्छवासें "गुरू के साथ अल्लाह, गुरू कभी न अकेला।"

कैसा दिलेर हृदय है। अभी और देखो – एक दिन तड़के-तड़के पीढ़ियों का सज्जन राम सिंह– जिस का बाप दादा पीछे सातवें गुरू के समय से श्रद्धा विश्वास वाले और जानें न्योछावर करने वाले सिक्ख थे वह भी चोरी छिप्पे भाग गया। पता मिलने पर सतगुरू जी ने सवार दौड़ाया, राम सिंह ने सवार को कहा "गुरू जी को कह दो मुझे क्षमा करे मैं नहीं दक्षिण को साथ में जा सकता"। फिर गुरू जी ने दोबारा सवार भेजा कि "एक बार आकर हमारा वचन सुन जा फिर बेशक लौट जाना" पर राम सिंह फिर भी नहीं लौटा। यह समय था दिल के कमज़ोर पड़ जाने का कि हैं जिन के लिए मैं यह कुछ झेल रहा हूँ और वे मित्र हैं, कई मुश्किलों के समय श्रद्धा और प्यार निभा चुके हैं, मेरे काम में क्या आश्चर्य कठिनाई है कि वे इतने अधीर होते हैं, मेरी बात सुनने के लिए भी तैयार नहीं होते, मैं क्यों न आराम के साथ एक तरफ होकर दिन गुजारूँ? पर नहीं यह भाव नज़दीक नहीं फटकता। जब सुना राम सिंह हमारी आज्ञा का उल्लंघन कर गया तो फ़रमाने लगे, "अभागा राम सिंह, ऊँचे काम में से अपनी हिस्सेदारी तोड़ गया, घरों के फ़िक्र!!! चित्त तंग कर लिया, विशाल दिल करके देखता, घरों के साथ तो टक्करें मार मार मरते मर रहता है आदमी, तब बनेगा क्या? वही छोटे से निज का गुज़ारा चलाने की फ़िक्र में गया अभागा राम सिंह, हाँ, हिम्मत हार गया।" देखो इस पवित्र और ऊँचे दिल को अपनी विवशता का ख़्याल तक नहीं आता कि मैं कहाँ पहुँच गया हूँ, कि मित्र के बाद मित्र मुझे छोड़ता जा

रहा है, मैं अब किसके साथ काम करूँगा? अपने ख्याल में स्थिर हैं, हर पराजय, हर डरा देने वाली घटना, हर दिल तोड़ देने वाली भवितव्यता गुरू जी के दिल पर कोई उदासी और निराशता का रंग नहीं चढ़ाती। आप चले गए। सिरसा जाकर ख़बर मिली कि एक सिख क़ैद में है, नबी खाँ हाकिम को अपनी कन्या न देने के अपराध में। परदेश है, सिख साथ कम हैं, दूसरी ओर हाकिम है। ख़बर सुनते ही कुछ सिंहों को साथ लेकर क़ैदखाने पहुँचते हैं, और ऐसी चतुराई से पड़ते हैं कि बिना एक बूँद रक्त बहाये सिख को क़ैद से छुड़ाकर फिर निर्भय होकर हाकिम को मिल पड़ते हैं और उस पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव, बहादुरी का रौब और अपने उपदेश का प्रभाव डालकर उसको भलाई के रास्ते का एक सेवक बनाकर लौटते हैं। गुरू जी की उस समय की फौजी जमीअत (आदमियों का समूह) को देखो तो बुद्धि काम नहीं करती कि कैसे उन्होंने इस काम का निर्भय हौंसला कर लिया।

कुछ देर बाद औरंगज़ेब मर गया और पुत्रों में जंग छिड़ गया, बहादुरशाह ने नंदलाल जी को गुरू जी के पास भेजा कि "मेरे हक़ में भलाई की दुआ करो। और पंजाब तथा अन्य स्थानों के सिखों में मेरे पक्ष की आज्ञा दो।" आप ने कहा कि "इंसाफ की सौगन्ध उठाये, पक्षपात छोड़े और दोषी हाकिमों तथा सूबेदारों को दण्ड दे तो हम साथ हैं।" पातशाह ने इकरार किया इसलिए आप फिर दक्षिण जाते लौटे और दिल्ली आए। इससे स्पष्ट होता है कि प्रजा का सुख आपका आदर्श था। अगर पातशाह ने न्याय पर चलना मान लिया है तो सहायता के लिए तैयार हो गए हैं। जब बहादुरशाह जीत प्राप्त कर गद्दी पर बैठ गया तो आप आगरे में थे। मिलाप होता है। प्रयोजन यह लगता है कि जो पातशाह ने इकरार किया था वह पालन करता है कि नहीं, अगर लक्षण न पालने के दिखाई दें तों जो संकल्प दक्षिण जाकर आगे वाले काम का आप बाँध चुके हैं वह पूरा करें। पातशाह सम्मान के साथ मिला, ख़िलअत पेश की, अपने ख़िलअत नौकर को दी कि उठाकर ले चले, यह बात बताती है कि पातशाह आपको दीन का बड़ा जानकर अदब के साथ मिला है*। ख़ैर पातशाह ने भी दक्षिण जाना था, आप भी दक्षिण जाते लौटे थे इसलिए चल पड़े। पातशाह के साथ उसके इकरार पूरे करने के लिए विचार विमर्श हो रहा था। आपका प्रयोजन साथ चल पड़ने का यह प्रतीत होता है कि इस सफ़र में पातशाह का पता भी लग जायेगा, अगर पातशाह वचन पूरा करता न दिखाई दिया तो हमारा समय नष्ट नहीं होगा, हम भी दक्षिण पहुँच जायेंगे। रास्ते में आपको पूरी तरह निश्चयपूर्वक पता लग गया कि

---

* इस ख़िलअत में एक कलग़ी थी और एक धुख धुखी (६० हज़ार रुपये की)
कलग़ी अर धुगधुगी आनी। खिलअत ऐक साह सनमानी।
शाह प्रभू को भेंट चड़ाई। खुशी करे तुम सो बनि आयी।
ताहि समें प्रभू ने फुरमायो। अंदर शाह पै सिंघ बुलायो।
बसतर तांहि पास उठवाये। विदा भए प्रभु डेरे आए। (गुर सोभा)
उस समय ख़िलअत दास से उठवाकर ले जाना केवल धार्मिक उच्चता वाले ही कर सकते थे।

पातशाह दिल का बहुत बहादुर नहीं, और अपने राज्य की विशालता में घबराता है कि मैं बदमाश सूबों को छेड़ नहीं सकता, ऐसा न हो कि राज्य बरबाद कर दें।

पातशाह के इकरारों का आख़िर न पूरे होने का रूप देखकर फिर मौका आया है दिल के टूटने और निराश हो जाने का, पर अपनी चढ़ती कलाओं में आप नांदेड़ जाकर डेरा डाल देते हैं और पातशाह के साथ आगे नहीं जाते, यहाँ अड्डा जमाकर अब काम आरम्भ करते हैं। माधो दास वैरागी को, जो इन्द्रजाल के खेल तमाशों में बहला हुआ था सुधारते हैं और सिक्खी मार्ग में लाकर उसको सिख बनाकर अमृत छकाकर* पाँच सिंह अपने जाननिसार और पुराने अनुभवी दूरन्देशी शूरवीर उसकी सलाह मशवरे की सभा बनाकर पंजाब की ओर भेज देते हैं+। अभी और क्या-क्या करना था, साईं जाने, पर अब वाहिगुरू जी का बुलावा आ गया। अब आख़िरी समय आया, दिल के घाटा खाने का।

पहले ज़िन्दगी का सारा काम अर्थात पैदा किए बंदे@ आनंदपुर, रास्ते में, चमकौर और आखिर मुक्तसर में लगभग शहीद हो चुके हैं, पर आपने उदासी नहीं खायी, एक नया बंदा ढूंढ लिया और बंदा बना लिया। नया बंदा पैदा करके काम करने के लिए भेज दिया है। देखो अचानक एक द्रोही ने आपको घाव लगा दिया है, किसी छुपे रुस्तम की चाल सफल हो गयी है, घाव पेट पर गहरा है, प्रमाण सही दिखाई दे रहा है। फिर भी नहीं विचलित हुए कि मेरा आदर्श मेरा उद्देश्य अब मलियामेट हो जायेगा। तुरन्त पाँच सिंहों को अपना रूप कहकर अपनी बनायी जत्थेबंदी के आगे लगाकर कह दिया कि गुरू ग्रंथ पंथ गुरू है। गुरू ग्रंथ साहिब गुरू हैं—जीवन के कर्त्तव्यों और रूहानी कल्याण के आदर्शों का। जिसकी रोशनी में चलना है पंथ ने जिस पंथ को गुरू की पदवी दी है अधीन गुरू ग्रंथ के, ताकि इंसान पंथ को सही रास्ते से परे न ले जा सके। जीव चाहे कोई कितना ही बड़ा हो, ऐश्वर्य पाकर उसकी मैं उसकी बुद्धि में दख़ल देने लग जाती है, इसलिए एक की जगह पंथ गुरू स्थापित किया। फिर सोचा कि बहुत भी पंथ में एक ख्याल का पक्ष बाँधकर 'मैं' में घुसा सकते हैं। इसलिए गुरू ग्रंथ साहिब की रहनुमाई को उनके सिर पर अंकुश लगाया। गुरू ग्रंथ साहिब गुरू साहिबान का हृदय है, उनके आदर्श हैं, वे आदर्श जो वाहिगुरू जी ने उनको अपने ज्ञान द्वारा अनुभव करवाये, ये आगे के लिए गुरुता और जत्थेबंदी के स्तम्भ (प्रधान) बनाकर आपने निश्चय किया कि मेरे चोला (देह) छोड़ जाने से मेरे शुरू किए परमार्थ सम्बन्धी और आर्थिक काम समय-समय पर पूरे होंगे और ऐसा ही हुआ। 'गुरू ग्रंथ पंथ गुरू स्थापित किया, क्योंकि देव गुरू या अवतार गुरू का सिलसिला अब बंद था हुक्म में, और आगे से गुरूता दी 'ईश्वरीय ज्ञान और जत्थेबंदी' को। यहाँ अब दूरदर्शिता और क़ौम निर्माण की प्रवीणता का कमाल है और इसके साथ उस

---

* तवा० खा० ने नाम बंदा सिंह दिया है। गुरबख्श सिंह नाम भी लिखा मिलता है। देखो इसी पुस्तक के अध्याय नं० ९४ की तुक।

\+ २५ सिंह साथ में और भी विदा किए गए बताते हैं।

@ बंदा-सेवक, दास (वक्ता विनय दिखाने के लिए अपने आपको कहता है)।

दिलेरी का दर्शन होता है कि जो इस अंतिम समय भी उनका दिल नहीं हिला सकी। आपने पहला जत्थेदार बंदा सिंह (गुरबख्श सिंह) स्थापित किया और पंजाब भेजा था। दूसरा जत्थेदार संतोख सिंह दक्षिण में हुआ। संगत के उदास होने पर कि हम अब क्या करेंगे, गुरू जी ने फ़रमाया कि पंथ मैंने अकाल पुरुष की गोदी में डाला है, मेरा काम उसका हुक्म था, हुक्म अटल है, टलेगा नहीं, मेरा सचखंड प्रयाण न मेरे लिए न आपके लिए कोई निराशा है।

गुरू जी ने अपने काम की योजना ठीक अंदाज़े से बनाकर रखी थी, इसको जिस रास्ते पर डाला वह दुरुस्त था, वह उनके अपने जगत में होते हुए ही दुरुस्त रास्ते पर चल पड़ा था और बाद में अपने वक्त पर बिलकुल वही फल ले आया जिस फल के लिए कि आपने वह वृक्ष लगाया था। हर काम के लिए समय एक ज़रूरी हिस्सा है इस प्रकार वह काम, वह योजना ठीक दुरुस्ती से समय पर फली और कामयाब हुई। यह कहना कि पाँच सात सालों में वह क्यों नहीं पूरी हुई, मामले को न समझ सकना है। कनिंघम ने भी गुरू जी की इस बात पर अच्छी रोशनी डाली है कि उनका पैदा किया काम, उनकी योजना ऐन वक्त पर कामयाब हुई। ऐसे उनका उपदेश पूर्ण कामयाब है और उनके द्वारा की क्रिया सफल क्रिया है। यह है एक थोड़ा सा यत्न गुरू गोबिन्द सिंह जी के हृदय के उस जौहर के देखने का जो इन गुरुवाक्यों (गुरू कथनों) में अंकित है:-

"भै काहू कउ देत नहि
नाहि भै मानत आनि।"



कुछ और गीत

: १ :

जय हो कलगीआं वाले तैनूँ।
टेक– **जय हो कलगीआं वाले तैनूँ।**
जय हो जय हो जय तैनूँ।
जय हो दाता जय तैनूँ।
कलगीआं वाले जय तैनूँ।
तउक गुलामी दे तूँ तोड़े
'परवस-बेड़ी तोड़ी तूँ,
गई बहोड़ी सदीआं संदी,
मिटी आन मुड़ मोड़ी तूँ।१।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ ......
'खुल्ल्ह' गुआची गई गुआती

लभ के फेर लिआंदी तूँ,
शान असाडी मिट्टी रुल गयी
कर उज्जल मुड़ आंदी तूँ।२।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ ....
रुट्ठी देवी सुतंतरता दी
भारत छड्ड सिधाई नूँ
आतम-बल करके लै आंदा
परगट कर दिखलाई तूँ।३।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ ......
दे आदर्श खालसे वाला
रूपवान कर दित्ता तूँ
देग़ तेग़ दा धनी नाम दा
'अटल सदा' वर दित्ता तूँ।४।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ ......
अपणे वार, बिगाने कीते–
अपणे, गोदी पाए तूँ
अपणिआं कोलों वद्ध पिआरे,
अपनाए अपनाए तूँ।५।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ .....
जयति जयति गुर कलग़ियाँ वाले।
लै साडे शुकराने तूँ।
भेट निमाणी, पिता। कबूलो
'बचिआं-प्रेम तराने' तूँ।६।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ ......
शुकर शुकर शुकराना तेरा,
शुकरां दा बी साईं तूँ
चरन शरन विच रक्ख सदा ही
अपणे राह तुराईं तूँ।७।
जय हो कलगीआं वाले तैनूँ ......

: २:

पँजां प्यारिआं दी अरज़ोई ते कलग़ीधर जी दा उत्तर

पँज पिआरे–

पिला दे, पिला दे, पिला दे प्यारिआ!
सानूँ अंम्रित दा जाम पिलादे प्यारिआ!

लग्गीआं चिरोकीआं पिआसां दातिआ!
पिलादे पिलादे पिलादे प्यारिआ! सानूँ ......
तुर के मौत घाट तों आये,
धर के सीस तली ते ल्याए,
सीस लिआए वाह वा वाह
सीस लिआए वाह वा वाह
पिलादे, पिलादे, पिलादे प्यारिआ!
सानूँ अंम्रित दा जाम पिलादे प्यारिआ!
साडे पल्ले रास न काई
करीं कबूल एह भेटा साईं।
भेटा साईं वाह वा वाह ......
पिलादे, पिलादे, पिलादे प्यारिआ!
सानूँ अंम्रित दा जाम पिलादे प्यारिआ!
देवो अंम्रित मोए जिवावो,
अपणी जीव़न छोह लगावो,
छोह लगावो वाह वा वाह ....
पिलादे, पिलादे, पिलादे प्यारिआ!
सानूँ अंम्रित दा जाम पिलादे प्यारिआ!
कलगियों वाले का उत्तर:–
आओ सूपतो झोली पावां
अंम्रित जाम अमुल्ल पिलावां
अमुल्ल पिलावां वाह वा वाह ....
बनां लां, बनां लां, बनां लां प्यारिओ!
तुहानूँ पुत्रां तों पिआरे बना लां दूलिओ!
अपणे जाये तुसां तो वारां,
तुहानूँ गोदी लै प्रतिपारां,
लै प्रतिपारां वाह वा वाह ......
बनां लां, बनां लां, बनां लां प्यारिओ।
तुहानूँ पुत्रां तों पिआरे बना लां दूलिओ!

: ३ :

संगत का संदेश

गीत (राग पहाड़ी, ताल यक्का)
राहीआ जांदिआ पिआरे दे देश नूँ।
देई सुहणे नूँ मेरा संदेश तूँ,

पई जफ्फरां नूँ नित्त जालदी
कलगी वाले नूँ नित्त सँम्हालदी।१।
तेरे बिरहों ने जीअड़ा जालिआ,
तेरे नित्त बिछोड़िआं खा लिया,
जिंद ग़मां दे विच्च पई गालदी
कलगी वाले नूँ नित्त सँम्हालदी।२।
दिने चैन न नींदरां रात नूँ
रहे लुच्छणी सँझ परभात नूँ,
घालां दरशनां वासते घालदी
कलगी वाले नूँ नित्त सँम्हालदी।३।
निक्की रिवीये! संदेसड़ा लै जईं
कलगी वाले दे चरनीं अपड़ा दईं,
सहीए! ख़बर दईं मेरे हाल दी
कलगी वाले नूँ पईआं सँम्हालदी।४।
दरदां तेरे फ़िराकां ने लाईआं
तेरे दरशन ही हैन दवाईआं
ताहीओं दरशनां नूँ पई भालदी
कलगी वाले नूँ नित्त सँम्हालदी।५।

: ४ :

प्यारे दे अंक समावें

मैलिआं नूँ धोवे ते रंग चढ़ावे।
ते रँगिआं दा मुल्ल पुआवे,
मुल्ल पिआं नूँ जो हाज़र हजूरी
हां विच्च हजूरी पुचावै;
शरन लई उस कलगीआं वाले दी
आपा चा भेट चढ़ावीं,
जो फरश तों उट्ठें ते अरश ते जावें
ते प्यारे दे अंक समावें।

